गांधी हरिभाईदेवकरणजैनग्रंथमाला ।

पुन्नाटगणीय श्रीमज्जिनसेनाचार्यविरचित

न्यायतीर्थ-श्रीयुत पंडित गजाधरलालजी द्वारा अनुवादित

भाषा

हरिवंशपु

जिसको

गांधी हरिभाईदेवकरण एंड सन्स द्वारा संरक्षित—

भारतीय जैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्थाके महामंत्री

पन्नालाल बाकलीवालने

शोलापुरनिवासी स्वर्गीय श्रेष्ठिवर्य गांधी रामचंद्रजीके सुपुत्र दानवीर

गांधी बालचंदजी हीराचंदजी और फूलचंदजीकी

आज्ञानुसार

९ विश्वकोषलेन, बाघबाजार, विश्वकोषप्रेस कलकत्तामें

श्रीराखालचंद्र मित्रके प्रबंधसे छपाकर

प्रसिद्ध किया ।

वीरनिर्वाण संवत् २४४२ ईशवीय सन् १९१६ ।

प्रथम संस्करण ।

प्रस्तावना।

देश और कालके अनुसार मनुष्योंके विचार सदा वदलते रहते हैं। ऐसा कभी नहिं हो सकता कि उनके विचार सदा समानरूपसे रहैं। हम देखते हैं जो हमारे विचार कुछ समय पहिले थे वे इससमय नहीं, और जो इससमय हैं वे आगे न रहैंगे इसलिये जब थोडे ही कालके विचारोंमें इतना परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है तब सैकडों और हजारों वर्षोंके पहिले तो नियमसे परिवर्तन हुआ होगा और होवेगा।

संसारमें कोई समय यह था कि लोग हरएक शास्त्रमें पूर्ण निष्णात होते थे, धारणा भी उनकी लोकोत्तर होती थी इसलिये वे धर्मके स्वरूपका तर्क वितर्कके साथ निश्चय करते थे। परंतु कालदोषसे जब मनुष्योंकी बुद्धियां मंद होने लगीं तो उनकेलिये शास्त्रोंका निर्माण करना-पडा। शास्त्रोंमें भी जब मनुष्य ज्ञानकी मंदतासे न्याय आदि शास्त्रोंका मर्म न समझने लगे तो देश कालके अनुकूल ग्रंथकारोंने पुराणोंकी रचना की और उनमें धर्मके फलके भोक्ता तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि महापुरुषोंके पवित्र चरित्रका उल्लेखकर धर्मका माहात्म्य वर्णन कर मनुष्योंको धर्ममें दृढ रक्खा। पुराणोंको गप्प मानना हमारी भूल है क्योंकि पुराण हमारे इतिहास है और इतिहासका फल "अपने पूर्व पुरुषाओंके पवित्र चरित्रसे—उनके उन्नत कृत्योंसे जो अपने हृदयमें गौरव और जोश आना" वतलाया है वही होना चाहिये।

समस्त जीवोंकी सदा कामना मोक्षकेलिये रहती है और वह मोक्ष भेदविज्ञानसे प्राप्त होती है इसलिये यदि इस दृष्टिसे देखा जाय तो पुराण भेदविज्ञान नहीं, भेद विज्ञानमें कारण हैं—क्योंकि पुराणनायक पुरुषोंके उदार चारित्रसे हमारे हृदयमें धर्मका जोश वढता है। जोशसे धर्मकी ओर प्रवृत्ति होती है। धर्ममें प्रवृत्ति होनेसे भेदविज्ञानकी प्राप्ति और उससे मोक्षलाभ होता है। अपने धर्म व वंशमें उत्पन्न हुये मनुष्योंके नामवर्णन व पता लगानेसे ही हमारा काम नहिं चल सकता परंच उनकी कृति और उदारभावोंकी ओर झुकनेसे कल्याण हो सकता है। यदि हम इसवातको ही लेकर बैठ जांय कि जो बात हमैं प्रत्यक्ष मालूम पडेगी उसीको मानेंगे अन्यको नहीं तो ठीक नहीं, क्योंकि हमारे चक्षु दिव्यचक्षु नहीं, चर्मचक्षु हैं और अल्पशक्तिके धारक हैं इसलिये हर एकबातका हम उनसे निर्णय करैं यह नहिं हो सकता। दूसरे जितने मूर्तीक पदार्थ हैं वे सड गलकर नष्ट होनेवाले हैं। हजारों वर्षों तक वे किसी महानुभावके स्मारक चिन्ह नहिं वन सकते। इसलिये यदि हमैं अधिक प्राचीन वा अर्वाचीन किसी महानुभावका 'जिसके कि विषयमें हमैं अन्य कोई प्रमाण नहिं मिलता' पता लगाना होगा तो उसका हम केवल शास्त्रसे ही पता लगा सकते हैं और वे शास्त्र हमारे पुराण ही हैं।

यह एक साधारण बात है कि मनुष्य चाहैं कैसे भी विद्वान क्यों न हों यदि एक ही वातको वे दो चार जुदे जुदे ग्रंथोंमें लिखेंगे तो उनके विचारोंमें गुरु परंपरा आदिके भेदसे अवश्य कहीं

न कहीं अंतर आजायगा परंतु वस्तुके स्वरूपेंमे किसीप्रकारका विरोध नहिं आसकता इसलिये उ-
ससे यह न समझ लेना चाहिये कि अमुक पदार्थके वक्ता और उसके वचन मिथ्या थे किंतु
उनके वचनोंपर पूर्णरूपसे विचार करना चाहिये और इस खूबीसे विचार करना चाहिये कि
किसी महाशयकी समालोचनासे ग्रंथकारके विषयमें किसी प्रकारकी किसीको अश्रद्धा न होजाय।
प्रायः यह देखनेमें आता है कि किसी ग्रंथकारके किसी वचनमें कहीं थोडासा अंतर पडजानेसे, लोग,
उस ग्रंथकारके समस्तग्रंथको और उसकी समता रखनेवाले अन्य ग्रंथकारोंको भी मिथ्या मानने
लग जाते है। परिणाम यह निकलता है कि दिग्गज विद्वान भी इस कोटिमें सम्मिलित करालिये
जाते है और अन्यान्य विद्वानोंके समान उनके ग्रंथोंपर भी लोगोंको अश्रद्धा हो जाती है। यहां
यह न समझना चाहिये कि सर्वज्ञके वचनानुसार रचना करनेवाले विद्वानोंमें कोई भी विद्वान छोटा
वडा नहिं हो सकता सब समान है। क्योंकि शक्तिकी अपेक्षा यहां छोटा बडापन लिया जासकता
है। कोई महानुभाव सर्व विषयका विद्वान है तो कोई किसी एक विषयका है और इसीरीतिसे
पट्टावलियोंमें विद्वानोंकी समस्तविषय व एक विषयसंबंधिनी विद्वत्ता प्रसिद्ध भी है इसलिये यह
सादर निवेदन है कि यदि किसी विद्वानकी कृतिमें किसी अंशमें दोष आजाय तो उसे व्यक्ति-
गत और उतनेही अंशमें समझना चाहिये सिद्धांतगत और समस्त अंशोंमें नहीं। अतः थोडेसे
अंशमें भ्रमसे प्रमाद मानकर सिद्धांत व शास्त्रको दोषी ठहराना नितरां दोषास्पद है। हां! यह
बात जुदी है कि यदि कोई मनुष्य न्याय शास्त्रको परमप्रिय मानता है तो किसीको व्याकरण व
धर्मशास्त्र अच्छा लगता है परंतु वह अपने विषयमें अन्य विषयका यथार्थज्ञान न रखकर वा
उसे सरल समझकर निंदा करनेसे विद्वान नहिं कहला सकता। हमारी दृष्टिमें विद्वान वे ही मनुष्य
हैं जो प्रत्येक ग्रंथके उत्तमोत्तम गुण और खूबियां जाहिर करनेवाले हैं। व्यर्थ निंदक विद्वान नहीं।
इसलिये विद्वानोंके समक्ष यह सादर निवेदन है कि वे जिस ग्रंथकी समालोचना करै उसे पूर्वा-
पर अच्छीतरह देखें और पूर्णतया उसपर विचार करै।

नवीन हिंदी अनुवादकी आवश्यकता

यद्यपि हरिवंशपुराणकी भाषा वचनिका पं० **दौलतरामजी** कृत मौजूद है और वह दो वार
प्रकाशित भी हो चुकी है तथापि ढूंढाडी भाषामें होनेसे उससे सर्व साधारण लाभ नहिं उठा स-
कते। दूसरे उसमें गायन और उपवास प्रकरण सर्वथा छोडदिये हैं। समवशरण प्रकरणके भी अ-
नेक श्लोकोंका अर्थ करना छूट गया है और अनेक श्लोकोंका भाव भी कुछका कुछ होगया है
जिसका कि उल्लेखकरना हम यहां अनुचित समझते है इसलिये हमै छूटे हुये श्लोकोंका अर्थ यथा-
साध्य लगाकर, सिद्धांतविरुद्ध भावोंको सिद्धांतानुकूल कर यह हिंदी अनुवाद करना पडा है।
पाठक यहांपर यह न समझें कि हम पं० दौलतरामजीके दोषोंका उल्लेख करते है। क्योंकि पं-
डितजी हमारे महोपकारी है। उससमय कई ग्रंथोंकी भाषा वचनिकाकर उन्होंने लोगोंको जैन
सिद्धांतमें दृढ रक्खा और हमारा लोकोत्तर उपकार किया। हां! यदि उससमय कोष आदिका

साधन होता जैसा कि वर्तमानमें है तो हम जोरके साथ कह सकते हैं कि पं० दौलतरामजीसे इस ग्रंथके अनुवादमें कोई भी त्रुटि न रहती—वे इसका सर्वांगपूर्ण अनुवाद करते।

ग्रंथकर्ताकी विद्वत्ता

हरिवंशपुराणके कर्ता आचार्यवर **जिनसेनकी** विषयप्रतिपादन शैली बडी ही विस्तृत रूपसे है। ये जिस विषयका वर्णन करते हैं हद कर देते हैं। इनके उपवास और गायन प्रकरण अनुपम और महत्वपूर्ण है। दृष्टग्रंथोंमें अभीतक इन प्रकरणोंको विस्तृत रूपसे वर्णित कहींपर नहिं देखा। आचार्यवर जिनसेनका पांडित्य प्रायः समस्तविषयोंमें अनुपम था। आद्योपांत इस ग्रंथके आलोचनसे पता लगता है कि ये गानविद्यामें पूर्ण पांडित्य रखते थे क्योंकि एक तो इन्होंने स्वयं इसग्रंथमें गायन प्रकरण लिखा है। दूसरे यथावसर दीपक आदि रोगोंका उल्लेख किया है। तीसरे उनतालीसवें सर्गमें जहांपर कि मेरुपर अभिषेककर. इंद्रने भगवान नेमिनाथको उनकी माता पिताकी गोदीमें विराजमान कर नृत्य और गायन किया है ग्रंथकारने एक विलक्षण ही छंद लिखकर गानविषयक अपने पांडित्यका पूर्ण परिचय दिया है। ये आचार्यवर व्याकरण विषयमें भी पूर्ण निष्णात थे क्योंकि इन्होंने जगह २ अपने ग्रंथमें 'सजानि, जारसेय' आदि पदोंका प्रयोग किया हैं जो कि व्याकरणके भूषण हैं। यद्यपि इनकी कवित्वशक्तिकी हम प्रशंसा करना ठीक नहिं समझते क्योंकि विज्ञ पाठक जिससमय इनकी कृतिको सामने रखकर पर्यालोचन करेंगे उससमय स्वयं उसका अनुभव कर लेगें तथापि निम्नलिखित श्लोकसे इनकी कवित्व शक्तिका हम कुछ परिचय दिये देते हैं।

> **एकद्वित्रिचतुर्द्विकानि सहितैस्तैः षोडशैकादिभि—**
> **र्विज्ञेयानि सतां चतुर्द्विकयुतत्रिंशद्द्विकान्यादरात्।**
> **एकांताः खलु षोडशादय इह चाष्टौ द्विकान्येव तु**
> **द्वित्र्येकोऽपि च यत्र ते प्रकथिता रत्नावलीयं परा॥**

यह श्लोक द्वितीयरत्नावली उपवास के स्वरूपका वर्णन करनेवाला है और ग्रंथकारने हाराकार प्रस्तारसे उक्त उपवासका स्वरूप समझाया है। देखिये! यहां आदिसे अंततक श्लोक बांचकर स्पष्टरूपसे हारका स्वरूप समझमें आजाता है जरा भी खींचां तानी नहिं करनी पडती इसीप्रकार अन्य भी बहुतसे पद्य हैं जो इनकी असाधारण कवित्वशक्तिकी सूचना देरहे हैं। यह पुराण कोरा पुराण ही नहीं है। इसकी कविता उत्तम काव्यकी कवितासे भी चढ़ बढ़की है यद्यपि इस ग्रंथमें जगह२ शृंगार रसकी भरमार नहिं की गई है तो भी वसंतक्रीडा आदि प्रकरणोंमें शृंगार रसके वर्णनकी हद कर दी है जिसका जैसा वर्णन और छंद आदि जैसा जहां होना चहिये वैसा ही वहां वर्णन किया है विना अवसर कोई बात नहीं कही गई है। ये आचार्यवर जैन धर्मके कितने प्रबल विद्वान थे यह बात इनके ग्रंथके आद्योपांत देखनेसे स्पष्ट मालूम पडजाती है क्योंकि उन्होंने जगह २ इस ग्रंथमें जैनसिद्धांतका अनुपम वर्णन किया है। जैनधर्म की गूढसे गूढ बातोंका भी उल्लेख इस ग्रंथमें कर दिया गया है और ज्योतिष प्रकरणका भी खूबीके साथ वर्णन किया है हमै इन सब बातोंसे विश्वास होता है कि हरिवंश सरीखा अनुपम और अद्वितीय पुराण शायद ही

कोई जैन समाजके अंदर होगा क्योंकि इसमें कथाभाग बहुत ही थोडा है प्रायः समस्त ग्रंथ सैद्धांतिक वार्तोसे ही भरा पडा है। यहांपर यह न समझना चाहिये कि पुराणोंमें जैनसिद्धांतके वर्णन करनेकी क्या आवश्यकता थी। जैनसिद्धांतका ज्ञान अन्य ग्रंथोंसे हो सकता था? क्योंकि देश कालके अनुकूल सब कार्य उत्तम होते है। हमै जान पडता है कि जिसप्रकार आज कल लोगोंके परिणाम पुराणोंमें विशेष लगते हैं सिद्धांतग्रंथोंमें नहीं उसीप्रकार पहिले भी होगा। ऐसी दशामें आचार्यवर जिनसेनने यदि पुराण मार्गसे जैन धर्मका स्वरूप वतलाया तो अत्युत्तम कार्य किया और पुराणरूपी मिश्रीके साथ जैनसिद्धांतरूपी महाकडवी दवा पिला देनेका प्रयत्नकिया। हम यह कभी नहिं कह सकते कि ये ग्रंथकार गायन आदि विषयोंमें पांडित्य नहिं रखते थे उन्होंने दूसरे ग्रथोंसे नकलकर अपने ग्रंथमें उन विषयोंको लिखा है? क्योंकि यदि ऐसा ही होता तो ये वैद्यक आदि अन्य प्रकरण भी नकल कर अपने ग्रंथमें लिखसकते थे। दूसरे नकल करने पर विषयके वर्णनमें विशदता नहिं आती—विषयोंको संक्षिप्तकरते हुये प्रकरणोंका वर्णन करते। परंतु ऐसा नहिं किया इसलिये जान पडता है कि आचार्यवरका जिन विषयोंमें पूर्ण पांडित्य होगा उन्हीं प्रकरणोंका स्पष्टतया उन्होंने उल्लेख किया। अन्य प्रकरणोंका नहीं।

अभीतक हमने इस ग्रंथका कभी स्वाध्याय नहिं किया था इसलिये हम इसै सीधा साधा पुराण समझते थे परंतु जिससमय इसका अनुवाद करना प्रारंभ किया उत्तरोत्तर हमै इसमें कठि-नता जान पडने लगी और बडे परिश्रमसे यथाकथचित् इसका अनुवाद पूरा करपाया। इसमें हमसे चार पांच श्लोक जो नीचे टिप्पणीकी जगह लिख दिये गये हैं अनुवाद करनेसे रहगये हैं जिनका कि हमै पूर्ण पश्चात्ताप है यदि कोई विज्ञ महानुभाव उनका अर्थ लिखकर हमै भेजें देगें तो उनके हम बहुतही कृतज्ञ होगें और दूसरे संस्करणमें उसे हम प्रकट करदेंगे इसकेसिवाय गायन आदि अपरिचित प्रकरणोंमें हमै विशेष कष्ट भोगना पडा। तद्विषयकग्रंथ भी देखने पडे तथापि उन्हें हम विशेषरूपसे विशद न करसके परंतु जितना लगा उतना लगाकर इसलिये प्रकाशित करदिया कि विज्ञ पाठक उतने अंशका परिश्रम छोड और अधिक परिश्रमकर इन प्रकरणोंका यथार्थ भाव निकाल सकें। जिसश्लोकमें हमे शंकाहै वहांपर हमने (?) यह प्रश्नवाचक चिन्ह लगा दिया है इसलिये विज्ञ पाठक उन प्रकरणोंपर विचार करें।

हमसे इसग्रंथके सपादनमें सैकडों जगह त्रुटियां होगई होंगी जोकि हमारी दृष्टिगोचर नहिं होतीं। अशुद्धिया भी बहुतसी रहगई होंगीं इसलिये विज्ञ पाठकोंके समक्ष यह सादर निवेदन है कि वे उन त्रुटियोंकी हमैं सूचनादें और 'प्रमादका होना अल्पज्ञोंके लिये एक साधारण बात है' यह समझ क्षमा प्रदान करें।

भारतके रत्नस्वरूप प्राच्यविद्यामहार्णव श्रीयुक्त बाबू **नगेंद्रनाथवसु** संपादक बंगला और हिंदी विश्वकोषके हम विशेष आभारी है जिन्होंने हमारे एकबार निवेदन करनेपर ही हरिवंश-पुराण और उसके कर्ताके संबंधका लेख लिख दिया और अपना अमूल्य समय व्यय किया।

प्रस्तावना ।

यद्यपि हरिवंशपुराणके कर्ता आचार्यवर जिनसेनकी जीवनीका अधिक परिचय प्राप्त नहिं हुआ तथापि जितना मिला उतना ही हम लिखना चाहते थे परंतु उक्त बाबू साहबने ग्रंथकारका कुछ परिचय देदिया है इसलिये पाठक महाशय ग्रंथकारका परिचय उनके निबंधसे ज्ञात करैं ।

हम अपने प्रियमित्र पं० **श्रीलालजी** काव्यतीर्थके भी विशेष उपकृत है जिन्होंने जगह जगह इसग्रंथके अनुवादमें हमैं पूर्ण सहायता दी एवं 'एक एक ग्यारह' इस कहावतके अनुसार हमैं इस ग्रंथके संपादनमें विशेष सुलभता हुई ।

यह ग्रंथ सेठ गांधी हरीभाई देवकरणवाले श्रीमान दानवीर सेठ **बालचंदजी** रामचंदजी सेठ **हीराचंदजी** रामचंदजी और सेठ **फूलचंदजी** रामचंदजीके पवित्र द्रव्यकी सहायतासे उनके द्वारा आविर्भूत **"हरिभाईदेवकरणजैनग्रंथमाला"** में प्रकाशित हुआ है और इसका देश कालके अनुकूल सुयोग्य उद्धार हुआ है । हमारे सठे साहबोंने जो यह ग्रंथ प्रकाशनरूपी कार्यकी नींव डाली है सो अधिक प्रशंसाके योग्य है और उत्तरोत्तर इससे ऐसे ही ऐसे अनेक पवित्र ग्रंथोंका उद्धार होगा इसलिये उक्त सेठ साहबोंकी जितनी प्रशंसाकी जाय उतनी ही थोडी है । सेठ साहबसे यह हमारा सादर आग्रह है कि वे इस परम पावन कार्यको इस दशामें पहुंचादें कि कभी इसमें किसीबातकी त्रुटि न रहै और इस संस्थासे प्रकाशित हजारों उत्तमोत्तम ग्रंथ इस परम पावन जैनधर्मको सदा स्थिर रक्खें ।

कलकत्ता
१२-११-१९१६

वशंवद—
गजाधरलाल

हरिवंश और जिनसेनाचार्य।

एक समय इस भारतवर्षमें जैनधर्मका सर्वत्र प्रसार और प्रचार था। ऐसा कोई देश और प्रधान नगर या कस्वा न था जहांपर कि जैनधर्मकी प्राचीनगाथाओंका पाठ न होता था। हिमालयसे लेकर कन्याकुमारीपर्यंत भारतवर्षमें सर्वत्र जैनधर्म ही जैनधर्म दृष्टिगोचर होता था। उससमयके ताम्रलेख और शिलालेख आदि तथा पुरातन ध्वंसावशेष चिन्होंसे यह बात बहुत ही अच्छी तरहसे प्रमाणित होती है। उससमय जैनधर्मके प्रभावविस्तारके साथ २ भारतवर्षमें नाना तत्त्वज्ञ और विद्वानोंके द्वारा जैनधर्मके नाना विषयोंके नाना शास्त्र रचित हुये हैं। जिससमय प्रारंभिक जैनशास्त्र मागधी भाषामें रचित हुये उससमय मगध देशमें ही जैनधर्मका खूब प्रचार था। परंतु मौर्यसम्राट् चंद्रगुप्तके श्रुतकेवली भद्रबाहुके निकट शिष्यता ग्रहण करनेके बाद उसके अधिकारभुक्त भारतवर्षमें सर्वत्र ही जैनधर्मका धीरे २ प्रचार होनेलगा। उसीसमय नाना भाषाओंमें जैनशास्त्रके प्रचारकी आवश्यकता हुई। बीचमें यद्यपि शुंघमित्र, कान्धायन, शातवाहन आदि राजाओंके विरुद्ध आचरणसे जैनधर्मका प्रसार और ज्ञान संकुचित होगया था, तथापि कलिंग, गुजरात, और दक्षिण श्रवणवेलगोलकी तरफ जैनधर्मका प्रचार और प्रभाव उसीतरह बना हुआ था। पश्चात् ब्राह्मणभक्त गुप्तसम्राटोंके प्रभावसे समस्त उत्तर भारतमें और कलिंग देशमें जैन धर्मका प्रभाव बहुत कुछ न्यून होगया तौ भी गुर्जर और सौराष्ट्र देशमें धीरे २ जैनधर्मने फिर अपना मस्तक ऊंचा किया। वीर निर्वाणके ६३२ वर्षसे ६८३ वर्षके बीचमें (ई० सं० १०७-१५७) पुष्पदंत नामक एक दिगंबराचार्यने शास्त्रोंको लिपिबद्ध किया। बलभीराजगणकी प्रसिद्धराजधानी आनंदपुर जैनशास्त्रके आलोचनाकी प्रसिद्ध भूमि था। हम जैन कल्पसूत्रसे जानते हैं कि आनंदपुरमें बलभीराजगणके प्रयत्नसे वीरनिर्वाणके ९४० संवत्में सर्वत्र समस्त जैनशास्त्रोंके पठन पाठनका आदेश हुआ था। और कुछदिनके बाद आनंदपुरसे जैनधर्मका प्रभाव समस्त दक्षिण देशमें विस्तृत होगया था।

जैनधर्म कितना प्राचीन है इस विषयकी आलोचना करने का यह स्थान नहीं है, तब इतना कहदेना ही वस होगा कि जैन संप्रदायके २३वें तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथस्वामी खीष्टाब्द के ७७७ वर्ष पहिंले मोक्ष पधारे थे। उनसे पहिलेके बाईसवें तीर्थंकर श्रीनेमिनाथस्वामी भगवान श्रीकृष्णके संपर्क भ्राता (ताऊके लडके) थे। उनके ही विस्तृत चरित्रवर्णनकेलिये यह हमारा आलोच्य जैन हरिवंशपुराण विरचित हुआ है। भगवान श्रीकृष्णको यदि हम ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं तो हमै बलात् उनके साथ होनेवाले बाईसवें तीर्थंकर श्रीनेमिनाथको भी ऐतिहासिक पुरुष मानना पडेगा। भगवान् श्रीकृष्णके संबंधमें जिसतरह हिंदूलोगोंके महाभारत, हरिवंश आदि नाना पुराणोंमें नाना आख्यायिकायें कहीं गई हैं उसीप्रकार जैन लोगोंके उपास्य तीर्थंकर श्रीनेमिनाथस्वामीके संबंधमें भी नाना आख्यान और उपाख्यान बहु प्राचीन कालसे चले आते हैं। हमारे प्रचलित महाभारत पुराण प्रभृतिकी और जैन हरिवंशपुराणकी प्रधान २ आख्यायिकाओं और उपाख्यानोंमें अनेक जगह ऐक्य न होनेपर भी वे बिलकुलही नहीं मिलतीं यह बात नही हैं। जिसतरह प्राचीनतम आख्यायिकायें कुछ समय के बाद नाना शाखाओंमें पल्लवित हो नाना उपकथाओंको जन्म देने वाली हुई उसीप्रकार सुप्राचीन जैनतीर्थंकरोंकी जीवनकहानी भी भक्तगणोंकी कल्पनामयी लेखनीकी सहायतासे नानारूपसे पल्लवित नहिं हुई यह बात नहीं, उ-

सके फलस्वरूप ऐसे अनेक विषय और अनेक अपूर्व कथायें कीर्तित हुई हैं जिनका कि ऐतिहासिक पक्षमें अनेक अंश विश्वासके योग्य नहीं है। किंतु भक्तिपक्षमें शिष्य प्रशिष्यों की मडलीमें उनका बराबर ही मूल्य है।

जिसप्रकार सुप्राचीन बौद्धधर्मावलंवी श्रावकयान कुछ समयके वाद ईसाकी पहिली शताब्दी के लगभग हीनयान और महायान इन दो विभिन्न शाखाओंमें विभक्त होगये थे उसीप्रकार सुप्राचीन जैन वा निर्ग्रंथ धर्मके अनुयायियोंके भी श्वेतांबर और दिगंबर ये दो भेद होगये। अधिक लिखनेसे क्या? ये दोनों एक महावृक्षकी भिन्न २ दो शाखायें हैं, जिसतरह हीनयान संप्रदाय प्रधानतः बुद्धदेवके धर्मको बुद्धदेव द्वारा प्रचारित पाली और मागधी भाषाओंमें प्रचार करनेकेलिये बद्धपरिकर था और बहुत कालतक बराबर ऐसाही करता रहा एवं जिसप्रकार महायान संप्रदाय अपने मतका सर्वत्र प्रसारकरनेकेलिये भारतीय पंडितसमुदायकी सुआदरणीय संस्कृतभाषामें अपने मतके पुष्टकरनेवाले ग्रंथ रचता था उसीप्रकार एक तरफ निर्ग्रंथ संप्रदायमेंसे उत्पन्न हुये श्वेतांबर संप्रदायने अंतिमतीर्थंकर श्रीमहावीरस्वामीद्वारा प्रवर्त्तित मागधी व अर्धमागधी भाषाका आश्रय ले अनेक ग्रंथोंकी रचना की और दिगंबर संप्रदायने केवल प्राकृतमें ही नहीं किंतु महायान संप्रदायके समान समग्र भारतीय विद्वज्जनोंकी मंडलीमें अपने धार्मिक, पौराणिक और सांप्रदायिक आदि नाना प्रकारके विषयोंको प्रचारितकरनेकेलिये और भिन्न २ देशके पंडितों को उन्हें समझानेकेलिये भारतकी सुपूज्य संस्कृत भाषामें अपने ग्रंथ रचे। इसतरह संस्कृत भाषाका आश्रयले भारतकी पूर्वतम संस्कृत भाषामें प्रचारित भारत, पुराण, धर्मसूत्र और दर्शनसूत्र के समान, दिगंबर संप्रदाय भी अपने पुराण इतिहास, धर्मसूत्र, दर्शनसूत्र प्रभृतिको संस्कृत भाषामें ही रच प्रचार करता था। तथा संस्कृत भाषामें ही उन मूल ग्रंथोंकी टीका टिप्पणी भाष्य प्रभृतिको रचता था। भारतीय ब्राह्मणधर्मावलंबियोंमें जिसप्रकार महाभारत, हरिवंश, अठारह पुराण और उपपुराण प्रभृति प्रचलित हुये हैं उसीप्रकार दिगंबर संप्रदायमें भी चौवीसतीर्थंकरोंके चरितको वर्णन करने वाले २४ पुराण और १२ चक्रवर्ती ९ नारायण ९ प्रति नारायण (विष्णुद्विट्) ९ बलभद्रों के उपाख्यानोंको वर्णन करने वाले ३९ उपपुराण रचित हुये हैं। जैनसंप्रदाय के आदिपुराण और उत्तरपुराणमें उक्त त्रेसठ महापुरुषों का एक साथ चरित वर्णित है इसलिये वे दोनों ग्रंथ महापुराण नामसे लोगोंमें प्रसिद्ध हैं।

हमारे आलोच्य हरिवंशपुराणमें नेमिनाथ स्वामीका चरित विशेष रीतिसे वर्णित हुआ है इसलिये इसका 'अरिष्टनेमिपुराण' यह नाम भी प्रसिद्ध है। महाभारतके खिलहरिवंशमें भगवान् श्रीकृष्ण [हरि] का और उनके स्ववंशीय लोगोंका विस्तृत चरित वर्णित होने के कारण वह जिसप्रकार हरिवंश नामसे प्रसिद्ध हुआ है उसीप्रकार अरिष्टनेमिपुराणमें विस्तृतरीतिसे यादव वंश वा हरिवंशका कीर्त्तन होनेसे यह पुराण भी जैन समाजमें हरिवंश नामसे प्रसिद्ध है। हमारा आलोच्य हरिवंशपुराण पुन्नागगणीय दिगंबराचार्य जिनसेन द्वारा विरचित है। उन्होंने इस पुराणके अंतमें अपना परिचय इसप्रकार दिया है—

> तपोमयीं कीर्तिमशेषदिक्षु यः क्षिपन् बभौ कीर्तितकीर्तिषेणः।
> तदग्रशिष्येण शिवाग्रसौख्यभागरिष्टनेमीश्वरभक्तिभाविना ॥ ३३ ॥
> स्वशक्तिभाजा जिनसेनसूरिणा धियाऽल्पयोक्ता हरिवंशपद्धतिः।
> यदत्र किंचिद् रचितं प्रमादतः परस्परव्याहृतिदोषदूषितं ॥ ३४ ॥

तदाऽप्रमादास्तु पुराणकोविदाः सृजंतु जंतुस्थितिशक्तिवेदिनः ।
प्रशस्तवंशो हरिवंशपर्वत क्व मे मतिः क्वाल्पतराल्पशक्तिका ॥ ३५ ॥
शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पंचोत्तरेषूत्तरा
पातीद्रायुधनाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणां ।
पूर्वां श्रीमदवंतिभूभृति नृपे वत्सादिराजेऽपरा ।
सौर्याणामधिमंडलं जययुते वीरे वराहेऽवति ॥ ५३ ॥
कल्याणे परिवर्द्धमानविपुलश्रीवर्द्धमाने पुरे
श्रीपार्श्वालयनन्नराजवसतौ पर्याप्तशेषः पुरा ।
पश्चाद् दौस्तटिकाप्रजाप्रजनितप्राज्यार्चनावर्चने
शातेः शांतिगृहे जिनेशरचितो वंशो हरीणामयं ॥ ५४ ॥
व्युत्सृष्टापरसंघसंततिबृहत्पुन्नाट (ग) संघान्वये
प्राप्त' श्रीजिनसेनसूरिकविना लाभाय बोधे पुन ।
दृष्टोऽयं हरिवंशपुण्यचरित श्रीपार्श्व (वं) त सर्वतो
व्याप्ताशामुखमंडलः स्थिरतर स्थेयात् पृथिव्या चिरं ॥ ५५ ॥ ६६ वा सर्ग ।

जैनहरिवंशके इन उद्धृत श्लोकोंसे जाना जाता है कि ७०५ शकाब्दमें अर्थात् हरिवंशपुराणकी रचनाके समाप्तिकालमें उत्तर भारतमें इंद्रायुध, दक्षिणमें कृष्णराजपुत्र श्रीवल्लभ, पूर्वमें अवंतिपति वत्सराज और पश्चिम सौर्यदेशमें वीर वराह राज्य करता था। उसीसमय वर्द्धमानपुरमें नन्न [ल्ल] राजद्वारा निर्मापित श्रीपार्श्वनाथके मंदिरमें पुन्नाटगणीय श्री जिनसेन स्वामीने इस ग्रंथको रच पूर्ण किया था।

प्रसिद्ध पुरातन तत्त्वज्ञ सर रामकृष्ण गोपाल भांडारकर और प्रसिद्ध पुराविद् डॉ. फ्लीट इन दोनोंके मतमें हरिवंशकार जिनसेनने ही अपनी वृद्धवयमें जयधवलटीकाको और आदिपुराणके प्रथमांशको रचा है। आश्चर्य है कि जैनशास्त्रवित् के. बी. पाठकने भी यही बात प्रकाशितकी है। * परंतु हमको दुःखके साथ कहना पडता है कि उक्त महात्मागणने जिस सिद्धांतको निश्चित ठहराया है वह बिलकुल ठीक नहीं है। पूर्वमें लिखा गया है कि हरिवंशकार जिनसेन पुन्नाटगणके आचार्य थे उन्होंने स्वयं अपने हरिवंशपुराणके अंतमें अपनेको कीर्तिषेणका शिष्य बतलाया है। दूसरे आदिपुराण और पार्श्वाभ्युदयके स्वाध्याय करनेसे मालूम होता है कि इन दो ग्रंथोंके रचयिता जिनसेन सेनसंघीय वीरसेन आचार्यके शिष्य थे। इसतरह दोनों एक ही व्यक्ति थे यह बात बिलकुल असत्य ठहरती है। हरिवंशकार जिनसेनने अपने ग्रंथमें कहा है कि—

वीरसेनगुरोः कीर्त्तिरकलंकावभासते ।
याऽमिताऽभ्युदये तस्य जिनेंद्रगुणसंस्तुतिः ।
स्वामिनो जिनसेनस्य कीर्तिं संकीर्त्तयत्यसौ ॥ ४० ॥ १ ला सर्ग

उद्धृतश्लोकोंसे प्रमाणित होता है कि वीरसेनके शिष्य स्वामी जिनसेन हरिवंशकार जिनसेनसे पूर्व प्रसिद्ध हो चुके थे। इसी संबंधमें श्रीनाथूरामप्रेमीने विद्वद्रत्नमालाग्रंथमें सविस्तर आलोचनाकी है। इसलिये हमने इस जगह अधिक कुछ भी नहीं लिखा है।

---

* Vide Bhanderkar's Early History of the Decan Page 652 70 and Doctors Fleet's Dynasties of the Canaries District in Bombay Gazetter Vol I. p. II. (1896 page 407).

पं० लालरामजीजैनने भी अपने द्वारा प्रकाशित आदिपुराणकी प्रस्तावनामें श्रीयुक्त नाथूराम-प्रेमीके मतानुवर्त्ती होकर हरिवंशकारको और पार्श्वाभ्युदयके रचयिता जिनसेनको भिन्न २ व्यक्ति स्वीकार किया है। एवं उनके मतमें पार्श्वाभ्युदयकर्त्ता जिनसेनने ही ७५९ शकाब्दमें सिद्धांतशास्त्रकी जयधवला नामकी टीका रची है। और उसके बाद उन्होंने आदिपुराण रचना प्रारंभ किया था परंतु वे उसे अधूराही छोड़कर स्वर्गवासी होगये इसलिये उसे उनके शिष्य गुणभद्राचार्यने पूर्ण किया। अतः उनका यह भी मत है कि "उसके रचयिता जिनसेन ७७० शक संवत्‌तक जीवित थे क्योंकि कीर्त्तिषेणके शिष्य जिनसेनने ७०५ शकसंवत्में हरिवंशको रच पूरा किया है और उन्होंने अपने ग्रंथके प्रारंभमें आदिपुराणकार स्वामी जिनसेन का उल्लेख विशेषसम्मानपुरःसर किया है [जिसका कि पहिले हम प्रमाण दे आये हैं]। तथा ७५९ शकसं० में उन्होंने जयधवलानामकी टीका रची है इसतरह आदिपुराणकार स्वामी जिनसेन, हरिवंशकार जिनसेनकी अपेक्षा निश्चयसे ही वयोवृद्ध हैं। इसलिये कमसे कम ३० वर्ष भी वयोवृद्ध होंय तो अनुमानसे ६७५ शकमें आदिपुराणकार जिनसेनका जन्म हुआ होगा। इसतरह ९५ वर्षकी अवस्थामें आदिपुराणकी रचना उन्होंने की होगी ऐसा मालूम होता है।" परंतु आदिपुराणको पढनेसे मालूम होता है कि इसतरहकी रचना इतनी बडी उम्रमें की होगी यह बात संभव नहीं है। तो भी पूर्वोक्त पुराविद्गण और जैनपंडितद्वय वीरसेनके शिष्य जिनसेनको इतनी बडी उमरके वतलानेमें प्रधान कारण हैं। उन्होंने जो जयधवल टीकाका समाप्तिज्ञापक ७५९ शकांक अपने प्रमाणमें दिया है उसे हम नीचे उद्धृत कर कुछ विचार करते हैं।

एकान्नषष्टिसमधिकसप्तशताब्देषु शकनरेन्द्रस्य। समतीतेषु समाप्ता जयधवला प्राभृतव्याख्या॥
गाथासूत्राणि सूत्राणि चूर्णिसूत्रं तु वार्तिकम्। टीका श्रीवीरसेनीयाऽशेषापद्धतिपञ्चिका॥
श्रीवीरप्रभुभाषितार्थघटना निर्लोडितान्यागमन्याया श्रीजिनसेनसन्मुनिवरैरादेशितार्थस्थिति।
टीका श्रीजयचिन्हितोरुधवला सूत्रार्थसम्बोधिनी स्थेयादारविचन्द्रमुज्ज्वलतमा श्रीपालसम्पादिता॥

इन श्लोकोंसे जाना जाता है कि श्रीपाल नामक किसी जैनाचार्यने ७५९ शक संवत्‌में कषायप्राभृत ग्रंथकी व्याख्यास्वरूप यह जयधवला नामकी टीका समाप्त की है। यह गाथासूत्र, सूत्र, चूर्णिसूत्र, वार्तिक, और वीरसेनीया टीका इसतरह पंचाङ्गीय टीका है। इसमें वीर भगवानके उपदिष्ट हुये आगमका विषय, मुनिवर जिनसेनका उपदेश और अन्य अन्य मुनियोंकी रचना प्रभृति हैं तथा सूत्रार्थ ज्ञानकेलिये इस जयधवला नामकी टीकाकी रचना की गई है अर्थात् इससे किसी तरह भी सिद्ध नहीं होता कि शक संवत् ७५९ में जिनसेन विद्यमान थे क्योंकि उद्धृत श्लोकोंमें जो संवत् वतलाया है वह श्रीपाल मुनिके ग्रंथ संपादनका समय है। वास्तवमें जिनसेनके गुरु वीरसेनने किस समय वीरसेनीय टीका रची और जिनसेनने वह विस्तृत टीका कब समाप्त की इसका कोई भी उपयुक्त साधन अब तक देखनेमें नहीं आया है तब हम उनके विषयमें इस आलोच्य हरिवंशपुराणके उपर्युक्त श्लोकसे इतना ही कह सक्ते हैं कि वे पुन्नाटगणीय जिनसेनसे पहिले इस संसारमें मौजूद थे एवं शक सं० ७०५ से पूर्वमें उन्होंने अपनी रचना की थी।

आदिपुराणकार स्वामी जिनसेनाचार्य विरचित * पार्श्वाभ्युदयकी अंतिमप्रशस्तिसे और गुणभद्राचार्यविरचित आदिपुराण तथा उत्तरपुराणकी प्रस्तावनासे यह बात भली भांति सिद्ध होती है कि राष्ट्रकूट (राठौर) वंशीय अमोघवर्षने आदिपुराणकार जिनसेनाचार्य का शिष्यत्व स्वीकार किया था। और इस अमोघवर्षको बहुतसे इतिहासज्ञ शक सं०

१। इति विरचितमेतत्काव्यमावेष्ट्य मेघं बहुगुणमपदोषं कालिदासस्य काव्यं। मलिनितपरकाव्यं तिष्ठतादाशशांकं, भुवनमवतु देवः सर्वदाऽमोघवर्षः॥ ४-७७॥

७३६ में सिंहासनारूढ़ हुआ वतलाते हैं। परंतु हमारी समझमें यह अमोघवर्ष वह अमोघवर्ष नहीं है जिसका कि स्वामी जिनसेनने उल्लेख किया है वल्कि उसका पितामह (बाबा) श्रीवल्लभ, जिसकाकि दूसरा नाम अमोघवर्ष भी था (जैसा कि आगे हम सिद्ध करेंगे) उनका शिष्य था। क्योंकि राष्ट्रकूटवंशीय राजा लोग कई २ नामोंसे प्रसिद्ध हुए हैं उनमें कर्कराजके वाद जितने राजा सिंहासनारूढ़ हुए हैं प्रायः उन सर्वोकी 'वर्ष' उपाधि रही है। जैसा कि नीचे लिखी तालिकासे मालूम पड़ता है—
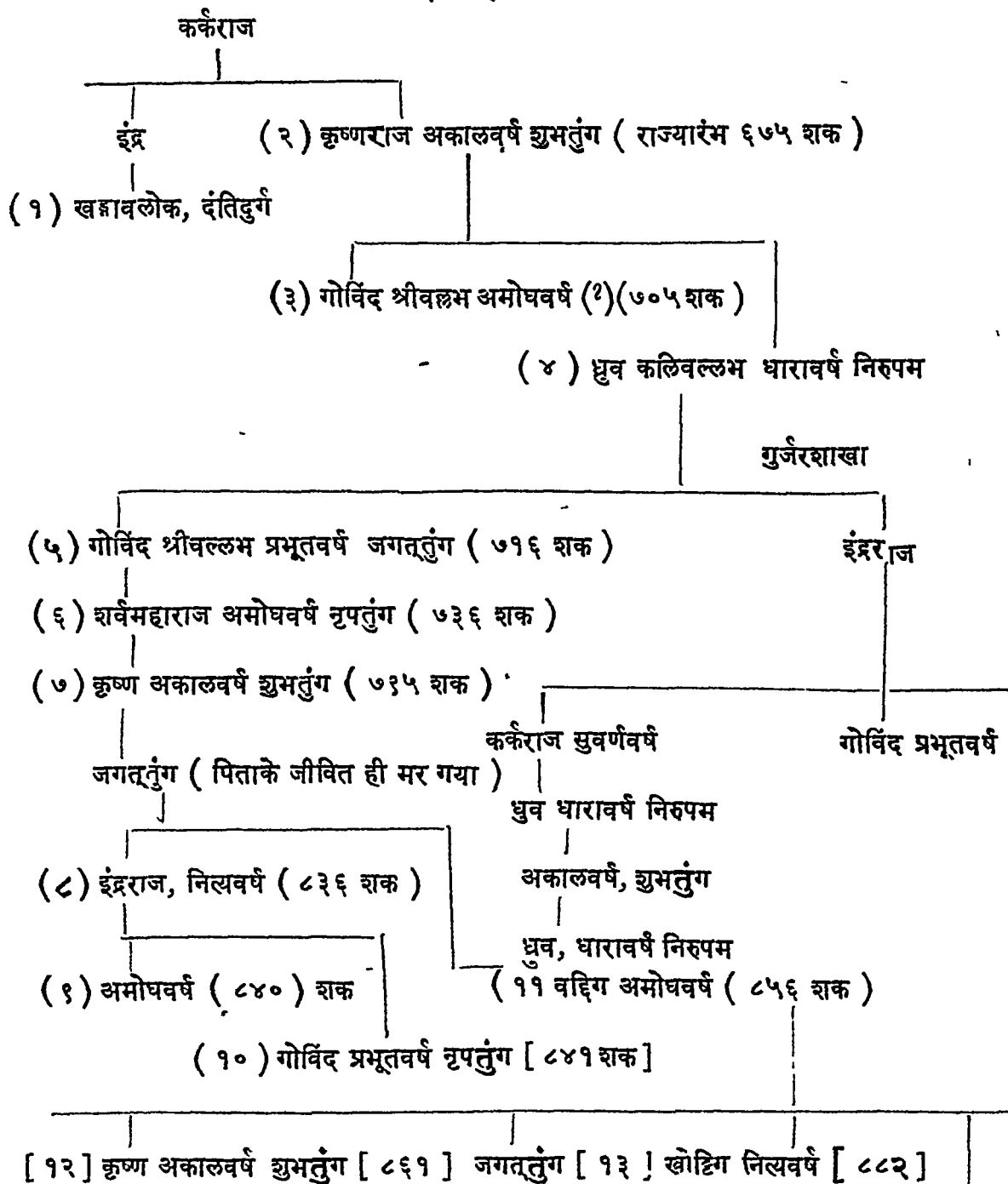
तालिकामें दिखलाये गये राजाओंके नामों और उनके पहिले लिखे गये नंवरोंसे भलीभांति ज्ञात होता है कि एक ही वंशकी एक ही व्यक्तिने अनेक नाम धारण किये हैं और कर्कराजके परवर्ती समस्त राजाओंके नामांतमें 'वर्ष' शब्द रहा है। यद्यपि केवल हरिवंशकार जिनसेनके समसामयिक कृष्णराजके पुत्र श्री गोविंद या श्रीवल्लभका वर्षांतनाम आजतक किसी ताम्रलेख वा शिलालेखमें नहीं पाया गया है तथापि उसका कोई न कोई वर्षांत नाम

अवश्य ही रहा होगा ऐसा उपर्युक्त राष्ट्रकूटवंशीय तालिकासे मालूम पड़ता है और वह बहुत करके 'अमोघवर्ष' ही है क्योंकि एक तो तालिकामें दिये गये गोविंद राजासे परवर्ती समस्त तीसरे राजाओंके वे ही नाम रहे हैं जो कि उनके पहिलेके थे और दूसरे शक ७०५ में बनाये गये हरिवंशमें * पार्श्वाभ्युदयका नामोल्लख आया है इससे स्पष्ट मालूम पडता है कि पार्श्वाभ्युदयमें लिखित अमोघवर्ष ७३८ शकमें शासन करनेवाले अमोघवर्ष नहीं है, कोई दूसरे ही हैं, और वे हों न हों ये ही श्रीवल्लभ हैं जिनका कि जिनसेनने हरिवंशमें उल्लेख किया है।

राष्ट्रकूटवंशके नृपतिगण कितना और कैसा जैनधर्मका समादर करते थे यह बात जिनसेनाचार्य और गुणभद्राचार्यके इतिहासको देखनेसे अच्छी तरह जानसक्ते हैं। विद्वद्रत्नमालाके प्रथम भागमें सबसे पहिले इसी विषयकी यथोचित आलोचना हुई है। अतः इसजगह उसका वर्णन करना हम निष्प्रयोजन समझते हैं।

अब हम अपने आलोच्य हरिवंशपुराणके कर्त्ता जिनसेनाचार्यने विशेषरीतिसे जिस २ प्रचलित इतिवृत्तका कथन किया है उसीका नीचे परिचय देते हैं—

पहिले हम हरिवंशकी रचनासमयज्ञापक श्लोकोंको उद्धृतकरते समय लिख आये हैं कि शकसं ७०५ में, [७८३-७८४ ईसवीमें] उत्तर भारतमें इंद्रायुध, दक्षिणमें कृष्णराजकापुत्र [राष्ट्रकूटवंशीय] श्रीवल्लभ, पूर्वमें अवंतिपति वत्सराज और पश्चिममें सौर्यदेशके अधिपति वीर-वराह राज्य करते थे अर्थात् ये चार राजा ही उससमय समग्रभारतवर्षमें राजाधिराजके नामसे प्रसिद्ध थे। अब देखना चाहिये कि जिनसेनाचार्यका यह कथन कहां तक सत्य है।

वास्तवमें उत्तर-भारतके इतिहास, प्रभावकचरित प्रभृति जैनग्रंथोंके देखनेसे मालूम होता है कि इंद्रायुधने चक्रायुधको राज्यच्युत कर कन्नौजका सिंहासन अपने हाथमें करलिया था। इधर राष्ट्रकूटवंशीय कृष्णराजका पुत्र द्वितीय गोविंद श्रीवल्लभ मान्यखेट नगरको अपनी राजधानी बना दक्षिणका शासन करता था। तृतीय गोविंदके दो ताम्रशासनोंसे जाना गया है कि वत्सराज गौडदेशके जीतनेसे अपने पराक्रममें मत्त थे और गौडराजके श्वेतच्छत्रको ग्रहणकर बैठेथे। तृतीय गोविंदके पिता राष्ट्रकूटपति ध्रुवने उस वत्सराजको क्रीडामात्रमें पराजित कर दिया था और उनके अहंकारके चूर्णपूर्वक श्वेतच्छत्रके साथ २ दिगंतव्यापी यशको भी छीनलिया था जिससे कि उसे मारवाडदेशमें जा अपने प्राण बचाने पडे थे। कर्णराजके शक-संवत् ७३४ वाले ताम्रलेखमें लिखा है कि उक्त राष्ट्रकूटवंशीय गोविंदने तथा गौडेंद्र और वंगपति-विजेता गुर्जरेंद्रने वत्सराजको पराजित करके अपने छोटेभाई इंद्रराजको मालवेमें प्रतिष्ठित किया था।

उक्त समसामयिक लिपिके प्रमाणसे जानपडता है कि शकसं ७३४ के पहिले मालवपति वत्सराजने समस्त प्राच्य-भारतमें अपना अधिकार करलिया था एवं जिनसेनोक्त ७०५ शकसंवत् में वे अवंतिसे लेकर वंगपर्यंत समस्त पूर्व-भारतके अधीश्वर थे। जिनसेनाचार्यने जिस वीरवराहका उल्लेख किया है वे कन्नौजमें भावी गुर्जर-राजवंशके प्रतिष्ठाता सुप्रसिद्ध गुर्जरपति ही हैं। जिनसेनके समय पश्चिम भारतमें उनका अभ्युदय हुआ था इसलिये जिनसेनके हरिवंशमें जो हम चार सम्राटोंका अनुसंधान पाते हैं वह सत्य है।

इसके सिवाय उन्होंने हरिवंशके अंतिमभागमें भविष्य राज्यवंशके प्रसंगसे नीचे लिखे अनुसार कितने ही राजाओंका भी परिचय दिया है।

* याऽमिताऽभ्युदये पार्श्वजिनेंद्रगुणसंस्तुति। स्वामिनो जिनसेनस्य कीर्त्तिं संकीर्त्तयत्यसौ॥ १-४०॥ [पार्श्व और तस्य दोनो ही पाठ मिलते हैं]

"वीरनिर्वाणकाले च पालकोऽत्राभिषिक्ष्यते । लोकेऽवंतिसुतो राजा प्रजाना प्रतिपालक. ॥
षष्टिर्वर्षाणि तद्राज्यं ततो विजयभूभुजां । शतं च पंच पंचाशत् वर्षाणि तदुदीरितं ॥
चत्वारिंशत् पुरूढानां भूमडलमखडितं । त्रिशत्तु पुष्पमित्राणां षष्टिर्वस्वग्निमित्रयो ॥
शतं रासभराजाना नरवाहनमप्यत । चत्वारिंशत्ततो द्वाभ्या चत्वारिंशच्छतद्वयं ॥
भट्टवाणस्य तद्राज्यं गुप्ताना च शतद्वयं । एकविंशच्च वर्षाणि कालविद्भिरुदाहृत ॥
द्विचत्वारिंशदेवात कल्किराज्यस्य राजता । ततोऽजितंजयो राजा स्यादिंद्रपुरसंस्थित" ॥८७–९२॥

उद्धृत श्लोकोंके अनुसार वीरनिर्वाणके समय अवंतिके सिंहासनपर पालक राजाका अभिषेक हुआ था । इस वंशने ६० वर्ष, विजय(नंद)वंशने १५५, पुरूढवंशने ४०, पुष्पमित्रने ३०, वसुमित्र अग्निमित्रने ६०, रासभ (गर्दभिल्ल) वंशने १००, नरवाहनने ४०, भट्टवाणने २४२, गुप्तवंशने २२१, और कल्किराजने ४२ वर्षतक राज्य किया था ।

उसके बाद फिर जिनसेनाचार्यने लिखा है कि—

वर्षाणां षट्शतीं त्यक्त्वा पंचाग्रा मासपचक । मुक्ति गते महावीरे शकराजस्ततोऽभवत् ॥

इस श्लोकसे जाना जाता है कि शक संवत् ६०५ से पहिले (५२७ खीष्टाब्दसे पूर्व) महावीरस्वामीने मोक्ष लाभ किया था, और भिन्न २ राजवंशकी कालगणनासे मालूम होता है कि वीरनिर्वाणके (६०×१५५×४०)=२५५ वर्षके बाद और (६०५–२५५=)–३५० वर्ष शकके पहिले पुष्पमित्रका अभ्युदय हुआ था । इधर श्वेतांबर संप्रदायके "तित्थुगुलिय पयण्ण" और "तीर्थोद्धारप्रकीर्ण" ग्रंथोंके * देखनेसे मालूम होता है कि जिस रातिको महावीर स्वामी मोक्ष पधारे थे उसी रातिको पालक राजा अवंतिके सिंहासनपर अभिषिक्त हुआ था । पालकवंशने ६० वर्ष, नंदवंशने १५५, मौर्यवंशने १०८, पुष्पमित्रने ३०, बलमित्र और भानुमित्रने ६०, नरसेन वा नरवाहनने ४०, गर्दभिल्लवंशने १३, और शकराजने ४ वर्ष राज्य किया था अर्थात् महावीर स्वामीके निर्वाणकालसे शकराजके अभ्युदय पर्यंत ४७० वर्ष होते हैं । इधर सरस्वतीगच्छकी प्राचीन् पट्टावलीमें लिखा है कि विक्रमने उक्त शकराजको पराजित तो किया परंतु वे १८ वर्ष पर्यंत राज्याभिषिक्त नहिं हुये । उस सरस्वती गच्छकी गाथामें स्पष्ट लिखा है कि–"वीरात् ४९२ विक्रम जन्मांतवर्ष २२ राज्यांतवर्ष ४"+ अर्थात् विक्रमाभिषेकाब्दसे (विक्रमसंवत्से) ४८८ वर्ष पहिले (४८८–५७=४४४ या ४४५ वर्ष खीष्टाब्द से पहिले) महावीर स्वामीकी मोक्ष हुई थी ।

जिनसेनने जो शकाब्दसे ६०५ वर्ष पहिले-वीर मोक्ष लिखा है उसके अनुसार दिगंबर संप्रदायी आजतक भी वीर-मोक्षाब्दकी गणना करते आते हैं । परंतु; भविष्य राजवंशप्रसंगमें जिनसेनने जो गणना वतलाई है वह दूसरे किसी भी जैनग्रंथ, वा भारतीय अन्य सांप्रदायिक ग्रन्थके साथ नहीं मिलती । 'तित्थुगुलियपयण्ण, और तीर्थोद्धारप्रकीर्णके मतके साथ आधुनिक ऐतिहासिक सिद्धांतका अधिक मतभेद नहीं है । ऐसी अवस्थामें जिनसेन जो भविष्यराजवंशका कालनिर्णय लिख गये हैं वह उनका समसामयिक प्रवादमात्र है। उसे ऐतिहासिक रूपसे ग्रहण नहीं कर सकते ।

इस हरिवंशपुराणमें जो आलोच्य वा ज्ञातव्य विषय है वह ग्रन्थके प्रारंभमें स्वयं ग्रंथकर्त्ताने लिखा है उसीको विस्तारके साथ,संपादक महाशयने भी "विषयसूची" में लिखदिया है इसलिये वाहुल्यभयसे हम उसका यहां उल्लेख करना उचित नहीं समझते ।

श्रीनगेंद्रनाथ वसु ।

* इस विषयका मूल प्रमाण 'हिंदीविश्वकोष' द्वितीय भाग ३५० पृष्ठमें लिखा है ।

+ इंडियन ऐन्टिक्वेरी वेल्यूम २० पृष्ठ ३४७ में देखो ।

श्रीवीतरागाय नमः ।

गांधी-हरिभाईदेवकरणजैनग्रंथमाला ।

२

हरिवंशपुराण

सिद्धं ध्रौव्यव्ययोत्पादलक्षणद्रव्यसाधनं ।
जैनं द्रव्याद्यपेक्षातः साद्यनाद्यथ शासनं ॥

दोहा ।

नाशोत्पत्तिध्रौव्ययुत वस्तुप्रकाशक सिद्ध ।
नयवश सादिअनादि है जैनागम सुप्रसिद्ध ॥
केवलज्ञानविकाशयुत लोकालोकसुभान ।
वंदो लक्ष्मीवृद्धियुत वर्धमान भगवान ॥

जो किसीके द्वारा बना हुआ न होनेसे स्वयं सिद्ध है, उत्पाद व्यय ध्रौव्य लक्षणको धारण करनेवाले द्रव्योंका कथन करनेवाला है और जो द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा अनादि और पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा सादि है, ऐसा जिनेंद्र भगवानका शासन सदा जयवंत रहो ॥ १ ॥ जो शुद्ध केवलज्ञानके धारणकरनेवाले हैं, लोक अलोक को प्रकाशित करनेमें अद्वितीय सूर्य हैं, अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख अनंतवीर्यरूपी अंतरंग लक्ष्मी और समवसरण आदि वाह्य लक्ष्मीके स्वामी हैं, ऐसे श्रीवर्द्धमान भगवानके लिये नमस्कार है ॥२॥ चतुर्थकालकी आदिमें असि मसि कृषि आदि समस्त रीतियोंको बतलानेवाले, सबसे प्रथम धर्मतीर्थके प्रवर्तक, समस्त पदार्थोंको जाननेवाले, (सर्वज्ञ) आदिब्रह्मा, श्रीआदिनाथ भगवानकेलिये नमस्कार है ॥ ३ ॥ जिस (अजितनाथ) भगवानने वादियों द्वारा सर्वथा अजेय धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति की, समस्त कर्मरूपी वैरियोंको जीता, उस दूसरे जिनेंद्र श्रीअजितनाथकेलिये नमस्कार है ॥ ४ ॥ जिस भगवानके स्थितिकालमें उनके उपदेशसे भव्योंको इसबातका विचार हुआ कि सुख मोक्षमें है या संसारमें है ? ऐसे तीसरे तीर्थंकर श्रीशंभवनाथ भगवानके लिये नमस्कार हो ॥ ५ ॥ जिस भगवानने मोक्षाभिलाषी भव्यजीवोंकेलिये चौथे धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति

की जो समस्तलोकको प्रिय, और कर्मविजयी है, उस श्रीअभिनंदन भगवानकेलिये मन वचन कायसे नमस्कार है ॥ ६ ॥ बड़े विस्तारके साथ पंचम धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति करने वाले पंचम तीर्थंकर श्रीसुमतिनाथ भगवानकेलिये वारंवार नमस्कार है ॥७॥ कमलकी प्रभाको जीतनेवाली जिस भगवानकी प्रभाने समस्त दिशायें प्रकाशमान करदीं उस छठे तीर्थंकर श्रीपद्मप्रभके लिये नमस्कार है ॥ ८ ॥ जिस भगवानने कृतकृत्य होकर अन्य जीवोंके हितार्थ सप्तम धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति की, उस परमपूज्य श्री सुपार्श्वनाथ भगवान के लिये नमस्कार है ॥ ९ ॥ समस्त इंद्रोंद्वारा पूजनीक, चंद्रमाकी प्रभाके समान निर्मल कीर्तिके धारक, अष्टम धर्मतीर्थके कर्ता, पूज्य, श्रीचंद्रप्रभ भगवानके लिये नमस्कार है ॥१०॥ शरीर और दांतोंकी प्रभासे कुंदपुष्पकी प्रभाको जीतनेवाले, नवमे धर्मतीर्थके प्रवर्तक, श्रीपुष्पदंत भगवानके लिये नमस्कार है ॥११॥ जिस भगवानने समस्त जीवोंके खेदको दूर करनेवाले, पवित्र, एवं शांतिदायक दशवें धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति की, और कुमार्गका नाश किया, उस श्रीशीतलनाथ भगवानकेलिये नमस्कार है ॥१२॥ भगवान शीतलनाथके पीछे धर्मतीर्थकी विछित्ति देख जिसने भव्यजीवोंको संसारसे पार किया, ऐसे ग्यारहवें अर्हत श्रीश्रेयांस भगवानकेलिये मस्तक नमाकर नमस्कार है ॥१३॥ जिस भगवानने मिथ्यातीर्थरूपी अंधकारको नाश कर अतिशय निर्मल बारहवें धर्मतीर्थकी स्थापनाकी समस्त जीवोंकी रक्षाका मार्ग बतलाया उस श्रीवासुपूज्यरूपी सूर्यके लिये नमस्कार है ॥ १४ ॥ तेरहवें तीर्थकी स्थापनाकर जिस विमलनाथ भगवानने मिथ्या-मार्गरूपी मलसे मलिन, इस जगतको विमल बनाया उस विमलनाथ भगवानकेलिये नमस्कार है ॥ १५ ॥ मिथ्यासिद्धांतरूपी अंधकारके नाश करनेमें सूर्यके समान, चौद-हवें धर्मतीर्थके करनेवाले श्रीअनंतनाथ जिनेंद्रकेलिये नमस्कार है ॥१६॥ जिस भग-वानने कुधर्ममार्गरूपी पातालसे सर्वथा उद्धार करने वाले पंद्रहवे धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति की उस श्रीधर्मनाथ भगवानकेलिये नमस्कार है ॥१७॥ सोलहवें धर्मतीर्थके प्रवर्तक, अनेक प्रकारकी ईतियों* को शांत करनेवाले, पंचम चक्रवर्ती, शांति प्रदान करनेवाले श्रीशांतिनाथ जिनेंद्रको नमस्कार है ॥१८॥ विस्तृत कीर्तिके धारक—सत्रहवें धर्मतीर्थ-की प्रवृत्ति करनेवाले, शांतिनाथसे अनंतर होनेवाले एवं छठे चक्रवर्ती श्रीकुंथुनाथ भगवानकेलिये नमस्कार है ॥१९॥ जिस भगवानने अठारहवें धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति कर प्राणियोंका हित किया समस्त पापरूपी वैरियोंका नाश किया एवं सातवें चक्रवर्ती हुये, उन श्रीअरनाथ भगवानको नमस्कार है ॥२०॥ उन्नीसवें धर्मतीर्थकी स्थापना कर जिस भगवानने स्थिरकीर्तिका लाभ किया एवं प्रबलमल्लवन मोहरूपी बलवान मल्लको पछा-

* अतिवृष्टि १, अनावृष्टि २, मूसक ३, टिड्डी ४, सूवा ५, आपका कटक ६, परका कटक ७, ये सात प्रकारकी ईतिया है ।

ड मारा उस श्रीमल्लिनाथ भगवानकेलिये नमस्कार है ॥२१॥ अपनेको बीसवां तीर्थंकर बनाकर जिस भगवानने संसारसे लोगोंको पार किया उस मुनिसुव्रतनाथ भगवान् को नमस्कार है ॥२२॥ मुनियोंमें मुख्य, रागद्वेषादि अंतरंग–ज्ञानावरणादि वहिरंग शत्रुओंको वश करने वाले, इक्कीसवें धर्मतीर्थके प्रवर्तक, भगवान् नमिनाथकेलिये नमस्कार है ॥२३॥ हरिवंशरूपी उदयाचलके शिखामणि सूर्य, बावीसवें धर्मचक्ररूपी रथके धुरे (श्री अरिष्ट) नेमिनाथ भगवानकेलिये नमस्कार हो ॥२४॥ बड़े २ पर्वतों को उठानेवाले कमठासुर द्वारा किये गये जिस भगवानके उपसर्गोंको धरणेंद्रने दूर किया ऐसे तेवीसवें धर्मतीर्थके कर्ता श्रीपार्श्वनाथ भगवान् सदा इसलोकमें जयवंत रहो ॥ २५ ॥ इसप्रकार इस अवसर्पिणी कालके तीसरे चौथे कालमें जितने तीर्थंकर जिन हुए हैं वे सब इस ग्रंथके बनानेमें मुझे सिद्धि प्रदान करें ॥ २६ ॥ जो भूतकाल की अपेक्षा तो अनंत हैं, वर्तमानकी अपेक्षा संख्यात हैं और भविष्यत्कालकी अपेक्षा अनंतानंत हैं वे समस्त अर्हत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, पाचों गुरु सदा सब जगह मंगल स्वरूप हों ॥ २७ ॥ २८ ॥

स्वामी समंतभद्रके वचन इस वर्त्तमान कालमें भगवान महावीर स्वामीके समान प्रमाण हैं क्योंकि संसारमें जैसे महावीर भगवानके वचन (जीवसिद्धिविधायि) जीवोंको सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं। स्वामी समंतभद्रके वचन भी "जीवसिद्धि" नामक ग्रंथके करनेवाले हैं। महावीरके वचन जैसे (कृतयुक्त्यनुशासनं) प्रमाण और नयों द्वारा अनेक शास्त्रोंका प्रतिपादन करनेवाले हैं भगवान समंतभद्रके वचन भी "युक्त्यनुशासन" नामक ग्रंथके करनेवाले हैं ॥२९॥ तथा समस्त संसारमें प्रसिद्ध भगवान ऋषभदेवकी निर्दोषवाणी जिसप्रकार सज्जनोंको ज्ञानी बनाती है आचार्य सिद्धिसेन मुनिकी वाणी भी उसीप्रकार मनुष्योंको ज्ञानी बनाती है ॥ ३० ॥ इंद्र चंद्र अर्क जैनेंद्र व्याकरणोंसे अत्यंत शुद्ध देव, देवसंघकी वाणी नियमसे वंदनीक है ॥ ३१ ॥ आचार्य वज्रसूर्यकी वाणी धर्मशास्त्रके वक्ता, गणधर देवकी वाणीके समान है क्योंकि गणधर देवकी वाणी जैसी बंध और बंधके कारण रागद्वेषादि, तथा मोक्ष और मोक्षके कारण सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय पर विचार करनेवाली है उसी प्रकार वज्रसेन आचार्यकी वाणी भी बंध मोक्ष और उनके कारणोंपर विचार करनेवाली है ॥ ३२ ॥ अत्यंत सुंदरलोचन धारण करनेवाली स्त्रीके समान आचार्य महासेनकी सुलोचना कथा वर्णन करने योग्य है क्योंकि स्त्री जैसी सुंदर होती है महासेन कविकी कथा भी मधुर-प्रिय है स्त्री जिस प्रकार (शीला) शीलवती होती है उनकी कथा भी शीलवान पुरुषका वर्णन करनेवाली है स्त्री जैसी (अलंकारधारिणी) भूषण वस्त्रसे शोभित रहती है उसीप्रकार कथा भी नाना प्रकारके रस और अलंकारोंसे शोभित है ॥३३॥ सूर्यकी मूर्तिके समान देदीप्यमान आचार्य

रविषेणकी काव्यमयी मूर्ति सबोंको प्रिय है क्योंकि सूर्यकी मूर्ति जैसी (कृतपद्मोदया) कमलोंका विकाश करनेवाली है रविषेणकी काव्यमयी मूर्तिभी "पद्मपुराणका" विकाश करनेवाली है। सूर्यकी मूर्ति (उद्योता) उद्योतस्वरूप और (प्रत्यहं परिवर्तिता) प्रतिदिन परिवर्तन स्वभाववाली है रविषेणकी काव्यमयी मूर्ति भी उद्योत स्वरूप और प्रतिदिन की नवीन २ है ॥ ३४ ॥ तथा इन्ही रविषेणका बनाया हुआ रस अलंकार आदि समस्त काव्यके अंगोंसे भूषित "वरांग" नामका काव्य सुंदर स्त्रीके समान किसको स्वानुभूत गाढ़ अनुरागका अनुभव नहीं कराता ? ॥ ३५ ॥ इन्हीं आचार्य रविषेण द्वारा बनाये गये अनुगत अर्थको प्रतिपादन करनेवाले मनोहर काव्यमें, उत्प्रेक्षा अलंकारसे सुंदर वक्रोक्ति शांतचित्त मनुष्यके चित्तको भी अनुरक्त बना देती है ॥ ३६ ॥ तथा शब्दागम युक्त्यागम और परमागम इन तीनों आगमोंके ज्ञाता, रविषेण कविकी-समस्त उक्तियोंमें गद्य पद्य काव्यमें जो विशेषता है उससे अधिक प्रसिद्धि है ॥ ३७ ॥ गुरुवर कुमारसेनका चंद्रमाकी प्रभाके समान उज्वल यश अजेय रूपसे समस्त संसारमें विचरता फिरता है (?) अर्थात् परवादी भी उनके पांडित्यकी प्रशंसा करते हैं ॥३८॥ परवादियोंका मान मर्दन करनेवाले, कवियोंके चक्रवर्ती, श्रीवीरसेन गुरुकी कीर्ति निर्दोष रीतिसे प्रकाशमान है ॥३९॥ स्वामी जिनसेनने जो पार्श्वाभ्युदयमें पार्श्वनाथ जिनेंद्रके गुणोंकी स्तुतिकी है वह स्तुति इससमय भी उनकी कीर्तिका विस्तार कर रही है ॥ ४० ॥ जिसप्रकार सूर्यकी किरणें पर्वतकी भीतियोंमें प्रविष्ट हो चमकती हैं उसी प्रकार "वर्धमानपुराण" का कथन भी पंडितोंके हृदयमें विराजमान हो प्रकाशित है ॥ ४१ ॥ जिसप्रकार स्त्रियोंके कानमें पहिनी हुई आमकी मंजरी (निर्गुणा) डोरारहित भी डोरा सहित सरीखी जान पडती है उसीप्रकार जिस रचनाको सज्जनोंने पसंद कर लिया है चाहें उसमें किसीप्रकारके गुण न हों तो भी वह गुणवती ही समझी जाती है ॥ ४२ ॥ सज्जन पुरुष विना प्रार्थना किये ही काव्यके दोषोंको दूर कर देते हैं क्योंकि अग्नि, स्वभावसेही सुवर्णकी कीटको वातकी बातमें दूर हटा देती है ॥ ४३ ॥ जिसप्रकार समुद्रकी तरंगे वीचसमुद्रमें रहे मलको दूर हटाकर फैंक देती हैं उसीप्रकार सज्जन पुरुष भी, काव्यके दोषोंको दूर हटा देते हैं ॥४४॥ जिसप्रकार समुद्रकी निर्मल सीपमें पडा हुवा जलभी साक्षात् मोती होजाता है उसीप्रकार सज्जनोंके कर्णपुटमें गई हुई मूर्ख मनुष्यकी रचना भी विद्वान मनुष्यकी रचना कहलाती है ॥४५॥ जिनके मुखमें विष भरा हुवा है, जीभ बाहिर निकल रही है, ऐसे भयंकर सर्पोंको भी सपेडी लोग जिसप्रकार अपनी चतुराईसे वातकी वातमें वश कर लेते हैं उसीप्रकार सज्जन पुरुष भी दुष्ट वचन बोलने वाले दुष्टोंको अपनी शक्तिसे शीघ्र ही वश करलेते हैं ॥४६॥ जिसप्रकार अतिशय संताप देनेवाले, अत्यंत रूखे और जिसमें चारो ओर धूलि उड रही है ऐसे

भयंकरभी ग्रीष्मकालको मनोहर शब्द करनेवाले मेघ तत्काल शांत कर देते हैं उसी-प्रकार सज्जन पुरुष भी अतिशय पापी, रूखा-स्नेहरहित, और जीवोंको अनेक प्रकारके संताप देनेवाले दुष्टको अपनी प्रिय बोली सुनाकर शीघ्र ही शांत कर देते हैं ॥ ४७॥ जिसमें भले बुरेका कैसा भी ज्ञान नहि होता ऐसे अंधकारके समूहको जिसप्रकार सूर्य और चंद्रमाकी किरणें तत्काल हटा देती हैं उसीप्रकार सज्जन पुरुष भी जिनको भले बुरेका कुछ भी ज्ञान नहीं—हेयोपादेयशून्य मूर्खोंकी मूर्खताको तत्काल नष्टकर देते हैं ॥ ४८ ॥ इसप्रकार सज्जनोंकी सहायताको चांहने वाला मैं (ग्रंथकार) रोग और अभिमानसे रहित इस काव्यमय देहको अजर अमर बनाता हूं ॥ ४९ ॥

अब मैं, विशाल जड़का धारक, प्रसिद्ध, अनेक शाखाओंसे शोभित, इष्ट फलोंका देनेवाला, एवं पवित्र, जो कल्पवृक्ष उसके समान-अगाध, पृथ्वीमें प्रसिद्ध, अनेक कथाओंसे व्याप्त, पुण्य फलको देनेवाले, पवित्र, वावीसवें तीर्थंकर श्रीनेमिनाथ भगवानके चरित्रसे अति उज्ज्वल, श्रीहरिवंश नामक पुराणको आरंभ करता हूं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ जिस-प्रकार सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित पदार्थको अल्प तेजके धारक मणि, दीपक, जुगनू, विजली, आदि भी प्रकाशित करते हैं उसीप्रकार बड़े बड़े विद्वान महात्माओंसे प्रकाशित इस हरिवंश पुराणको अत्यल्प शक्तिका धारक मैं भी अपनी योग्यतानुसार रचता हूं ॥५२॥५३॥ जिस प्रकार अत्यंत दूरवर्ती पदार्थको भी लोग सूर्यके तेजके सहारे अपनी आंखसे स्पष्ट देख लेते हैं उसीप्रकार अतिशय सूक्ष्म पदार्थको भी यह मेरा मन पूर्व आचार्योंकी कृपासे सुलभ रीतिसे जानता है ॥ ५४ ॥ तथा वे सूक्ष्म पदार्थ आगम प्रसिद्ध, प्रमाण भूत, एवं पूर्वाचार्यों द्वारा कहे हुये, १ क्षेत्र प्रच्छन्न, २ द्रव्यप्रच्छन्न, ३ कालप्रच्छन्न, ४ भवप्रच्छन्न, ५ भावप्रच्छन्न, भेदसे पांच प्रकारके हैं ॥ ५५ ॥ इस ग्रंथके मूलकर्ता तो भगवान तीर्थंकर हैं और उत्तर ग्रंथकर्ता गणधरोंके शिरोमणि गौतम गणधर हैं ॥ ५६ ॥ इसीप्रकार उत्तरोत्तर ग्रंथकर्ता बहुतसे आचार्य हुए हैं और उन सबने सर्वज्ञके वचनोंके अनुसार ही कथन किया है इसलिये वे समस्त मुझे प्रमाण हैं ॥५७॥ पंचमकालकी आदिमें तीन केवली, ग्यारह अंग चतुर्दश पूर्वके धारी पांच श्रुतकेवली, ग्यारह अंग दशपूर्वके धारी ग्यारह मुनी, केवल ग्यारह अंगके धारी पांच मुनि, एवं केवल आचारांगके धारी चार मुनि, इस प्रकार पांच प्रकारके मुनि हुये हैं ॥ ५८ ॥ ॥ ५९ ॥ भगवान वर्धमान स्वामीके वाद गौतम (इंद्रभूति) सुधर्माचार्य और जंबू-स्वामी ये तीनों श्रुतके धारण करनेवाले केवली हुये। और इनके पीछे क्रमसे विष्णु १ नंदिमित्र २ अपराजित ३ गोवर्धन ४ भद्रबाहु ५ ये पांच ग्यारह अंग चतुर्दश पूर्वके धारक श्रुतकेवली हुये। इनके पश्चात् ग्यारह अंग दश पूर्वके धारक विशाखाचार्य १ प्रोष्ठिल २ क्षत्रिय ३ जय ४ नाग ५ सिद्धार्थ ६ धृतिषेण ७ विजय ८ बुद्धिल ९

गंगदेव १० धर्मसेन ११ ये ग्यारह मुनि हुये। फिर केवल दश अंगके धारक नक्षत्र १ यशःपाल २ पांडु ३ ध्रुवसेन ४ कंसाचार्य ५ ये पांच मुनि हुये। और इनके वाद सुभद्र १ यशोभद्र २ यशोवाहु ३ और लोहाचार्य ४ ये चार मुनि केवल आचारांगके धारक हुये। इस प्रकार इन पूर्वाचार्यों तथा अन्य मुनियोंसे जो एक देश आगम वर्णित हुवा उसीका कुछ अंश यहां परभी कहा जाता है ॥ ६०—६६ ॥ यह ग्रंथ अर्थकी अपेक्षा पूर्व है क्योंकि इसमें पूर्वाचार्य प्रसिद्ध कथाओंका ही वर्णन किया गया है और जो मनुष्य शास्त्रके विस्तारसे भय करनेवाले है उनकेलिये यह संक्षेपमें कहा जाता है इसलिये इस अल्प ग्रंथकी अपेक्षा अपूर्व अर्थात् नवीन है ॥ ६७ ॥ जो भव्यजीव मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक इस पुराणका अभ्यास और श्रवण करेंगे उनको यह पुराण कल्याणका करनेवाला होगा क्योंकि वाह्य और अभ्यंतरके भेदसे तप दो प्रकारका कहा है उसमें स्वाध्याय तपसे अज्ञानका नाश होता है इसलिये यह परम तप है ॥ ६८ ॥ ॥ ६९ ॥ यह पुराण चारो पुरुषार्थोंका सिद्ध करनेवाला है इसलिये देश कालके स्वरूप को जानने वाले वक्ता और श्रोताओंको चाहिये कि वे ईर्षाद्वेषरहित होकर इसका व्याख्यान और श्रवण करें ॥ ७० ॥

इस ग्रंथमें—लोकके आकारका वर्णन, राजवंशोंकी उत्पत्ति, हरिवंशकी उत्पत्ति, वासुदेवका चरित्र, नेमिनाथका चरित्र, द्वारिकाका निर्माण, नारायण प्रतिनारायणका युद्ध, नेमिनाथका निर्वाण, इन आठ महाधिकारोंका वर्णन है ॥७१॥७२॥ और जिनेंद्र मार्गके अनुगामी आचार्योंने उपर्युक्त अधिकारोंका अवांतर अधिकारों सहित वर्णन किया है। समस्त शास्त्रोंमें वस्तुओंके वर्णनकी, दो रीतियां प्रचलित हैं एक संक्षेपसे दूसरी विस्तारसे इसलिये अव उपर्युक्त अधिकारोंके अवांतर (भीतरी) अधिकारोंका विस्तारसे वर्णन किया जाता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ प्रथमही इस ग्रंथमें महावीर भगवान के धर्मतीर्थकी प्रवृत्तिका वर्णन है इसके पश्चात् गणधरादिगणोंकी संख्या, राजगृहमें समवसरणका आगमन ॥ ७५ ॥ गौतम स्वामीसे राजा श्रेणिकका प्रश्न, क्षेत्र (त्रैलोक्य) और काल (षट्काल) का निरूपण, कुलकरोंकी उत्पत्ति, ऋषभदेवकी उत्पत्ति, ॥७६॥ क्षत्रियादिके वंशका वर्णन, हरिवंशकी उत्पत्ति, हरिवंशमें मुनि सुव्रतनाथकी उत्पत्ति ॥७६॥ दक्षप्रजापतिका चरित्र, राजा वसुका चरित्र, अंधकवृष्णिके दश पुत्रोंका जन्म सुप्रतिष्ठ मुनिको केवलज्ञान, राजा अंधकवृष्णिकी दीक्षा, समुद्रविजयका राज्य, वसुदेवका सौभाग्य, उपाय पूर्वक वसुदेवका विदेश जाना ॥७८॥ वसुदेवको कन्या सोमसेना और विजयसेनाका लाभ ? जंगली हाथीका वशकरना, श्यामाके साथ वसुदेवका मिलाप ॥७९॥ अंगारक विद्याधर द्वारा वसुदेवका हरण, चंपापुरीमें वसुदेवका डारना, वहां गंधर्वसेनाका लाभ, विष्णुकुमार मुनिका चरित्र ॥८०॥ चारुदत्तका वृत्तांत, सेठि चारुदत्तको

मुनिका दर्शन, वसुदेवको सुंदरी नीलयशा और सोमश्रीका लाभ ॥८१॥ वेदोंकी उत्पत्ति, राजा सौदासकी कथा, वसुदेवको कपिला कन्या, और पद्मावतीका लाभ, ॥ ८२ ॥ चारुहासिनी और रत्नावतीकी प्राप्ति, सेठि सोमदत्तकी पुत्रीका लाभ, और वेगवतीका मिलाप ॥ ८३ ॥ मदनवेगाका लाभ, बालचंद्राका देखना, प्रियंगु सुंदरीका लाभ, बंधुमतीका समागम ॥ ८४ ॥ प्रभावतीकी प्राप्ति, रोहिणीका स्वयंवर, रोहिणीके स्वयंवरमें संग्राम, संग्राममें वसुदेवकी जीत, समुद्रविजयादि बडे भाइयोंसे मिलाप ॥८५॥ बलभद्रकी उत्पत्ति, कंसका चरित्र, जरासंधकी आज्ञासे राजा सिंहरथका बंधन ॥८६॥ कंसको जरासंधकी पुत्री जीवद्यशाका लाभ, उग्रसेन (कंसके पिता) का बंधन, वसुदेवका देवकीके साथ विवाह ॥ ८७ ॥ "देवकीके पुत्रके हाथसे मेरा मरण है" ऐसा अपने बडे भाई अतिमुक्तसे समाचार सुन कंसका व्याकुल होना, देवकी मेरेही राजमंदिरमें पुत्र जने ऐसी वसुदेवसे कंसकी प्रार्थना ॥८८॥ वसुदेवका अतिमुक्तसे प्रश्न, देवकीके आठ पुत्रोंके और पाप नाशक श्रीनेमिनाथ भगवानके पूर्वभवके चरित्रका श्रवण ॥ ८९ ॥ श्रीकृष्णकी उत्पत्ति, कृष्णकी गोकुलमें बाललीला, बलदेवके उपदेशसे सब शास्त्रोंका ग्रहण ॥ ९० ॥ वासुदेवके धनुषका ग्रहण, यमुनामें नागकुमारको जीतना, घोड़ा हाथी चाणूरमल्ल और कंसका वध ॥ ९१ ॥ राजा उग्रसेनका राज्य, कृष्णका सत्यभामाके साथ पाणिग्रहण, सत्यभामापर समस्त कुटुंबकी और कृष्णकी विशेष प्रीति ॥ ९२ ॥ कंसकी प्रियपत्नी जीवद्यशाका विलाप, जरासंधका रोष, रणमें भेजे हुये कालयवनका पराभव ॥९३॥ कृष्णके हाथसे रणमें अपराजितका मरण, यादवोंका हर्ष और निर्भयपना ॥ ९४ ॥ रानी शिवादेवीका सोलह स्वप्न देखना, पतिसे स्वप्नोंका फल पूछना, नेमिनाथकी उत्पत्ति ॥ ९५ ॥ मेरुपर्वतपर जन्माभिषेक, नेमिनाथकी बालक्रीड़ा और प्रताप, यादवों पर जरासंधका चढ़ाई करना, यादवोंका सागरकी ओर गमन करना ॥ ९६ ॥ देवमयी माया देख जरासंधका पीछे फिरना, अष्टम वासुदेव श्रीकृष्णका दर्भशय्यापर चढना ॥९७॥ इंद्रकी आज्ञासे गौतमनामा देवद्वारा सागरका संकोच, उसीसमय कुबेरद्वारा द्वारिकाका निर्माण ॥ ९८ ॥ रुक्मिणीका हरण, देदीप्यमान भानुकुमार और प्रद्युम्नकुमारकी उत्पत्ति, धूमकेतु असुरद्वारा प्रद्युम्नका हरण ॥ ९९ ॥ विजयार्धमें प्रद्युम्नकी स्थिति, श्रीकृष्ण और रुक्मिणीके खेदका नारदद्वारा दूर होना, प्रद्युम्नको सोलह लाभोंकी प्राप्ति, प्रज्ञप्तिनामक विद्याकी प्राप्ति ॥१००॥ राजा कालसंवरके साथ प्रद्युम्नकी लडाई, पिता माताका मिलाप, शंबुकुमारकी उत्पत्ति, प्रद्युम्नकी बालक्रीडा, वसुदेवका प्रद्युम्नसे प्रश्न ॥ १०१ ॥ प्रद्युम्नद्वारा निजपरिभ्रमणका सकल वृत्तांत, यादवोंके सकल कुमारोंका वर्णनं, यादवोंकी वार्तासे जरासंधका कोप ॥ १०२ ॥ जरासंधका यादवों के पास दूत पठाना, दूतके आनेसे यादवोंकी सभामें क्षोभ, दोनों ओरकी सेनाका रण-

इस प्रकार इस हरिवंश पुराणका संग्रह और विभाग बतला दिया गया अब बुद्धिमान भव्य इसका

विस्तार सुने ॥ १२६ ॥ सज्जनो ! जब एक ही पुण्यवान पुरुषका चरित्र समस्त पापोंका नाश करनेवाला होता है तब जिनेंद्र चक्रवर्ती और बलदेव आदिके समुदायका चरित्र तो नियमसे पापका नाश करनेवाला होगा क्योंकि जब एकही मेहका जल बलवानसे बलवान संतापको भी दूर करदेता है तब जिनने समस्त लोकको व्याप्त कर लिया है एवं जो हजार धाराओंसे वर्षने वाले हैं ऐसे बड़े २ मेघोंके समूहसे तो नियमसे समस्त संताप दूर होगा ॥१२७॥ आचार्य कहते हैं–कि विवेकीजनोंको चाहिये कि वे अनेक प्रकारके भ्रम करानेवाले मिथ्या पुराणको छोडकर–अनेक गुणोंके धारक, बहुतसे हितोंके करनेवाले, इस केवलीद्वारा प्रतिपादित पुराणका आश्रय करें क्योंकि सूर्यद्वारा सच्चेमार्गके प्रकट होजाने पर दिशाभूल मनुष्य जिसप्रकार रस्ताको भुलानेवाली दिशाभूलको छोड सच्चेमार्गसे गमन करने लग जाता है उसीप्रकार ऐसा कोंन बुद्धिमान पुरुष होगा जो जिनेंद्र द्वारा भलेप्रकार सच्चेमार्गके प्रकट होनेपर जान बूझ कर कुमार्गमें गिरै ? ॥ १२८ ॥

इसप्रकार भगवान अरिष्टनेमिके पुराणका वर्णन करनेवाले जिनसेनाचार्य निर्मित इस हरिवंशपुराणमें संग्रहविभागका वर्णन करनेवाला प्रथमसर्ग समाप्त हुआ ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग ।

इस जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें अतिशय विस्तृत, स्वर्गके समान मनोहर एक विदेह नामका देश है ॥ १ ॥ यह विदेह देश प्रतिवर्ष उत्पन्न होनेवाले धान्य, गौ भैंस आदिसे व्याप्त है, समस्त उपसर्गोंसे रहित है, प्रजा इसमें सुखसे निवास करती है एवं यह खेट कर्वट मटंव पुठभेदन द्रोणामुख धातुओंकी खानि क्षेत्र ग्राम और घोषोंसे सदा भूषित रहता है ॥ २ ॥ ३ ॥ इस देशका कहांतक वर्णन किया जाय क्योंकि यह देश सुखका स्थान है और इसमें बडे बडे क्षत्रिय राजा स्वर्गसे चयकर इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुये हैं ॥ ४ ॥ इस देशमें इंद्रके नेत्ररूपी भौंरोंकेलिये सुंदर कमलवन एवं सुखरूपी जलसे पूर्ण कुंडके समान कोई कुंडपुर नामका नगर है ॥ ५ ॥ जहां शंखके समान सफेद बडे बडे घरोंसे शुभ्र किया हुआ आकाश ऐसा जानपडता था मानो बडे २ शरद ऋतुके स्वच्छ मेहोंसे व्याप्त हो ॥ ६ ॥ रातमें घरोंके अग्रभागमे जडी हुई चंद्रकांतमणि जिससमय चंद्रमांकी किरणोंके स्पर्शसे चूती थीं उससमय वे पतिके हाथके स्पर्शसे द्रुत, रतिके समय स्नेहभरी स्त्रियोंके समान मालूम होती थीं ॥७॥ दिनमें सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे सूर्यकांतमणियोंके अग्रभाग सदा जाज्वल्यमान रहते थे सो ऐसे मालूम पडते थे मानो पतिके हाथके स्पर्शसे अतिशय विरक्त कुपित स्त्रियां हों ॥ ८ ॥ जिसप्रकार अपने स्वामीके आलिंगनसे कामिनी स्त्री अनुरक्त हो जाती है उसीप्रकार घरोंके अग्रभाग

में लगी हुई पद्मराग मणि सूर्यके संबंधसे रक्त हो जाती थीं ॥९॥ यह नगर मोती, हरित मणि, हीरा, वैडूर्यमणि, मूंगा, आदिसे अकेलाही समस्त खानियोंकी शोभा धारण करता था ॥१०॥ और विशाल पर्वत परकोट खाईयोंसे सदा शोभायमान रहता था इसलिये इसके ऊपरसे सूर्यकाही मंडल जा सकता शत्रुमंडल नहीं ॥ ११ ॥ ग्रंथकार कहते हैं–वस इस नगरका इतना वर्णनही काफी है क्योंकि स्वर्गसे उतरते समय भगवान महावीरने भी इसे अपना जन्मस्थान बनाया था ॥१२॥

इसी कुंडपुर नगरका स्वामी–राजा सर्वार्थ और रानी श्रीमतीसे उत्पन्न, समस्तपदार्थों का देखने वाला, सूर्यके समान तेजस्वी, समस्तपुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाला, राजा सिद्धार्थ था ॥१३॥ जिससमय राजा सिद्धार्थने पृथ्वीकी रक्षा की उस समय कोई दोष न रहा यदि दोष था तो केवल यही था कि वहां की प्रजा परलोकसे डरती थी अर्थात् वहांकी प्रजाको सदा इसवातका भय रहता था कि हमसे कोई पाप न बन जाय जिससे हमारा परलोक बिगडे किंतु उसे परलोक–वैरियोंका भय न था ॥ १४ ॥ ग्रंथकार कहते हैं कि–ऐसी किसी पुरुषमें सामर्थ्य नहीं जो राजा सिद्धार्थके उन्नत गुणोंकी तुलना कर सके क्योंकि अपने गुणोंकी महिमासे राजा सिद्धार्थ त्रैलोक्य गुरु भगवान वर्धमानके भी गुरु (पिता) वन गये थे ॥ १५॥ सिद्धार्थकी उन्नत कुलाचलसे उत्पन्न, स्वाभाविक जलको धारण करने वाली, समुद्रकी प्रियतमा गंगाके समान उत्तम कुलसे उत्पन्न स्वभावसे ही प्रेमकी खानि प्रियकारिणी नामकी पटरानी थी ॥ १६ ॥ यह प्रियकारिणी अतिशय आनंद देनेवाली महाराज चेटककी सात कन्याओंमेंसे प्रथम कन्या थी ॥१७॥ ग्रंथकार कहते हैं–कि ऐसी किसमें सामर्थ्य है जो रानी प्रियकारिणी (त्रिशला) के गुणोंकी योजना करसके क्योंकि वह अपने पुण्यके माहात्म्यसे भगवान महावीरकी जननी हुई ॥१८॥ जिससमय समस्त जीवोंकी रक्षार्थ तीर्थंकर महावीर अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमानसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुये थे उससमय उनके प्रतापसे समस्त देव नम्रीभूत होगये थे आकाशसे रत्नवर्षा होने लगी थी माता प्रियकारिणीको मनोहर सोलह स्वप्न हुये थे और उसने भगवान महावीरको अपने गर्भमें धारण किया था। १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ उससमय दुःखम सुखम नामक चतुर्थकालका पिचहत्तर वर्ष साढे आठ मास समय बाकी था ॥ २२ ॥ असाढ़ सुदी छठके दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें भगवान महावीर माता प्रियकारिणीके गर्भमें आये, छप्पन कुमारिका माताकी सेवा करने लगीं। जिसप्रकार सूर्य वर्षाकालमें मेघसे आच्छन्न होने परभी भूमंडलको प्रकाशित करता है उसीप्रकार गर्भके अंदर विराजमान भी भगवान महावीरने मनोहर मूर्तिसे शोभित, उन्नत स्तनोंसे भूषित, रानी प्रियकारिणीको प्रकाशमान करदिया। ॥२३॥२४॥ नौ मास और आठ दिनके व्यतीत होनेपर उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें

भगवान महावीरने जन्म लिया ॥ २५ ॥ उनके प्रतापसे देवोंके आसन और मुकुट कंपायमान होगये। अवधिज्ञानके बलसे भगवान महावीरको जन्मा जान वे भक्तिपूर्वक नमस्कार करने लगे ॥ २६ ॥ उससमय भवनवासी देवोंके मंदिरोंमें सहसा शंखध्वनि होने लगी व्यंतरोंके मंदिरमें सिंहनाद और कल्पवासी देवोंके विमानोंमें घंटे बजने लगे शंख आदिकी ध्वनि सुनकर समुद्रकी गर्जनाके समान देवोंका कोलाहल होने लगा एवं सात* प्रकारकी सेना, सुंदर भूषण वस्त्रोंसे सुसज्जित देवांगना, और इंद्रों सहित भवनवासी व्यंतर आदि चारो निकायोंके देव तत्काल कुंडलपुर आये ॥ २७ ॥ २८ ॥ प्रथम ही इंद्र और देवोंने नगरकी तीन प्रदक्षिणा दीं पश्चात् चंद्रमाके समान मनोहर मुखवाले भगवान और उनके माता पिताको विनयपूर्वक नमस्कार किया ॥ २९ ॥ सौधर्म इंद्रकी इंद्राणी माताके गर्भगृहमें गई अपनी मायासे माताको निद्रित कर दिया भगवानके स्वरूपका ही एक नवीन बालक बना उनकी गोदमें सुला दिया एवं नमस्कार पूर्वक भगवानको लेकर अपने स्वामी इंद्रको दे दिया ॥ ३० ॥ इंद्रने हाथमें लेकर भगवानकी बहुत देरतक पूजाकी भगवानके मनोहर रूपसे तृप्त न हो हजार नेत्र बनाए और चंद्रमाकेसमान शुभ्र शरीरसे शोभित अतिशय विशाल ऐरावत हाथीपर उन्है सवार किया। वह ऐरावत हाथी उससमय मेरुपर्वतके शिखर समूहके समान जान पडता था क्योंकि जिसप्रकार शिखरोंके नीचे झरने झरते हैं ऐरावत हाथीके गंडस्थलोंसे भी झरने झरते थे। जिसप्रकार मेरुपर्वतकी तलहटीमें काले २ तमाखूके वन हैं ऐरावतके गंडस्थलोंपर भी मदकी सुगंधिसे आये हुये काले २ भौंरे गुंजार शब्द करते थे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ मेरुपर्वतपर जैसे लाल २ अशोक वृक्षोंके वन हैं ऐरावत हाथीके कानों के पास भी लाल २ चमर लटक रहे थे ॥ ३४ ॥ जिसप्रकार सुवर्णमयी मेखलासे शोभित मेरुपर्वत अतिशय रमणीय जान पडता है ऐरावत भी सुवर्णमयी सांकलोसे अतिशय सुंदर था ॥ ३५ ॥ शिखरोंपर गाती बजाती हुई देवांगनाओंसे जैसा मेरुपर्वत शोभित होता है ऐरावत भी विशाल दांतोंपर गाती बजाती हुई देवांगनाओंसे अतिशय कमनीय था ॥३६॥ जिसप्रकार स्थूल और चारोतरफ घूमते हुये फणाओंसे युक्त, बडे २ अजगरोंसे शोभित मेरुपर्वत सुंदर जान पडता है उसीप्रकार ऐरावत भी गोल और दशो दिशाओंमें 'सब ओर' घूमती हुई अपनी सूंडसे मनोहर जान पडता था ॥३७॥ जिसप्रकार शिखरोंपर विलकुल समीप स्थित पूर्ण चंद्रमंडलसे मंडित मेरुपर्वत सुंदर जान पडता है उसी प्रकार ऐरावत भी ईशान इंद्र द्वारा ढोले गये विस्तीर्ण श्वेत छत्रोंसे शोभित था ॥ ३८ ॥ जिस प्रकार चमरी गायोंके वालरूपी वीजनोंसे शोभित मेरु पर्वत मनोहर दीख पडता है उसीप्रकार ऐरावत भी असुर कुमारोंके इंद्रों द्वारा हिला-

* गज १ तुरंग २ रथ ३ पयादे ४ वृषभ ५ गंधर्व ६ नृत्यकारिणी ७ ।

ये गये उत्तमोत्तम चमरोंसे अतिशय कमनीय जान पडता था ॥ ३९ ॥ ऐरावत हाथी के ऊपरं भूषण स्वरूप भगवानं महावीरको चढाकर समस्त देवोंके साथ इंद्र मेरु पर्वत पर पहुंच गया ॥ ४० ॥ वहां पर अतिशय मनोहर एक पांडुकवन है पांडुकवनमें अतिशय विस्तीर्ण पांडुक शिला है उसपर एक रत्नमयी सिंहासन है इंद्रने भगवानको लेजाकर उस सिंहासन पर विराजमान किया देव गण क्षीरसागरसे अनेक सुवर्णमयी घडे भर लाये । इंद्रने समस्त देवोंके साथ उससमय भगवानका जन्माभिषेक किया । अनेक प्रकारके वस्त्र और अलंकार पहिनाये । सुगंधित माला पहिनाई । और अनेकप्रकार से उनकी स्तुति की । वहांसे लाकर भगवान माताकी गोदमें दिये उनके अन्य जो उचित कार्य थे वे किये भगवान अपने माता पिताको समान रीतिसे आनंद वढाने-वाले थे इसलिये इंद्रने उस समय उनकी वर्धमान नामसे स्तुति की एवं सबके सब देव और इंद्र अपने २ स्थानोंपर चले गये ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ भगवान वर्धमानके जन्मसे पंद्रहमास पूर्व रत्न वर्षा हुई थी इसलिये याचकोंकी समस्त वांछा पूर्ण हो चुकी थी अर्थात् 'उस समय कोई याचक नहिं दीखता था ॥ ४५ ॥ अनेक देवोंसे सेवित भगवान वर्धमान जैसे २ वढते थे पिता माता वांधव और तीनों लोकोंका अनु-राग भी उनपर वैसा २ ही वढता जाता था ॥ ४६ ॥ सुरेंद्र असुरेंद्र नरेंद्रोंसे पूजित चरणोंसे शोभित भगवान महावीरने अनेक भोग भोगे किंतु जिसप्रकार सिंहके कुटिल नखोंके छिद्रमें मोती देर तक नहिं रह सकते उसीप्रकार निर्मल चारित्रसे शोभित भगवान महावीरका मन भी वहुत काल तक अतिशय वक्र भोगोमें स्थिर न रह सका ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ किसी समय शांत चित्तके धारक भगवानको स्वयं वैराग्य हो गया सारस्वत आदित्य आदि मुख्य लौकांतिक देवोंने स्वर्गसे आ उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और उनके वैराग्यकी सराहना की ॥ ४९ ॥ तत्काल सौधर्म आदि देवोंने आ-कर भगवानका ह्वन पूजन किया और अगहन वदी दशमीको उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में चंद्रमाके वर्तमान रहने पर, अनेक देवोंसे वाही गई पालकीमें वैठ भगवान वनको चलेगये ॥ ५० ॥ ५१ ॥ वहां जाकर भगवानने समस्त वस्त्र भूषण माला आदि उतार कर डाल दिये और पंच मुष्टिसे केशोंका लोंच कर मुनि हो गये ॥ ५२ ॥ भौंरेके स-मान काले २ भगवानके केशोंको इंद्रने क्षीरसागरमें लाकर क्षेपण कर दिया ॥ ५३ ॥ उससमय भगवानके केशपुंजसे क्षीरसागरका जल काला हो गया था सो ऐसा जान पडता था मानो इंद्रनील मणिसे व्याप्त है ॥ ५४ ॥ भगवान महावीरको दीक्षित देख समस्त देव और मनुष्योंको परमानंद हुआ एवं तीसरे दीक्षा कल्याणकी पूजन कर वे अपने २ स्थान चले गये ॥ ५५ ॥ मति श्रुति अवधि और मनःपर्यय चारो ज्ञानके धारक भगवान महावीर वारह वर्ष तक वारह प्रकारके तप तपते रहे ॥ ५६ ॥ किसीसमय

अनेक गुणोंके धारी भगवान महावीर विहार करते करते ऋजुकूला नदीके किनारे जृंभिका गांव आये ॥ ५७ ॥ वहां सालवृक्षके नीचे शिलापर आतापन योगसे विराज गये। एवं षष्ठोपवासके धारक, शुक्लध्यानी भगवान महावीरने वैशाख सुदी दशमीके दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें घातिया कर्मोंको नाशकर केवल ज्ञान प्राप्त करलिया ॥ ५८ ॥५९॥ केवल ज्ञानके प्रभावसे सहसा देवोंके आसन कंपायमान हो गये और समस्त सुर और असुरोंने आकर उनके केवल ज्ञानकी पूजा स्तुति की ॥६०॥ छ्यासठ दिन पर्यंत भगवानने मौनसे विहार किया पश्चात् वे जगत्प्रसिद्ध राजगृह नगर आये और वहां जिस प्रकार समस्तलोकको प्रकाशकरनेकेलिये सूर्य उदयाचल पर स्थित होता है उसी प्रकार समस्त लोगोंको प्रबोधनेके लिये विपुल शोभासे शोभित विपुलाचल पर्वत पर विराजगये ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ भगवानको विपुलाचल पर्वत पर आया जान इधर उधरसे देव मनुष्य आनेलगे और जिसप्रकार भगवानके गुणोंसे समस्त लोक व्याप्त है उसीप्रकार उनसे समस्त जगत व्याप्त होगया ॥ ६३ ॥ जिसप्रकार पहिले कैलाश पर्वत पर भगवान ऋषभदेवके विराजनेपर सौधर्म आदि देवोंने उसकी शोभा की थी उसीप्रकार भगवान महावीरके समयमें देवोंने विपुलाचल पर्वत सजाया ॥ ६४ ॥ चारो दिशाओंमें (हर एकमें तीन ३) वारह तो गोपुर वनाये। और रत्नमय तीन परकोटे वनाये ॥ ६५ ॥ भगवान महवीरका एक योजनका समवसरण वनाया गया और उसमें आकाशके समान निर्मल स्फटिक भीतियोंसे शोभित वारह कोठे वनाये गये ॥ ६६ ॥ उस समय आठ प्रातिहार्य और चोंतीस अतिशय सहित भगवान महावीरकी ऐसी शोभा हुई जैसी ग्रहोंसे वेष्टित चंद्रमाकी शोभा होती है ॥ ६७ ॥ उस समय समवसरणमें इंद्रकी प्रेरणासे इंद्रभूत (गौतम) अग्निभूत और वायुभूत ब्राह्मण पंडित आये ॥ ६८ ॥ उनमें हरएकके साथ पांचसो पांचसो शिष्य थे एवं वे समस्त ही वस्त्र त्याग संयमके धारी होगये ॥ ६९ ॥ राजा चेटककी पुत्री कुमारी चंदना उस समय एक सफेद वस्त्र पहिनकर आर्यिका होगई ॥ ७० ॥ महाराज श्रेणिक भी चतुरंग सेनाके साथ समवसरणमें आये और सिंहासन पर विराजमान भगवान महावीरको उन्होंने भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ॥ ७१ ॥ इसप्रकार छत्र चमर झाडी घडे ध्वजा दर्पण पंखा और धारा इन अष्ट मंगलोंसे पुष्पमाला चक्र वस्त्र कमल गज सिंह वृषभ और गरुड इन आठ प्रकारकी आठ ध्वजाओंसे तथा मानस्तंभ स्तूप चार महावन वापी कमल, वल्ली और लताघरोंसे एवं जगह जगह देवोंद्वारा किये गये, अनेक अन्य अन्य अतिशयोंसे श्रीमहावीर जिनेंद्रकी समवसरण भूमि विचित्र शोभाको धारण करने लगी ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ भगवान महावीरके समीप प्रथम कोठेमें तो दिगंबर मुनिराज विराजे सो ऐसे जान पडते थे मानो चंद्रमाके समीप

वृहस्पति सहित शुक्र आदि ग्रह विराजे हों।७६। द्वितीय कोठामें कल्पवृक्षकी लताके समान सुंदर भुजाओंसे शोभित कल्पवासिनी देवी वैठी सो वे भगवानके समीपमें ऐसी जान पडने लगी जैसी मेरुपर्वतके समीपमें भोगभूमि मालूम पड़ती हैं ।।७७।। तीसरी सभामें नाना भूपणोंसे भूपित सुन्दर स्त्रियोंसे वेष्टित आर्यिका विराजी सो जिनेंद्रके समीप ऐसी शोभित हुई जिस प्रकार देदीप्यमान विजलीसे शोभित शरदऋतुमें मेघोंकी पंक्ति शोभित होती है ।। ७८ ।। चोथीसभामें-समवसरण रूपी समुद्रमें तारोंकी प्रतिविंबके समान उज्वल मूर्ति धारणकरनेवाली ज्योतिपीदेवोंकी स्त्रियां वैठी ।। ७९ ।। पांचवी सभा में व्यतर देवोंकी स्त्रियां वैठी सो ऐसी मालूम पड़ने लगीं मानों कर कमलोंसे शोभित साक्षात् वन लक्ष्मी हों ।। ८० ।। छठी सभामें नागलोकसे आई हुई नागवेलिके समान निर्मल फणको धारण करनेवालीं नागकुमारोंकी देवियां वैठी ।। ८१ ।। सातवीं सभामें देदीप्यमान उज्वल वेशके धारण करनेवाले अग्निकुमारादि दशप्रकारके भवनवासी देव वैठे ।।८२।। आठवीं सभामें किन्नर गंधर्व यक्ष किंपुरुष आदि आठ प्रकारके व्यंतरदेव स्थित थे ।।८३।। नवमी सभामें विस्तृत शरीरसे शोभित सूर्य चंद्रमा ग्रह नक्षत्र प्रकीर्णक ये पांच प्रकारके ज्योतिपीदेव वैठे थे ।।८४।। दशमी सभामें मुकुट कुंडल कर्णभूपण विशाल कटिसूत्रोंसे शोभित कल्पवृक्षके समान सुन्दर कल्पवासी देव वैठे ।८५। ग्यारहवीं सभामें अनेक प्रकारकी भाषाओंके बोलनेवाले अपने पुत्र स्त्रियोंसहित विद्याधर और मनुष्य वैठे ।।८६।। और वारहवी सभामें जिनराजके प्रभावसे परस्पर विरोध रहित सर्प नोले हाथी गज सिंह अश्व और भैंसा आदि शांतचित्त हो वैठे ।।८७।। इस प्रकार भगवानके चौतर्फा नम्रीभूत वारह कोठोंमें मुनि आदि के स्थित होजानेपर गौतम गणधरने समस्त पदार्थोंको साक्षात् देखनेवाले, राग द्वेषादिसे रहित, भगवान महावीरसे समस्तपापोंके नाश करनेवाले धर्मका अर्थ पूछा ।।८८।।८९।। और भगवान महावीर भी श्रावणवदी प्रतिपद अभिजित् नक्षत्रमें पूर्वाह्नके समय दुंदुभिके समान गंभीर, समस्त संदेहोंकोदूर करनेवाली, एक योजनतक सुनी जानेवाली, दिव्यध्वनिसे उपदेश देने लगे। ९०।९१। सवसे पहिले भगवानने आचारांगका उपदेश दिया पश्चात् दूसरा सूत्रकृतांग तीसरा संस्थानांग चौथा समवायांग पांचवां व्याख्याप्रज्ञप्त्यंग छठा ज्ञातृधर्मकथा सातवां श्रावकाध्ययन आठवां अंतकृद्दशांग, नवमा अनुत्तर दशवां प्रश्नव्याकरण और ग्यारहवां पवित्र अर्थसे शोभित विपाक सूत्रका व्याख्यान दिया इसकेवाद जिसमें तीनसो त्रेसठि पाखंडियोंका खंडन है और जिसके पांच भेद हैं ऐसे दृष्टिवाद नामक वारहवें अंगका जिनेंद्रने स्वरूप समझाया । ९२ । ९३।९४ । ९५ । इसके अनंतर भगवानने परिकर्मा १ सूत्र २ प्रथमानुयोग ३ पूर्वगत ४ और चूलिका ५ इसप्रकार वारहवे अंगके पांच भेदोंका कथन किया । ९६ । पश्चात् परमतत्त्वका प्रतिपादन करने

वाला उत्पादपूर्व १ अध्यात्म चर्चा वतलानेवाला आग्रायणीयपूर्व २ वीर्यप्रवादपूर्व ३ अस्तिनास्तिप्रवाद ४ ज्ञानप्रवाद ५ सत्यप्रवाद ६ आत्मप्रवाद ७ कर्मप्रवाद ८ प्रत्याख्यान ९ विद्यानुवाद १० कल्याणपूर्व ११ प्राणावायपूर्व १२ क्रियाविशाल १३ एवं धर्मलोकविंदुसार १४ इसप्रकार पूर्व अंगके चौदह भेद बतलाये। पश्चात् अनेक वस्तु प्रतिपादन करने वाली चूलिकाका वर्णन किया। ९७। ९८। ९९। १००। उक्तप्रकारसे अंग प्रविष्टका विस्तारसे वर्णनकर जिनेंद्रने अंग वाह्यके चौदह भेदोंका प्रतिपादन किया। १०१। प्रथमही जिनेंद्रने जिसमें सामयिकका व्याख्यान है ऐसे सामयिक प्रकीर्णकका व्याख्यान किया इसकेवाद चतुर्विंशतिस्तव २ पवित्र वंदना ३ प्रतिक्रमण ४ विनय ५ कृतिकर्म ६ दशवैकालिक ७ उत्तराध्ययन ८ कल्पव्यवहार ९ कल्याणकल्प १० महाकल्प ११ पुंडरीक १२ महापुंडरीक १३ एवं जिसमें प्रायश्चित्तका वर्णन है ऐसा निषद्यका इन प्रकीर्णकोंका वर्णन किया। १०२। १०३। १०४। १०५। इसके अनंतर भगवानने मति श्रुति आदि पाचों ज्ञानोंका स्वरूप विषय (जानपना) और फल समझाया। ज्ञानके प्रत्यक्ष परोक्ष भेद बतलाये। ।१०६। चौदह भेद मार्गणा चौदह भेद गुणस्थान एवं जीव समासके चौदह भेदोंसे द्रव्यका स्वरूप निरूपण किया। १०७। सत् संख्या क्षेत्र आदिसे तथा नाम स्थापना आदिसे भी द्रव्यके स्वरूपका वर्णन किया और यह भी बतलाया कि समस्त पुद्गल आदि द्रव्य अपने अपने लक्षणोंसे जुदे जुदे हैं और सबोंका उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप सत्ता लक्षण है। १०८। शुभ और अशुभ भेदसे कर्मबंधकेभी दो भेद बतलाये और यह भी समझाया कि शुभबंध सुखका और अशुभ बंध दुःखका देनेवाला है। भगवानने मोक्षके कारण भी बतलाये तथा ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके नाशसे उत्पन्न केवलज्ञान आदि गुण मोक्षके फल हैं यह भी कहा।१०९। जहांपर लोग बंध और बंधका फल एवं मोक्ष और मोक्षका फल भोगते हैं ऐसे लोकाकाशका वर्णन किया ऊर्ध्वलोक मध्यलोक पाताल लोक इसप्रकार उसके तीन भेद भी कहे एवं लोकाकाशसे वाह्य अलोकाकाश है यह भी दृढ रीतिसे समझाया। ११०।

इसके अनंतर ऋद्धि संपन्न गणधर गौतमने भगवान महावीरसे चौदह प्रकीर्णक युक्त द्वादशांगका श्रवणकर ग्रंथरूपमें प्रकट किया। १११। जिसप्रकार सूर्यके उदय होनेपर लोग गाढ निद्रा छोड उठकर वैठ जाते हैं उसी प्रकार वारहो सभामें वैठे हुये तीनों लोकके जीव उससयय जिनेंद्रके वचन सुन निर्मोह और उद्बुद्ध होगये। ।११२। होठोंके विना हिलाये ही निकली हुई भगवान महावीरकी दिव्यध्वनिने उससमय तिर्यंच मनुष्य और देवोंके दृष्टिमोहको दूर किया। ११३। शंका कांक्षा निदान स्वरूप दोषोंसे रहित, ज्ञान और चारित्रसे अलंकृत, एवं जिनेंद्र प्रतिपादित तत्त्वार्थका

श्रद्धानरूप लक्षणका धारक सम्यग्दर्शनरूपी उत्कृष्ट रत्न, उससमय समस्त जीवोंने अपने कान और हृदयमें पहिना। ११४। ११५। काय इंद्रियां गुणस्थान जीवस्थान कुल आयुओंके भेदोंका एवं योनियोंके भेदोंका गौतम भगवानने शास्त्रानुसार वर्णन किया। ११६। पृथ्वीकायिक आदि षट्प्रकारके जीवोंका वध बंध आदिका त्याग आद्य अहिंसा महाव्रत कहा जाता है। ११७। रागद्वेष मोहसे दूसरेको संताप देनेवाले वचनोंका न कहना दूसरा सत्य महाव्रत है ॥ ११८ ॥ दूसरेकी वस्तु चाहै वह छोटी हो या वडी हो विना दिये न ग्रहण करना तीसरा अचौर्य महाव्रत कहलाता है ॥ ११९ ॥ मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदना पूर्वक स्त्रीको पुरुषका और पुरुषको स्त्रीका त्यागकरना चौथा ब्रह्मचर्य महाव्रत कहाजाता है ॥ १२० ॥ वाह्य और अभ्यंतर समस्त परिग्रह और उनके दोषोंका त्याग करना पांचवा निष्परिग्रह महाव्रत है ॥ १२१ ॥ इन पंच महाव्रतका स्वरूप वतलाया। तथा नेत्र इंद्रियके गोचर जीवोंके समूहकी विराधना न कर जूडाप्रमाण जमीन शोधकर चलना पहिली ईर्या समिति ।१२२। धर्म कार्योंमें कर्कश कठोर वचन न बोलना यत्नवान मुनिकेलिये भाषा समिति।१२३। संयमके प्रधान कारण शरीरकी स्थिरताके लिये पिंडशुद्धि पूर्वक आहारका ग्रहणकरना एषणा समिति ॥ १२४ ॥ योग्य वस्तुका विचारपूर्वक रखना और ग्रहण करना चौथी आदान निक्षेपण समिति ॥१२५॥ जीव रहित प्रासुकभूमिमें शरीरके भीतर रहनेवाला मल मूत्रका त्याग करना प्रतिष्ठापनिका समिति इसप्रकार पांच समितियोंका वर्णन किया। तथा जिनके द्वारा मन वचन कायरूप योगकी प्रवृत्ति शुद्ध होती है ऐसी मनोगुप्ति वचनगुप्ति और काय गुप्तियोंका स्वरूप वतलाया ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ मन और इंद्रियोंका निरोध सयम वंदना प्रतिक्रमण स्वाध्याय और कायोत्सर्ग ये छै आवश्यक। केशलोंच, स्नान न करना, एकवार भोजन, खडे होकर भोजन करना, नग्नपना, भूमिपर सोना, दांत न माजना, वारह प्रकारका तप, वारह प्रकारका संयम, सरागवीतराग चारित्र, वाईस परीषहका जीतना, बारह प्रकारकी भावना, उत्तम क्षमा आदि दश प्रकारका धर्म, और ज्ञान दर्शन तप चारित्रके विनयका विस्तारसे वर्णन किया ॥ १२८–१३० ॥ इसप्रकार भगवान गौतम गणधरने समस्त सुर असुरोंके सामने सर्व कर्मोका नाश करनेवाला जिनेंद्र प्रतिपादित धर्मका स्वरूप कहा। उसै सुनकर संसारसे भयभीत शुद्ध जाति और कुलसे उत्पन्न सैकडों मनुष्य तो समस्त परिग्रहका त्यागकर मुनि होगये ॥१३१॥१३२॥ सम्यग्दृष्टि, सफेद वस्त्र धारण करनेवाली, निर्मल जाति और कुलसे उत्पन्न हजारों स्त्रियां आर्यिका वन गई ॥१३३॥ उससमय वहुतसे मनुष्योंने पांच प्रकारका अणुव्रत तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इसप्रकार वारह व्रत धारण किये ॥१३४॥ अपनी योग्यतानुसार तिर्यचोंने भी उससमय व्रत और नियम लिये। देव भी

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और जिनेंद्र भगवानकी पूजामें प्रेमकरने लगगये ॥१३५॥ श्रेणिक महाराज क्षायिक सम्यग्दृष्टि होगये थे इसलिये उन्होंने पहिले जो बहुत आरंभ और परिग्रहके कारण महातमनामक सातवें नरकका स्थितिबंध बांध लिया था सो उस-समय उनका वह स्थितिबंध कम होकर प्रथमनरक रत्नप्रभाकाही रहगया जिसका कि काल चौरासी हजार वर्षमात्र है ॥ १३६–१३७ ॥ कहां तो सप्तम नरककी तेतीस सागरकी उत्कृष्ट स्थिति, और कहां क्षायिकसम्यक्त्वके प्रभावसे प्रथम नरककी केवल चौरासी हजार वर्षकी स्थिति ? ग्रंथकार कहते हैं कि क्षायिक सम्यक्त्वकी महिमा अपार और अद्भुत है ॥ १३८ ॥ राजा श्रेणिकके अक्रूर वारिषेण अभयकुमार और इनसे अन्य पुत्रोंने उससमय सम्यक्त्व धारण किया उनकुमारोंकी माता एवं अन्य रनवासकी स्त्रियोंने भी सम्यक्त्व शीलव्रत दान जिनभगवानकी पूजनकी आखडी ली और सबोंने भक्तिपूर्वक तीन जगतके स्वामी भगवान महावीरको नमस्कार किया ॥ १३९–१४० ॥ इसके बाद भगवानकी स्तुति और बंदनाकर देवेंद्र अपने अपने परिवारके साथ अपने अपने स्थान चले गये ॥ १४१ ॥ अनेक गुणोंसे शोभित राजा श्रेणिकने भी भलेप्रकार भगवानको नमस्कारकर अपने नगरमें प्रवेश किया ॥ १४२ ॥ जिसप्रकार नदियोंके प्रभावसे समुद्रके तटकी भूमि क्षुब्ध होजाती है उसीप्रकार भीतर घुसते और निकलते हुये मनुष्योंसे भगवान महावीरका समवसरण क्षुब्ध होगया ॥ १४३ ॥ जिसप्रकार सूर्यका मण्डल किरणोंसे पूर्णही दीखता है–किरणोंकी कमी नहिं होती उसीप्रकार आनेजानेवाले देव मनुष्य आदिसे भगवान-का समवसरण भराही हुआ नजर पडता था–खाली नहीं ॥ १४४ ॥ उससमय भग-वानके समवसरणमें धर्मचक्र और भामंडलके प्रबल तेजसे सूर्य कब तो अस्त हुआ और कब उदित हुआ यह बिलकुल नहिं जान पडता था ॥ १४५ ॥ प्रतिदिन सच्चे-धर्मका उपदेश देनेवाले भगवान तीर्थंकरकी राजा श्रेणिकने बहुत सेवाकी परंतु उस-का मन धर्मश्रवण से तृप्त न हुआ सो ठीक ही है धर्म अर्थ कामसे तृप्ति होना कठिन है ॥ १४६ ॥ भगवान गौतमके पास जानेसे उनके उपदेशसे राजा श्रेणिक प्रथमानु-योग चरणानुयोग आदि चारो अनुयोगोंमें पूर्ण पंडित होगये ॥ १४७ ॥ जिनमें सदा भगवानकी पूजाका उत्सव मनाया जाता था ऐसे नवीन बनायेगये भगवान जिनेंद्रके मंदिरोंसे राजा श्रेणिकने राजगृह नगर व्याप्त कर दिया ॥१४८॥ उससमय सामंत मंत्री पुरोहित और प्रजाओंने भी बहुतसे मंदिर बनवाये जिससे समस्त मगध देश जिनमंदिरोंसे व्याप्त होगया ॥ १४९ ॥ पुर, ग्राम, घोष, पर्वतके, अग्रभाग, नदियोंके तटपर रहनेवाले वनोंमें जिनेंद्र भगवानके मंदिर ही मंदिर दीख पड़े ॥१५०॥ जिसप्रकार पूर्वदिशाका अंधकार नष्टकर एवं प्रजाको उद्बुद्धकर सूर्य मध्यदिशाको आता

है और समस्त अंधकारको तितर वितर कर देता है। उसीप्रकार दुपहरके सूर्यके समान देदीप्यमान, समस्त मिथ्याज्ञानरूपी अंधकार को नष्टकरनेवाले केवलज्ञानरूपी प्रभाके धारक, भगवान महावीरने अपने पवित्र उपदेशसे मगधदेशकी प्रजाके अज्ञानांधकार को दूरकर मध्यदेशकी प्रजाके संबोधनेके लिये मध्यदेशमें विहार किया ॥ १५१ ॥

इसप्रकार भगवान अरिष्टनेमिके चरित्रको बतलानेवाले जिनसेनाचार्यद्वारा निर्मित हरिवंशपुराणमें धर्मतीर्थप्रवर्तन नामक दूसरा अधिकार समाप्त हुआ ॥ २ ॥

तृतीय सर्ग।

भगवान महावीर द्वारा धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति होनेपर समस्त देशोंमें धर्म फैल गया और धर्मके विषयमें जो लोगोंका अज्ञान था वह दूर होगया ॥ १ ॥ जिसप्रकार अगस्त्यनक्षत्रके उदय होनेसे तालाबोंका जल निर्मल होजाता है उसीतरह भगवान महावीरके उदयसे रागद्वेषसे मलिन मनुष्योंके मन निर्मल होगये ॥ २ ॥ जिसप्रकार भव्यवत्सल भगवान ऋषभदेवने पहिले अनेक देशोंमें विहारकर उन्हें धर्मात्मा बनाया था उसीप्रकार भगवान महावीरने भी मध्यके (काशी कौशल कौशल्य कुसंध्य अश्वष्ट साल्व त्रिगर्त पंचाल भद्रकार पाटच्चर मौक मत्स्य कनीय सूरसेन एवं वृकार्थक) समुद्र तटके (कलिंग कुरुजांगल कैकेय आत्रेय कांबोज वाल्हीक यवन श्रुति सिंधु गांधार सौवीर सूर भीरु दशेरुक वाडवान भारद्वाज और क्राथतोय) और उत्तर दिशाके (तार्ण कार्ण प्रच्छाल आदि) देशोंमें विहार कर उन्हें धर्मकी ओर ऋजु किया ॥ ३–७ ॥ जिसप्रकार परमप्रभावी सूर्यके उदयसे जुगनू विलीन होजाते हैं उसीप्रकार भगवान वर्धमानके उदयसे समस्त मिथ्यामार्ग नष्ट होगये ॥ ८ ॥ जिन महानुभावोंने भगवान महावीरका वचन सुना या उन्हें प्रत्यक्ष देखा उनकी प्रवृत्ति मिथ्या धर्मोंसे सर्वथा हट गई ॥९॥ मलमूत्ररहित शरीर १, स्वेदका अभाव (पसीना न आना) २ दूधके समान श्वेत रक्त ३ वज्रवृषभनाराच संहनन ४ समचतुरस्रसंस्थान ५ अद्भुतरूप ६ अतिशयसुगंधता ७ एक हजार आठ लक्षणयुक्त शरीर ८ अनंतबल ९ और प्रिय हितकर वचन १० ये दश अतिशय तो भगवानमें जन्मकालसे ही थे परंतु केवलज्ञान प्राप्तिके समय निमेष उन्मेषरहित सुंदरलोचन १ नख और केशोंकी वृद्धि न होना २ भोजनका अभाव ३ वृद्धावस्था न आना ४ शरीरकी छाया न पड़ना ५ परमकांतियुक्त एकमुखका चौमुख मालूम पड़ना ६ दोसौ योजनतक सुभिक्ष होना ७ प्राणियोंको उपसर्ग और दुःख न होना ८ आकाश गमन ९ और समस्त विद्याओंमें प्रवीणता १० ये दश अतिशय और भी प्रकट हुये। इसलिये भगवानके रूप देखने से और वचन सुनने से समस्त लोगोंको परमानंद होता था ॥ १०–१५ ॥ भगवानकी मागधी भाषा सब

जीवोंको हितकारिणी थी इसलिये उसका अमृतकी धाराके समान कर्णपुटोंसे आस्वादन कर समस्त लोगोंके हृदय प्रफुल्लित होगये ॥ १६ ॥ जो जीव द्वेषके वश एक दूसरेकी गंध भी नहिं सह सकते थे भगवान महावीरके प्रभावसे उनकी गहरी मित्रता होगई ॥ १७ ॥ उससमय समस्त वृक्ष फल फूल गये उनसे ऐसा जान पडता था मानों साक्षात् समस्त ऋतु ही भगवानकी सेवा कर रही हैं ॥१८॥ रत्नमयी समस्त पृथ्वी शुद्ध दर्पणके समान निर्मल होगई सो ऐसी मालूम होती थी मानो वह रजोधर्मसे शुद्ध हो भूषण वस्त्र धारण कर पतिको अपनी शुद्धता दिखलाती हुई कामिनी स्त्रीके समान अंतरंग शुद्धि भगवान जिनेंद्रको दिखला रही है ॥ १९ ॥ उससमय शरीरको सुख देनेवाली पवन बहती थी सो ऐसी जान पडती थी मानो वह भगवानकी सेवा कर रही है ॥२०॥ समस्त लोकके बंधु भगवान महावीरका विहार परोपकारकेलिये था इस लिये वह समस्त जगतको आनंद देनेवाला था ॥२१॥ भगवानके विहारकी पृथ्वी वायु-कुमार जातिके देवोंने अर्धयोजन पर्यंत कंकड पत्थर और जीवोंसे रहित करदी ॥२२॥ स्तनितकुमारजातिके देवोंने मेघबन चौतर्फा निर्मल सुगंधित जलका छिडकाव कर दिया ॥ २३ ॥ पैंड पैंडपर देव सात सात कमलोंसे भगवानके चरण कमलोंकी पूजा करते जाते थे इसलिये वे आकाशमें भी पृथ्वीके समान ही गमन करते थे ॥ २४ ॥ पृथ्वी चौतर्फा अतिशय मनोहर शालि आदि धान्योंसे व्याप्त होगई इससे वह ऐसी जानपडती थी मानो जिनेंद्रके दर्शनसे पुलकित होगई है ॥ २५ ॥ आकाश मेघोंके अभावसे निर्मल होगया सो ऐसा जान पडता था मानो वह केवलज्ञानकी निर्मलताका अनुकरण करना चाहता था ॥ २६ ॥ समस्त दिशायें उससमय रजरहित निर्मल हो गई इसलिये वे ऐसी जानपड़ती थी मानो रजोधर्मसे शुद्ध हो पतिकी सेवा करनेवाली कामिनी स्त्रीके समान भगवानकी उपासना कर रही हों ॥ २७ ॥ उससमय इंद्रकी आज्ञासे देव भगवानके धर्मदानकी घोषणा कर दूसरोंको बुलाते थे ॥२८॥ भगवान का हरसमय धर्मचक्र जगमगाता रहताथा सो ऐसा जानपड़ता था मानो वह अपने तीक्ष्ण तेजसे हजार किरणोंसे शोभित सूर्यकी हंसी कर रहा हो ॥ २९ ॥ ये चौदह अतिशय देवकृत थे । इसप्रकार चौंतीस अतिशय और अष्ट प्रातिहार्योंसे मंडित भगवान महावीरने पृथ्वीपर विहार किया ॥ ३० ॥ प्रातिहार्योंमें प्रथम प्रातिहार्य अशोकवृक्ष था यह शोकनाशक अशोक पत्तोंसे शोभित था एवं आकाशकी विशालता जाननेके लिये ही मानो अधिक ऊंचा था ॥ ३१ ॥ दूसरा प्रातिहार्य पुष्प-वृष्टि थी देवगण उससमय नम्रीभूत हो पुष्पवर्षा करते थे और उससे समस्त दिशायें अतिशय रमणीय जानपडती थीं ॥ ३२ ॥ तीसरा प्रातिहार्य चमर थे । जिसप्रकार पडतीहुई गंगाकी तरंगोंसे हिमवान् पर्वत रमणीय मालूम पडता है उसीप्रकार चारो

दिशाओंमें देवों द्वारा ढोले गये चौसठ चमरोंसे जिनेंद्र मनोहर मालूम होते थे ।३३। चौथा प्रातिहार्य भामंडल था । भामंडल की प्रवलकांतिसे उससमय सूर्यमंडलकी कांति ढक गई थी और रातदिनका विभाग भी नहिं जान पडता था ॥ ३४ ॥ देवों द्वारा अत्यंत गंभीर ध्वनि करनेवाली दुंदुभि बजती थी सो ऐसी जान पडती थी मानो भगवानने कर्मरूपी प्रवल शत्रुओंका विजय कर लिया है इसबातकी घोषणा कर रही है ॥ ३५ ॥ छठवां प्रातिहार्य तीन छत्र थे उनसे ऐसा जान पडता था कि एक लोकके स्वामीपनेका सूचक एक छत्र राज्यत्याग कर भगवान अब तीन लोकके स्वामी होगये हैं इस बातकी सूचना दे रहे हैं ॥३६॥ पहिले अनेक नरेंद्रोंसे व्याप्त भगवानका राजसिंहासन था भगवानने उसे छोड दिया इसलिये अब उनके अनेक देवेंद्रोंसे व्याप्त सातवां प्रातिहार्य सिंहासन हुआ ॥ ३७ ॥ आठवां प्रातिहार्य दिव्यध्वनि थी यह एक योजनपर्यंत धर्मोपदेश देनेवाली थी कर्णोंको अमृततुल्य और समस्त जगतको पवित्र करनेवाली थी ॥ ३८ ॥ इसप्रकार अष्ट प्रातिहार्योंसे मंडित भगवान महावीरने अनेक देशोंमें विहार किया एवं सर्वत्र धर्मोपदेश देते २ कदाचित् वे राजगृह नगर आये ॥ ३९ ॥ भगवानके इंद्रभूति (गोतम) अग्निभूति वायुभूति शुचिदत्त सुधर्म मांडव्य मौर्यपुत्र अकंपन अचल मेदार्य और प्रभास ये ग्यारह गणधर थे ये समस्तही सात प्रकारकी ऋद्धियोंसे संपन्न थे और द्वादशांगके वेत्ता थे ॥ ४०–४३ ॥ तप्त दीप्त आदि तप ऋद्धि १ चतुर्बुद्धिविक्रिया २ अक्षीणर्द्धि ३ औषधि ४ लब्धि ५ रस ६ और वल ऋद्धि ७ ये सात ऋद्धियां हैं ॥४४॥ गौतम आदि पांच गणधरोंके मिलकर सब शिष्य दशहजार छैसौ पचास और प्रत्येकके दो हजार एकसो तीस २ थे छठे और सातवें गणधरोंके मिलकर सब शिष्य आठसो पचास और प्रत्येकके चारसौ पचीस २ थे । शेष चार गणधरोंमें प्रत्येकके छैसौ पचीस पचीस और सब मिलकर ढाईहजार थे । एवं सब गणधरोंके मिलाकर समस्त शिष्य चौदह हजार थे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ इन चौदहहजार शिष्योंमें तीनसौ पूर्वके पाठी, नौसौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, तेरहसौ अवधिज्ञानी, सातसौ केवलज्ञानी, पांचसौ विपुलमनःपर्ययज्ञानके धारक चारसौ परवादियोंके जीतनेवाले, और नौहजार नौसौ सामान्य मुनि थे ॥ ४७–४९ ॥ इसप्रकार ग्यारह गणधर और चौदहहजार मुनियोंसे भूषित भगवानका समवसरण नदियोंसे व्याप्त विशाल समुद्रकी तुलना करता था ॥५०॥ मगधदेशमें-लक्ष्मीका स्थान अनेक उत्तमोत्तम महलोंसे मंडित एक राजगृह नगर है जहां तहां अनेक स्थानोंपर विहारकर भगवान महावीरने अपनी आश्चर्यकारी समवसरणकी विभूतिसे मंडितहो राजगृहमें प्रवेश किया ॥५१॥ राजगृह नगरमें पांच शैल (पर्वत) हैं इसलिये उसका दूसरा नाम पंचशैल भी है और वह भगवान मुनिसुव्रतनाथके जन्मसे परमपवित्र महामनोहर पांच पर्वतोंसे रमणीय एवं

शत्रुओंका अजेयस्थान है ॥५२॥ पाचों पर्वतोंमें प्रथम पर्वतका नाम ऋषिगिरि है यह पर्वत चतुःकोण है झरतेहुये सुंदर झरनोंसे महामनोहर है एवं इंद्रके ऐरावत हस्तीके समान पूर्वदिशामें स्थित है। दूसरा पर्वत वैभार है जो त्रिकोण और दक्षिण दिशामें है। तीसरा पर्वत विपुलाचल है यह पर्वत दक्षिण और पश्चिमके मध्यमें है और वैभार गिरिके समान त्रिकोण है। चौथा पर्वत वलाहक है और वह इंद्रके धनुषके समान तीनो दिशाओंमें व्याप्त है तथा पांचवे पर्वतका नाम पांडुक है और यह गोल एवं पूर्वदिशामें है ॥ ५३–५५ ॥ ये समस्त पर्वत हरएकप्रकारके फल और फूलोंसे व्याप्त वृक्ष और शीतल जलके झरनोंसे महा मनोज्ञ जानपडते हैं ॥ ५६ ॥ भगवान वासुपूज्यके समवसरणके सिवाय समस्ततीर्थंकरोंके समवसरण इन पर्वतोंपर आये हैं इसलिये ये परम पवित्र हैं अनेक भव्यजीव तीर्थयात्राके लिये यहां आते हैं एवं नानाप्रकारके अतिशय और सिद्धि क्षेत्रोंसे मंडित हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ भगवानके आगमनके प्रथमही इंद्रने तीसरे पर्वत विपुलाचलपर उनके समवसरणकी रचना करदी और उसपर विपुल शोभासे शोभित भगवान महावीर आकर विराजमान होगये ॥ ५९ ॥ उस समय जहां तहांसे आये हुये सौधर्म आदि देव और श्रेणिक आदि महापुरुषोंसे विपुलाचल अनुपम शोभा धारण करता था ॥ ६० ॥ ऋद्धिधारी मुनिराज भगवान महावीरके समीप विराजे एवं कषायोंके नाशकरनेवाले यती प्रत्यक्ष ज्ञानी मुनि ग्यारह गणधर, चौदहहजार अनगार, पैंतीसहजार आर्यिका, एक लाख श्रावक, तीनलाख श्राविका, देवोंकी देवियां, चारोनिकायोंके देव, और तिर्यंच अपने अपने स्थानोंपर जा वैठे। उससमय वारह सभाओंसे मंडित भगवान महावीर परम रमणीय जान पडते थे ॥६१–६४॥ जब समस्त जीव अपने अपने स्थानोंपर समव-वरणमें स्थित होगये तब गणधर गौतमने भगवानसे धर्मका स्वरूप पूछा और वे इसप्रकार अपनी दिव्यध्वनिसे धर्मका उपदेश देनेलगे—

सामान्य रूपसे जीवोंके दो भेद हैं एक मुक्त दूसरा संसारी। सिद्धशिलापर विरा-जमान, सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रयमार्गसे मोक्ष प्राप्त करनेवाले सिद्ध हैं ये सिद्ध ज्ञानावरण १ दर्शनावरण २ वेदनीय ३ मोहनीय ४ आयु ५ नाम ६ गोत्र ७ और अंतराय ८ इन आठ कर्मोंका सर्वथा नाशकर लोकके अग्रभागमें विराजमान होते हैं ॥ ६५–७१ ॥ सम्यक्त्व १ अनंतज्ञान २ अनंतदर्शन ३ अनंतवीर्यत्व ४ सूक्ष्मत्व ५ अवगाहन ६ अव्यावाध ७ अगुरुलघु ८ इन आठ गुणोंसे भूषित हैं, असंख्यात प्रदेशी हैं, वर्णरस आदि पौद्गलिक धर्मोंसे रहित हैं अमूर्त हैं ॥ ७२–७४ ॥ अंतिम शरीरसे किंचित ऊन हैं मूसासे मोम निकलजानेपर उसमें विद्यमान आकाशके समान हैं जन्म मरण बुढापा अनिष्टसंयोग इष्टवियोग भूख प्यास व्याधि आदि दुःखोंसे

रहित हैं ॥ ७६ ॥ द्रव्यपरिवर्तन भावपरिवर्तन भवपरिवर्तन क्षेत्रपरिवर्तन काल परिवर्तनरूप पांच प्रकारके परिवर्तन भी नष्ट करचुके हैं और परमसुखी हैं ॥ ७७ ॥ मोक्षके उद्यमी संसारी जीवोंके तीन भेद हैं उनमें असंयतसम्यग्दृष्टि चौथेगुणस्थानके धारक तो प्रथम अंतरात्मा है संयतासंयत पंचम गुणस्थानके धारी (ग्यारह प्रतिमाओंके पालक श्रावक) दूसरे अंतरात्मा हैं और छठे गुणस्थानसे नवमे गुणस्थानके धारणकरनेवाले मुनि तीसरे अंतरात्मा हैं ॥ ७८ ॥ पारिणामिक भावका धारक जीव मोहके उदयसे वा क्षय उपशम एवं क्षयोपशमसे गुणस्थानोंमें प्रवृत्ति करता है ॥ ७९ ॥ गुणस्थान चौदह हैं उनमें प्रथम गुणस्थानका नाम मिथ्यादृष्टि है और वह मिथ्यादृष्टिके होता है। दूसरा सासादन तीसरा सम्यग्मिथ्यादृष्टि चौथा असंयत सम्यग्दृष्टि ॥ ८० ॥ पांचवां संयतासंयत, छठा प्रमत्तसंयत, सातवां अप्रमत्त, आठमा अपूर्वकरण, नवमां अनिवृत्तिकरण, दशवां सूक्ष्मसांपराय, और ग्यारहवां उपशांतकषाय है इनमें आठवें नवमें और दशवेमें तो उपशम और क्षपकश्रेणीवाले दोनों जाते हैं और ग्यारहवेंमें उपशमश्रेणीवाला ही जाता है क्षपक श्रेणीवाला नहीं ॥ ८१ ॥ ॥ ८२ ॥ तथा बारहवां गुणस्थान क्षीणकषाय, तेरहवां अयोगकेवली और चौदहवां सयोगकेवली है ॥ ८३ ॥ छठे गुणस्थानसे लेकर चौदहवें गुणस्थानतक तो बाह्यरूप में किसी प्रकारका भेद नहीं है। समस्त मुनि निर्ग्रंथरूपकेही धारक हैं किंतु भावोंका भेद है जैसा जैसा ऊपरके गुणस्थानोंमें चढना होता है भावभी वैसे वैसे ही शुद्ध होते चलेजाते हैं। किंतु प्रथमसे लेकर पांचवें गुणस्थानतक बाह्यरूपका भेद रहता है और भावोंका भी भेद रहता है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ सबसे अधिक सुखतो सयोग और अयोग गुणस्थानोंमें है क्योंकि वहां क्षायिकलब्धिकी प्राप्ति होजाती है इसलिये अनंतसुख प्रकटित होजाता है इंद्रियजन्य विनाशीक सुख नहीं रहता ॥ ८६ ॥ कुछ कमसुख बारहवे गुणस्थानमें है क्योंकि वहां समस्तकषायोंका नाश होता है। उससे कम ग्यारहवें गुणस्थानमें है क्योंकि इसमें कषाय नष्ट नहि होते शांत होजाते हैं ग्यारहवें गुणस्थानसे कुछ कमसुख दशवेंमें है। दशवेंसे कुछ कम नवमेमें है। उससे थोडा सुख आठवेमें है ॥ ८७ ॥ आठवेंसे कम सातवे अप्रमत्त गुणस्थानमें है क्योंकि वहांपर निद्रा, पांच इद्रियां, चारकषाय और स्नेहरूप पंद्रह प्रमादोंका नाश है ॥ ८८ ॥ इससे कमसुख छठे गुणस्थानमें है क्योंकि वहां हिंसा झूठ चोरी कुशील और परिग्रहका त्याग है ॥८९॥ छठेसे कम सुख पांचवेमें है क्योंकि वहां यथाशक्ति हिंसा आदि पांच पापोंका त्याग रहता है और तृष्णाकी नास्ति रहती है ॥ ९० ॥ पांचवेसे कमसुख चतुर्थ गुणस्थानमें है क्योंकि यद्यपि वहां तृष्णा और हिंसा आदिका अभाव नहीं है तथापि सम्यग्दर्शन जन्य सुख मौजूद है ॥ ९१ ॥तृतीय गुणस्थानमें सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन दोनों

परिणाम रहते हैं इसलिये वहां मिश्र सुख दुःखका अनुभव होता है ॥ ९२ ॥ सम्यक्त्वसे च्युत होकर जीवका परिणाम जबतक मिथ्यात्वरूप नहिं होता ऐसे वीचके कालको सासादन गुणस्थान कहते हैं इसमें सुखका भाव जरा भी नहिं होता किंतु घी शक्कर खानेपर जैसी उसकी मीठी डकार आती है उसीप्रकार यहां कुछ सुखकी गंध सरीखी आती है ॥ ९३ ॥ एवं पृथमगुणस्थान मिथ्यात्वमें तो सुखका कैसा भी रूप प्राप्त नहिं होता क्योंकि वहांपर सम्यक्त्वके स्वरूपको ढकनेवाली सम्यक्त्व आदि मोहनीय कर्मकी सात प्रकृतियां सदा मौजूद रहती हैं। और उनसे इस गुणस्थानवर्ती जीव सदा मूढ बना रहता है ॥ ९४ ॥ ज्ञानावरण १ दर्शनावरण २ वेदनीय ३ मोहनीय ४ आयु ५ नाम ६ गोत्र ७ और अंतराय ८ ये आठ कर्म हैं। पृथम ज्ञानावरण कर्मका स्वभाव पर्दा सरीखा है क्योंकि पर्देके भीतरसे जैसे कुछ नहिं जाना जाता ज्ञानावरणके उदयसे भी कुछ नहीं जाना जाता। दर्शनावरणका स्वभाव प्रतीहार (डचोडीवान) के तुल्य है क्योंकि प्रतीहार जैसा राजा आदिके देखनेमें प्रतिबंध डालता है उसीतरह यह भी अनंतदर्शनको प्रगट नहिं होने देता ॥ ९५ ॥ वेदनीय कर्मका मधुलिप्त छुरी सरीखा स्वभाव है क्योंकि वहां जैसे मधुके स्वादसे और जीभ कटनेकी पीडासे मिलित सुख दुःखका अनुभव होता है उसीप्रकार वेदनीय कर्मके उदयसे भी मिश्र सुख दुःखका अनुभव होता है किंतु वास्तविक अव्यावाधरूप सुखकी प्रकटता नहि होती। मोहनीयकर्मका स्वभाव मदिरा सरीखा है क्योंकि मदिरासे जैसी बेहोशी होजाती है उसीप्रकार मोहनीय कर्मके उदयसे भी जीव बेहोश होजाता है अपना हिताहित जरा भी नहिं विचार सकता ॥ ९६ ॥ आयुकर्मका स्वभाव बेडी सरीखा है क्योंकि पैरमें बेडी परनेसे जिसप्रकार मनुष्य रुकजाता है उसीप्रकार जितनी मर्यादा आयुकर्मकी होगी जीवको उसी योनिमें उतना रहना ही पडेगा। नामकर्मका स्वभाव चित्रकार सरीखा है क्योंकि चित्रकार जैसा नवीन २ चित्र गढता है नामकर्मके उदयसे भी जीव कभी मनुष्य कभी तिर्यच आदि होता है ॥ ९७ ॥ गोत्रकर्मका स्वभाव कुंभकार सरीखा है क्योंकि कुंभकार जिसप्रकार छोटे बडे घडे वनाता है गोत्रकर्मसे भी नीच ऊंच गतिमें जाना पडता है। एवं अंतराय कर्मका स्वभाव भंडारीके समान है क्योंकि अन्न आदि देनेमें जैसा वह सिकपिकाता है अंतरायकर्म भी लाभ दान आदिमें विघ्न डालता है ॥ ९८ ॥ इसप्रकार प्रथम गुणस्थानमें मिथ्यादृष्टि जीव भिन्न भिन्न फल देनेवाले इन आठ कर्मोंका सदा संचय किया करते हैं ॥ ९९ ॥ मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती जीव भव्य भी होते हैं और अभव्य भी होते हैं किंतु द्वितीय गुणस्थानसे ऊपरके जीव नियमसे भव्य ही होते हैं ॥ १०० ॥ जिनमें सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चरित्र एवं मोक्षपानेकी सामर्थ्य हो वे भव्य हैं

और इससे विपरीत अभव्य हैं ।। १०१ ।। जो विशुद्ध सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चरित्रके धारक हों उन्हें आसन्नभव्य कहते हैं और इनको हमभी पहिचान सकते हैं ।। १०२ ।। किंतु दूरानुदूरभव्य और अभव्योंका ज्ञान भगवान-केवलीके वचनोंसे ही होता है क्योंकि इन दोनोंके कारण प्रत्यक्ष गोचर नहिं होसकते ।। १०३ ।। जीवका भव्यत्व और अभव्यत्व स्वभाव एकवर्तनमें भरकर सीजनेके लिये अग्निपर रक्खे गये शुद्ध उर्द और टोरोंके समान होता है अर्थात् शुद्ध उर्द जिसप्रकार जल्दी सीझ जाते हैं उसीप्रकार जो शीघ्रही वास्तविक तत्त्वोंमें विश्वास करने लगजाते हैं वे तो भव्य हैं और नहि सीझनेवाले टोरोंके समान तत्त्वोंमें विश्वास न लानेवाले अभव्य हैं ।१०४। यह संसारसागर भव्यव्यक्तिकी अपेक्षा अनादि सांत और भव्यसमूहकी अपेक्षा अनादि अनंत है एवं अभव्यों (चाहैं वे एक हों या अनेक हो) के लिये अनादि अनंत ही है । अभव्य कभी मोक्ष नहि जा सकते ।। १०५-१०६ ।। संसारमें जीवोंकी दो राशियां हैं एक भव्य दूसरी अभव्य, ये दोनोंही राशियां मिथ्यात्वकर्मके उदयसे सदा अनेक दुःख भोगा करती हैं और जिसप्रकार कालद्रव्यकी घंटा घडी पल आदि पर्यायें सदा नष्ट होती रहती है तथापि उनका अंत नहिं आता उसीप्रकार ये दोनों राशियां भी कभी नष्ट नहिं होतीं ।। १०७ ।। द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा उक्त दोनों राशियां नित्य हैं और पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा अनित्य है । ये बिचारे अज्ञानी जीव मिथ्यात्व असंयम योग और कषायोंसे मलिन बने रहते हैं एवं बंध होजानेपर जिसका छूटना कठिन है ऐसे भयंकर पापकर्मका संचयकर महादुःख देनेवाली नरक आदि चारों गतियोंमें भ्रमण करते फिरते हैं ।। १०८ ।। १०९ ।। रौद्रध्यानी, महाआरंभी और परिग्रही, परममिथ्यात्वी, ज्ञान पूजा आदिके मदसे मत्त दूसरोंका अनिष्ट चिंतवन करनेवाले अपनी प्रशंसा और परकी निंदामें लीन, परधनके चुरानेवाले भोगतृष्णासे व्याप्त एवं मधु मांस और मदिराको सेवनेवाले, अनेक कर्मभूमियां जीव तथा वाघ सिंह आदि तिर्यंच नरकायुका बंध बांधते हैं और जहां महाविषम शीत और उष्णतासे नारकियोंके शरीर प्रतिक्षण जलते भुंजते रहते हैं ऐसे भयंकर नरकोंमें उत्पन्न हो बेहद दुःख भोगते हैं ।। ११०-११३ ।। नरकमें न तो कोई ऐसी द्रव्य है और न क्षेत्र और काल है जहां नारकियोंको जरा भी शांति मिले ।। ११४ ।। संसारमें समस्तजीव अधिक जीना पसंद करते हैं परन्तु अभागे नारकी नहीं उनके शरीरके टुकडेभी होजाते हैं तोभी उनकी अकालमृत्यु नहिं होती ।। ११५ ।। पहिले नरकमें उत्कृष्टस्थिति एक सागर, दूसरेमें तीनसागर, तीसरेमें सातसागर, चौथेमें दशसागर पांचवेमें सत्रहसागर, छठेमें वावीस सागर, और सातवेंमें तेतीस सागर है ।। ११६ ।। ११७ ।। तथा प्रथमनरककी उत्कृष्ट स्थिति दूसरे नरककी एक समय अधिक जघन्य है और दूसरे

नरककी उत्कृष्टस्थिति तीसरेकी एकसमय अधिक जघन्य है इसीप्रकार सातवे नरकतक पूर्व पूर्व नरककी उत्कृष्ट उत्कृष्ट स्थिति उत्तर उत्तरके नरकमें जघन्य समझनी चाहिये। और प्रथम नरककी जघन्यस्थिति एक समय अधिक दश हजार वर्षकी जाननी चाहिये ॥ ११८ ॥ जो जीव महाक्रोधी महामानी महामायाचारी महालोभी आर्तध्यानरूपी भंवरमें घूमनेवाले मिथ्यादृष्टि हैं चाहै वे तिर्यंच देव मनुष्य नारकी कोई भी हों त्रस स्थावर आदि अनेक भेदोंसे व्याप्त इस तिर्यंचगतिमें सदा घूमते फिरते हैं। पृथ्वीकायमें जन्म धारणकर अनंतक्लेश भोगते हैं। तिर्यंचगतिमें कभी वे कृमि आदि दोइंद्रिय, जूंआ आदि तेइंद्रिय, भौंरा आदि चौइंद्रिय, और पक्षी मीन हिरण आदि पंचेंद्रिय होते हैं और अत्यंत दुःख भोगते हैं ॥ ११९ ॥ १२३ ॥ तिर्यंचोंकी जघन्यस्थिति अंतर्मुहूर्त है और उत्कृष्टस्थिति कर्मभूमिमें पूर्वकोटी और भोगभूमिमें तीनपल्यकी है ॥ १२४ ॥ जो भव्यजीव आर्यकुलमें उत्पन्न हुये हैं भद्रपरिणामी हैं और पापसे भय करनेवाले मधु मांस मदिराके आहारसे रहित हैं वे उत्तम-आर्य मनुष्य हैं और जो निंदित कर्म करनेवाले हैं वे नीच मनुष्य हैं ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ अनेक तिर्यंच और नारकी पापोंका नाशकर उत्तम मनुष्यभव प्राप्त करलेते हैं एवं वहुतसे देवभी शुभकर्मकी कृपासे मनुष्य होजाते हैं ॥१२७॥ शुभकर्मके निमित्तसे चाहैं जीव मनुष्यभवमें—आर्य वा म्लेच्छ कुलमें जन्म लेलें परंतु उन्हें इष्टपदार्थोंका लाभ न होनेसे और प्रियजनोंके वियोगसे अनेक प्रकारके दुःखोंका सामना करना पडता है ॥ १२८ ॥ कदाचित् इष्टपदार्थोंका लाभ और प्रिय जनोंका समागमभी होजाय तो विषय तृष्णा पीछा नहि छोडती अग्निमें तृण डालनेपर जैसी उसकी शांति नहि होती उसीप्रकार विषयतृष्णा भी दिनों दिन बढती चलीजाती है और उससे अनेक कष्ट भोगने पडते हैं इसलिये सुख कभी नहि मिलता ॥ १२९ ॥ जो मनुष्यभव सम्यग्दर्शनादिसे युक्त निकट भव्योंकेलिये मोक्षका कारण है वही मनुष्यभव महामूढ अभव्यजीवोंकेलिये दीर्घ संसारका कारण है ॥ १३० ॥ १३१ ॥ समस्त कर्मभूमि और भोगभूमियोंमें मनुष्योंकी जघन्य और उत्कृष्टस्थिति तिर्यंचोंके समान समझनी चाहिये अर्थात् कर्मभूमिमें उत्कृष्टस्थिति कोटीपूर्व और जघन्य अंतर्मुहूर्त है। तथा भोगभूमिमें उत्कृष्ट सामान्यरूपसे तो तीन पल्य है और विशेषरूपसे भरत और ऐरावतमें (उत्कृष्टस्थिति) तीन पल्य मध्यम भोगभूमिमें दोपल्य और जघन्यभोगभूमिमें एकपल्य है । भोगभूमिमें जघन्यस्थिति नहिं होती ॥ १३२ ॥ केवल पानी पीनेवाले, वायुभोजी, कंदमूल फलपत्रके आहारी, शांतबुद्धिके धारक, कषाय और इंद्रियोंको वशकरनेवाले, वालतप तपनेवाले, कायक्लेशके धारक एवं अकामनिर्जरा करनेवाले अनेकमिथ्यादृष्टि तपस्वी मरकर थोडी ऋद्धिके

धारक भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और कल्पवासी होजाते हैं ॥ १३३-१३५ ॥ उनमें अनेक तो गाने नाचनेवाले महाकामी कंदर्प जातिके देव होते हैं। अनेक सभामें दासकर्मकरनेवाले आभियोग्य जातिके देव होते हैं और अनेक महानीच काम करनेवाले किल्विषिक जातिके देव होते हैं ॥ १३६ ॥ ये समस्त देव अपनेसे बडी २ ऋद्धियोंके धारक देवोंकी विभूति देखकर और अपनेको दरिद्र जानकर सदा मानसिक दुःखसे संतप्त रहते हैं ॥ १३७ ॥ सम्यग्दर्शनका लाभ बडी कठिनतासे होता है इसलिये अनेक भव्यभी इस संसाररूपी गहन समुद्रमें अभव्योंके समान गोता मारते फिरते हैं ॥ १३८ ॥ भवनवासियोंकी उत्कृष्टस्थिति कुछ अधिक एक सागरकी है और जघन्य दशहजारवर्षकी है। व्यंतरोंकी उत्कृष्टस्थिति एकपल्य और जघन्य दशहजारवर्षकी है ॥ १३९ ॥ ज्योतिषीदेवोंकी उत्कृष्टस्थिति एकपल्य, और जघन्य पल्यके आठवां भाग है। और कल्पवासियोंकी उत्कृष्टस्थिति तेतीससागर और जघन्य पल्यसे कुछ अधिक है ॥१४०॥ कदाचित् भव्यजीव क्षयोपशम, संशुद्धि, प्रायोग्य, देशना और करण इन पांच प्रकारकी लब्धियोंको भी प्राप्त करते हैं। करणलब्धि-अधःप्रवृत्तकरण अनिवृत्तिकरण और अपूर्वकरणके भेदसे तीन प्रकार है ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ इन पांच लब्धियोंसे और आत्माकी विशुद्धिसे दर्शनमोहनीयकर्मका उपशम क्षयोपशम क्षयकर क्रमसे औपशमिक क्षायोपशमिक और क्षायिकभावको प्राप्तहो भव्यजीव सम्यक्त्वका लाभ करते हैं और आनंद भोगते हैं ॥ १४३-१४४ ॥ चारित्रमोहनीय कर्मका क्षयोपशम कर सम्यक्चारित्रका लाभ करते हैं ॥ १४५ ॥ पश्चात् अनंतसुख अनंतज्ञान अनंतदर्शन और अनंतबलकी प्राप्ति कर संसारको विच्छिन्न करते हुये मोक्षमें विराजते हैं ॥ १४६ ॥ जो जीव चारित्रमोहके अतिशय बलवान होनेसे सम्यक्-चारित्र धारण नहिं कर सकते परंतु सम्यग्दर्शनका उनके बल मोजूद है वे देवगतिकी आयुका बंध बांधते हैं ॥ १४७ ॥ जो जीव पंचमगुणस्थानवर्ती श्रावक हैं वे सौधर्मसे लेकर अच्युतपर्यंत स्वर्गोंमें महान ऋद्धिके धारक देव होते हैं ॥ १४८ ॥ प्रमत्त और अप्रमत्त छठवें और सातवें गुणस्थानोंमें रहनेवाले सरागसंयमी जीव सोलहो स्वर्गोंके देव होतेहैं अथवा नवग्रैवेयक नवअनुदिश और पांचप्रकारके अनुत्तरविमानोंमें रहनेवाले कल्पातीत देव होते हैं इनमें स्वर्गवासी देव तो इंद्र कहलाते हैं और ऊपर रहने वाले अहमिंद्र कहलाते हैं ये समस्त देव सुखसे निवास करते हैं और अपने उत्तम तपका फल भोगते हैं ॥ १४९-१५१ ॥ सौधर्म और ईशान स्वर्गोंमें उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक दो सागर, सानत्कुमार और माहेंद्रमें कुछ अधिक सातसागर ॥ १५२ ॥ ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें दश, लांतव और कापिष्ठ स्वर्गमें चौदह ॥ १५३ ॥ शुक्र और महाशुक्र स्वर्गोंमें सोलह, शतार और सहस्रार स्वर्गोंमें अठारह ॥ १५४ ॥ आनत

और प्राणत स्वर्गोंमें वीस और आरण अच्युत स्वर्गोंमें वावीस सागर है ॥ १५५ ॥ नवग्रैवेयकोंकी उत्कृष्टस्थिति एक २ सागर अधिक बढाकर समझनी चाहिये और पूर्व २ स्वर्गोंकी उत्कृष्टस्थिति उत्तरोत्तरोंकी जघन्य समझनी चाहिये अर्थात् प्रथम ग्रैवेयककी उत्कृष्ट स्थिति तेईस सागर और जघन्य वावीस सागरकी है। दूसरे ग्रैवेयककी उत्कृष्टस्थिति चौवीस और जघन्य तेईस सागरकीहै इसीप्रकार आगेभी जाननी चाहिये ॥ १५६ ॥ नव अनुदिश विमानोंमें उत्कृष्ट आयु वत्तीस सागर और जघन्य आयु इकतीस सागरकी है ॥ १५७ ॥ और विजय वैजयंत आदि पांचो अनुत्तरोंमें उत्कृष्ट स्थिति तेतीस[३३] सागर है आदिके चार अनुत्तरोंमें जघन्यआयु बत्तीस[३२] सागरकी जाननी चाहिये किंतु सर्वार्थसिद्धिनामक अनुत्तर विमानमें जघन्य आयु नहि है॥ १५८ ॥ सौधर्मस्वर्गकी देवियोंकी उत्कृष्ट स्थिति पांच पल्य है और दूसरेसे बारहवें स्वर्गपर्यंत देवियोंकी उत्कृष्टस्थिति दो दो पल्य अधिक और अगारी सात सात पल्य अधिक समझनी चाहिये अर्थात् ईशानमें सातपल्य, सानत्कुमारमें नौ पल्य, माहेंद्रमें ग्यारह[११]पल्य, इसीप्रकार बढते २ बारहवेंमें सत्ताईस पल्य है और आनत स्वर्गमें चौतीस[३४] पल्य प्राणतमें इकतालीसपल्य आरणमें अडतालीस[४८] और अच्युतस्वर्गमें पचपन[५५] पल्यकी है। सोलहवें स्वर्गसे आगे स्त्रियां नहीं इसलिये उनकी आयु आदिका भी परिमाण नही हैं॥१५९॥१६०॥ कर्मकी सामर्थ्यसे समस्त स्वर्गवासिनी देवियोंकी उत्पत्ति सौधर्म और ईशानस्वर्गमें ही होती है अन्य स्वर्गोंमें रहनेवाले देव अपनी २ देवियोंको अपने २ स्थानोंपर लेजाते हैं ॥ १६१ ॥ ज्योतिषी भवनवासी व्यंतर सौधर्म और ईशान स्वर्गनिवासी देव अपनी स्त्रियोंके साथ शरीरसे मैथुन करते हैं ॥ १६२ ॥ सानत्कुमार माहेंद्र स्वर्गवासी देव देवांगनाओंके शरीरके स्पर्शसे तृप्त होजाते हैं ॥ १६३ ॥ ब्रह्म ब्रह्मोतर लांतव कापिष्ठ इन चार स्वर्गोंके देव देवांगनाओंका रूप देखकर तृप्त होजाते हैं ॥ १६४ ॥ शुक्र महाशुक्र शतार और सहस्रार चार स्वर्गोंके देव शब्दप्रवीचारवाले है अर्थात् अपनी देवगनाओंके भूषणोंके शब्द सुनकरही तृप्त होजाते हैं ॥ १६५ ॥ और आनत प्राणत आरण अच्युतदेवोंके मोहकी मंदता है इसलिये अपनी देवांगनाओंका मनमें स्मरण करतेही तृप्त होजाते हैं ॥१६६॥ और प्रथम ग्रैवेयकसे सर्वार्थसिद्धिपर्यंत देवोंके मोहका उदय व्यक्त नही है इसलिये उनके प्रवीचार भी नहीं—वे शांत सुखी हैं ॥ १६७॥ सौधर्मनामक प्रथमस्वर्गसे ऊपरके स्वर्गोंमें रहनेवाले देवोंकी जैसे २ स्थिति अधिक होती जाती है वैसे २ ही उनका तेज, सुख, लेश्याओंकी निर्मलता, इंद्रियां और अवधिज्ञानका विषयभी वढता चला जाता है । परंतु ऊपरके देवोंकी गति[1] शरीरकी उंचाई अभिमान और परिग्रह

[1] सोलहस्वर्गके देव अपने क्षेत्रको छोडकर दूसरे क्षेत्रमे जा सकते है किंतु अहमिंद्र अपने क्षेत्रको छोडकर दूसरे क्षेत्रमे गमन नहि करते ।

कम २ होते चले जाते हैं ।।१६८–१६९।।इसप्रकार अनेक जीव विना यत्नकेही मुक्तिके कारण अमूल्य रत्नत्रयको सिद्धकरनेवाले आर विचारते ही समस्त अभिलाषाओंके पूर्ण करनेवाले स्वर्गसुख भोगकर विदेह भरत और ऐरावत क्षेत्र रूप उत्तमकर्मभूमिमें उत्तम पुरुष होते हैं।।१७०–१७१।। अनेक जीव नोनिधि चौदह रत्नोंके स्वामी षट्खंड पृथ्वीके भोगनेवाले चक्रवर्ती होते हैं एवं चरम शरीरी हो मोक्षसुखका अनुभव करते हैं ।।१७२।। अनेकजीव दो या तीन भव धारणकर मोक्ष चलेजाते हैं बहुतसे बलभद्र होते हैं और उनमें बहुतसे मोक्ष और स्वर्ग जाते हैं। पूर्वभवमें निदानबांधनेवाले अनेकजीव नारायण और प्रतिनारायण होते हैं ।। १७३ ।। अनेक भव्यप्राणी पूर्वभवमें षोडश भावना भावनेसे तीर्थकर होते हैं और उनकी तीनोंलोकमें कीर्ति फैलती है ।।१४७।। तथा अनेकजीव जिनशासनरूपी विशालवृक्षका आश्रयकर मोक्षरूपी महाफलका लाभ करते हैं क्योंकि वृक्षमें जैसी जड होती है जिनशासनरूपी वृक्षमेंभी सम्यक्त्वरूपी जड मौजूद है वृक्षपर जैसी डालियां होती हैं जिनशासनरूपी वृक्षमेंभी ज्ञानरूपी डाली मौजूद हैं वृक्षमें जैसा स्कंध (पीड) होता है जिनशासनरूपी वृक्षमेंभी सम्यक्चारित्ररूपी स्कंध है, वृक्षपर जैसी छोटी वडी शाखा रहती हैं जिनशासनरूपी वृक्षमेंभी नय उपनय रूपी शाखा और उपशाखा मोजूद हैं। वृक्षपर जैसे फूल रहते हैं जिनशासनरूपी वृक्षपरभी राजविभूति देवविभूति आदि फूल हैं ।। १७५ ।। १७६ ।। एवं ये जीव मोक्षरूपी फलमें विद्यमान परमानंदरूप रसका अनुभव करते हैं ।। १७७ ।। जिसप्रकार सूर्यके संबंधसे कमलिनी प्रफुल्लित होजाती है उसीप्रकार मोक्षमार्गके प्रकाशक भगवान महावीरके वचन सुन उससमय तीनोंलोकके जीव परम आनंदित हुये ।।१७८।। जिसप्रकार अग्निसे शुद्ध-रत्नकी विशेष शोभा होती है उसीप्रकार धर्मके अतिशय प्रेमी तीनोंलोकके जीव भगवानके मुखसे धर्मश्रवणकर अतिशय सुखी हुये ।। १७९ ।। एवं मेघकी पक्ति जिसप्रकार समस्त जगतकी धूलिको शांत करदेती है भगवानके धर्मोपदेशने भी उससमय तीनोंलोकके जीवोंका श्रम दूर कर दिया ।। १८० ।। भगवानकी दिव्यध्वनिके समाप्त होजानेपर देवोंने दुंदुभि बजाई जोकि अपने गंभीर नादसे भगवानकी दिव्यध्वनिकी तुलना करती थी और उसी वनके समीप वे अनेक प्रकारके पुष्प और रत्नोंकी वर्षा करते हुये किसी महामुनिकी स्तुति करने लगे ।।१८१–१८२।। राजा श्रेणिकभी यह दृश्य देखरहे थे इस आकस्मिक कार्यके देखनेसे उन्हैं बडा आश्चर्य हुआ एवं भगवान गौतमको नमस्कार कर वे इसप्रकार पूछने लगे—

भगवन् ! कृपाकर कहिये कि-इस महामुनिका क्या नाम है ? इसकी अनेक देव क्यों सेवा कर रहे हैं ? किस वंशमें यह उत्पन्न हुआ है ? और आज इसे इतने अतिशयोंकी कैसे प्राप्ति हुई ? आश्चर्यसागरमें निमग्न राजा श्रेणिकका ऐसा प्रश्न सुन निरभिमानी,

आगमके ज्ञाता, श्रुतकेवली, भगवान गौतमने कहा—

राजन्! अनेक प्रकारकी विभूतिसे मंडित, निर्मल ज्ञानके धारक, इस महामुनिके नाम वंश और माहात्म्यका मैं कीर्तन करता हूं तुम ध्यानपूर्वक सुनो- इसी पृथ्वीपर तुम्हारा परिचित जितशत्रु नामका राजा था जो हरिवंशरूपी आकाशके लिये सूर्य और अनेक राजाओंको वश करनेवाला था॥ १८३-१८८॥ एकदिन उसको संसारसे उदासीनता होगई समस्त राज्यविभूतिका त्यागकर वह भगवान महावीरके चरणोंमें दिगंबर दीक्षासे दीक्षित होगया और दूसरोंके लिये सर्वथा कठिन बाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारके घोरतप तपने लगा आज इसके समस्त घातिया कर्मोंका नाश होगया है और समस्त जगतको आश्चर्य करनेवाली यह केवलज्ञान विभूति प्रगट हुई है इसलिये देवोंने जैनधर्मकी प्रभावनाके लिये मुनिराज जितशत्रुका केवलज्ञानका कल्याण मनाया है और सम्यग्दर्शन आदिकी प्राप्तिकेलिये इसकी भक्तिपूर्वक पूजाकी है॥ १८९॥ १९०॥ गणराज गौतमके मुखसे हरिवंशका नाम सुन राजा श्रेणिक ने पुनः उनसे पूछा कि—

भगवन्! इस हरिवंशकी उत्पत्ति कब और किस देशमें हुई? जिन पुरुषोंने इसकी नीव डाली थी वे कोन थे? इस वंशमें नीतिपूर्वक प्रजाके पालक, धर्म अर्थ काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थोंके आराधक, कितने राजा और तीर्थकर, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण हुये मैं उन सबका चरित्र, लोक अलोकका विभाग जानना चाहता हूं कृपाकर उन सबका विस्तारसे वर्णन करिये। उत्तरमें गणधर गौतमने कहा—

राजन् तुम्हारा प्रश्न सर्वथा योग्य है जो कुछ जैसा हुआ है मैं कहता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो—सबसे प्रथम मैं सुख और दुःख भोगनेके स्थान तीनलोकका आकार और स्वरूप कहताहूं उसके पश्चात् अनेक वंशोंकी उत्पत्ति हरिवंशकी उत्पत्ति और उनमें होनेवाले राजाओंका वर्णन करूंगा॥ १९१-१९७॥ भव्यजीव, निश्चितरूपसे पदार्थोंका स्वरूप प्रतिपादन करनेवाले भगवान वीतरागके उपदेशसे देश[1] काल[2] और स्व[3]भावसे दूरवर्तीभी पदार्थोंका पूर्णतया निश्चय करलेते हैं क्योंकि जबतक अखंड केवलज्ञानरूपी देदीप्यमान किरणोंके धारक जिनेंद्ररूपी सूर्यका उदय नहि होता तभीतक सम्यग्दृष्टियोंको पदार्थोंके ज्ञानमें भ्रम रहता है और भगवानकी मोजूदगीमें तो उनके उपदेशसे समस्त भ्रम दूर होजाते हैं॥ १९८॥

इसप्रकार भगवान अरिष्टनेमिका चरित्र वर्णन करनेवाले आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित हरिवंशपुराणमें श्रेणिक महाराजका प्रश्नवर्णन करनेवाला तीसरा सर्ग समाप्त हुआ।

---

१ मेरु आदिक पदार्थ। २ राम आदिक। ३ परमाणु आदिक।

चतुर्थसर्ग।

जिसका विस्तार चौतर्फा अनंत है, प्रदेशभी जिसके अनंत हैं और सिवाय आकाशके जिसमें दूसरा द्रव्य नहि रहता उसै अलोकाकाश कहते हैं ॥ १ ॥ जिसमें जीव और अजीव पदार्थ न देखे जांय उसै अलोकाकाश कहते हैं इस व्युत्पत्तिसे भी इसका नाम अलोकाकाशही सिद्ध होता है ॥ २ ॥ जीव और पुद्गलके गमन करनेमें सहकारी कारण–धर्मास्तिकाय और ठहरनेमें सहकारी कारण–अधर्मास्तिकायका वहां अभाव है इसलिये वहां जीव और पुद्गल न गमन ही करसकते हैं और न ठहरही सकते हैं ॥ ३ ॥ इसी अनंतप्रदेशी लोकाकाशके मध्यमें आदि अंतरहित, असंख्यात प्रदेशी, एवं समस्त जीव आदि द्रव्योंसे भराहुआ लोकाकाश है ॥ ४ ॥ जिसमें धर्म अधर्म आदि पांच अस्तिकाय और कालद्रव्य अपने भेदों सहित रहै उसे लोक कहते हैं ॥ ५ ॥ यह लोकाकाश ऊपर नीचे और मध्यमें वेंतका आसन (मूढा) मृदंग और झल्लरीके समान है अर्थात् अधोलोक वेत्रासनके समान है ऊर्ध्वलोक मृदंगके समान है और मध्यलोक जिसे तिर्यग्लोकभी कहते हैं झालरके समान है ॥ ६ ॥ नीचे आधा मृदंग रखकर उसपर पूरा मृदंग रखदिया जाय तो जैसा उसका आकार होता है उसी-प्रकार इसलोकका आकार है किंतु यह चौकोण है ग्रंथांतरमें दोनों हाथोंको कमरपर रखकर दोनों पैर पसारकर निश्चलरूपसे खडे रहनेवाले पुरुषका जैसा आकार होता है उसीप्रकार इस लोकका भी आकार है ऐसा बतलाया है ॥ ८ ॥ इसलोकका मिल-कर सब विस्तार चौदह राजू है उनमें पूर्वपश्चिम आधोलोकमें तो यह सर्वत्र सात राजू है आगे प्रदेशोंकी कुछ अधिक वृद्धि हुई है इसलिये ब्रह्म ब्रह्मोत्तर नामक पांचवे और छठवें स्वर्गके पास पांच राजू होगया है और उसके आगे प्रदेशोंकी हीनतासे लोकके अंतमें यह एक राजूही रहगया है ॥९–१०॥ यह लोक मंदराचल पर्वतके नीचे सात राजू है और सातही राजू (मेरु सहित) ऊपर ऊंचा है इसप्रकार चौदह राजू इसकी ऊंचाई है ॥ ११ ॥ चित्राभूमिके नीचले भागसे दूसरे नरकके अंततक लोककी ऊंचाई एकराजू है। तीसरे नरकके अंततक दोराजू, चौथेके अंततक तीन, पांचवेंके अंततक चार, छठेके अंततक पांच, सातवेंके अंततक छै, और अधोलोकके अंततक सात राजू है ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ यह तो चित्रा पृथ्वीके नीचे अधोलोककी ऊंचाई बतलाई और चित्रा पृथ्वीसे ऊपर दूसरे ईशान स्वर्गतक लोककी ऊंचाई डेढ राजू है। चौथे माहेंद्र स्वर्गपर्यंत तीन राजू, कापिष्ठनामक आठवें स्वर्गके अंततक चार राजू बारहवें स्वर्ग सहस्रारके अंततक पांच राजू पंद्रहवें आरण और सोलहवें अच्युत स्वर्गतक छह राजू और लोकके अंततक सात राजू है इसप्रकार सब मिलकर चौदह राजू ऊंचाई होती है ॥ १४–१५–१६ ॥

दूसरे नरकका अंत चित्रा पृथ्वीसे एक राजू नीचा है और वहां लोकका विस्तार एक राजू और एक राजूके सातभागोंमेंसे छह भाग है ॥ १७ ॥ तीसरे नरकका अंत चित्रा पृथ्वीके नीचले भागसे दो राजू नीचा है और वहांके लोकका विस्तार दो राजू और एकराजूके सातभागोंमें पांच भाग है। चौथे नरकका अंत चित्रा पृथ्वीके नीचले भागसे तीन राजू नीचा है और वहां लोकका विस्तार तीन राजू और एक राजूके सातभागोंमें चारभाग है ॥ १८ ॥ पांचवें नरकका अंत चित्रा पृथ्वीसे चार राजू नीचा है और वहां लोकका विस्तार चार राजू और एक राजूके सातभागोंमें तीन-भाग है छठे नरकका अंतिमभाग चित्राभूमिके नीचलेभागसे पांच राजू है और वहांके लोकका विस्तार पांच राजू और एक राजूके सातभागोंमेंसे दोभाग है ॥१९॥ सातवीं पृथ्वीका अंत चित्राभूमिसे छै राजू नीचा है वहां लोकका विस्तार छै राजू और एक राजूके सात भागोंमें एक भाग है एवं पाताल लोकका अंत चित्रापृथ्वीसे सात राजू नीचा है और वहां लोकका विस्तार केवल सात राजू है यह सब अधोलोकका विस्तार है ॥ २० ॥

चित्रा पृथ्वीसे दूसरे ईशान स्वर्गतक उंचाई डेढ राजू है और वहां लोकका विस्तार दो राजू और एक राजूके सातभागोंमें पांच भाग है ॥ २१ ॥ ईशान स्वर्गके शिखरसे चौथा माहेंद्र स्वर्ग डेढ राजू ऊंचा है और वहांके लोकका विस्तार चार राजू और एक राजूके सातभागमें तीनभाग है ॥ ३२ ॥ चौथे स्वर्गसे ब्रह्मोत्तर नामक छठे स्वर्गकी उंचाई आधीराजू है और वहां लोकका विस्तार पांच राजू है ॥ २३ ॥ छठे स्वर्गसे आठवें कापिष्ठ स्वर्गकी उंचाई आधी राजू है और वहां लोकका विस्तार चार राजू और एक राजूके सातभागोंमें तीनभाग है ॥ २४ ॥ आठवें स्वर्गसे दशवें महा-शुक्रस्वर्गकी ऊंचाई आधी राजू है और वहां लोकका विस्तार तीन राजू और एक राजूके सातभागोंमें छै भाग है ॥ २५ ॥ दशवें स्वर्गकी शिखरसे बारहवें सहस्रार स्वर्गपर्यंत ऊंचाई आधी राजू है और वहां लोकका विस्तार तीन राजू और एक राजूके सातभागोंमें दो भाग है ॥ २६ ॥ बारहवें स्वर्गसे चौदहवें प्राणतस्वर्गपर्यंत ऊंचाई आधी राजू है और वहांके लोकका विस्तार दो राजू और एक राजूके सातभागोंमें पांच भाग है चौदहवें स्वर्गसे सोलहवें अच्युत स्वर्गतक ऊंचाई आधी राजू है और वहांके लोकका विस्तार दोराजू और एक राजूके सातभागमें एकभाग है। और सोल-हवें स्वर्गसे सिद्धक्षेत्र पर्यंत लोककी ऊंचाई एक राजू है और वहां लोकका विस्तार भी एक राजू है। इसप्रकार समस्तलोकका पूर्व पश्चिम विस्तार बतला दिया गया और दक्षिण उत्तरमें तो विस्तार सात राजूही है ॥ २७-२८ ॥

तीनोलोकोंमें अधोलोकतो पुरुषकी जंघा और नितंबके समान है मध्यलोक कटि

(कमर) सदृश है चौथे माहेंद्र स्वर्गका अंत नाभि समान है ब्रह्म ब्रह्मोत्तरनामक पांचवें और छठे स्वर्ग छाती समान हैं तेरहवें और चौदहवें स्वर्ग भुजासमान पंद्रहवें और सोलहवें स्वर्ग कंधेके सदृश हैं नोग्रैवेयक ग्रीवाके तुल्य है नौ अनुदिश ठोडीके समान है पंच अनुत्तर विमान मुखके समान हैं और सिद्धक्षेत्र ललाटके समान है इसप्रकार जहांपर सिद्ध विराजते हैं ऐसे आकाशके प्रदेशस्वरूप विस्तीर्ण मस्तकका धारक समस्त जीवादि पदार्थोंसे भराहुआ एवं अकृत्रिम यह लोक है ॥ २९-३२ ॥ इस लोकको घनोदधि घनवात और तनुवात ये तीनप्रकारके वातवलय सदावेष्टित किये रहते हैं ॥ ३३ ॥ आदिका घनोदधिवलय गोमूत्रके वर्णके समान है दूसरा घनवात मूंगके वर्णके समान है और तीसरा तनुवातवलय अनेक वर्णका है ॥३४॥ ये तीनोंही प्रकारके वातवलय दंडाकार लंबे हैं पुष्ट हैं लोकके ऊपर नीचे चारोओर वेष्टित हैं चंचल हैं एवं लोकके अंततक हैं ॥ ३५ ॥ लोकके अधोभागमें तो इनतीनोंमें हरएक वातवलयका विस्तार वीस २ हजार योजनका है और लोकके अंतमें तीनों वातवलयोंका विस्तार कुछकम एक योजनका है ॥ ३६ ॥ ये तीनों वातवलय जिससमय दंडाकार नहिं रहते उससमय अधोलोकमें घनोदधिका विस्तार सात योजन, घनवातका पांच योजन और तनुवातका चार योजन होजाता है ॥ ३७ ॥ मध्यलोकमें प्रदेशोंकी हानिसे घनोदधिवलयका विस्तार पांच योजन घनवातका चार और तनुवातका तीन रहजाता है॥३७॥ पुनः प्रदेशोंकी वृद्धिसे ब्रह्मब्रह्मोत्तरनामक पांचवें छठे स्वर्गके अंतमें घनोदधिका विस्तार सात योजन घनवातका पांच और तनुवातका चार योजनका होजाता है ॥३९॥ और छठवें स्वर्गसे मोक्षके अंततक प्रदेशोंकी न्यूनतासे घनोदधिका विस्तार पांच, घनवातका चार और तनुवातका तीन योजनका रहजाता है ॥ ४० ॥ लोकके अंतमें घनोदधिकी मुटाई आधायोजन, घनवातकी पांचयोजन, तनुवातकी उससे कुछ कम है ॥ ४१ ॥ तीनों वातवलयोंसे वेष्टित यह लोकाकाश ऐसा जान पडता है मानो अलोकाकाशरूपी शत्रुके जीतनेके लिये कवच वेष्टित सामंत हो ॥ ४२ ॥

नरककी पहिली पृथ्वी रत्नप्रभा दूसरी शर्करप्रभा तीसरी वालुकाप्रभा चौथी पंकप्रभा पांचवीं धूमप्रभा छठी तमःप्रभा और सातवीं महातमप्रभा है। ये सातो पृथ्वी तीनों वातवलयोंसे वेष्टित हैं और एक दूसरीके नीचे हैं ॥ ४३-४५ इन भूमियोंके रूढीनाम घर्मा वंशा मेघा अंजना अरिष्टा मघवी और माघवी भी हैं ॥ ४६ ॥ पहिली रत्नप्रभा पृथ्वीके खरभाग, पंकभाग और वहुलभाग ये तीन भाग हैं इन तीनोंकी मुटाई मिलकर एकलाख अस्सी हजार योजन है॥४७॥ जुदीरीतिसे खरभागकी मुटाई सोलहहजार पंकभागकी चौरासीहजार और वहुलभागकी भी चौरासी हजार है॥ ४८-४९ ॥ रत्नप्रभाके पंकवहुलभागके दोभाग हैं उनमें प्रथमभागमें राक्षसोंके और दूसरेमें असुरकु-

मारोंके घर हैं और वे देदीप्यमान रत्नोंके बने हैं ॥ ५० ॥ खर भागमें अतिशय देदीप्यमान, स्वाभाविक प्रभाके धारक नागकुमार आदि नौ भवनवासियोंके अनेक घर हैं ॥ ५१ ॥ इसके—चित्रा वज्रा वैडूर्य लोहितांक मसारगल्व गोमेद प्रवाल ज्योती रस अंजन अंजनमूल अंग स्फटिक चंद्राभ वर्चष्क एवं वहुशिलामय ये सोलह पटल हैं ॥ ५२—५४ ॥ इनमें हरएककी मुटाई एक एक हजार योजनकी है। और इन सोलह पटलस्वरूप ही खरभाग है ॥ ५५ ॥ रत्नप्रभा पृथ्वीके पंकबहुलभागसे शर्कराप्रभा आदि छह भूमियोंका आपसमें अंतर अपनी अपनी मुटाई छोडकर एक एक राजूका है अर्थात्—चित्रापृथ्वीके अधोभागसे दूसरे नरकका अंतर एक राजू है दूसरेसे एक राजू तीसरेका, तीसरेसे एक राजू चौथेका, चौथेसे एकराजू पांचवेका, पांचवेसे एकराजू छठेका और छठेसे एकराजू सातवेंका है। इस प्रकार छै राजुओंमें तो नरक हैं और सातवें नरकसे एकराजूमें पाताल है ॥ ५६ ॥ दूसरी पृथ्वीकी मुटाई बत्तीस हजार योजन, तीसरीकी अट्ठाईस हजार, चौथी की चौबीस हजार, पांचवीं की बीस हजार, छठी की सोलह हजार और सातवींकी आठ हजार योजन है ॥ ५७—५८ ॥

प्रथम नरकमें असुरकुमार आदि भवनवासियोंके भवनोंकी संख्या इसप्रकार है-असुरकमारोंके चौसठलाख (६४००००००), नागकुमारोंके चौरासीलाख (८४०००००), गरुडकुमारोंके वहत्तरलाख (७२०००००) द्वीपकुमार उदधिकुमार मेघकुमार दिक्कुमार अग्निकुमार एवं विद्युतकुमार इन छै कुमारोंके छहत्तरलाख (७६०००००) और वायुकुमारोंके छयानवे लाख हैं। एवं हर एक भवनमें एक एक चैत्यालय है ॥ ५९ ॥ ६१ ॥ अधोलोकमें भतोंके घर चौदहहजार (१४०००) हैं और राक्षसोंके सोलह हजार हैं ॥ ६२ ॥ मणि और सूर्य समान देदीप्यमान पाताललोकमें असुरकुमार नागकुमार सुपर्णकुमार द्वीपकुमार उदधिकुमार स्तनितकुमार विद्युत्कुमार दिक्कुमार अग्निकुमार और वायुकुमार ये दशप्रकारके भवनवासी देव यथायोग्य अपने अपने स्थानोंपर रहते हैं ॥ ६३—६५ ॥ इनमें असुरकुमारोंकी उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक एक सागर है नागकुमारोंकी तीनपल्य, सुपर्णकुमारोंकी ढाई पल्य, द्वीपकुमारोंकी दो पल्य, और उदधिकुमार मेघकुमार विद्युत्कुमार अग्निकुमार दिक्कुमार और वायुकुमार इन छै कुमारोंकी उत्कृष्ट आयु डेढ पल्य है ॥ ६६—६७ ॥ असुरकुमारोंके शरीरकी स्वाभाविक ऊंचाई पच्चीस धनुष है और इनसे अतिरिक्त नो भवनवासी और आठ प्रकारके व्यंतरोंके शरीरकी ऊंचाई दश धनुष एवं ज्योतिषी देवोंके शरीरकी ऊंचाई सात धनुष है ॥ ६८ ॥ सौधर्म और ईशान स्वर्गके देवोंका शरीर सात हाथ ऊंचा है और आगे कम होता होता सर्वार्थसिद्धिके देवोंका शरीर एक हाथ का है अर्थात् तीसरे

१ इसमें असुर कुमार नहिं रहते।

चौथे स्वर्गमें छै हाथ, पांचवें छठे सातवें आठवेंमें पांच, नवमें दशवें ग्यारहवें और वारहवेंमें चार, तेरहवें और चौदहवेंमें साढेतीन हाथ, पंद्रहवें और सोलहवेंमें तीन, पहिले तीन ग्रैवेयकोंमें ढाई हाथ, दूसरे तीन ग्रैवेयकोंमें दो हाथ, तीसरे तीन ग्रैवेयकोंमें दो हाथ, नौ अनुदिशोंमें सवा हाथ और पांच अनुत्तरोंमें एक हाथका है ॥ ६९ ॥

घर्मा पृथ्वीके अब्बहुलभागमें ऊपर नीचे एक एक हजार योजन छोडकर विले हैं और यही क्रम अन्य भूमियोंमें भी समझ लेना चाहिये लेकिन सातवीं पृथ्वीमें पैंतीसकोशमें विले हैं और वे उसके मध्यभागमें हैं ॥ ७०–७२ ॥ पहिली पृथ्वीमें तीसलाख[३००००००], दूसरीमें पचीसलाख[२५०००००], तीसरीमें पंद्रहलाख[१५०००००], चौथीमें दशलाख[१०००००९], पांचवीमें तीनलाख[३०००००], छठीमें पांचकम एकलाख[९९९९५] और सांतवीमें पांच विले हैं और सातो पृथ्वीके सव मिलकर विले चौरासीलाख[८४०००००] होते हैं ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ प्रथमभूमिमें तेरह पाथडे (प्रस्तार) हैं दूसरीमें ग्यारह, तीसरीमें नौ, चौथीमें सात, पांचवीमें पांच, छठीमें तीन और सातवीमें एक है ॥ ७५ ॥ पहिली भूमिके तेरह पाथड़ोंके नाम–सीमंतक १ नारक २ रौरुक (रौरव) ३ भ्रांत ४ उद्भ्रांत ५ संभ्रांत ६ असंभ्रांत ७ विभ्रांत ८ त्रस्त ९ त्रसित १० वक्रांत ११ अवक्रांत १२ और विक्रांत १३ हैं ॥ ७६–७७ ॥ दूसरी पृथ्वीके ग्यारह पाथड़ोंके नाम स्तरक १ स्तनक २ मनक ३ वनक ४ घाट ५ संघाट ६ जिह्वा ७ जिह्विक ८ लोल ९ लोलुप १० और ११ स्तनलोलुप हैं ॥ ७८–७९ ॥ तीसरी पृथ्वीके नौ प्रस्तारोंके नाम–तप्त १ तपित २ तपन ३ तापन ४ निदाघ ५ प्रज्वलित ६ उज्ज्वलित ७ संज्वलित ८ और ९ संप्रज्वलित हैं ॥ ८०–८१ ॥ आर १ तार २ मार ३ वर्चष्क ४ स्तमक ५ खड ६ खडखड ७ ये सात प्रस्तार चौथी पृथ्वीमें हैं। पांचवी पृथ्वीमें तम १ भ्रम २ झष ३ अंध ४ और तमिस्र ५ ये पांच हैं ॥ ८२–८३ ॥ छठी पृथ्वीके तीन प्रस्तारोंके नाम, हिम, वर्द्दल और लल्लक हैं। सातवीं पृथ्वीमें केवल अप्रतिष्ठान नामक ही पाथडा है इसप्रकार ये सब मिलकर ४९ पाथडे होते हैं अर्थात् नीचे दो दो कम और ऊपर दो दो बढते चले जाते हैं ॥ ८४–८५ ॥ सीमंतक पाथडेके चारो दिशामें हरएकमें उनचास २ विले हैं और वे श्रेणीवद्ध एवं वडे २ फासलेसे हैं ॥ ८६ ॥ सीमंतककी विदिशाओंमें हरएकमें अडतालीस २ विले हैं ये भी सव श्रेणीवद्ध हैं तथा इनसे जुदे प्रकीर्णक विले भी वहां बहुतसे हैं ॥ ८७ ॥ सीमंतक आदि प्रस्तारोंमें नीचे २ एक २ विल कम है इसलिये सातवें नरकके अप्रतिष्ठान नामक पाथडेमें केवल चारही विले हैं और वहां श्रेणीवद्ध तथा प्रकीर्णक विले नहि हैं ॥ ८८ ॥ इसप्रकार मिलकर चारो दिशाओंके एकसो छ्यानवे[१९६] और विदिशाओंके एकसो वानवे[१९२] सव मिलाकर सीमंतक पाथडेमें तीनसो अठासी[३८८] विले हैं। ॥ ८९ ॥ दूसरे नारक पाथडेमें हरएक दिशामें अडतालीस २ मिलकर चारो दिशाओंमें

एकसो वानवे और हरएक विदिशामें सैंतालीस २ मिलकर चारो विदिशाओंमें एकसो अँठासी इसप्रकार सब मिलकर तीनसो अँस्सी हैं ॥ ९० ॥ तीसरे रौरुकमें हर एक दिशामें सैंतालीस २ मिलकर चारो दिशाओंमें एकसो अँठासी और प्रत्येक विदिशामें छँयालीस २ मिलकर चारो विदिशाओंमें एकसो चौरासी एवं दिशा विदिशाके मिलकर तीनसो वहत्तर विले हैं ॥ ९१ ॥ चौथे पाथडेमें हर एक दिशामें छयालीस २ मिलकर चारों दिशाओंमें एकसौ चौरासी और हरएक विदिशामें पैंतालीस २ मिलकर चारों विदिशाओंमें एकसो अँस्सी इसप्रकार सब मिलकर तीनसौ चौसठ विले हैं। ॥ ९२ ॥ पांचवें उद्भ्रांत पाथडेमें हरएक दिशामें पैंतालीस २ मिलकर चारो दिशाओंमें एकसौ अँस्सी और हरएक विदिशामें चवालीस २ मिलकर चारो विदिशाओंमें एकसो छहत्तर इसप्रकार सब मिलकर तीनसो छप्पन विले हैं ॥ ९३ ॥ छठे संभ्रांत पाथडेमें प्रत्येक दिशामें चवालीस २ मिलकर चारो दिशाओंमें एकसौ छँहत्तर और हरएक विदिशामें तेतालीस २, मिलकर चारोमें एकसौ वहत्तर इसप्रकार सब मिलकर तीनसौ अडतालीस विले हैं ॥ ९४ ॥ सातवें असंभ्रांत पाथडेमें हरएक दिशामें तेतालीस तेतालीस, मिलकर चारो दिशाओंमें एकसो बहत्तर और हरएक विदिशामें व्यालीस २ मिलकर चारों विदिशाओंमें एकसौ अडसठ इसप्रकार सब विले तीनसौ चालीस हैं। ॥ ९५ ॥ आठवें विभ्रांत पाथडेमें हरएक दिशामें व्यालीस २ मिलकर चारों दिशाओंमें एकसौ अडसठ और हरएक विदिशामें ईकतालीस २ मिलकर चारो विदिशाओंमें एकसौ चौसठ इसप्रकार सब मिलकर तीनसौ वत्तीस विले हैं ॥ ९६ ॥ नवमे त्रस्त पाथडेमें हर एक दिशामें इकतालीस २ मिलकर एकसौ चौसठ और हरएक विदिशामें चालीस २ मिलकर एकसौ साठ इसप्रकार सब मिलकर तीनसौ चौवीस हैं ॥ ९७ ॥ दशवें त्रसित पाथडेमें हरएक दिशामें चालीस २ मिलकर चारो दिशाओंमें एकसो साठ और हरएक विदिशामें उनतालीस २ मिलकर चारो विदिशाओंमें एकसो छप्पन इसप्रकार सब मिलकर तीनसौ सोलह हैं ॥ ९८ ॥ ग्यारहवें वक्रांत पाथडेमें हरएक दिशामें उनतालीस २, मिलकर चारो दिशाओंमें एकसो छप्पन और प्रत्येक विदिशामें अडतीस २ मिलकर चारो विदिशाओंमें एकसो वावन इसप्रकार सब मिलकर तीनसो आठ विले हैं ॥ ९९ ॥ वारहवें अवक्रांत पाथडेमें हरएक दिशामें अडतीस २ मिलकर चारोदिशाओंमें एकसो वावन, हरएक विदिशामें संतीस २ मिलकर चारो विदिशाओंमें एकसो अडतालीस इसप्रकार सब मिलकर तीनसो विले हैं ॥ १०० ॥ तेरहवें विक्रांत प्रस्तारमें हरएक दिशामें सैंतीस २ मिलकर चारो दिशाओंमें एकसौ अडतालीस और प्रत्येक विदिशामें छत्तीस २ मिलकर विदिशाओंमें एकसौ चवालीस एवं सब मिलकर दोसौ वानवे विले हैं ये सब विले श्रेणीवद्ध हैं और सब मिलकर चार

हजार चारसौ वीस हैं उपर्युक्त तेरह पाथडोंमें हरएकमें एक २ इंद्रक विलाभी है इसरीतिसे तेरह पाथडोंमें तेरह इंद्रकविले और चार हजार चारसो वीस श्रेणीवद्ध विले सव मिलकर चारहजार चारसो तेतीस होते हैं ॥ १०१-१०३ ॥ तथा उनतीस लाख पचानवे हजार पांचसो सडसठ प्रकीर्णक विले हैं इसप्रकार सब जुडकर प्रथम नरकमें तीसलाख विले हैं ॥ १०४ ॥

दूसरे नरकके ग्यारह पाथडे वतला आये हैं उनमें पहिले नरक पाथडेमें चारों दिशाओंके मिलकर एकसो चवालीस और चारो विदिशाओंमें एकसो चालीस सब मिलकर दोसो चौरासी विले हैं ॥ १०५ ॥ दूसरे स्तनक पाथडेमें सव विले दोसो छहत्तर हैं उनमें एकसो चालीस तो मिलकर चारो दिशाओंमें हैं और एकसो छत्तीस चारो विदिशाओंमें है ॥१०६॥ तीसरे मनक पाथडेमें चारो दिशाओंमें मिलकर एकसो छत्तीस, और चारो विदिशाओंमें एकसो वत्तीस, इसप्रकार सब मिलकर दोसो अडसठ विले हैं ॥ १०७ ॥ चौथे वनक पाथडेमें एकसो बत्तीस तो चारो दिशाओंमें और एकसो अट्ठाईस चारो विदिशाओंमें इसप्रकार सब मिलकर दो सो साठ हैं। ॥ १०८ ॥ पांचवे घाट पाथडेमें एकसो अठाईस चारो दिशाओंमें एकसो चौवीस चारो विदिशाओंमें इसप्रकार सब मिलकर दोसो बावन हैं ॥ १०९ ॥ छठे संघाट पाथडेमें मिलकर सब विले दोसो चवालीस हैं उनमें एकसो चौवीस तो चार दिशाओंमें हैं और एकसो वीस चारो विदिशाओंमें हैं ॥ ११० ॥ सातवें जिह्व पाथडेमें चारो दिशाओंमें एकसो वीस और चारो विदिशाओंमें एकसो सोलह इसप्रकार सब मिलकर दोसो छत्तीस हैं ॥ १११ ॥ आठवें जिह्वक पाथडेमें दोसो अट्ठाईस विले हैं उनमें एकसो सोलह तो दिशाओंमें हैं और एकसो वारह विदिशाओंमें हैं ॥ ११२ ॥ नववें लोल पाथडेमें चारो दिशाओंमें एकसो बारह और चारों विदिशाओंमें एकसो आठ इसप्रकार सब मिलकर दोसो वीस हैं ॥ ११३ ॥ दशवें लोलुप पाथडेमें सब विले दोसौ वारह हैं उनमें एकसो आठ तो चारो दिशाओंमें हैं और एकसो चार चारो विदिशाओंमें हैं ॥ ११४ ॥ ग्यारहवें स्तनलोलुप पाथडेमें-चारो दिशाओं में एकसो चार, विदिशाओंमें सौ इसप्रकार दोसो चार विले हैं ॥११५॥ इसप्रकार ये श्रेणीवद्ध विले दो हजार छहसो चौरासी होते हैं। तथा इन ग्यारह पाथडोंमें एक २ इंद्रक विला है इसलिये ग्यारह इंद्रक और दो हजार छैसो चौरासी श्रेणीबद्ध विले सब मिलकर दो हजार छहसो पचानवे होते हैं और फुटकर विले चौवीसलाख सतानवे हजार तीनसो पांच हैं इसरीतिसे दूसरे नरकमें मिलकर सब विले पचीस लाख हैं ॥११६-११७॥

तीसरे नरकमें तप्त आदि नौ प्रस्तार कह आये हैं उनमें पहिले तप्त पाथडेमें एकसो छयानवे विले हैं उनमें सौ तौ चारो दिशाओंमें हैं और छयानवे चारो विदिशा-

ओंमें हैं ।११८। दूसरे तपित पाथडेमें चारो दिशाओंमें छयानवे और चारो विदिशाओंमें बानवे इसप्रकार सब मिलकर एकसौ अंठासी विले हैं ॥ ११९ ॥ तीसरे तपन पाथडेमें एकसो अस्सी विले हैं उनमें बानवे तौ चारो दिशाओंमें हैं और अठासी चारो विदिशाओंमें हैं ॥ १२० ॥ चौथे तापन पाथडेमें चारो दिशाओंमें अठासी और चारो विदिशाओंमें चौरासी इसप्रकार सब मिलकर एकसो बहत्तर विले हैं ॥ १२१ ॥ पांचवें निदाघ पाथडेमें एकसो चौसठ विले हैं उनमें चारो दिशाओंमें तो चौरासी हैं और चारो विदिशाओंमें अस्सी हैं ॥ १२२ ॥ छठे प्रज्वलित पाथडेमें चारो दिशाओंमें अस्सी और चारो विदिशाओंमें छिहत्तर इसप्रकार सब मिलकर एकसो छप्पन विले हैं ॥ १२३ ॥ सातवें उज्ज्वलित पाथडेमें एकसो अडतालीस हैं उनमें छहत्तर तो चारो दिशाओंमें हैं और बहत्तर चारो विदिशाओंमें हैं ॥ १२४ ॥ आठवें संज्वलित पाथडेमें एकसौ चालीस हैं उनमें चारों दिशाओंमें मिलकर बहत्तर है और चारो विदिशाओंमें अडसठ हैं ॥ १२५ ॥ नववें संप्रज्वलित पाथडेमें सब मिलकर एकसो बत्तीस विले हैं उनमें अडसठ तो चारो दिशाओंमें है और चौसठ चारो विदिशाओंमें हैं ॥ १२६ ॥ ये सब श्रेणीवद्ध विले चौदहसौ छहत्तर हैं तथा इन नौ पाथडोंमें—हरएकमें एक २ इंद्रक विला है इसलिये कुल विले चौदहसौ छहत्तरमें नौ जोडनेपर चौदहसौ पिचासी होते हैं तथा इस नरकमें चौदहलाख अठानवे हजार पांचसौ पंद्रह प्रकीर्णक हैं इसरीतिसे सब मिलकर तीसरे नरकमें पंद्रहलाख विले हैं ॥ १२७–१२८ ॥

चौथे नरकमें सात पाथडे कह आये हैं उनमें पहिले आर पाथड़ेमें एकसौ चौवीस विले हैं औरवे चारो दिशाओंमें मिलकर चौसठ और चारो विदिशाओंमें साठ हैं॥ १२९ ॥ दूसरे तार पाथड़ेमें चारो दिशाओंमें साठ और चारो विदिशाओंमें छप्पन इसप्रकार सब मिलकर एकसो सोलह हैं॥ १३० ॥ तीसरे मार पाथड़ेमें एकसौ आठ विलेहैं उनमें छप्पन तो चारो दिशाओंमें है और बावन चारो विदिशाओंमें हैं॥१३१॥ चौथे वर्चष्क पाथडेमें सौ विले हैं तथा वे चारो दिशाओंमें बावन और चारो विदिशाओंमें अडतालीस इसप्रकार हैं ॥१३२॥ पांचवें तमक पाथडेमें चारो दिशाओंमें मिलकर अड़तालीस और चारो विदिशाओंमें चवालीस इसप्रकार बानवे विले हैं॥ १३३ ॥ छठे खड़ पाथड़े में चौरासी विले हैं उनमें चारो दिशाओंमें मिलकर चवालीस और चारो विदिशाओंमें मिलकर चालीस हैं ॥ १३४ ॥ सातवें खडखड पाथडेमें छिहत्तर विले हैं उनमें चालीस तो चारो दिशाओंमें हैं और छत्तीस चारो विदिशाओंमें हैं॥१३५॥ ये समस्त विले श्रेणीवद्ध और सब सातसौ हैं तथा इन सातो पाथडोंमें एक २ इंद्रक विल है इसलिये सात और सातसौ मिलकर सब सातसौ सात विल होते हैं एवं फुटकर विल नौ लाख निन्यानवे हजार दोसौ तिरानवे हैं इसरीतिसे सब मिलकर चौथे नरकमें दश लाख विले हैं ॥१३६–१३७॥

पांचवें नरकमें पांच पाथडे वतला आये हैं उनमें प्रथम तम पाथडेमें सब मिलकर अडसठ विलेहैं उनमें छत्तीस तो चारो दिशाओंमें हैं और बत्तीस चारो विदिशाओंमें हैं ॥ १३८ ॥ दूसरे भ्रम पाथडेमें चारो दिशाओंमें बत्तीस, चारो विदिशाओंमें अट्ठाईस इसप्रकार सब मिलकर साठ हैं ॥ १३९ ॥ तीसरे झष पाथडेमें सब विले मिलकर बावन हैं उनमें अट्ठाईस तो चारो दिशाओंमें हैं और चौवीस चारो विदिशाओं-में हैं ॥ १४० ॥ चारो दिशाओंमें चौवीस और चारो विदिशाओंमें बीस इसप्रकार सब मिलकर चौथे अंध पाथडेमें चवालीस विले हैं ॥ १४१ ॥ पांचवें तमिस्र पाथडेमें सब विले मिलकर छत्तीस हैं उनमें वीस विले तो चारो दिशाओंमें है और सोलह विदिशाओंमें हैं ॥ १४२ ॥ ये भी सब विले श्रेणीवद्ध हैं और दो सौ साठ हैं इन पांचो पाथडोंमें—हर एक पाथडेमें एक एक इंद्रक विलाभी है इसलिये दो सौ साठ और पांच मिलकर दो सौ पैंसठ विले हैं तथा दो लाख निन्यानवे हजार सातसौ पैंतीस फुटकर विले हैं । इस रीतिसे इस नरकमें सब मिलकर विले तीन लाख हैं ॥ १४३–१४४ ॥

छठे नरकमें तीन पाथडे बतला आये हैं उनमें पहिले हिम पाथडेमें सब विले मिलकर अट्ठाईस हैं सोलह तो दिशाओंमें हैं और बारह विदिशाओंमें हैं ॥१४५॥ दूसरे वर्दल पाथडेमें चारो दिशाओंमें बारह और आठ चार विदिशाओंमें इसप्रकार सब मिल कर बीस विले हैं ॥ १४६ ॥ तीसरे लल्लक पाथडेमें बारह विलेहैं और वे आठ तो चारो दिशाओंमें हैं और चार चारो विदिशाओंमें हैं ॥ १ ७ ॥ इसप्रकार तीनों पाथडोंमें तीन इंद्रक और साठ ये श्रेणीवद्ध मिलकर त्रेसठ विलेहैं । तथा निन्यानवे हजार नौ सौ वत्तीस फुटकर विले हैं इसरीतिसे छठे नरकमें सब विले मिलकर पांच कम एक लाखहैं ॥१४८–१४९ ॥

सातवें नरकमें अप्रतिष्ठान नामक एक पाथडा बतला आये हैं उसमें चारो दिशाओंमें चार और पांचवा इंद्रक इसप्रकार सब मिलकर पांच विले हैं विदिशाओंमें एकभी विल नहीं है ॥ १५० ॥ प्रथम नरकके सीमंतक प्रस्तारमें जो इंद्रक विला है उसका नामभी सीमंतक है । उस सीमंतक इंद्रककी पूर्वदिशामें कांक्ष पश्चिमदिशामें महाकांक्ष दक्षिणदिशामें पिपास और उत्तरदिशामें अतिपिपास नामक प्रसिद्ध चार महानरक हैं और ये चारोही नरक दुष्ट नारकियोंसे व्याप्त हैं ॥ १५१–१५२ ॥ दूसरे नरकके प्रथम-प्रस्तार तरकके इंद्रकका भी नाम तरक है और उसकी पूर्वदिशामें अनिच्छ, पश्चिममें महानिच्छ दक्षिणमें विंध्य एवं उत्तरमें महाविंध्य ये चार नरक हैं ॥ १५३ ॥ तीसरे नरकके प्रथम पाथडे तप्तमें रहने वाले तप्त इंद्रक की पूर्वदिशामें दुःख पश्चिममें महादुःख दक्षिणमें वेदना, और उत्तरमे महावेदना ये चार नरक हैं ॥१५४॥ चौथे नरकके प्रथम पाथडे आरमें रहनेवाले आर इंद्रककी पूर्व दिशामें निसृष्ट पश्चिममे अतिनिसृष्ट, दक्षिण

में निरोध, उत्तरमें अतिनिरोध ये चार नरक हैं ॥ १५५ ॥ तथा पांचवे नरकके प्रथम पाथडे तममें रहनेवाले तम इंद्रककी पूर्वदिशामें निरुद्ध पश्चिममें अतिनिरुद्ध दक्षिणमें विमर्दन उत्तरमें महाविमर्दन ये चार नरक हैं ॥ १५६ ॥ छठे मघवा नरकके हिमनामक पाथडेमें रहनेवाले हिम इंद्रककी पूर्वदिशामें नील पश्चिममें महानील दक्षिणमें पंक उत्तरमें महापंक ये चार नरक हैं ॥ १५७ ॥ सातवें नरकके अप्रतिष्ठान पाथडेमें अप्रतिष्ठान इंद्रककी पूर्वदिशामें काल पश्चिममें महाकाल दक्षिणमें रौरव और उत्तरमें महा रौरव ये चार नरक हैं ॥ १५८ ॥ इसप्रकार तिरासीलाख नव्वेहजार तीनसौ सैंतालीस फुटकर विले छ्यानवेसौ त्रेपन श्रेणीवद्ध विले और उनचास इंद्रक विले, सब मिलकर सातो नरकोंमें चौरासी लाख विले हैं ॥ १५९-१६० ॥

प्रथम नरकके तीसलाख विलोंमें छैलाख विले तो संख्यात योजन विस्तारवाले हैं और चौवीसलाख असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं ॥ १६१ ॥ दूसरे नरकमें पचीसलाख विले कहे हैं उनमें पांच लाख विलोंका विस्तार संख्यात योजन है और वीसलाख विलोंका विस्तार असंख्यात योजन है ॥१६२॥ तीसरे नरकके विले पंद्रहलाख है उनमें तीनलाख विले तो संख्यात योजन विस्तारवाले हैं और वारहलाख असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं ॥१६३॥ चौथे नरकमें दशलाख विले वतलाये हैं उनमें दोलाख विलोंका विस्तार असंख्यात योजन है और आठलाख विलोंका विस्तार असंख्यात योजन है ॥१६४॥ पांचवें नरकमें तीनलाख विले हैं उनमें साठ हजार विले तो संख्यात योजन विस्तारवाले हैं और दोलाख चालीस हजार असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं ॥१६५॥ छठे नरकमें पांचकम एकलाख विले कहे हैं उनमें उन्नीस हजार नौसौ निन्यानवे विलोंका विस्तार तो संख्यात योजनका है और असंख्यातयोजन विस्तार उनासी हजार नौसौ छ्यानवेका है ॥ १६५-१६७ ॥ सातवें नरकमें पांच विले हैं उनमे एकका विस्तार तो संख्यात योजन है और चारका असंख्यात २ योजन है ॥१६८॥ उपर्युक्त विलोंमें समस्त इंद्रक विलोंका विस्तार तो संख्यात योजन है समस्त श्रेणीवद्ध विलोंका विस्तार असंख्यात योजन है परंतु प्रकीर्णक विलोंमें अनेक संख्यात योजन विस्तारवाले और अनेक असंख्यात योजन विस्तारवाले ऐसे दोनों प्रकारके हैं ॥ १६९-१७० ॥

पहिले जो उनचास इंद्रकविले बतला आये हैं अब यहां उनके विस्तारका वर्णन करते हैं—प्रथम सीमंतक इंद्रकका विस्तार पैंतालीस लाख योजनका है ॥ १७१ ॥ दूसरे नारक इंद्रकका विस्तार चवालीसलाख अठहजार तीनसो तेतीस और एक योजनके तीनभागोंमें एक भाग है ॥ १७२ ॥ तीसरे रौरुक इंद्रकका विस्तार तेतालीस लाख सोलहहजार छैसो छ्यासठ और एक योजनके तीनभागोंमें दो भाग है ॥१७३॥ चौथे भ्रांत नामक इंद्रकका विस्तार वियालीस लाख पचीस हजार है ॥ १७४ ॥

पांचवां उद्भ्रांत इंद्रक इकतालीस लाख तेतीस हजार तीनसो तेतीस योजन और एक योजनके तीनभागोंमें एकभाग विस्तारवाला है ॥ १७५ ॥ छठे संभ्रांत इंद्रकका विस्तार चालीसलाख इकतालीस हजार छैसो छयासठ योजन और एक योजनके तीन भागोंमें दोभाग है ॥ १७६ ॥ सातवें असंभ्रात इंद्रकका चौतर्फा विस्तार उनतालीस लाख पचास हजार योजन है ॥ १७७ ॥ आठवें विभ्रांत इंद्रकका विस्तार अडतीस लाख अठावन हजार तीनसो तेतीस योजन और एक योजनके तीन भागोंमे एक भाग है ॥ १७८ ॥ नववें त्रस्त इंद्रकका विस्तार सैंतीसलाख छयासठ हजार छैसो छयासठ और एक योजनके तीनभागोंमें दोभाग है ॥ १७९ ॥ दशवां त्रसित इंद्रक छत्तीस लाख पचहत्तर हजार योजन विस्तारवाला है ॥ १८० ॥ ग्यारहवें वक्रांत इंद्रकका विस्तार पैंतीस लाख तिरासी हजार तीनसो तेतीस और एक योजनके तीनभागोंमें एकभाग है ॥ १८१ ॥ बारहवे अवक्रांत इंद्रकका विस्तार चौतीसलाख इकानवे हजार छैसो छयासठ योजन और एकयोजनके तीनभागोंमें दोभाग है ॥ १८२ ॥ और तेरहवे विक्रांत इंद्रकका विस्तार केवल चौतीस लाख योजनका है ॥१८३॥ इस प्रकार प्रथम नरकके इंद्रकोंका विस्तार बतला दिया गया अब द्वितीय नरकके ग्यारह इंद्रकों का विस्तार बतलाते हैं—

द्वितीय नरकके पहिले स्तरक इंद्रकका विस्तार तेतीसलाख आठ हजार तीनसो तेतीस योजन और एक योजनके तीनभागोंमें एक भाग है ॥ १८४ ॥ दूसरे स्तनक इंद्रकका विस्तार बत्तीसलाख सोलह हजार छहसो छयासठ योजन और एक योजनके तीनभागोंमें दो भाग है ॥ १८५ ॥ तीसरे मनक इंद्रकका विस्तार इकतीसलाख पचीस हजार योजन है ॥ १८६ ॥ चौथे वनकका विस्तार तीसलाख तेतीस हजार तीनसो तेतीस योजन और एक योजनके तीनभागोंमें एक भाग है ॥ १८७ ॥ पांचवां घाट इंद्रक उनतीस लाख इकतालीस हजार छहसो छयासठ योजन और एक योजनके तीन भागोंमें दो भाग विस्तारवाला है ॥ १८८ ॥ छठे संघाट इंद्रकका विस्तार अट्ठाईस लाख पचास हजार योजनका है ॥ १८९ ॥ सातवें जिह्व इंद्रकका विस्तार सत्ताईस लाख अट्ठावन हजार तीनसो तेतीस योजन और एक योजनके तीनभागोंमें एक भाग है ॥ १९० ॥ आठवें जिह्वक इंद्रकका विस्तार छव्वीस लाख छयासठ हजार छैसौ छयासठ योजन और एक योजनके तीनभागोंमें दो भाग है ॥ १९१ ॥ नवमा लोल इंद्रक पच्चीसलाख पचहत्तर हजार योजन विस्तृत है ॥ १९२ ॥ दशवें लोलुप इंद्रकका विस्तार चौवीसलाख तिरासी हजार तीनसो तेतीस योजन और एक योजनके तीनभागोंमें एक भाग है ॥ १९३ ॥ ग्यारहवें स्तनलोलुपका विस्तार तेईस लाख इक्यानवे हजार छैसौ छयासठ योजन और एक योजनके तीनभागोंमे दो भाग

है ॥ १९४ ॥ इसप्रकार दूसरे नरकके इंद्रकोंका भी विस्तार बतला दिया गया अब तीसरे नरकके इंद्रकोंका विस्तार कहते हैं—

तीसरे नरकमें नौ इंद्रक बतला आये हैं–उनमें पहिले तप्त इंद्रकका विस्तार तेईस लाख योजन है। दूसरे तपित इंद्रकका विस्तार बाईस लाख आठ हजार तीनसौ तेतीस योजन और एक योजनके तीनभागोंमे एक भाग है ॥ १९५ ॥ तीसरे तपन इंद्रकका विस्तार इक्कीस लाख सोलह हजार छैसो छयासठ योजन एक योजनके तीनभागोंमें दो भाग है ॥ १९६ ॥ चौथा तापन नामक इंद्रक वीसलाख पचीस हजार योजनवाला है ॥ १९७ ॥ पाचवें निदाघ इंद्रकका विस्तार उन्नीस लाख तेतीस हजार तीनसो सेंतीस योजन और एक योजनके तीनभागोंमें एक भाग है ॥ १९८ ॥ छठा प्रज्वलित इंद्रक अठारह लाख इकतालीस हजार छैसो छयासठ योजन विस्तारबाला है ॥१९९॥ सातवें उज्ज्वलित इंद्रकका विस्तार सत्रह लाख पचास हजार योजनका है। ॥ २०० ॥ आठवें संज्वलित इंद्रकका विस्तार सोलह लाख अठावन हजार तीनसो तेतीस योजन और एक योजनके तीनभागोंमे एक भाग है ॥२०१॥ नववें संप्रज्वलित इंद्रकका विस्तार पंद्रहलाख छयासठ हजार छहसो छयासठ योजन और एक योजनके तीन भागोंमे दो भाग है ॥ २०२ ॥ इसप्रकार तीसरे नरकके नौ इंद्रकोंका भी विस्तार कहदिया गया अब चौथे नरकके इंद्रकोंका विस्तार कहते हैं—

चौथे नरकमें सात इंद्रक कहे हैं उनमें सबसे प्रथम आर इंद्रकका विस्तार चौदह लाख पचहत्तर हजार है ॥ २०३ ॥ दूसरे तार इंद्रकका विस्तार तेरहलाख तिरासी हजार तीनसो तेतीस योजन और एक योजन के तीनभागोंमे एक भाग है ॥ २०४ ॥ तीसरे मार इंद्रकका विस्तार बारहलाख इक्यानवे हजार छहसो छयासठ योजन और एक योजनके तीनभागोंमें दो भाग है ॥ २०५ ॥ चौथे वर्चस्क इंद्रकका विस्तार बारहलाख योजनका है। पांचवें तनक इंद्रकका विस्तार ग्यारहलाख आठ हजार तीनसो तेतीस योजन एवं एक योजनके तीन भागोंमे एक भाग है ॥ २०६ ॥ छठे खड इंद्रकका विस्तार दशलाख सोलह हजार छैसो छयासठ योजन और एक योजनके तीन भागोंमें दोभाग है ॥ २०७ ॥ सातवें खडखड इंद्रकका विस्तार नौलाख पचीस हजार है ॥ २०८ ॥ इसप्रकार चौथे नरकके सात इंद्रकोंका विस्तार भी बतला दिया गया अब पांचवें नरकके इंद्रकोंका विस्तार बतलाते हैं—

पांचवें नरकके पांच इंद्रक बतलाये हैं उनमें प्रथम तम इंद्रकका विस्तार आठ लाख तेतीस हजार तीनसो तेतीस योजन एक योजनके तीनभागोंमें एक भाग है ॥ २०९ ॥ दूसरे भ्रम इंद्रकका सातलाख इकतालीस हजार छैसो छयासठ योजन एक योजन के तीनभागोंमें दोभाग विस्तार है ॥ २१० ॥ तीसरे झष इंद्रकका विस्तार छह लाख

पचास हजार योजन है ॥ २११ ॥ अंध इंद्रकका विस्तार पांचलाख अठावन हजार तीनसो तेतीस योजन एक योजनके तीनभागोंमे एक भाग है ॥ २१२ ॥ पांचवें तमिस्र इंद्रकका विस्तार चार लाख छ्यासठ हजार छहसो छ्यासठ योजन एक योजन के तीनभागोंमें दो भाग है ॥ २१३ ॥

छठे नरकमें तीन इंद्रक बतला आये हैं उनमें प्रथम हिम इंद्रकका विस्तार तीसलाख पचहत्तर हजार है ॥ २१४ ॥ दूसरे वर्दल इंद्रकका बिस्तार दोलाख तिरासी हजार तीनसो तेतीस योजन एक योजनके तीनभागोंमें एक भाग है ॥ २१५ ॥ तीसरे लल्लक इंद्रकका विस्तार एकलाख इक्यानवे हजार छहसो छ्यासठ योजन एक योजनके तीन भागोंमें दोभाग है ॥ २१६ ॥

सातवें नरकमें केवल एक अप्रतिष्ठान नामक इंद्रक बतला आये हैं। तथा समस्त पदार्थोंको स्पष्टरीतिसे जाननेवाले भगवान सर्वज्ञने उसका विस्तार एकलाख योजन का कहा है ॥ २१७ ॥ इसप्रकार उनचास इंद्रकोंका विस्तार बतला दिया गया अब इंद्रकोंकी मुटाईका वर्णन करते हैं—

पहिले घर्मा नरकके इंद्रक विलोंकी मुटाई एक कोशकी है श्रेणीवद्ध विलोंकी मुटाई एक कोश और एक कोशके तीन भागोंमे एक भाग है एवं फुटकर विलोंकी मुटाई दो कोश और एक कोशके तीन भागोंमें एक भाग है ॥ २१८ ॥ दूसरे वंशा नरकमें इंद्रक विलोंकी मुटाई डेढकोश, श्रेणीवद्धोंकी दो कोश और प्रकीर्णक (फुटकर) विलोंकी साढे तीन कोशकी है ॥ २१९ ॥ मेघा नामक तीसरे नरकमें इंद्रक विलोंकी मुटाई दो कोश श्रेणीवद्ध विलोंकी दो कोश एक कोशके तीन भागोंमें दोभाग तथा प्रकीर्णक विलोंकी मुटाई चार कोश एक कोशके तीन भागोंमें दो भाग है ॥ २२० ॥ चौथे अंजना नरकमें इंद्रकोंकी मुटाई ढाई कोश श्रेणीवद्धोंकी मुटाई तीन कोश और एक कोशके तीन भागोंमें एक भाग तथा प्रकीर्णकोंकी पांचकोश एवं एक कोशके छे भागोंमें पांच भाग है ॥ २२१ ॥ पांचवे अरिष्टा नरकके इंद्रक विलोंकी मुटाई तीन कोश श्रेणीवद्धोंकी चार और प्रकीर्णकोंकी सात कोश है ॥ २२२ ॥ छठी मघवी भूमिके इंद्रक विलोंकी मुटाई साढे तीन कोश श्रेणीवद्धोंकी चार कोश और एक कोशके तीन भागोंमें दो भाग, एवं प्रकीर्णकोंकी आठ कोश तथा एक कोश के आठ भागोंमें छै भाग है ॥ २२३ ॥ सातवें नरकके अप्रतिष्ठान नामक इंद्रककी मुटाई चार कोश श्रेणीवद्ध चार विलोंकी मुटाई पांच कोश और एक कोशके तीन भागोंमें एक भाग है ॥ २२४ ॥ इसप्रकार समस्त विलोंकी मुटाई कह दी गई अब उन्हीं विलोंका आपसमें अंतर बतलाते हैं—

प्रथम नरकके इंद्रक विलोंमें एक दूसरेका आपस का अंतर छै हजार चारसौ नि-

न्यानवे योजन दो कोश और एक कोशके वारह भागोंमें ग्यारह भाग है ॥ २२५ ॥ २२६ ॥ श्रेणीवद्धोंका छै हजार चारसो निन्यानवे योजन दो कोश, एक कोशके नव भागोंमें पांच भाग है ॥ २२७ ॥ एवं प्रकीर्णक विलोंका अंतर छै हजार चारसो निन्यावें योजन एक कोश एवं एक कोशके छत्तीस भागोंमें सत्रह भाग है ॥ २२८ ॥ दूसरे नरकके इंद्रक विलोंका आपसमें अंतर दो हजार नौसौ निन्यानवे योजन और चार हजार सातसो धनुष है ॥ २२९-२३० ॥ श्रेणीवद्ध विलोंका अंतर दो हजार नौसौ निन्यानवे योजन और तीन हजार छैसो धनुष है ॥ २३१ ॥ एवं प्रकीर्णक विलोंका अंतर दो हजार नौसौ निन्यानवे योजन और तीनसौ धनुष है ॥ २३२ ॥ तीसरे नरकमें इंद्रक विलोंका आपसमें अंतर भगवान सर्वज्ञने तीन हजार दोसो उनचास योजन और तीन हजार पाचसो धनुष कहा है ॥ २३३ ॥ श्रेणीवद्ध विलोंका अंतर तीन हजार दोसो उनचास योजन और दो हजार धनुष वतलाया है ॥ २३४ ॥ एवं प्रकीर्णकोंका अंतर तीन हजार दोसो अडतालीस योजन और पांच हजार पाचसो धनुष कहा है ॥ २३५ ॥ चौथे नरकमें इंद्रक विलोंका अंतर तीन हजार छैसो पैंसठ योजन और सात हजार पांचसो धनुष है ॥२३६॥ श्रेणीवद्धोंका अंतर तीन हजार छैसो पैंसठ योजन पांच हजार पाचसो पचपन धनुष और एक धनुषके नौ भागोंमें पांच भाग है ॥ २३७ ॥ एवं प्रकीर्णक विलोंका अंतर तीन हजार छैसो चौसठ योजन सात हजार सातसो बाईस धनुष और एक धनुषके नव भागोंमें दो भाग है ॥ २३८-२३९ ॥ पांचवी भूमिके इंद्रक विलोंका आपसमें अंतर चार हजार चारसो निन्यानवे योजन और पांचसो धनुषका है ॥ २४० ॥ २४१ ॥ श्रेणीवद्ध विलोंका अंतर चार हजार चारसो अठानवे योजन छै हजार धनुषका बतलाया है ॥ २४२ ॥ एवं प्रकीर्णकोंका फासला चार हजार चारसो सतानवे योजन और छह हजार पांचसो धनुषका कहा है ॥ २४३ ॥ छठे नरकमें इंद्रक विलोंका अंतर छह हजार नौसौ अठानवे योजन और पांच हजार पांचसो धनुषका है ॥ २४४ ॥ श्रेणीवद्धोंका छह हजार नौसो अठानवे योजन और दो हजार धनुषका है ॥ २४५ ॥ एवं प्रकीर्णक विलोंका अंतर छह हजार नौसौ छयानवे योजन और सात हजार पांचसो धनुष है ॥ २४६ ॥ सातवें नरकमें श्रेणीवद्ध विलोंसे इंद्रक विलका फासला ऊपर नीचे तीन हजार नौसौ निन्यानवे योजन और दो कोशका है ॥ २४८ ॥ और श्रेणीवद्ध चार विलोंका अंतर तीन हजार नौसौ निन्यानवे योजन और एक कोशके तीन भागोंमें एक भाग है ॥ २४९ ॥ इसप्रकार सातो नरकोंके विलोंका अंतर बतला दिया गया अब उपर्युक्त उनचास प्रस्तारोंकी जघन्य और उत्तम आयुका वर्णन करते हैं—

प्रथम नरकके पहिले सीमंतक प्रस्तारमें नारकियोंकी जघन्यस्थिति दशहजार वर्ष

और उत्कृष्ट स्थिति नव्वे हजार वर्ष है ॥ २५० ॥ दूसरे नारक पटलमें कुछ अधिक नव्वे हजारवर्षकी जघन्य स्थिति एवं उत्कृष्ट स्थिति नव्वे लाख वर्ष है ॥ २५१ ॥ तीसरे मनक प्रस्तारमें जघन्यस्थिति एक समय अधिक नव्वे लाख वर्षकी है और उत्कृष्ट आयु असंख्यात कोडी पूर्व है। चौथे भ्रांत पटलमें जघन्य स्थिति एक समय अधिक असंख्यात कोडी पूर्व है और उत्कृष्ट आयु सागरका दशवां भाग है ॥ २५२ ॥ पांचवे उद्भ्रांत प्रस्तारमें जघन्य आयु एक समय अधिक सागरका दशवां भाग है और सागरका पांचवां भाग उत्कृष्ट आयु है ॥ २५३ ॥ छठे संभ्रांत पाथडेमें जघन्य आयु एक समय अधिक सागरका पांचवां भाग है और उत्कृष्ट आयु सागरके दशभागोंमे तीनभाग है सातवें असंभ्रांत पटलमें एक समय अधिक सागरके दशभागोंमे तीनभाग तो जघन्य आयु है और उत्कृष्ट आयु सागरके दशभागोंमें चार भाग है ॥ १५४ ॥ आठवें विभ्रांत पाथडेमें जघन्य आयु एक समय अधिक सागरके दशभागोंमें चार भाग है। और उत्कृष्ट आयु सागरके दशभागोंमें पांच भाग है। नववें त्रस्त पटलमें जघन्य आयु एक समय अधिक सागरके दशभागोंमें पांच भाग है और उत्कृष्ट आयु सागरके दशभागोंमें ६ भाग है ॥ १५५ ॥ दशवें त्रसित पटलमें जघन्य आयु एक समय अधिक सागरके दशभागोंमें ६ भाग है और उत्कृष्ट आयु सागरके दशभागोंमें सात भाग है। ग्यारहवें वक्रांत पटलमें एक समय अधिक सागरके दशभागोंमें सातभाग जघन्य आयु है और एक सागरके दशभागोंमें आठ भाग उत्कृष्ट आयु है ॥ २५६ ॥ बारहवें अवक्रांत प्रस्तारमें जघन्य आयु एक समय अधिक सागरके दशभागोंमें आठ भाग है और सागरके दशभागोंमें नौ भाग उत्कृष्ट आयु है ॥ २५७ ॥ तेरहवें विक्रांत पाथडेमें जघन्य आयु एक समय अधिक सागरके दशभागोंमें नौ भाग है और दशभाग उत्कृष्ट स्थिति है। इन दशभागोंको ही एक सागर कहते हैं ॥ २५८ ॥ इसप्रकार प्रथम नरकके तेरह पाथडोंकी जघन्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकारकी आयु बतला दी गई अब दूसरे नरकके ग्यारह प्रस्तारोंकी आयुका वर्णन करते हैं—

दूसरे नरकके प्रथम पाथडे स्तरकमें जघन्य आयु एकसमय अधिक एक सागरकी है और उत्कृष्टस्थिति एक सागर और एक सागरके ग्यारह भागोंमें दो भाग है। ॥ २५९ ॥ दूसरे प्रस्तार में १ सागर एक सागरके ग्यारह भागोंमें दोभाग जघन्य स्थिति है और उत्कृष्ट आयु एक सागर और एक सागरके ग्यारह भागोंमें चार भाग है। ॥ २६० ॥ तीसरे मनक प्रस्तारमें जघन्य आयु एक सागर और एक सागरके ग्यारह भागोंमें चार भाग है उत्कृष्ट आयु एक सागर और एक सागरके ग्यारह भागोंमें छै भाग है ॥ २६१ ॥ चौथे वनक प्रस्तारमें जघन्य स्थिति एक सागर और एक सागरके ग्यारह भागोंमें छै भाग है और उत्कृष्ट आयु एक सागर और एक सागरके ग्यारह-

भागोंमें आठ भाग है ॥ २६२ ॥ पांचवें घाट पाथडेमें एक सागर और एक सागरके ग्यारह भागोंमें आठ भाग तो जघन्य स्थिति है और उत्कृष्ट स्थिति एक सागर और एक सागरके ग्यारह भागोंमें दशभाग है ॥ २६३ ॥ छठे संघाट नामक प्रस्तारमें जघन्य स्थिति एक सागर और एक सागरके ग्यारह भागोंमें दश भाग है और उत्कृष्ट स्थिति दो सागर और एक सागरके ग्यारह भागोंमें एक भाग है ॥ २६४ ॥ सातवें जिह्व प्रस्तारमें जघन्य आयु दो सागर और एक सागरके ग्यारह भागोंमें एक भाग है और उत्कृष्ट स्थिति दो सागर और एक सागरके ग्यारह भागोंमें तीन भाग है ॥२६५॥ आठवें जिह्विक इंद्रकमें जघन्य स्थिति दो सागर और एक सागरके ग्यारह भागोंमें तीन भाग है। और उत्कृष्ट स्थिति दो सागर और एक सागरके ग्यारह भागोंमें पांच भाग है ॥ २६६ ॥ नववें लोल इंद्रकमें दो सागर और एक सागरके ग्यारह भागोंमें पांच भाग तो जघन्य स्थिति है और उत्कृष्ट स्थिति दो सागर और एक सागरके ग्यारह भागोंमें सात भाग है ॥ २६७ ॥ दशवें लोलुप इंद्रकमें जघन्य आयु दो सागर और एक सागरके ग्यारह भागोंमें सात भाग है और दो सागर एवं एक सागरके ग्यारह भागोंमे नौ भाग उत्कृष्ट स्थिति है ॥ २६८ ॥ ग्यारहवें स्तनलोलुप इंद्रकमें जघन्य आयु दो सागर और एक सागरके ग्यारह भागोंमें नौ भाग बतलाई है और उत्कृष्ट तीन सागर कही है ॥ २६९ ॥ इसप्रकार दूसरे नरकके इंद्रकोंकी आयुका वर्णन करदिया अब तीसरे नरकके इंद्रकोंकी आयुका वर्णन करते हैं—

तीसरे नरकके प्रथम इंद्रक तप्तमें जघन्य आयु तीन सागर और उत्कृष्ट आयु तीन सागर और एक सागरके नौ भागोंमें चार भाग है ॥ २७० ॥ दूसरे तपित इंद्रकमें तीनसागर और एक सागरके नौ भागोंमें चार भाग तो जघन्यस्थिति है और उत्कृष्टस्थिति तीन सागर और एकसागरके नौ भागोंमें आठ भाग है ॥ २७१ ॥ तीसरे तपन इंद्रकमें जघन्य आयु तीन सागर और एक सागरके नौ भागोंमें आठ भाग है तथा चार सागर एवं सागरके नौ भागोंमें तीन भाग उत्कृष्ट है ॥ २७२ ॥ चौथे तापन इंद्रकमें चार सागर और एक सागरके नौ भागोंमें तीन भाग तो जघन्य आयु है और चार सागर एवं एक सागरके नौ भागोंमें सात भाग उत्कृष्ट आयु है ॥ २७३ ॥ पांचवें निदाघ इंद्रकमें जघन्यस्थिति चार सागर और एक सागरके नौ भागोंमें सात भाग है और उत्कृष्टस्थिति पांच सागर और एक सागरके नौ भागोंमें दो भाग है ॥ २७४ ॥ तथा छठे प्रज्वलित इंद्रकमें जघन्यस्थिति पांच सागर और एक सागरके नौ भागोंमें दो भाग है और उत्कृष्टस्थिति पांच सागर और एक सागरके नौ भागोंमें छै भाग है ॥ २७५ ॥ सातवें उज्ज्वलित इंद्रककी जघन्यस्थिति पांच सागर और एक सागरके नौ भागोंमें छै भाग है और उत्कृष्ट

स्थिति छै सागर और एक सागरके नौ भागोंमें एक भाग है ॥ २७६ ॥ आठवें संज्वलित इंद्रकमें जघन्य आयु छै सागर और एक सागरके नौ भागोंमें एकभाग है और उत्कृष्ट आयु छै सागर और एक सागरके नौ भागोंमे पांच भाग है ॥२७७॥ तथा नववें संप्रज्वलित इंद्रककी जघन्यस्थिति तो छै सागर और एक सागरके नौ भागों में पांच भाग है और उत्कृष्ट स्थिति सात सागरकी है ॥ २७८ ॥

चौथे नरकके प्रथम आर इंद्रकमें जघन्य आयु सात सागर और उत्कृष्ट सात सागर और एक सागरके सात भागोंमें तीन भाग है ॥ २७९ ॥ दूसरे इंद्रकमें जघन्य आयु सात सागर और एक सागरके सात भागोंमें तीन भाग है और उत्कृष्ट सात सागर और एक सागरके सात भागोंमें छै भाग है ॥ २८० ॥ तीसरे मार इंद्रकमें जघन्यस्थिति सात सागर और एक सागरके सात भागोंमें छै भाग है और उत्कृष्ट आयु आठ सागर और एक सागरके सातभागोंमें दो भाग है ॥ २८१ ॥ चौथे वर्चस्क इंद्रकमें आठ सागर और एक सागरके सात भागोंमें दो भाग तो जघन्यस्थिति है और उत्कृष्टस्थिति आठ सागर और एक सागरके सात भागोंमें पांच भाग है ॥ २८२ ॥ पांचवें तमक इंद्रकमें जघन्य स्थिति आठ सागर और एकसागरके सातभागोंमें पांच भाग है और उत्कृष्ट स्थिति नौ सागर और एक सागरके सात भागोंमें एक भाग है ॥ २८३ ॥ छठे खड इंद्रकमें लघु स्थिति नौसागर और एक सागरके सातभागोंमें एक भाग है और उत्कृष्ट स्थिति नौ सागर और एक सागरके सात भागोंमें चार भाग है ॥२८४॥ सातवें खडखड इंद्रक में जघन्य आयु नौ सागर और एक सागरके सात भागोंमें चार भाग है और उत्कृष्ट आयु पूर्ण दश सागरकी है ॥ २८५ ॥ इसप्रकार चौथे नरकके सात इंद्रकोंकी आयुका वर्णन कर दिया गया अब पांचवें नरकके पांच इंद्रकोंकी जघन्य उत्कृष्ट आयु बतलाते हैं—

पांचवें नरकके पहिले तम इंद्रकमें जघन्य आयु दश सागर है और उत्कृष्ट ग्यारह सागर और एक सागरके पांच भागोंमें दो भाग है ॥ २८६ ॥ दूसरे भ्रम इंद्रकमें जघन्य स्थिति ग्यारह सागर और एक सागरके पांच भागोंमें दो भाग है और उत्कृष्ट स्थिति बारह सागर और एक सागरके पांच भागोंमें चार भाग है ॥ २८७ ॥ तीसरे झष इंद्रकमें जघन्य स्थिति बारह सागर और एक सागरके पांच भागोंमें चार भाग है और उत्कृष्ट स्थिति चौदह सागर और एकसागरके पांच भागोंमें एक भाग है ॥२८८॥ चौथे इंद्रक अंधमें जघन्य स्थिति चौदह सागर और एक सागरके पांच भागोंमें एक भाग है और उत्कृष्ट आयु पंद्रह सागर और एक सागरके पांच भागोंमें तीन भाग है ॥ २८९ ॥ पांचवें तमिस्र इंद्रकमें जघन्य स्थिति तो पंद्रह सागर और एक सागरके पांच भागोंमें तीन भाग है और उत्कृष्ट आयु सत्रह सागरकी कही है ॥ २९० ॥ इस प्रकार पंचम नरकके इंद्रकोंकी आयु बतला दी गई अब छठे नरकके इंद्रकोंकी जघन्य

उत्कृष्टस्थिति का वर्णन करते हैं—

छठे नरकके प्रथम इंद्रक हिममें जघन्य स्थिति सत्रह सागरकी है और उत्कृष्ट स्थिति अठारह सागर और एक सागरके तीन भागोंमें दो भाग है ॥ २९१ ॥ दूसरे वर्दल इंद्रकमें लघु स्थिति अठारह सागर और एक सागरके तीन भागोंमें दो भाग है और उत्कृष्ट स्थिति बीस सागर और एक सागरके तीन भागोंमें एक भाग है ॥ २९२ ॥ तीसरे लल्लक इंद्रकमें जघन्य स्थिति तो बीस सागर और एक सागरके तीन भागोंमें एक भाग है और उत्कृष्टस्थिति बाईस सागर है ॥ २९३ ॥ इसप्रकार छठे नरकके इंद्रकोंकी आयुका विस्तारसे वर्णन करदिया गया अब सातवें नरकके इंद्रककी जघन्य उत्कृष्ट आयुका वर्णन करते हैं—

सातवें नरकमें केवल एक अप्रतिष्ठान नामक इंद्रक है उसमें जघन्य आयु तो बाईस सागरकी है और उत्कृष्ट आयु तेतीस सागरकी है ॥ २९४ ॥ इसप्रकार समस्त नरकोंके समस्त इंद्रकोंकी जघन्य उत्कृष्ट स्थिति बतला दी गई अब नारकियोंके शरीरकी ऊंचाईका वर्णन किया जाता है—

प्रथम नरकके प्रथम सीमंतक प्रस्तारमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई तीन हाथ है और दूसरे नारकमें एक धनुष एक हाथ और साढे आठ अंगुल प्रमाण है ॥ २९५ ॥ तीसरे रौरुक प्रस्तारमें नारकियोंका शरीर एक धनुष तीन हाथ और सत्रह अंगुल है ॥ २९६ ॥ चौथे भ्रांत प्रस्तारमें दो धनुष दो हाथ और डेढ अंगुल है पांचवें उद्भ्रांत प्रस्तारमें तीन धनुष और दश अंगुल है ॥ २९७ ॥ छठे संभ्रांत पटलमें तीन धनुष दो हाथ और साढे अठारह अंगुल है ॥ २९८ ॥ सातवें असंभ्रांत पाथडेमें चार धनुष एक हाथ और तीन अंगुल है ॥ २९९ ॥ आठवें विभ्रांत पटलमें चार धनुष तीन हाथ साढे ग्यारह अंगुल ऊंचाई है ॥ ३०० ॥ नववें त्रस्त पटलमें पांच धनुष एक हाथ और वीस अंगुल है ॥ ३०१ ॥ दशवें त्रसित पटलमें नारकियोंका शरीर छह धनुष और साढे चार अंगुल ऊँचा है ॥ ३०२ ॥ ग्यारहवें वक्रांत प्रस्तारमें छह धनुष दो हाथ और तेरह अंगुल है ॥ ३०३ बारहवें अवक्रांत पाथडेमें सात धनुष और साढे इक्कीस अंगुल नारकियोंका शरीर ऊँचा है ॥ ३०४ ॥ तेरहवें विक्रांत प्रस्तारमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई सात धनुष तीन हाथ और ६ अंगुल है ॥ ३०५ ॥ इसप्रकार पहिले नरकके तेरह प्रस्तारोंमें रहनेवाले नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई कह दी अब दूसरे नरकके प्रतरोंमें रहनेवाले नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई कहते हैं—

दूसरे नरकके प्रथम प्रतर स्तरकमें नारकियोंके शरीरकी ऊंचाई आठ धनुष दोहाथ दो अंगुल और एक अंगुलके ग्यारह भागोंमें एक भाग है ॥३०६॥ दूसरे स्तनकप्रतरमें नौ धनुष बाईस अंगुल और एक अंगुलके ग्यारह भागोंमें चार भाग है ॥ ३०७ ॥

तीसरे मनक पटलमें नारकियोंका शरीर नौ धनुष तीन हाथ अठारह अंगुल और एक अंगुलके दशभागोंमें छै भाग है ॥ ३०८ ॥ चौथे वनक पाथडेमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई दश धनुष दो हाथ चौदह अंगुल और एक अंगुलके ग्यारह भागोंमें आठ भाग बतलाई है ॥ ३०९ ॥ पांचवे घाटपटलमें नारकियोंके शरीर ग्यारह धनुष एक हाथ दश अंगुल और एक अंगुलके ग्यारह भागोंमें दशभाग ऊँचे हैं ॥ ३१० ॥ छठे संघाट पाथडेके नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई बारह धनुष सात अंगुल और एक अंगुलके ग्यारह भागोंमें एक भाग है ॥ ३११ ॥ सातवें जिह्वप्रतरमें बारह धनुष तीन हाथ तीन अंगुल और एक अंगुलके ग्यारह भागोंमें तीन भाग है ॥ ३१२ ॥ आठवें जिह्वक पटलमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई तेरह धनुष एक हाथ तेईस अंगुल और एक अंगुलके ग्यारह भागोंमें पांच भाग है ॥ ३१३ ॥ नववें लोल प्रस्तारमें नारकी चौदह धनुष उन्नीस अंगुल और एक अंगुलके ग्यारह भागोंमें सात भाग ऊंचे है ॥ ३१४ ॥ दशवें लोलुप प्रतरमें नारकियोंके शरीरकी ऊंचाई चौदह धनुष तीन हाथ पंद्रह अंगुल और एक अंगुलके ग्यारह भागोंमें नौ भाग है ॥ ३१५ ॥ ग्यारहवें स्तनलोलुप प्रतरमें नारकियोंके शरीर पंद्रह धनुष दो हाथ और बारह अंगुल ऊँचे हैं ॥ ३१६ ॥ इसप्रकार दूसरे नरकके ग्यारह प्रतरोंमें रहनेवाले नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई बतला दी गई अब तीसरे नरकके प्रतरोंमें रहनेवाले नारकियोंके शरीरकी ऊँचाईका वर्णन करते हैं—

तीसरे नरकके प्रथम तप्त प्रस्तारमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई सत्रह धनुष एक हाथ दश अंगुल और एक अंगुलके तीन भागोंमें दो भाग है ॥ ३१७ ॥ दूसरे तपित प्रतरमें नारकियोंके शरीर उन्नीस धनुष नौ अंगुल और एक अंगुलके तीन भागोंमें एक भाग लंबे है ॥ ३१८ ॥ तीसरे तपन प्रतरमें नारकी जीवोंके शरीरकी ऊँचाई वीस धनुष तीन हाथ आठ अंगुल बतलाई है ॥ ३१९ ॥ चौथे तपन प्रतरमें नारकियोंके शरीर बाईस धनुष दो हाथ ६ अंगुल और एक अंगुलके तीन भागोंमें दो भाग ऊंचे हैं ॥ ३२० ॥ पांचवें निदाघ पटलमें नारकियोंके शरीरकी ऊचाई चौवीस धनुष एक हाथ पांच अंगुल और एक अंगुलके तीन भागोंमें एक भाग है ॥ ३२१ ॥ छठे प्रज्वलित पटलमें छब्बीस धनुष और चार अंगुल नारकियोंका शरीर ऊंचा है ॥३२२॥ सातवें उज्ज्वलित पटलमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई सत्ताईस धनुष तीन हाथ दो अंगुल और एक अंगुलके तीन भागोंमें दो भाग है ॥ ३२३ ॥ आठवें संज्वलित प्रस्तारमें नारकी उनतीस धनुप दो हाथ एक अंगुल और एक अंगुलके तीन भागोंमें एक भाग ऊंचे हैं ॥ ३२४ ॥ नववें संप्रज्वलित प्रतरमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई इकतीस धनुप और एक हाथ बतलाई है ॥ ३२५ ॥ इसप्रकार तीसरे नरकके नौ

प्रतरोंमें रहनेवाले नारकियोंकी शरीरकी ऊँचाई कहदी गई अब चौथे नरकके प्रतरोंमें रहनेवाले नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई बतलाते हैं—

चौथे नरकके प्रथम प्रतर आरमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई पैंतीस धनुष दो हाथ बीस अंगुल और एक अंगुलके सात भागोंमें चार भाग है ॥ ३२६ ॥ दूसरे तार प्रतरमें चालीस धनुष सत्रह अंगुल और एक अंगुलके सात भागोंमें एक भाग है ॥ ३२७ ॥ तीसरे पाथडे मारमें नारकियोंके शरीर चवालीस धनुष दो हाथ तेरह अंगुल और एक अंगुलके सात भागोंमें पांच भाग ऊँचे हैं ॥ ३२८ ॥ चौथे वर्चस्क पाथडेमें उनचास धनुष दश अंगुल और एक अंगुलके सात भागोंमें दो भाग ऊँचे हैं ॥ ३२९ ॥ पांचवें तमक पाथडेमें नारकियोंकी त्रेपन धनुष दो हाथ छै अंगुल और एक अंगुलके सात भागोंमें छै भाग ऊँचाई है ॥ ३३० ॥ छठे खड पाथडेमें अट्ठावन धनुष तीन अंगुल और एक अंगुलके सात भागोंमें तीनभाग ऊँचे हैं ॥ ३३१ ॥ सातवें खडखड प्रस्तारमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई बासठ धनुष दो हाथ बतलाई है ॥ ३३२ ॥ इस प्रकार चौथे नरकके प्रस्तारोंमें रहनेवाले नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई बतादी गई अब पांचवें नरकके पांच प्रतरोंमें रहनेवाले नारकियोंके शरीरकी ऊँचाईका वर्णन करते हैं—

पांचवें नरकके पहिले तम प्रस्तारमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई पचहत्तर धनुष कही है। दूसरे भ्रम प्रतरमें सतासी धनुष दो हाथ बतलाई है ॥ ३३३ ॥ तीसरे झष प्रस्तारमें नारकियोंके शरीर सो धनुष ऊँचे हैं। चौथे अंध पाथडेमें एक सो बारह धनुष दो हाथ ऊँचे हैं। और पांचवें तमिस्र पाथडेमें नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई एकसौ पच्चीस धनुष बतलाई है ॥ ३३५ ॥ इसप्रकार पांचवे नरकके प्रस्तारोंमें रहनेवाले नारकियोंके शरीरकी ऊचाई कहदी गई अब छठे नरकके तीन प्रस्तारोंमें रहनेवाले नारकियोंके शरीरकी ऊँचाईका वर्णन करते हैं—

छठे नरकके हिम प्रस्तारमें नारकियोंके शरीरकी ऊंचाई एकसौ छयासठ धनुष दो हाथ और सोलह अंगुल है ॥ ३३६ ॥ दूसरे बर्दल प्रस्तारमें नारकी दोसौ आठ धनुष एक हाथ और आठ अंगुल ऊंचे हैं ॥ ३३७ ॥ तीसरे लल्लक प्रस्तारमें नारकियोंके शरीरकी ऊंचाई ढ़ाईसै धनुषकी बतलाई है ॥ ३३८ ॥

सातवें नरकमें अप्रतिष्ठान नामक एकही प्रस्तार है और उसमें रहनेवाले नारकियोंके शरीरकी ऊंचाई पांचसौ धनुष है ॥ ३३९ ॥ इस प्रकार सातो नरकोंके समस्त प्रस्तारोंमें रहनेवाले नारकियोंके शरीरकी ऊंचाईका वर्णन समाप्त हो चुका अब सातों नरकोंमें अवधिज्ञानका विषय क्रमसे बतलाते हैं ॥ ३४० ॥—

प्रथम नरकमें अवधिज्ञानका विषय चारकोस तक है। दूसरेमें साडे तीन, तीसरेमें तीन, चौथेमें ढाई, पांचवेंमें दो, छठेमें डेढ, और सातवेंमें एक कोशतकका विषय है ॥ ३४१ ॥

प्रथम नरककी मिट्टीकी दुर्गंध आधे कोश तक जाती है और दूसरीकी एक कोश तक इसीप्रकार नीचे २ नरकोंमें आधा २ कोश अधिक मिट्टीकी दुर्गंध समझ लेना चाहिये ॥ ३४२॥ रत्नप्रभा और शर्कराप्रभा इन दो नरकोंमें रहनेवाले नारकी जीव कापोत लेश्याके धारक हैं। तीसरे वालुकाप्रभा नरकमें रहनेवाले जीव ऊपरतो कापोत लेश्याके धारक हैं और नीचे नील लेश्याके धारक हैं ॥ ३४३ ॥ चौथे पंकप्रभा नरकके वासी नारकी ऊपर नीचे सर्वत्र नील लेश्याके धारक हैं। पांचवें नरक धूमप्रभामें रहनेवाले ऊपरतो नील लेश्याके धारक और नीचे कृष्ण लेश्याके धारक हैं ॥ ३४४ ॥ छठे तमःप्रभा नरकमें ऊपर रहनेवाले जीवोंकी तो कृष्ण लेश्या है और नीचे रहनेवाले परमकृष्णलेश्याके धारक हैं। तथा सातवें महातमःप्रभा नरकमें रहनेवाले जीव ऊपर नीचे सर्वत्र परमकृष्ण लेश्यासे व्याप्त हैं ॥ ३४५ ॥ आदिके चार नरकोंमें रहनेवाले नारकियोंको उष्णस्पर्शकी विशेष वेदना है पांचवीं भूमिमें रहनेवाले नारकियोंको ठंडी और गरमी दोनोंकी विशेष बाधा है। एवं छठी और सातवीं पृथ्वीमें रहनेवाले जीव सर्वदा तीक्ष्ण ठंडीसे विशेष दुःखित रहते हैं ॥ ३४६ ॥ प्रथमनरकसे तीसरे तक नारकियोंकी उत्पतिके स्थान अनेक तो ऊंटके आकारके हैं अनेक कुंभी (घडिया) कुस्थली मुद्गर मृदंग और नाडीके आकारके हैं। चौथे और पांचवे नरकोंमें नारकियोंके जन्मस्थान अनेक तो गौके आकारके हैं अनेक हाथी घोडा भस्त्रा (धोंकनी) नाव और कमलपुटके सदृश हैं। छठी और सातवीं पृथ्वीमें नारकियोंके जन्मस्थान बहुतसे तो खेतके आकारके हैं बहुतसे झालर और मल्लिकाके आकारके हैं और अनेक मोरके आकारके हैं ॥ ३४७–३४८–३४९ ॥ इन जन्मस्थानोंमें अनेक तो जघन्य रीतिसे एक कोश चौडे हैं और अनेक दो कोश, तीन कोश, एक योजन, दो योजन, एवं तीन योजन चोडे हैं तथा उत्कृष्टरूपसे सौ योजन तक विस्तीर्ण हैं ॥ ३५० ॥ समस्त निगोदोंकी ऊंचाई उनके विस्तारसे पांच गुनी है ॥ ३५१ ॥ निगोंदोमें इंद्रक निगोद तीन द्वारवाले तिकोने हैं। श्रेणीवद्ध और प्रकीर्णक निगोद अनेक दो द्वारवाले दुकोणे, वहुतसे तीन द्वारवाले तिकोंने, एकद्वार वाले एक कोंने पांच द्वारवाले पचकोने और सातद्वारवाले सतकोंने हैं ॥ ३५२ ॥ इनमें संख्यात योजन विस्तार वाले विलोंका जघन्य अंतर तो छै कोशका है और उत्कृष्ट अंतर बारह कोश है ॥ ३५३ ॥ एवं असंख्यात योजन विस्तृत निगोदो (विलों) का उत्कृष्ट अंतर असंख्यात योजन और जघन्य अंतर सात हजार योजन है ॥ ३५४ ॥ जिससमय नारकी नरकोंमें जन्म लेते हैं तो वहांकी भूमिपर गिरते ही वे उछलते हैं और फिर उसी जमीनपर गिरते है ॥ ३५५ ॥

प्रथम पृथ्वी घर्माके निगोदोमें रहनेवाले नारकी जीव सात योजन सवातीन कोश

उछलकर जमीनपर गिरते हैं ॥ ३५६ ॥ दूसरी पृथ्वी वंशाके निगोदोंमें रहनेवाले पंद्रह योजन ढाईकोश ऊंचे उछलकर जमीनपर गिरते हैं ॥ ३५७ ॥ तीसरी मेघा पृथ्वीमें उत्पन्न होनेवाले जीव जन्मते ही इकतीस योजन और एक कोश उछलते हैं और पीछे जमीनपर गिरते हैं ॥ ३५८ ॥ चौथी अंजनाभूमिमें उत्पन्न होनेवाले जीव बडे दुःखसे दुःखित हो प्रथम तो वासठ योजन और दो कोश उछलते हैं और फिर उसी जमीनपर पडते हैं ॥ ३५९ ॥ पांचवीं पृथ्वीमें उत्पन्न नारकी जन्मतेही एकसौ पच्चीस योजन उछलकर जमीनपर गिरते हैं ॥३६०॥ छठी मघवी पृथ्वीमें पैदा होनेवाले नारकी ढाईसो योजन ऊछलकर नीचे गिरते हैं ॥ ३६१ ॥ तथा सातवीं माघवी पृथिवीमें उत्पन्न होनेवाले नारकी जीव पांचसो योजन ऊपर उछलते हैं और पुनः जमीनपर गिरते हैं ॥ ३६२ ॥ तीसरे नरक तक एक दूसरेका वैरी वतलाकर असुरकुमार जातिके देव नारकियोंको आपसमें लडाते रहते हैं । और नारकी भी अवधिवलसे दूसरे नारकियोंको अपना वैरी जान स्वयं लडने लग जाते हैं ॥ ३६३ ॥ चतुर्थ नरकसे सातवें नरकतक असुरकुमार जातिके देव गमन नहिं करते नारकी ही अवधिबलसे एक दूसरेको अपना वैरी जान लडते हैं । ये दीन नारकी अपने आप भाले आरे त्रिशूल आदि हथियार बनाकर एक दूसरेके शरीरके टुकडे २ कर देते हैं तथा आपसमें महान दुःख भोगते हैं । नारकियोंके शरीर मानिंद पारेके होते हैं इसलिये टुकडे टुकडे होने पर भी फिर वे ज्योंके त्यों हो जाते हैं तथा जब तक इनकी आयु समाप्त नहिं होती तब तक ये मरते भी नहीं ॥ ३६४ ॥ ३६५ ॥ ये नारकी अपने पूर्व पापके उदयसे एक दूसरे द्वारा किये गये शारीरिक और मानसिक दुःखको हमेशा सहते रहते हैं ॥ ३६६ ॥ महा खारा तथा महा गरम वेतरणी नदीका जल पीते हैं परम दुर्गंध मिट्टीका आहार करते हैं इसलिये नरक में इन्हैं दुस्सह वेदना सहनी पडती है ॥ ३६७ ॥ नारकियोंको नरकमें निमेषमात्र भी सुख नहीं रात दिन विचारे दुःखही भोगा करते हैं ॥ ३६८ ॥ इन नारकियोंके परिणाम सदा अशुभ रहते हैं लिंग नपुंसक और संस्थान हुंडक होता है ॥ ३६९ ॥ जो जीव पापोंका उपशमकर आगे तीर्थंकर होने वाले हैं उनका दुःख देवगण छै मास पहिले से दूर करदेते हैं ॥ ३७० ॥ प्रथम नरकमें तो एक नारकीके मर जाने पर दूसरे नारकीके उत्पन्न होनेमें अंतर अडतालीस घडीका हो सकता है ॥ ३७१ ॥ और नीचेके छै नरकोंमें दूसरे नरकमें सातदिनका अंतर, तीसरेमें पंद्रह दिनका, चौथे में एक मासका, पांचवेंमें दो मासका, छठेमें चारमासका, और सातवेंमें छै मासका बतलाया है ॥ ३७२ ॥ जो जीव महा मिथ्यात्वी, बहुत आरंभ और परिग्रहके धारक हैं वे ही नरक जाते हैं और उनमें तिर्यंच एवं मनुष्यही जा सकते हैं ॥ ३७३ ॥ एकें-

द्रियसे लेकर चौ इंद्रिय तक तो जीव नरक जाते नहीं, पचेंद्रियही जाते हैं सो असैनी पचेंद्रिय तो प्रथम भूमि तक जाते हैं जलसर्प दूसरी तक, पक्षी तीसरी तक, भुजंग चौथी तक, सिंह पांचवी तक, छठी तक स्त्रियां और सातवीं तक अत्यंत पापी मच्छ और मनुष्य जाते हैं ॥ ३७४–३७५ ॥ यदि किसी तिर्यंच वा मनुष्यके प्रबलपापका उदय हो और पुनः उसै नरक जाना पडे तो सातवींसे निकलकर दुष्ट तिर्यंच मनुष्य होकर पुनः सातवींमें एक बार, छठीसे निकल तिर्यंच आदि हो छठीमें दो वार, पांचवीसे निकल तिर्यंच आदि होकर पुनः पांचवींमें तीनवार, चौथी पृथ्वीसे निकलकर तिर्यंच आदि होकर पुनः चौथीमें चार वार, तीसरीसे निकलकर तिर्यंच आदि हो पुनः तीसरीमें पांचवार दूसरी पृथ्वीसे निकलकर तिर्यंच आदि हो पुन· दूसरीमें छै वार और पहिली पृथ्वीसे निकलकर तिर्यंच आदिहो पुनः पहिलीमें सातवार जासकता है॥३७६-३७८॥किंतु यह नियम है कि सातवे नरकसे निकलकर संज्ञि तिर्यंच ही होता है और वह संख्यात वर्ष की आयु पाकर फिर नरक जाता है ॥ ३७९ ॥ छठी पृथ्वीसे निकला जीव मनुष्य तो हो सकता है परंतु संयम धारण नहिं कर सकता। पांचवें नरकसे निकला जीव कदाचित् संयमी हो जाय किंतु तद्भव मोक्षगामी नहिं होता ॥३८०॥ चौथी पृथ्वीसे निकलकर जीव मोक्ष जासकता है परंतु तीर्थंकर कदापि नहिं हो सकता और तीसरी दूसरी और प्रथमा भूमिसे निकलकर जीव सम्यग्दर्शनकी विशुद्धतासे तीर्थंकर भी हो सकताहै ॥३८१-३८२॥ समस्त नरकोंसे निकलकर जीव मनुष्य तो होते हैं परंतु मनुष्योंमें बलभद्र नारायण और चक्रवर्ती नहिं होते ॥ ३८३ ॥ इसप्रकार अधोलोकका विस्तारसे वर्णन कर भगवान गौतमने राजा श्रेणिकसे कहा राजन्! अधोलोकका संक्षेपसे विभाग बतला दिया गया अव मध्यलोकके विभागका वर्णन करता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो॥३८४॥

बुद्धिमान पुरुष सत्र जगह व्यापक भगवानके वचनरूपी दीपकोंसे-सूर्य और चंद्रमाके अगोचर भी अधोलोक के अंधकार को नाशकर पदार्थों का वास्तविक स्वरूप देख लेते हैं इसमें कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि तीनोंलोकमें भगवान जिनेंद्ररूपी सूर्यके प्रकाश होनेपर मिथ्याज्ञानरूपी अंधकार कहीं ठहर नहिं सकता अर्थात् सूर्यके उदय होने पर जैसा अंधकार नष्ट होजाता है उसीप्रकार जिनेंद्ररूपी सूर्यके तेजसे अज्ञानरूपी अंधकार भी नहिं रह सकता॥ ३८५ ॥

इसप्रकार भगवान नेमिनाथके चरित्रको कथन करनेवाले आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित इस हरिवंशपुराणमें अधोलोकका वर्णन करनेवाला चौथा सर्ग समाप्त हुआ।

पंचम सर्ग।

मध्यलोकके नीचे एक तनुवात वलय है और वहांतक इस मध्यलोककी स्थिति है। मेरुपर्वतका परिमाण एक लाख योजन कहा है उसमें एक हजार योजन मेरुकी निचाई और निन्यानवे हजार योजन ऊँचाई बतलाई है सोही इस लोककी नीचाई ऊँचाई है ॥ १ ॥ इस मध्यलोकमें असंख्याते समुद्र और द्वीपोंसे वेष्टित गोल और जंबूवृक्षसे शोभित एक जंबूद्वीप है ॥२॥ वज्रकी वेदीसे शोभित इस जंबूद्वीपका विस्तार एकलाख योजनका है और वह लवण समुद्र तक है तथा इसके ठीक मध्यमें सुमेरु पर्वत है ॥ ३ ॥ जंबूद्वीपका परिक्षेप (परिकोट) तीनलाख सोलह हजार दोसो सत्ताईस योजन तीन कोश एकसो अट्ठाईस धनुष और साडे तेरह अंगुल है ॥४-५॥ यदि जंबूद्वीपका एकत्र घनाकार किया जाय तो सातसो नव्वे करोड छप्पनलाख चौरानवे हजार एकसो पचास योजन बैठता है ॥ ६-७॥ यह जंबूद्वीप, सात क्षेत्र एक सुमेरु, देव और उत्तर दो कुरू, जंबू और शाल्मली वृक्ष, छै कुलपर्वत, छै विस्तीर्ण सरोवर, चौदह महानदी, बारह विभंगानदी, वीस वक्षारगिरि, चौंतीस राजधानी, रौप्याचल (वैताढ्य) चौंतीस, वृषभाचल चौंतीस, अडसठ गुफाओंसे युक्त चार विजयार्ध (नाभिगिरि) और तीनहजार सातसौ चालीस विद्याधरोंके पुरोंसे अतिशय शोभित है॥ जंबूद्वीपसे दूने क्षेत्र आदिसे धातकी खंड और धातकी खंडकी बराबर क्षेत्र आदिसे पुष्करार्ध शोभित है ॥ ८-१२ ॥ जंबूद्वीपमें सात क्षेत्र हैं उनमें पहिला भरतक्षेत्र सुमेरु पर्वतकी दक्षिण-दिशामें है और हैमवत २ हरि ३ विदेह ४ रम्यक ५ हैरण्यवत ६ और ऐरावत, ये मेरुपर्वतकी उत्तर दिशामें हैं। इन क्षेत्रोंमें विदेह क्षेत्र पर्यंत चौगुना २ विस्तार है अर्थात् भरतक्षेत्रके विस्तारसे चौगुना विस्तार हैमवत क्षेत्रका है हैमवतसे चौगुना हरिक्षेत्रका और हरि क्षेत्रसे चौगुना विदेहक्षेत्रका है। तथा विदेहसे चौथा भाग रम्यकका विस्तार है रम्यकसे चौथा भाग हैरण्यवतका और हैरण्यवतसे चौथा भाग ऐरावतका है विदेह और ऐरावतका विस्तार समान पडता है ॥१३-१४॥ हिमवान्, महाहिमवान, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी ये छै इस जंबूद्वीपमें कुलाचल हैं॥ १५॥ और निषध पर्वत पर्यंत पहिले पर्वतसे दूसरा पर्वत चौगुना २ विस्तृत है नील आदि उत्तरपर्वत विस्तारमें दक्षिण पर्वतोंके बराबर हैं अर्थात् हिमवानसे चौगुना महाहिमवान है महाहिमवानसे चौगुना निषधपर्वत है निषध और नीलका बिस्तार बरावर है नीलसे चौथा भाग रुक्मीका विस्तार और रुक्मीसे चौथाभाग शिखरीका विस्तार है ॥ १६ ॥ भरतक्षेत्रका विस्तार पांचसो छब्बीस योजन और एक योजनके उन्नीसभागोंमें छै भाग है ॥ १७ ॥ अथवा जंबूद्वीपके विस्तारके एकसो नव्वे भागोंमें एक भाग भी भरतक्षेत्रका विस्तार

कहा है ॥ १८ ॥ विदेह क्षेत्रपर्यंत क्षेत्रसे दूने विस्तारवाले पर्वत हैं पर्वतोंसे दूने दूने विस्तारवाले क्षेत्र हैं और विदेह क्षेत्रसे आगे क्षेत्र और पर्वतोंका विस्तार कम होता चला गया है अर्थात् भरतक्षेत्रका पांचसो छब्वीस योजन एक योजनके उन्नीसभागोंमें छै भाग विस्तार बतलाया है उससे दूना दशसो बावन योजन और एक योजनके उन्नीस भागोंमें बारह भाग विस्तार हिमवान पर्वतका है। हिमवानसे दूना दो हजार एकसो पांच योजन और पांच भाग विस्तार हैमवत क्षेत्रका है। हैमवत क्षेत्रसे दूना चारहजार दोसो दश योजन और दशभाग विस्तार महाहिमवान पर्वतका है। महाहिमवान पर्वतसे द्विगुणा आठ हजार चारसो इक्यासी योजन और इकीस भाग विस्तार हरिक्षेत्रका है। हरिक्षेत्रसे दूना सोलह हजार आठसो ब्यालीस योजन और दोभाग निषधपर्वतका है। एवं निषध पर्वतसे दूना तेतीस हजार छैसो चौरासी योजन और चार भाग विदेह क्षेत्रका है किंतु विदेहक्षेत्रसे आगै विस्तारके कम हो जानेपर विदेहसे आधा नील पर्वतका विस्तार सोलह हजार आठसो ब्यालीस योजन दोभाग है। नीलपर्वतसे आधा आठहजार चारसो इकीस योजन और एक भाग रम्यक क्षेत्रका विस्तार है। रम्यक क्षेत्रसे आधा चारहजार दोसो दशयोजन रुक्मी कुलाचलका है। रुक्मीसे आधा दो हजार एकसो पांच योजन विस्तार हैरण्यवत क्षेत्रका है। हैरण्यवतसे आधा दशसौ बावन योजन और बारहभाग शिखरीका और शिखरीसे आधा पांचसो छब्वीस योजन और एक योजनके उन्नीस भागोंमें छै भाग विस्तार ऐरावत क्षेत्रका है ॥१९॥ इसभरत क्षेत्रके ठीक मध्य भागमें एक विजयार्ध पर्वत है यह एक ओर पूर्वसमुद्र तक और दूसरी ओर पश्चिम समुद्रतक लंबा है और इसपर विद्याधरोंके अनेक निवास स्थान बने हुये हैं। यह विजयार्ध जमीनसे पच्चीस योजन ऊंचा और सवा छै योजन नीचा है इसका वर्ण चांदीके समान सफेद है और विस्तार पचास योजन है ॥ २० ॥ २१ ॥ इसी विजयार्ध पर्वतपर जमीनसे दशयोजन ऊपर अतिशय विस्तीर्ण और पर्वतके समान लंबी दो श्रेणी हैं और उनमें विद्याधर रहते हैं ॥ २२ ॥ उनमें दक्षिणश्रेणीमें तो पचास नगर हैं और उत्तर श्रेणीमें साठ हैं एवं ये समस्त नगर स्वर्गके समान सुंदर हैं ॥ २३ ॥ दश योजन और भी विजयार्धपर चढनेपर आभियोग्य जातिके देवोंके अनेक नगर हैं और वे हमेशा वहां क्रीडा करते रहते हैं ॥ २४ ॥ और भी पांच कोश ऊपर चढनेपर दशयोजन चौडी एक पूर्णभद्र नामकी श्रेणी है ॥ २५ ॥ विजयार्ध पर्वतपर नौ शिखर हैं उनमें पहिला सिद्धायतन कूट है दूसरा दक्षिणार्धक, तीसरा खंडप्रपात, चौथा पूर्णभद्र, पांचवां विजयार्धकुमार, छठा मणिभद्र सातवां तमिस्रगुहक, आठवां उत्तरार्ध और नवचां वैश्रवण है इन नौऊ शिखरोंसे विजयार्धपर्वत अतिशय रमणीक जान पडता है। इन शिखरोंकी ऊंचाई सवा छै योजन है

चौडाई ऊपर भागमें तो सवा छै योजन मध्यभागमें कुछ कम पांच योजन और ऊपर कुछ अधिक तीन योजन है ॥ २६–२७–२८–२९ ॥ सिद्धायतन कूटपर पूर्वदिशामें अतिशय उज्ज्वल एक सिद्धकूट नामका जिनमंदिर है ॥ ३० ॥ इसकी ऊंचाई पोन-कोश, चौडाई आधा कोश और लंबाई एक कोशकी है और यह मंदिर अविनाशी है ॥ ३१ ॥ भरतक्षेत्रके अर्धभागमें विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण प्रत्यंचा नो हजार सातसौ अडतालीस योजन और बारहकला विस्तृत है ॥३२॥ प्रत्यंचाके धनुःपृष्ठका विस्तार कुछ अधिक नौ हजार सातसौ छयासठ योजन और एक कलाका है ॥३३॥ उसका वीचका बाण दोसौ अडतीस योजन और तीनकला विस्तृत है ॥ ३४ ॥ विजयार्धपर्वतकी उत्तर प्रत्यंचा दशहजार सातसौ बीस योजन और ग्यारह कला विस्तीर्ण है ॥ ३५ ॥ उत्तर प्रत्यंचाका धनुःपृष्ठ दश हजार सातसौ तेतालीस योजन और पंद्रह कला है ॥ ३६ ॥ एवं बाण दोसौ अठासी योजन और तीन कला विस्तृत है ॥ ३७ ॥ तथा विजयार्ध पर्वतकी चूलिकाका विस्तार कुछ कम चारसौ छयासी योजन है ॥ ३८ ॥ और विजयार्धकी पूर्व पश्चिम भुजाओंका विस्तार चारसौ अठासी योजन कुछ अ-धिक सोलह कला है ॥३९॥ भरत क्षेत्रकी प्रत्यंचा चौदह हजार चारसौ इकहत्तर योजन और कुछ कम छह कला है ॥ ४० ॥ इसका धनुःपृष्ठ चौदह हजार पांचसौ अट्ठाईस योजन और ग्यारह कला विस्तीर्ण है ॥ ४१ ॥ एवं पांचसो छब्बीस योजन छै कला विस्तृत भरत क्षेत्रका बाण कहा है ॥ ४२ ॥ तथा भरतक्षेत्रकी चूलिकाका विस्तार एक हजार आठसौ पचहत्तर योजन साढे सात भाग बतलाया है ॥ ४३ ॥ इसकी पूर्व पश्चिम भुजाओंका विस्तार एक हजार आठसौ बानवे योजन और पोंना आठ कला है ॥ ४४ ॥ हिमवान पर्वतकी ऊंचाई सौ योजन, नीचाई पच्चीस योजन और चौडाई दशसौ बावन योजन बारहकला बतलाई है ॥ ४५–४६ ॥ इसकी प्रत्यंचाका विस्तार चौवीस हजार नोसो बत्तीस योजन और कुछ कम एककलाका बतलाया गया है ॥ ४७ ॥ इसका धनुःपृष्ठ पच्चीस हजार दोसौ तीस योजन और चारकला विस्तृ-त है ॥४८ ॥ एवं बाण एक हजार पांचसौ अठहत्तर योजन अठारह कला विस्तीर्ण है ॥ ४९ ॥ हिमवान पर्वतकी चूलिकाका विस्तार पांच हजार दोसौ तीस योजन सात कला बतलाया है ॥ ५० ॥ और इसकी पूर्व पश्चिम दोनों भुजाओंका परि-माण पांच हजार तीनसौ पचास योजन साडे पंद्रह कला है ॥ ५१ ॥ इस हिमवान पर्वतके ऊपर पूर्व पश्चिम पंक्तिबद्ध ग्यारह शिखर शोभायमान हैं ॥५२॥ उनमें पहिला शिखर सिद्धायतन कूट है दूसरा हिंमवान, तीसरा भरत कूट, चौथा इलाकूट, पांचवा

1 क पुस्तकमे ३८ वे श्लोकका चतुर्थ चरण 'भागा द्वादश कीर्तिता, यह है इस पाठसे विजयार्ध पर्वतकी चूलिका कुछ कम चारसौ छयासी योजन और बारह कला विस्तृत है यह अर्थ समझना चाहिये।

गंगाकूट छठा श्रीकूट सातवां रोहित, आठवां सिंधु नवमां सुरादेवी दशवां हैमवत एवं ग्यारहवां वैश्रवण शिखर है तथा इन समस्त-शिखरोंकी ऊंचाई पच्चीस योजन है।।५३-५४-५५।। तथा मूलमें इन शिखरोंका विस्तार पच्चीस योजन है मध्यमें पौंना उन्नीस योजन और अंतमें साडे वारह योजन है ।।५६।। हिमवानपर्वतके आगे दूसरा क्षेत्र हैमवत है। और इसका विस्तार दो हजार एकसो पांच योजन पांच कलाका है ।।५७।। इसकी प्रत्यंचा सैंतीस हजार छैसो चौहत्तर योजन और कुछ कम सोलह कला विस्तृत है ।। ५८ ।। धनुःपृष्ठका विस्तार अडतीस हजार सातसो चालीस योजन दश कला है ।। ५९ ।। और इसका वाण तीन हजार छैसो चौरासी योजन चार कला विस्तृत है ।। ६० ।। इसकी चूलिकाका विस्तार छै हजार तीनसो इकहत्तर योजन और सात कला वतलाया है ।। ६१ ।। और पूर्व पश्चिम भुजाओंका विस्तार छै हजार सातसो पचपन योजन और तीन कलाका कहा है ।। ६२ ।। इसके आगै महाहिमवान पर्वत है उसका विस्तार चार हजार दोसो दश योजन दश कलाका बतलाया है ।। ६३ ।। ऊंचाई दोसो योजन गहराई पचास योजन कही है ।। ६४ ।। इस पर्वतकी प्रत्यंचाका विस्तार त्रेपन हजार नौसौ इकतीस योजन छै कला है ।। ६५ ।। धनुपृष्ठका विस्तार सत्तावन हजार दोसो त्रानवे योजन दश कला है ।। ६६ ।। और इसके-वाणकी चौडाई सात हजार आठसो चौरानवे योजन चौदह कला वतलाई है ।। ६७ ।। इसकी चूलिकाका विस्तार आठ हजार एकसो अट्ठाईस योजन साडे चार भाग वतलाया है ।। ६८ ।। इसकी पूर्व पश्चिम दोंनो भुजाओंकी चौडाई नौ हजार दोसो छहत्तर योजन साडे नौ भाग है ।। ६९ ।। इस पर्वतपर जिनके अग्रभाग रत्नजडित हैं ऐसे नित्य और चांदीके समान सफेद आठ शिखर हैं ।। ७० ।। उनमें पहिली शिखर सिद्धायतन है और दूसरी महाहिमवान् तीसरी हैमवत चौथी रोहित पांचवीं ह्रीकूट छठी हरिकांत सातवीं हरिवर्ष और आठवीं वैडूर्य है। और इन समस्त शिखरोंकी ऊंचाई पचास योजन है ।। ७१-७२ ।। तथा इन शिखरोंकी मूलमें चौडाई पचास योजन और मध्यमें साडे सैंतीस योजन और मस्तकपर पचीस योजन है ।। ७३ ।। इस पर्वतके वाद हरिक्षेत्र है और उसका विस्तार आठ हजार चारसो इक्कीस योजन उन्नीस कला है ।। ७४ ।। इसकी प्रत्यंचा तिहत्तर हजार नौसौ एक योजन सत्रह कला है ।। ७४ ।। धनुःपृष्ठ आठ हजार चारसो सोलह योजन चार कला ।। ७५ ।। और वाण सोलह हजार तीनसो पंद्रह योजन पंद्रह कलाका वतलाया है ।। ७५ ।। इसकी चूलिकाकी चौडाई नौ हजार नौसौ पचासी योजन साडे पांच कला है।। ७८ ।। पूर्व पश्चिम दोनों भुजाओंका विस्तार तेरह हजार तीनसो इकसठ योजन साडे छै कला वतलाया है ।। ७९ ।। इस क्षेत्रके आगे तीसरा पर्वत निषध है उसकी चौडाई सोलह हजार

आठसो ब्यालीस योजन दो कला है ॥ ८० ॥ ऊंचाई चारसो योजन और गहराई सौ योजन है ॥ ८१ ॥ निषधाचलकी प्रत्यंचाका विस्तार चौरानवे हजार एकसो छप्पन योजन दो कला है ॥ ८२ ॥ धनुःपृष्ठकी चौडाई एक लाख चौवीस हजार तीनसो छयालीस योजन कुछ अधिक नौ कला वतलाई है ॥ ८३ ॥ एवं वाणका विस्तार तेतीस हजार एकसो सत्तावन योजन सत्रह कला कहा है ॥ ८४ ॥ इसकी चूलिकाका विस्तार दश हजार एकसो सत्ताईस योजन दो कला है ॥ ८५ ॥ और पूर्व पश्चिम दोनों भुजाओंकी चौडाई वीस हजार एकसो पैंसठ योजन ढाई कला वतलाई है ॥८६॥ सुवर्णके समान देदीप्यमान इस पर्वतके ऊपर 'जिनपर सर्वप्रकारके रत्नोंकी किरणें छिटक रही हैं, ऐसे नौ शिखर हैं॥८७॥ उनमें प्रथम कूट सिद्धायतन है दूसरा निषध तीसरा हरिवर्ष, चौथा पूर्वविदेह, पांचवां ह्रीकूट, छठा धृति, सातवां शीतोदा, आठवां विदेह और नववां रुचक है ॥ ८८-८९ ॥ इन समस्त शिखरोंकी ऊंचाई सौ योजन है एवं मूलमें इनकी चौडाई सौ योजन ऊपर मस्तकपर पचास योजन और मध्यमें पचहत्तर योजन हैं ॥ ९० ॥ इस पर्वतके आगे विदेह क्षेत्र है और उसका विस्तार तेतीस हजार छै सौ चौरासी योजन चार कला है ॥ ९१ ॥ विदेह क्षेत्रकी प्रत्यंचाकी चौडाई जंबूद्वीपकी चौडाईके समान एक लाख योजनकी है ॥ ९२ ॥ इसका धनुःपृष्ठ एक लाख अठावन हजार एकसो तेरह योजन साडे सोलह कला है ॥ ९३ ॥ वाणका विस्तार पचास हजार योजन है॥९४॥ विदेह क्षेत्रकी चूलिकाका विस्तार दोहजार नोसो इक्कीस योजन अठारह कला है ॥९५॥ तथा पूर्व पश्चिम दोनों भुजाओंका परिमाण सोलह हजार आठसो तिरासी योजन सवा तेरह कला है ॥९६॥ इसप्रकार जंबूद्वीपके दक्षिणभागका वर्णन कर दिया गया एवं उत्तर भागका भी वर्णन इसीप्रकार समझलेना चाहिये ॥ ९७ ॥ विदेह पर्यंत प्रत्यंचा धनुःपृष्ठ वाण चूलिका तथा भुजाओंका विस्तार दूना २ होता गया है और विदेहके बाद प्रत्यंचा आदिका विस्तार आधा २ रहगया है अर्थात् भरतक्षेत्रके समान वर्णन तो ऐरावत क्षेत्रका है हिमवान पर्वतके समान शिखरी पर्वतका, हैमवत क्षेत्रके समान हैरण्यवत क्षेत्रका, महाहिमवानके समान रुक्मी पर्वतका तथा निषध पर्वतके समान नीलपर्वतका है॥ ९८ ॥ उत्तरके पर्वतोंमें जो विशेष है उसे वतलाते हैं—

नीलाचल पर्वत वैडूर्यमणिके समान है तथा उसके ऊपर नौ शिखर हैं। उनमें प्रथम शिखर सिद्धायतन है दूसरा नील, तीसरा पूर्वविदेह, चौथा सीताकूट, पांचवां कीर्तिकूट, छठा नरकांत, सातवां अपरविदेह, आठवां रम्यक और नववां अपदर्शन है। इनकी ऊंचाई तथा मूल मध्य तथा अंतमें चौडाई निषध पर्वतकी कूटोंके वरावर समझनी चाहिये ॥ ९९-१०१ ॥ रुक्मी पर्वतका रंग चांदी सरीखा है इसपर सिद्धायतन १ रुक्मी २ रम्यक ३ नारी ४ बुद्धि ५ रूप्य ६ हैरण्यवत ७ एवं मणिकांचन ८ ये आठ कूट हैं

इनकी ऊंचाई एवं मूल मध्य अंतका विस्तार महाहिमवान पर्वतके कूटोंके समान समझना चाहिये ॥ १०२–१०४ ॥ शिखरी पर्वतका वर्ण सुवर्ण सरीखा है एवं इसके ऊपर ग्यारह शिखर हैं उनमें प्रथम शिखर सिद्धायतन है दूसरा शिखरी तीसरा हैरण्यवत चौथा सुरदेवी पांचवां रक्ता छठा लक्ष्मी सातवां सुवर्णकूट आठवां रक्तवती नवमा गंधदेव्या दशवां ऐरावत तथा ग्यारहवां मणिकांचन है इन समस्त पर्वतोंकी शोभा, आदि मध्य अंतकी चौडाई तथा ऊंचाई समस्त हिमवान पर्वतके कूटोंके समान है ॥ १०५–१०८ ॥ ऐरावतक्षेत्रके मध्यभागमें स्थित विजयार्ध पर्वतका सब वर्णन तो भरतक्षेत्रके विजयार्धके समान समझना चाहिये परंतु उसके ऊपर रत्नजडित जो नौ शिखर हैं उनके नाम ये हैं सिद्धायतनकूट १ उत्तरार्धकूट २ तमिस्रगुहकूट ३ मणिभद्रकूट ४ विजयार्धकुमारकूट ५ पूर्णभद्र ६ खंडप्रपात ७ दक्षिणार्ध ८ एवं वैश्रवण कूट ९ । इन समस्त शिखरोंकी लंबाई चौडाई आदि भी भरतक्षेत्रके विजयार्धकेकूटोंके समान है ॥ १०९–११२ ॥ सातों क्षेत्रोंके विभाग करनेवाले पूर्वपश्चिम लंबे जो छै कुलाचल बतला आये हैं उनमें हरएकके दोनों ओर एक २ विशाल बन है ये वन सब ऋतुके पुष्पोंसे व्याप्त और भांति २ के फलोंसे नम्रीभूत वृक्षोंसे शोभित रहते हैं। इनमें हमेशा पक्षी तथा भौंरे मधुर २ शब्द किया करते हैं। इनकी वेदिकायें चित्र विचित्र मणियोंकी बनी हुई हैं और ये पर्वतके समान लंबे तथा आधा योजन चौडे हैं ॥११३–११५॥ इनकी वेदियोंकी ऊंचाई आधा योजन तथा चौडाई पांचसो धनुषकी है ॥ ११६ ॥ वेदिकाओंके ऊपर योग्य स्थानोंपर अनेक रत्नोंसे बनेहुए भांति २ के रंगोंके अनेक तोरण हैं ॥ ११७ ॥ उक्त कुलपर्वतोंके ऊपर मणि तथा रत्नोंकी बनी हुई, दिव्य एवं दोकोश ऊंची चारोओर पद्मवेदिका बनी हैं ॥ ११८ ॥ इसीप्रकार समस्त गृह द्वीप समुद्र पृथ्वी नदी द्रह तथा पर्वतोंकी वेदिकाओंकी लंबाई चौडाई उक्त प्रकारसे समझलेनी चाहिये अर्थात् ऊंचाई आधा योजन और चौडाई पांचसौ योजन है ॥ ११९ ॥

उपर्युक्त ६ कुलाचलोंके ऊपर मध्यभागमें ६ सरोवर हैं ये सरोवर पूर्व पश्चिम लंबे तथा विशाल हैं ॥ १२० ॥ एवं वे पद्म महापद्म तिगंछि केशरी पुंडरीक महापुंडरीक हैं ॥ १२१ ॥ इन ६ सरोवरोंसे चौदह नदी निकली हैं उनमें सात तो पूर्व समुद्रको गई है एवं सात पश्चिम समुद्रमें जाकर मिली हैं ॥ १२२ ॥ उनके नाम गंगा, सिंधु, रोहित्, रोहितास्या, हरित्, हरिकांता, शीता, शीतोदा, नारी, नरकांता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता, तथा रक्तोदा हैं। ये चौदह महानदियां हजारों छोटी २ नदियोंके परिवारसे मंडित हैं ॥१२३–१२५॥ पहिला पद्म सरोवर हजार योजन लंबा पांचसो योजन चौडा तथा दश योजन गहरा है ॥ १२६ ॥ शुभ और शीतल जलसे हमेशा भरा रहता है और इस सरोवरके चारो ओर वेदी है जो कि हिमवान पर्वतकी वेदीके समान है।

॥ १२७ ॥ इस पद्महृदमें एकयोजन चौंडा कमल है, वह आधा योजन जलसे ऊंचा है एवं एक कोशकी उसकी कर्णिका है ॥१२८॥ तिगंछि सरोवर पर्यंततो सरोवरोंकी लंबाई चौडाई तथा कमल दूने २ समझने चाहिये किंतु उससे आगे चौडाई आदि आधे २ जानना। अर्थात् पद्महृदसे दूनी चौंडाई आदि महापद्म हृदकी है उससे दूनी तिगंछिकी है तिगंछिसे आधी केशरीकी है केशरीसे आधी पुंडरीक और पुंडरीकसे आधी महापुंडरीककी है ॥ १२९ ॥ कमलोंमें बनेहुये उत्तमोत्तम महलोंमें क्रमसे श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि तथा लक्ष्मी देवियां निवास करती हैं ॥ १३० ॥ समस्त देवियोंकी आयु एक पल्यकी है इनमें आदिकी श्री ह्री तथा धृति ये तीन देवियां तो सौधर्म इंद्रकी आज्ञाकारिणी हैं उत्तरकी, कीर्ति बुद्धि तथा लक्ष्मी ये तीन ऐशान इंद्रकी नियोगिनी हैं। और इनकी सभामें सामानिक जातिके देव रहते हैं ॥ १३१ ॥ उक्त सरोवरोंमें पद्महृदके पूर्वभागसे तो गंगा निकली है पश्चिमभागसे सिंधु तथा उत्तर भागसे रोहितास्या नदी निकली है ॥ १३२ ॥ दूसरे महापद्मसरोवरके दक्षिणद्वारसे रोहित् उत्तरद्वारसे हरिकांता निकली है। तिगंछि सरोवरके दक्षिणद्वारसे हरित् और उत्तरद्वारसे शीतोदा निकली है ॥ १३३ ॥ केसरी सरोवरके दक्षिणद्वारसे सीता तथा उत्तरद्वारसे नरकांताका उदय हुआ है। महापुंडरीक सरोवरके दक्षिणद्वारसे नारी तथा उत्तरद्वारसे रूप्यकूला निकली है ॥ १३४ ॥ पुंडरीकहृदके दक्षिणद्वारसे सुवर्णकूला पूर्वद्वारसे रक्ता तथा पश्चिमद्वारसे रक्तोदाका विकास हुआ है ॥ १३५ ॥ जिसद्वारसे गंगाका विकास हुआ है वहांपर उसका ६ योजन और एक कोशका फाट है एवं गहराई आधे कोशकी है ॥१३६॥ उसद्वारपर अनेक मणियोंसे बना हुआ तोरण है और उस तोरणकी ऊंचाई नौ योजन एक योजनके आठ भागोंमें तीन भाग है ॥ १३७ ॥ जहांसे गंगा निकली है वहांसे वह पांचसो योजन तो पूर्वदिशाकी ओर चली गई है पीछे वहांसे लोटकर गंगाकूटसे दक्षिणकी ओर भरतक्षेत्रमें आई है ॥ १३८ ॥ कुछ अधिक सौ योजन आकाशको उलंघकर पर्वतसे पच्चीस योजनकी दूरीपर पूर्वद्वारमें गंगाका पतन हुआ है ॥ १३९ ॥ पर्वतका पूर्वभाग ६ योजन एक कोश विस्तृत एवं गोमुखाकार है तथा उसकी जीभका परिमाण आधा योजन है ॥ १४० ॥ इस जीभसे निकलकर गंगाका आकार गौके सींगके समान होगया है तथा श्रीदेवीके भवनके आगे भूमिमें विस्तार भी उसका दश योजनका होगया है ॥ १४१ ॥ वहांपर साठ योजन चौंडा दशयोजन गहरा एक वज्रमुख नामका कुंड है इस वज्रमुखकुंडके मध्यमें एक टापू है टापूकी चौंडाई आठ योजन तथा ऊंचाई दो कोश है। इस टापूके मध्यमें एक वज्रमई पर्वत है यह पर्वत मूलमें चार योजन मध्यमें दो योजन तथा अंतमें एकयोजन चौंडा एवं दश योजन ऊंचा है ॥ १४२–

१४४ ॥ इस पर्वतके शिखरपर एक वज्रमय मंदिर है और वह मूलमें तीन हजार धनुष, मध्यमें दो हजार एवं अंतमें एक हजार धनुष विस्तृत है तथा भीतर पांचसो धनुष लंबा दोसो पचास धनुष चौडा और दो हजार धनुष ऊंचा है ॥ १४५-१४६ ॥ मंदिरके द्वारका नाम वज्रकपाट है उसकी ऊंचाई अस्सी धनुष चौडाई चालीस धनुष है एवं यह वज्रका बना हुआ है ॥ १४७ ॥ वज्रमुखकुंडकी दक्षिण ओर जाकर गंगाका आकार कहींपर कुंडल सरीखा होगया है तथा विजयार्धपर्वतकी गुफामें जाकर यह आठ योजन चौडी होगई है ॥ १४८ ॥ जहां यह गंगा पूर्वसमुद्र (लवण) में जाकर मिली है वहां इसका परिवार चौदह हजार नदियोंका है और इसकी चौडाई साढे वासठ योजनकी होगई है ॥ १४९ ॥ गंगाने जिसद्वारसे लवण समुद्रमें प्रवेश किया है वह द्वार 'साडे वासठ योजन चौडा' पौने चौरानवे योजन ऊंचा और आधा योजन गहरा है एवं मनोहर तोरणसे शोभित है ॥ १५० ॥ जिस प्रकार गंगा नदीका विस्तार वर्णन किया गया है उसीप्रकार सिंधु नदीकाभी समझना चाहिये 'किंतु इतना भेद है कि सिंधुनदी पश्चिम समुद्रमें जाकर मिली है' तथा विदेहपर्यंत नदियोंकी चौडाई और जीभ आदि दूने २ हैं ॥ १५१ ॥ समस्त तोरणोंका अवगाह समान है और उनमें यथायोग्य दिक्कुमारियां निवास करती हैं ॥ १५२ ॥ रोहितास्या नदीका दोसौ छहत्तर योजन छैकला पर्वतके ऊपर चलकर पतन हुआ है और वह श्रीदेवीके भवनकी ओर चली गई है ॥ १५३ ॥ रोहित् नदी कुंडसे निकलकर एकहजार छैसौ पांच योजन पांच कला पर्वतके ऊपर गई है पर्वतसे पचास योजनकी दूरीपर उसकी धारा गिरती है और पूर्वसमुद्रमें जाकर मिली है ॥ १५४ ॥ इसीप्रकार हरिकांता नदीभी एकहजार छैसौ पांच योजन पांच कला महाहिमवान पर्वतके ऊपर उत्तरदिशामें जाकर सौ योजनकी दूरीपर गिरी है और वहांसे पश्चिमसमुद्रमें जाकर मिलगई है ॥ १५५ ॥ हरित् नदी सातहजार चारसौ इकीस योजन एककला निषधपर्वतके ऊपर गई है पर्वतसे सौ योजनकी दूरीपर इसकी धारा गिरी है और पूर्वसमुद्रमें जाकर मिली है ॥ १५६ ॥ शीतोदा नदी सातहजार चारसौ इकीस योजन एककला पर्वतके ऊपर गई है चारसो योजन उसकी ऊंचाई उल्लंघनकर दोसौ योजनकी दूरीपर उसकी धारा गिरी है और पश्चिम समुद्रमें जाकर मिली है ॥ १५७ ॥ शीतोदाके समान सीता नदीभी नीलपर्वतके ऊपर जाकर और शीतोदाके समान ही पर्वतको उल्लंघनकर पूर्वविदेहके मध्यमें होती हुई पूर्वसमुद्रमें जाकर मिली है ॥ १५८ ॥ उत्तरदिशाकी छै नदियोंका परिवार आदि, दक्षिणकी छै नदियोंके समान समझना चाहिये ॥ १५९ ॥ गंगा १ रोहित् (रोह्या) २ हरित् ३ सीता ४ नारी ५ सुवर्णकूला ६ और रक्ता ये सात नदियां तो पूर्वसमुद्रमें जाकर मिली हैं और सिंधु आदि

शेष सात नदियां पश्चिम समुद्रकी ओर गई हैं ॥ १६० ॥ हैमवत, हरि, रम्यक और हैरण्यवत इन चार क्षेत्रोंके मध्यमें श्रद्धावान्, विजयवान, पद्मवान् और गंधवान् ये चार गोलाकार विजयार्ध पर्वत हैं ॥ १६१ ॥ ये पर्वत मूलमें एक हजार योजन, मध्यमें सातसौ पचास योजन, और अंतमें मस्तकपर पांचसौ योजन चौडे हैं एवं एकहजार योजन ऊंचे हैं ॥ १६२ ॥ जिसप्रकार सीता और शीतोदा नदियें मंदराचलकी प्रदक्षिणा देकर समुद्रमें मिलती हैं उसीप्रकार रोहित् और रोहितास्या आदि नदियां आधा योजन इन पर्वतोंकी परिक्रमा देकर समुद्रमें प्रवेश करती हैं ॥ १६३ ॥ इन पर्वतोंके शिखरोंपर अनेक महल बने हुये हैं और उनमें स्वाति अरुण पद्म और प्रभास नामके व्यंतर देव निवास करते हैं ॥ १६४ ॥ जो क्षेत्र पर्वत नदी आदि और उनके विस्तार आदिका वर्णन जंबूद्वीपमें बतलाया गया है उससे दूना धातकी खंडमें समझ लेना चाहिये और धातकीखंड द्वीपके समान आधे पुष्करमें समझना चाहिये ॥ १६५ ॥ संख्यात द्वीपोंके अनंतर एक दूसरा जंबूद्वीप और है एवं इस द्वीपमें भी जो पहिले व्यंतर देव बतला आये हैं—रहते हैं ॥ १६६ ॥ नील पर्वत और मेरुके मध्यमें उत्तरकुरु भोगभूमि है। निषधपर्वत और मेरुके मध्यमें देवकुरु भोगभूमि है ॥ १६७ ॥ इन भोगभूमियोंकी चौडाई ग्यारह हजार आठसो व्यालीस योजन दो कला है ॥ १६८ ॥ प्रत्यंचाका विस्तार त्रेपन हजार योजन है और धनुःपृष्ठका छै हजार चारसो अठारह योजन बारह कला है ॥ १६९ ॥ भोगभूमिकी गोलाई इकहत्तर हजार एकसो तेतालीस योजन और एक योजनके नौ भागों में चार भाग है ॥१७०॥ विदेह क्षेत्रका समस्त विस्तार तेतीस हजार छहसो चौरासी योजन चार कलाका है ॥१७१॥ मेरु पर्वतकी पूर्व और उत्तर दिशाके वीच सीता नदीके पूर्व तटपर नीलाचलके पास जंबूनामका एक विशाल स्थल है ॥ १७२ ॥ इस स्थलके ऊपर पांचसो धनुष चौडी दो कोश ऊंची महासुंदर चारो ओर रत्न जडित वेदिका है ॥ १७३ ॥ इस स्थलकी चौडाई मूलमें पांचसो कोश मध्यमें आठ कोश और मस्तकपर दो कोशकी वतलाई है ॥ १७४ ॥ यह स्थल सुवर्णका बना हुआ है इसके ऊपर आठ कोश ऊंची एक पीठिका वनी हुई है और उसकी चौडाई मूल भाग में बारह, मध्यमें आठ और अंतमें चार कोशकी है ॥ १७५ ॥ इस पीठिकाके नीचे छै मणियोंकी वेदियां बनी हुई हैं और हरएक मणिवेदीके ऊपर दो २ पद्मवेदियां बनी हुई हैं ॥१७६॥ इसी पीठिकामें एक जंबू वृक्ष है। जंबूवृक्षका मूल (जड) एक कोश चौडा है पीड (स्कंध) दो योजन ऊंची है गहराई (नींव) दो कोश और शाखाओंका विस्तार आठ योजन है ॥ १७७ ॥ इसका स्कंध पाषाणका है शाखा हीरेकी हैं पत्ते चांदीके समान सफेद हैं पुष्प फल अंकुर मणिमय हैं यह अपने लाल २ पल्लवों

के समूहसे समस्त दिशाओंको शोभित करता है ।। १७८-१७९ ।। इस विशाल वृक्षकी पृथ्वीकी वनी हुई अनेक छोटी २ शाखाओंसे शोभित चारो दिशाओंमें चार महाशाखा हैं ।। १८० ।। इनमें उत्तरदिशाकी शाखामें महामनोज्ञ भगवानका चैत्यालय है और शेष तीन दिशाओंकी शाखाओंमें आदर और अनादर जातिके देव निवास करते हैं ।। १८१ ।। जंबूवृक्षके नीचे भागमें तीस योजन चौडे और पचास योजन ऊंचे उन दोनो देवोंके अनेक महल बने हुये हैं ।। १८२ ।। वेदियोंके भीतर सातो दिशाओंमें सात प्रधान वृक्ष हैं और उनके परिवार वृक्ष भी अनेक हैं ।।१८३।। प्रथम वृक्षके परिवार वृक्ष चार हैं और दूसरेके एकसौ आठ, तीसरेके चारहजार, चौथेके सोलह हजार, पांचवेंके बत्तीस हजार, छठेके चालीस हजार और सातवेंके अडतालीस हजार हैं ।।१८४-१८५।। यदि इन सब प्रधान और इनके परिवार वृक्षोंको जोड लिया जाय तो एकलाख चालीस हजार एकसौ उन्नीस होते हैं ।। १८६ ।।

मेरु पर्वतके दक्षिण पश्चिमके वीच शीतोदा नदीके किनारे निषध पर्वतके समीप रजतवर्ण एक शाल्मली नामका स्थल है ।। १८७ ।। जंबूस्थलमें जैसा जंबूवृक्ष कह आये हैं उसीप्रकार शाल्मली स्थलमें भी शाल्मली वृक्ष है । और जो कुछ जंबूवृक्षका विस्तार वर्णन कर आये हैं शाल्मलीवृक्षका भी वैसाही वर्णन समझना चाहिये ।। १८८ ।। विशेष इतना है-शाल्मलीवृक्षकी दक्षिण महाशाखामें भगवानका अकृत्रिम मंदिर है और तीन दिशाओंकी तीन शाखाओंमें वेणु तथा वेणुधारी नामके देव निवास करते हैं और इनका समस्त वर्णन पूर्वोक्त आदर और अनादर देवोंके समान समझना चाहिये । जैसे उत्तरकुरुके अधिष्ठाता आदर और अनादर नामके देव कहे हैं उसीप्रकार देवकुरुके अधिष्ठाता वेणु और वेणुधारी देवोंको समझना चाहिये ।।१८९-१९०।। नीलपर्वतकी दक्षिण दिशामें एक हजार योजन विस्तृत सीतानदीके पूर्वतटपर चित्र- और विचित्र नामके दोकूट हैं ।। १९१ ।। निषध पर्वतकी उत्तरदिशामें सीतोदा नदीके दोनों तटोंपर यम और मेघ नामके दो कूट हैं ।। १९२ ।। ये चारो पर्वत उपर्युक्त नाभि पर्वतोंके समान हैं और इन पर्वतों पर पर्वतोंके ही नामवाले देव क्रीडा करते हैं ।। १९३ ।। नीलपर्वतसे पांचसो योजन दूरीपर नीलवान १ उत्तरकुरु २ चंद्र ३ ऐरावण ४ तथा माल्यवान ये पांच सरोवर नदियोंके मध्यमें है इनमें हरएकका अंतर पांचसो २ योजनका है तथा इनकी दक्षिण उत्तरकी लंबाई पद्मह-दके समान है ।। १९४-१९५ ।। निषध पर्वतकी उत्तरदिशामें नदीके भीतर निषध १ देवकुरु २ सूर्य ३ सुलस ४ और तडित्प्रभ ५ ये पांच विशाल सरोवर हैं इनके तट चित्र विचित्र रत्नोंके वने हैं तथा इनके मूल भाग हीरेके वने हुये हैं इनके ऊपर कमलोंके महल बने हुये हैं और उनमें नाग कुमार देव रहते हैं ।। १९६-१९७ ।।

हरएक सरोवरमें जलसे दोकोश ऊंचे एक योजन चौडे कमल हैं और इनकी कर्णिकाका विस्तार एक कोशका है ॥१९८॥ एक २ कमलके पास एकलाख चालीस हजार एकसो सत्रह २ अन्य भी कमल हैं॥१९९॥ तथा एक २ सरोवरके सन्मुख दश २ कांचन कूट नामके पर्वत सीता शीतोदा नदीके तटपर हैं ॥ २०० ॥ इनकी ऊंचाई सौ योजन है। चौडाई मूलमें सौ योजन मध्यमें पचहत्तर योजन एवं अंतमें मस्तकपर पचास योजन है ॥ २०१ ॥ हरएक कांचनगिरिके ऊपर एक २ जिन प्रतिबिम्ब है ये प्रतिमायें अकृत्रिम हैं निराधार हैं साक्षात् मोक्षमार्गको दिखलानेवाली हैं मणिमयी सुवर्णमयी एवं रत्नमयी हैं और पांचसौ धनुष ऊंची हैं। हरएक मेरुपर्वतपर दोसौ २ कांचनगिरि हैं और सब मिलकर पांचो मेरुपर्वतोंपर एकहजार हैं ॥ २०२।२०३ ॥ कांचनगिरियोंके शिखरोंपर अनेक क्रीडागृह बने हुये हैं और उनमें कांचनक नामके देव सर्वदा क्रीडा करते रहते हैं ॥ २०४ ॥ सीतानदीके उत्तर तटपर पद्मोत्तर नामका और दक्षिण तटपर नीलवान् नामका कूट है। एवं ये कूट मेरुकी पूर्वदिशामें हैं ॥ २०५ ॥ मेरुपर्वतकी दक्षिण दिशामें शीतोदा नदीके पूर्वतटपर स्वस्तिक और पश्चिम तटपर, अंजनगिरि कूट हैं ॥ २०६ ॥ तथा शीतोदाकी दक्षिण दिशामें कुमुद कूट है और उत्तरमें पलाशकूट है और ये दोनों कूट मेरुपर्वतकी पश्चिम दिशामें हैं ॥ २०७ ॥ सीतानदीके पश्चिम तटपर अवतंस नामका कूट और पूर्वतटपर रोचन नामका कूट है एवं ये दोनों कूट मेरुपर्वतकी उत्तर दिशामें हैं ये समस्त कूट भद्रशाल वनमें हैं कांचन पर्वतोंके समान हैं और इनमें दिग्गजेंद्र नामके देव निवास करते हैं ॥ २०८-२०९ ॥ मेरुपर्वतकी दक्षिणउत्तर दिशामें अतिशय मनोहर सुवर्णमयी गंधमादन नामका पर्वत है ॥ २१० ॥ और पूर्व उत्तर दिशामें वैडूर्यमणिमयी अतिशय देदीप्यमान माल्यवान पर्वत है ॥२११॥ मेरुकी पूर्व दक्षिणदिशामें अतिशय सुंदर सौमनस पर्वत है पश्चिम दक्षिण दिशामें सुवर्णमय विद्युत्प्रभ पर्वत है ॥२१२॥ और इनको गजदंत भी कहते हैं। इन चारो गंजदंतोंकी ऊंचाई नील और निषध पर्वतके पासतो चारसौ योजन है। मेरुपर्वतके पास पांचसौ योजन है। इनकी गहराई (नींव) ऊंचाईसे चतुर्थ भाग है एवं इनकी चौडाई देवकुरु और उत्तरकुरुके पास पांचसो योजन है ॥ २१३-२१४ ॥ ये चारो गजदंत तीस हजार दोसौ नौ योजन और छै कला लंबे हैं ॥ २१५ ॥ मेरुपर्वतके गंधमादन आदि चारो कूटोंपर क्रमसे सात, नौ, और सात, नौ, शिखर हैं ॥ २१६ ॥ उनमें सिद्धायतन १ गंधमादन २ उत्तरकुरु ३ गंधमालिनी ४ लोहित ५ स्फटिक ६ आनंद ७ ये सात शिखर तो गंधमादन कूटके हैं ॥ २१७-२१८ ॥ और सिद्धायतन १ माल्यवान् २ उत्तरकुरु ३ कच्छा ४ सागरक ५ रजत ६ पूर्णभद्र ७ सीताकूट ८ और हरिसह ९ ये नो शिखर

माल्यवान कूटके हैं ॥ २१९–२२० ॥ तीसरे सौमनस कूटके सिद्धायतन १ सौमनस २ देवकुरु ३ मांगल ४ विमल ५ कांचन ६ और विशिष्टक ७ ये सात शिखर हैं ॥ २२१ ॥ और सिद्धायतन १ विद्युत्प्रभ २ देवकुरु ३ पद्मक ४ तपन ५ स्वस्तिक ६ शतज्वल ७ शीतोदा ८ और हरिकूट ९ ये नौ शिखर चौथे विद्युत्प्रभ कूटके हैं ॥ २२२–२२३ ॥ पहिले जो कूटोंकी गहराई बतलादी गई है उतनीही इन समस्त शिखरोंकी ऊंचाई समझनी चाहिये ॥ २२४ ॥ चारो गजदंतोंके चारो सिद्धायतन शिखरोंपर तो महादेदीप्यमान भगवानके चैत्यालय बने हुये हैं और अन्य शिखरोंपर व्यंतर जातिके देव क्रीडा करते हैं। हरएक गजदंतके ऊपर दो दो शिखर हैं सो चारोंके मिलकर आठ शिखर होते हैं उनमें क्रमसे भोगंकरा १ भोगवती २ सुभोगा ३ भोगमालिनी ४ वत्समित्रा ५ सुमित्रा ६ वारिषेणा ७ और अचलावती ८ ये आठ देवियां रहती हैं ॥ २२५–२२७ ॥

मेरुपर्वत पर सोलह वक्षार गिरि हैं उनमें—चित्रकूट १ पद्मकूट २ नलिन ३ और एकशैल ४ ये चार पर्वत पूर्व विदेहमें हैं और नीलपर्वत से सीता नदीके अंत तक लंबे हैं ॥ २२८ ॥ त्रिकूट १ वैश्रवण २ अंजन ३ और आत्मांजन ४ ये चार अपनी लंबाईसे सीता नदी और निषध पर्वतको स्पर्श करनेवाले हैं ॥ २२९ ॥ श्रद्धावान १ विजयवान २ आशीविष ३ और सुखावह ४ ये चार पश्चिम विदेहमें हैं इनके दश २ भेद हैं और शीतोदा नदीसे निषध पर्वत तक लंबे हैं ॥ २३०–२३१ ॥ चंद्रमाल १ सूर्यमाल २ नागमाल ३ और मेघमाल ये चार पर्वत शीतोदा और नीलाचलके मध्यमें हैं ॥ २३२ ॥ इन समस्त वक्षारगिरियोंकी ऊंचाई नदीके तटपर पांचसौ योजनकी और अन्यत्र सब जगह चारसौ योजनकी है हर एक मेरुपर्वतपर सोलह २ वक्षार गिरि हैं और उनमें हरएकके चार २ शिखर हैं। इनमें कुलाचल पर्यंत शिखरोंमें दिक्कुमारियां निवास करती हैं। नदी किनारेके शिखरोंमें भगवानके चैत्यालय हैं एवं जो शिखर मध्य भागमें हैं उनमें व्यंतरजातिके देवोंके क्रीडास्थान हैं ॥२३३-२३५॥ मेरुकी पूर्वपश्चिम दिशामें लंबायमान भांति २ के वृक्ष और लताओंसे व्याप्त अतिशय रमणीय एक भद्रशाल वन है ॥ २३६ ॥ उसकी पूर्व पश्चिम लंबाई बाईस हजार योजन और दक्षिण उत्तर चौडाई ढाईसौ योजन बतलाई है ॥ २३७ ॥ वनके पूर्व पश्चिम भागमें एक वेदिका है यह वेदिका एक योजन ऊंची एक कोश गहरी और दो कोश चौडी है ॥ २३८ ॥ ग्राहवती १ ह्रदवती २ और पंकवती ये तीन विभंग नदियां नीलाचल पर्वतसे निकलकर सीता नदीमें जाकर मिली हैं और ये वक्षारगिरिके मध्यमें स्थित हैं ॥२३९॥ तथा तप्तजला १ मत्तजला २ और उन्मत्तजला ३ ये तीन विभंग नदियां भी निषधाचलसे निकलकर सीतानदीमें ही जाकर मिली हैं ॥ २४० ॥ क्षीरोदा १

शीतोदा २ और श्रोतोंतर्वाहिनी ३ ये तीन विभंग नदियां निषधपर्वतसे निकली हैं और महानदी शीतोदामें जाकर मिली हैं ॥ २४१ ॥ उत्तर विदेहमें गंधमालिनी १ फेनमालिनी २ और ऊर्मिमालिनी ३ ये तीन विभंगनदियां नीलपर्वतसे निकली हैं और इनका प्रवेश शीतोदा नदीमें हुआ है ॥ २४२ ॥ ये बारहो विभंगनदियां लंबाई चौडाईमें रोहित नदीके समान हैं और इनके तोरणोंमें दिक्कुमारियां निवास करती हैं॥२४३॥ वक्षारगिरि और विभंगनदियोंके मध्यमें सीता शीतोदा नदियोंके दोनों तटोंपर मेरुकी पूर्व और पश्चिम दिशामें बत्तीस विदेहहैं ॥२४४॥ उनमें कच्छा १ सुकच्छा २ महाकच्छा ३ कच्छकावती ४ आवर्ता ५ लांगलावर्ता ६ पुष्कला ७ और पुष्कलावती ८ ये आठ पश्चिम विदेह नीलपर्वत एवं सीता नदीके अंतरालमें हैं और इनमें हरएक क्षेत्रके छै २ खंड हैं ॥ २४५–२४६ ॥ वत्सा १ सुवत्सा २ महावत्सा ३ वत्सकावती ४ रम्या ५ रम्यका ६ रमणीया ७ और मंगलावती ८ ये आठ पूर्व विदेह सीता और निषध पर्वतके मध्यमें है इनमें चक्रवर्ती रहते हैं एवं ये दक्षिण उत्तर लंबे हैं ॥२४७–२४८॥ पद्मा १ सुपद्मा २ महापद्मा ३ पद्मकावती ४ शंखा ५ नलिनी ६ कुमुदा ७ और सरिता ८ ये आठ पूर्व विदेह शीतोदा और निषध पर्वतके मध्यमें हैं एवं दक्षिण उत्तर लंबे हैं ॥ २४९–२५० ॥ तथा वप्रा १ सवप्रा २ महावप्रा ३ वप्रकावती ४ गंधा ५ सुगंधा ६ गंधिला ७ एवं मंधमादिनी ८ ये आठ पश्चिम विदेह नीलपर्वत और शीतोदानदीके मध्यमें है इनमें भी चक्रवर्ती रहते हैं और दक्षिण उत्तर लंबे हैं ॥ २५१–२५२ ॥ इन समस्त विदेहोंका पूर्वापर विस्तार एक योजनके आठ भागमें एकभाग कम दोहजार दोसौ बारह योजन है ॥२५३॥ समस्त विदेह क्षेत्रकी चौडाई तेतीस हजार छहसो चौरासी योजन चार कला है उसमें पांचसौ योजन सीतानदीकी चौडाई घटाकर तेतीस हजार एकसो चौरासी योजन चारकला चौडाई रहजाती है उसकी आधी अर्थात् सोलह हजार पांचसो बानवे योजन दोकला लंबाई क्षेत्र वक्षारगिरि और विभंग नदियोंकी समझनी चाहिये ॥ २५४ ॥ इन बत्तीस विदेहोंमें बत्तीस विजयार्ध पर्वत हैं इनकी लंबाई चौडाई विदेह क्षेत्रोंके बराबर है हरएक विजयार्धपर नौ शिखर हैं एवं जैसा भरत और ऐरावत क्षेत्रके विजयार्धोंका वर्णन कर आये हैं वैसा ही इनका भी समझना चाहिये ॥ २५५ ॥ परंतु इतना विशेषहै–विदेहके विजयार्धकी दोनों श्रेणियोंमें पचपन २ नगरी हैं और इनमें भरत तथा ऐरावत क्षेत्रोंके समान विद्याधर निवास करते हैं॥२५६॥ कच्छा आदि आठ विदेहोंमें क्षेमा १ क्षेमपुरी २ रिष्टा ३ रिष्टपुरी ४ खड्गा ५ मंजूषा ६ औषधी ७ और पुंडरीकिणी ८ क्रमसे ये आठ राजधानी हैं। और इनमें त्रेसठ शलाका पुरुष उत्पन्न होते हैं॥२५७–२५८॥

१ भरत ऐरावत क्षेत्रोंकी दोनो श्रेणियोंमें प्रथम श्रेणीमें पचास नगरी हैं और दक्षिणश्रेणीमें साठ नगरी हैं।

वत्सा आदि विदेहोंमें सुसीमा १ कुंडला २ अपराजिता ३ प्रभंकरा ४ अंकावती ५ पद्मावती ६ शुभा ७ रत्नसंचया ८ क्रमसे ये आठ विशाल राजधानियां हैं ॥ २५९–२६० ॥ अश्वपुरी १ सिंहपुरी २ महापुरी ३ विजयापुरी ४ अरजा ५ विरजा ६ अशोका ७ और वीतशोका ८ ये आठ प्रसिद्ध राजधानियां क्रमसे पद्मा आदि आठ विदेहों में हैं ॥ २६१–२६२ ॥ वप्रा आदि आठ विदेहोंमें क्रमसे विजया १ वैजयंती २ जयंती ३ अपराजिता ४ चक्रा ५ खड्गा ६ वप्रा ७ और अयोध्या ८ ये आठ राजधानी हैं। ये समस्त राजधानी दक्षिण उत्तर बारह योजन लंबी हैं नौ योजन चौडी हैं एवं इनके परकोटे और तोरण सुवर्णमयी हैं ॥ २६३–२६४ ॥ इन नगरियोंके पांचसौ तो छोटे दरवाजे हैं हजार बडे दरवाजे हैं। चित्र विचित्र रत्नजडित किवाडोंसे शोभित सातसो खिडकियां हैं बारह हजार गलियां और हजार चौक हैं एवं ये अविनाशी हैं ॥ २६५–२६६ ॥ कच्छा आदि हरएक क्षेत्रमें गंगा सिंधू दो नदियां हैं ये नदियां नीलाचलके समीप कुंडसे निकलकर विजयार्धकी दोनों गुफाओंको उल्लंघन करती हुई सीता नदीमें जाकर मिली हैं ॥ २६७ ॥ विजयार्धकी गुफाओंकी लंबाई उसीकी चौडाईके समान है। ऊंचाई आठ योजन और चौडाई बारह योजनहै। तथा हरएक पर्वतमें दो दो गुफायें हैं ॥ २६८ ॥ विदेहकी गंगा आदि सोलह नदियां भरतक्षेत्र की गंगा नदी के समान हैं। रक्ता, रक्तावती नामकी सोलह नदियां भी भरतक्षेत्रकी गंगाके ही समान हैं और इनका उदय निषध पर्वतसे हुआ है। ये समस्त पूर्व विदेहकी नदियां हैं और सीता नदीमें जाकर मिली हैं ॥२६९॥ पश्चिम विदेहकी नदियां भी इतनी और इसी नामवाली हैं वे निषध और नीलपर्वतसे निकली हैं तथा शीतोदा नदीमें जाकर मिली हैं ॥ २७० ॥ इन नदियोंके ये सामान्य नाम बतलाये हैं इनमें हरएक नदी चौदह २ हजार नदियोंके परिवार सहित है ॥२७१॥ शीता और शीतोदा दोनों नदियोंका परिवार देवकुरु और उत्तर कुरु दोनों भोगभूमियोंमें चौरासी हजार नदियोंका है दोनों नदियोंमें हरएक नदीके तटसे व्यालीस २ हजार नदियोंका प्रवेश होता है। ॥ २७२ ॥ उक्त दोनों नदियोंमें हरएक नदीमें समुद्रपर्यंत पांचलाख बत्तीस हजार अडतीस नदियां मिली हैं और पूर्व पश्चिम विदेहमें समस्त नदियोंका प्रमाण दशलाख चोसठ हजार अठहत्तर है ॥ २७३–२७४ ॥ भरतक्षेत्रमें गंगा और सिंधु ये दो नदी हैं और इनका परिवार चौदह २ हजार नदियोंका बतलाया है। ऐरावत क्षेत्रमें रक्ता और रक्तोदा ये दो नदियां हैं एवं उनमें हरएकका परिवार भी चौदह २ हजार नदियों का है ॥ २७५ ॥ रोहित् रोहितास्या सुवर्णकूला और रूप्यकूला इन चार नदियोंमें हरएक नदीमें अट्ठाईस २ हजार नदियां आकर मिली हैं ॥ २७६ ॥ हरित् १

१ पचास योजन लंबी हैं।

हरिकांता २ नारी ३ और नरकांता इन चार नदियोंमें प्रत्येक नदीका परिवार छप्पन २ हजार नदियोंका है ॥२७७॥ गंगा सिंधु आदि सब नदियोंकी मिलकर सब परिवार नदी तीनलाख बानवे हजार बारह हैं॥ २७८ ॥ जंबूद्वीपकी सब नदियां मिलाकर चौदह लाख छप्पन हजार नव्वे होती हैं ये समस्त नदियां लवण समुद्रमें जाकर मिली हैं ॥ २७९ ॥ इसी जंबूद्वीपमें—कांचन पर्वतके समान वैडूर्यमणिमय अनेक देवोंसे सेवित चौंतीस वृषभ पर्वत हैं ॥२८०॥ शीता और शीतोदा दोनों नदियोंके तटपर पूर्व पश्चिम विदेहपर्यंत लंबे समुद्रसे बिलकुल मिले हुये दो देवारण्य और दो भूतारण्य ऐसे चार महाबन हैं ॥२८१॥ इनकी वेदियां भद्रशाल वनके समान दो हजार नौसौ बाईस योजन चोडी हैं ॥२८२॥ विदेहक्षेत्रके मध्यमें एक मेरुपर्वत है दोनों भोगभूमीतक तो उसकी लंबाई है। और ऊंचाई निन्यानवे हजार योजन है। यह तीन मेखलाओंसे युक्त है और इसकी चूलिका चालीस योजन ऊंची है ॥ २८३–२८४ ॥ यह पर्वत हजार योजन गहरा है दशहजार नव्वे योजन और एक योजनके ग्यारह भागोंमें दश भाग चौडा है ॥२८५॥ इसका परकोट इकतीस हजार नौसो दशयोजन ढाइ भाग है। पृथ्वीतलसे एकहजार योजनकी ऊंचाई पर इसकी चौडाई दश हजार योजन है ॥२८७॥ भद्रशाल वनके पास इसकी परिधि इकतीस हजार छै सो बाईस योजन तीनकोश बारह धनुष तीन हाथ और कुछ अधिक तेरह अंगुल है ॥ २८८–२८९ ॥ भद्रशालसे पांचसो योजनकी ऊंचाईपर दूसरा नंदनबन है एवं उसकी चौडाई पांचसो योजन है ॥ २९० ॥ नंदनबनके समीप मेरुपर्वतकी बाह्य चौडाई नौ हजार नौसौ चौअन योजन छै कला है ॥ २९१ ॥ और बाह्य परकोट इकतीस हजार चारसौ उनासी योजन कुछ अधिक है ॥ २९२ ॥ मेरुपर्वतकी भीतरी चौडाई आठ हजार नौसौ चौअन योजन छै कला है और भीतरी परकोट अट्ठाईस हजार तीनसौ सोलह योजन आठ कला कुछ अधिक है ॥ २९३ ॥ २९४ ॥ नंदनवनसे बासठ हजार पांचसो योजन ऊपर मेरुपर्वतपर सौमनस वन है और वह नंदनवनके समान है ॥ २९५ ॥ सौमनस वनके समीप मेरुपर्वतका बाह्यविस्तार चार हजार दोसौ बहत्तर योजन आठ कला है ॥ २९६ ॥ और बाह्यपरिधि तेरह हजार पांचसौ ग्यारह योजन छै कला है ॥ २९७ ॥ मेरुपर्वतका भीतरी विस्तार बाह्यविस्तारसे एकहजार कम अर्थात् तीन हजार दोसौ बहत्तर योजन आठ कला है ॥ २९८ ॥ और अभ्यंतर परिधि कुछकम दशहजार तीनसौ उनचास योजन और एक योजनके ग्यारह भागमें तीन भाग है ॥ २९९ ॥ सौमनस वनसे छत्तीस हजार योजनकी दूरीपर मेरुके ऊपर चौथा पांडुकवन है और यह चारसौ चौरानवे योजन चौडा है ॥ ३०० ॥ यहांपर मेरुपर्वतकी परिधि तीन हजार एकसौ बासठ योजन कुछ अधिक एक कोश है ॥ ३०१ ॥ मेरुपर्वतपर चालीस योजन ऊंची वैडूर्य

मणिमयी चूलिका है और उसका विस्तार मूलमें बारह योजन, मध्यमें आठ योजन अर अंतमें मस्तकपर चार योजन है ॥ ३०२ ॥ परिधि मूलमें सैंतीस योजन, मध्यमें पच्चीस और अंतमें मस्तकपर कुछ अधिक बारह योजन है ॥ ३०३ ॥ मेरुपर्वतकी चूलिकाके नीचे लोहिताक्षमय १, पद्मरागमय २, बज्रमय ३, सर्वरत्न ४, वैडूर्यविग्रह ५ और हरितालमय ६ ये छह परिधि हैं और इनमें हरएक परिधिका विस्तार सोलह हजार पांचसौ योजन है । सातवीं परिधि वनकृत नामकी है और उसके भद्रशालवन १ मानुपोत्तर २ देवरमण ३ नागरमण ४ भूतरमण ५ नंदन ६ उपनंदन ७ सौमनस ८ उपसौमनस ९ पांडुक १० उपपांडुक ११ ये ग्यारह भाग हैं॥ ३०४–३०९ ॥ इन भागोंमें यदि ग्यारह भाग मेरुपर चढा जाय तो मेरुकी मूलभागकी चौडाईसे एक भाग कम चौडाई होजाती है इसीप्रकार सबजगह योजनपर्यंत अंगुल हाथ आदि प्रमाणोंमें भी मेरुके विस्तारमें कमी वेशी समझनी चाहिये अर्थात् जहांपर ये ग्यारह भाग बतलाये हैं उनमें प्रथमभागसे यदि ग्यारह योजन ऊंचा चढा जाय तो मेरुकी चौडाई मूलभागसे एक योजन कम होजाती है और यदि ग्यारह हाथ वा ग्यारह अंगुल चढे तो मेरुपर्वतकी मूलभागकी चौडाईसे एक हाथ वा एक अंगुल चौडाई कम हो जाती है ॥ ३१०–३११ ॥ परंतु नंदनवन और सौमनस वन से ऊंचा ग्यारह हजार योजन चढा जाय तो मेरुपर्वतकी मूलभागकी चौडाईसे कम चौडाई नहिं होती वहांपर बराबर चौडाई रही आती है ॥ ३१२ ॥ चूलिकासे पांच योजन ऊपर चढनेपर तो एक योजन चौडाई घट जाती है और पांच अंगुल अथवा पांच हाथ चढनेपर एक अंगुल वा एक हाथ चौडाई घटती है ॥ ३१३ ॥ एकलाख योजन विस्तृत मेरुपर्वतकी दोनों पार्श्वभुजाओं (पखवाडों) की लंबाई एकलाख सौ योजन और ग्यारह भागोंमें दो भाग है ॥ ३१४ ॥ नंदनवनकी पूर्वदिशामें पण्य नामका भवन है दक्षिणदिशामें चारण, पश्चिममें गंधर्व और उत्तरदिशामें चित्रक भवन है ॥ ३१५ ॥ ये भवन तीस योजन चौडे और पचास योजन ऊंचे हैं एवं इनका परकोट नव्वे योजनका है ॥ ३१६ ॥ उनमें पण्यभवनमें तो सोम नामका लोकपाल सपरिवार क्रीडा करता है चारणमें यम लोकपाल रमण करता है एवं अंतके गंधर्व और चित्रक भवनोंमें वरुण और कुवेर नामके लोकपाल अपने २ परिवार सहित क्रीडा करते हैं । ए चारो ही साडेतीन २ किरोड देवांगनाओंके साथ रमण करते हैं ॥ ३१७–३१८ ॥ सौमनस वनकी चारोदिशामें वज्र १ वज्रप्रभ २ सुवर्ण ३ और सुवर्णप्रभ ये चार भवन हैं ॥ ३१९ ॥ इनकी चौडाई ऊंचाई और परिधि नंदनवनसे आधी समझना चाहिये ॥ ३२० ॥ इन भवनोंमें भी सोम, यम आदि उपर्युक्त लोकपाल साडेतीन २ करोड स्त्रियोंके साथ अपनी २ इच्छानुसार क्रीडा

करते हैं ॥ ३२१ ॥ पांडुकवनकी चारो दिशाओंमें लोहित १ अंजन २ हारिद्र ३ और पांडुर ४ ये चार महाभवन हैं इन भवनोंका विस्तार आदि नंदनवनके भवनोंसे आधा है और इनमें भी वे ही सोम यम आदि चारो लोकपाल देव साढेतीन २ करोड स्त्रियोंके साथ क्रीडा करते हैं ॥ ३२२ ॥ उपर्युक्त लोकपालोंमें सोम नामका लोकपाल पूर्वदिशाका राजा और स्वयंप्रभ विमानका स्वामी है इसके वाहन भूषण आदि सब लाल रंगके हैं और ढाई पल्यकी आयु है ॥ ३२३ ॥ इसके छैलाख छ्यासठ हजार छैसौ छ्यासठ अन्य भी अतिशय देदीप्यमान विमान हैं और उन सबोंका यह भोक्ता है ॥ ॥ ३२४ ॥ दक्षिणदिशाका राजा और अरिष्टविमानका स्वामी यम लोकपाल है इसके वाहन भूषण आदि सब काले हैं और आयु ढाई पल्य है ॥ ३२५ ॥ पश्चिम दिशाका स्वामी जलप्रभनामक विमानका पति वरुण लोकपाल है इसके वाहन भूषण आदि सब पीले हैं और आयु पौने तीन पल्यकी है ॥ ३२६ ॥ वल्गुप्रभ विमानका स्वामी उत्तरदिशाका प्रभु कुवेर लोकपाल है इसके भूषण आदि सब सफेद हैं और आयु तीन पल्य है ॥३२७॥ मेरुपर्वतकी पूर्व और उत्तर दिशाकेमध्यमें नंदनवनके भीतर कांचन पर्वतके समान एक मणिभद्र नामका कूट है और उसमें कूटनामधारी अर्थात् मणिभद्र नामका देव निवास करता है ॥ ३२८ ॥ वहींपर नंदन १ मंदर २ निषध ३ हिमवत् ४ रजत ५ रजक ६ सागरचित्र ७ और वज्र ८ ये भी आठ कूट हैं और हरएक दिशामें क्रमसे दो दोहैं ॥३२९–३३०॥ इन समस्त कूटोंकी ऊंचाई पांच सौ योजन है और चौडाई मूलमें पांचसौ योजन मध्यमें तीनसौ पचहत्तर और अंतमें मस्तकपर ढाईसौ योजनहै ॥३३१॥ इन कूटोंमें क्रमसे मेघंकरी १ मेघवती २ सुमेघा ३ मेघमालिनी ४ तोयधरा ५ विचित्रा ६ पुष्पमाला ७ और अनिंदिता ८ ये आठ देवियां निवास करती हैं ॥३३२–३३४॥ मेरुपर्वतकी पूर्व दक्षिण दिशाकेमध्यमें उत्पलगुल्मा १ नलिना २ उत्पला ३ और उत्पलोज्वला ४ ये चार वापियां हैं। और ये पचास योजन लंबी दशयोजन गहरी और पच्चीस योजन चौडी हैं ॥ ३३५ ॥ इन वापियोंके मध्यमें इंद्रका क्रीडाभवन बना हुआ है इस भवनका विस्तार इकतीस योजन एक कोश है और यह ऊंचा साढे वासठ योजन और आधा योजन गहरा है ॥ ३३६–३३७ ॥ इस भवनके मध्यमें इंद्रका सिंहासन है और चारो दिशाओंमें लोकपालोंके आसन हैं ॥ ३३८ ॥ इसीके ईशान और वायुकोणमें सामानिक देवोंके आसन हैं ॥ ३३९ ॥ इसके आगे इंद्रकी आठ पटरानियोंके आसन हैं। पूर्व दक्षिण दिशाके मध्यमें सभाके मुख्य २ अधिकारी देव वैठते हैं दक्षिणमें मध्यम अधिकारी और पश्चिम दक्षिणमें त्रायस्त्रिंश जातिके देव वैठते हैं एवं इनके पीछे सैन्यके महत्तर लोगोंके आसन हैं ॥ ३४०–३४१ ॥ चारो

दिशाओंमें इंद्रके आत्मरक्षकोंके भी आसन हैं। ये सब लोग इंद्रकी सेवा करते हैं और इंद्र पूर्वकी ओर मुखकर आसनपर बैठता है ॥ ३४२ ॥ क्रीडाभवनके पश्चिम-दक्षिणकी ओर भृंगा १ भृंगनिभा २ कज्जला ३ और कज्जलप्रभा ४ ये चार वापियां हैं ये समस्त समान हैं हमेशा इनमें कमल खिले रहते हैं और इनमें सौधर्म इंद्र आकर क्रीडा करता है ॥३४३॥ पश्चिमउत्तरदिशा (वायव्य) में श्रीकांता १ श्रीचंद्रा २ श्रीमहिता ३ और श्रीनिलया ४ ये चार वापिका हैं इनमें ईशान इंद्र आकर क्रीडा करता है ॥ ३४४ ॥ उत्तर और पूर्वदिशा (ईशान) में नलिना १ नलिनगुल्मा २ कुमुदा ३ और कुमुदप्रभा ४ ये चार वापियां है। इनमें क्रीडाभवन आदिकी रचना पूर्ववत् जाननी चाहिये और जैसा विस्तार प्रथम नंदनवनका वर्णन कर आये हैं सौमनस वनमें भी वैसा ही समझना चाहिये ॥ ३४५-३४६ ॥ पांडुक वनकी उत्तर पूर्व आदि दिशामें पांडुक १ पांडुकंबला २ रक्ता और रक्तकंबला ये चार शिला हैं ॥ ३४७ ॥ विदिशाओंमें अन्वर्थ वर्णकी धारक हैमी १ राजती २ तापनीयिका ३ और लोहिताक्षमयी ४ ये चार शिला हैं ये समस्त शिला अर्धचंद्रके आकारके समान हैं और आठ योजन ऊंची सौ योजन लंबी और पचास योजन चौडी हैं। जंबूद्वीपमें जितने तीर्थंकर होते हैं उन समस्त तीर्थंकरोंका इन्हीं शिलाओंपर अभिषेक होता है ॥ ३४८-३४९ इनमें रक्ता और पांडुक शिलाकी लंबाई तो दक्षिण उत्तर दिशा तक है और पांडुकंवला रक्तकंवलाकी पूर्व पश्चिम तक है ॥ ३५० ॥ इनमें हर एक शिलापर तीन २ रत्नमयी सिंहासन हैं और वे पांचसौ धनुष ऊंचे और पांचसौ ही धनुष चौडे हैं ॥ ३५१ ॥ तीन सिंहासनोंमें जो सिंहासन दक्षिणकी ओर है उसपर खडा होकर तो सौधर्म इंद्र भगवानका अभिषेक करता है और जो सिंहासन उत्तरकी ओर है उसपर भगवानके स्नपनके लिये ईशान इंद्र खडा होता है वीचके सिंहासनपर भगवान जिनेंद्र विराजते हैं। इन समस्त सिंहासनोंका मुख पूर्वकी ओर है ॥ ३५२ ॥ चारो दिशाओंकी चार पांडुक शिलाओंपर चार सिंहासन हैं और उनपर क्रमसे भरत, पश्चिमविदेह, ऐरावत और पूर्वविदेहके तीर्थंकरोंका जन्माभिषेक होता है ॥ ३५३ ॥ पांडुकवनकी चारो दिशाओंमें चार विशाल जिनमंदिर हैं ये जिनमंदिर चित्र विचित्र रत्नमयी हैं दिव्य हैं और अविनाशी तथा अकृत्रिम हैं ॥ ३५४ ॥ इनकी पचीस योजन लंबाई साडे वारह योजन चौडाई आधा कोश गहराई और पोने उन्नीस योजन ऊंचाई है ॥ ३५५ ॥ इनके प्रत्येक वडे द्वारकी ऊंचाई चार योजन और चौडाई दो योजन है तथा इनका प्रत्येक छोटाद्वार दो योजन ऊंचा और एक योजन चौडा है ॥ ३५६ ॥ जिसप्रकार पांडुकवनकी चारो दिशामें चार चैत्यालय हैं उसीप्रकार सौमनसवनकी चारो दिशाओंमें भी चार चैत्यालय समझना चाहिये

उनकी लंबाई चौडाई आदि पांडुक वनके चैत्यालयोंसे दूनी है और कुलाचल तथा वक्षार गिरियोंपर जो जिनमंदिर हैं उनकी चोडाई लंबाई आदि सौमनस वनके चैत्यालयोंके बराबर है ॥ ३५७ ॥ नंदनवन और भद्रशालवनमें भी चार चार चैत्यालय हैं उनकी ऊंचाई चोडाई आदि सौमनस वनके चैत्यालयोंसे दूनी समझनी चाहिये ॥३५८॥ विजयार्ध पर्वतोंपर जो सिद्धायतन चैत्यालय हैं उनकी लंबाई चोडाई आदि भरतक्षेत्रके विजयार्धके चैत्यालयोंके बराबर है ॥३५९॥ विजयार्धमें एक देवच्छंद नामका गर्भगृह है और उसकी लंबाई आठ योजन है चौडाई दो योजन ऊंचाई चार योजन गहराई एक कोश है ॥ ३६० ॥ यह देदीप्यमान रत्नोंसे बने हुये विशालस्तंभोंसे सुवर्णमयी भीतियां और उनमें खींची हुई सूर्य, चंद्रमा, उडते हुये पक्षी, और हिरणोंकी तस्वीरोंसे अतिशय रमणीय मालूम पडता है ॥ ३६१ ॥ चैत्यालयोंमें सुवर्ण और रत्नों की बनी हुई पांचसौ धनुष ऊंची एकसो आठ भगवानकी प्रतिमायें हैं ॥३६२॥ इन प्रतिविम्बोंमें हरएक प्रतिविम्बके दोनों ओर हाथमें चमर लिये हुये नागकुमार और यक्षकुमारोंकी दो २ मूर्तियां हैं जो कि अपनी उत्तम रचनासे सौधर्म और ईशान इंद्रकी मूर्तियोंकी तुलना करती हैं ॥३६३॥ हरएक प्रतिमाके झाडी कलश दर्पण शंख आरती धूपदानी दीपक कूंची आदि और झांझ मजीरा आदि एकसो आठ २ उपकरण हैं ॥ ३६४–३६५ ॥ ये चैत्यालय, झरोखा गृहजाली मोतियोंकी झालर भांति २ के रत्न मूंगा रत्नमयी कमल छोटी २ घंटरियोंसे अतिशय सुंदर हैं ॥ ३६६ ॥ हरएक जिन मंदिरका एक उन्नत प्राकार है यह प्राकार मूलभागमें छै योजन मध्यमें चार योजन और अंतभागमें दो योजन चौडा है चार योजन ऊंचा और एक कोश गहरा है एवं सुवर्णमयी है। इसकी चारो दिशाओंमें आठ योजन ऊंचे चार योजन चौडे चार तोरण हैं और इसका गोपुरद्वार (खासदरवाजा) पचास योजन ऊंचा है ॥ ३६७–३६८ ॥ इन अकृत्रिम चैत्यालयोंकी प्रत्येक दिशामें एकसो आठ २ और दशोदिशामें मिलकर एक हजार अस्सी ध्वजा हैं। ये ध्वजा चित्र विचित्र रत्नमयी दशप्रकारकी हैं सिंह हंस हाथी कमल वस्त्र वैल मयूर गरुड चक्र और मालाके इनमें चिन्ह हैं। और ये वहां पल्लवित सरीखी जान पडती हैं॥३६९–३७०॥ चैत्यालयोंके सामने एक विशाल सभा मंडप है उसके आगे प्रेक्षागृह (नृत्यमंडप) प्रेक्षागृहके आगे रत्नोंके स्तूप उनके आगे चैत्यवृक्ष हैं एवं चैत्यवृक्षके नीचे एक महामनोज्ञ पर्यंक आसनसे प्रतिमा विराजमान है॥३७१॥ भगवानके चैत्यालयसे पूर्वदिशामें मछली कछवा आदि जलजीवोंसे रहित स्वच्छ जल-

---

१ सौमनसवनके जिनमंदिरोंकी ऊंचाई साडे सैंतीस योजन लंबाई पचास योजन चौडाई पचीस योजन और गहराई एक कोशकी है। २ नंदनवन और भद्रशाल वनके चैत्यालयोंकी ऊंचाई पचहत्तर योजन लंबाई सौ योजन चौडाई पचास योजन और गहराई दो कोश है।

का धारक और शुभ एक नंद नामका सरोवर है ॥ ३७२ ॥ अनेक प्रकारके आश्चर्योंसे व्याप्त इस मेरुपर्वतका मूलभाग तो वज्रका है चूलिका वैडूर्यमणिकी है मध्यभाग सुवर्णमयी है एवं यह अनेक प्रकारोंकी मणियोंसे व्याप्त है ॥ ३७३ ॥ कवियोंने इस मेरुपर्वतका मेरु सुमेरु सुदर्शन मंदर शैलराज वसंत प्रियदर्शन रत्नोच्चय दिशामादि लोकनाभि मनोरम लोकमध्य दिशामंत्य दिशामुत्तर सूर्याचरण सूर्यावर्त स्वयंप्रभ और सुरगिरि इन नामोंसे वर्णन किया है ॥ ३७४–३७६ ॥ उपर्युक्त प्रकारसे वर्णित इस जंबूद्वीपके चौगिर्दा जगती (कोटकी भींति) है ॥ ३७७ ॥ यह जगती मूलभागमें बारह योजन मध्यमे आठ योजन और अंतभागमें चार योजन चौडी है इसकी ऊंचाई आठ योजन और नीचे जमीनमें गहराई आधा योजन है ॥ ३७८ ॥ यह मध्यभागमें सर्वरत्नमयी है अंतमें मस्तकपर वैडूर्यमणिमयी है और मूलभागमें वज्रमयी है एवं अपने तेजसे समस्तदिशाओंको देदीप्यमान बनाती है ॥ ३७९ ॥ इस जगतीके मध्यभागमें ऊपर नीचे पांचसो धनुष चौडी दोकोश ऊंची मनोहर वेदी है ॥ ३८० ॥ वेदीके भीतर तो अनेक बावडी और महलोंसे शोभित देवारण्य बन है और बाहिर सुवर्णमयी शिलापट्ट है ॥ ३८१ ॥ इनमें नीचे दर्जेकी वापियां सौ धनुष चौडी और दश धनुष गहरी हैं मध्यम दर्जेकी डेढसौ धनुष चौडी और पंद्रह धनुष गहरी हैं और उत्तम दर्जेकी बावडियोंकी चोडाई दोसो धनुष और गहराई बीस धनुष है ॥ ३८२ ॥ देवारण्यके छोटे २ प्रासादोंकी चौडाई पचास धनुष है लंबाई सौ धनुष और ऊंचाई पचहत्तर धनुष है ॥ ३८३ ॥ इन लघु प्रासादोंके दरवाजे छह धनुष चौडे बारह धनुष ऊंचे और चार धनुष गहरे हैं ॥ ३८४ ॥ यह जो लघुप्रासाद और उनके द्वारोंकी लंबाई चौडाई ऊंचाई बतलाई है उससे दूनी वा तिगुनी लंबाई चौडाई ऊंचाई मध्यप्रासाद और उनके द्वारोंकी है और मध्यप्रासाद तथा उनके द्वारोंसे दूनी लंबाई चौडाई ऊंचाई उत्तम प्रासाद और उनके दरवाजोंकी समझनी चाहिये परंतु गहराई दूनी २ ही है ॥ ३८५–३८६ ॥ इन प्रासादोंमें मालाओंकी पंक्ति कदलीवृक्ष प्रेक्षागृह भोजनगृह सभागृह वीणागृह गर्भगृह लतागृह चित्रगृह और आभरणगृह अतिशय सुंदर जान पडते हैं ॥ ३८७ ॥ यहां मोहनस्थान नामके भी अनेक मनोहर रत्नमयी गृह हैं और इनमें व्यंतर जातिके देव निवास करते हैं ॥ ३८८ ॥ इन प्रासादोंमें स्फटिक मूंगा और माणियोंसे निर्मित अतिशय विशाल हंसासन, क्रौंचासन, सिंहासन, मुंडासन, मकरासन, ऐंद्रासन, गंधासन आदि आसन हैं इनपर देव बैठते हैं और ये दीर्घस्वस्तिकके समान गोल हैं ॥ ३८९–३९० ॥ जगतीकी चारोदिशाओंमें विजय वैजयंत जयंत और अपराजित ये चार विशाल द्वार हैं ॥३९१॥ और इनमें हर एक आठ योजन ऊंचा और चार योजन चौडा है एवं हर एकके दोनों किवाड

वज्रमयी हैं॥ ३९२ ॥ इन दरवाजोंकी भीतरी प्रत्यंचा सत्तर हजार सातसौ दश योजन, तीन कोश, चौदह सौ चौवीस धनुष, तीन हाथ, इक्कीस अंगुल है ॥ ३९३–३९४ ॥ इसके धनुःपृष्ठका प्रमाण उनासी हजार[१] छप्पन योजन तीनकोश, एक हजार पांचसौ वत्तीस धनुप, सात अंगुल है ॥ ३९५–३९६ ॥ इन द्वारोंका अंतर धनुःपृष्ठके प्रमाणसे चार योजन कम समझना चाहिये ॥ ३९७॥ चारो दरवाजोंमें विजय दरवाजे का द्वारपाल विजय नामका देव है उसका रहनेका नगर इस जंबूद्वीपसे संख्यात द्वीप के बाद एक दूसरा जंबूद्वीप है उसकी पूर्वदिशामें है ॥ ३९८ ॥ यह नगर वेदीसे भूषित बारह योजन चौडा चार तोरणोंसे व्याप्त अतिशय आश्चर्यकारी और सुंदर है ॥ ३९९ ॥ विजयदेवके पुरके प्राकारकी चौडाई अंतमें शिखरपर एक योजन के आठ भागोंमें तीन भाग और मूलमें उससे चौगुनी है एवं उसकी गहराई (नींव) आधायोजन है ॥ ४०० ॥ उसकी ऊंचाई साडे सैंतीस योजन बतलाई है तथा हरएक दिशामें पचीस २ गोपुर कहे हैं ॥ ४०१ ॥ हरएक गोपुरका विस्तार इकतीस योजन एक कोश और ऊंचाई इससे दूनी और गहराई आधे योजन की है ॥ ४०२ ॥ गोपुरों (दरवाजे) के ऊपर सत्रह २ खनोंके महल बने हुये हैं और ये महल रत्नमयी तथा सुवर्णमयी हैं ॥ ४०३ ॥ दरवाजोंके मध्यमें देवोंके उत्पन्न होनेके स्थान हैं और ये स्थान एक कोश मोटे और बारहसौ योजन चोडे हैं ॥ ४०४ ॥ दरवाजोंके चारो ओर वेदियां बनी हुई हैं ये वेदियां पांचसो धनुष चौडी और दो कोश ऊंची है एवं इनमें हरएकमें चार २ तोरण हैं ॥ ४०५ ॥ दरवाजेके समान लंबा उस नगरके मध्यमें एक विशाल महल है उसकी ऊंचाई आठ योजन और चौडाई चार योजन है एवं उसमें विजय नामका देव निवास करता है ॥ ४०६ ॥ इस महलका दरवाजा हीरेका बना हुआ है। और किवाड सुवर्ण तथा मणियोंके बने हुये हैं । एवं चारो दिशाओंमें उसके समान और भी अनेक महल हैं ॥ ४०७ ॥ उसके आगे दूसरे मंडलमें वैसेही चारो दिशाओंमें रत्नमयी मंदिर हैं ॥ ४०८ ॥ उसके आगे तीसरे मंडलमें प्रथम द्वितीय मंडलसे आधे प्रासाद हैं चौथेमें चारो दिशाओंमें तीसरे मंडलके समान हैं ॥ ४०९ ॥ पांचवें मंडलमें चौथेसे आधे प्रासाद हैं और छठे मंड-लमें हरएक दिशामें पांचवेंकी बरावर प्रासाद हैं ॥ ४१० ॥ आदिके दो मंडलोंमें उप-र्युक्त देवोंके उत्पत्तिस्थानकी वेदियोंके समान वेदियां हैं तथा तीसरे चौथेमें पहिले दूसरेसे आधी और पांचवें छठेमें तीसरे चौथेसे आधी समझना चाहिये ॥ ४११ ॥ विजयदेवके महलमें उत्तम चमर तथा श्वेत छत्रसे शोभित मनोहर सिंहासन है उसमें

१–चारो दरवाजोका आपसमे फासला उनासी हजार बावन योजन तीन कोश एक हजार पांचसौ वत्तीस धनुप और सात अंगुल समझना चाहिये।

पूर्वकी ओर मुखकर विजयदेव बैठता है ॥ ४१२ ॥ उत्तरदिशामें छै हजार सामानिक देव एवं शेष दिशा तथा विदिशाओंमें छह पटरानी बैठती हैं ॥ ४१३ ॥ पूर्वदक्षिण दिशाके मध्यमें आठ हजार परिषत् देवोंके आसन हैं दक्षिण दिशामें दशहजार मध्यम देव बैठते हैं ॥ ४१४ ॥ पश्चिम दक्षिणके मध्यमें बाह्यसभाके बारह हजार देवोंके आसन हैं और पश्चिम दिशामें सातो सेनाके महत्तर लोग रहते हैं ॥ ४१५ ॥ चारो दिशाओंमें अठारह हजार अंगरक्षक देव रहते हैं एवं वहां उनके अठारहही हजार आसन हैं ॥ ४१६ ॥ छै पटरानियोंके सिवाय विजयदेवकी अन्यभी अठारह हजार रानियां हैं और कुछ अधिक एक पल्यकी उनकी आयु है ॥ ४१७ ॥ विजयदेवके महलसे उत्तर दिशामें एक सुधर्मा नामकी सभा है। सुधर्मा सभाकी लंबाई छै योजन, चौडाई तीन योजन ऊंचाई नौ योजन और गहराई एक कोश है ॥ ४१८ ॥ सुधर्मा सभासे उत्तरदिशामें एक विशाल जिनमंदिर है जिसकी कि लंबाई चौडाई सुधर्मा सभाके समान है। पश्चिमोत्तरदिशामें उपपाद सभा है ॥ ४१९ ॥ उसके आगे अभिषेकसभा अलंकारसभा और व्यवसायसभा ये तीन सभायें हैं ये लंबाई चौडाईमें सुधर्मा सभाकेही समान हैं ॥ ४२० ॥ विजयदेवके मंदिरमें पांच हजार चारसो सरसठ अन्यमंदिर हैं ॥ ४२१ ॥ विजयदेवके नगरसे पचीस योजनकी दूरीपर चारो दिशाओंमें क्रमसे अशोकवन १ सप्तपर्णवन २ चम्पकवन ३ और आम्रवन ये चार विस्तीर्ण वन हैं ॥ ४२२–४२३ ॥ ये चारो वन बारह हजार योजन लंबे और पांचसो योजन चौडे हैं क्रमसे इनमें अशोक सप्तपर्ण चम्पा और आम्रके प्रधान वृक्ष हैं जंबूवृक्षके समान ऊंचे हैं और इनका पीठ जंबूवृक्षके पीठसे आधा है ॥ ४२४–४२५ ॥ इन चारो वनोंकी चारों दिशाओंमें चार रत्नमयी मनोहर प्रतिबिंब है जिनकी कि अशोक आदि देव सदा पूजन किया करते हैं ॥४२६॥ अशोकवनकी उत्तर और पूर्वदिशाके मध्यमें एक अशोक नामका नगर है वहांपर विजयदेवके मंदिरके समान लंबा चौडा एक मनोहर मंदिर है उसका स्वामी अशोकदेव है ॥ ४२७ ॥ सप्तपर्णवनकी पूर्व और दक्षिण दिशाके मध्यमें सप्तपर्ण नामका नगर है उस नगरके मंदिरकी लंबाई चौडाई अशोकनगरके मंदिरकी बराबर है ॥ ४२८ ॥ चम्पकवनके पश्चिमदक्षिणकोणमें चम्पकदेवका चम्पकनामका नगर है चूतवनके पश्चिमोत्तरभागमें आम्रदेवका आम्रनामक नगर है ॥४२९॥ जिसप्रकार विजयदेवके महल आयु आदिका वर्णन किया गया है उसीप्रकार वैजयंत आदि तीनों देवोंके भी महल आदि समझना चाहिये वे तीनों क्रमसे दक्षिण पश्चिम और उत्तर दिशाओंके स्वामी हैं ॥४३०॥ इस-प्रकार जंबूद्वीपका संक्षेपसे वर्णन कर दिया गया। अब लवणसमुद्रका वर्णन करते हैं—

लवणसमुद्रका विस्तार दो लाख योजन है और वह वेदीसे भूषित खाईके समान

जंबूद्वीपको घेरकर स्थित है ॥ ४३१ ॥ इसका आकार कुछ कम पंद्रहलाख इक्यासी हजार एकसो उनतालीस योजन ॥ ४३२ ॥ और प्रकीर्ण (क्षेत्रफल) अठारह हजार नोसो तिहत्तर करोड, छयासठ लाख, उनसठ हजार छै सो योजन प्रमाण है ॥ ४३३– ४३४ ॥ इसकी ऊपर नीचे चौडाई दश दश हजार योजन, गहराई एक हजार योजन और ऊंचाई ग्यारह हजार योजन है॥ ४३५ ॥ इस लवणसमुद्रको–तटसे पचानवे हाथ की दूरीपर एक हाथ, पचानवे अंगुलकी दूरीपर एक अंगुल, पचानवे योजनकी दूरीपर एक योजन गहरा समझना चाहिये ॥ ४३६ ॥ आगे पचानवे योजन वा अंगुलादिकी दूरीपर यह समुद्र सोलह योजन वा सोलह अंगुलादि ऊंचा है ॥ ४३७॥ उजेरपाख (शुक्लपक्ष) में समुद्रका जल अपने परिमाणसे पांच हजार योजन अधिक बढ जाता है और अंधेरपक्षमें कम होते होते केवल ग्यारह हजार योजन रहजाता है ॥ ४३८ ॥ शुक्लपक्षमें प्रतिदिन समुद्र तीनसो तेतीस योजन और एक योजनके तीनभाग बढता है और कृष्णपक्षमें प्रतिदिन यह इतना ही कम होता चला जाता है ॥ ४३९ ॥ वेदीके अंतमें समुद्र मक्खीके पंख समान सूक्ष्म है परंतु बढता बढता आधा योजन हो जाता है ॥ ३४० ॥ वेदिकाके अंतमें उजेरपाखमें प्रतिदिन समुद्रकी वृद्धि दोसौ छयासठ धनुष दो हाथ सोलह अंगुल होती है और कृष्णपक्षमें प्रतिदिन उतनीही घटती है ॥ ४४१ ॥ संकुचित होता हुआ समुद्र नीचे भागमें नावके समान रहजाता है और ऊपर पृथ्वीपर विस्तीर्ण होजाता है अथवा जुडी हुई नौकाके समान वा यवराशिके आकारके तुल्य होजाता है ॥ ४४२ ॥ वेदीसे पचानवे हजार योजन समुद्रमें घुसकर नीचे चारो दिशाओंमें चार पाताल विवर (कलश) हैं ॥ ४४३ ॥ उनमें पूर्वदिशामें तो पाताल नामकाही विवर है पश्चिममें बडवामुख दक्षिणमें कदंबुक और उत्तरमें यूपकेसर है ॥ ४४४ ॥ ये चारो पाताल विवर ऊपर नीचे दश २ हजार योजन चौडे हैं एवं इनकी मध्यभागमें चौडाई और गहराई एक २ लाख योजन है। ॥ ४४५ ॥ ये चारोही पाताल विवर सर्वदा समान जलसे भरे रहते हैं और इनकी वज्रमयी भींतिकी मुटाई पांचसौ योजन है॥ ३४६ ॥ हरएक पाताल विवरमें तीन २ भाग हैं इनमें प्रत्येक भाग तेतीस हजार तीनसौ तेतीस २ योजन और एक कला प्रमाणहै। ॥ ४४७ ॥ ऊपरके भागमें तो केवल जल रहता है नीचे भागमें पवन और मध्यभागमें जल और पवन दोनों रहते हैं ॥ ४४८ ॥ पातालोंमें पवनका नीचा ऊंचा होना स्वाभाविक है इसलिये पवनके ऊंचे नीचे होनेसे ऊपरभागमें जलकाभी नीचा ऊंचा परिवर्तन होता रहता है ॥ ४४९ ॥ पाताल विवरोंके पवनकी सहायतासे उजेरपाखमें समुद्र का जल एक योजनके पंद्रहभागोंमें एक भाग बढजाता है और अंधेरेपाखमें बढा हुआ जल घटकर उतना का उतनाही रहजाता है ॥ ४५० ॥ इन चारो पाताल विव-

रोंका आपसमें अंतर दोलाख सत्ताईस हजार एकसौ पोंना इकहत्तर योजन है ॥४५१॥ इसप्रकार समुद्रके चारोदिशाओंके चार पाताल विवरोंका बर्णन करदिया गया अब विदिशाओंके पाताल विवरोंका वर्णन करते हैं—

चारो विदिशाओंमें छोटे २ चार पाताल विवर (कलश) हैं इनका ऊपर नीचे विस्तार एक २ हजार और मध्यमें दशहजार योजन है एवं ऊंचाई भी दशहजार योजन है ॥ ४५२ ॥ इनकी वज्रमयी भींति पचास योजन मोटी है दिशाके पाताल विवरोंके समान इनके तीनों भाग जल और पवन से भरे हुये हैं ॥ ४५३ ॥ तीनों भागोंमें प्रत्येक भाग तीन हजार तीनसौ तेतीस तेतीस योजन और एक योजनके तीन भागोंमें एकभाग है ॥ ४५४ ॥ दिशा विदिशाके पाताल विवरोंमें परस्पर अंतर एक लाख तेरह हजार पिचासी योजन और एक योजनके आठभागोंमें तीन भाग है ॥४५५॥ लवणसमुद्रमें इन आठो पाताल विवरोंके मध्यमें अन्य भी एक हजार छोटे २ पाताल विवरहैं और वे मानिंद मोतियोंकी मालाके सुंदर जान पड़ते हैं ॥ ४५६ ॥ इन छोटे पाताल विवरों की गहराई एक हजार योजन है एवं विस्तार मध्यमें एक हजार योजन और ऊपर नीचे सौ योजन है ॥ ४५७ ॥ समस्त छोटे २ कलश प्रत्येक बडे कलशके अंतरालमें एकसौ पच्चीस २ हैं इनका आपसमें अंतर कुछ अधिक सातसौ अठानवे योजन एक कोस है ॥ ४५८ ॥ और ये समस्त छोटे बडे कलश यथायोग्य जलके प्रवाहसे परिपूर्ण हैं ॥ ५५९ ॥ लवणसमुद्रके तटसे व्यालीस हजार योजनकी दूरीपर चारो दिशाओंमें एक एक हजार योजन ऊंचे दो दो पर्वत हैं ॥ ४६० ॥ पूर्वदिशाके पाताल नामक विवरकी दोंनों ओर कौस्तुभ और कौस्तुभभास ये दो पर्वत हैं ये दोनों पर्वत रूपामयी अर्ध घडेके आकारके हैं इन दोनों पर्वतोंके अधिष्ठाता उदंग और उदवास देव हैं इनकी समस्त विभूति उपर्युक्त विजय देवके समान है ॥ ४६१ ॥ दक्षिण दिशामें कदंबुक पाताल विवरकी दोनों ओर उदक और उदवास नामके दो पर्वत हैं और उनके स्वामी शिव और शिवदेव नामक देव हैं ॥ ४६२ ॥ पश्चिम दिशामें बडवानामक पाताल विवरकी दोनों ओर शंख और महाशंख नामकेदो पर्वत हैं ये दोनों पर्वत शंखके समान सफेद हैं और इनके स्वामी देव उदंग और उद्वास हैं ॥ ४६३ ॥ उत्तरदिशामें यूपकेसर नामक पाताल विवरकी दोनों ओर उदक और उदवासनामके दो पर्वत हैं और उनके अधिष्ठाता रोहित और लोहितांक हैं ॥ ४६४ ॥ इन पर्वतोंका अपने २ पाताल विवरोंसे एकलाख सोलह हजार योजनोंका अंतर है। ॥ ४६५ ॥ पर्वतोंके ऊपर अनेक नगर वनेहुये हैं उनमें वेलंधर नागकुमारोंके साथ उनके स्वामी निवास करते हैं ॥ ४६६ ॥ लवण समुद्रके भीतर व्यालीस हजार नागकुमार रहते हैं और वे नियोगसे लवण समुद्रकी भीतरी वेलाको धारण करते हैं।

॥ ४६७ ॥ बहत्तर हजार नागकुमार जलसे व्याप्त बाह्य वेलाके धारक हैंऔर ये जल-क्रीडा करनेके बडे प्रेमी हैं ॥ ४६८ ॥ अठाईस हजार नागकुमार लवणसमुद्रकी अग्रशिखा धारण करनेवाले हैं ॥ ४६९ ॥ पश्चिमोत्तर दिशामें बारहहजार योजनकी दूरीपर समुद्रमें एक गौतम नामका टापू है इसका विस्तार बारह हजार योजन है। स्वामी गौतम नामका देव है और उसका परिवार आदि उपर्युक्त कौस्तुभ देवके समान है ॥ ४७०–४७१ ॥ इसकी पूर्वदिशामें एक टांगवाले मनुष्य रहते हैं दक्षिणमें सींगवाले पश्चिममें पूंछवाले और उत्तरमें गूंगे रहते हैं ॥ ४७२ ॥ चारो विदिशाओंमें खरगोशके कानके समान कानवाले मनुष्य हैं। एक टांगवाले मनुष्योंके उत्तर दक्षिण दोनों ओर क्रमसे घोडेके मुखवाले और सिंहके मुखवाले रहते हैं ॥ ४७३ ॥ सींगवाले मनुष्योंकी दोनों ओर शष्कुलीके समान कानवाले मनुष्य रहते हैं। पूंछवाले मनुष्योंकी दोनों ओर क्रमसे कुत्ताके मुखवाले और बंदरके मुखवाले हैं ॥ ४७४ ॥ गूंगे मनुष्योंकी दोनो ओर शष्कुलीके समान कर्णवाले मनुष्य रहते हैं। विजयार्धकी दक्षिण उत्तर श्रेणियोंमें गौके मुखवाले और भेडके मुखवाले मनुष्य रहते हैं ॥४७५॥ हिमवान् पर्वतकी पूर्व पश्चिम दिशामें विजलीके समान मुखवाले और कालेमुखके मनुष्य रहते हैं ॥ शिखरीपर्वतकी पूर्वपश्चिम दिशामें क्रमसे मेघके समान मुखवाले और विजलीके समान मुखवाले मनुष्य हैं ॥ ४७६ ॥ विजयार्ध पर्वतकी पूर्व पश्चिम दिशाओंमें दर्पणके समान और हाथीके समान मुखवाले मनुष्य रहते हैं इस प्रकार इन चौवीस अंतर द्वीपोंमें ही कुभोगभूमियां जीव हैं ॥ ४७७ ॥ आगे पांचसौ योजनकी दूरीपर दिशा विदिशा एवं अंतर दिशाओंमें छैसौ योजन चौडे अनेक पर्वतों से युक्त पचास द्वीप हैं ॥ ४७८ ॥ ये द्वीप दिशामें सौ योजन पर्वतोंके पास पच्चीस योजन और विदिशा एवं अंतरदिशाओंमें पचास योजन चौडे हैं ॥ ४७९ ॥ इनका पिचानवेमां भाग जलमें डूबा हुआ है एक योजन ऊपर निकले हुए हैं और वेदियोंसे भूपित हैं ॥ ४८० ॥ पचानवेवें भागको सोलहसे गुणा करनेपर गुणित भागोंकी बरावर इनके ऊपर नीचे क्षेत्रका भाग जलसे व्याप्त है ॥ ४८१ ॥ लवणोदधिके मध्य जितने जंबूद्वीपके पास द्वीप हैं उतने ही धातकीखंडके समीप द्वीप समझने चाहिये ॥ ४८२ ॥ उनमें अठारह कुल कुभोगभूमियां जीवोंके हैं और वे एक पल्यकी आयुवाले हैं। एक टांगवाले कुभोगभूमियां जीव तो गुफाओंमें रहते हैं एवं मिट्टीका भोजन करते हैं। और अन्य कुभोगभूमियां फल पुष्पोंका आहार करते हैं वृक्षके मूल में रहते हैं एक दिनका अंतर दे भोजन करते हैं तथा मरकर व्यंतर और भवनवासी देव होते हैं ॥ ४८३–४८४ ॥ लवणसमुद्रकी परकोट भींति (जगती) जंबूद्वीपकी परकोट भींतिके समान है और उसके भीतर शिलापट्ट और बाहिर अनेक वन हैं ॥

४८५ ॥ जंबूद्वीपका चौगुना विस्तार जंबूद्वीपकी सूचीका प्रमाण है और लवणसमुद्रका चौगुना विस्तार लवणसमुद्रकी सूचीका प्रमाण है परंतु लवणसमुद्रके अंतमंडलमें सूची का परिमाण पांच लाख है। पांचलाखमेंसे विस्तारके दोलाख कमा देनेपर सूची तीन लाख रह जाती है उसका चारसे गुणा करनेपर बारह होते हैं और बारह लाख विस्तारको दो लाखोंसे गुणा करनेपर चौवीस लाख होते हैं इसप्रकार जंबूद्वीपके समान चौवीस खंड इस लवण समुद्रमें हैं धातकीखंडमें लवणसमुद्रके खंडोंसे छहगुने (एकसौ चवालीस) हैं। धातकीखंडके खंडोंसे सतगुने कालोदधिमें (छहसो वहत्तर) खंड हैं और पुष्कराद्धमें कालोदधिसे चौगुने दोहजार आठसौ अस्सी हैं ॥ ४८६–४८७ ॥ इस प्रकार लवणसमुद्रका संक्षिप्त वर्णन करदिया गया अब धातकीखंड द्वीपका वर्णन करते हैं—

जिसप्रकार जंबूद्वीपको लवणसमुद्र घेरे है उसीप्रकार लवणसमुद्रको धातकीखंड द्वीप घेरे है और यह चार लाख योजन चौडा और कंकणके समान गोल है ॥४८८॥ इस धातकीखंड द्वीपकी भीतरी सूची पांच लाख योजन, मध्यम सूची नौलाख और बाह्यसूची तेरह लाख योजनकी है ॥ ४८९ ॥ इनमें पूर्व सूचीकी परिधि पंद्रह लाख इक्यासी हजार एकसौ उनतालीस योजन है ॥ ४९० ॥ मध्यम सूचीकी परिधि अट्ठाईस लाख छयालीस हजार पचास योजन है ॥४९१॥ और बाह्यसूचीकी परिधिका विस्तार इकतालीस लाख दश हजार नौसो इकसठ योजन बतलाया है ॥ ४९२ ॥ धातकीखंडमें पूर्व पश्चिम दिशामें दो मेरु पर्वत हैं और दक्षिण उत्तरदिशामें क्षेत्रोंके विभाग करनेवाले दो इष्वाकार गिरि हैं ॥ ४९३ ॥ इनकी एक २ हजार योजनकी चौडाई चारचार लाख योजनकी लंबाई चारसौ चारसौ योजनकी ऊंचाई और सौ २ योजनकी गहराई है ॥ ४९४ ॥ जबूद्वीपमें एक मेरुपर्वतके भरत आदि सात क्षेत्र और हिमवान आदि छै कुलाचल बतला आये हैं धातकीखंडमें दो मेरुके उन्हीं नामोंके उनसे दूने क्षेत्र नदी कुलपर्वत और सरोवर समझने चाहिये। धातकीखंडके क्षेत्र और पर्वतोंकी ऊंचाई और गहराई तो जंबूद्वीपके ही क्षेत्र पर्वतोंके समान है परंतु जंबूद्वीपके क्षेत्र पर्वतोंसे धातकीखंडके क्षेत्र पर्वतोंका विस्तार दूना समझना चाहिये ॥ ४९५–४९६ ॥ धातकीखंडमें ये पर्वत और क्षेत्र भीतरकी ओर तो पहिये (चक्र) के अराओंके समान हैं। और बाहिरी ओर छुराके समान हैं ॥ ४९७ ॥ एकलाख अठहत्तर हजार आठसौ ब्यालीस योजन प्रमाण धातकीखंडका क्षेत्र पर्वतोंसे घिरा हुआ है ॥ ४९८ ॥ धातकीखंडमें भरतक्षेत्रका भीतरी विस्तार छह हजार छह सौ चौदह योजन और एक योजनके दोसौ बारह भागोंमें एकसौ उनतीस भाग है ॥ ४९९ ॥ क्योंकि क्षेत्रोंके वर्णनमें योजनके दोसौ बारह भाग लिये हैं और पर्वतोंके विस्तार

आदि वर्णनमें एकसौ उन्नीस भाग माने हैं ॥ ५०० ॥ भरतक्षेत्रका मध्यम विस्तार बारह हजार पांचसौ इक्यासी योजन छत्तीस भाग है ॥५०१॥ और बाह्यविस्तार अठारह हजार पांचसौ सैंतालीस योजन और एकसौ पचपन भाग है ॥५०२॥ भरतक्षेत्रके भीतरी बाहरी और मध्यकी चौडाईसे विदेहक्षेत्र पर्यंत चौगुनी २ चौडाई समझनी चाहिये और विदेहक्षेत्रसे आगें ऐरावत क्षेत्रतक उत्तरोत्तर कम जाननी चाहिये ॥ ५०३ ॥ धातकीखंडद्वीपमें हिमवान् पर्वतको आदि लेकर बारहो पर्वतोंका विस्तार जंबूद्वीपके पर्वतोंसे दूना है। इसीप्रकार पुष्करार्धद्वीपमें भी द्विगुण २ विस्तार है और वहांपर भी बारह ही कुलाचल हैं ॥५०४॥ ढाईद्वीपमें मेरुपर्वतको छोडकर कुलाचल, वृक्ष, वक्षार पर्वत, वेदियां आदिकी गहराई ऊंचाईसे चौथा भाग है ॥ ५०५ ॥ धातकीखंडके कुंडोंका विस्तार उनकी गहराईसे छैगुना और नदी सरोवरोंका विस्तार उनकी गहराईसे पचास गुना है ॥ ५०६ ॥ धातकीखंडके चैत्यालयोंकी ऊंचाई, डेढसौ योजन है और जंबू आदि दशवृक्ष जंबूद्वीपके वृक्षोंके ही बराबर है ॥ ५०७ ॥ नदी छोटे सरोवर वन कुंड कमल बडे सरोवर इनकी गहराई तो जंबूद्वीपके नदी आदिकी गहराईके ही समान है किंतु इनका विस्तार दूना है ॥ ५०८ ॥ चैत्य चैत्यालय वृषभाद्रि नाभिपर्वत चित्रकूट आदि कांचन आदि पर्वत दिग्गज पर्वतोंके शिखर और बेदी आदिकी चौडाई गहराई और ऊंचाई ढाई द्वीपमें बराबर बताई है ॥ ५०९–५१० ॥ धातकीखंडमें समस्त शिखरोंके रत्नमयी तोरण आधा योजन ऊंचे और पांचसौ धनुष चौडे हैं। ॥ ५११ ॥ धातकीखंड और पुष्करार्धके चारो मेरुपर्वत चौरासी २ हजार योजन ऊंचे जमीनमें एक हजार योजन गहरे और मूलभागमें नौ हजार पांचसौ योजन चौडे हैं ॥ ५१२–५१३ ॥ इनके मूलभागका परकोट तीस हजार व्यालीस योजन है। भूमिमें विस्तार नौ हजार चारसौ योजन है ॥ ५१४–५१५ ॥ इनकी नीचे पृथ्वी पर परिधि उनतीस हजार सातसौ पचीस योजन है ॥ ५१६ ॥ मेरुके ऊपर तलसे पांचसौ योजनकी दूरीपर नंदनवन है और पचपन हजार पांचसौ योजनके ऊपर सौमनस वन है ॥ ५१७ ॥ सौमनस बनसे अठाईस हजार चारसौ चौरानवे योजनकी दूरीपर पांडुकवन है ॥ ५१८ ॥ नंदनबनमें मेरुपर्वतका विस्तार नौ हजार तीनसौ पचास योजन है ॥ ५१९ ॥ नंदनवनकी बाह्य प्रदक्षिणा उनतीस हजार पांचसौ सरसठ योजन है ॥ ५२० ॥ नंदनवनको छोडकर मेरुपर्वतकी भीतरी चौडाई आठहजार तीनसौ पचास योजन है ॥ ५२१ ॥ नंदनवनमें मेरुपर्वतकी परिधि छब्बीस हजार चारसौ पांच योजन है ॥ ५२२ ॥ सौमनसवनमें मेरुपर्वतका बाह्य विस्तार तीन हजार आठसौ योजन है और भीतरी विस्तार दो हजार आठसो योजन है ॥ ५२३ ॥ सौमनस वनमें मेरुका बाह्यपरिक्षेप (परिधि) बारह हजार सोलह योजनका है और भीतरी

परिधि आठ हजार आठसौ चौअन योजन है ॥ ५२४–५२५ ॥ पांडुकवनमें मेरु पर्वतकी परिधि तीन हजार एकसौ वासठ योजन और कुछ अधिक एक कोश है ॥ ५२६ ॥ नंदनवन से दशहजार योजनकी ऊंचाई तक तो मेरुपर्वतका विस्तार दशहजार योजनका ही रहता है और दशहजार योजनसे आगे क्रमसे कम होता चला जाता है एवं वह अंगुल हस्त और योजन आदिका दशमा दशमा भाग कम २ होता जाता है ऐसा समझना चाहिये अर्थात् दशहजार योजनके ऊपर एकहजार योजन और दश हाथ वा दश अंगुलके ऊपर एक हाथ वा एक अंगुल कम होता है। इसीप्रकार सौमनसवनसे भी दशहजार योजनादिसे आगे एकहजार योजन आदि विस्तार कम होता जाता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ५२७–५२८ ॥ पांचो मेरुपर्वतोंके छोटे २ सरोवर शिला शिखर महल चैत्य और चूलिकाओंकी चौडाई गहराई और ऊंचाई समान है ॥ ५२९ ॥ धातकीखंडके भद्रशालवनका विस्तार एकहजार दोसौ पचीस योजन है ॥५३०॥ और इसकी लंबाई एकलाख सात हजार आठसौ उनासी योजन है ॥५३१॥ धातकीखंडमें गंधमादन और विद्युत पर्वतोंकी लंबाई तीन लाख छप्पन हजार दोसौ सत्ताईस योजन वतलाई है ॥ ५३२ ॥ माल्यवान एवं सैामनस पर्वतोंकी पांच लाख उनहत्तर हजार दो सौ उनसठ योजन है ॥ ५३३ ॥ कुलाचलों पर्यत कुरुक्षेत्रका विस्तार दोलाख तेईस हजार एकसौ अट्ठावन योजन है ॥ ५३४ ॥

मेरुपर्वतसे कुलाचलों पर्यत कुरुक्षेत्रोंकी वक्र लंबाई तीनलाख सतानवे हजार आठसौ सतानवे योजन और बानवे भाग है यह वर्णन धातकीखंडके दोनों मेरुपर्वतोंके पूर्वार्ध और पश्चिमार्धका समझना चाहिये ॥ ५३५–५३६ ॥ कुरुक्षेत्रकी दोनों ओर सीधी लंवाई तीनलाख छयासठ हजार छैसौ अस्सी है ॥ ५३७ ॥ जिसप्रकार जंबूद्वीपमें एक मेरुपर्वतके बत्तीस विदेह क्षेत्र वतलाये हैं उसीप्रकार धातकीखंडमें भी प्रत्येक मेरुपर्वतके बत्तीस २ विदेह समझना चाहिये और उनमें पूर्वविदेह पूर्वकी ओर और पश्चिम विदेह पश्चिमकी ओर जानना चाहिये ॥ ५३८ ॥ मेरुपर्वतसे पूर्व कच्छानाम का पूर्वविदेह है और मेरुपर्वतसे पश्चिम सूचीसे युक्त गंधमालिनी नामका पश्चिम विदेह है। वह सूची ग्यारह लाख पचीस हजार एकसौ अठावन योजन है ॥ ५३९–५४० ॥ इस सूचीकी परिधि पैंतीस लाख अठावन हजार वासठ योजनकी कही है। ॥ ५४१ ॥ मेरुपर्वतसे पूर्व पद्मा पूर्वविदेह है और मेरुसे पश्चिम मंगलावती पश्चिम विदेह है एवं उनकी सूची मेरुपर्वतके मध्यमेंछहलाख चौहत्तर हजार आठसौ व्यालीस योजन है॥५४२–५४३॥ सूचीकी परिधि इक्कीस लाख चौतीस हजार अडतीस योजन है ॥५४४॥ इनके क्षेत्रका विस्तार नौ हजार ६ सौ तीन योजन और एक योजनके आठ भागोंमें तीन भाग है ॥ ५४५ ॥ विदेहक्षेत्रके–वक्षार पर्वत विभंगा नदी और देवारण्य

की लंबाईके आदि मध्य और अंत ऐसे तीन भेद हैं॥५४६॥ उनमें कच्छा भूमिकी पूर्व-विदेहकी आदि लंबाई पांच लाख नौ हजार पांचसौ सत्तर योजन और एक योजनके दोसौ बारह भागोंमें दोसौ भाग है ॥ ५४७ ॥ उसकी आदि लंबाई-क्षेत्रकी लंबाई (आयामवृद्धि) मिलजानेपर मध्य लंबाई और मध्य लंबाई-क्षेत्रकी लंबाई मिल जानेपर अंत लंबाई होजातीहै इसीप्रकार पर्वतादिमें भी समझना चाहिये अर्थात् हर एक क्षेत्र वक्षारगिरि, विभंगनदीकी आदि मध्य लंबाईमें-मध्य, अंत्यकी लंबाई उसीकी आयामवृद्धिके मिलादेनेसे होजाती है॥ ५४८ ॥ पूर्वके क्षेत्र, वक्षारगिरि, विभंगनदियोंकी अंत्य लंबाई उसके बादके क्षेत्र, वक्षारगिरि, विभंगनदियोंकी आदिकी लंबाई जाननी चाहिये ॥ ५४९ ॥ क्षेत्रकी आयामवृद्धि (लंबाई) चार हजार पांचसौ चौरासी योजन है ॥ ५५० ॥ वक्षारगिरियोंकी आयामवृद्धि चारसौ सतहत्तर योजन साठ कला है ॥ ५५१ ॥ विभंगनदियोंकी आयामवृद्धि एकसौ उन्नीस योजन बावन कला है ॥ ५५२ ॥ और देवारण्यकी आयामवृद्धि दो हजार सातसौ नवासी योजन बानवे कला है ॥ ५५३ ॥ पद्मा क्षेत्रकी लंबाई दोलाख चौरानवे हजार छै सौ तेईस योजन एकसौ छयानवे कला है ॥ ५५४ ॥ और यहांके वक्षार क्षेत्र नदी आदिकी आयामवृद्धिहीन जो आदि लंबाई है सो मध्य लंबाई समझनी चाहिये और आयामवृद्धि-हीन जो मध्य लंबाई है वह अंतकी लंबाई जाननी चाहिये ॥ ५५५ ॥ वक्षारगिरि क्षेत्र और विभंगनदियां शीता शीतोदा नदीके आमने सामने तटपर बसे हुये हैं और इनका आयाम समान है ॥ ५५६ ॥ पूर्वमेरुके पूर्वविदेहोंके समान पश्चिममेरुके पश्चिम विदेह हैं और पूर्वमेरुके पश्चिमविदेहोंके समान पश्चिममेरुके पूर्वविदेहोंको जानना चाहिये। ॥ ५५७ ॥ इस धातकीखंडद्वीपमें जंबूद्वीपके समान लाख २ योजन चौडे एकसौ चवालीस खंड हैं। और समस्तधातकीखंडका फैलाव (क्षेत्रफल) एक लाख तेरह हजार आठसौ इकतालीस करोड निन्यानवे लाख सत्तावन हजार छहसौ इकसठ योजन है ॥ ॥ ५५८-५५९ ॥ इसप्रकार धातकी खंड द्वीपका संक्षिप्त वर्णन करदिया गया अब कालोदधिका वर्णन करते हैं—

जिसप्रकार लवणसमुद्रको धातकीखंडद्वीप घेरे हैं उसीप्रकार धातकीखंडद्वीप को कालोदधि घेरे हैं धातकीखंडद्वीपसे कालोदधिका विस्तार दूना अर्थात् आठ लाख योजन है॥ ५६० ॥ कालोदधिकी परिधि इक्यानवे लाख सत्तर हजार छह सौ पांच योजन कुछ अधिक है ॥ ५६१ ॥ कालोदसमुद्रमें एक २ लाख योजनके जंबूद्वीपके समान छह सौ बहत्तर खंड हैं ॥ ५६२ ॥ कालोदसमुद्रका समस्त फैलाव (क्षेत्रफल) पांचलाख इकतीस हजार दोसौ बासठ करोड चौसठलाख उनत्तर हजार अस्सी योजनका है ॥५६३-५६४॥ कालोदसमुद्रकी पूर्वदिशामें जलसरीखे मुखवाले

कुभोगभूमियां मनुष्य रहते हैं। दक्षिण दिशामें घोडेके कानके समान कानवाले मनुष्य रहते हैं। पश्चिम दिशामें पक्षिके मुख सरीखे मुखवाले और उत्तर दिशामें हाथीकेसे कानवाले मनुष्य निवास करते हैं। कालोदसमुद्रकी विदिशाओंमें शूकरके समान मुखवाले मनुष्य रहते हैं। जलमुखवाले मनुष्योंकी दक्षिण उत्तर दोनों ओर ऊंटकेसे कानवाले और गौकेसे कानवाले मनुष्य रहते हैं। हाथीके कानवाले और घोडेके कानवाले मनुष्योंकी दोनों ओर बिल्लीके मुखवाले मनुष्य रहते हैं और पक्षीसरीखे मुखवाले मनुष्योंके आसपास गजसरीखे मुखवाले लंबे २ कानोंसे युक्त मनुष्य हैं ॥५६५–५६७॥ कालोदेसमुद्रके पास विजयार्ध पर्वतकी दोनों श्रेणियोंमें शिशुमार (सूंस) के मुखवाले और मगर सरीखे मुखवाले मनुष्य रहते हैं ॥५६८॥ दोनों हिमवान पर्वतके अग्रभागमें भेडियाके मुखवाले और चीतेके मुखवाले हैं। दोनों शिखिरी पर्वतोंके अग्रभागमें शृगाल और भालू सरीखे मुखवाले मनुष्य रहते हैं दोनों विजयार्धोंके अग्रभागमें झाडी और चीते सरीखे मुखवाले मनुष्य निवास करते हैं वाह्य अभ्यंतर जगतीके मध्यमें भी चीते सरीखे मुखवाले मनुष्य रहते हैं ॥ ५६९–५७० ॥ इन समस्त कुभोगभूमियोंका आयु वर्ण गृह और आहार लवणसमुद्रके कुभोगभूमियोंके समान समझना चाहिये और जहां समुद्रका तट छिन्न भिन्न है वहांपर समस्त द्वीप हजार २ योजन गहरे हैं ॥५७१॥ कालोदसमुद्रमें कुछ अधिक पांचसौ अंतरद्वीप हैं और इनका विस्तार लवण समुद्रके अंतरद्वीपोंसे दूना है। कालोदसमुद्रमें कुभोगभूमियोंके रहनेके स्थान चौवीसद्वीप तो भीतर हैं और चोवीस ही बाहर हैं एवं लवणोदधि तथा कालोदधिके मिलकर समस्त अंतरद्वीप छयानवे हैं ॥ ५७२–५७३ ॥ इसप्रकार कालोदसमुद्रका संक्षिप्त वर्णन कर दिया गया अब पुष्करद्वीपका वर्णन करते हैं—

जिसप्रकार धातकीखंडके चारो तरफ कालोद समुद्र है उसीप्रकार कालोद समुद्रके चौगिर्द पुष्करद्वीप है इसका विस्तार कालोद समुद्रसे दूना है। इसके मध्यमें दो मेरुपर्वत हैं और यह विशाल पुष्करवृक्षसे संयुक्त है ॥ ५७४ ॥ इसके ठीक मध्यमें एक मानुषोत्तर नामका पर्वत है इसने पुष्करद्वीपमें मनुष्यक्षेत्रकी सीमा बांध दी है अर्थात् मानुषोत्तर पर्वत तक आधे पुष्करद्वीपमें ही मनुष्य क्षेत्र है आगे नहीं इसलिये इसद्वीपका नाम पुष्करार्ध है ॥ ५७५ ॥ पुष्करार्धद्वीपकी दक्षिण और उत्तरदिशामें दो इष्वाकार पर्वत हैं उनसे पुष्करार्धके दो भाग हो रहे हैं इससे उनका नाम पूर्व पुष्करार्ध और पश्चिम पुष्करार्ध पडगया है ॥ ५७६ ॥ इनमें प्रत्येक भागमें एक एक मेरु है एवं जैसे धातकीखंडमें क्षेत्र पर्वत नदी आदि हैं वैसेही यहां है ॥५७७॥ पुष्करार्धके भरतक्षेत्रका अभ्यंतर विस्तार इकतालीस हजार पांचसो उनासी योजन एकसौ तिहत्तर भाग है मध्य विस्तार त्रेपन हजार पांचसो बारह योजन एकसो निन्यानवे भाग है। और वाह्यवि-

स्तार पैंसठ हजार चारसो छ्यालीस योजन तेरह भाग है ॥५७८–५८१॥ विदेह क्षेत्र पर्यंत एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रका, और एक पर्वतसे दूसरे पर्वतका विस्तार चौगुना २ कहा है ॥ ५८२ ॥ पुष्करार्ध क्षेत्रकी बाह्यपरिधिका विस्तार एक करोड व्यालीस लाख तीस हजार दोसौ उनचास योजन कुछ अधिक है ॥ ५८३–५८४ ॥ इस पुष्करार्धका तीन लाख पचपन हजार छह सो चौरासी योजन प्रमाण क्षेत्र, पर्वतोंसे रुका हुआ है ॥५८५॥ पुष्करार्ध द्वीपके विजयार्ध नाभिगिरि और कुलाचलोंकी ऊंचाई और गहराई जंबूद्वीपके विजयार्ध आदिके समान है ॥५८६॥ और चौडाई धातकीखंडके विजयार्ध आदिसें दूनी है परंतु इष्वाकार और मेरुपर्वत, धातकीखंडके इष्वाकार और मेरुपर्वतों केही समान जानने चाहिये ॥ ५८७ ॥ ढाईद्वीप और दोनों समुद्रोंमें मनुष्य क्षेत्रका विस्तार पैंतालीस लाख योजन है ॥ ५८८ ॥ मानुषोत्तर पर्वतकी ऊंचाई एकहजार सातसो इक्कीस योजन ॥ ५८९ ॥ और गहराई चारसो तीस योजन एक कोश है इसका मूलविस्तार एक हजार बाईस योजन मध्य विस्तार सातसो तेईस योजन और ऊपरी विस्तार चारसो चौबीस योजन है ॥ ५९०–५९१ ॥ मानुषोत्तरकी परिधिका विस्तार एक करोड व्यालीस लाख छत्तीस हजार सातसौ तेरह योजन है ॥ ५९२ ॥ यह मानुषोत्तर मध्यमें छिन्न तट सरीखा है बाहिर तिरछा ऊंचा है इसलिये सुखपूर्वक बैठेहुये सिंहके समान मालूम पडताहै ॥५९३॥ यह मानुषोत्तर पर्वत चौदह गुफारूपी दरवाजोंसे पूर्वपश्चिमकी नदीरूप स्त्रियोंको पुष्कर समुद्रमें जानेकेलिये मार्ग देता है। ॥ ५९४ ॥ जिन दरवाजोंसे नदियां गमन करती हैं वे पचास योजन लंबे पच्चीस योजन चौडे और साढे सैंतीस योजन ऊंचे हैं ॥ ५९५ ॥ मानुषोत्तर पर्वतके अग्रभाग पर आठ योजन ऊंचे चार योजन चौडे गृहद्वारोंसे शोभित चारो दिशाओंमें चार जिनमंदिर हैं ॥ ५९६ ॥ पर्वतकी परिधिमें सुंदर स्थानोंपर चारो दिशामें अठारह शिखर (कूट) हैं ॥ ५९७ ॥ ये शिखर पांचसौ योजन ऊंचे हैं इनके मूलभागका विस्तार पांचसौ योजन और ऊपरका ढाईसो योजन है ॥५९८॥ मानुषोत्तर पर्वतकी चारोदिशाओंमें तीन २ कूट हैं और चारो विदिशाओंमें चार२ हैं उनमें ईशान दिशामें हीरामयी वज्रनामका कूट है आग्नेयी दिशामें तपाये गये सोनेके समान तपनीय कूट है ॥५९९॥ प्राचीदिशामें–पहिला वैडूर्य नामका कूट है उसका स्वामी यशस्वान् देव है। दूसरा अश्मगर्भ कूट है उसका अधिष्ठाता यशस्कांतनामक गरुड देव है तीसरा सौगंधिक कूट है और उसका मालिक सुपर्णजातिका यशोधर नामका देव है। दक्षिण दिशामें पहिला कूट रुचक है और उसका स्वामी नंदन देव है। दूसरा लोहिताक्ष है और उसका अधिष्ठाता नंदोत्तर है एवं तीसरा अंजन कूट है और उसका मालिक अशनिघोष देव है। पश्चिम दिशामें प्रथमकूट अंजन मूल है उसमें सिद्ध देव रहता

है दूसरा कनककूट है इसमें ऋमणनामका देव रहता है और तीसरा रजतकूटहै इसमें मानुषदेव निवास करता है। उत्तरदिशामें प्रथमकूट स्फटिक है इसका स्वामी सुदर्शनदेव है दूसराकूट अंक है इसका अधिष्ठाता मोघ देव है एवं तीसरा कूट प्रवाल है और इसका मालिक सुप्रबुद्धदेव है। उपर्युक्त तपनीय कूटका स्वामी स्वाति और वज्र कूटका अधिष्ठाता हनूमान नामका देव है ॥६००–६०४॥ मानुषोत्तर पर्वतके पूर्व दक्षिण कोणमें निषधपर्वतसे स्पृष्ट भागमें रत्न नामका कूट है उसमें नागकुमारोंका स्वामी वेणुदेव निवास करता है ॥ ६०५ ॥ नीलाचलसे स्पृष्ट भागमें पूर्व और उत्तर दिशाके बीच सर्व रत्न नामका कूट है उसमें गरुडकुमारोंका स्वामी वेणुधारी देव रहता है ॥ ६०६ ॥ निषधाचलसे स्पृष्टभागमें दक्षिण और पश्चिम दिशाके मध्यमें वेलंब नामका कूट है उसका अधिष्ठाता वरुणकुमारोंका स्वामी अतिवेलंब देव है ॥ ६०७ ॥ नीलपर्वतसे स्पृष्ट भागमें पश्चिम और उत्तर दिशाके वीच प्रभंजन नामका कूट है और इसमें वायुकुमार देवोंका स्वामी प्रभंजन देव निवास करता है ॥ ६०८ ॥ इसप्रकार अनेक आश्चर्योंसे व्याप्त सुवर्णमयी यह मानुषोत्तर पर्वत मनुष्यक्षेत्रके प्राकारके तुल्य अतिशय सुंदर जान पडता है ॥ ६०९ ॥ उपपाद और मारणांतिक समुद्घातवाले मनुष्यों को छोडकर मानुषोत्तर पर्वतसे आगे न विद्याधर जा सकते हैं और न ऋद्धिधारी मुनीही जा सकते हैं ॥ ६१० ॥ जिसप्रकार जंबूद्वीपको लवण समुद्र और धातकी खंडको कालोद समुद्र वेडे है उसीप्रकार पुष्कर द्वीपको पुष्कर समुद्र वेडें है ॥ ६११ ॥ उसके आगे वारुणीवर द्वीपको वारुणीसागर ४ क्षीरवर द्वीपको क्षीरवर सागर ५ घृतवर द्वीपको घृतवर सागर ६ इक्षुवर द्वीपको इक्षुवर समुद्र ७ नंदीश्वरवर द्वीपको नदीश्वरवर समुद्र ८ अरुणद्वीपको अरुणवर सागर ९ अरुणोद्भास द्वीपको अरुणोद्भास समुद्र १० कुंडलवर द्वीपको कुंडलवर समुद्र ११ शंखवर द्वीपको शंखवर समुद्र १२ रुचकवर द्वीपको रुचकवर सागर १३ भुजगवर द्वीपको भुजगवर समुद्र १४ कुशवर द्वीपको कुशवर समुद्र १५ और क्रौंचवर द्वीपको क्रौंचवर समुद्र १६ वेडे हैं इन सोलह द्वीपों से आगे असंख्याते द्वीप तथा समुद्र हैं। और वे समस्त द्वीप और समुद्र पूर्व पूर्व द्वीप समुद्रोंसे दूने २ विस्तारवाले और एक दूसरेको घेरे हुये हैं ॥६१२–६१९॥ उन असंख्याते द्वीप और समुद्रोंके अंतमें—मनःशिल १ हरिताल २ सिंदूर ३ श्यामक ४ अंजन ५ हिंगुल ६ रूपवर ७ सुवर्णवर ८ वज्रवर ९ वैडूर्यवर १० नागवर ११ भूतवर १२ यक्षवर १३ देववर १४ इंदुवर १५ और स्वयंभूरमण १६ ये सोलह द्वीप और इन द्वीपोंके नाम वालेही इनके वेडेनेवाले सोलह समुद्र हैं ॥६२०–६२४॥ सोलह आदिके और सोलह अंतके द्वीप समुद्रोंके मध्यमें अन्य भी असंख्याते द्वीप समुद्र हैं ये समस्त भिन्न २ रूपमें वसे हुये हैं और इनके शुभ नाम अनादि कालसे हैं।

॥६२५॥ लवण समुद्रका जल लवणके समान खारा है वारुणी समुद्रका जल मदिराके स्वादका है घृतवर और क्षीरवर समुद्रोंके जल घी दूधके समान हैं कालोद और स्वयंभूरमणका शुभ जल है पुष्करोद समुद्रका जल मधु और जलके मिश्र स्वादवाला है और इनसे अन्य जितने समुद्र हैं उन सबका जल ईखके सरीखा है ॥ ६२६–६२७ ॥ लवण समुद्रके तीरपर महामच्छ नौ योजन और मध्यमें अठारह योजन लंबे हैं एवं ये सन्मूर्च्छन हैं ॥ ६२८ ॥ कालोद समुद्रके तीरमें सन्मूर्च्छन महामच्छकी लंबाई अठारह योजनतककी है और मध्यमें छत्तीस योजनकी है तथा गर्भज महामच्छोंकी सन्मूर्छन महामच्छोंसे आधी लंबाई है ॥ ६२९ ॥ स्वयंभूरमण समुद्रमें तीरपर महामच्छकी लंबाई पांचसौ योजन है और मध्यमें एक हजार योजन है इस तरह इन तीन ही समुद्रोंमें मत्स्य आदि तिर्यंच जीव हैं अन्य समुद्रोंमें नहीं ॥६३०॥ दो इंद्रिय तेइंद्रिय और चौइंद्रिय (विकलेंद्रिय) जीव मानुषोत्तर पर्वत तक ही हैं मानुषोत्तर पर्वतसे आगे विकलेंद्रिय जीव नहिं रहते परंतु अंतके आधे स्वयंभूरमण द्वीपमें और समस्त स्वयंभूरमण समुद्रमें कर्मभूमियां जीव रहते हैं॥६३१॥ द्वीप अथवा समुद्र अपने पहिलेके द्वीप और समुद्रोंके सम्मिलित विस्तारसे एक २ लाख योजन अधिक विस्तृत हैं अर्थात् जैसे दूसरा समुद्र कालोदधि है उससे पहिले दो द्वीप और एक समुद्र है उनमें जंबूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन, लवण समुद्रका दो लाख और धातकीखंडका चार लाख है इन सबका मिलाकर सात लाख होता है इस सात लाखमें एक लाख अधिक मिलादेनेपर आठ लाख होते हैं और यही विस्तार कालोदका है इसीप्रकार आगे भी द्वीप वा समुद्रका विस्तार पहिलेके द्वीप और समुद्रोंके सम्मिलित विस्तारसे एक २ लाख योजन अधिक समझ लेना चाहिये ॥६३२॥ मेरुपर्वतकी आधी चौडाईसे स्वयंभूरमण समुद्रके मध्यभागमें पचहत्तर हजार योजन प्रमाण प्रवेश करनेपर आधी रज्जूका प्रमाण हो जाता है ॥६३३–६३४॥ जंबूद्वीपका स्वामी अनावृत देव है। लवण समुद्रका स्वामी सुस्थित है–धातकीखंडद्वीपके प्रभास और प्रियदर्शन, कालोदसमुद्रके काल और महाकाल ॥ ६३५–६३६ ॥ पुष्करद्वीपके स्वामी पद्म और पुंडरीक, मानुषोत्तरपर्वतके चक्षुष्मान् और सुचक्षु ॥ ६३७ ॥ पुष्करोद समुद्रके स्वामी श्रीप्रभ श्रीवीर, वारुणीवर द्वीपके वरुण वरुणप्रभ ॥६३८॥ वारुणीवर समुद्रके मध्य और मध्यम, क्षीरवर द्वीपके पांडुर और पुष्पदंत ॥ ६३९ ॥ क्षीरवर समुद्रके विमल विमलप्रभ, घृतवर द्वीपके सुप्रभ महाप्रभ, घृतवर सागरके कनक कनकाभ, इक्षुवर द्वीपके पूर्ण और पूर्णप्रभ ॥ ६४०–६४१ ॥ इक्षुवर समुद्रके गंध महागंध, नंदीश्वर द्वीपके नंदी और नंदिप्रभ ॥ ६४२ ॥ नंदीश्वर समुद्रके भद्र और सुभद्र, अरुण द्वीपके अरुण और अरुणप्रभ ॥ ६४३ ॥ और अरुणसमुद्रके स्वामी सुगंध और सर्वगंध हैं इसीप्रकार आगे भी हरएक द्वीप और

समुद्रके स्वामी दो २ देव हैं और उनमें एक दक्षिणका स्वामी और दूसरा उत्तरका स्वामी है ॥ ६४४ ॥ आठवें द्वीप नंदीश्वरका एकसौ त्रेसठ करोड चौरासी लाख विस्तार है ॥ ६४५ ॥ इसकी अभ्यंतर परिधि एक हजार छत्तीस करोड बारह लाख दो हजार सातसौ त्रेपन योजन है ॥ ६४६–६४७ ॥ और बाह्य परिधि दो हजार वहत्तर करोड तेतीस लाख चौअन हजार एकसौ नव्वे योजन है ॥६४८–६४९॥ इस नंदीश्वर द्वीपके मध्यमें चारो दिशाओंमें चार अंजनगिरि हैं। ये पर्वत चौरासी २ हजार योजन ऊंचे उतने ही चौडे और एक २ हजार योजन गहरे हैं। ये समस्त पर्वत ढोलके आकार हैं विचित्र हैं वज्रमयी मूलके धारक हैं देदीप्यमान प्रभायुक्त हैं द्वीपके चौतर्फा अतिशय रमणीयजान पडते हैं सुवर्णमयी हैं काली २ शिखरोंसे भूषित हैं और समस्त दिशाओंमें अपनी कांतिका प्रसार करते हैं ॥ ६५०–६५२ ॥ आगे एक लाख योजनकी दूरीपर इन पर्वतोंकी चारो दिशाओंमें चौकोण अकृत्रिम चार वावडी हैं ॥ ६५३ ॥ ये वापियां कमलोंसे व्याप्त हैं स्फटिकमणिके समान निर्मल जलसे भरी हैं। भांति २ की मणियोंसे वने सोपानोंसे शोभित हैं नाके आदि जलचर जीवोंसे रहित हैं सम हैं और मनोहर वेदियोंसे भूषित हैं ॥ ६५४ ॥ इन वापियोंमें हरएक वापीकी गहराई एक २ हजार योजन है एवं लंबाई और चौडाई जंबूद्वीपके समान एक २ लाख योजन है ॥ ६५५ ॥ पूर्वदिशाके अंजनगिरिकी चारो दिशाओंमें नंदा नंदवती नंदोत्तरा और नंदघोषा ये चार वापियां हैं ॥ ६५६ ॥ पहिली नंदा नामकी वापीमें सौधर्म इंद्र क्रीडा करता है और दूसरी नंदावतीमें ऐशान इंद्र, तीसरी नंदोत्तरामें असुर कुमारोंका इंद्र चमरेंद्र एवं चौथीमें असुरकुमारोंका दूसरा इंद्र वैरोचन क्रीडा करता है ॥ ६५७ ॥ दक्षिणदिशाके अंजनगिरिकी चारो दिशाओंमें विजया, वैजयंती, जयंती और अपराजिता ये चार वापियां हैं इनमें प्रथम वावडीमें वरुण, दूसरीमें यम, तीसरीमें सोम और चौथीमें वैश्रवण क्रीडा करता है॥ ६५८–६५९ ॥ पश्चिमदिशाके अंजनगिरिकी चारो दिशाओंमें अशोका, सुप्रबुद्धा, कुमुदा, और पुंडरीकिनी ये चार वावडी हैं इनमें पहिली अशोका वावडीमें वेणुदेव, दूसरी प्रबुद्धामें वेणुतालि, तीसरीमें धरण तथा चौथीमें भूतानंद क्रीडा करता है ॥ ६६०–६६१ ॥ उत्तर दिशाके अंजनगिरिकी चारो दिशाओंमें प्रभंकरा सुमना आनंदा और सुदर्शना ये चार वावडी हैं। एवं इनचारोंमें क्रमसे ऐशान इंद्रके लोकपाल वरुण १ यम २ सोम ३ और कुवेर ४ क्रीडा करते हैं ॥ ६६२–६६३ ॥ इन सोलह वापियोंका आपसमें भीतरी अंतर पैंसठ हजार पैंतालीस योजन है ॥ ६६४ ॥ मध्य अंतर एक लाख चार हजार छैसौ दो योजन है ॥ ६६५ ॥ और वाहिरी अंतर दो लाख तेईस हजार छैसौ इकसठ योजन है ॥ ६६६ ॥ इन सोलह वापिकाओंके मध्यमें सुवर्ण-

मयी सोलह दधिमुख हैं और उनकी शिखरें रूपामयी हैं ॥ ६६७ ॥ ये समस्त दधिमुख ढोलके आकार हैं इनमें हरएककी गहराई हजार २ योजन ऊंचाई चौडाई और लंबाई दश २ हजार योजन है ॥६६८॥ वापियोंकी चारोओर चारो दिशाओंमें चार वन हैं ये वन वापियोंके समान अर्थात् एक २ लाख योजन लंबे है और वापियोंसे आधे अर्थात् पचास पचास हजार योजन चौडे हैं ॥ ६६९ ॥ उनमें पूर्वदिशामें तो अशोकवन है दक्षिण दिशामें सप्तवर्ण, पश्चिम दिशामें चंपक और उत्तरदिशामें आम्रवन है। ॥ ६७० ॥ वापियोंके कोणोंके समीप चार रतिकर पर्वत हैं ये पर्वत सुवर्णमयी और ढोलके आकार हैं ॥ ६७१ ॥ इनकी गहराई (नींव) ढाईसौ योजन, लंबाई चौडाई और ऊंचाई हजार २ योजन हैं ॥ ६७२ ॥ वापियोंके अभ्यंतर तथा बाह्यकोणमें बत्तीस २ रतिकर हैं जिनपर देव निवास करते हैं और हरएकके ऊपर एक २ चैत्यालय है ॥ ६७३ ॥ इसीप्रकार एक २ चैत्यालय अंजन और दधिमुख गिरियोंके शिखरोंपर भी विराजमान समझना चाहिये ॥ ६७४ ॥ इन समस्त चैत्यालयोंके मुख पूर्वदिशाकी ओर हैं इनकी लंबाई सौ योजन चौडाई पचास योजन और ऊंचाई पचहत्तर योजन है ॥ ६७५ ॥ ये नंदीश्वर पर्वतके बावन चैत्यालय आठ २ योजन ऊंचे, चार २ योजन चौडे और गहरे, तीन तीन द्वारोंसे शोभित अतिशय रमणीय मालूम पडते हैं ॥ ६७६ ॥ इन समस्त चैत्यालयोंमें जन्म मरण आदिसे रहित भगवान् जिनेंद्रकी पांचसौ पांचसौ धनुष ऊंची सुवर्णमयी प्रतिमा विराजमान हैं ॥ ६७७ ॥ प्रतिवर्ष फाल्गुन आषाढ और कार्तिकके अंतिम आठ दिनों (अष्टाहिका) में इंद्रादि देव मंदिरोंमें आकर इन प्रतिमाओंका पूजन करते हैं ॥ ६७८ ॥ उपर्युक्त वावडियोंके चौंसठ वन हैं उनमें चौंसठ महल बनेहुये हैं जिनमें कि वननामधारी देव निवास करते हैं ॥ ६७९ ॥ ये समस्त महल बासठ २ योजन ऊंचे, इकतीस योजन लंबे एवं इकतीस योजन ही चौडे हैं और इनके द्वारोंकी ऊंचाई आठ योजन, चौडाई चार योजन, और गहराई भी चार योजन है ॥ ६८० ॥ नंदीश्वर पर्वतसे आगे अरुणवर द्वीप और अरुणवर समुद्र हैं उसंजगह अरुणवर समुद्रसे लेकर ब्रह्मलोक पर्यंत सर्वदा अंधकार ही अंधकार रहता है ॥ ६८१ ॥ अरुण समुद्रके बाहिर मृदंग सरीखे आकारवालीं घनाकार आठ विशाल कृष्णराजी (पंक्ति) हैं ॥ ६८२ ॥ अल्प ऋद्धिके धारक देव तो यहां आकर अंधकारमें मार्ग भूल जाते हैं परंतु महान् ऋद्धिधारी देवोंके साथ वे इस समुद्रको पार कर जाते हैं ॥ ६८३ ॥ कुंडलवर द्वीपके मध्यमें एक कुंडल नामका पर्वत है यह पर्वत कंकणके समान गोलाकार है और संपूर्ण यवोंकी राशीके समान जान पडता है ॥ ६८४ ॥ इसकी गहराई हजार योजन और ऊंचाई व्यालीस हजार योजन है और यह मणियोंसे अतिशय देदीप्यमान है ॥ ६८५ ॥ यह पर्वत मूलमें

दशहजार दोसौ वीस योजन, मध्यमें सात हजार एकसौ इकसठ योजन और अंतमें चार हजार छ्यानवे योजन विस्तृत है ॥ ६८६॥ इसपर्वतकी हर एक दिशामें चार २ और मिलाकर चारो दिशाओंमें सोलह कूट हैं एवं इनमें देव निवास करते हैं ॥६८७॥ पूर्वदिशाका पहिला कूट वज्र है उसमें त्रिशिरा नामका देव निवास करता है दूसरा वज्रप्रभ कूट है इसका स्वामी पंचशिरा नामक देव है महाशिरा देवका निवासस्थान तीसरा कनककूट है चौथा कूट कनकप्रभ है और उसमें महाभुज नामका देव रहता है । दक्षिण दिशामें प्रथम कूट रजत और उसका निवासी पद्मदेव है । दूसरा रजतप्रभ उसमें पद्मोत्तर देव है । तीसरा सुप्रभकूट है उसमें महापद्मनामका देव रहता है । और चौथा कूट महाप्रभ है एवं उसमें वासुकीदेव निवास करता है । पश्चिमदिशाका प्रथम कूट अंक है और उसका निवासी स्थिरहृदयदेव है दूसरा अनंकप्रभ कूट है और उसमें महाहृदय देव रहता है । तीसरा मणिकूट है इसका निवासी श्रीवृक्ष देव है । चौथे कूटका नाम मणिप्रभ है और इसमें स्वस्तिक देव निवास करता है । उत्तर दिशामें स्फटिक १ स्फटिकप्रभ २ माहेंद्र ३ और हिमवान् ये चार कूट हैं और इनमें क्रमसे सुंदर १ विशालाक्ष २ पांडुक ३ और पांडुर ४ ये चार देव निवास करते हैं ॥ ६८८–६९२ ॥ इस प्रकार ये सोलह नागकुमार अपने अपने कूटोंमें निवास करते हैं और इन सबकी आयु एक पल्य है ॥ ६९३ ॥ कुंडलगिरिकी पूर्व पश्चिम दिशाओंमें कुंडल द्वीपका स्वामी रहता है उसके निवासस्थान दो कूट हैं उन कूटोंकी ऊंचाई हजार २ योजन है मूल भागकी चौडाई एक हजार अंतभागकी पांच सौ और मध्य भागकी सात सौ पचास योजन है ॥ ६९४–६९५ ॥ कुंडलगिरिके ऊपर चारो दिशाओंमें चार मनोहर जिनमंदिर हैं उनकी लंबाई चौडाई अंजनाद्रिके जिनालयोंके समान है ॥ ६९६ ॥ तेरहवें रुचकवर द्वीपके मध्यमें कंकणके समान गोलाकार एक रुचकवर नामका पर्वत है ॥ ६९७ ॥ रुचकवरकी गहराई हजार योजन ऊंचाई चौरासी हजार योजन और चौडाई व्यालीस हजार योजन है ॥ ६९८ ॥ इस पर्वतके ऊपर चारो दिशाओंमें हजार योजन चौडे पांच सौ योजन ऊंचे चार कूट हैं ॥ ६९९ ॥ उनमें पूर्व दिशामें नंद्यावर्त कूट है उसका स्वामी पद्मोत्तर देव है दक्षिण दिशामें स्वस्तिक कूट है उसका स्वामी स्वहस्ती देव है पश्चिम दिशामें श्रीवृक्ष कूट है उसमें नीलक देव रहता है उत्तर दिशामें वर्धमान कूट है और उसमें अंजनागिरि नामका देव निवास करता है ये चारो ही दिक्पाल हैं और इनकी आयु एक एक पल्य है ॥ ७००–७०१ ॥ एवं इसी पर्वतके ऊपर पूर्वआदि दिशाओंमें आठ २ कूट और हैं इनमें दिक्कुमारियां निवास करती हैं और इनकी लंबाई चौडाई पूर्व कूटोंके ही सदृश है ॥ ७०२ ॥ उन कूटोमें पूर्व दिशाके प्रथम कूट वैडूर्यमें विजया देवी, दूसरे कांचन कूटमें वैजयंती, तीसरे कनक कूटमें

जयंती, चौथे अरिष्ट कूटमें अपराजिता, पांचवे स्वस्तिक कूटमें नंदा, छठे नंदन कूटमें नंदोत्तरा, सातवें अंजन कूटमें आनंदा और आठवें अंजनमूल कूटमें नांदीवर्धना, ये देवियां निवास करती हैं ॥ ७०३-७०४ ॥ ये आठो दिक्कुमारियां भगवान् तीर्थंकरके जन्मकालमें हाथोंमें देदीप्यमान झाड़ी लिये पूजनार्थ तीर्थंकरकी माताके समीप रहती हैं ॥ ७०५ ॥ दक्षिण दिशाके आठ कूट हैं उनमें अमोघ कूटमें स्वस्तिका देवी रहती है, सुप्रबुद्धमें सुप्रणधि, मंदर कूटमें सुप्रबुद्धा, विमल कूटमें यशोधरा, रुचक कूटमें लक्ष्मीमती, रुचकोत्तर कूटमें कीर्तिमंती, चंद्रकूटमें वसुंधरा और सुप्रतिष्ठमें चित्रा, देवियां निवास करती हैं ये आठो दिक्कुमारियां तीर्थंकरके जन्मकालमें सानंद आती हैं और हाथमें मणिदर्पण ले तीर्थंकरकी माताकी सेवा करती हैं ॥ ७०६-७०९ ॥ पश्चिम दिशामें भी आठ देवियोंसे युक्त आठ कूट हैं उनमें प्रथम कूट लोहितमें इला देवी रहती है जगत्कुसुमकूटमें सुरादेवी, नलिनकूटमें पृथिवी, पद्मकूटमें पद्मावती, कुमुदकूटमें कांचना, सौमनसकूटमें नवमिका, यशःकूटमें सीता और भद्रकूटमें भद्रिका, देवियां रहती हैं और भगवान तीर्थंकरके जन्मकालमें आकर हाथमें सफेद छत्र धारण करती हैं ॥ ७१०-७१२ ॥ उत्तर दिशामें स्फटिक १ अंक २ अंजन ३ कांचन ४ रजत ५ कुंडल ६ रुचक ७ और सुदर्शन ८ ये आठ कूट हैं और इनमें क्रमसे लंबुसा १ मिश्रकेशी २ पुंडरीकिणी ३ वारुणी ४ आशा ५ ह्री ६ श्री ७ और धृति ८ ये आठ देवियां निवास करती हैं। ये भगवानके जन्मकालमें हाथमें स्वच्छ चमर ले तीर्थंकरकी माताकी सेवा करती हैं ॥ ७१३-७१५ ॥ पूर्व आदि चारो दिशाओंमें दीप्तिसे समस्त दिशाओंको देदीप्यमान करनेवाले विमल १ नित्यालोक २ स्वयंप्रभ ३ और नित्योद्योत ४ ये चार कूट अन्य भी हैं एवं उनमें क्रमसे चित्रा १ कनकचित्रा २ त्रिशिरा ३ और सूत्रामणि ४ नामकी चार देवियां निवास करती हैं ये चारो विद्युत् कुमारियां हैं और जिसप्रकार सूर्यकी किरणें प्रकाश करती हैं उसीप्रकार ये तीर्थंकरकी माताके समीप जन्मकालमें प्रकाश करती रहती हैं ॥ ७१६-७१९ ॥ विदिशाओंमें भी चार देवियोंके निवास स्थान चार कूट हैं उनमें पूर्वोत्तर (ईशान) विदिशामें वैडूर्यकूट है उसमें रुचका नामकी देवी निवास करती है। दक्षिणपूर्व (आग्नेय) विदिशामें रुचक कूट है उसमें रुचकोज्ज्वला देवी रहती है। दक्षिणपश्चिम (नैऋत्य) विदिशामें मणिप्रभकूट है और वह रुचकाभा देवीका निवासस्थान है पश्चिमोत्तर (वायव्य) विदिशाके रुचकोत्तम कूटमें रुचकप्रभा देवी निवास करती है। ये चारो देवियां दिक्कुमारियोंकी महत्तर (प्रधान) देवियां हैं। विदिशाओंमें और भी चार कूट हैं उनमें पूर्वोत्तर विदिशामें रत्न १ दक्षिणपूर्व विदिशामें रत्नप्रभ २ दक्षिणपश्चिम विदिशामें सर्वरत्न ४ और दक्षिणउत्तर विदिशामें रत्नोच्चय कूट है इन कूटोंमें क्रमसे विजया १

वैजयंती २ जयंती ३ और अपराजिता ४ ये चार देवियां निवास करती हैं ये चारो विद्युतकुमारियोंकी महत्तरिका हैं। ये चार दिक्कुमारियोंकी और चार विद्युत्कुमारियों की महत्तरिकायें भगवानके जन्म कालमें आती हैं और तीर्थंकरका जातकर्म करती हैं ॥ ७२०-७२५ ॥ रुचकगिरिके ऊपर जिनेंद्रभगवानके चारो दिशाओंमें चार मंदिर हैं इन मंदिरोंकी लंबाई चौडाई अंजनगिरिके मंदिरोंके समान है और पूर्वदिशामें इनका द्वार है ॥ ७२६ ॥ इस रुचक पर्वतके शिखरोंपर दिशा विदिशाओंमें रहनेवाली देवियोंके जो महल और जिनमंदिर विद्यमान हैं उनसे यह पर्वत अतिशय दीप्तिमान जान पडता है ॥ ७२७ ॥

अंतिम स्वयंभूरमण समुद्रके मध्यमें एक स्वयंप्रभ नामका पर्वत है वह कंकणके समान गोल है ॥ ७२८ ॥ पुष्करद्वीपके मानुषोत्तर पर्वतमें तथा स्वयंप्रभ पर्वतके मध्यमें जघन्य भोगभूमियां तिर्यंच रहते हैं और स्वयंप्रभ पर्वतसे आगे असंख्याते कर्मभूमिके समान तिर्यंच रहते हैं॥ ७२९--७३० ॥ इन उपर्युक्त द्वीप समुद्र और पर्वतोंमें किन्नर आदि व्यंतर देव यथा योग्य अपने २ स्थानोंपर निवास करते हैं।७३१। इसप्रकार द्वीप आदिके वर्णनके बाद भगवान गौतम स्वामीने राजा श्रेणिकसे कहा— राजन्! मैंने मध्यलोकके द्वीप और समुद्रोंका वर्णन करदिया अब मैं संक्षेपसे ज्योतिर्लोक और ऊर्ध्वलोकका वर्णन करता हूं तुम ध्यान देकर सुनो ॥ ७३२ ॥ जो भव्य जीव भगवान केवली द्वारा प्रतिपादित जंबूद्वीप लवणोद समुद्र आदि असंख्याते द्वीप और समुद्रोंका वर्णन सुनते हैं उनका मध्यलोकके द्वीप और समुद्रों विषयक अज्ञान नष्ट होजाता है क्योंकि केवलीरूपी देदीप्यमान सूर्यके प्रकाशमान होनेपर अज्ञानरूपी अंधकार कदापि नहिं ठहर सकता ॥ ७३३ ॥

इसप्रकार श्रीमज्जिनसेनाचार्य द्वारा निर्मित भगवान अरिष्टनेमिके चरित्रको वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें द्वीप और सागरोंके स्वरूपका वर्णन करनेवाला पांचवां सर्ग समाप्त हुआ।

छठवां सर्ग।

पृथ्वीतलके समभागसे सातसौ नव्वे योजनकी दूरीपर आकाशमें सबसे नीचे ताराओंके विमान हैं ॥ १ ॥ और उससे नौसौ योजनकी दूरीपर ज्योतिःपटलका अंत हुआ है यह ज्योतिःपटल एकसौ दश योजन मोटा है और इसके चारो ओर घनोदधि है ॥ २-३ ॥ तारागणके पटलसे दश योजनकी दूरीपर ऊंचा सूर्यपटल है उससे अस्सी योजनकी ऊंचाईपर चंद्रपटल है ॥ ४ ॥ चंद्रपटलसे चार योजनकी दूरी पर ऊंचा नक्षत्रपटल है नक्षत्रपटलसे चारयोजनकी दूरीपर बुधका विमान है ॥ ५ ॥ बुध विमानसे तीन योजनकी दूरीपर शुक्रका, शुक्रसे तीन योजनकी दूरीपर बृहस्पति

का, बृहस्पतिसे तीन योजनकी दूरीपर मंगलका और मंगलसे चार योजन ऊंचा शनीचरका विमान है ॥६॥ सूर्य चंद्रमा नक्षत्र गृह और तारका ये जो नाम ज्योतिषी विमानोंके हैं वे ही नाम इनके स्वामी देवोंके हैं और सब पांच प्रकारके ही हैं ॥७॥ इनमें चंद्रदेवोंकी आयु एक लाख वर्ष अधिक एक पल्य है सूर्यदेवोंकी एक हजार अधिक एक पल्य और शुक्रदेवोंकी सौ वर्ष अधिक एक पल्य है ॥८॥ एवं पौन पल्य बृहस्पतिदेव, आधा पल्य मंगल बुध एवं शनीचर और चौथाई पल्य तारा देव जीते हैं यह उत्कृष्ट आयु है। तारा देवोंकी जघन्य आयु एक पल्यका आठवां भाग है ॥ ९ ॥ एक योजनके इकसठ भागोंमें छप्पन भाग चोडाई तो चंद्रमंडलकी है ॥१०॥ अडतालीस भाग सूर्यमंडलकी है एक कोश विस्तार शुक्रका है पोंन कोश बृहस्पतिका है और समस्त ग्रहोंका विस्तार आधा कोश है एवं तारामंडलका जघन्य विस्तार पाव कोश मध्यम कुछ अधिक पाव कोश और उत्कृष्ट विस्तार आधा कोश माना गया है ॥ ११-१३ ॥ ताराओंका परस्पर जघन्य अंतर कोशका सातवां भाग है मध्यम पचास कोश और उत्कृष्ट अंतर एक हजार योजन है ॥ १४ ॥ सूर्य विमान लोहिताक्षमणीके हैं तथा जाज्वल्यमान तपे हुये सुवर्ण सरीखे जानपडते हैं ॥१५॥ चंद्रविमान स्फटिक मणिमयी है इसलिये कमलदंडके समान सफेद हैं और अतिशय कांतिके धारक हैं ॥१६॥ राहु विमानोंका रंग अरिष्ट मणि सरीखा है ये कज्जलके समान सर्वथा काले हैं और सूर्य चंद्रमाके नीचे भ्रमण करते हैं ॥ १७ ॥ उन राहु विमानोंकी चौडाई और लंबाई एक एक योजन और मुटाई ढाईसौ धनुप है ॥ १८ ॥ शुक्रविमान चांदीके समान सफेद हैं अपनी निर्मल कांतिसे मालती पुष्पकी कांतिके समान हैं और चारोओर प्रकाश करते हैं ॥१९॥ बृहस्पतिके विमानोंकी कांति स्फटिक मणिके समान है इसलिये वे उत्तम मुक्ताफल सरीखे जान पडते हैं। बुधके विमान सुवर्णमयी हैं ॥ २० ॥ शनीचरके विमान तपे सोनेके समान हैं और मंगलके विमान लोहिताक्षमयी हैं ॥ २१ ॥ ज्योतिर्लोकमें रहने वाले ज्योतिषियोंका यह वर्णन किया गया है अरुणवर द्वीप और अरुण वर समुद्रमें तो अंधकारही अंधकार है वहां विलकुल प्रकाश नहीं ॥ २२ ॥ मानुषोत्तर पर्वतसे आगे ये निश्चल रूपसे आकाशमें स्थित हैं ॥ २३ ॥ जितने ज्योतिषी देव हैं चाहै वे संख्यात हैं वा असंख्यात हैं उनके इंद्र सूर्य चंद्रमा भी उतने ही हैं ॥ २४ ॥ ये समस्त गमनशील ज्योतिषी मेंग्यारह सौ इकीस योजन मेरुसे हठकर भ्रमण करते हैं ॥ २५ ॥ जंबूद्वीपमें दो सूर्य और दो चंद्रमा हैं लवणोद समुद्रमें चार सूर्य और

१-सनातन जैन ग्रंथमाला काशीके छपे राजवर्तिक ११६ वे वष्ठमे चंद्रपटलसे तीन योजन ऊपर नक्षत्र पटल और उसमें तीन योजन ऊंचे बुधके विमान और बृहस्पतिसे चार योजन ऊंचे मंगलके विमान और मंगलसे चार योजन ऊंचें शनीचरके विमान बतलाये हैं। २ लाखके रंग सरीखे हैं।

चार चंद्रमा हैं धातकीखंडमें बारह सूर्य बारह चंद्रमाहैं। कालोद समुद्रमें व्यालीस सूर्य और व्यालीस चंद्रमा हैं और पुष्करार्धमें बहत्तर सूर्य वहत्तर चंद्रमा हैं ॥ २६–२७ ॥ एक २ चंद्रमाके छयासठ हजार नौसौ पचहत्तर कोडाकोडी तारा, अट्ठाईस नक्षत्र, और अठासी ग्रह परिवार हैं ॥ २८ ॥ मानुषोत्तरसे आगे आधे पुष्करार्धमें बहत्तर सूर्य और बहत्तर ही चंद्रमा हैं और ये हमेशा भ्रमण रहित निश्चल हैं ॥ २९ ॥ मानुषोत्तर पर्वतसे पचास हजार योजन आगे सूर्य और चंद्रमाका प्रथम-वलय है और आगे इसीप्रकार लाख २ योजनकी दूरीपर एक २ वलय है प्रत्येक वलयमें चार चार सूर्य और चंद्रमा अधिक हैं एवं एक दूसरेकी किरणें आपसमें मिली हुई हैं। धातकीखंड आदि द्वीप और समुद्रोंमें पहिले २ द्वीप और समुद्रोंके सूर्य चंद्रमा मिलाकर तिगने तिगने समझना चाहिये। अर्थात् जैसे कालोद समुद्रमें व्यालीस सूर्य और व्यालीस चंद्रमा हैं–धातकीखंड द्वीपमें बारह सूर्य और बारह चंद्रमा हैं बारहके तिगने छत्तीस और छै जंबूद्वीप और लवणोदधिके इसप्रकार कालोदमें व्यालीस हो जाते हैं इसीरीतिसे आगे भी समझ लेना चाहिये ॥ ३०–३३ ॥ इसप्रकार ज्योतिर्लोकका संक्षेप रीतिसे वर्णन कर दिया गया अब संक्षेपमें ही ऊर्ध्वलोकका वर्णन किया जाता हैं ॥ ३४ ॥

मेरुपर्वतकी चूलिकाको आदि लेकर ऊपर ऊर्ध्वलोक है उसमें ऊपर २ स्वर्ग और नवग्रैवेयक आदि हैं ॥ ३५ ॥ सौधर्म १ ईशान २ सानत्कुमार ३ माहेंद्र ४ ब्रह्म ५ ब्रह्मोत्तर ६ लांतव ७ कापिष्ठ ८ शुक्र ९ महाशुक्र १० शतार ११ सहस्रार १२ आनत १३ प्राणत १४ आरण १५ और अच्युत १६ ये सोलह स्वर्ग हैं ॥ ३६–३८ ॥ अधोग्रैवेयक, मध्यग्रैवेयक और उपरिग्रैवेयक ये तीन भेद ग्रैवेयकोंके हैं और इन तीनों ही प्रकारकी ग्रैवेयकोंमें हरएकके तीन २ भेद हैं इस रीतिसे सव ग्रैवेयक नौ हैं ॥ ३९ ॥ ग्रैवेयकोंके ऊपर नव अनुदिश विमान और पांच अनुत्तर विमान हैं और उनके ऊपर मोक्ष है इसप्रकार मोक्षपर्यंत ऊर्ध्वलोक समझना चाहिये ॥ ४० ॥ समस्त स्वर्गस्थ विमान मिलकर चौरासी लाख सतानवे हजार तेईस हैं ॥ ४१ ॥ इनमें त्रेसठ पटल और त्रेसठ ही इंद्रक हैं एवं इंद्रक, पटलोंके मध्यमें ऊर्ध्वरूपसे स्थित हैं ॥ ४२ ॥ आदि इंद्रकका नाम ऋतु है उसकी पूर्व आदि दिशाओंमें प्रत्येकमें त्रेसठ त्रेसठ श्रेणीवद्ध विमान हैं और आगे प्रति इंद्रकमें एकएक कम समझना चाहिये ॥४३॥ सौधर्म और ईशान स्वर्गोंमें–ऋतु १ विमल २ चंद्रनायक ३ वल्गु ४ वीर ५ अरुण ६ नंदन ७ नलिन ८ कांचन ९ रोहित १० चंचत् ११ मारुत १२ ऋद्धीश १३ वैडूर्य १४ रुचक १५ रुचिर १६ अर्क १७ स्फटिक १८ तपनीयक १९ मेघ २० भद्र २१

१–राजवार्तिकमें प्रत्येक इंद्रककी चारों दिशाओंमें वासठ वासठ विमान कहे हैं।

हारिद्र २२ पद्म २३ लोहिताक्ष २४ वज्र २५ नंद्यावर्त २६ प्रभंकर २७ पृष्ठक २८ गज २९ मित्र ३० और प्रभा ३१ ये इकतीस इंद्रक विमान हैं। सनत्कुमार और माहेंद्रमें–अंजन १ वनमाल २ नाग ३ गरुड ४ लांगल ५ बलभद्र ६ और चक्र ७ ये सात इंद्रक विमान हैं॥ ४४–३८॥ ब्रह्म और ब्रह्मोत्तरमें–अरिष्ट १ देवसमित २ ब्रह्म ३ और ब्रह्मोत्तर ४ ये चार इंद्रक हैं॥ ४९॥ लांतवमें ब्रह्महृदय और लांतव दो इंद्रक विमान हैं शुक्र और महाशुक्रमें एक शुक्र, शतार और सहस्रारमें शतार है॥ ५०॥ आनत १ प्राणत २ और पुष्पक ३ ये तीन इंद्रक विमान आनतमें हैं। अच्युतमें सानुकार आरण और अच्युत ये तीन इंद्रकविमान हैं॥ ५२॥ अधोग्रैवेयकमें सुदर्शन १ अमोघ २ सुप्रबुद्ध ३ ये तीन इंद्रक हैं मध्यम ग्रैवेयकमें यशोधर १ सुभद्र २ और सुविशाल ३ ये तीन इंद्रक हैं॥ ५२॥ सुमन १ सौमनस्य २ प्रीतिंकर ये तीन इंद्रक ऊर्ध्व ग्रैवेयकमें हैं॥ ५३॥ नौ अनुदिश विमानोंके मध्यमें आदित्य नाम का एक इंद्रक है और पांच अनुत्तरोंके मध्यमें सर्वार्थसिद्धि नामक इंद्रक है॥ ५४॥ सौधर्म स्वर्गमें बत्तीस लाख विमान हैं ऐशानमें अट्ठाईस लाख, सनत्कुमारमें बारह लाख, माहेंद्रमें आठ लाख, ब्रह्मस्वर्गमें दोलाख छयानवे हजार, ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें एक लाख चार हजार, लांतवमें पच्चीस हजार व्यालीस॥ ५५–५७॥ कापिष्ठ स्वर्गमें चौवीस हजार नौसौ अट्ठावन, शुक्र स्वर्गमें वीस हजार वीस, महाशुक्रमें उन्नीस हजार नौसौ अस्सी॥ ५८–५९॥ शतार स्वर्गमें तीन हजार उन्नीस, सहस्रार में उन्नीस कम तीन हजार॥ ६०॥ आनत और प्राणत स्वर्गमें चारसौ चालीस तथा आरण अच्युतमें दोसौ साठ हैं॥ ६१॥ ग्रैवेयकोंके पहिले अधोभागमें एकसौ ग्यारह, मध्यभागमें एकसो सात, ऊर्ध्वभागमें इक्यानवे और नव अनुदिशोंमें नव विमान हैं॥ ६२॥ तथा आदित्यकी पूर्व आदि आठो दिशा विदिशाओंमें क्रमसे अर्चि १ अर्चिमालिनी २ वज्र ३ वैरोचन ४ सौम्य ५ सौम्यरूपक ६ अंक ७ और स्फटिक ८ ये आठ विमान हैं॥ ६३–६४॥ और सर्वार्थसिद्धिकी दिशाओंमें विजय १ वैजयंत २ जयंत ३ और अपराजित ४ ये चार विमान हैं॥ ६५॥

श्रेणीबद्ध विमान सब मिलकर आठ हजार एकसौ सत्ताईस हैं॥ उनमें सौधर्म स्वर्गमें श्रेणीबद्धविमान चार हजार चारसौ पिचानवे हैं॥६६–६७॥ ऐशानस्वर्गमें एक हजार चारसौ अठासी, सानत्कुमार स्वर्गमें छैसौ सोलह, माहेंद्रमें दोसौ तीन, ब्रह्मलोकमें दोसौ छयासी, ब्रह्मोत्तरमें चौरानवे, लांतवमें एकसौ पचीस, कापिष्ठमें इकतालीस, शुक्र में अट्ठावन, महाशुक्रमें उन्नीस, शतारमें पचपन, सहस्रारमें अठारह, आनतमें एकसौ

१ अधस्त्रिके त्रयोविंशं सैकं मध्यत्रिके शतं यह भी पाठ है और इसका–अधोग्रैवेयकमें एकसौ तेवीस मध्यग्रैवेयकमें एकसौ एक विमान हे यह अर्थ है।

सैंतालीस, प्राणतमें अडतालीस, आरणमें एकसौ वीस, और अच्युतस्वर्गमें उनतालीस श्रेणीबद्धविमान हैं ॥६८–७३॥ प्रथम ग्रैवेयकमें पैंतालीस, दूसरेमें इकतालीस, तीसरेमें सैंतीस, चौथेमें तेतीस, पांचवेमें उनतीस, छठेमें पच्चीस, सातवेमें इक्कीस, आठवेंमें सत्रह और नवमें ग्रैवेयकमें तेरह श्रेणीबद्ध विमान हैं। एवं नव अनुदिशोंमें नौ श्रेणीबद्ध विमान और पांच अनुत्तरोंमे पांच हैं। इसप्रकार ये समस्त विमान श्रेणीबद्ध विमान समझना चाहिये और इनसे अन्य जितने विमान हैं वे प्रकीर्णक–फुटकर विमान हैं ॥ ७७ ॥

संख्यात योजन विस्तारवाले विमान सौधर्म स्वर्गमें छै लाख चालीस हजार हैं। ईशान स्वर्गमें पांच लाख साठ हजार, सनत्कुमार स्वर्गमें दो लाख चालीस हजार, माहेंद्रमें एक लाख साठ हजार, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर दोनों स्वर्गमें मिलाकर अस्सी हजार, लांतव और कापिष्ठमें दशहजार, शुक्रस्वर्गमें चार हजार चार, महाशुक्रमें तीन हजार नौसै छ्यानवे, शतार और सहस्रार स्वर्गोंमें वारह सौ, आनत और प्राणत स्वर्गोंमें अठासी एवं आरण और अच्युत स्वर्गोंमें वावन विमान हैं ॥ ७८–८५ ॥ ये समस्त संख्यात योजन चोडे विमान हैं और इनसे असंख्यात योजन चौडे विमान चौगुने हैं। ग्रैवेयकोंमें इंद्रक विमान तो संख्यात योजन और श्रेणीबद्ध विमान कोई संख्यात योजन और कोई असंख्यात योजन चौडे हैं ॥ ८५–८६ ॥ समस्त संख्यात योजन विस्तारवाले विमान सोलह लाख निन्यानवे हजार तीनसौ अस्सी हैं ॥ ८७ ॥ और असंख्यात योजन चौडे विमान सडसठ लाख सतानवे हजार छह सौ उनचास हैं ॥ ८८ ॥ मुक्तिशिला नरक्षेत्र (ढाईद्वीप) प्रथमस्वर्गका ऋतुविमान और प्रथम नरकका सीमंतक प्रस्तार इन चारोंकी चौडाई समान है और प्रथमस्वर्गके ऋतुविमान एवं मेरुपर्वतकी चूलिकामें एक वालमात्रका अंतराल है ॥८९॥ जंबूद्वीप, सातवें नरकका अप्रतिष्ठान विल और सर्वार्थसिद्धि ये तीनोंभी समान विस्तारवाले हैं ॥ ९० ॥ श्रेणीविमानोंका अर्धभागतो अन्य समुद्रोंके ऊपर है और अन्यविमानोंका अर्ध स्वयंभूरमण समुद्रके ऊपर है ॥९१॥ आदिके सौधर्म और ईशान स्वर्गोंके महलोंके मूल शिलापीठकी मुटाई ग्यारहसौ इकीस योजन है और शेपके स्वर्गोंमें हरएक युगलमें निन्यानवे २ योजन कम मुटाई समझनी चाहिये नव अनुदिश पांच अनुत्तर एवं प्रत्येक ग्रैवेयक त्रिकडी (त्रिक) में समान मुटाई है ॥ ९२–९३ ॥ सौधर्म और ईशान इस पहिले युगलमें महलों (विमानों)की चौडाई एकसौ वीस योजन है सनत्कुमार माहेंद्र युगलमें सौ योजन है और वाकीके स्वर्गोंमें हरएक युगलमें दश दश योजन चौडाई कम होती जाती है।

१–राजवार्तिकमें एक इंद्रक और उसकी चारो दिशाओंमें दश २ इसतरह प्रथम ग्रेवेयकमे ४१ ही विमान वतलाये हैं और आगे आठ ग्रैवेयकमें क्रमसे एक २ श्रेणीवद्ध विमान घटता गया है।

इसलिये नव अनुदिश और पांच अनुत्तरोंके चौदह विमानोंमें केवल पांच योजन चौडाई रह जाती है। अर्थात् ब्रह्म ब्रह्मोत्तर नामक तीसरे युगलमें नव्वे योजन चौडाई है लांतव कापिष्ठ युगलमें अस्सी योजन, शुक्र महाशुक्र युगलमें सत्तर योजन, शतार सहस्रार युगलमें साठ योजन, आनत प्राणत युगलमें पचास योजन, आरण अच्युत युगलमें चालीस योजन, नौ ग्रैवेयकोंमें प्रथम ग्रैवेयक त्रिकडीमें तीस, दूसरीमें बीस और तीसरीमें दश योजन नव अनुदिश विमानोंमें पांच योजन और पांच अनुत्तर विमानोंमें भी पांचही योजन चौडाई है ॥ ९४ ॥ सौधर्म ईशान युगलमें महलोंकी ऊँचाई छैसो योजन है सनत्कुमार माहेंद्र युगलमें पांचसौ योजन है और आगेके युगलों में पचास पचास योजन ऊँचाई कम होती चली जाती है एवं नव अनुदिश पांच अनुत्तरोंमें केवल पचीस योजन रह जाती है अर्थात् ब्रह्म ब्रह्मोत्तर नामक तीसरे युगल में साडे चारसौ योजन ऊँचाई है लांतव कापिष्ठमें चारसौ योजन, शुक्र महाशुक्र युगलमें साडे तीनसौ, शतार सहस्रार युगलमें तीनसौ, आनत प्राणत युगलमें ढाईसौ, आरण अच्युतमें दो सौ, ग्रैवेयककी प्रथम त्रिकडीमें डेढ सौ, दूसरीमें सौ, तीसरीमें पचास और नव अनुदिश पांच अनुत्तरों (चौदह विमानों) में केवल पच्चीस योजन ऊंचाई है ॥ ९५ ॥ महलों (विमानों) की गहराई (नींव) प्रथम द्वितीय स्वर्गमें साठ योजन है तृतीय चतुर्थमें पचास योजन है तथा आगे पांच २ योजन कम होती चली गई है और अंतिम नवानुदिश पंचानुत्तरोंमें चौदह विमानोंकी नीव केवल ढाई योजन रह जाती है। अर्थात् पांचवे छठे स्वर्गके मंदिरोंकी गहराई पैतालीस योजन, सातवे आठवेमें चालीस, नवमें दशवेंमे पैंतीस, ग्यारहवें बारहवेंमें तीस, तेरहवें चौदहवेंमें पचीस और पंद्रहवें सोलहवेमें वीस योजन है। तथा ग्रैवेयकोंकी प्रथम त्रिकडीमें पंद्रह योजन, दूसरीमें दश, तीसरीमें गहराई पांच योजन है और नव अनुदिश और पंच अनुत्तर इन चौदह विमानोंकी गहराई ढाई योजन है ॥ ९६ ॥ सौधर्म और ईशान स्वर्गोंमें महल कृष्ण नील रक्त पीत और श्वेत पंचवर्ण रत्नोंके हैं सानत्कुमार माहेंद्र स्वर्गोंमें कृष्णवर्णके सिवाय शेष वर्णोंके रत्नोंके मकान हैं। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लांतव और कापिष्ठ स्वर्गोंमें लाल पीले और सफेद रत्नोंके मकान हैं शुक्र महाशुक्र शतार और सहस्रार स्वर्गोंमें पीत और श्वेतवर्णके मकान हैं एवं आनत प्राणत आरण और अच्युत स्वर्गोंमें केवल श्वेतवर्णके रत्नमयी मकान हैं। और ये समस्त स्वर्गोंके मकान देदीप्यमान कांतिके धारक हैं ॥ ९८–९९ ॥ सौधर्म और ऐशान स्वर्गोंके विमान घनोदधिके आधार हैं सनत्कुमार और माहेंद्र स्वर्गोके विमान घनवात वलयके आधार हैं ब्रह्मस्वर्गसे बारहवें सहस्रार स्वर्गपर्यंत विमान घनोदधि और घनवात दोनों वलयोंके आधार हैं और शेष विमान आकाशमें टिके हुये हैं ॥ १०० ॥ इन समस्त

स्वर्गोंमें अपने अपने श्रेणीवद्ध विमानोंमें इंद्र निवास करते हैं प्रत्येक युगलके आदि स्वर्गोंमें अर्थात् सौधर्म १ सनत्कुमार २ ब्रह्म ३ शुक्र ४ आनत ५ और आरणमें ६ रहने वाले इंद्र दक्षिण दिशामें और ऐशान १ माहेंद्र २ लांतव ३ शतार ४ प्राणत ५ और अच्युत ६ स्वर्गोंमें रहनेवाले इंद्र उत्तरदिशामें रहते हैं। ये समस्त इंद्र सुखरूपी समुद्रमें मग्न हैं एक दूसरेसे द्वेषरहित हैं एवं उत्तरोत्तर युगलोंमें दो दो श्रेणीवद्ध विमानोंकी हीनतासे रहते हैं अर्थात् सौधर्मस्वर्गके अंतके पटलके इंद्रकविमानसे दक्षिण दिशाके अठारहवें श्रेणीवद्ध विमानमें सौधर्म इंद्र रहता है और उत्तर दिशाके अठारहवें श्रेणीवद्ध विमानमें ऐशान इंद्र रहता है। सनत्कुमार स्वर्गके अंतके पटलके सोलहवें श्रोणीवद्ध विमानमें सनत्कुमार इंद्रका निवास है और उत्तरदिशाके सोलहवें श्रेणीवद्ध विमानमें माहेंद्र इंद्र रहता है। ब्रह्म युगलके अंतिमपटलमें दक्षिणदिशाके चौदहवें श्रेणीवद्ध विमानमें ब्रह्मेंद्र रहता है। लांतव युगलके अंतिम पटलमें उत्तर दिशाके बारहवें श्रेणीवद्धमें लांतवेंद्र रहता है। शुक्र युगलके अंतिम पटलमें दक्षिण दिशाके दशवें श्रेणीवद्ध विमानमें शुक्र इंद्रका निवास स्थान है। शतार युगलके अंतिमपटलमें उत्तरदिशाके आठवें श्रेणीवद्ध विमानमें शतारेंद्र रहता है। आनतयुगलके अंतिमपटलमें दक्षिण दिशाके छठे श्रेणीवद्ध विमानमें आनतेंद्र और उत्तरदिशाके छठे श्रेणीवद्धमें प्राणतेंद्रका निवास स्थान है। आरणयुगलके अंतिमपटलमें चौथे श्रेणीबद्धमें आरणेंद्र और उत्तरके चौथे श्रेणीवद्धमें अच्युतेंद्रका निवास स्थान है॥ १०१–१०२॥

पंचाग्नि तप तपने वाले परमतके तपस्वी मरकर भवनवासी व्यंतर और ज्योतिषी देव होते हैं दंडी संन्यासी ब्रह्मलोक तक जा सकते हैं ॥१०३॥ जो दूसरे जीवोंको अपने समान मानते हैं मंदकषायी हैं वे बारहवें स्वर्ग तक चले जाते हैं परंतु यह नियम है कि–सिवाय जिनलिंग के दूसरे लिंग धारण करनेवाले मनुष्य मरकर बारहवें स्वर्गसे आगे नहिं जा सकते ॥ १०४॥ एक देश व्रतके धारण करनेवाले श्रावक श्राविका प्रथमस्वर्गसे सोलहवें स्वर्गतक जा सकते हैं और मुनि सोलह स्वर्गसे ऊपर तक जाते हैं। जो जीव अभव्य मिथ्यादृष्टि हैं किंतु निर्ग्रंथलिंगके धारक द्रव्यलिंगी मुनि कहे जाते हैं वे मरकर उग्रतपके प्रभावसे ग्रैवेयक तक जाते हैं आगे नहीं॥ १०५–१०६॥ जो भव्य हैं सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रयके धारक हैं और मुनि हैं वे सर्वार्थसिद्धि पर्यंत मरकर गमन कर सकते हैं॥ १०७॥

भवनवासी व्यंतर और ज्योतिषी देवोंके कृष्ण नील कापोत ये तीनों लेश्यायें द्रव्यरूप और भावरूप दोनों प्रकार की होती हैं एवं पीतलेश्या जघन्यरूप रहती है ॥१०८॥ सौधर्म और ऐशान स्वर्गोंमें देवोंके पीतलेश्या मध्यमस्वरूप, सनत्कुमार माहेंद्र स्वर्गोंमें उत्कृष्ट स्वरूप रहती है और पद्मलेश्या जघन्यरूप रहती है॥ १०९॥ आगेके

तीन युगलोंमें अर्थात् पांचवें छठे सातवें आठवें नवमें और दसवें स्वर्गोंमें मध्यम पद्म-लेश्या है शतार और सहस्रार स्वर्गोंमें उत्कृष्ट पद्मलेश्या और जघन्य शुक्ल लेश्या है ॥ ११० ॥ आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गोंके देवोंके और नवग्रैवेयकनिवासी देवोंके मध्यम शुक्ललेश्या है ॥ १११ ॥ एवं चौदह अहमिंद्र विमानोंके देव द्वेषरहित शांत हैं इसलिये उनके परम शुक्ल लेश्या है ॥ ११२ ॥

सौधर्म और ईशान स्वर्गोंमें रहनेवाले देव अवधिज्ञानसे नीचे प्रथम नरक तकके ही पदार्थ जान सक्ते हैं सनत्कुमार और माहेंद्र स्वर्गनिवासी देवोंका दूसरे नरक तक, पांचवे छठे सातवें और आठवें स्वर्गनिवासी देवोंका तीसरे नरक तक, नववें दशवें ग्यारहवें और बारहवें स्वर्गके देवोंका चौथे नरकतक, तेरहवें चौदहवें पंद्रहवें और सोलहवें स्वर्गोंके देवोंका पांचवे नरकतक, नवग्रैवेयक निवासी देवोंका छठे नरकतक, नव अनु-दिश विमानवासी देवोंका सातवें नरकतक, और पंचोत्तर विमानवासी देवोंका लोक नाडीतक अवधिज्ञानका विषय है ॥११३–११६॥ यदि देव अपने अवधिज्ञानके बलसे ऊपर जानना चाहैं तो वे अपने २ विमान के अंत तकके ही पदार्थ जान सकते हैं ॥११७॥ चारो प्रकारके देवोंके आयु, ऊंचाई, प्रवीचार आदि पहिले कह आये हैं वे वहांसे यथा योग्य समझ लेना चाहिये ॥ ११८ ॥ आरण स्वर्गपर्यंत दक्षिणदिशाके देवोंकी देवियां केवल सौधर्म स्वर्गमें अपने २ उपपादस्थानोंपर उत्पन्न होती हैं और उन्हें दक्षिण स्वर्गनिवासी देव अपने अपने स्वर्गोंमें लेजाते हैं ॥ ११९ ॥ एवं अच्युत स्वर्ग पर्यंत उत्तर दिशाके स्वर्गोंमें रहनेवाले देवोंकी नियोगिनी देवियां ऐशान स्वर्गमें उत्पन्न होती हैं और उन्हें उत्तरदिशाके स्वर्गोंमे रहनेवाले देव विमानोंमें विठाकर अपने २ स्वर्गोंमे ले जाते हैं॥१२०॥ देवियोंकी उत्पत्तिके स्थान (विमान) सौधर्म स्वर्ग में छह लाख और ईशान स्वर्गमें चार लाख हैं ॥ १२१ ॥ नानाप्रकारके दिव्य वस्त्र और भूषणोंसे अलंकृत, पुण्यमूर्ति, उत्तम रूप और चालढालसे नेत्रोंको हरणकरनेवाली हावभाव बतलानेमें चतुर, स्वाभाविक प्रेम करनेवालीं, और अनेक पल्य आयुकी धारण-करनेवालीं इन देवांगनाओंके साथ देवगण आनंद सुखका अनुभव करते हैं ॥१२२–१२३ ॥ इंद्र सामानिक त्रायस्त्रिंश आदि देव सोलह स्वर्ग पर्यंत निवास करते हैं और वहां सागरोंकी आयु पाकर अनेक सुख भोगते हैं ॥ १२४ ॥ स्वर्गोंसे आगे नवग्रैवे-यक आदिमें अहमिंद्र निवास करते हैं। इनके स्त्रियां नहिं होतीं इसलिये ये हमेशा सातावेदनीय कर्मसे जायमान अस्त्रीक शांतिमय सुखका भोग करते हैं ॥ १२५ ॥ सर्वार्थसिद्धि विमानसे बारह योजन ऊंची सिद्ध शिला है यह तीनों लोकके अग्रभागमें है और इसपर सिद्ध भगवान निवास करते हैं ॥ १२६ ॥ मोक्षशिलाको अष्टम पृथ्वी बतलाया है और इसे ईषत्प्राग्भार संज्ञासे भी कहा है। सिद्धशिलाकी मध्यमें मुटाई आठ

योजन और अंतमें कम होते होते अंगुलके असंख्यातवें भाग है एवं सिद्धशिलाका आकार ऊपर उठे हुये अतिशय गोल सफेद छत्रके समान है ॥ १२७-१२८ ॥ उसका विस्तार पैंतालीस लाख योजन ॥ १२९ ॥ और परिधि एक करोड व्यालीस लाख तीस हजार दोसौ उनचास योजन है ॥ १३० ॥ सिद्धशिलाके ऊपर पहिले तीन वातवलय वतला आये हैं उनमें प्रथमके दो वातवलय तो तीन तीन कोसके मोंटे हैं और तीसरा तनुवातवलय एक हजार पांचसौ पचहत्तर धनुष मोटा है ॥ १३१-१३२ ॥ तनुवातवलयके समीपमें सिद्ध विराजते हैं। सिद्धोंकी उत्कृष्ट अवगाहना पांचसो पचीस धनुष और जघन्य अवगाहना साडे तीन हाथ है। समस्त कर्मोंके नाश होजानेपर सिद्धोंका ऊर्ध्वगमन होता है और पूर्व अवगाहनासे (शरीरपरिमाणसे) सिद्धशिला पर इनकी अवगाहना कुछ कम होजाती है ॥ १३३-१३४ ॥ सिद्धोंमें परस्पर अवगाहन सामर्थ्य है इसलिये सिद्धशिलापर कृतकृत्य हो जहां एक सिद्ध विराजता है वहां अनंते सिद्ध विराजते हैं ॥ १३५ ॥ ये सिद्ध परमेष्ठी शरीर रहित हैं, सुखस्वरूप हैं। अपने साकार और निराकार उपयोगसे सदा निर्विघ्न जीते रहते हैं ॥ १३६ ॥ अनंतपर्याय संयुक्त इस लोकाकाश और अलोकाकाशको एक साथ जानते देखते रहते हैं और परम आनंद सुखका अनुभव करते रहते हैं ॥१३७॥ ये सिद्ध शुद्ध हैं समस्त पदार्थोंके जानकार हैं। जन्म जरा मरण रहित हैं। सदाकाल रहनेवाले हैं। और समस्त कर्म बंधनोंसे रहित हो अविनाशी मोक्षमें विराजमान हैं ॥ १३८ ॥ यह संक्षेपसे ज्योतिर्लोक और अनेक पटलोंसे भूषित स्वर्ग एवं मोक्षकी प्रज्ञप्ति वर्णनकी गई है इसके वाद काल द्रव्यका वर्णन किया जाता है ॥ १३९ ॥

भगवान जिनेंद्रने अतिशय उज्ज्वल धर्म ध्यानका उपदेश दिया है उसके आज्ञाविचय १ अपायविचय २ विपाकविचय ३ और संस्थानविचय ४ ये चार भेद (पाये) बतलाये हैं इनसे चंचल चित्तकी वृत्ति रुकती है इसलिये जिन भव्यजीवोंकी इंद्रियां और मन वश हैं उन्हें चाहिये कि वे अवश्य इसलोकके आकारका विचार करें और प्रमादी वन मन और इंद्रियां रूपी मत्त हाथीके वश न होजांय ॥ १४० ॥

इसप्रकार श्री जिनसेनाचार्य निर्मित भगवान नेमिनाथके चरित्रको कहनेवाले इस हरिवंशपुराणमें ज्योतिर्लोक और ऊर्ध्वलोकका वर्णन करनेवाला छठा सर्ग समाप्त हुआ।

सातवां सर्ग।

रूप रस गंध स्पर्श इन मूर्तीक गुणोंसे रहित—अमूर्तीक, न भारी न हलका एवं वर्तना लक्षणका धारक, कालद्रव्य है इसके निश्चय और व्यवहार ये दो भेद हैं ॥१॥ जिस प्रकार जीव और पुद्गलके गमन करनेमें धर्मद्रव्य, ठहरनेमें अधर्मद्रव्य, और समस्त द्रव्योंको

अवकाशदान देनेमें आकाश द्रव्य सहकारी कारण है उसीप्रकार समस्त द्रव्योंके परिवर्त्तनमें काल द्रव्य सहकारी कारण है ॥२॥ जिसप्रकार धर्म अधर्म और आकाश इंद्रियगोचर न होनेपर भी आगम प्रमाणसे निश्चित समझे जाते हैं उसीप्रकार काल द्रव्यका भी आगमसे निश्चय कर लेना चाहिये ॥ ३ ॥ जीव और पुद्गलोंका परिवर्तन सदा भिन्न भिन्न रूपसे होता रहता है उसका कारण निश्चय काल द्रव्य है और घंटा घडी पल आदि उसकी पर्यायें हैं ॥ ४ ॥ समस्त द्रव्योंके परिणमन आदि व्यापार अंतरंग और बहिरंग दोकारणोंसे हुआकरते हैं उनमें अंतरंग कारण वस्तुका स्वभाव (योग्यता) है और बहिरंग कारण निश्चयकाल है ॥५–६॥ काल परमाणुओंको निश्चयकाल द्रव्य कहते हैं सो ये कालाणु एक दूसरेमें प्रवेश न कर, असंख्यात प्रदेशी इस लोकाकाशके हरएक प्रदेशमें स्थित हो समस्त लोकाकाशमें व्याप्त हैं ॥ ७ ॥ द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा कालाणुऐं विकृत नहिं होते इसलिये ये उत्पाद और नाशसे रहित होनेके कारण कथंचित् नित्य हैं और सदा अपने स्वस्वरूपमें ही स्थित रहते हैं ॥ ८ ॥ कालाणुओंमें अगुरुलघु नामका गुण रहता है उससे प्रतिसमय इनकी पर्यायें पलटतीं रहती है इसलिये पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा समस्त कालाणु कथंचित् अनित्य भी हैं ॥ ९ ॥ समयोंका व्यापार भूत भविष्यत और वर्तमान इन तीन प्रकारसे अनुभवमें आता है इसलिये भूत भविष्यत और वर्तमानके भेदसे व्यवहार कालके भी तीन भेद होजाते हैं । कालाणुयें अनंत समयोंकी उत्पादक हैं इसलिये वे अनंत शब्दसे पुकारी जाती हैं ॥ १० ॥ ये कालाणुयें समयकी उत्पत्तिमें कारण हैं इसलिये इनसे समय उत्पन्न होते रहते हैं क्योंकि विना कारणके कार्य कहीं भी नहि होता ॥ ११ ॥ कहोगे कारणके विना स्वतः ही कार्य उत्पन्न हो जाते हैं तो गधेके सींग भी होने चाहिये क्योंकि वहां भी कारणोंकी आवश्यकता नहीं है ॥ १२ ॥ समय आदि कालद्रव्यके कार्योंकी यदि कालद्रव्यसे भिन्न किसी अन्य कारणसे उत्पत्ति मानोगे सो भी ठीक नहीं क्योंकि शालि (चांवल) के वीजसे यव (जौ) के अंकूरे उत्पन्न नहिं हो सकते ॥ १३ ॥ यदि कहींपर कार्यकी उत्पत्तिमें अन्य कोई विजातीय कारण हो भी जाय तो वह सहकारी कारण ही होता है उपादान कारण नहीं ॥ १४ ॥ इसप्रकार युक्तिबलसे और सर्वज्ञप्रतिपादित आगमके वलसे व्यवस्थापूर्वक निश्चय कालका सद्भाव माना है ॥ १५ ॥ समय आवलि उच्छ्वास प्राण स्तोक और लव आदि व्यवहार काल हैं ॥ १६ ॥ उनमें गमनशील पुद्गलका शुद्ध परमाणु मंदगतिसे जितनेकालमें अपने प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें जाय और जिसका दूसरा भाग न हो सके उसै समय कहते हैं ॥ १७–१८ ॥ असंख्यात समयकी एक आवली होती है। संख्यात आवलियोंका एक उच्छवास और निश्वास होता है इन्हींको प्राण कहते हैं। सात प्राणोंका एक स्तोक, सात स्तोकका एक लव, सतहत्तर

लवोंका एक मुहूर्त, तीस मुहूर्तोंका एक अहोरात्र, पंद्रह अहोरात्रोंका एक पक्ष, दो पक्षोंका एक मास, दोमासकी एक ऋतु, तीनऋतुओंका एक अयन, दो अयनोंका एक वर्ष, पांच वर्षोंका एक युग, दो युगोंके दश वर्ष, दशके दशगुणे सौ वर्ष, सौके दशगुणे हजार वर्ष, हजारके दशगुणे दश हजार, दश हजारके दशगुणे लाख वर्ष, लाखके चौरासी गुणे चौरासी लाख वर्ष होते हैं। चौरासी लाख वर्षका एक पूर्वांग, चौरासी लाख पूर्वांगका एक पूर्व, चौरासी लाख पूर्वका एक पर्वांग, चौरासी लाख पर्वांगका एक पर्व, चौरासीलाख पर्वोंका एक नियुतांग, चौरासी लाख नियुतांगोंका एक नियुत, चौरासी लाख नियुतोंका एक कुमुदांग, चौरासी लाख कुमुदांगोंका एक कुमुद, चौरासी लाख कुमुदोंका एक पद्मांग, चौरासी लाख पद्मांगोंका एक पद्म, चौरासी लाख पद्मोंका एक नलिनांग, चौरासी लाख नलिनांगों का एक नलिन, चौरासी लाख नलिनोंका एक कमलांग, चौरासी लाख कमलांगोंका एक कमल, चौरासी लाख कमलोंका एक त्रुट्यांग चौरासी लाख त्रुट्यांगोंका एक त्रुट्य, चौरासी लाख त्रुट्योंका एक अटटांग, चौरासी लाख अटटांगोंका एक अटट, चौरासी लाख अटटोंका एक अममांग, चौरासी लाख अममांगोंका एक अमम, चौरासी लाख अममोंका एक ऊहांग, चौरासी लाख ऊहांगोंका एक ऊह, चौरासी लाख ऊहोंका एक लतांग चौरासी लाख लतांगोंकी एक लता, चौरासी लाख लताओंका एक महालतांग, चौरासीलाख महालतांगोंका एक (काल वस्तु) महालता, चौरासी लाख महालतोंका एक शिरःप्रकंपित, चौरासी लाख शिरःप्रकंपितोंकी एक हस्तप्रहेलिका, और चौरासी लाख हस्तप्रहेलिकाओंका एक चर्चिक आदिको संख्यात काल कहा गया है और जिसमें वर्षोंकी संख्या नहीं हैं उसे असंख्यात काल कहते हैं और उसके पल्य सागर कल्प अनंत आदि अनेक भेद हैं ॥ १९–३१ ॥ आदि मध्य और अंतरहित, अविभागी, अतींद्रिय मूर्त और एक प्रदेशी परमाणु कहा गया है। इस परमाणुमें एक समयमें एक रस एक वर्ण एक गंध और दो स्पर्श रहते हैं और यह अभेद्य अर्थात् दूसरोंसे भेदा नहिं जा सकता है शब्दका कारण है किंतु स्वयं शब्दका धारक नहिं है ॥ ३२–३३ ॥ अपने को सर्वज्ञ माननेवाले अनेक मनुष्योंने सब ओर आकाशके छै अंशोंकी कल्पनाकर और परमाणुका छै अंशोंके साथ संबंधकर उसे षडंश मान रक्खा है परंतु वह ठीक नहीं क्योंकि उनके कथनानुसार छै छोटे २ अंश आकाशके और एक अंश परमाणुका सब मिल कर सप्तांश परमाणु सिद्ध होता है। षडंश परमाणु सिद्ध कदापि नहिं हो सकता ॥ ३४–३५ ॥ परमाणुओंमें प्रतिसमय वर्ण गंध रस और स्पर्श गुणोंसे स्कंधोंके समान पूरण और गलन होता रहता है इसलिये परमाणु पुद्गल द्रव्य है गुण आदि नहीं ॥ ३६ ॥ अनंतानंत परमाणुओंके समूहका नाम अवसंज्ञादि है अवसंज्ञादिको ही स्कंध कहते हैं आठ

अवसंज्ञादिका एक संज्ञासंज्ञादि होता है आठ संज्ञासंज्ञादिका एक त्रुटिरेणु, आठ त्रुटिरेणुओंका एक त्रसरेणु, आठ त्रसरेणुओंका एक रथरेणु, आठ रथरेणुओंका एक जघन्य भोगभूमियां मनुष्यके बालका अग्रभाग, इससे अठगुना मध्यम भोगभूमियांके वालका अग्रभाग, इससे अठगुना उत्तम भोगभूमियांके वालका अग्रभाग, इससे अठ-गुना कर्मभूमिके मनुष्यके एक वालका अग्रभाग, आठ कर्मभूमिमनुष्यके वालके अग्र-भागोंकी एक लीख, आठ लीखका एक जूंवा, आठ जूंवोंका एक यव, और आठ यवका एक उत्सेधांगुल होता है इस उत्सेधांगुलसे जीवोंके शरीरकी ऊंचाई और छोटी वस्तु-ओंका प्रमाण किया जाता है ॥-३७-४१ ॥ पांचसौ उत्सेधांगुलोंका एक प्रमाणांगुल होता है । यहां पर प्रमाणांगुल पांचसौ धनुष ऊंचे शरीरके धारक, अवसर्पिणीकालके प्रथम चक्रवर्तीका लिया गया है और इससे अकृत्रिम वडे २ द्वीप समुद्र एवं मेरु आदि पर्वतोंकी चौडाई ऊंचाईका प्रमाण किया जाता है ॥ ४२-४३ ॥ अपने २ कालमें जो मनुष्योंका अंगुल है वह आत्मांगुल कहा गया है और उससे उस २ कालमें छत्र चमर आदि अथवा नगर घर आदिका प्रमाण होता है ॥ ४४ ॥ छै (उत्सेधांगुल धनांगुल और आत्मांगुल) अंगुलोंका एक पाद होता है दो पादकी एक वितस्ति (विलायंद) दो वित-स्तिका एक हाथ, दो हाथका एक किष्कु (गज) दो किष्कुका एक दंड (इसको धनुष भी कहते हैं)और आठ हजार धनुषका एक योजन होता है यह छोटा योजन है । प्रमा-णांगुलके योजनसे क्षेत्र पर्वत आदिकी ऊंचाई लंबाई चौडाई आदिका प्रमाण होता है और क्षेत्रकी चौडाईसे तिगुनी चौडाई परकोटकी समझनी चाहिये ॥ ४५-४७ ॥ एक ऐसा गढा खोदा जाय जो एक योजन चौडा एक योजन लंबा और एक योजन गहरा हो और उसमें मुख तक एकसे सात दिन तकके मेषके वच्चेके ऐसे कूट २ कर बालोंके टुकडे भरे जांय जिनके फिर टुकडे न हो सकें ऐसे बालोंके टुकडोंसे भरे हुये गढेका नाम व्यवहारपल्य है और उन टुकडोंमेंसे हर एक टुकडेको सौ २ वर्षके वाद निकाला जाय तो जितने कालमें वह गढा खाली हो जाय उतने कालका नाम व्यवहार पल्योपम काल है ॥ ४८-४९ ॥ तथा उन्हीं अविभागी बालोंके टुकडोंमेंसे हर एक टुकडेके जितने असंख्यात करोड वर्षोंके समय होते हैं उतने ही कल्पनासे टुकडे किये जांय और उनसे उतना ही लंबा चौडा और गहरा गढा भराजाय तो उस भरे हुये गढेका नाम उद्धार पल्य है और उन टुकडोंमेंसे एक २ समयके बाद एक २ टुकडा निकालनेपर जितने कालमें वह गढा खाली हो जाय उस कालको उद्धार पल्योपम काल कहते हैं ॥५०॥ दश कोडाकोडी उद्धार पल्योंका एक उद्धार सागरोपम काल होता है और ढाई उद्धार सागरोपमकालोंके अर्थात् पचीस कोडाकोडी उद्धार पल्योंके जितने बालोंके टुकडे हों उतनेही द्वीप समुद्र हैं ॥ ५१ ॥ पचीस कोडाकोडी उद्धार पल्योंके जितने अर्धच्छेद

हैं उनमें हरएकको दूना करनेपर जो प्रमाण निकले उसे रज्जू कहते हैं। इस रज्जूके दोनों ओर तनुवात वलय है और इससे तीनों लोकका प्रमाण किया जाता है॥ उद्धार पल्यके जितने टुकडे हैं उनमें हरएक टुकडेके असंख्यात वर्षकोटियोंके जितने समय होते हैं कल्पनासे उतने ही टुकडे किये जांय और उनसे पूर्वोक्त प्रकारका ही लंबा चौडा गहरा गढा भरा जाय उस गढेका नाम अद्धा पल्य है और उनमेंसे एक एक समयके बाद एक एक टुकडेके निकालनेपर जितने कालमें वह गढा खाली हो सके उतने कालका नाम अद्धाकाल कहा गया है एवं इससे देव आदिकी आयुका प्रमाण किया जाता है॥ ५२–५४॥ दश कोडाकोडी अद्धापल्योंका एक अद्धा सागर होता है और इससे जीवोंकी आयुस्थिति कर्मस्थिति भवस्थितिका प्रमाण किया जाता है॥ ५५॥ दश कोडाकोडी अद्धा सागरोंका एक अवसर्पिणी और उतने ही सागरोंका एक उत्सर्पिणी काल होता है। इनमें हरएकके छै २ भेद हैं॥ ५६॥ जिसमें पदार्थोंकी शक्ति क्रमसे हीन होती जाय उसे अवसर्पिणीकाल कहते हैं और जिसमें दिनोंदिन शक्ति बढती जाय उसका नाम उत्सर्पिणीकाल है॥ ५७॥ सुषमा सुषमा १ सुषमा २ सुषमा दुःषमा ३ दुःषमा सुषमा ४ दुषमा ५ और दुःषमा दुषमा ६ ये छै भेद तो अवसर्पिणीके हैं और ये ही उलटे अर्थात् दुःषमा दुःषमा १ दुःषमा २ दुःषमा सुषमा ३ सुषमा दुःषमा ४ सुषमा ५ और सुषमा सुषमा ६ ये छै उत्सर्पिणीके हैं॥ ५८–५९॥ अवसर्पिणीका पहिला सुषमा सुषमा काल चार कोडाकोडी सागरका है दूसरा सुषमा तीन कोडाकोडी सागर, तीसरा सुषमा दुःषमाकाल दो कोडाकोडी सागर चौथा दुःषमा सुषमा व्यालीस हजार वर्ष कम एक कोडाकोडी सागर और पांचवा दुषमा इक्कीस हजार वर्ष और छठा दुःषमा दुःषमा भी इक्कीस ही हजार वर्षका है॥ ६०–६२॥ अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी ये दोनों काल भरत और ऐरावत क्षेत्रोंमें ही हैं अन्यक्षेत्रोंमें नहीं और भरत एवं ऐरावत क्षेत्रके ही पदार्थोंका वढना घटना होता है अन्य क्षेत्रके पदार्थोंका नहीं अन्य क्षेत्रोंमें पदार्थ सदा एकसे रहते हैं॥ ६३॥

आदिके सुषमा सुषमा आदि तीनों कालोमें इस भरतक्षेत्रमें भोगभूमिकी रचना थी यह भोगभूमि कल्पवृक्षोंसे युक्त थी इसमें रहनेवाले जीव उत्तमोत्तम भोग भोगते थे और युगलिया उत्पन्न होते थे। पहिले सुषमा सुषमा कालमें उत्पन्न होनेवाले भोग भूमियोंके शरीरकी ऊंचाई छै हजार धनुष थी दूसरेकालमें चार हजार और तीसरेमें दो हजार धनुष थी॥ ६४–६५॥ प्रथमकालमें उत्पन्न होनेवालोंकी आयु तीन पल्य थी दूसरे कालमें होनेवालोंकी दो पल्य और तीसरे कालमें होनेवालोंकी एक पल्य थी एवं यह देवकुरु उत्तरकुरु हरि और हैमवत क्षेत्रोंके समान थी॥ ६६॥ पहिले कालमें उत्पन्न होनेवाले भोगभूमियां स्त्रीपुरुषोंकी प्रभा ऊगते सूर्य सरीखी थी दूसरे

कालमें होनेवालोंकी पूर्णचंद्रमाके समान और तीसरेकालके भोग भूमियोंकी प्रियंगुमणिके समान श्याम प्रभा थी ॥६७॥ पहिले कालमें दोसौ छप्पन पृष्टकांडक थे दूसरेमें एकसौ अट्ठाईस और तीसरेमें केवल चौसठ थे। पहिले कालके भोग भूमियोंका दिव्य आहार वैर (वदरीफल) की बरावर था और वह तीन दिनके पश्चात् था दूसरेमें दो दिनके वाद् वहेडेके बरावर और तीसरेमें एक दिनके वाद आंवलेके बरावर था ॥ ॥६८–६९॥ सुषमा आदि तीनों कालोंमें भरतक्षेत्रकी यह पृथ्वी तीनों प्रकारकी नित्य भोगभूमियोंकी शोभा धारण करती थी ॥७०॥ जिसप्रकार रत्नमयी अकृत्रिम पटलोंसे रत्नप्रभा भूमिकी उत्तम शोभा है उसीप्रकार चौतर्फा स्फुरायमान रत्नोंके पटलसे इस पृथ्वीकी अतिशय मनोहर शोभा थी ॥ ७१ ॥ उससमय इस भरतक्षेत्रकी भूमिकी शोभा स्वर्गभूमिके समान थी क्योंकि जिसप्रकार अपनी तीक्ष्णकांतिसे समस्त दिशाओंको व्याप्त करनेवाले महानील इंद्रनील आदि, अतिशय कृष्ण अंजनमणि आदि, अत्यंत लाल पद्मराग आदि, अतिशय पीले हेम आदि, और अत्यंत सफेद स्फटिक आदि पंचवर्णके रत्न स्वर्गभूमिमें हैं वैसेही सुषमा सुषमा आदि कालोंमें भरतक्षेत्रकी भूमिमें थे ॥ ७२–७३ ॥ उससमय यह भूमि मनोहर रमणीके समान जान पडती थी क्योंकि जिसप्रकार स्त्रीके मुख अधर चोली होती है उसीप्रकार इस पृथ्वीरूपी स्त्रीके मनोहर चंद्रकांत शिला मुख था मूंगे अधर पल्लव थे और रत्नमयी सुवर्णमयी भूमि चमकीली चोली थी ॥ ७४ ॥ वहां अतिशय शीतल चंद्रमाकी किरणें और अत्यंत गरम सूर्यकी किरणें ऐसी जान पडती थीं मानों शीत उष्णकी बाधासे आपसमे मिलगई हों ॥ ७५ ॥ जिसप्रकार प्रेमी स्त्रीपुरुष एक दूसरेके करालिंगनसे गाढ अनुरागका अनुभव करते हैं उसीप्रकार भोगभूमिके समय इस पृथ्वीपर भी अनेक चंद्रकांत सूर्यकांत आदि मणियोंकी किरणें आपसमें अनुरक्त थीं ॥ ७६ ॥ उससमय यह पृथ्वी हरित आदि पांचवर्ण, सुखस्पर्श, सुगंध, मधुररस उत्तमोत्तम शब्द और चार अंगुल लंबे तृणोंसे व्याप्त थी ॥ ७७ ॥ जगह जगह इस पृथ्वीपर दही मधु दूध घी इक्षुरस और निर्मलजलोंसे पूर्ण एवं रत्नमयी तटोंसे भूपित अनेक दिव्य वावडियां और सरोवर थे ॥ ७८ ॥ भांति भांतिके वर्णोंकी मणियोंसे व्याप्त जीवोंको अतिशय आनंद देनेवाले मनोहर सुवर्णमयी पर्वत उस समय इस पृथ्वीकी विचित्र ही शोभा बढाते थे ॥ ७९ ॥ भोगभूमिके समय इस पृथ्वीपर ज्योतिरंग १ गृहांग २ दीपांग ३ सूर्यांग ४ भोजनांग ५ भाजनांग ६ वस्त्रांग ७ मालांग ८ भूषणांग ९ और मद्यांग १० ये दश प्रकारके कल्पवृक्ष थे ॥ ८० ॥ उनमें ज्योतिरंग जातिके कल्पवृक्ष इतने देदीप्यमान थे कि उनके सामने सूर्यचंद्रमाकी भी कांति फीकी रहती थी जिससे कि रात दिनका कुछ भेद नहिं जान पडता था ॥ ८१ ॥ गृहांग जातिके कल्पवृक्षोंसे

उत्तमोत्तम उपवनोंसे शोभित विशाल महल वनजाते थे जिनसे कि आकाश अद्वितीय मनोहर जान पडता था ॥ ८२ ॥ प्रदीपांग जातिके कल्पवृक्षोंकी विशाल एवं लंबी डालियोंपर कमलोंकी कलियोंके समान लगे हुये पल्लव जाज्वल्यमान दीपोंके समान जान पडते थे ॥ ८३ ॥ तूर्यांग जातिके कल्पवृक्षोंके प्रभावसे तत[1] वितत[2] घन[3] और सुषिर[4] इन चार प्रकारके मनोहर वाजोंकी प्राप्ति होती थी ॥ ८४ ॥ भोजनांग जातिके कल्पवृक्ष षट्रसमय अतिशय मधुर अशन[5] पान[6] खाद्य[7] और स्वाद्य[8] ये चार प्रकारका भोजन प्रदान करते थे ॥ ८५ ॥ भाजनांग जातिके कल्पवृक्ष नानाप्रकारके सुवर्णमयी थाली कटोरी आदि पात्रोंको देते थे ॥ ८६ ॥ वस्त्रांग जातिके कल्पवृक्ष स्कंध और शाखाओंमें सूती रेशमी वस्त्रोंको धारण किये अतिशय सुंदर मालूम पडते थे ॥ ८६ ॥ माल्यांग जातिके कल्पवृक्ष मालती मल्लिका आदिके उत्तमोत्तम फूलोंसे गुथी हुई सुंदर सुंदर मालाओंको देते थे ॥ ८९ ॥ भूषितांग जातिके कल्पवृक्ष हार कुंडल केयूर (बाजू) करधनी आदि स्त्री पुरुषोंके योग्य उत्तमोत्तम भूषण प्रदान करते थे ॥ ८९ ॥ और मद्यांग जातिके कल्पवृक्ष स्त्री पुरुषोंके लिये कामोद्दीपन करनेवाले प्रासन आदि अनेक प्रकारके मद्य प्रदान करते थे ॥ ९० ॥ इसप्रकार उससमय भोगभूमियां जीव इस भूमिपर दशकल्प वृक्षोंसे जायमान चक्रवर्तीके दशांग भोगोंसे भी कई गुणे अधिक सुखकारी भोगोंका भोग करते थे ॥ ९१ ॥ भोगभूमियां जीव स्त्रीपुरुष युगलिया पैदा होते हैं। जन्मकालमें ही इनके माता पिता मर जाते हैं इसलिये सात दिनतक जमीनपर पडे पडे अपने पांवके अंगूठेको चूसा करते हैं ॥ ९२ ॥ सातदिनके पश्चात् वे इधर उधर जमीनपर रिंग निकलते हैं पुनः सात दिनके बाद अस्थिर रूपसे गमन करते हैं और सातदिनके बाद स्थिररूपसे जमीनपर चल निकलते हैं। पुनः सातदिनके अनंतर वे समस्त कला और गुणोंमें निपुण हो जाते हैं ॥ ९३ ॥ इसके बाद सात दिनमें वे युवा हो जाते हैं और युवा होनेके वाद सात दिनके पश्चात् इनमें सम्यक्त्व ग्रहण करनेकी योग्यता प्रकट होती है ॥ ९४ ॥ स्त्री पुरुषोंके उत्तमोत्तम लक्षणोंसे भूषित निर्मल इंद्रिय और बुद्धिके धारक भांति २ की कला और गुणोंमें चतुर भोगभूमियां जीव नीरोगतापूर्वक सानंद क्रीडा करते रहते हैं ॥ ९५ ॥ भोगभूमिके मनुष्य देवकुमारोंके समान होते हैं स्त्रियां देवांगनाओंके तुल्य होती हैं एवं इनके वर्ण गंध रस स्पर्श शब्द और वेष अतिशय प्रिय

१ तारके वाजे वीणा तमूरा आदि तत वाजे है। २ चामसे मढे हुये मृदंग ढोल नगारा डफ आदि वितत वाजे हैं। ३ झालर झाझ मजीरा आदि कासेके वाजे घन कहलाते है। ४ और शंख वासुरी तुरई आदि सुषिर वाजे है। ५ दाल भात रोटी आदि अशन [अन्न] भोजन है। ६ जल दूध छाछ शरवत आदि पान भोजन है। ७ मेवा मिष्टान्न आदि खाद्य। ८ लवंग इलायची दालचीनी आदि स्वाद्य भोजन है।

होते हैं ॥ ९६ ॥ भोगभूमिके जीवोंके कर्ण सदा गीतोंके सुंदर शब्द सुननेमें, नेत्र रूप देखनेमें, नाक प्रिय गंध सूंघनेमें, जीभ रसके चाखनेमें और स्पर्श इंद्रिय शरीरके सुंदर स्पर्श करनेमें आसक्त रहते हैं इसलिये उनकी मन युक्त इंद्रियां थोडी देरके लिये भी आनंद रससे विराम नहिं लेतीं ॥ ९७-९८ ॥ जिसप्रकार कल्पवृक्षके भोजनोंसे अतिशय तृप्त हो भोगभूमिमें मनुष्योंके जोडे वडे प्रेमसे आपसमें आनंद क्रीडा करते हैं। उसीप्रकार पशुओंके जोडे भी प्रेमपूर्वक क्रीडा करते रहते हैं ॥ ९९ ॥ कहींपर अतिशय मत्त सिंहोंकी कहींपर मत्त हाथियोंकी कहींपर ऊटोंकी कहींपर शूकरोंकी और कहींपर व्याघ्रोंकी जोडी रमण करती फिरती है ॥ १०० ॥ भोगभूमिमें गौ, घोडे, भैंसे आदिके जोडोंकी आयु मनुष्य आयुके बरावर होती है और तब तक वे इच्छानुसार आपसमें आनंद क्रीडा किया करते हैं ॥१०१॥ वहां पर मनुष्य अपनी प्राणवल्लभाओंको "आर्ये" कहकर पुकारते हैं और प्राणवल्लभा अपने स्वामियोंको "आर्य" कहकर बुलाती हैं ये साधारण नाम भोगभूमिके समस्त नर नारियोंमें प्रचलित हैं ॥ १०२ ॥ भोगभूमिमें समस्त स्त्री पुरुष उत्तम जातिके हैं वहां पर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य आर शूद्र ये चार वर्ण नहीं होते। असि मषि कृषि आदि छै कर्म भी नहीं वहां पर न कोई किसीका स्वामी है न सेवक है समस्त भोगभूमियां मध्यस्थ वृत्तिके धारक हैं इस लिये वहां उनका कोई शत्रु और मित्र भी नहीं। भोगभूमिके जीव स्वभावसे ही मंद-कषायी होते हैं इसलिये ये अपनी आयु समाप्त कर स्वर्गमें जन्म लेते हैं ॥ १०३-१०४ ॥ भोगभूमिमें मनुष्य तो छींक लेते २ सुखसे प्राण तज देते हैं स्त्रियां जँभाई लेकर प्राण छोडती हैं ये दोनों एक साथ ही जन्म लेते हैं और एक साथ ही मरते हैं एवं जब तक जीते हैं आपसमें इनका गाढ प्रेम बना रहता है ॥ १०५ ॥ इसप्रकार भोगभूमि-योंका संक्षेपसे स्वरूप कथन कर दिया गया अब भोगभूमियोंकी उत्पत्तिके कारण कहे जाते हैं—

जो कर्मभूमिके मनुष्य स्वभावसे ही मंदकषायी होते हैं वे उत्तम आदि पात्रोंमें दान देनेके कारण भोगभूमिमें उत्पन्न होते हैं ॥ १०७ ॥ जो जीव सम्यग्दर्शन सम्य-ग्ज्ञान सम्यक्चारित्र और तपोंकी शुद्धिसे शुद्ध हों शत्रु और मित्रोंमें मध्यस्थ हों उन्हें उत्तम पात्र कहते हैं ॥ १०६-१०७ ॥ पंचम संयतासंयत गुणस्थानके धारक श्रावक श्राविका मध्यम पात्र कहलाते हैं। और जघन्यपात्र चतुर्थ गुणस्थानके धारक अवि-रत सम्यग्दृष्टि होते हैं ॥१०९॥ इन तीनों प्रकारके पात्रोंमें दान देकर भव्यजीव भोग-भूमिमें उत्पन्न होकर वहांके दिव्य सुखका भोग करते हैं ॥ ११० ॥ उत्तमक्षेत्रमें वोया हुआ थोडासा भी वीज जिसप्रकार विशेष रूपसे फलता है उसीप्रकार पात्रमें दिया हुआ अल्प आहार आदि दान भी विशेष फलका देनेवाला होता है ॥१११॥ जिसप्रकार

शालि और ईखके खेतमें पडा हुआ जल मीठा होजाता है गौओंद्वारा पीया गया नीर क्षीर होजाता है उसीप्रकार पात्रमें दिया हुआ अल्प रसास्वादयुक्तभी अन्न पान औषध आदि दान परभवमें अमृत स्वादका देनेवाला होता है ॥११२-११३॥ मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्रका धारक स्थूल हिंसा झूठ चौरी आदिका त्यागी कुपात्र कहा जाता है और जो स्थूल हिंसादिका भी त्यागी न हो एवं मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्रसे युक्त हो उसै अपात्र कहते हैं ॥ ११४ ॥ कुपात्रमें दान देनेसे भोगभूमिमें तिर्यच होते हैं अथवा अंतर द्वीप कुमानुष कुलमें जाकर उत्पन्न होते हैं ॥ ११५ ॥ खोटे क्षेत्रमें बोया हुआ वीज जिसप्रकार अल्प फलका देनेवाला होता है उसीप्रकार कुपात्र दानसे दाताको भी कुफलकी प्राप्ति होती है ॥ ११६ ॥ जिसप्रकार ऊषर जमीनमें बोया गया वीज मूलसे नष्ट होजाता है उसीप्रकार अपात्रमें दिया हुआ दानभी निष्फल जाता है ॥११७॥ जिसप्रकार नीव (निंब) के वृक्षमें गया हुआ जल कडुवा होजाता है कोंदोंमें पडा हुआ जल मादक होजाता है और सांपके मुखमें पडा हुआ जल विषमय होजाता है उसीप्रकार अपात्रमें दिया हुआ दानभी विफल जाता है ॥ ११८ ॥ सुपात्रमें दिया हुआ दान सुःख देनेवाला होता है कुपात्रमें दिया हुआ खोटे फलका देनेवाला होता है और अपात्रमें दिया हुआ दुःख देनेवाला होता है इसलिये भव्यजीवोंको चाहिये कि वे दान प्रात्रकेलिये ही दें ॥ ११९ ॥ स्वभावसे स्वच्छ भी स्फटिक हरे पीले नीले आदि रंगोंके संबंधसे जैसा हरा पीला नीला हो-जाता है उसीप्रकार एकही तरहका आहारादि दान उत्तम पात्रमें देनेसे उत्तम फल, मध्यम पात्रमें देनेसे मध्यम और जघन्य पात्रमें देनेसे जघन्य फलका देनेवाला होता है ॥ १२० ॥ विशुद्ध आत्माका धारक सम्यग्दृष्टि गृहस्थ यदि अपने और परके अनुग्रहकी अभिलाषासे दान दे तो वह स्वर्ग जाता है ॥ १२१ ॥

जिस समय इसक्षेत्रमें सुषमा सुषमा, सुषमा ये दो काल समाप्त हुये तीसरे कालमें पल्य का आठवां भाग वाकी रहा उस समय कल्पवृक्षोंकी प्रभा मंद होगई और गंगा एवं सिंधु दोनों नदियोंके मध्यमें क्रमसे ये चौदह कुलकर हुये ॥ १२३-१२४ ॥ कुलकरोंमें मुख्य सबसे आदि कुलकर प्रतिश्रुत था प्रतिश्रुत अतिशय प्रभावी था और उसै अपने पूर्वभवका स्मरण था ॥ १२५ ॥ कदाचित् राजा प्रतिश्रुतके राज्यकालमें प्रजाने पूर्ण-मासीके दिन आकाशरूपी हाथीके दो घंटोंके समान चंद्र और सूर्य देखे। सूर्य और चंद्रमाके देखतेही उसै बडा भय हुआ, एवं भविष्यत् कालमें हमारे ऊपर कोई विघ्न आनेवाला है ऐसी उसै शंका हुई इसलिये सबकी सब प्रजा शीघ्रही राजा प्रतिश्रुत कुलकरके पास आई और उसै इस प्रकार पूछने लगी—

नरनाथ! प्रभो! असमयमें हमें दुःख देनेवाले आकाशके दोनों अंतोंमें मंड-

लाकार ये दो पदार्थ क्या दीखते हैं ॥ १२८ ॥ हाय! यह हमारे लिये असह्य आकस्मिक भय कहांसे उठ खडा हुआ क्या अब प्रजाका भयंकर महाप्रलय होगा ॥१२९॥ प्रजाके ऐसे बचन सुनकर राजा प्रतिश्रुतने कहा—

सज्जनो! आप शोक छोडें हमें कुछ भी भय न होगा आप स्वस्थ हो तिष्ठें ॥ ॥ १३० ॥ पश्चिम दिशामें प्रभा मंडलसे व्याप्त यह सूर्य दीखता हैं और पूर्वदिशामें यह चंद्रमंडल है। ये सूर्य और चंद्रमा ज्योतिर्देवोंके स्वामी हैं गतिमान हैं और सदा मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा दिया करते हैं ॥ १३१-१३२ ॥ चार प्रकारके देवोंमें ज्योतिषी देवोंका समूह अपने स्वामी इन सूर्य चंद्रमाके पीछे २ सदा भ्रमण करता रहता है ॥१३३॥ पहिले इस पृथ्वीपर महा देदीप्यमान ज्योतिरंग जातिके कल्पवृक्ष थे उनकी तीक्ष्ण प्रभासे इनकी प्रभा सदा मंद रहती थी इसलिये ये नजर नहिं आते थे। विदेह क्षेत्रमें तो ये सदा दृष्टिगोचर होते रहते हैं ॥ १३४ ॥ इस समय ज्योतिरंग कल्पवृक्षों की प्रभा मंद होगई है इसलिये ये प्रकट दिखाई देरहे हैं ॥ १३५ ॥ अब इस पृथ्वीपर सूर्यसे रातदिनका विभाग होगा और चंद्रमासे अंधेरपक्ष (कृष्णपक्ष) और उजेर (शुक्ल) पक्ष जाने जांयगे ॥ १३६ ॥ दिनमें सूर्यकी प्रभासे चंद्रमाकी प्रभा छिपी रहेगी इसलिये वह दिनमें न दीखेगा और रातमें सूर्यदर्शन न होनेसे प्रकट दिखाई देगा ॥ १३७ ॥ पूर्वजन्ममें विदेहोंके अंदर सूर्य चंद्रको तुम लोगोंने स्पष्ट देखा है इसलिये ये तुम्हारे लिये कोई अपूर्व नहीं हैं ॥ १३८ ॥ पहिले देखे सुने वा अनुभव किये पदार्थके देखनेपर तुम्हें अपने किसी उपद्रवकी शंका न करनी चाहिये। आप लोग निर्भयतासे रहें ॥ १३९ ॥ कालके भेदसे पदार्थोंके स्वभावमें अंतर पडजाता है द्रव्य क्षेत्र और प्रजाका आचरण औरसे और होने लगता है ॥ १४० ॥ अबतक लोग निरपराध थे इसलिये दंडभी निश्चित न थे अब आगे लोग अपराधी होंगे अनेक उपद्रव करैंगे इसलिये उन्हें उपद्रवोंसे रोकनेके लिये हा, मा, और धिकार ये तीन दंड निश्चित किये जाने चाहिये ॥ १४१ ॥ जो मनुष्य कालदोषसे किसी मर्यादाके उल्लंघन करनेकी इच्छा रक्खें चाहै वे आत्मीय जन हों या परजन हों उन्हें उनके दोषके अनुकूल अवश्य दंडित किया जाना चाहिये ॥ १४२ ॥ जब मनुष्य इन तीन दंडनीतियोंसे जिकडे रहैंगे तो वे खुले मैदान कोई दोष न कर सकेंगे और दोषोंसे वचनेका उपाय भी करैंगे ॥ १४४ ॥ जो दंड निश्चय किये गये हैं वे अनर्थों से वचनेके लिये और इष्ट प्रयोजनकी सिद्धिके लिये आपलोगोंको अवश्य स्वीकार करने चाहिये ॥ १४४ ॥ आपलोग मेरी आज्ञाका भलेप्रकार पालन करते हुये अपने अपने महलोंमें निवास करें और रंचमात्रभी न डरें ॥ १४५ ॥ महाराज प्रतिश्रुतके ऐसे वचन सुन प्रजाको परमानंद हुआ और वह अपने अपने स्थानोंपर चली गई।

॥ १४६ ॥ गुरुके समान महाराज प्रतिश्रुतका वचन प्रजाने माना इसलिये पृथ्वीमें इनकी सबसे प्रथम प्रतिश्रुत नामसे प्रख्याति हुई ॥ १४७ ॥ राजा प्रतिश्रुतके सन्मति नामका पुत्र द्वितीय कुलकर उत्पन्न हुआ और पल्यका दशवां भाग जीकर राजा प्रतिश्रुत मरकर स्वर्गलोकके अतिथि बने ॥ १४८ ॥ राजा सन्मति पिताकी मर्यादाका भलेप्रकार रक्षक था अनेक कलाओंमें निपुण था और प्रजाको अतिशय मान्य था इस लिये उसका नाम सन्मति हुआ ॥ १४९ ॥ तीसरा कुलकर राजा सन्मतिका पुत्र क्षेमंकर हुआ और उसै राज्य देकर, एवं पल्यका सौंवा भाग जीकर राजा सन्मति आयुके अंतमें स्वर्गलोकमें जा विराजे ॥ १५० ॥ राजा क्षेमंकरके राज्यकालमें प्रजा सिंह व्याघ्र आदि क्रूर पशुओंसे विशेष भय करती थी इस राजाने उससमय उनसे वचनेके अनेक कारण वता प्रजाका कल्याण किया इसलिये इसका नाम क्षेमंकर पडा ॥ १५१ ॥ राजा क्षेमंकरभी पल्यका हजारवां भाग जीकर और चौथे कुलकर क्षेमंधर नामक पुत्रको राज्यदेकर स्वर्ग पधारे ॥१५२॥ राजा क्षेमंधरने पिताकी मर्यादा भलेप्रकार पाली एवं पल्यका दशहजारवां भाग जीकर स्वर्ग गये ॥ १५३ ॥ राजा क्षेमंधरके वाद उहींका पुत्र पांचवां कुलकर राजा सीमंकर हुआ इसके राज्यकालमें कल्पवृक्षोंकी लोभी प्रजा आपसमें झगडा करती थी इसने उस झगडेको दूरकिया हरएककी सीमा (बटवारा) की इसलिये ईसका नाम सीमंकर पडा और यह भी पल्यका लाखवां भाग जीकर आयुके अंतमें स्वर्ग गया। पश्चात् इसका पुत्र छठा कुलकर सीमंधर हुआ सीमंधर वास्तवमें सीमंधर (पिताकी मर्यादा रखनेवाला) था और वह भी पल्यका दशलाखवां भाग आयु व्यतीतकर स्वर्गलोक गया ॥ १५४-१५५ ॥ राजा सीमंधरके बाद सातवां कुलकर उसीका पुत्र विपुलवाहन हुआ इसने अपने समयमें बडे २ मत्त हाथियोंको वाहन (सवारी) बना क्रीडा की इसलिये इसका नाम विपुलवाहन हुआ ॥ १५६ ॥ एवं यह भी पल्यके करोडवें भाग जीकर स्वर्ग चला गया। इसके बाद इसका पुत्र आठवां कुलकर राजा चक्षुष्मान हुआ। भोगभूमिके समय संतान उत्पन्न होते ही उनके माता पिता मरजाते थे परंतु राजा चक्षुष्मानके राज्यकालमें प्रजाने अपने पुत्रोंके चक्षु और मुखोंका अवलोकन किया इसलिये कहीं संतानके उत्पन्न होते समय हम फिर न मरजांय इस भयसे प्रजाने इसकी चक्षुष्मान नामसे स्तुति की ॥ १५७-१५८ ॥ एवं यह कुलकर भी पल्यका दशकरोडवां भाग जीकर आयुके अंतमें स्वर्गस्थ बना ॥१५९॥ राजा चक्षुष्मानके स्वर्ग चलेजानेके बाद इसीका पुत्र नवमां कुलकर राजा यशस्वी राज्याधिकारी बना इसने अपने शासनसमयमें प्रजाको अपनी संतानोंका नाम धरना सिखाया इसलिये उससमय चौतर्फा इसका यश फैल गया ॥ १६० ॥ और पल्यका सौकरोडवां भाग जीकर यह भी स्वर्गगामी हुआ। राजा यशस्वीके बाद इसीका पुत्र

दशवां कुलकर राजा अभिचंद्र राज्यभोक्ता हुआ ॥ १६१ ॥ राजा अभिचंद्रके राज्य-कालमें प्रजा अपनी संतानोंको चंद्रमाके सन्मुख उला उलाकर खिलाती थी इस-लिये समस्त लोग इसे अभिचंद्र नामसे पुकारते थे ॥ १६२ ॥ इसकी आयु पल्यका हजार करोडवां भाग थी यह भी अपनी इतनी आयुका भोगकर एवं अपने पुत्र ग्यारहवें कुलकर चंद्राभको राज्य देकर स्वर्गलोक चलागया ॥ १६३ ॥ राजा चंद्राभ भी पल्यका दशहजार करोडवां भाग पृथ्वीपर जीया अंतमें वह बारहवें कुलकर अपने पुत्र मरुदेवको राज्य देकर स्वर्ग चला गया ॥ १६४ ॥ राजा मरुदेवके राज्यकालमें माता पिताओंको अपने प्यारे युगलिया बालकोंके मुखसे 'मा, 'दादा, आदि शब्द सुनने-का सौभाग्य मिला ॥ १६५ ॥ राजा मरुदेवके राज्यसे पहिले पुत्र पुत्रीका जोडा पैदा होता था परंतु इसके जोडा न पैदा होकर तेरहवां कुलकर एकही प्रसेनजित नामका पुत्र उत्पन्न हुआ सो उससे यह जाना कि अबसे युगलिया पैदा न होकर एकही पुत्र या पुत्री उत्पन्न हुआ करेंगे ॥१६६॥ राजा मरुदेवने पुत्र प्रसेनजितका किसी उत्तमकुलकी कन्याके साथ विवाह कर दिया एवं पल्यका लाख करोडवां भाग जीकर स्वर्ग धाम चला गया ॥ १६७-१६८ ॥ राजा प्रसेनजितके पुत्र चौदहवें कुलकर राजा नाभि पैदा हुये ये नाभि राजा जन्मकालमें बालकोंके नाभि (नाल) छेदनकी विधि बतलाने वाले थे और स्वर्गगामी थे ॥१६९॥ नाभिराजाके पिता राजा प्रसेनजितने पल्यका दश-लाख करोडवांभाग आयुका भोग किया और अंतमें मरकर वे स्वर्ग चले गये॥ १७०॥

प्रथम कुलकर राजा प्रतिश्रुत के शरीरकी ऊंचाई अठारहसौ धनुष थी दूसरे कुल-करकी तेरहसौ धनुष और तीसरेकी आठसौ धनुष थी एवं इनसे आगे जितने कुलकर हुये उनमेंसे हर एक की पच्चीस २ धनुष कम होती चली गई अर्थात् चौथे कुलकरकी सातसौ पचहत्तर धनुष ऊंचाई थी, पांचवें की सात सौ पचास, छठेकी सात सौ पच्चीस, सातवेंकी सातसौ, आठवेंकी छै सौ पचहत्तर, नवमेंकी छै सौ पचास, दशवें की छैसौ पच्चीस, ग्यारहवेंकी छै सौ, बारहवेंकी पांचसौ पचहत्तर, तेरहवेंकी पांचसौ पचास और चौदहवें कुलकर नाभिराजकी पांचसौ पच्चीस धनुष, ऊंचाई थी ॥ १७१-१७२ ॥ ये चौदह कुलकर समचतुरस्रसंस्थानके धारक वज्रर्षभनाराचसंहननसंयुक्त गंभीर और उ-दार मूर्तिके धारण करनेवाले थे। इन सबको अपने पूर्वभवका स्मरण था और इनकी मनु संज्ञा थी॥ १७३ ॥ चौदह कुलकरोंमें चक्षुष्मान यशस्वी और प्रसेनजित् ये तीन कुलकर प्रियंगुमणि के समान श्याम कांतिके धारक थे ॥ १७४ ॥ चंद्राभ नामके कुलकर अतिशय शुभ्र चंद्रमाके समान सफेद थे और अन्य दश कुलकर तपे हुये सुवर्णके समान प्रभाके धारक थे ॥ १७५ ॥ ये चौदहो कुलकर राजा, मर्यादाके रक्षण करने में बडे प्रवीण थे इन सबकी 'हा' 'मा' और 'धिक्' ये तीन दंड नीति-

यां थीं प्रजाका पिता तुल्य पालन करते थे और महा प्रभावी थे॥ १७६॥ इस प्रकार कुलकरोंकी उत्पत्तिके वर्णनके बाद भगवान ऋषभ देवकी उत्पत्ति का वर्णन किया जाता है ॥ १७७॥ यद्यपि यह जगत सब जगह अकृत्रिम छै द्रव्योंसे भरा हुआ है तो भी आचार्यगण भगवान केवलीके ज्ञानके प्रभावसे इसे स्पष्ट जानलेते हैं क्योंकि जिसप्रकार चमचमाता हुआ सूर्य अपने प्रकाशसे गाढभी अंधकारको दूर कर देता है उसी प्रकार नित्य, शोभनीक उदयके धारक श्री जिनेंद्र दिव्य ज्ञान से दृष्टिके अगोचर काल आदि द्रव्य विषयका अज्ञान नष्ट कर देते हैं॥

इसप्रकार श्रीजिनसेनाचार्य प्रणीत भगवान नेमिनाथके चरित्रको वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें कालद्रव्य और कुलकरों की उत्पत्ति का वर्णन करनेवाला सातवां सर्ग समाप्त हुआ।

आठवां सर्ग।

ये चौदह कुलकर बडे पुरुषोंके जो कृत्य होने चाहिये उन समस्त कृत्योंसे युक्त थे पुरुषार्थोंके भले प्रकार जानकार थे इसलिये इनका नाम मनु पडा था ॥ १ ॥ यद्यपि दक्षिण भरतक्षेत्रके मध्यमें कल्पवृक्षोंकी नास्ति हो चुकी थी तथापि कुलकर नाभिराजके मंदिरमें वे वैसे ही विद्यमान थे ॥ २ ॥ राजा नाभिके मंदिरका नाम सर्वतोभद्र था यह सर्वतोभद्र अनेक सुवर्णमयी स्तंभोंसे व्याप्त, भांति भांतिकी मणिमयी भित्तियोंसे शोभित, पुष्पोंकी माला मूंगोंकी माला एवं मोतियोंकी मालासे रमणीय चौतर्फा विशाल था इसमें इक्यासी खने थे एवं उत्तमोत्तम प्राकार (परकोट) बावडी और उपवनोंसे इसकी विचित्र ही शोभा दीख पडती थी ॥ ३-४ ॥ इसके अधिष्ठाता राजा नाभि थे इसलिये उनके प्रभावसे उससमय यह एकही सर्वतोभद्र अनेक कल्पवृक्षोंसे मंडित था ॥५॥ राजा नाभिकी पटरानीका नाम मरुदेवी था। रानी मरुदेवी निर्मलकुलसे उत्पन्न थी और इंद्रको जैसी इंद्राणी अतिशय प्रिय होती है राजा नाभिको मरुदेवी भी अतिशय वल्लभा थी ॥६॥ रानी मरुदेवीके पैरोंके दोनों अंगूठे अतिशय उन्नत देदीप्यमान नखोंसे युक्त अतिशय शोभनीक थे उनमें मरुदेवीके ललाटकी जो छाया पडती थी, उससे ऐसा जान पडता था मानों उसके (मरुदेवीके) ललाटके देखनेके लिये ही इन्होंने ऐसी कांति धारणकी है ॥ ७ ॥ उन्नत अग्रभागके धारक, चिकने और कुछ ललोंये नखोंसे शोभित रानीके दोनों चरण निर्मल, मणिमय भूमिपर कुरवक (कुंई) पुष्पकी शोभा धारण करते थे ॥८॥ अथवा यों कहिये कच्छपके समान ऊंचे मरुदेवीके दोनों चरण साक्षात् कमल ही थे क्योंकि कमलमें जैसे पल्लव होते हैं चरण कमलोंमें भी कोमल अंगुलीरूपी पल्लव मौजूद थे कमलमें गांठ होती है चरणकमलोंमें भी गुल्फ (पैरकीऊपरकी गांठ) थे कमल जलमें रहता है ये भी कांतिरूपी जलमें प्रवाहित थे

॥ ९ ॥ इसके चरण सुंदर मत्स्य शंख आदि लक्षणोंसे शोभित थे और क्रीडाकालमें स्वामीके स्पर्शसे स्वेदयुक्त होजाते थे ॥ १० ॥ आनुपूर्वी गोल, रोम और नसोंसे रहित, लावण्यरसकी खानि, रानीकी दोनों जंघायें (पैडियें) महाराज कामदेवके दो धनुष सरीखी जान पडती थीं ॥ ११ ॥ उसकी गूढसंधियोंकी धारक दोनों कोमल उरु (जांघें) स्पर्श करते ही राजा नाभिको अतिशय सुख देती थीं ॥ १२ ॥ यदि हम बराबरकी लंबाई गोलाई आदि देख दोनों जांघोंकी केलेके थंभके साथ तुलना करें तो ठीक नहीं क्योंकि केलेके थंभ साररहित होते हैं और जांघे सारसहित थीं। यदि हम हाथीकी सूंडकी उन्हें उपमा दें तो भी ठीक नहीं क्योंकि हाथीकी सूंड कर्कश होती है और जंघायें कोमल थीं ॥१३॥ उसके उरूरूप संधियोंके धारक कुनुरु (कुकुंदुर) फलके समान सुंदर नितंब और विशाल जंघायें सदृश थीं ॥ १४ ॥ मरुदेवीकी नाभि घूमते हुये जलभँवरके समान गोल गंभीर रोमराजिसे शोभित थीं इसलिये राजा नाभिको परम हर्ष होता था ॥ १५ ॥ उसका कटिभाग (करिहा) रोमरहित अतिशय मनोहर और त्रिवलिसे नम्र था सो ऐसा मालूम पडता था मानो गोल-एवं समान रूपसे उन्नत स्तनोंके भारसे ही नमि गया हो ॥ १६ ॥ जिसप्रकार जहां तहां खेलते हुये चकवोंके युगलसे नदी अतिशय सुंदर जान पडती है उसीप्रकार कठिन और गोल स्तनोंसे रानी मरुदेवीका कोमल वक्षःस्थल विशेष रमणीय मालूम पडता था ॥ ॥१७॥ लाल हथेलियोंसे शोभित, उत्तम कलाइयोंसे भूषित, मनोहर कंधोंसे विराजित, उसकी दोनों कोमल भुजायें कामियोंके बांधनेके लिये कामपाश सरीखी जान पडती थीं ॥ १८ ॥ रानी मरुदेवी साक्षात् समुद्रकी लहर जान पडती थी क्योंकि समुद्रकी लहरमें जिसप्रकार शंख मूंगे और मुक्ताफल होते हैं उसीप्रकार यहांपर भी शंखके समान गोल ग्रीवा थी अधरपल्लव मनोहर मूंगे और दांत देदीप्यमान मुक्ताफल थे ॥ ॥ १९ ॥ रानी मरुदेवीका अंतरमुख, रक्त तालु और जीभके अग्रभागसे अतिशय शोभित था और उसके वचन कोकिलाके शब्दके समान मिष्ट जान पडते थे ॥ २० ॥ रानी मरुदेवीके दोनों कपोल—प्रियाके मुखके साथ २ अपना भी मुख देखनेके इच्छुक राजा नाभिके लिये मणिमयी दर्पणका काम देते थे ॥ २१ ॥ रानी मरुदेवीकी नासिका ठीक नेत्रोंके मध्यमें थी ऊंची नीची न होकर बराबर थी और उसके दोनों पुट (नकुये) समान थे सो ऐसी जान पडती थी मानो परस्परमें ईर्षालु नेत्र एक दूसरेको न देखसके इस बातका निवारण कर रही है। ॥ २२ ॥ उसके दोनों नेत्र श्वेत श्याम और रक्त इन तीनवर्णवाले कमलके समान सुंदर थे और अत्यंत विशाल होनेसे ऐसे जान पडते थे मानों वे कुछ गुप्त विचार करनेके लिये ही कानोंके समीप तक गये हैं ॥ २३ ॥ सूक्ष्म रेखाओंकी धारक रानी मरुदेवीकी दोनों भोंहै न अधिक पास थीं और न अधिक

दूर थीं, शुभसूचक थी एवं चढाये हुये धनुषके समान जान पडती थीं ॥ २४ ॥ उसका ललाट न अधिक ऊंचा और न अधिक नीचा था एवं उसकी अनेक प्रयत्न करनेपर भी अष्टमीका चंद्रमा रत्तीभर भी तुलना नहिं कर सकता था ॥ २५ ॥ कुंडलोंसे युक्त, गंडस्थलोंसे शोभित, पुष्ट कोमल और समान उसके दोनों कर्ण अनुपम थे–उनकी तुलना करनेके लिये संसारमें कोई पदार्थ ही न था ॥ २६ ॥ उसका चौतर्फा समान, काले काले घूंघरवाले चिकने पतले केशोंसे शोभित मस्तक इतना सुंदर था कि उसका वर्णन करना कठिन है ॥ २७ ॥ पूर्णमासीका चंद्रमा जो पांडु सरीखा दीख पडता है उससे यह अनुमान होता है कि रानी मरुदेवीके मुखमंडलकी शोभासे लज्जित होकर इसकी यह दशा हुई है ॥ २८ ॥ रानी मरुदेवीमें वहत्तर कला थीं और चंद्रमामें केवल सोलह ही कला हैं रानी मरुदेवी नि-ष्कलंक थी चंद्रमा कलंकी है इसलिये चंद्रमाकी मूर्तिके साथ रानी मरुदेवीकी तुलना कदापि नहिं की जासकती ॥ २९ ॥ रानी मरुदेवी चौसठ गुणोंकी भंडार अतिशय कोमल थी और पृथ्वी–स्पर्श आदि चार गुणोंसे युक्त कठिन है इसलिये यह भी रानीकी तुलना नहिं करसकती ॥ ३० ॥ जलमें तो स्नेह (चिक्कणता) वहुत कम है और रानी (अपने पतिमें) अतिशय स्नेह वाली थी। जल जड है रानी ज्ञानका भंडार थी। जल दूसरेकी प्रेरणासे चलता है रानी स्वयं धर्मके मार्गमें चलती थी। इसलिये जलभी रानीकी वरावरी नहिं करसकता ॥ ३१ ॥ यद्यपि अग्नि रानीके समान ही देदीप्यमान है तथापि वह दहनस्वरूप (दूसरेको जलानेवाली) है और रानी अत्यंत शांत थी इसलिये अग्नि भी रानीकी उपमा धारण नहिं कर सकती ॥ ३२ ॥ यदि रानी मरुदेवीकी पवनके साथ तुलना करें सोभी ठीक नहीं क्योंकि पवन केवल अपने स्पर्श गुणसेही सुखी करता है और रानी दर्शन और स्पर्शन दोनों प्रका-रसे राजा नाभिको सुखी करती थी ॥ ३३ ॥ आकाश यद्यपि रानी मरुदेवीके ही समान निर्मल है किंतु स्पर्शशून्य है (आकाशका कोई स्पर्श नहिं कर सकता) और रानी मनोहर स्पर्शसे युक्त थी इसलिये उसकी तुलना आकाशके साथ भी नहिं करसकते ॥ ३४ ॥ कल्पवृक्षोंसे रचा हुआ चौदह प्रकारका भूषण रानीके अंग प्रत्यंगमें अति-शय शोभा पाता था ॥ ३५ ॥ इसप्रकार रानी मरुदेवीके साथ राजा नाभिने स्वर्गलो-कके समान सुख भोगे उन भोगोंका वर्णन करना हमारी शक्तिसे वाहर है हां यदि शुक्राचार्य या वृहस्पति कुछ वर्णन करनेकेलिये उद्योग करें तो करसकते हैं ॥ ३६ ॥

सर्वार्थसिद्धिसे चयकर माता मरुदेवीके गर्भमें प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव आवेंगे ऐसा जानकर–छै मास पूर्वही राजा नाभिके आंगनमें इंद्रकी आज्ञासे कुवेरने प्रतिदिन आकाशसे धनकी वर्षा करनी प्रारंभ करदी ॥ ३७–३८ ॥ श्री ही धृति कीर्ति आदि

निन्यानवे दिक्कुमारियां और विद्युत्कुमारियां भी बडे आनंदसे छै मास पहिले ही आगई उन्होंने भविष्यत् तीर्थंकरके माता पिताको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और हम 'इंद्रकी आज्ञासे आई हैं' ऐसा उन्हें अपना परिचय दिया॥ ३९-४०॥ हरएक देवी 'आप फलें फूलें जीवें' ऐसा आशीर्वाद देकर बडे आदरसे माता मरुदेवीसे कहने लगी-देवि! हमें काम करनेकी आज्ञा दीजिये॥ ४१॥ कई एक कुमारियां माताके रूप यौवन लावण्य सौभाग्य आदि अनेक गुणोंका बडे आश्चर्यके साथ वर्णन करने लगीं॥ ४२॥ कई एक आगमानुसार माताकी लिपिलेखन चित्रविद्या गंधर्वविद्या और गणितविद्याकी प्रशंसा करने लगीं॥ ४३॥ अनेक कुमारियां माताको तंत्री वीणा आदि बजानेकी चतुरता दिखलाने लगीं, कई एक कानोंको अतिशय प्रिय मधुर गीत गाने लगीं॥ ४४॥ बहुतसी हाव भाव कलामें अतिशय प्रवीण कुमारियां नयनोंको अमृत सरीखा, परमप्रिय, नाना प्रकारके अभियनोंसे शोभित शृंगार आदि रसोंसे व्याप्त, नांच नांचने लगीं॥ ४५॥ कोमल करोंसे शोभित कोई २ कुमारियां माताके हाथ चरण आदि समस्त शरीरको दाबनेमें लगीं॥ ४६॥ किसीने तेल लगाना प्रारंभ किया कोई उवटन करने बैठ गई किसीने माताको स्नान कराया कोई स्नान वस्त्र साडी आदि निचोडने लगी॥ ४७॥ कोई चंदन आदि गंध लेनेके लिये चलदी किसीने माताके शरीरसे गंध लगाया अनेक कुम रियां भांति २ के वस्त्र संभालने लगीं किसीने माताको कपडे पहिनाये॥ ४८॥ कोई माताको भूषण पहिनाने में लगीं किसीने मनोहर फूलोंकी माला पहिनाई कोई माताके शरीरका शृंगार करने लगी अनेक कुमारियां दिव्य अन्न लाने लगीं अनेकोंने भोजन बनाना प्रारंभ किया॥ ४९॥ कोई कोई माताकेलिये शय्या और आसन विछाने लगगई किसीने पान लगाना प्रारंभ करदिया कोई घरमें व्यग्र हो घूमने लगी अनेक घरके कामोंमें लगगई॥ ५०॥ कोई कुमारी दर्पण ले खडी होगई किसीने चमर ढोले किसीने हाथमें छत्र लेलिया कोई हाथमें वीजना लेकर खडी होगई॥ ५१॥ कोई कोई कुमारीं हाथमें खड्ग ले माताकी अंगरक्षामें तत्पर हो सावधानीसे ग्रह राक्षस और पिशाचोंसे उसकी रखवाली करने लगीं॥ ५२॥ अनेक कुमारियां हाथोंमें तलवार चक्र गदा शक्ति और सुवर्णमयी वेंत लेकर घरके भीतर बाहर द्वारपर खडी होगई॥ ५३॥ इसप्रकार रातदिन अपनी आज्ञाका देवियोंद्वारा पालन और जन्मसे छै मास पहिले धन वर्षा देखकर राजा नाभि और रानी मरुदेवीको इस बातका पूर्ण निश्चय होगया कि हमारे यहां नियमसे तीर्थंकर पुत्र जन्म लेगा॥ ५४-५५॥

कदाचित् मनोहर ताराओंसे सेवित चंद्रकलाके समान अनेक देवांगनाओंसे युक्त मनोहरांगी रानी मरुदेवी शरदऋतुके मेघके समान स्वच्छ एवं अगुरुधूपकी सुगंधि

से सुगंधित मनोहर महलमें भांति २ के अनुपम कोमल वस्त्रोंसे भूषित उत्तम सेजपर शयन कर रही थी जब रात्रीका कुछ भाग बाकी रहगया तब उसै शुभसूचक एवं दुर्लभ क्रमसे ये सोलह स्वप्न दिखाई पडे ॥ ५६–५७–५८ ॥ प्रथमही उसने स्वप्नमें सफेद हाथी देखा इस हाथीके गंडस्थलोंपर मदकी धारा वह रही थी और जिसप्रकार दानके अभिलाषी याचक किसी दाता स्वामीके पास जाकर मीठे २ शब्दोंमें पुकार करते हैं उसीप्रकार मदकी सुगंधके लोलुपी भौंरे इसके गंडस्थलोंपर मनोहर गुंजार शब्द कर रहे थे ॥५९॥ दूसरीवार दीर्घ दुदकारसे अपने वैरीकेमदको चूर २ करनेवाला, सुंदर आकारका धारक, शुभ, धीर, सफेद, एवं साक्षात् धर्मकी मूर्ति स्वरूप, एक उन्नत बैल देखा।६०। तीसरीवार तीक्ष्ण नख दंष्ट्रा (डाढ) और सटा (ग्रीवाके बाल) से शोभित निर्भय रीतिसे कूदता फांदता हुआ एक सिंह दीखपड़ा सो ऐसा जान पड़ता था मानों प्रथम स्वप्नमें देखे हुये हाथीके मदकी गंध पा उसै यह ढूंढ़ता फिरता है ॥६१॥ चौथीवार अनेक कमलों से व्याप्त अपने गंभीर शब्दोंसे मेघोंकी तुलना करनेवाले, भांति २ के रत्नमयी जलके घडोंसे स्नान करती हुई लक्ष्मी देखी सो ऐसी मालूम पड़ती थी मानों मेघकी नवीन धाराओंसे साक्षात् पृथ्वी देवी स्नान कर रही है ॥ ६२ ॥ पांचवी वार रानीको स्वप्नमें दो माला दीख पडीं ये माला अनेक चित्र विचित्र पुष्पोंसे गुंथीं थीं विशाल थीं। एवं उनकी उत्कृष्ट सुगंधी चहुंओर महकती थी सो ऐसी मालूम पड़ती थीं मानों सेवाके लिये सब ऋतुओंकी शोभा ही आकर उपस्थित हुई है ॥ ६३ ॥ छठीवार छटकती हुई मनोहर किरणोंसे व्याप्त, सुंदर दंडसे भूषित, एक छत्र दीखपड़ा यह छत्र तारारूपी भूषणोंसे भूषित, रात्रिरूपी नायिकासे प्रदत्त, मनोहर चंद्रमंडल सरीखा जान पड़ता था ॥ ६४ ॥ सातवींवार प्रातःसंध्याकी लालिमारूपी सिंदूरसे भूषित चमचमाता हुया सूर्य देखा सो ऐसा जान पड़ता था मानो भगवानके मंगलार्थ पूर्वदिशारूपी स्त्रीने सिंदूरसे अलंकृत कलश स्थापन किया है ॥ ६५ ॥ आठवींवार जलमें सानंद किलोल करती हुई दो मीन दीख पडीं सो ऐसी जान पड़तीं थीं मानों—आपने अपने चंचल नेत्रोंसे हमारी शोभा जीत ली है इसवातका उलाहना देनेकेलिये ही माताके पास आई हैं ॥ ६६ ॥ नववींवार मनोहर जलसे पूर्ण विशाल सघन सुवर्णमयी दो कलश दीख पडे सो ऐसे जान पड़ते थे मानो माताके स्तनोंकी हमारे साथ तुलना कैसे हुई है? इसवातके देखनेके ही लिये आये हैं ॥ ६७ ॥ दशवींवार गमनकरती हुई विशाल सेनाके समान एक सरोवर देखा क्योंकि जिसप्रकार सैन्यदल (सोद्दंडपुंडरीकौघं राजहंसमनोहरं) बडे बडे प्रचंड सामंत और बडे २ राजाओंसे मनोहर होता है सरोवर भी विकसित कमल और राजहंस पक्षियोंसे शोभित था। सैन्यदल जैसा (रथपादातिनादाढ्यं) रथ और पैदल सेनाके शब्दों से पूर्ण रहता है सरोवर भी चकवाओंके प्रवल नादसे व्याप्त

था ॥६८॥ ग्यारहवींवार रानीको स्वप्नमें आकाशके समान एक विशाल समुद्र नजर पड़ा क्योंकि जिसप्रकार आकाशमें मीन मिथुन मेष मकर आदि राशियां रहती हैं उसीप्रकार समुद्रमें भी मछलियोंके जोडे और नेत्र उघाडे बडे २ मगरोंके झुंड मोजूद थे ॥ ६९ ॥ बारहवीं बार एक सुवर्णमयी सिंहासन देखा यह सिंहासन-जिसप्रकार कुलकर जगतके धारक (बोझा उठानेवाले) होते हैं उसीप्रकार बडे २ विशाल भुजारूपी स्तभोंसे शोभित तीक्ष्ण दृष्टिके धारक एवं उन्नत मुखोंसे शोभित बडे २ सिंहोंसे वाहित था ॥७०॥ तेरहवें स्वप्नमें रानीको विमान दृष्टिगोचर हुआ सो ऐसा जान पडता था मानो मध्यलोकके मनुष्योंको स्वर्गकी सुंदरता दिखानेके लिये प्रियगीत गानेवाली देवांगनायें उसे पृथ्वीपर ले आई हैं ॥ ७१ ॥ चौदहवें स्वप्नमें नागकन्याओंसे अतिशय शोभित एक नागेंद्रका मंदिर दीख पडा सो ऐसा जान पडता था मानों अपनी शोभासे नागलोकका विजय कर अन्य लोकोंको जीतनेकी अभिलाषासे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुआ है ॥ ७२ ॥ पंद्रहवें स्वप्नमें रानीने देदीप्यमान किरणोंसे व्याप्त रत्नराशि देखी यह रत्नराशि अपनी ऊँचाईसे आकाशको स्पर्श करनेवाली थी और मेघरहितभी आकाशमें विजली और इंद्रधनुषकी शोभा विस्तारती थी ॥ ७३ ॥ एवं सोलहवें स्वप्नमें रानी मरुदेवीने अतिशय निर्मल, चौतर्फा ज्वालाओंसे व्याप्त निर्धूम अग्निशिखा देखी सो ऐसी जान पडती थी मानों भांति २ के पुष्पोंसे व्याप्त आकाशसे किंशुकके पुष्प बरस रहे हैं ॥ ७४ ॥ इसप्रकार उपर्युक्त सोलह स्वप्नोंके देखनेके वाद माताने अपने उदरमें मुखकी रास्तासे वैलके रूपसे प्रवेश करते हुये भगवान जिनेंद्रको देखा ॥ ७८ ॥ उससमय रानी मरुदेवीकी निद्रारूपी सखी यह सोचकर कि "मैंने अपनी स्वामिनीको सुस्वप्न दिखानेसे एक नवीन ही आनंदका आस्वाद करा दिया अब मैं कृतार्थ हो चुकी" न मालूम कहां किनारा कर गई ॥ ७६ ॥ महारानी मरुदेवी स्वप्नदर्शनके वाद ही जगगई थी इसलिये दिक्कुमारियों द्वारा उसके जगानेके लिये "हे समस्त पदार्थोंको जाननेवाली माता उठो, हे वृद्धिरूपिणी माता वृद्धिको प्राप्त हो, हे जयलक्ष्मीकी स्वामिनी समस्त मनोरथोंसे पूर्ण देवी जयवंत रहो इत्यादि कहेगये वचन केवल मंगल स्वरूप ही हुये ॥ ७७–७८ ॥ हे मात! देखो यह कलंकी चंद्रमा निर्मल गुणोंसे भूषित निष्कलंक आपके मुखचंद्रको देखकर मारे लज्जाके फीका पडता चला जा रहा है ॥७९॥ आपके दातोंकी कांति इतनी उत्कट है कि उससे यह समस्त घर जगमगा उठा है इसलिये ये दीपक चमक नहीं रहे हैं किंतु अपनेको निरर्थक समझ फीकी हंसी हंस रहे हैं ॥८०॥ हे देवि! स्वामी चंद्रमाके अस्त होनेसे यह वंध्या प्रातः संध्या दुष्टकी चंचल मित्रताके समान रागरहित होती चली जा रही है अर्थात् जिसप्रकार दुष्टकी मित्रतामें आदिमें राग (प्रेम) नजर आता है और थोडी ही देरवाद रागका नाम भी नहिं रहता उसीप्रकार

प्रातःसंध्यामें पहिले कुछ राग (लालिमा) दीखता है पीछे रागका पता तक नहिं चलता ॥ ८१ ॥ देखो यह सूर्यकी प्रभा सज्जन पुरुषोंकी मित्रताके समान प्रतिक्षण वढती चली जा रही है क्योंकि सूर्यकी प्रभा जैसी सार्थक है सज्जनकी मित्रता भी उसीप्रकार सार्थक है सूर्यकी प्रभा पहिले कुछ कम और पीछे बढती जाती है सज्जनकी मित्रता भी उदयशील मनुष्यके लिये पहिले कुछ ईर्षायुक्त मंद जान पडती है और पीछे ईर्षारहित विशाल हो जाती है ॥ ८२ ॥ यह पूर्वदिशा पतिव्रता स्त्रीका रूप धारणकर आपकेलिये मंगलार्थ उपस्थित हुई है क्योंकि पतिव्रता स्त्री जिसप्रकार (भास्वरांबरभूषा) देदीप्यमान वस्त्र और भूषणोंसे युक्त (भास्वद्विशेषका) मनोहर तिलकसे भूषित रहती है दिशारूपी स्त्री भी उसीप्रकार देदीप्यमान आकाशरूपी भूषण और अतिशय तेजस्वी सूर्यरूपी तिलकसे शोभित है ॥८३॥ देखो ये विचारी गरीवनी चक्रवाकी रात्रिको विता सूर्यदर्शनसे प्रसन्न होकर बावडियोंमें कानोंको अत्यंत प्रिय शब्द बोल रही हैं ॥८४॥ देवि ! आपकी मनोहर गमनलीला देखनेके लिये अतिशय आतुर ये राज हंस मनोहर शब्द कहकहकर आपको जगा रहे हैं ॥ ८५ ॥ हे देवि ! अभिनय मूर्तिके धारक ये वृक्ष कोमल पवनसे हिलते हुये एसे मालूम पडते हैं मानों आपको नृत्यका आरंभ दिखा रहे हैं ॥ ८६ ॥ हे माता ! इस समय समस्त दिशायें आपके चरित्रके समान निर्मल होगई हैं एवं सुंदर प्रभातकाल होगया है कृपया आप सेज छोडें और उठें ॥ ८७ ॥ इसप्रकार बंदीजनोंसे अतिशय स्तुत महारानी मरुदेवीने हंसिनी जैसे सुंदर तरंगोंसे व्याप्त नदी आदिके पुलोंको छोड देती है पुष्पोंसे व्याप्त सेज छोड दी ॥ ८८ ॥ उज्ज्वल कांतिकी धारक माता जिससमय सफेद वस्त्र पहिन कर शयनागारसे वाहर निकली उस समय वह शरदऋतुके मेघसे बाहर छटकती हुई मनोहर सूक्ष्म चंद्रकला सरीखी जान पडने लगी ॥८९॥ श्री विद्युत आदि कुमारियोंने शृंगार किया नवीन २ भूषण पहिनाये एवं मेघमाला जिसप्रकार पर्वतके समीप जाती है आपन्नसत्त्वा (गर्भिणी) महाराणी शीघ्रही राजा नाभिके पास गई ॥ ९० ॥ उससमय नाभि महाराज सुंदर सिंहासनपर विराजमान थे महाराणीने उन्हैं जाकर प्रणाम किया और अपने योग्य आसन पर बैठ हाथ जोडकर समस्त स्वप्नोंका समाचार कहा ॥ ९१ ॥ रानीके मुखसे समस्त स्वप्न श्रवणकर और उनका वास्तविक तात्पर्य समझकर महाराजने कहा—

प्रिये ! स्वप्नोंसे यह जाना जाता है कि तुम्हारे गर्भमें तीन लोकका नाथ तीर्थंकर आकर अवतीर्ण हुआ है ॥ ९२ ॥ ये स्वप्न ऐसे हैं कि इनसे अधिक फल मिलनेकी वहुत जल्दी आशा है इसलिये मुझै ऐसा जान पडता है कि आज ही तुम्हारे गर्भ रहगया है ॥ ९३ ॥ छै मास पहिलेसे बरावर धन वर्षा हो रही है देवियां रात

दिन सेवा करती रहती हैं इसलिये अनुमान किया जाता था कि अवश्य हमारे तीर्थंकर उत्पन्न होगा परंतु आज उसकी उत्पत्तिका पूर्ण निश्चय होगया ॥ ९४ ॥ प्राण वल्लभे ! इसमें कोई संदेह नहीं कि तेरे समस्त कल्याणोंका भाजन पुत्र उत्पन्न होगा उससे तू समस्त जगतको नियमसे आनंदित करेगी ॥ ९५ ॥ अपने स्वामीके मुखसे स्वप्नोंका ऐसा फल सुनकर और अपने गर्भमें तीर्थंकरको अवतीर्ण जानकर रानीको परमानंद हुआ उससमय उसके चेहरेपर दीप्ति और तेज एक विचित्र ही छटा दिखाने लगे ॥ ९६ ॥ जिससमय तीसरे कालमें चौरासीलाख पूर्व तीन वर्ष और साडे आठ मास वाकी रहगये भगवान जिनेंद्र सर्वार्थसिद्धिसे चयकर आषाढ़वदी चौथके दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें माता मरुदेवीके गर्भमें आये ॥ ९७-९८ ॥ ज्यों ज्यों गर्भ बढ़ता गया माताके शरीरकी कांति भी उसीप्रकार बढ़ती चली गई परंतु उदर बिलकुल न बढ़ा और उसपर त्रिवलीकी शोभा पूर्वके समान ज्योंकी त्यों बनी रही ॥ ९९ ॥ अन्य स्त्रियोंमें यह बात देखनेमें आती है कि जैसा २ उनका गर्भ बढ़ता जाता है उनके चेहरे फीके पड़ते जाते हैं। देहमें आलस (भारीपना) होता जाता है परंतु गर्भ धारण करनेपर भी माताके चेहरेपर दिनोंदिन गौरव बढ़ता गया और देह फूलके समान हलकी होती गई ॥१००॥ माताको मुझे गर्भमें धारण करनेपर कैसा भी संताप न हो यह जानकर ही मानों ज्ञानवान भगवान जलमें प्रतिविंवित सूर्यके समान गर्भमें स्थित थे ॥ १०१ ॥ माताका गर्भ श्री आदि दिक्कुमारियों द्वारा भलेप्रकार शुद्ध किया हुआ था इसलिये मतिज्ञानआदि तीनों ज्ञानरूपी नेत्रोंसे समस्त जगतको निहारनेवाले भगवानको गर्भमें किसीप्रकारका कष्ट न था—वे वहां आनंदसे थे ॥ १०२ ॥ नौ मासके व्यतीत होजानेपर उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें माता मरुदेवीने भगवानको जना उनके उत्पन्न होते ही चारोओर धनवर्षा होने लगी ॥ १०३ ॥ जिसप्रकार प्राचीदिशामें मेघके मध्यभागसे निकलकर सूर्य अतिशय सुहावना जान पड़ता है उसीप्रकार अतिशय निर्मल स्फटिकमणिके समान विशुद्ध माताके उदरसे निकलकर भगवानकी एक विचित्र ही शोभा हुई ॥ १०४ ॥ जिसप्रकार वालकके उत्पन्न होते ही कुटुंबीजन उसके कर्तव्य कर्मोंमें प्रवृत्त होजाते हैं उसीप्रकार समस्त कुमारियां भी भगवानके कर्तव्य कर्ममें शीघ्र ही लग गई ॥ १०५ ॥ अतिशय चंचल कुंडलोंकी कांतिसे झिलमिलाते हुये कपोलोंसे शोभित विजया १ वैजयंती २ जयंती ३ अपराजिता ४ नंदा ५ नंदोत्तरा ६ नंदी ७ और नंदवर्धना ८ ये आठ दिक्कुमारियां हाथमें झाड़ी लेकर खड़ी होगई ॥ १०६-१०७ ॥ भांति भांतिके आभरणोंसे मंडित, सुस्थिता प्रणिधान्या सुप्रबुद्धा यशोधरा लक्ष्मीमती कीर्तिमती वसुंधरा और चित्रा इन आठ कुमारियोंने हाथमें दर्पण ले लिये ॥ १०८-१०९ ॥ अपनी प्रबल प्रभासे समस्त दिशाओंको देदीप्यमान करने-

वालीं इला सुरा पृथिवी पद्मावती कांचना सीता नवमिका और भद्रा इन आठ दिक्कुमारियोंने संतुष्ट हो माताके ऊपर सफेद छत्र लगाये ॥ ११०-१११ ॥ शब्द करते हुये सुवर्णमयी कुंडलोंसे अलंकृत श्री ही धृति वारुणी पुंडरीकिणी अलंबुसा अंबुजा और मिश्रकेशी इन आठ कुमारियोंने देदीप्यमान सुवर्णमयी दंडोंसे विभूषित चमर ढोले ॥ ११२-११३ ॥ विजलीके समान प्रभावालीं चित्रा कनकचित्रा सूत्रामणि और त्रिशिरा इन चार विद्युत्कुमारियोंने समस्त मंदिरमें प्रकाश ही प्रकाश करदिया ॥ ११४ ॥ विद्युत्कुमारियोंमें मुख्य विजया वैजयंती जयंती और अपराजिता एवं दिक्कुमारियोंमें मुख्य रुचका रुचकोज्वला रुचकाभा और रुचकप्रभा इन आठ प्रधान कुमारियोंने यथाविधि भगवानका समस्त उत्पत्ति समयका कर्म किया ये आठ कुमारियां हरएक तीर्थंकरके जन्म समयमें आती हैं इसलिये जातकर्म करनेमें बड़ी प्रवीण हैं ॥ ११५-११७ ॥ भगवानके उत्पन्न होनेपर उनके प्रभावसे देदीप्यमान चंचल मुकुटोंके धारक तीनोंलोकके देवोंके तत्काल आसन कंपायमान होगये ॥ ११८ ॥ अहमिंद्रोंने अपने अवधिज्ञानसे भगवान जिनेंद्रका जन्म जान लिया और सिंहासनसे उठ कर सातपैंड जा उन्हे परोक्ष नमस्कार किया ॥ ११९ ॥ उससमय भगवान जिनेंद्रके प्रभावसे अपने आप भवनवासी देवोंके मंदिरोंमें शंखध्वनि होने लगी, व्यंतरोंके मदिरोंमें नगाड़े बजने लगे, ज्योतिषियोंके मंदिरोंमें सिंहनाद होने लगा ॥१२०॥ और स्वर्गवासी देवोंके मंदिरोंमें घंटाओंका गंभीर नाद हुआ जिससे कि तीनोंलोक क्षणभरके लिये किंकर्तव्य विमूढ़ सरीखे दीखने लगे ॥ १२१ ॥ भगवानके जन्मकालमें सौधर्म इंद्रका आसन चलायमान हुआ आसनके कपते ही उसै बड़ा आश्चर्य हुआ वह ऊंचेको ग्रीवाकर बड़े अहंकारके साथ ऐसा विचार करने लगा—“ अतिशय मूर्ख स्वेच्छाचारी किस अज्ञानीने निर्भय और निश्शंक हो यह काम किया है ॥ १२२ ॥ अतिशय पराक्रमी देव अथवा दैत्य भी यदि मेरा अल्प अपमान करैं तो मैं उनकी भी सामर्थ्यको क्षणभरमें समूल नष्ट कर सकता हूं इसलिये मुझै सभी मानते और मेरा भय करते हैं फिर न मालूम मेरे अचल आसनके चलानेवाले इस अज्ञानीने मुझे क्यों न कुछ समझा ! क्या उसने जरा भी इसवातपर ध्यान न दिया कि मुझे लोग अतिशय ऐश्वर्यवाला समझ इंद्र कहते हैं, पुरोंका नाश करनेवाला समझ पुरंदर और अतिशय सामर्थ्यवाला जान शक्र कहते हैं ॥ १२३-१२५ ॥ तीनोंलोकमें सिवाय भगवान तीर्थंकरके अन्य किसी मनुष्यका ऐसा प्रभाव नहिं हो सकता” तथा क्षणएक ऐसा विचार कर उसने अवधिज्ञानकी ओर उपयोग लगाया जिससे कि शीघ्रही उसने जान लिया कि भरतक्षेत्रमें सबसे प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथका जन्म हो गया है । वह तत्काल आसनसे उतर पड़ा सातपैंड आगे बढ़कर ‘ हे जिनेंद्र जयवंत रहो ’

इत्यादि शब्द उच्चारण किये और हाथ जोड़ भक्तिपूर्वक भगवानको परोक्ष नमस्कार किया ॥ १२६–१२८ ॥ इंद्र फिरसे उसी आसनपर वैठ गया और स्मरणके अनंतर ही आये हुये एवं नमस्कार पूर्वक आगे वैठे हुये सेनापतिको इसप्रकार आज्ञा दी—

देखो अवसर्पिणी कालके आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभ देवका जन्म होगया है अभी भरत क्षेत्र चलना पड़ेगा इसलिये तुम जाकर समस्त देवोंसे इस वातकी सूचना करदो ॥१२९–१३०॥ सेनापतिद्वारा इंद्रकी आज्ञा पाते ही सौधर्म स्वर्गके देव तयार हो गये और स्वयंप्रबुद्ध अच्युतपर्यंतके देवोंके साथ शीघ्र ही भगवानके जन्म कल्याणार्थ चलदिये ॥ १३१ ॥ ज्योतिषी व्यंतर भवनवासी देवभी भेरी आदिकी ध्वनियोंसे भगवानको उत्पन्न जान शीघ्र ही बड़े समारोहके साथ अपने अपने मंदिरों से निकले ॥ १३२ ॥ उससमय गज अश्व रथ पदाति (पैदलसेना) वृषभ गंधर्व नर्तकी इस सातप्रकारकी देवसेनासे समस्त आकाश व्याप्त होगया ॥ १३३ ॥ महिष नाव गैंडा गरुड़ पालकी घोड़ा ऊंट मगर अष्टापद हंस आदिसे और असुरकुमार आदि दशप्रकारके भवनवासी देवों में प्रत्येककी सात सात प्रकारकी सेनासे आकाशकी एक अजव ही शोभा होगई ॥ १३४–१३५ ॥ कोई देव विमानमें वैठकर चला कोई वैलोंपर कोई रोजोंपर कोई रथों पर कोई घोड़ोंपर कोई अष्टापदोंपर कोई शार्दूलोंपर कोई मगरोंपर कोई ऊटोंपर कोई अन्नाभेसोंपर कोई सिंहोंपर कोई हिरणविशेषोंपर कोई चीतोंपर कोई हाथियोंपर कोई सुरभिगायोंपर कोई हिरणोंपर कोई कृष्णसार हिरणोंपर और कोई गरुड़ोंपर सवार होकरचले ॥ १३६–१३७ ॥ अनेक देव सूवोंपर वैठकर चले अनेक देवोंकी सवारी कोकिला क्रौंचपक्षी मयूर और मुर्गे थे कोई कोई देव परेवा हंस भेरुंड सारस (स्यास) चकवा और वगलोंपर सवार थे इसप्रकार चारो निकायोंके देव आकाशमें चौतर्फ साथ साथ चलने लगे ॥ १३८–१३९ ॥ उससमय सफेद छत्र रंग विरंगी ध्वजा और फेन के समान श्वेत चमरोंसे आकाश व्याप्त होगया ॥ १४० ॥ समस्त लोक नगाड़े शंख आदिके मनोहर शब्दोंसे शब्दायमान था एवं नृत्य और गीतोंसे देवोंका आगमन वड़ा आश्चर्य कारी जान पड़ता था ॥ १४१ ॥ सौधर्म इंद्र उससमय गजसेनामें मुख्य आकाशके समान विस्तीर्ण शरीरके धारक मायामयी ऐरावत हाथीपर सवार था ॥ १४२ ॥ ऐरावत हाथीके दांतोंके वीच सूड़का अग्रभाग अतिशय चंचल था इसलिये वह वासोंके मध्य-भागमें क्रीड़ा करते हुये सर्पराजसे युक्त पर्वत सरीखा दीख पड़ता था ॥ १४३ ॥ हाथीकी उससमय ठीक आकाशके समान शोभा थी क्योंकि आकाशमें जिसप्रकार चंद्रमा नक्षत्र विजली रहते हैं यहांपरभी कर्णचमर चंद्रमा थे गलेकी सांकल नक्षत्र माला थीं और कपोल आदि भागोंपर कढ़ेहुये वक हंस आदि विजली थे ॥ १४४ ॥ इसप्रकार

विशाल हाथियोंपर वैठेहुये अनेक इंद्रोंसे मंडित सौधर्म इंद्र अनेक देवोंके साथ भगवानके जन्म क्षेत्र अयोध्यामें जा पहुंचा ॥ १४५ ॥ आकाशसे उतरते हुये सुर असुरोंको कुवेरद्वारा रचित अयोध्यापुरी पृथ्वीपर स्वर्गपुरी सरीखी जान पड़ी ॥ १४६ ॥ जगह २ वह किले कोट खाईयोंसे और वगीचे वन सरोवर वावडियोंसे अतिशय शोभित थी ॥ १४७ ॥ उसमें इंद्रनील महानील वज्र और वैडूर्यमणिमयी भित्तियोंसे शोभित पद्मराग आदि मणियोंसे व्याप्त बड़े बड़े मंदिर विचित्र ही शोभा दिखारहे थे ॥ १४८ ॥ आयोध्यापुरी की-अद्वितीय शोभा देखकर सुर असुर लोगोंके मन स्वर्ग और पातालकी शोभा देखनेके लिये रंचमात्र भी उत्सुक न हुये ॥१४९॥ अयोध्या पुरीका दूसरा नाम साकेतपुरभी[1] है और यह नाम जब भगवानके जन्म समयमें सुर असुर आदि तीनोंलोक आकर इकट्ठे हुये थे तबसे पड़ा ॥ १५० ॥ अयोध्यामें आकर समस्त देवोंके साथ इंद्रने उसकी तीन परिक्रमा दीं और भगवानके लानेकेलिये इंद्राणीको आज्ञाकी ॥ १५१ ॥ स्वामीकी आज्ञा पाते ही इंद्राणी शीघ्र ही माताके प्रसूत घरमें गई माताको सुख निद्रा रचकर दूसरा मायामयी वालक वना उसकी गोदमें सुलाया एवं भगवान जिनेंद्रको भक्तिपूर्वक प्रणामकिया और उन्हें लाकर इंद्रके हाथमें देदिया उससमय भगवानका रूप इतना मनोहर था कि कृत्रिम हजार नेत्रोंसे उसे देखने परभी इंद्रकी तृप्ति न हुई ॥ १५२-१५३ ॥ इंद्र भगवानको अपनी गोदीमें विराजमान कर ऐरावत हाथीपर सवार हुवा और उससमय वह अपनी शिखरपर सूर्यको धारण किये निषधाचलके समान रमणीय जान पड़ा ॥ १५४ ॥ जिनपर अनेक देव छत्र लगायें थे और वहुतसे चमर ढार रहे थे ऐसे भगवान जिनेंद्रको इंद्र शीघ्रही सुमेरुपर्वतकी शिखरपर ले आया ॥१५५॥ पहिले अनेक देवोंके साथ इंद्रने आकर मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा दी पश्चात् पांडुक शिलाके उपर भगवानको सिंहासनपर विराजमान किया ॥ १५६ ॥ उससमय देवोंने मथे गये समुद्रके समान गंभीर शब्दवाले भेरी ढोल मादल मृदंग आदि वाजे वजाये और शंखोंकी ध्वनिकी ॥ १५७ ॥ तुंबुरु नारद विश्वावसु आदि किन्नर जातिके देव अपनी २ स्त्रियोंके साथ कर्णोंको अतिशय प्रिय भांति भांतिका गान गाने लगे ॥ १५८ ॥ तत वितत घन और सुषिर ये चार प्रकारके वाजे देवगण बड़े आनंदसे वजाते थे ॥ १५९ ॥ देवांगना हाव भावोंसे अतिशय मनोहर शृंगार आदि रसोंसे व्याप्त नाच नाचती थीं ॥ १६० ॥ इसप्रकार देव तो इधर अतिशय आनंद मना रहे थे उनके प्रतिशब्दोंसे गुफाओंसे शोभित मेरु गूंज उठा था और उधर इंद्रने भगवानके अभिषेकके लिये तयारियां की एवं देवांगना हाथोंमें अष्ट द्रव्य ले सामने खडी होगई ॥ ॥१६१-१६२॥ अतिशय वेगके धारक देवगण सुवर्णमयी सुंदर घड़ों द्वारा चारो दिशा-

१ साकेत शब्दका अर्थ साकं साथ इत प्राप्त है।

ओंसे क्षीरसागरका जल लाने लगे जिससेकि क्षीरसागर अतिशय क्षुब्ध होगया॥ १६३॥ उससमय मेरुपर्वतपर देवोंद्वारा एक दूसरेके हाथसे दिये गये सुवर्णमयी रजतमयी घड़े सूर्य चंद्रमाके समान सुंदर जान पड़ते थे॥ १६४॥ अतिशय मनोहर शब्द करनेवाले क्षीरसागरके जलसे परिपूर्ण घड़ोंसे हजारों देव भगवानका अभिषेक करने लगे॥१६५॥ उससमय क्षीरसागरके जलसे भरे हुये और इंद्रों द्वारा लाये हुये घड़ा रूपी हजारों मेघोंसे बालक होने पर भी जिनेंद्ररूपी पर्वतको तनिक भी खेद न हुआ॥ १६६॥ भगवानके उच्छ्वास पवनसे फेंके गये क्षीरसागरके जलमें देवगण क्षीरसमुद्रमें मक्षिका सरीखे-जान पड़ते थे॥ १६७॥ जो मेरु देवोंको आते समय पीला दीखा था वही भगवानके जन्माभिषेकके समय क्षीरसागरके जलसे श्वेत दीखने लगा॥१६८॥ उससमय अतिशय दूर भी क्षीरसमुद्र भगवानके जन्माभिषेकके लिये देवोंने अतिसमीप करदिया था॥ १६९॥ स्नानके लिये चौकी तो मेरुपर्वत, जल क्षीरसमुद्रका और स्नान करानेवाले देव हों सिवाय भगवान जिनेंद्रके ऐसा वैभव-किसका हो सकता है?॥ १७०॥ इंद्र सामानिक और लोकपाल आदि देवोंने क्रमसे क्षीरसमुद्रके जलसे भगवानका अभिषेक किया॥ १७१॥ एवं इंद्राणी आदि देवियोंने पल्लवके समान कोमल करोंसे अतिशय सुकुमार भगवानके शरीरका उवटन किया—जिस लेपसे उवटन किया गया था उसकी सुगंध इतनी उत्कट थी कि उसपर चौतर्फा भ्रमर गुंजार शब्द करते थे। उससमय समस्त देवियां भगवानके कोमल स्पर्शसे एक नवीन ही सुखका अनुभव करने लगीं॥ १७२॥ जिसप्रकार मेघोंके भारसे अतिशय नम्रीभूत वर्षा ऋतु विशाल पर्वतका सिंचन करती है उसीप्रकार स्तनोंके भारसे अतिशय नम्र देवियोंने सुगंधित जलसे व्याप्त कुंभोंसे भगवानका अभिषेक किया॥ १७३—१७४॥ भगवानका संस्थान समचतुरस्र था संहनन वज्रर्षभनाराच था इसलिये अक्षतकाय भगवानके वज्रके समान कठोर कानोंका इंद्र वज्रमयी सूची (सुई) द्वारा कठिनतासे छेदन कर सका॥ १७५॥ कर्णवेधके बाद इंद्रने भगवानके कानोंमें कुंडल पहिनाये उससमय दो सूर्योंसे युक्त जैसा जंबूद्वीप शोभता है उसीप्रकार दो कुंडलोंसे भूषित भगवानकी शोभा हुई॥ १७६॥ भगवानकी चिक्कण और नील चोटीमें गुथा हुआ पद्मरागमणि नीलपर्वतकी शिखरपर विराजमान सूर्य की शोभाको धारण करता था॥ १७७॥ भगवानकी मूर्ति सुवर्णमयी थी इसलिये उनके मस्तकपर सफेद चंदनका तिलक संध्यासमय पीले बादलोंमें स्थित अर्द्धचंद्र सरीखा जान पड़ता था॥ १७८॥ देदीप्यमान रत्नजड़ित सुवर्णमयी अंगदोंसे भूषित भगवानकी दोनों सुकुमार भुजायें फणारत्नोंसे युक्त दो बालसर्पोंका अनुकरण करतीं थीं॥ १७९॥ जाज्वल्यमान माणिक्यके कंकणोंसे शोभित दोनों हाथ अनेक देवोंसे व्याप्त रत्नाचलके दो तटसरीखे जान पड़ते थे॥ १८०॥ गले में पडे हुये विशाल मोतियों के

मनोहर हार से भगवान का वक्षःस्थल झरनोंसे व्याप्त पर्वतके तटकी शोभा धारण करता था ॥१८१॥ देदीप्यमान रत्नमयी विशाल यज्ञोपवीतसे शोभित भगवान मनोहर कल्पलतासे युक्त कल्पवृक्षके समान मालूम पड़ते थे ॥ १८२ ॥ धोतीके ऊपर धारण की हुई चित्र विचित्र रत्नमयी कर्धनी से भगवानकी कटि (कमर) विजलीसे युक्त मेघसे व्याप्त पर्वतकी तलहटीका अनुकरण करती थी ॥ १८३ ॥ शब्द करते हुये मणिमयी घूंघुरोंसे शोभित भगवानके दोनों चरण ऐसे जान पड़ते थे मानों आपसमें बातचीत कर रहे हैं ॥ १८४ ॥ अंगुलीमें रत्नजड़ित सुवर्णमयी मुंदरी ऐसी जान पड़ती थी मानों भगवान के अद्वितीय रूप लावण्य चोरी न चले जांय इस बातकी रक्षार्थ इंद्रने मुद्रिका (मुहर, छाप) लगादी है ॥ १८६ ॥ चंदन और केसरसे लिप्त भगवानका अंग संध्या समयमें पीले मेघोंसे व्याप्त स्फटिक पर्वतकी शोभा धारण करता था ॥ १८७ ॥ शुभ आकारके धारक भगवान हंसोंके समान उज्ज्वल स्वच्छ उत्तरीयवस्त्रसे शरदऋतुके सुंदर श्वेत मेघों के समान रमणीय जान पड़ते थे ॥ १८८ ॥ उससमय माला बनानेमें अतिशय चतुर देवांगनाओं द्वारा—संतान पारिजात आदि कल्पवृक्ष और जल स्थलके वृक्षोंके अतिशय सुगंधित पुष्पोंसे तथा भद्रशाल नंदन सौमनस और पांडुकवनके पुष्पोंसे गूंथी हुई उत्तमोत्तम मालाओंसे भगवान अतिशय शोभित जान पड़ते थे ॥ १८९–१९१ ॥ भगवान भद्रशाल आदि चतुर्वन स्वरूप थे क्योंकि उनका शाल (स्वभाव) भद्र (उत्तम) था इसलिये तो वे भद्रशाल थे समस्त लोकको आनंद करनेवाले थे इसलिये नंदन थे उनका मन पवित्र था इसलिये सौमनस एवं उनकी कीर्ति अखंड थी इसलिये पांडुक थे ॥ १९२ ॥ अनेक भूषणोंसे भूषित समस्त जगतके स्वामी भगवान देवों द्वारा रचित तिलकसे उस समय विशेष सुंदर जान पड़ते थे ॥ १९३ ॥ बालक किंतु निर्दोष भगवानके—सूर्य चंद्रमाकी दीप्ति और कांतिको जीतनेवाले अंजनसे व्याप्त दोनों नेत्र अतिशय शोभा पाते थे ॥ १९४ ॥ श्री शची कीर्ति और लक्ष्मी देवियोंने उस समय भगवानका ऐसा उत्तम गार किया कि इंद्र आदि समस्त देवोंके मन भगवानकी ओर ही आकृष्ट होगये ॥ १९५ ॥ युगकी आदिमें होनेवाले प्रधान पुरुष भगवानका देवोंने ऋषभ (वृषभ) नाम रक्खा और वे उनकी इसप्रकार स्तुतिकरने लगे ॥१९६॥

हे मति श्रुति और अवधि इन तीन ज्ञानरूपी सर्वोत्तम नेत्रोंसे शोभित भगवान्! आपने इस भरतक्षेत्रमें उत्पन्न होकर तीनों लोकको प्रकाशित करदिया ॥ १९७॥ मनुष्यभवमें आते ही आपने समस्त जगतको कृतार्थ करदिया भला इससे बढ़कर आपकी आश्चर्यकारी क्या बात हो सकती है? ॥ १९८ ॥ अतिशय गुरु (उन्नत) भी मेरुपर्वत आपने अपने चरणोंके नीचे दबा दिया इसलिये आप महागुरु हैं—संसारमें आपसे बढ़कर कोई गुरु नहीं। यद्यपि आपकी बालक अवस्था है तथापि आपमें कोई बलचेष्टा दीख नहीं

पड़ती ॥ १९९ ॥ यद्यपि ये मेरुपर्वत इतने पवित्र हैं कि हरएक पृथ्वी इनके चरण कमल स्पर्श नहिं करसकती तथापि ये शिखररूपी उन्नत मुकुटोंसे शोभित अपने मस्तकोंपर आपके (तीर्थंकरके) चरणोंको धारण करते हैं अर्थात् आप पवित्रोंसे भी पवित्र हैं ॥ २०० ॥ प्रभो ! न मालूम यह आपमें कोई मंत्र शक्ति है वा प्रभुशक्ति है अथवा उत्साहशक्ति है या कोई अन्यही अद्भुत शक्ति है ॥२०१॥ पौरुषसे भी वश न होनेवाले ये तीनों जगत न मालूम विधिके समान आपने कैसे एक साथ आज्ञाकारी बना लिये ॥ २०२ ॥ कहां तो यह लोकोत्तर सुकुमारता ! और कहां यह पर्वत भेदन करनेवाली कठिनता ? नाथ ! इन परस्पर विरुद्ध पदार्थोंका संभव आपमें ही दीख पड़ता है ॥२०३॥ मनुष्य सुर और असुरोंको सर्वथा दुर्लभ सर्वोत्तम एक हजार आठ लक्षण व्यंजनोंसे युक्त यह आपका रूप अतिशय रमणीय मालूम पड़ता है ॥ २०४ ॥ स्वामिन् ! आप चरमशरीरियोंमें प्रथम हैं यह आपका शरीर विना युद्धके ही अपने अतिशय मनोहर रूपसे समस्त जगतको नम्रीभूत करता है ॥ २०५ ॥ आपके गर्भस्थ होनेपर पृथ्वीपर यथेच्छ सुवर्ण वर्षा हुई थी इसलिये देवगण आपकी हिरण्यगर्भ नामसे स्तुति करते हैं ॥२०६॥ इस भवसे पहिले तीसरे भवमें आपने अपने आप तीर्थंकर प्रकृतिका वंध बांधा था इस भवमें आप मति आदि तीन ज्ञानके धारक उत्पन्न हुये हैं इसलिये लोग आपको स्वयंभू इस नामसे पुकारते हैं ॥ २०७ ॥ आप भरतक्षेत्रमें समस्त प्राणियोंकी विधिपूर्वक व्यवस्था करनेवाले हैं इसलिये आपका नाम विधाता है ॥ २०८ ॥ हे नाथ ! प्रजाके स्वामी वन आप चौतर्फा प्रजाकी रक्षा करेंगे इसलिये लोक आपका प्रजापति नामसे गुणानुवाद करते हैं ॥ २०९ ॥ स्वामिन् ! आपके राज्यकालमें प्रजा बड़े आनन्दसे इक्षुरसका आस्वादन करेंगी इसलिये लोग आपको इक्ष्वाकु कहते हैं ॥ २१० ॥ सर्वपुराणोंमें आप पूर्व हैं अर्थात् तीर्थंकर रूपसे सबसे पहिले आपका वर्णन किया जायगा महामहिमाके धारक हैं महान हैं दीप्तिमान हैं इसलिये लोकमें आप पुरुदेव नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ २११ ॥ भगवन् ! आप अनंते ऐश्वर्योंके स्वामी हैं इसलिये भरतक्षेत्रके सिंहासन पर वैठे तीन लोकका ऐश्वर्य प्राप्त करेंगे यह आपके लिये विलकुल तुच्छ बात है ॥ ॥ २१२ ॥ प्रभो ! आप स्वयं ही प्रबुद्ध होकर अतिशय कठिन तप तपनेवाले तपस्वी हैं अज्ञानियोंको ज्ञानके दाता हैं और सर्वोत्तम अतिशयोंके कर्ता हैं ॥ २१३ ॥ हे वीर ! आप समस्त प्राणियोंके कल्याणार्थ मुनि वनकर इस लोकमें अतिशय उत्कृष्ट दान धर्मकी विशुद्ध पात्रताका प्रसार करेंगे ॥ २१४ ॥ हे नाथ ! कामरूपी वलवान सर्पकेलिये आप महामंत्र हैं द्वेषरूपी महागजके लिये तीक्ष्ण अंकुश हैं और मोहरूपी विशाल मेघपटलके लिये बलवान पवन हैं ॥ २१५ ॥ प्रभो ! जिसमें मछलियां सोगई हैं ऐसे विशाल शांत तालावके समान आप प्रशस्त एवं निश्चल ध्यानी हैं। वंधके

वाद होनेवाले संवरसे आप घातिया कर्मरूपी ईंधनको जलानेवाले हैं ॥ २१६ ॥ दया प्रतिपाल! तेल आदिकी सहायता विना ही देदीप्यमान आपका केवल ज्ञानरूपी दीपक समस्त पदार्थोंका प्रकाश करनेवाला होगा और स्वभावसेही संसारी जीवोंको मोक्ष-मार्ग दिखलावेगा ॥ २१७ ॥ भरतक्षेत्रमें पहिले भोगभूमियां थे उनमें धर्मकी प्रबलता न होकर भोगोंकी प्रबलता थी अब अठारह कोड़ाकोड़ी सागरके बाद आप फिरसे धर्मकी सृष्टि करेंगे ॥ २१८ ॥ जिसप्रकार दिशाभूल मनुष्य जबतक उसे कोई मार्ग बतलानेवाला नहिं मिलता मार्ग ढूंढ़ नहिं सकता उसीप्रकार मोहरूपी गाढ़ अंधकारसे अंधे भव्यप्राणी इस संसारमें स्वर्ग मोक्षका मार्ग अन्वेषण करनेमें अबतक अशक्त थे सो हे भगवन् आप उन्हें मार्ग बतलानेवाले उपदेशक उत्पन्न हुये हो॥२१९॥ हे प्रभो! अब आपके उपदेशसे समस्त भव्यजीव अनेक कल्याणोंके स्वामी और मोक्ष लक्ष्मीके अधिपति हो जांयगे ॥२२०॥ अब आपकेद्वारा उपदिष्ट प्रमाण नयोंसे अविरुद्ध मार्गसे चलकर ये भव्यजीव सुखपूर्वक अपने २ इष्ट स्थानोंपर पहुंच सकेंगे ॥ २२१ ॥ हे नाथ! आप समस्त जगतके उपकार करनेवाले हैं इसलिये आपही हितार्थियोंके नमस्कार स्तुति और स्मरण करने योग्य हैं ॥२२२॥ आपको नमस्कार करनेसे जीवों का शरीर कृतार्थ होता है गुणवर्णन करनेसे वाणी गुणवाली होती हैं और उनके चिंतवन करनेसे मन गुणसहित विशुद्ध होता है ॥ २२३ ॥ हे मृत्युजीतनेवाले भगवान! आपकेलिये नमस्कार है हे संसारके नाश करनेवाले! आपको नमस्कार है हे वृद्धा अवस्था जीतनेवाले! आपके लिये नमस्कार है हे समस्त कर्मोंका नाश करनेवाले! आपकेलिये नमस्कार है ॥ २२४ ॥ प्रभो! आपके अनंत ज्ञान है इसलिये आपको नमस्कार है आपके अनंत दर्शन विराजमान है इसलिये आपको नमस्कार है आप अनंतबलके स्वामी हैं इसलिये आपको नमस्कार है आप अनंतसुखके भोक्ता हैं इसलिये आपको नमस्कार है ॥२२५॥ भगवन्! आप लोकके नाथ हैं इसलिये नमस्कार करने योग्य हैं आप समस्तलोकके अद्वितीय बंधु है इसलिये आप नमस्कार करनेके पात्र हैं आप समस्त लोकमें बलवान वीर हैं इसलिये नमस्कार करनेके लायक हैं आप समस्त लोकके विधाता हैं इसलिये आपको नमस्कार किया जाता है ॥२२६॥ हे प्रभो! आप जिन चंद्र हैं इसलिये आपको नमस्कार है आप जिन सूर्य हैं इसलिये आपको नमस्कार है आप सर्वव्यापी जिन हैं इसलिये हम आपको नमस्कार करते हैं और आप समस्त जगतके रक्षक जिनेंद्र है इसलिये आपको हमारा नमस्कार है ॥२२७॥ इसप्रकार सैकड़ों स्तोत्रोंसे भगवानकी स्तुति भक्ति और नमस्कार कर समस्त इंद्र आदि देव उनसे वारवार यही प्रार्थना करने लगे कि आपकी भक्ति सदा हमारे हृदयोंमें विराजमान रहै ॥२२८॥ स्तुतिके अनंतर शीघ्रगामिनी विशाल देवसेनासे युक्त इंद्रने भगवानको लेकर मेरुसे

प्रस्थान किया ॥ २२९ ॥ सुवर्णमयी कमलोंके समान पीत शरीरके धारक भगवान जिनेंद्रको इंद्रने जंगम (चलने फिरनेवाले) रूपाचल पर्वतके समान ऐरावत हाथीपर सवार किया ॥२३०॥ कुछ देरके वाद वे अयोध्यापुरीमें आ पहुंचे इंद्रको उससमय अयोध्यापुरी अपनी सेनाके समान जान पड़ी क्योंकि सेना जैसी शत्रुओंसे अजेय थी अयोध्याको भी कोई जीत नहीं सकता था सेनामें अनेक प्रकारकी ध्वजायें थी अयोध्या भी उससमय रंग विरंगी ध्वजाओंसे शोभित थी और सेनामें जैसे वाजे बजते थे अयोध्यामें भी उससमय जगह जगह वाजोंकी गंभीर ध्वनि सुनाई पड़ रही थी ॥ २३१ ॥ अयोध्यामें आते ही इंद्राणीने भगवानको माताकी गोदमें जाकर विराजमान किया इंद्र इंद्राणीने भक्तिपूर्वक भगवानके माता पिताको नमस्कार किया पश्चात् भांति भांतिके भूषणोंसे भूपित और जिनपर अनेक देवांगनायें नृत्य कररहीं थी ऐसी अनेक देदीप्यमान मायामयी भुजाओंसे शोभित इंद्र तांडव नाच नाचने लगा उससमय इंद्रके नृत्यसे समस्त पृथ्वी चल विचल हो उठी ॥ २३२-२३३ ॥ इंद्रने बहुतकालतक माता पिताके सामने आनंद नृत्य किया पश्चात् माता पिताका उचित सत्कारकर वह समस्त देवोंके साथ अपने स्थान चला गया ॥ २३४ ॥ भगवानके जन्मसे पंद्रहमास पहिले पिताके घरमें प्रतिदिन साडेतीन करोड़ धनकी वर्षा होती थी ॥ २३५ ॥ जिसका अभिषेक बड़े बड़े देवोंने सुमेरुपर्वतपर किया था ऐसे तीन लोकके स्वामी भगवान जिनेंद्ररूपी पुत्रको पाकर अतिशय हर्षायमान एवं उदार राजा नाभि और रानी मरुदेवी स्वसंवेद्य सुखका अनुभव करने लगे ॥ २३६ ॥

जो भव्य जीव भगवान ऋषभदेवके गर्भ और जन्मकल्याणकोंका वर्णन भक्तिपूर्वक पढते सुनते हैं उन्हें भगवान ऋषभदेवके समान ही कल्याणोंकी प्राप्ति होती है ॥२३७॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथके चरित्रसे युक्त हरिवंशपुराणमें ऋषभदेव भगवानका गर्भ जन्म कल्याण वर्णन करनेवाला आठवां सर्ग समाप्त हुआ।

नवम सर्ग।

इंद्रद्वारा हाथके अंगूठेमें स्थापित अमृतको पीते हुवे और पिता माताके नेत्रोंको अमृतसरीखा आनंद देते हुये भगवान जिनेंद्र दिनोंदिन बढ़ने लगे ॥१॥ जिसप्रकार अतिशय शांत किरणोंके धारक प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होतेहुये चंद्रमाके उदयसे समुद्र बढ़ता है उसीप्रकार भगवान जिनेंद्रके बढ़नेसे लोगोंका आनंदरूपी समुद्र दिनोंदिन बढ़ने लगा ॥ २ ॥ यद्यपि लोग भगवानकी वालक्रीडारूपी अमृतरसका निरंतर आस्वादन करते थे तो भी उनके नेत्र तृप्त न होते थे ॥ ३ ॥ परमहितकारी इंद्रकी आज्ञासे आये हुये अतिमनोहर देवकुमारोंके साथ भगवान मनोहर खेल खेलते थे ॥ ४ ॥ भगवानके

कोमल आसन शय्या वस्त्र भूषण लेप भोजन सवारी विमान आदि सब देवनिर्मित थे ॥५॥ गाढ़भक्ति और इंद्रकी प्रेरणासे कुवेर उससमय वय और कालके अनुरूप भूषण वस्त्र आदिसे भगवानकी सेवा किया करता था इसलिये वह धनद(धन देनेवाला) कहलाने लगा ॥ ६ ॥ अपने स्वाभाविक स्वच्छ दिव्य कलारूपी गुणोंसे शोभित पूर्ण यौवनसे अलंकृत भगवान उससमय मनोहर चंद्रमा सरीखे जान पडते थे ॥ ७ ॥ उन्नत स्कंधोंसे विराजित वाजूवंदोंसे भूषित गोल उत्तम कलाइयोंसे युक्त भगवानकी लंबी २ दोनों भुजायें उससमय तीनलोककी लक्ष्मीके आलिंगन करनेकेलिये योग्य थीं ॥८॥ श्रीवत्स चिन्हसे विभूषित भगवानका वक्षस्थल ऐसा जान पड़ता था मानो वह अतिशय कामिनी राज्यलक्ष्मीके स्तनके अग्रभागसे पीडित हो ॥९॥ अतिशय कमनीय चरण और जांघोंसे शोभित उनकी दोनो ऊरु वक्षस्थलरूपी विशाल मंदिरके भार सहनेकेलिये सुंदर स्तंभ सरीखे जानपडते थे ॥१०॥ भगवानके छत्राकार मस्तकपर काले काले घूंघरवाले केश रूपाचलकी शिखरपर जड़ी हुई नीलमणियोंकी शोभा धारण करते थे ॥११॥ उनके ललाट, नाक, कमलके नाल दंडोंके समान लंबायमान कान चढ़े हुवे धनुषके समान दोनों भोंये इतने कमनीय थे कि उनका वर्णन करना भी कठिन है ॥ १२ ॥ उससमय सूर्य और चंद्रमा भगवानके मुखकी तुलना नहिं कर सकते थे क्योंकि चंद्रमा अपनी शीतल चांदनीसे जीवोंको केवल रातमें आनंद देता है सूर्य अपने प्रबल प्रकाशसे दिनमें आनंद देता है किंतु भगवानका मुख रातदिन समस्त जीवोंको आनंद देनेवाला था ॥ १३ ॥ उनके दोनों नेत्र और श्रोत्र कमलदलके समान सुंदर थे हथेली और चरणतल लाखसे रंगे हुये सरीखे जान पडते थे ॥ १४ ॥ दांत अतिशय निर्मल मोती सरीखे थे अत्यंत चमकीले सम और छोटे छोटे थे एवं सफेद कुंद पुष्पकी शोभा धारण करते थे ॥१५॥ नौसौ व्यंजन और एकसौ आठ लक्षणोंसे शोभित पांचसौ धनुष ऊंचा हेमाचलके समान विशाल भगवानका शरीर उससमय इतना सुंदर था कि एक इंद्रकी तो बात ही क्या है यदि सैकडों करोडों इंद्रभी एकत्र होकर एकसाथ उसका वर्णन करना चाहें तो लेशमात्र भी वर्णन नहिं कर सकते ॥१६-१७॥ जब भगवान युवा होगये तो तीनों लोकोंमें अतिशय रूपवती प्रौढ़यौवना नंदा सुनंदा नामकी दो कुमारियोंके साथ उनका विधिपूर्वक विवाह हुआ ॥ १८ ॥ गुच्छोंके समान सुंदर स्तन धारण करनेवालीं अंगमें लिपटी हुई गौरी और श्यामाके मध्यमें क्रीडा करते हुये भगवान लतायुक्त कल्पवृक्षसरीखे जान पडते थे ॥ १९ ॥ संसारमें न वह कांति थी न दीप्ति थी न संपदा और कला थी विशेष कहांतक कहा जाय वह सुख भी न था जो उससमय भगवान और नंदा सुनंदा देवियोंको न प्राप्त था ॥ २० ॥ रानी नंदाके समस्त भरतक्षेत्रको आनंद देनेवाला चक्रवर्ती भरत नामका पुत्र और महामनोहर ब्राह्मी नामकी कन्या उत्पन्न हुई ॥ २१ ॥ और सुनंदाके

महाबलवान बाहुबल और परमसुंदरी सुंदरी नामकी कन्या हुई ॥ २२ ॥ भरत और ब्राह्मीसे अतिरिक्त रानी नंदाके वृषभसेन आदि अठानवे पुत्र अन्य उत्पन्न हुये और ये समस्त पुत्र चरमशरीरी थे ॥ २३ ॥ भगवाननें अपने समस्त पुत्र पुत्रियोंको अक्षरविद्या चित्रविद्या गानविद्या और गणित आदि विद्याओंमें अतिशय निपुण करादिया ॥ २४ ॥

कदाचित् राजा नाभिकी आज्ञासे समस्त प्रजा भगवान ऋषभदेवके पास आई उनकी बड़ी स्तुति की विनयपूर्वक प्रणाम किया एवं करुणाजनक स्वरसे इसप्रकार स्तुति करने लगी ॥ २५ ॥

भगवन्! पहिले पृथ्वीपर कल्पवृक्ष थे इसलिये उनसे हमारी जीविका चली जाती थी जब कल्पवृक्ष नष्ट होगये तब स्वयं रस देनेवाले इक्षुवृक्षोंसे सानंद हमारे जीवनका निर्वाह हुआ आपके न्यायशील प्रतापसे हमारी रक्षा हुई और हम इक्षुवृक्षोंके सामने कल्पवृक्षोंका नाम भी भूल गये ॥ २६-२७ ॥ किंतु प्रभो! न मालूम इससमय छिन्न भिन्न करने पर भी इक्षुवृक्ष क्यों रस नहिं देते? सच है! समयके फेरसे अतिशय कोमल भी कठोर होजाते हैं ॥ २८ ॥ यद्यपि बहुतसे वृक्ष हमें फले फूले दीख पड़ते हैं परंतु हम नहिं जानते किस विधिसे उनसे अन्न प्राप्त करें ॥ २९ ॥ घड़ेके समान बड़े बड़े स्तनवाली गायें और भैंसोंके स्तनोंसे दूध झरता है परंतु न मालूम वह हमारे लिये भक्ष्य है या अभक्ष्य ॥ ३० ॥ पहिले हम सिंह व्याघ्र भेड़िया आदि जीवोंको कंठसे आलिंगन कर लेते थे परंतु अब वे भी कुपुत्रके समान हमें अनेक त्रास देते हैं-काटनेको दौड़ते हैं ॥३१॥ इसलिये इससमय हम क्षुधासे अतिशय व्याकुल हैं हमारे जीवनका कोई उपाय नहिं दीखता। प्रभो! आप हमारे ऊपर कृपा करें इस भयंकर भयसे शीघ्र उबारें ॥ ॥ ३२ ॥ समस्त प्रजाको इसप्रकार भूंखसे व्याकुल त्रस्त देख अतिशय दयालु भगवान ऋषभने उन्हैं दिव्य आहार दे क्षुधाजन्य त्राससे बचाया ॥ ३३ ॥ जीविकाके लिये अनेक उपाय बतलाये धर्म अर्थ काम के साधनोंका उपदेश दिया ॥ ३४ ॥ प्रजाके कल्याणार्थ उपायोंके साथ साथ असि[1] मषि कृषि विद्या वाणिज्य और शिल्प इन षट्कर्मोंका भी उपदेश दिया ॥ ३५ ॥ गौ भैंस आदि पशुओंका संग्रहकर उनके पालनेकी विधि बतलाई सिंह आदि दुष्टजीवोंसे बचनेका उपाय बतलाया ॥ ३६ ॥ भगवानके सौ पुत्रों ने और प्रजाने उससमय अनेक कला शास्त्र सीखे और सैकड़ोंको शिल्पी बनाया ॥ ३७ ॥ शिल्पकलामें प्रवीण कारीगरोंने उससमय भरतक्षेत्रकी पृथ्वीपर अनेक पुर गांव घर खेट कर्वट बनाये ॥ ३८ ॥ उससमय भगवानने क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णोंकी स्थापना की जो मनुष्य दुःखी जीवोंकी रक्षा करनेकी सामर्थ्य रखते थे उन्हैं क्षत्रिय बनाया जो वणिक्

१-असि खड्ग, मषि स्याही, कृषि खेती, विद्या पठन पाठन, वाणिज्य व्यापार, शिल्प मकानादि पदार्थों का तयार करना।

वृत्ति व्यापार करने वाले थे उन्हैं वैश्य किया और जो शिल्पविद्यामें चतुर थे मकान आदि बनाना जानते थे उनका वर्ण शूद्र ठहराया ॥ ३९ ॥ षट्कर्मका उपदेश देकर भगवानने उससमय प्रजाको सुखी किया उनकी बुद्धिमें नवीन युगका संचार किया इसलिये उन्हैं लोग कृतयुग कहने लगे ॥ ४० ॥ उससमय इंद्र आदि देवोंने आकर भगवानका राज्याभिषेक किया और प्रजाके समस्त कष्ट दूरकर उसै अच्छी तरह वसाया ॥ ४१ ॥ उससमय विनयीजनोंसे व्याप्त, विनीता अयोध्या और साकेता नामसे प्रसिद्ध भगवानकी जन्मभूमि अतिशय रमणीय जान पड़ती थी ॥ ४२ ॥ उससमय जो पुरुष भगवानसे वयोवृद्ध थे और कुटुंब (इक्ष्वाकुवंश) से उत्पन्न थे उन्हैं तो भगवान आदीश्वरने इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रिय राजा वना पृथ्वीकी रक्षा करनेका भार सोंपा जो कुरुदेशके रहनेवाले शासक थे उन्हैं कुरुवंशीय कहा जो उग्र थे और जिनकी आज्ञा उग्र मालूम पड़ती थी उन्हैं उग्रवंशीय वनाया न्यायपूर्वक प्रजाकी रक्षाकरने वालोंको भोजवंशीय नामसे पुकारा। और अनेक मनुष्य जो प्रजाको हर्षायमान रखते थे उन्हैं सामान्य राजा बनाया उससमय श्रेयांस और सोम आदि कुरुवंशीय राजाओंसे पृथ्वी अतिशय रमणीय जानपड़ती थी ॥४३–४५॥ इसप्रकार देवनिर्मित दिव्य भोगोंको भोगते हुये भगवान ऋषभ देवकी जन्मसे लेकर तिरासीलाख पूर्ववर्षे व्यातीत हुई उन्हैं मालूम तक न पड़ीं ॥ ४६ ॥

कदाचित् भगवान सभामंडपमें सिंहासनपर विराजमान थे इंद्रकी नृत्यकारिणी नीलांजसा उनके सामने नांच रही थी नाचतें नाचतेही वह तत्काल विला गई और उसै विलीयमान देख भगवानको वैराग्य होगया ॥ ४७ ॥ जो वाह्य पदार्थ पहिले भगवानको अनुरागके कारण थे वे ही अनुरागके अतरंग कारणोंके शांत होजानेपर शांतिके कारण वनगये ॥ ४८ ॥ जो विषय पहिले बुद्धिको भ्रमानेवाले थे वे ही वैराग्य होनेपर शांतिके करनेवाले होगये ॥ ४९ ॥ विषयवासनासे पराङ्मुख बहुत कालतक भोग भोगनेसे अतिशय लज्जित स्वयंबुद्ध भगवान वैराग्य होते ही अपने आप ऐसा विचार करने लगे–

देखो संसारकी विचित्रता! आधीन तो कर्मको करना चाहिये परंतु ये भोले जीव कर्मके ही आधीन होजाते हैं॥ ५१ ॥ नानाप्रकारके अभिनय करनेमें चतुर, हावभाव रससे पूर्ण, अनेक भावोंको दिखानेवाली नृत्य करती हुई यह नृत्यकारिणी क्षणभर पहिले इसवातका विचार कर रही थी कि मेरे नृत्यसे भगवान प्रसन्न हेंगे भगवानके प्रसन्न होनेपर इंद्र प्रसन्न हेंगे फिर मुझे सुख मिलेगा सो इसका प्रवल मोह था ॥ ५२–५३ ॥ हा! सदा दूसरेकी सेवा करनेमें तत्पर पराधीन इस दीन प्राणीका मन निरंतर सुख भोगनेकी अभिलाषासे व्याकुल रहता है इसलिये इसै धिक्कार है ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य अपनेको इस वातका अभिमानकर कि हम स्वतंत्र हैं, सुख भोगते हैं उनका सुख, सुख नहीं क्योंकि वे अपने कर्मके आधीन हैं सदा उनकी आत्मा भोग तृष्णासे व्याकुल रहती है ॥ ५५ ॥ जो

मनुष्य आत्माधीन हैं रागद्वेष आदिसे रहित हैं वे आत्माधीन अर्थात् निराकुलतारूप अतींद्रिय सुख भोगते हैं उनका सुख इंद्रिय और पदार्थोंके आधीन नहिं रहता क्योंकि वे कर्मोंकी आधीनतासे छूटगये हैं—स्वतंत्र होगये हैं ॥ ५६ ॥ जिसप्रकार हजारों नदियोंके समूहसे भी समुद्रकी तृप्ति नहिं होती उसीप्रकार संसारमें अनंत कालपर्यंत मनुष्य सुर असुरोंके भोग भोगनेपर भी इसजीवकी तृप्ति नहिं होती ॥ ५७ ॥ देखो! राजा महाबलके भवमें मैं विद्याधरोंका स्वामी था उसके बाद उससे दूसरे भवमें द्वितीय स्वर्गमें ललितांग देव हुआ, तीसरे भवमें वज्रजंघ राजा, चौथे भवमें उत्तरकुरु भोग-भूमिमें भोगभूमियां, पंचमभवमें द्वितीय स्वर्गमें श्रीधरदेव, छठे भवमें राजा सुविधि सप्तम भवमें अच्युत स्वर्गमें इंद्र, आठवें भवमें विदेह क्षेत्रमें वज्रनाभि चक्रवर्ती, और नववें भवमें सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिंद्र हुआ। मैंने चिरकालतक दिव्य भोग भोगे तथापि मेरी इनसे तृप्ति न हुई सो क्या अब भी इन सुलभ विपुल भोगोंके भोगनेसे मेरी तृप्ति हो जायगी?॥५८—५९—६०॥ इसलिये अब मुझे यही करना उचित है कि महादुःखदायी इस संसारसुखको तिलांजलि दे अतींद्रिय मोक्ष सुखकी प्राप्तिकेलिये तपोवनमें प्रवेश करूं ॥ ६१ ॥ हा! मति आदि तीन ज्ञानका धारक, संसारके समस्त वृत्तांतको जाननेवाला मैं भी सामान्य मनुष्यके समान इस विनाशीक राज्यमें स्थित रहा जातेहुये समयकी मैंने कुछ भी पर्वा न की! सच है कालकी गति दुर्निवार्य है ॥६२॥ इस प्रकार अपने पूर्वभवके वृत्तांतको भलेप्रकार जानकर भगवान वैराग्य भावना भाने लगे और उसीसमय ब्रह्मलोकवासी सारस्वत आदित्य आदि लौकांतिक देव अपनी चंद्रमा सरीखी कांतिसे आकाशको चंद्रमाओं के समान व्याप्त करते हुये शीघ्र ही भगवानके पास आये उन्हें भक्तिभावसे नमस्कार किया एवं इसप्रकार निवेदन करने लगे ॥ ६३—६४ ॥

प्रभो! आप समस्त रीतियोंके जानकार हैं अतः अनादिसे जो जीवोंका हितकारीमार्ग चला आया है आप उस पर आरूढ़ हों अब यह अवसर धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति करने का आगया है ॥६५॥ कृपानाथ! ये समस्त प्राणी चतुर्गतिरूपी विकराल वनमें दिशाभूल मनुष्यके समान मार्ग भूल रहे हैं—इधर उधर भटकते फिरते हैं आप इन्हें सच्चा मार्ग दिखलाइये जिससे ये अतिशय कल्याणकारी मोक्ष स्थानपर जा पहुंचे ॥६६॥ स्वामिन्! जिसप्रकार विच्छिन्न संप्रदायवाले मंत्रको सिद्ध करनेकेलिये संप्रदाय बतलायी जाती है उसीप्रकार इससमय मोक्षका संप्रदाय सर्वथा खंडित होगया है—लोग मोक्षका नामतक नहिं जानते कृपाकर उसका संप्रदाय—मार्ग बतलाइये ॥६७॥ भगवन्! जन्म जरा मरण इन तीन दुःख रूपी भयंकर जल भवरोंसे युक्त, राग द्वेष मोह रूपी प्रचंड सर्पोंका धारक, यह संसार एक विशाल समुद्र है दीन प्राणी सदा इसमें गोता लगाते रहते हैं कृपाकर आप इनकेलिये खेवटिया बनिये—इन्हें डुबोनेवाले अगाध समुद्रसे उबारकर पार कीजिये

॥ ६८ ॥ ये समस्त जीव वेगसे घूमते हुये संसाररूपी चक्रपर घूम रहे हैं कृपाकर अपना उपदेशरूपी हाथ बढ़ाकर इन्हें उससे बचाइये ॥ ६९ ॥ हे भगवन्! आपके द्वारा बतलाये हुये मार्गपर चलकर ये लोग तीनलोकके शिखरपर विराजमान हो मोक्षके अविनाशी सुखका अनुभव करें–संसारमें अनंतकालपर्यंत भ्रमण करनेसे उत्पन्न हुई थकावट दूर करैं और जन्म जरा आदिसे रहित होवें ॥ ७० ॥ जिसप्रकार समुद्र जलका भंडार है जो लोग उसै जलका अर्घ देते हैं वह उनकी भक्ति और पूजा है उसीप्रकार भगवान स्वयंबुद्ध थे–स्वयं संसारकी समस्त दशा जाननेवाले थे तो भी लौकांतिक देवोंने वैराग्यके दृढ़ करनेकेलिये जो पूर्वोक्त प्रकारसे स्तुति वचन कहे वे केवल उनकी पूजार्थ थे ॥ ७१ ॥ उसीसमय इंद्र आदि चारो निकायोंके देव भी आ पहुंचे लौकांतिक देवोंने जो भगवानकी स्तुति की थी वे भी उसीकी अनुमोदना करने लगे ॥ ७२ ॥ स्वयंबुद्ध भी भगवान अनेक देवोंसे बोधित हो उससमय सूर्यकी प्रभासे खिले हुये कमलोंसे व्याप्त पद्मसरोवरकी शोभा धारण करते थे–मारे आनंदके उनका हृदयकमल फूल गया था ॥ ७३ ॥ भगवानके सब पुत्र सौ थे उनमें बडे पुत्र भरतको राज्य देकर शेष पुत्रोंको उन्होंने यथायोग्य पृथ्वी बांट दी। जिसप्रकार हजार किरणोंसे युक्त सूर्य सुंदर मालूम पड़ता है उसीप्रकार सौ पुत्रोंसे युक्त भगवान भी उससमय मनोहर जान पड़ते थे ॥ ७४ ॥ देवोंने क्षीरसमुद्रका जल लाकर भगवानका अभिषेक किया शरीरमें चंदन आदि सुगंधित द्रव्य लगाये और नानाप्रकारके बहुमूल्य वस्त्र भूषण पहिनाये ॥ ७५ ॥ भांति भांतिके मणिमयी भूषणोंसे अलंकृत, अनेक राजा और देवोंसे वेष्टित, भगवान उससमय पूर्व पश्चिम लंबे कुलाचलोंसे युक्त मेरुपर्वत सरीखे जान पड़ते थे ॥ ७६ ॥

इधर इंद्र आदि देव तो वस्त्रभूषण आदिसे भगवानकी परिचर्या करने लगे उधर कुवेरने शीघ्र ही दिव्य, सुंदरतासे मनुष्योंके मनहरण करनेवाली, सुदर्शना नामकी पालकी तयार की ॥ ७७ ॥ उससमय वह सुदर्शना आकाश और उत्तम स्त्रीके समान जान पड़ती थी। क्योंकि जिसप्रकार आकाश (ताराभरलजातीनां प्रभाभिरतिभास्वरा) अतिशय चमकीले तारा और नक्षत्रोंकी शोभासे देदीप्यमान रहता है और उत्तम स्त्री ताराओं के समान चमकीले रत्नोंकी प्रभासे देदीप्यमान रहती है उसीप्रकार पालकी भी चौतर्फा जड़ेहुये तारोंके समान चमकीले रत्नोंसे दीप्त थी। आकाश (मंडलाकृतिशुभ्राभ्रधवलातपवारणा) मंडलाकार सफेद मेघोंसे निर्मल और उनसे संताप दूर करनेवाला होता है एवं स्त्री मंडलाकार स्वच्छ मेघके समान निर्मल संताप दूर करनेवाली होती है पालकी भी सफेद मेघमंडलके समान स्वच्छ छत्रसे शोभित थी। आकाश (चलच्चामरसंघातहंसमालांशुकोज्वला) चंचल चामरोंके समूहके समान हंसपंक्तियोंसे देदीप्यमान एवं उज्वल रहता है और स्त्री चमरोंके समूह तथा हंसपंक्तिके समान उत्तमवस्त्रोंसे उज्वल

रहती है पालिकी भी हंसपंक्तिके समान चंचल चमर और उत्तम वस्त्रसे मनोहर थी आकाश (आदर्शमंडलाखंडदीप्तिदिङ्मुखमंडला) सूर्यमंडलके अखंड तेजसे समस्त दिशाओंका प्रकाश करनेवाला है। स्त्री दर्पणके समान अखंडदीप्तिसे युक्त मुखवाली होती है पालकी भी चारो ओर लगे हुये अनेक मणिमयी दर्पणोंके प्रकाशसे समस्त दिशाओंको प्रकाशमान करती थी। आकाश (बुद्बुदापांडुगंडांता) जलके बबूलेके समान पांडु प्रदेशोंसे युक्त है स्त्रीके कपोलभाग जलके बबूलोंके समान ईषत्पांडु होते हैं पालकीके दोनो भाग भी जलके बबूले सरीखे सफेद थे। आकाश (मूर्धचंद्रालिकाकृतिः) उत्तम चंद्रमंडलसे व्याप्त रहता है और स्त्रीका ललाट चंद्राकार होता है पालकीके ऊपर भी उत्तम चांदनी तनी हुई थी। (संध्याभ्रखंडसंरक्तविस्फुरद्विद्रुमाधरा) आकाशके प्रदेश सांझके समय मूंगेके समान लाल होजाते हैं स्त्रीके अधर संध्याकालीन लाल लाल आकाशके खंडोंके समान देदीप्यमान मूंगे सरीखे सुंदर जान पड़ते हैं पालकीमें भी संध्यासमयके ललोएं आकाशके प्रदेशोंके समान मूंगे जड़े हुये थे। आकाश (पतज्जललवस्वच्छमुक्तादशनशोभिता) निर्मल मोतियोंके समान गिरते हुये शुभ्र जलकणोंसे अतिशय शोभित जान पड़ता है स्त्रीके दांत गिरते हुये जलकणोंके समान स्वच्छ मोती सरीखे शुभ्र होते हैं पालकी भी गिरते हुये जलकणोंके समान निर्मल मोतियोंसे जड़ी हुई थी। आकाश (शुभकेतुपताकालीलीलाभुजलतोज्ज्वला) शुभराहुके विमानोंपर फैराती हुई ध्वजारूपी लताओंसे व्याप्त रहता है स्त्रीकी भुजारूपी लता शुभराहुके विमानोंपर स्थित ध्वजाओंके समान चंचल होती हैं पालकी भी शुभकांतियुक्त अनेक पताका रूपी भुजालताओंसे युक्त थी। आकाश (दिङ्नागनासिकाजंघा रंभास्तंभोरुशोभिनी) दिग्गजोंके नासिका और जंघारूपी स्तंभोंसे युक्त है। स्त्रीकी जंघा हाथीकी सूड़के समान और उरू केलेके थंभेके समान होते हैं पालकी भी हाथीकी सूड़ और जंघाके समान अनेक केलेके स्तंभोंसे युक्त थी। आकाश (चित्रस्त्रीतारकालोका) चित्रा नक्षत्र और तारोंके प्रकाशसे प्रकाशित रहता है स्त्री चित्रा और तारोंके समान चमकीले नेत्रोंसे शोभित रहती है पालकी भी चित्रा और तारोंके समान देदीप्यमान थी (जगतीजघनस्थला) आकाशमें तीनोंलोक रहते हैं स्त्रीका जघनस्थल विशाल रहता है पालकी मध्यलोकमें विराजमान थी। आकाश (वारिधारास्फुरद्धाराशुभकुंभपयोधरा) धारोंसे वर्षनेवाले जलोंसे युक्त मनोहर मेघोंसे शोभित रहता है स्त्री जलसे भरे हुये घड़ोंके समान स्तनवाली होती है। पालकी भी जलसे युक्त कुंभोंसे शोभित थी। आकाश (तारापुष्पवती रम्या) तारारूप पुष्पोंसे शोभित सुंदर है स्त्री तारोंके समान मनोहर पुष्पोंसे शोभित सुंदरी रहती है पालकी भी ताराके समान उत्तम पुष्पोंसे शोभित और मनोहर थी। आकाश (सुनक्षत्रबृहत्फला)

सुंदर नक्षत्ररूपी विशाल फलोंसे युक्त है स्त्री नक्षत्रके समान मनोहर तेजस्वी पुत्ररूपी फलसे युक्त रहती है पालकी शुभ अविनाशी मोक्षरूपी महाफलको प्रकट करनेवाली थी। आकाश (सुनीलघनकेशा) काले काले मेघोंसे व्याप्त होता है स्त्रीके केश मेघके समान काले होते हैं और पालकीमें सुंदर नीलमणियें जड़ी हुई थीं। इसप्रकारकी शोभासे शोभित वह पालकी कुवेरने अवलोकनार्थ इंद्रके सामने रखदी ॥ ७८–८३ ॥ पालकी देखकर प्रसन्न हो इंद्रने भगवानसे प्रार्थना की प्रभो! पालकी तयार है सवार हूजिये। भगवान अपने माता पिता आदि परिवारसे तपके लिये पूछकर वनकी ओर चल दिये। उससमय भगवानके मस्तकपर अनेक देव छत्र लगायें थे। अनेक उनके ऊपर चमर ढार रहे थे। इसतरह वे वत्तीस पैंडतक तो पैदल ही चले पश्चात् लोगोंके हाथ जोड़कर पालकीमें वैठनेके लिये प्रार्थना करनेपर वे पालकीमें सवार होलिये और उदयाचल पर्वतपर विराजमान सूर्यकी शोभा धारण करने लगे। उससमय अनेक लोग भगवानको आशीर्वाद देते और अनेक जयजय शब्द करते थे ॥ ८४–८७ ॥ जब तक पालकी पृथ्वीपर चली तबतक तो उसै राजा लोगोंने वहन किया पश्चात् आकाशमें उसै देव ले चले उससमय ऐसा जान पड़ता था मानो ये राजा और देव भगवानकी पालकी नहिं उठा रहे हैं किंतु उनकी आज्ञाका शिरसे वहन कर रहे हैं ॥ ८८ ॥ भगवानके पालकीपर सवार होते ही समस्त दिशाओंको शब्दायमान करनेवाले शंख भेरी वांसुरी वीणा नगाड़ोंके उत्ताल शब्द होने लगे ॥ ८९ ॥ उससमय विशाल सेनाके साथ आकाशमार्गमें तो देव गमन करते थे और नीचै पृथ्वीपर इक्ष्वाकु कुरु उग्र एवं भोजवंशीय राजा गमन करते थे जिससे कि समस्त संसार एक जगह इकट्ठा सरीखा मालूम पड़ता था ॥ ९० ॥ भगवानकी पालकीके साथ २ अनेक अप्सरायें नाचती जाती थीं इसलिये जो महानुभाव उससमय आकाश मार्गसे जारहे थे वे शृंगार आदि नौऊ रस अनुभव करते जाते और हर्षायमान थे और जो नीचे जमीनपर चलनेवाले (भगवानके माता पिता स्त्री आदि) थे वे भगवानसे वियुक्त हो चुके थे इसलिये शोक रसका ही अनुभव करते थे ॥ ९१ ॥ अनेक देवोंसे सेवित भगवान अशोक चंपक सप्त-च्छद वड़ आदि वृक्षोंसे मंडित सिद्धार्थ नामक वनमें पहुंचे ॥ ९२ ॥ जिसप्रकार वे पहिले देव लोकके मस्तकपर विराजमान सर्वार्थसिद्धि विमानसे चयकर पृथ्वीपर अवतीर्ण हुये थे उसीप्रकार मोक्षकी भिलाषासे वे देवोंके मस्तकपर विराजमान पालकीसे अपने आप नीचे उतर गये ॥ ९३ ॥ और इसप्रकार प्रजाको उपदेश देने लगे—

सज्जनो! आप लोग शोक छोड़ें संयोग सर्वदा किसीका भी नहिं रहता कभी न कभी अवश्य वियोग होता है। देखो! जीवोंका जो इस शरीरके साथ अभी संयोग दीख रहा है पीछै नियमसे उसका भी वियोग होजायगा ॥ ९४ ॥ मैंने आपकी रक्षा

करनेके लिये राजा भरतको नियुक्त करदिया है आप हरप्रकारसे सदा उसकी सेवा करें और अपनी प्रवृत्ति धर्ममार्गपर अचल रक्खें ॥ ९५ ॥ इसप्रकार भगवानके उपदेशके समाप्त होजानेपर लोगोंने भक्तिभावसे उनकी पूजाकी और जिसस्थानको आजकल हम 'प्रयाग' नामसे पुकारते हैं उसका यह नाम उसीसमयसे (भगवानकी पूजाके संबंधसे) हुआ ॥ ९६ ॥ उससमय दीक्षाग्रहण करनेकेलिये भगवानने माता पिता कुटुंबी एवं अतिशय नम्र राजाओंसे पूछा और अंतरंग वहिरंग दोनों प्रकारका परिग्रह त्यागकर तत्काल संयमी होगये ॥ ९७ ॥ उन्होंने शीघ्रही पंचमुष्टिसे अपने केशोंका लोंच किया इंद्रने उन्हें ग्रहणकर सुवर्णपात्रमें रक्खा और क्षीरसमुद्रमें लेजाकर क्षेपण करदिया ॥ ९८ ॥ भगवानके तपकल्याणके समाप्त होजानेपर सुर असुर मनुष्योंने उनकी सानंद पूजाकी और वे शोकाकुल हो अपने अपने स्थान चलेगये। ॥ ९९ ॥ उससमय भक्तिके वश हो इक्ष्वाकु कुरु उग्र एवं भोजवंशीय चार हजार मुख्य २ राजा भी भगवानके साथ दिगंबर दीक्षासे दीक्षित होगये ॥ १०० ॥ महातपस्वी, चार ज्ञानके धारक, पर्वतके समान निश्चल, अनेक परीषह जीतनेवाले, भगवान आदिनाथने कायोत्सर्ग मुद्राधार छै मासका मौनव्रत धारण किया ॥१०१॥ उनके साथ अन्य राजा भी कायोत्सर्ग मुद्राधार निश्चल बैठगये। ये समस्त राजा मुनिमार्गका रंचमात्र भी स्वरूप न जानते थे केवल उन्हैं स्वामीकी आज्ञा पालन करनेका ज्ञान था अर्थात् जिसप्रकार भगवान कायोत्सर्ग धारणकर खड़े हुए थे और मौनव्रती थे उसीप्रकार ये भी उनके देखा देखी खड़े होगये और मौनव्रत धारण करलिया ॥ १०२ ॥ जब इन्हैं भूख और प्यासने सताया इनकी आत्मा व्याकुल होने लगी तब ये विचारे भोले भाले ऐसा विचार करने लगे—हमारे नौकर स्त्री पुत्र आदि पानी भोजन लेकर आज कलमें यहां आते ही होंगे ॥ १०३ ॥ उनमें भगवानके साले कच्छ महाकच्छ और उनका पोता—राजा भरतका पुत्र मरीची ये तीन प्रधान राजा क्षुधा आदि परीषह न जीत सके इसलिये छैमासके भीतर ही तपसे भ्रष्ट होगये ॥ १०४ ॥ मारे भूंखके इनके शरीर विलकुल सूखगये और इनकी दृष्टि घूमने लगी सो ऐसा जान पड़ा मानो संसारमें घुमानेवाले मिथ्यादृष्टियोंकी इन्होंने नीब ही डाल दी ॥ १०५ ॥ इनकी आखों तलें नीचे अंधेरा होगया समस्त दिशायें अंधकारमय प्रतीत होने लगीं मारे भूख और प्यासके इनकी आंखें पीली होगईं इसलिये रात्रिके समय आकाशमें इन्हैं एक चंद्रमाके सौ चंद्रमा दीखने लगे ॥ १०६ ॥ (जिन मनुष्योंको एकके सौ चंद्रमा दीखे उन्होंने उससमय वेदांतमतकी स्थापनाकी अर्थात् वेदांतमतमें आत्मा एक है और जलके भरे हुये अनेक घड़ोंमें एक चंद्रमाके अनेक प्रतिविंबोंके समान वह एक ही अनेक रूपसे भासित होता है) जिन राजाओंके अंदर कुछ बोलनेकी शक्ति थी—आपसमें बात चीत

करते थे उन्होंने आत्माको शब्दस्वरूप समझा और समस्त जगतको भी शब्दस्वरूप माना इसलिये उससमयसे शब्दाद्वैतवादीकी प्रवृत्ति हुई और दूसरोंने जिसप्रकार शब्दवाला आकाश अमूर्तिक और व्यापक है उसीप्रकार आत्माभी शब्दवाला है वह भी आकाशके समान अमूर्तिक और व्यापक है ऐसा समझा और उसीसमयसे नैयायिक और वैशेषिक मतका प्रसार हुआ (उनके मतमें आत्मा आकाशके समान अमूर्तिक और व्यापक है) ॥ १०७ ॥ जो राजा उससमय जमीनपर गिर गये होश हवाशके न रहनेसे उनसे उठा न गया तो उन्होंने समझा आत्मा अचेतन है जड़ है इसलिये उन्होंने चार्वाक मतका प्रसार किया अर्थात् चार्वाक आत्माको अचेतन पंच-भूतमय मानते हैं ॥ १०८ ॥ अनेक महाशयोंको होश हवास तो रहा भूंख और प्यास की प्रबल वेदनासे फलखाना और पानी पीना भी चाहा परंतु अशक्ततासे वे वैसा न करसके इसलिये वे आत्माको अकर्ता मान बैठे और उन्होंने सांख्यमतको निकाला (सांख्यमतके अनुयायी भी प्रकृतिको कर्ता एवं जड़ मानते हैं और आत्माको अकर्ता एवं चेतन मानते हैं) ॥ १०९ ॥ कई एक राजा उनमें ऐसे थे कि जिन्हें भूंख प्यासस़े व्याकुल हो मूर्च्छा आगई पूर्वापरकी कुछ भी बात याद न रही इसलिये आत्माको क्षणभंगुर जान उन्होंने बौद्धमतकी नींव डाली (बौद्ध क्षणिकवादी है अतीत अनागत पर्यायोंको न मानकर केवल वर्तमान पर्यायमें जो होता है उसे ही मानता है) इसप्रकार भगवानके साथ दीक्षा लेनेवाले राजा जब भूख प्यासकी वेदना न सहसके तो उन्होंने कायोत्सर्ग मुद्राका त्याग करदिया और वे भगवानके पाससे धीरे धीरे खसकने लगे ॥ १११ ॥ जबतक शरीरको शांति रहती है तभी तक प्राणी किसी कुमार्गमें नहीं फसते एवं स्वामिसेवा और उत्तमकुलके पुरुषोंकी मर्यादाका पालन करते हैं परंतु शरीरके चल-विचल होनेपर सब उत्तम मर्यादाओंका लोप होजाता है ॥ ११२ ॥ इसतरह जब समस्त अज्ञानी नग्नमुद्रासे ही इधर उधर वनमें स्वतंत्रतापूर्वक कंदमूल खानेलगे। सरोवरोंका जल पीनेलगे और उसमें स्नान करने लगे तो उनकी वैसी दुष्टप्रवृत्ति देख आकाशमें देववाणी हुई "अरे अज्ञानियो! तुम्हें दिगंबर रूप धारण कर ऐसा काम कदापि नहिं करना चाहिये यह दिगंबर व्रत स्वतंत्रताका विरोधी है" ॥ ११३–११४ ॥ देववाणी सुनते ही ये समस्त राजा लोग बडे लज्जित हुये चकित हो दशो दिशाओंकी ओर देखने लगे इन्होंने शीघ्र ही दिगंबर वेष छोडदिया और कुश वस्त्रखंड एवं वृक्षकी छाल धारण करली ॥ ११५ ॥ कुछ देरतक इन्होंने विश्राम किया बहुत दिन भूखे रहनेसे इनकी जठराग्नि सर्वथा प्रदीप्त हो चुकी थी इसलिये फल आदि खा उसे शांत किया एवं जब वे स्वस्थ होगये तब ऐसा विचार करने लगे। सच है चित्तके स्वस्थ होनेपर ही बुद्धि कुछ काम देती है ॥ ११६ ॥

देखो इन भगवानने समस्त भोगोंको छोड़दिया है अतिशय कठिन योग धारण करलिया है न मालूम ये क्या करना चाहते हैं इनका क्या अभिप्राय है ऐहिकफलतो कोई इसका दीखता नहिं क्योंकि ऐहिकफलके लिये ये इतना कठिन तप नहिं करते ॥ ११७ ॥ ये प्रभु संपत्तिको विपत्तिरूप मानते हैं, समस्त राग और द्वेषसे रहित होगये हैं, इसलिये इनकी दृष्टिमें विषय विष सरीखे जान पड़ते हैं ॥ ११८ ॥ इन भगवानने व्यसनके समान समस्त भूषण वस्त्रोंको छोड़दिया है आहारका त्याग करदिया है वैरीके समान केश उपाड़कर फेंक दिये हैं इसलिये ऐसा जान पड़ता है कि इनकी ममता शरीरमें भी नहिं रही है ॥ ११९ ॥ मालूम होता है इन्होंने किसी परलोकके फलकी अभिलाषा की है। ये तो इसप्रकार योगधारण कर विराजमान होगये हैं—कुछ बोलते चालते नहीं—मौन धारण करलिया है अब हमैं क्या करना चाहिये। हम अपने कर्तव्य कर्मको विलकुल नहिं जानते हम इनके साथमें तपकेलिये अपने देशसे निकल आये हैं इसलिये यदि हम फिर लोटकर वहां जाते हैं तो हमारी शोभा नहीं लोग हमारी हंसी करेंगे। अनेकप्रकारके संतापोंकी भी संभावना है ॥१२०–१२१॥ चाहैं हम भगवानके समान कठिन तपश्चरण नहिं कर सकैं तथापि हमैं उनके पीछे २ वनमें ही रहना चाहिये ॥ १२२ ॥ आपसमें यह विचार कर वे लोग वनमें पत्र फल खाने लगे जटा रखालीं वृक्षोंकी छालें पहिनलीं एवं वनवासी तपस्वी होगये ॥१२३॥ भगवानका पोता मरीचिकुमार तपसे अतिशय व्याकुल हो मारे प्यासके मरीचिकाओंमें (चमकती हुई वालूमें) जल तलाश करने लगा ॥ १२४ ॥ यद्यपि इसे अतिशय संतप्त गजके समान जलावगाहन करना चाहिये था परंतु मरीचिकामें इसे जराभी जल न मिला इसलिये उसकी कोमल रेतीमें ही लोटकर उसने अपना संताप दूरकिया ॥१२५॥ मरीचि वड़ा मान कषायी था उसने गैरुआ वस्त्र धारण करलिये, मूंड़ मुड़ालिया हाथमें दंड धारण कर स्नान आदिसे अपनेको पवित्र मानने लगा एवं दंडी सन्यासियोंके मतका प्रवर्त्तक हुआ ॥ १२६ ॥

राजा कच्छ सुकच्छके पुत्र नमि विनमि भोगोंकी याचनाके लिये अतिशय आतुर उद्विग्न एवं दुःखित हो भगवानके चरणोंमें आकर पड़गये ॥ १२७ ॥ उनके चरणोंमें पड़ते ही नागेंद्रका सिंहासन कपगया वह अवधिज्ञानसे समस्त वृत्तांत जान शीघ्रही भगवान ऋषभ देवके पास आया सो ठीक ही है मौन समस्त पदार्थोंका सिद्ध करने वाला है ॥ १२८ ॥ दिव्यरूपके धारक नागेंद्रने अपने भाइयों के समान उनदोनों भाइयोंको आश्वासन दिया महविद्या प्रदान की सो ठीकही है विद्याका लाभ गुरुकी सेवासे ही होता है ॥ १२९ ॥ नागेंद्रने उनदोनों भाइयोंको जिसमें अनेक विद्याधर निवास करते हैं विजयार्ध पर्वत दिया सो ठीकही है गुरुकी सेवासे क्या २ नहि मि-

लता ॥ १३० ॥ विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें नमि तो पचास नगरका स्वामी होगया और उत्तरश्रेणीमें विनमि साठ पुरोंका अधिपति वना ॥ १३१ ॥ राजा नमि अपने समस्त वांधवोंके साथ सर्वोत्तम रथनूपुर नगरमें निवास करने लगा और राजा विनमि आकाशके तिलकस्वरूप नभस्तिलक नगरमें अपने कुटुंवियोंके साथ रहने लगा ॥ १३२ ॥ इन दो धीर वीर राजाओंको पाकर विजयार्ध पर्वतकी दोनों श्रेणियोंमें रहनेवाले विद्याधर अपनेको समस्त लोकमें उत्कृष्ट समझने लगे ॥ १३३ ॥

धीर परीषहरूपी जाज्वल्यमान अग्निके बुझानेवाले समीचीन ध्यानरूपी समुद्रके भीतर स्थित भगवान प्रतिमाके समान निश्चल विराजमान थे छै मासके बाद उन्हें आहारकी प्रथा चलानेकी याद आई और वे ऐसा विचारने लगे—

मेरे तीर्थंकर प्रकृतिका उदय है मेरा कार्य आहारके विना भी चल सकता है किंतु मोक्षको जानेकी इच्छा करनेवाले अन्य मनुष्य अल्प शक्तिके धारक होंगे और विना आहारके उनका काम कदापि न चल सकेगा ॥१३४-१३५॥ क्योंकि धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चारपुरुषार्थोंमें धर्म मुख्य पुरुषार्थ है उसका लक्षण उत्तम क्षमा आदि है एवं यह मोक्ष काम और अर्थ इन तीन पुरुषार्थोंका सिद्ध करनेवाला है ॥ १३६ ॥ धर्मका साधन शरीर है, शरीर प्राणोंके आधार है, प्राणोंके सहारे यह जीव जीता है, और प्राण अन्नके आश्रित हैं इसलिये अल्पशक्तिके धारक जीवोंकेलिये अन्नभी परंपरासे धर्मका कारण पड़ता है अन्नसे जीवोंके शरीरकी स्थिति रहती है ॥ १३७-१३९ ॥ अतः इस भरतक्षेत्रमें सच्चे मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति स्थित रखनेकेलिये अल्पशक्तिके धारक मनुष्योंकेलिये मुझे निर्दोष आहार ग्रहण करनेकी विधि दिखला देनी चाहिये ॥ १४० ॥ इसप्रकार विचारकर स्वयं क्षुधा आदिके जीतनेमें समर्थ होनेपर भी भगवानने अन्य मनुष्योंके हितार्थ आहार ग्रहण करनेका निश्चय करलिया ॥ १४१ ॥ छै मासपर्यंत उपवासके वाद भगवानने अपना प्रतिमाके समान निश्चल आसन संकोचा एवं समस्त पृथ्वीको अपने चरण विन्याससे पल्लवित करते हुये आहारकेलिये चलदिये ॥ १४२ ॥ केवलज्ञानपर्यंत मौनावलंबी, विशाल भुजाओंके धारक, भगवानने मार्गमें न वहुत जल्दी न बहुत धीरे सावधानीसे गमन किया ॥ १४३ ॥ मध्याह्न समयमें पुर गांव और अनेक घरोंमें प्रजाको दर्शन देतेहुये चांद्री (निर्दोष) चर्या आचरते हुये भगवान इधर उधर पृथ्वीपर विहार करने लगे ॥ १४४ ॥ आहारार्थ भगवानको पृथ्वीपर विहार करते देख वहुतसी प्रजा उनके सन्मुख आई और जिसप्रकार नवीन उदित चंद्रमाके वार वार देखनेपर भी तृप्ति नहि होती उसीप्रकार ऋषभजिनचंद्रको बार वार देखनेपर भी उसै तृप्ति न हो सकी ॥ १४५ ॥ भगवानको देख अनेक लोग ऐंसा विचार करने लगे—

देखो! यह भगवान नही है श्वेतभानु है तारा और चंद्रमंडलको छोड़कर राहु न ग्रसले इस शंकासे पृथ्वीमंडलपर आगया है ॥ १४६ ॥ अथवा पहाड मंदिर और वृक्षोंकी छायास्वरूप अंधकार दूर करनेकेलिये यह कोई दूसरा ही सूर्य पृथ्वीपर अवतीर्ण हुआ है ॥ १४७ ॥ अहा! इसकी कांति अद्वितीय है, दीप्ति भी अनुपम है, शीलका यह विशाल पर्वत है, अनेक गुणोंका भंडार है, महान है, अतिशय रूपवान है, परम लावण्यका खजाना है, अतिरमणीय है और परमधीर गंभीर है ॥ १४८-१४९ ॥ अरे, भाइयो यहां आओ इसे देखकर अपने नेत्रोंको सफल करो यद्यपि यह दिगंबर है तथापि अतिशय रमणीय मालूम पडता है ॥ १५० ॥ इसप्रकार चारोओर मनुष्योंका सघन कोलाहल होने लगा समस्त नर नारी अतिशय विस्मित हो भगवानके दर्शनार्थ दोड़ने लगे ॥ १५१ ॥ कोई २ लोग भगवानको नंगा देख उन्हैं चित्रविचित्र वस्त्र और भूषण देने लगे अनेकोंने दिव्य सुगंधित मालायें भेट कीं ॥ १५२ ॥ भगवानके परमभक्त बहुतसे मनुष्य सुंदर घोड़े विशाल हाथी और उत्तमोत्तम रथ शीघ्र सजाकर उन्हैं भैंट करने लगे ॥ १५३ ॥ उससमय लोगोंने न किसीको आहार देते देखा था और न सुना था इसलिये भगवानको आहार देनेका किसीको भी ज्ञान न था-उससमय किसीने उन्हैं आहार दान न दिया ॥ १५४ ॥ जिसप्रकार सूर्य लोगोंको प्रतिबोध देनेके लिये सदा भ्रमण करता रहता है तथापि उसै भ्रमणसे खेद नहि होता उसीप्रकार भगवान भी लोगोंको प्रतिबोध देनेकेलिये प्रतिदिन इधर उधर गमन करते थे तथापि भ्रमणसे उन्हैं रंचमात्र भी खेद नहिं मालूम पड़ता था ॥ १५५ ॥ इसप्रकार जिनको अल्पसी खेद नही है एवं प्रजा जिनकी अतिशय पूजा करती है ऐसे भगवानने छै मासपर्यंत आहारार्थ पृथ्वीपर भ्रमण किया ॥ १५६ ॥ कदाचित् विहार करते करते भगवांन आहारकी प्रवृत्ति बतलानेकेलिये ही मानों अनेक दान (मद) सहित हाथियोंसे व्याप्त हस्तिनागपुर आये ॥ १५७ ॥ उससमय हस्तिनागपुरमें राजा सोमप्रभ और श्रेयान् राज्य करते थे उसी रात्रिको उन दोनों भाइयोंको क्रमसे चंद्रमा इंद्रकी-ध्वजा सुमेरुपर्वत बिजली कल्पवृक्ष रत्नद्वीप विमान और पुरुषोत्तम भगवान ऋषभदेव ये आठ पदार्थ स्वप्नमें दीखपड़े ॥ १५८-१५९ ॥ प्रातः कालकी नित्यक्रिया समाप्त कर वे दोनों भाई सभामंडपमें आये एवं अनेक विद्वानोंके साथ रात्रिमें देखें हुये स्वप्नोंकी कथा बड़े आश्चर्यसे करने लगे ॥१६०॥ उन्होंने स्वप्नमें देखे हुये चंद्रमाका फल तो यह निश्चय किया कि कमलवनको प्रकाश करनेवाले कुमुदबंधु सूर्यके समान समस्त जगतको आनंद देनेवाले अनुपम प्रभाके धारक आज किसी परमप्रिय बंधुकी प्राप्ति होगी ॥१६१॥ इंद्रध्वजाके देखनेसे वह परमयशस्वी होगा सुमेरुपर्वतके देखनेसे सुवर्णमयी कायवाला होगा कल्पवृक्ष देखनेसे समस्तलोककी अभिलाषाओंका पूर्ण

करनेवाला होगा विजलीके देखनेसे क्षणभर शरीर दिखाकर चला जायगा (विजलीका स्वप्न मुनिराजकी प्राप्ति सूचित करता है क्योंकि मुनिराजभी थोड़ी देर शरीर दिखाकर वनको चले जाते हैं) ॥ १६२ ॥ रत्नद्वीपके देखनेसे वह अतिशय धर्मात्मा होगा विमानके देखनेसे स्वर्गसे मनुष्य भवमें आया होगा और ऋषभदेवके देखनेसे साक्षात् वे ही आवेंगे ऐसा जान पड़ता है ॥ १६३ ॥ आज राजभवनकी और नगरकी अनुपम शोभा दीखती है दिशायें अतिशय निर्मल मालूम पड़ती हैं इसलिये इन चिन्होंसे पूर्ण विश्वास है आज अवश्य कल्याण होगा—भगवान ऋषभ देव नियमसे आवेंगे ॥१६४॥ इसप्रकार समस्त स्वप्नोंका फल निश्चयकर भीतर बाहर सब स्थानोंपर समझदार मनुष्योंको विठाकर भगवान जिनेंद्रकी पवित्र कथा करते हुये वे दोनों भाई बैठे थे कि दुपहरके समय बड़े जोरसे शंखनाद हुआ सो उससे यह जान पड़ा कि मानो यह भगवान जिनेंद्रका आगमनही निवेदन कर रहा है ॥ १६५–१६६ ॥ उससमय उन दोनों भाइयोंने स्नान किया परिवारने उनके लिये दिव्य मनोहर आहारसे युक्त भोजनकी सामग्री थाल आदि सजा दिये ॥ १६७ ॥ ये दोनों भाई मणिमयी चौकीपर भोजनार्थ वैठते ही जाते थे कि इतनेमें सिद्धार्थ नामका द्वारपाल उनके समीप आया और भगवानका आगमन इसप्रकार सूचित करने लगा ॥ १६८ ॥

"प्रभो! जिसने वैराग्यके लिये समुद्रपर्यंत पृथ्वीका त्याग करदिया तपकेलिये वनजाते समय जिसकी पालकीको बड़े २ देव और बज्रधर आदि राजाओंने वहन किया ॥ १६९ ॥ जिस तपको कच्छ सुकच्छ सरीखे बलवान राजा भी न कर सके परीषह न सहसकनेसे भ्रष्ट होगये ऐसी भयंकर तपरूपी धुराका जो धारण करनेवाला है ॥ १७० ॥ जिसकी कथारूपी अमृतसे तृप्त होकर आपको आदिलेकर बड़े २ विद्वान आहार ग्रहण करने तककी भी अभिलाषा नहिं करते—पंडितोंकी गोष्ठीमें सदा उसकी चरचा हुआ करती है ॥ १७१ ॥ ऐसा तीन जगतका पति भगवान ऋषभदेव हमारे पाहुना बनकर आया है क्षमा मित्रता और तपोलक्ष्मी उसके साथ हैं ॥ १७२ ॥ इसभगवानने उत्तरकी ओरसे नगरमें प्रवेश किया है जूरा प्रमाण जमीन शोधकर ईर्यासमितिसे जमीनपर विहार करता है और चांद्री चर्याका आचरण करनेवाला है ॥ १७३ ॥ जगह जगह विस्मित हो लोग उसके चरणोंमें अर्घ देते हैं उसकी स्तुति भक्ति पूर्वक वंदना करते हैं ॥ १७४ ॥ जिसप्रकार चंद्रमा घर घर अपनी कांतिका प्रसार करता है उसीप्रकार यह जिनेंद्ररूपी चंद्रमा भी विहार करता करता समस्त घरोंको प्रकाशमान करता है और अब यह नाथ हमारे रणवांस के आंगनमें आगया है।" द्वारपाल सिद्धार्थके ऐसे वचन सुन राजा सोमप्रभ और श्रेयांसको परम आनंद हुआ वे दोनो भाई तत्काल उठ खड़े हुये और हाथ जोड़कर भगवान ऋषभदेवके सन्मुख

चलदिये ॥ १७५–१७६ ॥ एवं उनके पास जाकर "प्रभो! आइये हमें आज्ञा दीजिये" आदि वचन कहने लगे और जिसप्रकार सूर्य चंद्रमा मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा देते हैं उसीतरह दोनों राजा सुवर्णकाय भगवानकी प्रदक्षिणा करने लगे ॥१७७॥ उन्होंने भगवानके चरणोंमें गिरकर उनका कुशल और आनेका कारण पूछा भगवान उससमय मौनावलंबी थे इसलिये जब उन्होंने कुछ उत्तर न दिया तो वे उनके सामने खडे होकर उनके मौनीपनेका कारण विचारने लगे ॥१७८॥ राजा सोमप्रभकी पटरानी लक्ष्मीमती भी अनेक देवियोंके साथ भगवानकी प्रदक्षिणा करने लगी उससमय वह ऐसी जान पड़ती थी मानों अनेक ताराओंसे शोभित चंद्रकला मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा कररही हो ॥१७९॥ राजा श्रेयांस भगवानको टकटकी बांधकर देखने लगा और अपने मनमें विचारने लगा कि कहीं पहिले मैंने अवश्य ऐसा रूप देखा है ॥१८०॥ अत्यंत देदीप्यमान होनेपर भी अतिशय शांत भगवानके शरीरको देख उसै तत्काल जातिस्मरण होगया— उसने अपने और भगवानके दशभवोंका समस्त वृत्तांत जानलिया एवं उनको अपने पूर्व दशभवोंका पति जान चरणोंमें गिरकर मूर्छित होगया ॥ १८१ ॥ मूर्छित होनेपर भी राजा श्रेयांसने अपने शिरके कोमल केशोंसे भगवानके चरण स्वच्छ करदिये हर्षसे निकलती हुई गरम गरम अश्रुधारासे उनके चरणोंका प्रक्षाल किया जिससे कि मार्ग की सब थकावट दूर होगई ॥ १८२ ॥ उसै भगवानके दर्शनसे शीघ्रही यह स्मरण हो आया कि हमने रानी श्रीमती और राजा वज्रजंघवाले पूर्वभवमें चारण ऋद्धिके धारक अपने पुत्रोंको आहार दान दिया था ॥ १८३ ॥ इसलिये वह तत्काल हे भगवन्! तिष्ठ तिष्ठ ऐसा कहकर बड़े आदरसे उन्हैं भीतर मंदिरमें लेगया उन्हैं अतिशय मनोहर उच्च आसनपर विठाया और उनके चरण कमलोंका प्रक्षाल पूजन किया ॥ १८४ ॥ जिससमय भगवानके चरणोंकी वह पूजन कर चुका उससमय मन वचन कायसे भक्तिपूर्वक उन्हैं नमस्कार किया ॥ १८५ ॥ और दानविधिका भले प्रकार जानकार होनेसे उसका स्वयं प्रचार करनेवाला, श्रद्धा तुष्टि आदि गुणोंसे युक्त, पात्रके संपूर्ण लक्षणोंसे शोभित भगवानको आहार देनेका इच्छुक, राजा श्रेयांस इक्षुरससे पूर्ण पात्रको हाथमें उठाकर इसप्रकार निवेदन करने लगा ॥ १८६ ॥

"प्रभो! आहार शुद्ध है सोलह प्रकारके उद्गम दोष, सोलह प्रकारके उत्पाद दोष, दशप्रकारके एषणा दोष, एवं धूम अंगार प्रमाण और संयोजन इन छ्यालीस दोषोंसे रहित है दाताके दोषोंसेभी रहित है स्वामिन् यह रस प्रासुक है आप इसे ग्रहण कीजिये" राजा श्रेयांसकी ऐसी विनम्र प्रार्थना सुन विशुद्धात्मा भगवान ऋषभदेवने दोनों चरण बराबर रख खड़े होकर चारित्रकी वृद्धिकेलिये पाणिपात्रमें आहार लिया एवं लोगोंको अपनी चेष्टासे मुनिके आहारकी विधि वतलाई। राजा श्रेयांसको बड़े पुण्यके उदय

से भगवान जिनेंद्र पात्र मिले इसलिये उससमय पंचाश्चर्य हुये देवगण आकाशमें धन्य यह दान धन्य यह पात्र धन्य यह क्रम इत्यादि ध्वनि करने लगे। मेघके समान उत्ताल शब्द करनेवाली, दानतीर्थकी उत्पत्तिकी घोषणा करनेवाली दुंदुभी बजने लगी। चारो ओर सुगंधित पवन बहने लगा सो ऐसा जान पड़ता था मानो उससमय राजा श्रेयांसका दान यश समस्त संसारमें फैल गया है उससे दिशारूपी स्त्रियोंके उदर भर गये हैं इसलिये सुगंधित पवनके व्याजसे ये श्वांस ले रही हैं ॥१८७–१९२॥ उससमय आकाशसे सुमन (पुष्प) वर्षा होने लगी सो उससे ऐसा जान पड़ता था मानों राजा श्रेयांसके पवित्रमन (सुमन) का व्यापार आकाशके भीतर नहीं समासका है इसलिये वह सुमनों (पुष्पों) के बहाने बाहिर निकल रहा है ॥ १९३॥ पृथ्वीपर रत्नवर्षा होने लगी सो उससे यह मालूम पड़ने लगा कि राजा श्रेयांसने भगवानके हाथमें इक्षुधाराका निक्षेपण किया था इसलिये उससे ईर्षाकर आकाशसे रत्नधारा वर्षी है ॥ १९४ ॥ इसप्रकार अनेक प्रकारसे पूजित धर्मतीर्थके कर्ता भगवान ऋषभदेव तो तपकी वृद्धिके लिये वनमें विहार करगये और दानतीर्थके कर्ता राजा श्रेयांसका देवोंने अभिषेक किया और भलेप्रकार पूजनकी ॥ १९५ ॥ राजा भरत आदिने भी देवोंसे दान और दानके फलकी घोषणा सुनी वे शीघ्रही राजा श्रेयांसके पास आये उनकी पूजाकी एवं दानका फल प्रत्यक्ष देखकर बड़ी श्रद्धा से राजा श्रेयांससे पूर्वजन्मके इतिहासके साथ २ दानधर्मकी विधि सुननेकी अभिलाषा प्रकटकी ॥ १९६–१९७॥ उनकी ऐसी अभिलाषा देख राजा श्रेयांस कहने लगे—"जिससमय मुनिराज घरपर आवें उससमय सबसे पहले स्वामिन्! तिष्ठ तिष्ठ ऐसे वचन कहकर उनका पडिगाहन करना चाहिये १ उसके बाद उनको उच्च आसनपर विराजमान करै २ चरणोंका प्रक्षालन करै ३ पूजाकरै ४ स्तुति करै ५ मनकी शुद्धि ६ वचनकी शुद्धि ७ कायकी शुद्धि ८ और आहारकी शुद्धि ९ रक्खे इसको नवधा भक्ति कहते हैं इस नवधा भक्तिसे दान देनेपर परमपुण्यकी प्राप्ति होती है इस पुण्यकी प्राप्तिसे दाताको नानाप्रकारके कल्याणोंका लाभ होता है और अंतमें मोक्षसुख भी मिलता है" ॥ १९८–२००॥ राजा श्रेयांसके मुखसे दानधर्मका तात्पर्य समझकर राजा भरत आदिका चित्त भी दानधर्मकी ओर झुका एवं राजा श्रेयांसके अनेक गुणानुवाद कर वे सानंद अपने २ स्थानोंपर चलेगये ॥ २०१ ॥

भगवान आदीश्वर एकहजार वर्षतक तो चारज्ञानके धारक चतुर्मुख बने रहे और मोक्षार्थी जीवोंके प्रतिबोधनेकेलिये नाना प्रकारके दुष्कर तप तपते रहै ॥ २०२ ॥ उससमय भगवानकी जटा अधिक बढगई थीं इसलिये वे अनेक शाखाओंसे व्याप्त वटवृक्षके समान सुंदर जान पड़ते थे ॥ २०३ ॥ कदाचित् विहार करते २ भगवान ताल-

१ रत्नवर्षा, कल्पवृक्षोंके पुष्पोंकी वर्षा, सुगंधजलकी वर्षा, शीतल मंदसुगंध पवन, और धन्य धन्य वचन।

पुर नगरके पास पहुंचे उस नगरका स्वामी राजा भरतका छोटा भाई वृषभसेन था। ॥ २०४ ॥ तालपुरके समीप शकटास्य नामका एक विशाल उद्यान था अतिशय सावधान भगवानने उसी उपवनके किसी अतिशय उन्नत वट वृक्षके नीचे किसी उत्तम शिलापर पर्यंक आसन माढ़कर ध्यान धरलिया अपनी चमचमाती हुई शुक्लध्यान रूपी तलवारसे समस्त इंद्रियां वश करलीं। क्षपकश्रेणिरूप रणभूमिमें प्रवेशकर उत्साहरूपी बलवान हाथीपर सवार हो शीघ्रही मोहरूपी भयंकर राजाको मार भगाया ॥ २०५–२०७ ॥ उसीसमय भगवानने ज्ञानावरण दर्शनावरण और अंतराय रूपी शत्रुओंका भी एक साथ विध्वंस किया। मोहनीय ज्ञानावरण दर्शनावरण और अंतराय इन चार घातियां कर्मोंके नाश होजानेपर उन्हैं केवल ज्ञानकी प्राप्ति होगई और उससे वे समस्त द्रव्य और पर्यायोंसे युक्त लोक और अलोकको स्पष्ट रीतिसे जानने देखने लगे ॥२०८–२०९ ॥ जन्म आदि कल्याणोंके समान इंद्रसहित चारो निकायोंके देव भगवानके पास आये उन्हैं भक्तिपूर्वक नमस्कार किया एवं कर्मोंके जीतनेसे उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ २१० ॥ उससमय उत्पन्नहुये अष्ट प्रातिहार्य अनुपम चौंतीस अतिशय और अनंत चतुष्टयोंसे भूषित भगवान अतिशय मनोहर जान पड़ते थे ॥ २११ ॥

राजा भरतने उससमय अपने पुत्रकी उत्पत्ति चक्ररत्नकी प्राप्ति और भगवानको केवल ज्ञानका लाभ ये तीन शुभ समाचार सुने परंतु वे सबसे पहिले कुरुवंशीय भोजवंशीय आदि अनेक राजा और चतुरंग सेनासे वेष्ठित हो भगवान आदीश्वरकी वंदनाकेलिये गये भगवानके समवशरणमें जाकर उन्होंने अर्हत भगवान ऋषभदेवकी भक्तिभावसे पूजा और स्तुति की ॥ २१२–२१३ ॥ तालपुरके स्वामी राजा वृषभसेन भी अनेक राजाओंसे मंडित हो भगवान ऋषभदेवके समवसरणमें आये और संयम धारण कर भगवानके प्रथम गणधर हो गये ॥ २१४ ॥ हस्तिनागपुरके स्वामी राजा श्रेयांस और सोमप्रभने रानी लक्ष्मीमतीके पुत्र जयकुमारको राज्य देदिया एवं राजा जयकुमारके अपने भाइयोंके साथ राजकरने पर वे दोनो भाई दीक्षा धारणकर मुनि होगये ॥ २१५ ॥ अतिशय धीर भगवान ऋषभदेवकी पुत्री ब्राह्मी और सुंदरीने अनेक स्त्रियोंके साथ दीक्षा धारणकी और समस्त आर्यिकाओंकी अग्रेसरी होगई ॥२१६॥ भगवान ऋषभदेवकी उससमयकी अर्हत विभूति देखकर बहुतसे जीवोंने यथायोग्य सम्यक्त्व सहित व्रत धारण किये ॥ २१७ ॥ जिन स्त्री पुरुषोंने मुनि और आर्यिकाके व्रत धारण किये वे उससमय अपने पद्मराग मणिके समान रक्तहस्तोंसे इंद्रनील मणिसरीखे केशोंका उपाड़ते अतिशय मनोहर जान पड़ते थे ॥ २१८ ॥ उससमय दिगंबर व्रतको धारण करनेवाले भव्यजीवोंकी अतिशय कोमल स्निग्ध एवं सघन केशोंके समान शरीरमें जरासी अभिलाषा न हुई ॥२१९॥ भगवानके समवसरणमें मुनि आर्यिका श्रावक

श्राविका यह चार प्रकारका संघ मौजूद था चारो निकायके देव थे भगवानके समवसरणकी रचना बारह योजन पर्यंत कीगई थी एवं समवसरणके मंडपमें विराजमान धर्मके चक्रवर्ती भगवान ऋषभ देवको अतिशय प्रभावी शासनदेवता और चक्रवर्ती आदि समस्त जीवोंने भक्ति पूर्वक नमस्कार किया॥२२०—२२१॥ भगवानके समवसरणमें बड़े २ बारह कोठे थे उनमें भगवानकी दाहिनी ओर पहिले कोठेमें तो मुनिराज विराजमान थे दूसरे कोठेमें कल्पवासी देवियां, तीसरेमें आर्यिका श्राविका और अनेक स्त्रियां, चौथेमें ज्योतिषी देवोंकी देवियां, पांचवीसभामें व्यंतर देवोंकी, स्त्रियां छठीमें भवनवासी देवोंकी देवांगना, सातवींमें भवनवासी देव, आठवींमें व्यंतर देव, नवमीं सभामें ज्योतिषी देव, दशवीं सभामें कल्पवासी देव, ग्यारहवींमें चक्रवर्ती आदि मनुष्य और बारहवीं सभामें तिर्यंच बैठे॥ २२२॥ इसप्रकार जिससमय ये समस्त जीव भगवानके उपदेश सुननेकी अभिलाषासे जुदे जुदे अपने अपने स्थानोंपर बैठ गये उससमय गणधरोमें मुख्य गणधर भगवान वृषभसेनने समस्त पदार्थोंको प्रकाश करनेवाले भगवान ऋषभदेवसे प्रश्न किया एवं जिसप्रकार सूर्य अपनी किरणोंसे समस्त अंधकारको दूर करता है उसीप्रकार जिनेंद्रने भी अपनी विना ओठोंके मिले ही उत्पन्नहोनेवाली दिव्यध्वनिसे समस्त जीवोंका मोहांधकार दूर करना प्रारंभ किया॥ २२३॥

इसप्रकार श्रीजिनसेनाचार्यनिर्मित भगवाननेमिनाथके चरित्रको वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें "भगवान ऋषभदेवको केवलज्ञानकी उत्पत्ति" वर्णन करनेवाला नवमा सर्ग समाप्त हुआ।

दशम सर्ग।

जिस समय भगवान अपनी दिव्यध्वनिसे तीनोंलोकके जीवोंको धर्मका उपदेश देने लगे उससमय ऐसा जान पड़ता था मानों एकहजार वर्षपर्यंत रक्खा हुआ मौन अब उन्होंने दृढ़तासे बाहिर प्रकाशित किया है॥ १॥ उससमय जीवोंको संसारसे पार करनेवाले धर्मतीर्थके उपदेष्टा स्वयं भगवान आदीश्वर थे इसलिये अतिशय गंभीर भी उपदेश खुलासा रीतिसे जीवोंकी समझमें आजाता था॥ २॥ जिसप्रकार अतिशय देदीप्यमान सूर्यके प्रकाशमान रहते पदार्थ साफ साफ दिखाई देते हैं और अंधकारका नाम तक नहिं रहता उसीप्रकार अपने दिव्यवचनसे प्रकाशमान भगवानने जिससमय पदार्थोंका स्वरूप बतलाया न मालूम लोगोंका मिथ्याज्ञानरूपी अंधकार कहां भग गया॥ ३॥ वे इसप्रकार उपदेश देने लगे—

समस्तजीवोंको बड़े यत्नसे धर्मका आराधन करना चाहिये क्योंकि यह धर्म समस्त जीवोंको सुख देनेवाला है॥ ४॥ चार प्रकारके देवोंमें और मनुष्यमें जो कुछ इंद्रिय जन्यसुखकी मात्रा देखनेमें आती है वह इसी धर्मकी कृपासे है॥ ५॥ समस्त कर्मों-

के क्षय होनेपर जो आत्माधीन निराकुलतारूप अविनाशी मोक्षसुखकी प्राप्ति होती है वह भी इसी धर्मकी कृपासे होती है ॥ ६ ॥ धर्मके अहिंसा १ सत्य २ अचौर्य ३ ब्रह्मचर्य ४ और अपरिग्रह ५ ये पांच भेद हैं जब ये सूक्ष्मंव्रत अर्थात् महाव्रत होते हैं उससमय मुनिके धर्म कहलाते हैं और जब स्थूलव्रत अर्थात् अणुव्रत स्वरूप होते हैं तब श्रावकधर्म कहे जाते हैं ॥ ७ ॥ दान पूजा तप और शील यह चार प्रकारका धर्म गृहस्थका शारीरिक धर्म है-इसै सदा शरीरसे करना चाहिये ॥ ८ ॥ सम्यग्दर्शनसे युक्त श्रावकका धर्म अतिशय ऋद्धिधारी देवोंकी विभूति प्रदान करता है और यतिधर्म-के सेवन करनेसे साक्षात् मोक्षसुख मिलता है ॥ ९ ॥ मोक्षाभिलाषी भव्यजीवोंको चाहिये कि वे स्वर्ग और मोक्षके सुखको प्रदान करनेवाले समीचीन धर्मका स्वरूप श्रुतज्ञानसे पहिचानें ॥ १० ॥ आचार आदि बारह अंगोंसे भूषित श्रुतज्ञानके दो भेद हैं एक द्रव्यश्रुतज्ञान[1] दूसरा भावश्रुतज्ञान[2]। आप्त द्वारा वर्णित ही श्रुतज्ञानका अर्थ यथार्थ है और आप्त-क्षुधा आदि दोष और कर्म के आवरणोंसे रहित माना गया है ॥ ११ ॥ श्रुतज्ञानके-पर्याय १ पर्यायसमास २ अक्षर ३ अक्षरसमास ४ पद ५ पदसमास ६ संघात ७ संघातसमास ८ प्रतिपत्ति ९ प्रतिपत्तिसमास १० अनुयोग ११ अनुयोग-समास १२ प्राभृतप्राभृत १३ प्राभृतप्राभृतसमास १४ प्राभृत १५ प्राभृतसमास १६ वस्तु १७ वस्तुसमास १८ पूर्व १९ पूर्वसमास २० ये बीस भेद हैं ॥१२-१३॥ श्रुत-ज्ञानका भेद एक ह्रस्व अक्षरस्वरूप) अक्षरका अनंतवां भाग स्वरूप) भी है और अनंतानंत भेदयुक्त जो परमाणु उनके स्कंध स्वरूप भी है ॥१४॥ श्रुतज्ञानके अनंता-नंत भाग करनेपर एक भाग पर्याय नामक श्रुतज्ञान होता है ॥ १५ ॥ यह पर्याय श्रु-तज्ञान अलब्धपर्याप्तक सूक्ष्मनिगोदिया जीवके होता है और इसके ऊपर आवरण नहिं रहता ॥ १६ ॥ जीव मात्रके इतने ज्ञानपर आवरण नहिं रहता यदि इतना सूक्ष्म ज्ञान भी आवृत हो जायगा तो निगोदियामें जीवका लक्षण ही न घट सकेगा क्योंकि जीवका लक्षण उपयोग है और यहांपर उपयोगका अभाव हो चुका ॥ १७ ॥ जीव-की उपयोग शक्तिका कदापि नाश नहिं होता यह बात युक्ति सिद्ध है क्योंकि मेघपटलसे आवृत सूर्य चंद्रमाकी प्रभाके समान कर्मसे आवृत होनेपर भी वह कुछ न कुछ मोजूद रहती ही है ॥ १८ ॥ जब पर्यायसे पर्यायका मिलाप हो जाता है तो उसै पर्यायसमास नामक श्रुतज्ञानका भेद कहते हैं एवं इसका आवरण हो सकता है ॥१९॥ यह पर्याय-समास अनंतगुणी असंख्यातगुणी संख्यातगुणी हानि और संख्यातगुणी असंख्या-तगुणी अनंतगुणीवृद्धिसे युक्त है। अर्थात् सूक्ष्मनिगोदियाजीवके अक्षरके अनंतवें भा-

१-अक्षररूप श्रुतज्ञानको द्रव्यश्रुतज्ञान कहते हैं। २-और अनुभव [ज्ञान] रूप श्रुतज्ञानको भाव श्रुतज्ञान कहते हैं।

ग मात्र ज्ञान रहता है उसके दो अनंतवे भाग तीन अनंतवेंभाग असंख्यात अनंतवें भाग आदि ज्ञान बढ़जाय उसै तो संख्यात वा असंख्यातगुणी आदि वृद्धि कहते हैं और अक्षरसे नीचे अनंतभागं आदि कम होता जाय उसै अनंतभाग आदि हानि कहते हैं ॥ २० ॥ जब तक अक्षर पूर्ण नहीं होता तब तक यह पर्यायसमास रहता है पश्चात् अक्षर, फिर एक २ अक्षरकी वृद्धि होनेपर जबतक पद नहिं कहलाता तब तक उसै अक्षरसमास कहते हैं ॥ २१ ॥ पदरूप श्रुतज्ञानके तीन भेद हैं अर्थपद, प्रमाणपद, और मध्यमपद ॥ २२ ॥ उनमें एक, दो, तीन, चार, पांच, छै, सात अक्षरतक अर्थपद कहलाता है । आठ अक्षरस्वरूप प्रमाणपद होता है और मध्यमपदमें सोलहसौ चौंतीस करोड़ तिरासीलाख सात हजार आठसौ अठासी अक्षर हैं ॥ २३–२४ ॥ एवं ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंकी संख्या इसी मध्यमपदसे होती है ॥ २५ ॥ एक एक अक्षरकी वृद्धिकर पदसमाससे लेकर पूर्वसमास पर्यंत आचारांग सूत्रकृतांग आदि द्वादशांगका वर्णन है ॥ २६ ॥ उनमें प्रथम अंग आचारांग है उसमें साधुओंके आचारका विस्तारसे वर्णन है और इसकी पदसंख्या अठारह हजार है ॥ २७ ॥ दूसरा सूत्रकृतांग है इसमें स्वसमय परसमयका विशेष वर्णन है और समें छत्तीस हजार पद हैं ॥ २८ ॥ तीसरा स्थानांग है इसकी पदसंख्या व्यालीस हजार है और इसमें जीवके एकको आदि लेकर दशपर्यंत गणितका वर्णन है । अर्थात् एक केवलज्ञान, एक मोक्ष एक आकाश एक धर्मद्रव्य एक अधर्मद्रव्य, इत्यादि । दो दर्शन दो ज्ञान दो राग द्वेष इत्यादि, तीन सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यकचारित्र रूपरत्न, माया मिथ्या निदान तीन शल्य, जन्म जरा मरण तीन दोष इत्यादि, चार गति चार अनंतचतुष्टय चार कषाय इत्यादि, पांच महाव्रत पांच अस्तिकाय पांच ज्ञान इत्यादि, षट् द्रव्य षट् लेश्या षट् आवश्यक इत्यादि, सात तत्त्व सात भय सात व्यसन सात नरक इत्यादि, आठ कर्म आठ गुण आठ ऋद्धियां इत्यादि, नौ पदार्थ नौ नय नव प्रकारका शील इत्यादि, दश धर्म दश परिग्रह दश दिशा इत्यादि गणितका वर्णन है ॥ २९ ॥ चौथा समवायांग है इसका पद प्रमाण एकलाख चौंसठ हजार है और इसमें द्रव्य आदिकी द्रव्य क्षेत्र आदिसे समानताका वर्णन किया गया है अर्थात् धर्म अधर्म एकजीव और लोकाकाश इनके प्रदेश बराबर हैं यह द्रव्यसे समानता है । सिद्ध क्षेत्र मुक्तिशिला, पहिले नरकका पहिला सीमंतक पाथड़ा पहिले स्वर्गका ऋजुविमान और नरलोक (ढाईद्वीप) ये सब क्षेत्रसे समान हैं अर्थात् पैंतालीस पैंतालीस लाख योजन प्रमाण हैं। जितना दशकोड़ाकोडी काल उत्सार्पिणीका है उतना ही काल अवसर्पिणीका है यह कालसे समानता है । जैसी अनंतता केवलज्ञानकी है वैसीही केवल दर्शनकी है यह भाव (स्वरूप) से समानता है ॥ ३०–३३ ॥ पांचवां अंग व्याख्याप्रज्ञप्ति है इसमें पदोंका प्रमाण दो लाख अट्ठा-

ईस हजार है और इसमें सन्मार्गगामी (गणधरादि) शिष्यों द्वारा केवलीसे किये गये अनेक प्रश्नोंका विस्तारसे वर्णन है ॥ ३४–३५ ॥ छठा अंग ज्ञातृकथा नामका है इसमें पदसंख्या पांचलाख छप्पन हजार है और इसमें धर्मकी कथाका विशेष वर्णन है ॥ ३६ ॥ सातवां अंग उपासकाध्ययन है इसमें ग्यारहलाख सत्तर हजार पद हैं और श्रावक एवं मुनियोंके आचारका विशेष वर्णन किया गया है ॥ ३७ ॥ आठवां अंग अंतकृद्दश है इसमें पदसंख्या तेईसलाख अट्ठाईस हजार है और दश प्रकारके उपसर्ग जीतनेवाले एवं हरएक तीर्थकरके समयमें दश दश होनेवाले अंतकृत्केवलियोंका[1] वर्णन है ॥ ३८–३९ ॥ नवमा अनुत्तरोपपादक दशांग है इसके पदोंका प्रमाण वानवे लाख चंवालीस हजार है और इसमें हरएक तीर्थकरके समयमें दश दश महामुनि दश प्रकारका उपसर्ग जीतकर पंच अनुत्तर विमानोंमें जाते हैं उनका वर्णन है ॥ ४०–४१ ॥ पुरुष स्त्री नपुंसक तीन प्रकारके मनुष्य पुरुष स्त्री नपुंसक तीन प्रकार के तिर्यंच, स्त्री पुरुष दो प्रकारके देव इनके द्वारा किये गये आठ उपसर्ग शरीरका उपसर्ग एवं भीत पत्थर आदिका पड़जाना उपसर्ग ये दश उपसर्ग हैं ॥ ४२ ॥ दशवें अंगका नाम प्रश्नव्याकरण है इसमें आक्षेपिणी[2] विक्षेपिणी[3] संवेदिनी[4] और निर्वेदनी[5] चार कथाओंका वर्णन है और इसकी पदसंख्या तिरानवे लाख सोलहहजार है ॥ ४३ ॥ ग्यारहवे अंगका नाम विपाकसूत्र है इसमें कर्मोंके विपाकका[6] वर्णन है इसमें एककरोड़ चौरासी लाख पद हैं ॥ ४४ ॥ और बारहवां अंग दृष्टिप्रवाद है इसका पदप्रमाण एकसौ आठकरोड़अड़सठ लाख छप्पन हजार पांच है इसमें तीनसौ त्रेसठि मिथ्यादृष्टियोंका वर्णन है ॥ ४५–४६ ॥ मिथ्यादृष्टियोंके तीनसौ त्रेसठ विशेष भेद हैं परंतु मूलभेद तो क्रियावादी अक्रियावादी अज्ञानवादी और विनयवादी ये चार ही हैं इनमें क्रियावादी एकसौ अस्सीप्रकारके हैं अक्रियावादी चौरासी, अज्ञानवादी सड़सठ, और विनयवादी बत्तीस हैं ॥ ४७–४८ ॥ क्रियावादियोंके एकसौ अस्सी भेद इस प्रकार हैं–नियति स्वभाव काल दैव और पौरुष इनका स्वतः परतः नित्य और अनित्य इन चारसे गुणा करनेपर वीस भेद होते हैं और इन वीस भेदोंका नौ पदार्थोंसे गुणा करनेपर एकसौ अस्सी भेद होजाते हैं। कोई क्रियावादी जीवको नियतिसे–स्वतः मानता है कोई परतः, कोई नित्य मानता है और कोई अनित्य। कोई जीवको स्वभावसे स्वतः मानता है किसीका सिद्धांत है जीव स्वभावसे परतः है कोई उसे स्वभावसे नित्य और कोई उसे अनित्य मानता है। कोई जीवको कालसे–स्वतः मानता है कोई

१ जिनका केवलज्ञानकल्याण और मोक्षकल्याण साथ साथ हो उन्हें अंतकृत् केवली कहते हैं। २ धर्मकी स्थापना करनेवाली ३ धर्मका उत्थापन करनेवाली ४ जिनधर्ममें और उसके फलमें अनुराग बढानेवाली ५ वैराग्य बढानेवाली। ६ उदय।

परतः मानता है कोई अनित्य और कोई नित्य। कोई दैवसे—जीवको स्वतः मानता है कोई परतः कोई नित्य मानता है और कोई अनित्य। किसीका सिद्धांत है जीव पौरुषसे स्वतः है कोई कहता है परतः है अनेक कहते हैं पौरुषसे जीव नित्य है और बहुतसे उसे अनित्य मानते हैं इसीप्रकार अजीव आदि पदार्थोंमें भी घटा लेनेसे एकसौ अस्सी भेद होजाते हैं॥ ४९–५१॥

अक्रियवादियोंके चौरासी भेद इसप्रकार हैं—जीवादि सात तत्त्वोंका स्वतः और परतःसे गुणा करनेपर चौदह भेद होते हैं इन चौदहोंका नियति स्वभाव काल आदि पांचोंसे गुणा करनेपर सत्तर और उन्हीं जीव आदि सात तत्त्वोंका पुनः नियति और कालसे गुणा करनेपर चौदह एवं सब मिलकर चौरासी भेद होते हैं। ये मानते हैं—जीवादि पदार्थ नियति स्वभाव आदिसे न स्वतः और न परतः हैं इत्यादि पहिले बताई हुई रीतिसे समझना॥ ५२–५३॥ नौ पदार्थोंका सात भंगोंसे गुणा करनेपर त्रेसठ भेद आज्ञानिक मिथ्यादृष्टिके होते हैं॥ ५४॥ कोई मानता है जीव अस्तित्व स्वरूप है। कोई नास्तित्व स्वरूप, कोई अस्तित्व नास्तित्व स्वरूप, कोई अवक्तव्य स्वरूप, कोई अस्तित्व विशिष्ट अवक्तव्य स्वरूप, कोई नास्तित्व विशिष्ट अवक्तव्य स्वरूप, और कोई अस्तित्व नास्तित्व विशिष्ट अवक्तव्य स्वरूप स्वीकार करता है इसीप्रकार अजीव आदिमें भी घटा लेना चाहिये तथा कोई पदार्थकी उत्पत्ति सत्स्वरूप मानता है कोई असत्स्वरूप कोई उभयस्वरूप कोई अवक्तव्यस्वरूप स्वीकार करता है इसप्रकार उपर्युक्त त्रेसठ भेदमें इन चार भेदोंके मिलानेसे आज्ञानिक मिथ्यादृष्टिके सडसठ भेद होजाते हैं॥ ५५–५८॥ माता १ पिता २ देव ३ नृप ४ जाति ५ बालक ६ वृद्ध ७ तपस्वी ८ इन आठका मन वचन काय और दान इन चारसे गुणा करनेपर वैनयिक मिथ्यादृष्टिके बत्तीस भेद होते हैं। विनय वादियोंका सदा अभिप्राय यह रहता कि माता पिता आदि आठोंका मन वचनकायसे आदर सत्कार करना चाहिये और उन्हें दान देकर संतुष्ट करना चाहिये॥ ५९–६०॥ इसप्रकार समस्त मिथ्यादृष्टियोंका दृष्टिवाद अंगमें सविस्तर वर्णन है और उसके परिकर्म १ सूत्र २ अनुयोग ३ पूर्वगत ४ और चूलिका ५ ये पांच भेद हैं॥ ६१॥ परिकर्मके भी चंद्रप्रज्ञप्ति १ सूर्यप्रज्ञप्ति २ जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति ३ द्वीपसमुद्रप्रज्ञप्ति ४ और व्याख्याप्रज्ञप्ति ५ ये पांच भेद हैं॥ ६२॥ चंद्रप्रज्ञप्तिकी पदसंख्या छत्तीसलाख पांच हजार है और इसमें चंद्रमाकी भोग आदि संपत्तिका वर्णन है॥ ६३॥ सूर्यप्रज्ञप्तिमें पांच लाख तीनहजार पद हैं इसमें सूर्यके स्त्री आदि विभव का कथन है॥ ६४॥ जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिमें तीनलाख पच्चीस पद हैं और इसमें विस्तारसे जंबूद्वीपका वर्णन किया गया है॥ ६५॥ द्वीपसागर प्रज्ञप्तिमें बावनलाख छत्तीस हजार पद हैं इसमें समस्तद्वीप और समुद्रोंका वर्णन है॥ ६६॥ और

पांचवी व्याख्याप्रज्ञप्तिमें चौरासीलाख छत्तीस हजार पद हैं इसमें द्रव्य पुद्गलका अरूपी द्रव्य जीव धर्म अधर्म आदिका संपूर्णतासे वर्णन है और भव्य अभव्य जीवोंके भेद वतलाये गये हैं ॥ ६७–६८ ॥ सूत्रमें (दृष्टिवादके दूसरे भेदमें) अठासी लाख पद हैं सूत्रके अनेक भेद हैं उनमें प्रथम भेदमें वंधके अभावका वर्णन है दूसरेमें श्रुति (केवलीकी दिव्यध्वनि) स्मृति (गणधरोंकी वाणी) पुराण (आचार्योंके वचन) के अर्थका प्रतिपादन है तीसरेमें नियतिका कथन है और चौथेमें अनेक भेदोंकोलिये स्वसमय और परसमयोंका वर्णन है ॥ ६९–७० ॥ दृष्टिवादके तीसरे भेद अनुयोगमें पांच हजार पद हैं और इसमें त्रेसठ शलाका पुरुषोंका सविस्तर वर्णन किया गया है ॥ ७१ ॥ दृष्टिवादका चौथा भेद पूर्वगत है इसके भी उत्पाद आदि चौदह भेद हैं और हर एक पूर्वमें वस्तुओंकी संख्या इसप्रकार है ॥ ७२ ॥

उत्पाद नामक प्रथमपूर्वमें दश वस्तु हैं दूसरे अग्रायणीपूर्वमें चौदह तीसरे वीर्यनुवाद पूर्वमें आठ चौथे अस्तिनास्ति प्रवादपूर्वमें अठारह पांचवें ज्ञानप्रवाद पूर्वमें बारह छठे सत्यप्रवाद पूर्वमें बारह सातवें आत्मप्रवाद पूर्वमें सोलह आठवेंकर्म प्रवादमें वीस नववें प्रत्याख्यान पूर्वमें तीस, दशवे विद्यानुवादपूर्वमें पंद्रह ग्यारहवें कल्याण बादमें दश बारहवें प्राणवायमें दश तेरहवें क्रियाविशालपूर्वमें दश, और चौदहवें त्रिलोकबिंदुसारपूर्वमें दश हैं इसप्रकार सब पूर्वोंमें मिलकर एकसौ पिचानवें वस्तु हैं। और हरएक वस्तुमें वीस वीस प्राभृत (पाहुड) हैं ॥ ७३–७४ ॥ पहिले उत्पादपूर्वमें एक करोड़ पद हैं और उसमें द्रव्योंके उत्पाद व्यय और ध्रौव्य स्वभावोंका विस्तारसे वर्णन किया गया है ॥ ७५ ॥ दूसरे आग्रायणीपूर्वमें छ्यानवे लाख पद हैं इसमें सप्त तत्त्व नव पदार्थ षट् द्रव्य आदिका वर्णन है ॥ ७६ ॥ इस अग्रायणीपूर्वमें चौदह वस्तु हैं और उनके नाम इसप्रकार हैं— पूर्वांत १ अपरांत २ ध्रुव ३ अध्रुव ४ अच्यवनलब्धि ५ अध्रुवसंप्रणधि ६ कल्प ७ अर्थ ८ भैामावय ९ सर्वार्थकल्पक १० निर्वाण ११ अतीतानागत १२ सिद्ध १३ और उपाध्याय १४ ॥ ७७–८० ॥ आग्रायणीपूर्वकी पंचमवस्तु अच्यवनलब्धिमें वीस पाहुड हैं उनमें कर्मप्रकृतिनामक चौथे प्राभृतमें कृति १ वेदना २ स्पर्श ३ कर्म ४ प्रकृति ५ बंधन ६ निबंधन ७ प्रक्रम ८ उपक्रम ९ उदय १० मोक्ष ११ संक्रम १२ लेश्या १३ लेश्याकर्म १४ लेश्यापरिणाम १५ सातासात १६ दीर्घहस्व १७ भवधारण १८ पुद्गलात्मा १९ निधत्तानिधत्तक २० सनिकाचित २१ अनिकाचित २२ कर्मस्थिति २३ और स्कंध २४ ये चौवीस योग द्वार हैं इनमें विषयोंकी कमी वेशी तथा अन्यपूर्वोंके प्राभृत वस्तु और अनुयोग आदिका भेद शास्त्रानुसार समझलेना चाहिये ॥८१-८७॥ तीसरे वीर्यानुमवाद पूर्वमें पदसंख्या सत्तर लाख है और अतिशय पराक्रमी वड़े वड़े सत्पुरुषोंका वर्णन है ॥८८॥ चौथे अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्वमें साठ लाख पद हैं इसमें स्वद्रव्य आदि चतुष्टयकी

अपेक्षा जीव आदि पदार्थ अस्तिस्वरूप हैं और पर द्रव्य आदिकी अपेक्षा नास्ति स्वरूप हैं इत्यादि वर्णन है ॥ ८९ ॥ पांचवे ज्ञानप्रवादपूर्वमें एक कम एक करोड़ पद हैं और इसमें ज्ञानके मतिज्ञान आदि पांच भेदोंका सविस्तर कथन है ॥ ९० ॥ छठे सत्यप्रवाद पूर्वमें एक करोड़ छै पद हैं और इसमें अभ्याख्यानवचन १ कलहवचन २ पैशून्यवचन ३ अवध्यप्रलापवचन ४ रत्युत्पादकवचन ५ अरत्युत्पादकवचन ६ वंचनासूचक वचन ७ निकृतिवचन ८ अप्रणति वचन ९ मोघवचन १० सम्यग्दर्शन वचन ११ और मिथ्यादर्शन वचन १२ इन वारह प्रकारके वचनोंका तथा नामसत्य १ रूपसत्य २ स्थापनासत्य ३ प्रतीतिसत्य ४ संवृतिसत्य ५ संयोजनासत्य ६ जनपदसत्य ७ देशसत्य ८ भावसत्य ९ और समयसत्य १० इन दश प्रकारके सत्योंका वर्णन है ॥९१॥ हिंसा आदिके करनेवाले वा न करनेवालेको करनेका उपदेश देना अभ्याख्यान वचन है, लड़ाई झगड़ा करनेवाले वचन कहना कलहवचन है, दूसरेके दोषोंका पीठ पीछे प्रकट करना पैशून्य वचन है। जिसमें प्रलाप ही प्रलाप हो धर्म अर्थ काम और मोक्षका उपदेशक वचन न हो उसै अवध्यप्रलाप वचन कहते हैं। राग उत्पन्न करनेवाला वचन रत्युत्पादक वचन कहलाता है। क्रोध उत्पन्न करनेवाला वचन अरत्युत्पादक वचन है। जिसके सुननेसे जीवोंकी बुद्धि असन्मार्गकी ओरं झुके उसै वंचना सूचक वचन कहते हैं। कपट परिपूर्ण बोलनेको निकृति वचन कहते हैं अपनेसे गुणादिमें ज्येष्ठ पुरुषके लिये नम्र वचन न कहना अप्रणति वचन है। जिसके प्रभावसे लोग चोरीमें प्रवृत्त होजांय वह मोघ (ष) वचन है। जो जीवोंको समीचीन मार्गकी ओर झुकावे उसे सम्यग्दर्शन वचन कहते हैं। और जो वचन मिथ्यामार्गका उपदेशक हो वह मिथ्यादर्शन वचन है। ये बारह प्रकारके वचन एकेंद्रिय जीवोंके सिवाय द्वींद्रिय आदि जीवोंमें पाये जाते हैं ॥ ९२-९७ ॥ दश प्रकारके सत्योंमें जो व्यवहारकेलिये इंद्र देवदत्त आदि संज्ञा करना है उसै नामसत्य कहते हैं १ वह पदार्थ तो न होवे किंतु उसके रूपकी समानतासे उसको वही माने उसे रूपसत्य कहते हैं जिसप्रकार पुरुषकी तस्वीरको पुरुष कहना २। चाहैं उसका आकार हो या न हो किंतु व्यवहारकेलिये किसी प्रसिद्ध वस्तुकी दूसरी किसी वस्तुमें स्थापना करना स्थापना सत्य है। जिसप्रकार प्रतिमा अथवा चावल आदिको ऋषभ आदि तीर्थंकर मानना ३। औपशमिक आदि पांच भावोंका शास्त्रानुसार व्याख्यान करना प्रतीतिसत्य है ४, अनेक बाजोंके शब्द इकट्ठे होनेपर जिसका शब्द उन्नत हो उसीको प्रधानतासे कहना

१-रूपसत्य और स्थापना सत्यमें इतना अतर है-वह पदार्थ न होकर उसकी असली तस्वीर होनी चाहिये यह तो रूपसत्य है। और चाहै किसीका मिलताऊ आकार हो या न हो दूसरे प्रसिद्ध पदार्थकी दूसरेमें स्थापना करना स्थापना सत्य है।

संवृतिसत्य कहलाता है जिसप्रकार तवला वांसरी नगाडा आदिमें नगाडेका शब्द ५। जिसमें चेतन और अचेतनकी रचनाका विभाग न हो उसै संयोजनासत्य कहते हैं जैसे चक्रव्यूह गरुड़व्यूह आदि अर्थात् सेना चेतन अचेतन समस्त पदार्थोंका समुदाय है उनमें चेतन अचेतनकी विवक्षा न कर चक्राकार रची हुई सेनाको केवल चक्रव्यूह अचेतन कहदेना अथवा गरुडके आकार रची हुई सेनाको केवल चेतन स्वरूप गरुडव्यूह कहदेना इत्यादि ६, जो वाक्य आर्य म्लेच्छ आदि नाना देशोंमें धर्म अर्थ काम और मोक्षका करनेवाला हो उसै जनपदसत्य कहते हैं ७, जो वचन गांवकी रीति नगरकी रीति राजाका धर्म बतलानेवाला हो गण और आश्रमस्थानोंका उपदेशक हो उसै देश-सत्य कहते हैं ८, यद्यपि छद्मस्थ (अल्पज्ञानी) के द्रव्योंका यथार्थ ज्ञान नहिं रहता तथापि भगवान केवलीके वचनसे उसके भावोंमें सत्य असत्यका दृढ़ निश्चय हो जाना भाव सत्य है ९, एवं द्रव्य और पर्यायोंके भेदोंका भलेप्रकार वर्णन करनेवाला जैन आगम ही है अन्य नहीं ऐसा दृढ निश्चय करना समयसत्य है १० ॥ ९८–१०७ ॥ सातवें आत्मप्रवाद पूर्वमें छव्वीस करोड पद हैं इसमें आत्माके धर्म कर्तृत्व भोक्तृत्व नित्यत्व और अनित्यत्व आदिका एवं इनके भी भेद प्रभेदोंका युक्तिपूर्वक सविस्तर निरूपण है ॥ १०८–१०९ ॥ आठवें कर्मप्रवाद पूर्वमें पद संख्या एक करोड़ अस्सी लाख है और इसमें ज्ञानावरण आदि कर्मबंधोंका विशेष वर्णन है ॥ ११० ॥ नवमें प्रत्याख्यानपूर्वमें चौरासी लाख पद हैं इसमें प्रमाण रूप द्रव्यसंवर और अनंतानंतस्व-रूप भावसंवरका व्याख्यान है और यह प्रत्याख्यानपूर्व यति धर्मका बढाने वाला है ॥ १११–११२ ॥ दशवें विद्यानुप्रवाद पूर्वमें पदोंका प्रमाण एक करोड़ दश लाख है इसमें अंगुष्ठ प्रसेन आदि सातसौ लघुविद्या और रोहिणी आदि पांचसौ महाविद्याओं-का निरूपण है मंत्र तंत्र आदिका वर्णन भी इसीमें है ॥ ११३–११४ ॥ ग्यारहवें कल्याणवादपूर्वमें छव्वीस करोड पद हैं इसमें सूर्य चंद्रमा आदि ज्योतिर्गणोंका संचार और त्रेसठ शलाका पुरुषोंका कल्याण जो सुरेंद्र असुरेंद्रों द्वारा होता है उसका विस्ता-रपूर्वक वर्णन है तथा स्वप्न १ अंतरिक्ष २ भौम ३ अंग ४ स्वर ५ व्यंजन ६ लक्षण ७ और छिन्न ८ इन अष्टांग निमित्तोंका भी विशेष वर्णन है ॥११५–११७॥ वारहवें प्राणावाय पूर्वमें पदसंख्या तेरह करोड़ है इसमें काय चिकित्सा आदि आठ आयुर्वेदोंका वर्णन है प्राणापानका विभाग और उनका पृथ्वी जल तेज आदिमें प्रचारका वर्णन है ॥ ११८–११९ ॥ तेरहवें क्रियाविशाल पूर्वमें नौ करोड़ पद हैं इसमें छंदःशास्त्र व्या-करण शास्त्र और अनेक प्रकारके शिल्पकला आदि गुणोंका वर्णन है ॥ १२० ॥ और चौदहवें लोकविंदुसार पूर्वमें वारह करोड पचास लाख पद हैं इसमें समस्त शास्त्ररूपी संपत्तिसे अंकराशि आठ प्रकारके व्यवहार परिकर्म विधि आदिका सविस्तर निरूपण

किया गया है॥ १२१-१२२॥

पहिले वारहवें दृष्टिवाद अंगके पांच भेदोंमें चूलिका भेद वतला आये हैं उसके जलगता १ स्थलगता २ आकाशगता ३ रूपगता ४ और मायागता ये पांच भेद हैं ॥ १२३॥ और इनमें हरएकके दो करोड नौलाख नवासी हजार दो सौ पांच २ पद है॥ १२४॥ इसप्रकार अंगप्रविष्टश्रुतज्ञानका वर्णन करदिया गया अब अंगवाह्यश्रुतका वर्णन करते हैं—

अंगवाह्यके सामायिक आदि चौदह भेद हैं ये प्रकीर्णक कहलाते हैं इनमें पदोंका प्रमाण मध्यमपदसे न लेकर प्रमाणपदसे लेना चाहिये॥ १२५॥ समस्त अंगवाह्य श्रुतज्ञानके आठ करोड़ एक लाख आठ हजार एक सौ पचहत्तर अक्षर हैं॥ १२६॥ एक करोड़ तेरह हजार पांचसौ इक्कीसपद सात अक्षर-पदोंका प्रमाण है॥ १२७॥ और श्लोक संख्या पचीस लाख तीन हजार तीन सौ अस्सी और पंद्रह अक्षर हैं॥ ॥ १२८॥ पहिले प्रकीर्णकका नाम सामायिक है इसमें शत्रु मित्र सुख दुःख आदिमें रागद्वेषकी निवृत्तिपूर्वक समभावका वर्णन है॥ १२९॥ दूसरा जिनस्तव नामका प्रकीर्णक है और इसमें तीर्थकरोंकी स्तुतिका निरूपण है। तीसरा वंदना प्रकीर्णक है इसमें वंदनाके योग्य पंचपरमेष्ठी भगवानकी प्रतिमा मंदिर तीर्थ और शास्त्रोंका प्रतिपादन है एवं वंद्य वंदनाकी विधि वतलाई है॥ १३०॥ चौथा प्रकीर्णक प्रतिक्रमण है इसमें द्रव्य क्षेत्र काल आदिमें कियेगये पापोंका शोधन-प्रायश्चित्त आदिका वर्णन है॥ १३१॥ पांचवें प्रकीर्णकका नाम वैनयिक प्रकीर्णक है इसमें दर्शनविनय १ ज्ञानविनय २ चारित्रविनय ३ तपोविनय ४ और उपचार ५ विनयका सविस्तर वर्णन है॥ १३२॥ छठा कृतकर्म प्रकीर्णक है इसमें चार वार मस्तक नवाना तीनवार नमस्कार करना, हरएक नमस्कारमें तीन तीन आवर्त इसप्रकार बारह आवर्त करना आदि सामायिककी विधि बतलाई है॥ १३३॥ सातवां दशवैकालिक प्रकीर्णक है इसमें चंद्र सूर्यके ग्रहण आदिका वर्णन है। आठवां उत्तराध्ययन प्रकीर्णक है इसमें महावीर भगवानके निर्वाणगमनका कथन है॥ १३४॥ नवमा प्रकीर्णक कल्प व्यवहार है इसमें तपस्वियोंके योग्य आचरणकी विधि बतलाई गई है और अयोग्य आचरणोंका प्रायश्चित्त निरूपण किया गया है॥ १३५॥ दशवें प्रकीर्णकका नाम कल्प्याकल्प्य है इसमें विषय कषाय आदि हेय और वैराग्य आदि उपादेयका वर्णन है। ग्यारहवां महाकल्प प्रकीर्णक है इसमें मुनिकेलिये उचित द्रव्य उचित क्षेत्र उचितकाल सेवनका निरूपण है॥ १३६॥ वारहवां प्रकीर्णक पुंडरीक है इसमें देवों

१ आठ अक्षरोंका पद होता है। २ चार पदोंका एक श्लोक होता है। ३ यह अर्थ भाषा हरिवंशपुराणमें है किंतु अर्थप्रकाशिकामें साधुओंके आचारके गोचर आहार शुद्धिका वर्णन है यह अर्थ है।

की उत्पत्तिका वर्णन है तेरहवां महापुंडरीक प्रकीर्णक है। इसमें देवियोंकी उत्पत्तिका निरूपण है॥ १३७॥ और चौदहवें प्रकीर्णकका नाम निषद्य है और उसमें प्रायश्चित विधिका सविस्तर वर्णन किया गया है यह अंगवाह्य श्रुतका संक्षेप व्योरा बतलादिया इसप्रकार समस्त द्वादशांग और चौदह प्रकीर्णकोंके मिलकर सब अक्षर-एक आठ चार चार छै सात चार चार शून्य सात तीन सात शून्य नौ पांच पांच एक छै एक और पांच अर्थात् एक लाख चौरासी हजार चारसौ सडसठ कोडाकोडी चवालीस लाख सात हजार तीनसौ सत्तर करोड पचानवे लाख इक्यावन हजार छहसौ पंद्रह (१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५) हैं॥ १३८-१४३॥ यह श्रुतज्ञान श्रुतावरण कर्मके क्षयोपशमसे होता है मतिज्ञानपूर्वक होता है (मतिज्ञानके विना नहीं) परोक्ष है एवं यद्यपि यह ज्ञान शब्दोंकी अपेक्षा संख्यारूप है परंतु विषयकी अपेक्षा अनंत है॥ १४४॥ मतिज्ञान पांच इंद्रिय और छठे मनकी सहायतासे होता है परोक्ष है पदार्थके समीप होनेपर उसे कुछ स्पष्ट बतलाता है इसलिये इसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष भी कहते हैं और यह मति ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे होता है यद्यपि इसके सूक्ष्मभेद अनेक हैं परंतु स्थूल तीनसौ छत्तीस या तीनसौ चौरासी बतलाये हैं और वे इसप्रकार हैं।

प्रथमही प्रथम मतिज्ञानके अवग्रह १ ईहा २ अवाय ३ और धारणा ४ ये चार भेद हैं॥ १४५-१४६॥ इनमें प्रत्येक पांच इद्रिय और मनसे होता है इसलिये चौवीस भेद होजाते हैं ये अर्थावग्रहके भेद हैं तथा मन और नेत्र सन्निकृष्ट होकर पदार्थका प्रकाश नहिं करते इसलिये उनसे न होकर शेष चार इद्रियोंसेही व्यंजनावग्रह होता है अतः चौवीस अर्थावग्रहके भेद और चार व्यंजनावग्रहके भेद मिलकर अट्ठाईस होते हैं और इन्हींमें अवग्रह आदि मूलभंग मिलानेसे वत्तीस भेद होजाते हैं इसरीतिसे चौवीस अठाईस और बत्तीस ये तीन राशियां सिद्ध हुई इनमें प्रथम राशिका वहु[3] वहुविध[4] क्षिप्र[5] अनिःसृत[6] अनुक्त[7] और ध्रुव[8] ये छै और इनसे विपरीत अवहु[9] अवहुविध[10] अक्षिप्र[11] निःसृत[12] उक्त[13] और अध्रुव[14] ये छै इसप्रकार बारहसे गुणा करनेपर दोसौ अट्ठाईस भेद मतिज्ञानके सिद्ध होते हैं और दूसरी राशिका वहु आदि बारहसे गुणा करनेपर तीनसौ छत्तीस एवं तीसरी राशिका वहु आदि बारहसे गुणाकरनेपर तीनसौ चौरासी भेद होते हैं। ये मतिज्ञानके समस्त भेद अपने अपने आवरणके क्षयोपशमसे होते हैं। ॥ १४७-१५१॥ जीवकी कुछ शुद्धि होनेपर उत्पन्न हुये अवधिज्ञानके तीन भेद वतलाये हैं देशावधि सर्वावधि[15] और परमावधि। यह अवधिज्ञान अवधि (मर्यादा) को

१ व्यक्त अवग्रह। २ अव्यक्त अवग्रह। ३ वहुत। ४ वहुत प्रकार। ५ शीघ्र। ६ समस्त न निकला हुआ। ७ न कहा हुआ अभिप्रायसे ज्ञातव्य। ८ यथावस्थित जैसाका तैसा। ९ अल्प। १० एकप्रकार। ११ देरीसे। १२ समस्त निकला हुआ। १३ कहा हुआ। १४ जैसाका तैसा न हों। १५ सर्वावधि और परमावधि तद्भवमोक्षगामीके होते हैं।

लिये हुये मूर्तीक पदार्थकोही विषय करता है और एकदेश प्रत्यक्ष है ॥ १५२ ॥ मनः-पर्यय ज्ञान भी एकदेश प्रत्यक्ष है इसके ऋजुमति और विपुलमति दो भेद हैं और अवधिज्ञानसे इसका विषय सूक्ष्म है ॥ १५३ ॥ सबसे अंतमें होनेवाला केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है केवलज्ञानावरण कर्मके सर्वथा क्षयसे होता है अक्षय है और समस्त पदार्थोंका जाननेवाला है ॥ १५४ ॥ परोक्ष प्रमाणके त्यागकरना और ग्रहण करना ये दो फल हैं और प्रत्यक्षप्रमाणके उपेक्षा (मध्यस्थभाव) और मोहका अभाव होना फल है ॥ १५४॥ मति श्रुति अवधि और मनः पर्यय ये चार ज्ञान परंपरासे मोक्षके कारण हैं और अविनाशी केवलज्ञान साक्षात् कारण है ॥१५६॥ यह तो प्रमाणों (सम्यग्ज्ञान) का स्वरूप कहा और इन प्रमाणोंसे भले प्रकार निश्चित पदार्थोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है एवं शुभ क्रियाओंमें प्रवृत्ति होना सम्यक् चारित्र है ॥ १५७ ॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र ये तीनों मिलकर मोक्षके कारण हैं इसलिये जिन्हैं परमपद मोक्षपद प्राप्त करनेकी अभिलाषा हो उन्हैं चाहिये कि इन तीनोंका भलेप्रकार श्रद्धान व आचरण करैं ॥ १५८ ॥ सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रयसे उत्तम न कोई पदार्थ है न हुआ न होगा इसलिये रत्नत्रय ही मोक्षका कारण है यह सारवात समझना चाहिये ॥१५९॥

इसप्रकार भगवान जिनेंद्रकी वचनरूपी औषधिका पानकर संदेहरूपी बलवान रोगसे मुक्त हो तीन लोकके जीवोंकी मुक्ताफलके समान निर्मल शोभा हुई ॥ १६० ॥ उससमय कर्मभूमिकी आदि कृतयुगमें समस्तजीव रत्नत्रयरूपी भूषणसे भूषित और दृढ़ शुद्ध भावोंके धारक वनगये । किसीने मुनिधर्मकी दीक्षा ली और कोई पवित्र श्रावक धर्मके आराधक वने ॥ १६१ ॥ भगवान जिनेंद्रको चारप्रकारके संघके साथ जगतमें विहारके लिये उन्मुख देख निर्मल सम्यक्त्वसे शोभित चारों प्रकारके देव अपने २ स्थानोंपर चले गये ॥ १६२ ॥ गृहस्थ श्रावकोंमें अग्रणी राजा भरतने भी भगवान ऋषभ देवकी विनयपूर्वक पूजाकी एवं कुलीन राजाओंसे वेष्टित हो सानंद अयोध्यामें आये ॥ १६३ ॥

इसप्रकार श्रीजिनसेनाचार्य निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें भगवान ऋषभद्वारा धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति बतलानेवाला दशवां सर्ग समाप्त हुआ।

एकादश सर्ग।

राजा भरतके पुत्र उत्पन्न हुआ था इसलिये उन्होंने भगवानके समवसरणसे आकर बड़े ठाट बाटसे उसका जन्मोत्सव मनाया पश्चात् चक्ररत्नके पास जा उसकी पूजाकी एवं छै खंडकी विजयकरनेकी अभिलाषासे नगरसे प्रस्थान किया ॥ १ ॥ प्रस्थान करते समय राजा भरतके साथ चतुरंग सेना थी अनेक राजाओंका समूह था

और मनुष्योंको रास्ता बतलानेवाला चक्र उनके आगे आगे चलता था ॥ २ ॥ पूर्वदिशामें गंगाके किनारे गमन करते २ वे जिसद्वारसे गंगा नदीने समुद्रमें प्रवेश किया है उस द्वारपर पहुंचे वहां उन्होंने (राजा भरतने) वचन एवं शरीरसे संयमी हो अष्टमभक्त (तेला) धारण किया॥ ३ ॥ द्वारके पास वे जिसमें सुंदर दो घोड़े जुते हुये थे ऐसे अतिशय शीघ्रगामी अजितंजित नामक रथमें सवार हुये और गंगा द्वार खोलकर समुद्रमें जानू (घोंटू) प्रमाण गहराई पर्यंत प्रवेश किया। उससमय लंबायमान भुजाओंसे शोभित राजा भरतने अपने हाथमें बज्रकांड धनुषको लेकर वैशाख नामक आसनसे स्थित हो नेत्र निश्चल करलिये मुठी कड़ी वांधलीं एवं वाणके छोड़नेमें अतिशय प्रवीण होनेके कारण वहींसे अपने नामसे अंकित अमोघ नामका वाण चलाया ॥ ४–६ ॥ वज्रके समान भयंकर वह वाण बारह योजन दूर जाकर मागधदेवके मंदिरमें गिरा और गिरते ही भयंकर शब्द हुआ ॥ ७ ॥ वाणके शब्दसे मागधके मंदिर और हृदय दोनों कंपायमान होगये उसै बड़ा आश्चर्य हुआ किंतु जिससमय उसने चक्रवर्तीके नामसे अंकित वाण देखा और कोई चक्रवर्ती उत्पन्न होगया है यह जानकर अपनेको उसके सामने स्वल्पपुण्यवान समझा तो वह अपनी बारंबार निंदा करने लगा और अभिमान रहित हो भेटकेलिये हाथमें अनेक रत्न ले शीघ्र ही उन (भरत) के पास आ उपस्थित हुआ ॥ ८–९ ॥ आकर उसने राजा भरतके लिये पृथिवीमें सर्वोत्तमहार, मुकुट, रत्नमयी कुंडल, देदीप्यमान अनेक प्रकारके रत्न, सुंदर वस्त्र, और अनेक तीर्थोंके जल भेटकिये एवं "प्रभो ! आज्ञा दीजिये मैं क्या करूं ? मैं आपका सेवक हूं" इत्यादि प्रकारसे विनती करनेलगा। राजा भरतने उसै अपने वश समझ निजस्थान जानेकी आज्ञा दी और स्वयं भी वहांसे आगे चलदिये ॥ १०–११ ॥ मार्गमें अतिशय बलवान दक्षिण दिशाके अनेक भूत व्यंतर और राजाओंके समूहपर विजय करते हुये वे समुद्रके वैजयंत द्वारपर जा पहुंचे वहांपर उन्होंने मागधदेवके समान उसप्रदेशके स्वामी वरतनु नामक देवको बुलाया वह वहां आकर शीघ्र ही उपस्थित हुआ चूड़ामणी (शिरोभूषण) कंठीहार उत्तम बाजूबंध कड़े करधनी भेंट किये एवं राजा भरतको प्रणामकर सेवक बन आज्ञाले अपने स्थानपर चलागया ॥ १२–१४ ॥ राजा भरतने वहांसे पश्चिमकी ओर प्रयाण किया। मार्गमें अनेक देव और राजाओंको वश करते हुये वे वेदिकासे भूषित अतिशय रमणीय सिंधु नदीके द्वारपर पहुंचे। इंद्रके समान अतिशय पराक्रमी राजा भरतने वहांपर मागध और वरतनुके समान उस प्रदेशके स्वामी प्रभासदेवको नम्रीभूत कर वश किया और उससे संतानजातिके पुष्पोंकी माला मोतियोंकी माला और नानाप्रकारके रत्नोंसे जड़ित सुवर्णमयी मुकुट प्राप्त किये ॥ १५–१७ ॥ वहांसे चलकर चक्रके पीछे २ चलनेवाले राजा भरत विजयार्ध पर्वत-

की वेदिकाके पास आये वहां आकर यथोचित उपवास करके उनने विजयार्धपर्वतके स्वामी (देव) विजयार्ध कुमारका स्मरण किया स्मरण करते ही विजयार्ध कुमारने अपने अवधिज्ञानसे राजा भरतका आगमन जान लिया जिससे कि वह शीघ्र ही उनके पास आया आकर उसने महान ऋद्धि धारी अनेक देवोंके साथ उनका अभिषेक किया एवं विनयपूर्वक रत्नमयी झाड़ी, तीर्थजलोंसे परिपूर्ण रत्नमयी कलश, सर्वोत्तम सिंहासन, छत्र, और मनोहर चमर भैंटकर निज स्थान चला गया ॥ १८–२० ॥ राजा भरतने वहांपर चक्रकी पूजाकी एवं विजयार्धकी तमिस्रगुफाके पास आकर विंश्राम किया वहांके निवासी कृतमालदेवको जब यह पता लगा कि राजा भरत यहां आये हैं तो वह शीघ्र ही उनके पास आया उन्हें तिलक आदि चौदह दिव्य भूषण प्रदान किये और "मैं आपका दास हूं" ऐसा नम्रनिवेदनकर अपने स्थान चलागया ॥ २१–२२ ॥ वहांपर राजराजेश्वर भरतकी आज्ञासे सेनापति अयोध्यने तोतेके समान मनोहर कांतिसे युक्त कुमुदामेलक नामक अश्वरत्नपर सवार हो प्रचंड दंडरत्नसे पश्चिम गुफाका द्वार उघाड़ा और पीछे लोट आया ॥ २३–२४ ॥ गुफाका दरवाजा खुलतेही भयंकर उष्णता निकलपड़ी और बड़ी कठिनतासे छै मासके बाद उसके शांत होनेपर राजा भरतने विजयपर्वतनामके गजपर सवार हो सेनाके साथ उसमें प्रवेश किया ॥ २५ ॥ गुफाके मध्यमें उन्मग्नजला और निमग्नजला नामकी दो विशाल नदियां हैं दोनों नदियोंके किनारे सेना ठहरगई ॥ २६ ॥ वहांपर अंधकार विशेष था इसलिये राजा भरतने काकणी मणिरत्नकी देदीप्यमान प्रभासे उसै दूर किया और निरालस हो एकरात एकदिन विश्राम किया ॥ २७ ॥ पुलके न होनेसे सेनाका नदीपार होना कठिन था इसलिये कामदृष्टि नामक गृहपति (मकान बनानेवाला राज) रत्नसे और भद्रमुख नामक स्थपति (बढई) रत्नसे नदियोंका पुल बंधवाया ॥ २८ ॥ पुलके सहारे समस्त सेनाने दोनों नदियां पारकी और पश्चिमके समान गुफाका उत्तर दरवाजा खोलनेके बाद उत्तर भरतक्षेत्रमें पहुंची ॥ २९ ॥ वहांपर हजारों म्लेच्छ राजा निवास करते थे पूर्व भरतक्षेत्रसे आई हुई राजा भरतकी सेना देख उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ और तत्काल युद्धकेलिये तयार होगये ॥ ३० ॥ म्लेच्छ राजाओंकी यह चेष्टा देख दंडरत्नके धारक सेनापति अयोध्य (जयकुमार) को बड़ा क्रोध आया उसने म्लेच्छोंको युद्धमें शीघ्र ही हरा दिया एवं अपना अयोध्य(दूसरेसे जीता न जाय)नाम सार्थक किया ॥ ३१ ॥ सेनापति अयोध्य की वीरतासे म्लेच्छोंको बड़ा भय हुआ और वे शीघ्रही अपने कुलदेवता दर्भशय्यापर शयन करनेवाले मेघमुख नामक नागकुमारोंकी शरण गये ॥ ३२ ॥ मेघकुमार उन्हें शरण आया देख समस्त आकाशको व्याप्त कर युद्धके लिये तयार होगये परंतु राजा भरतके सेनापति जयकुमारने उन्हें युद्धमें परास्त करदिया जिससे

कि उसीदिनसे सेनापति जयकुमारका मेघेश्वर यह नाम संसारमें प्रसिद्ध हुआ ॥३३॥ जब मेघकुमार सेनापति जयकुमारसे हारगये तो उन्होंने चिढ़कर समस्त आकाश मेघोंसे व्याप्त करदिया और सेनाके ऊपर मूसलधार पानी वर्षाने लगे ॥ ३४ ॥ जिस समय राजा भरतने जिसमें विजली दमक रही हैं भयंकर गर्जनाके शब्द होरहे हैं ऐसी प्रलयकारिणी वर्षा देखी तो उन्होंने सेनाके नीचे चर्मरत्न विछा दिया और ऊपर छत्ररत्न फैला दिया ॥ ३५ ॥ उससमय बारह योजन पर्यंत फैली हुई एवं जलमें तैरती हुई सेना अंडेके समान जान पड़ने लगी सात दिनतक बराबर इसी तरहका उपद्रव होता रहा जिससे कि समस्तसेना अस्त व्यस्त होगई ॥ ३६ ॥ मेघकुमारदेवोंका यह क्रूरकर्म देख चक्रवर्ती राजा भरतको वडा क्रोध आया उन्होंने मेघकुमारोंके संहारकेलिये गणवद्धनामके देवोंको आज्ञा दी जिससे कि उन्होंने बातकी बातमें मेघमुख देवोंका विध्वंस करदिया ॥ ३७ ॥ जब गणवद्ध देवोंसे मेघमुख देव हारगये तो उन्होंने वर्षाका संकोच करलिया और म्लेच्छोंको आज्ञा दी कि उत्तमोत्तम कन्यायें लेकर भरत चक्रवर्त्तीकी शरण जाओ" मेघमुख देवोंकी आज्ञा शिरपर धार कन्यायें लेकर म्लेच्छ राजा भयभीत हो चक्रवर्ती भरतके पास आये भरतने उन्हैं अभय दान दिया उनका राज्य ज्योंका त्यों स्थिर रक्खा और वे वहांसे प्रस्थानकर सिंधुनदीकी वेदीके पास आये ॥ ३८–३९ ॥ सिंधुकूटके अग्रभागमें रहनेवाली सिंधु देवीको जब यह पता लगा कि राजा भरत यहां आये हैं तो वह शीघ्रही उनके पास आई उत्तमोत्तम जलोंसे उनका अभिषेक किया और अतिशय सुंदर दो सिंहासन भेंटकर अपने स्थान चलीगई ॥ ४० ॥ चक्रवर्तीने हिमवान् पर्वतकी तलहटीमें सेनाको ठहरनेकी आज्ञा दी और स्वयं अष्टम भक्त धारणकर दर्भशय्यापर विराजमान हुये ॥ ४१ ॥ पश्चात् पवित्र तीर्थोंके जलसे स्नानकर उत्तमोत्तम वस्त्र आभूषणोंसे भूषित हो घोड़ोंके रथमें सवार होकर धनुर्विद्यामें अतिशय प्रवीण राजा भरत चक्रायुधके पीछे पीछे चलकर हिमवान पर्वतके हिमवान नामके शिखरके पास आये वहां वाण हाथमें ले वैशाख स्थानसे वैठकर साभिमान हो "अरे इस देशके रहनेवाले नागसुपर्ण आदि देवो! तुमलोग मेरी आज्ञा शिरपर धारण करो" ऐसा कह खींचकर शीघ्रगामी वाण छोड़ा ॥ ४२–४४ ॥ वज्रके समान शब्द करता हुआ वह वाण छूटते ही वारह योजनकी दूरीपर जाकर गिरा उसै देख हिमवान शिखरमें रहनेवाला देव शीघ्रही राजा भरतके पास आया उन्हैं दिव्य औषधिमाला दिव्य हरिचंदन भेट किया एवं आज्ञाकारी सेवक बन अपने स्थान पर चला गया ॥ ४५–४६ ॥ वहांसे सेनासहित प्रयाणकर राजा भरत वृषभ पर्वतके समीप आये उसकी गुफामें काकणीरत्नसे "मैं प्रथम तीर्थंकर श्रीऋषभदेवका पुत्र भरत चक्रवर्ती हूं इसतरह अपना नाम लिख विजयार्ध पर्वतकी ओर प्रस्थान किया एवं

शीघ्र ही विजयार्धकी वेदीके पास पहुंचे ॥ ४८ ॥ विजयार्धकी दोनो श्रेणियोंके स्वामी नमि और विनमिको जब यह पता लगा कि परमोपवासी धर्मात्मा राजा भरत यहां आये हैं तो वे शीघ्र ही गांधार आदि विद्याधरोंके साथ उनके पास आये भरतने इनसे सुभद्रा नामक स्त्रीरत्न ग्रहण किया वहांसे चलकर गंगा नदीकी वेदीके पास आगये एवं वहां आकर अष्टम भक्त किया ॥४९–५०॥ गंगाकूटमें रहनेवाली गंगादेवीको राजा भरतके आगमनका पता लगा वह शीघ्र ही उनके पास आई सुवर्णमयी हजार कलशों से उनका अभिषेक किया और दो मनोहर रत्नमयी सिंहासन भैंट किये। तथा विजयार्ध पर्वतका स्वामी विजयार्धकुमार भी राजा भरतका दास बन गया ॥ ५१–५२ ॥ वहांसे प्रस्थानकर मार्गमें अठारह हजार म्लेच्छ राजाओंको वश करते हुये एवं उनसे अनेक प्रकारके देदीप्यमान रत्न भेट लेते हुये सम्राट् भरत विजयार्धकी दूसरी गुफा खंडकप्रपातके समीप पहुंचे ॥ ५३ ॥ वहांपर अष्टमोपवासी राजा भरतको नाट्यमाल देवने अनेकप्रकारके आभरण भेट किये एवं विजलीके समान देदीप्यमान कुंडल पहिनाये ॥ ५४ ॥ जिसप्रकार अयोध्य सेनापतिने पहिले दंडरत्नसे गुफाका द्वार उघाड़ा था उसीप्रकार यहांपर भी उसने खंडकापात गुफाका द्वार खोला और गंगाके समान सेनासे वेष्टित हो उसमें प्रवेशकर बाहिर निकल आये। इसप्रकार साठ हजार वर्षपर्यंत छै खंडोंसे भूषित समस्त भरतक्षेत्रका विजयकर राजा भरतने निज राजधानी अयोध्याकी ओर प्रस्थान किया ॥ ५५–५६ ॥ जिससमय राजा भरत अयोध्याके समीप आये तो सुदर्शनचक्रको भीतर प्रवेश न करते देख उन्हें बड़ा संदेह हुआ वे बुद्धिसागर पुरोहितसे कहने लगे–"मैंने समस्त भरतक्षेत्रका विजय कर लिया फिर न मालूम यह चक्र अयोध्यामें क्यों नहिं प्रवेश करता अब तो मुझसे प्रबल कोई शूरवीर देखनेमें आता नहिं!" पुरोहित बुद्धिसागरने उत्तर दिया–प्रभो! यहां पर आपके भाई निवास करते हैं वे बड़े बलवान हैं आपकी आज्ञा मानना उन्हें पसंद नहीं इसलिये चक्र भीतर प्रवेश नहिं करता ॥ ५७–५९ ॥ पुरोहित बुद्धिसागरके ऐसे वचन सुन राजा भरतने नीतिपूर्वक उनके पास दूत भेजे उत्तमोत्तम पदार्थ और प्रीतिसूचक समाचार पठाये ॥ ६० ॥ भाई बड़े अभिमानी थे इसलिये जिससमय राजा भरतका उनने यह वर्ताव देखा तो उनको शीघ्र ही वैराग्य होगया त्यागको ही परम उत्सव मानकर राजपाट छोड़ दिया सब मिलकर शीघ्र ही भगवान ऋषभदेवके पास गये मानशल्यका सर्वथा उच्छेद कर दिया एवं भवसे सर्वथा भयभीत हो मोक्ष पानेकी अभिलाषासे दिगंबर दीक्षा धारण करली ॥ ६१–६२ ॥ परमसुकुमार भव्योंमें अग्रणी एक साथ दीक्षा लेनेवाले उन कुमारोंने जिन देशोंका त्याग किया उन देशोंके नाम ये हैं॥६३॥

कुरु जांगल पंचाल शूरसेन पटच्चर तुलिंग काशी कौशल्य मद्रकार वृकार्थक सोल्व

आवृष्ट त्रिगर्त कुशाग्र मत्स्य कुणीय कौशल मौक ये मध्यकेदेश वाह्नीक आत्रेय कांबोज यवन आभीर मद्रक काथतोय सूर वाटवान कैकय गांधार सिंधु सौवीर भारद्वाज दशोरुक प्रास्थाल तीर्ण और कर्ण ये उत्तरके देश, खड्ग आंगारक पौंड्र मल्लप्रवक मस्तक प्राग्योतिष वंग मगध मानवर्तिक मलद भार्गव ये पूर्व दिशाके देश, वाणमुक्त वैदर्भ माणव सककापिर मूलक अश्मक दांडिक कलिंग आसिक कुंतल नवराष्ट्र महिषक पुरुष भोगवर्धन ये दक्षिण दिशाके देश, माल्य कल्लीवनोपांत दुर्गसूर्पार कर्वुक काक्षि नासारिक अगर्त सारस्वत तापस माहेभ भरुकच्छ सुराष्ट्र नर्मद ये उत्तर दिशाके देश, दशार्णव किष्किंध त्रिपुरावर्त नैषध नैपाल उत्तमर्ण वैदिश अंतप कौशल पत्तन विनिहात्र ये विंध्याचलके पृष्ठभागके देश एवं भद्र वत्स विदेह कुसु भंग सैतव वज्र खंडक ये मध्यदेशके समीपके देश थे। ये समस्त देश चक्रवर्तीके मोक्षाभिलाषी छोटे भाइयोंने भरतके आज्ञाकारी जानकर पराई स्त्रियोंके समान छोड़ दिये ॥ ६४–७६ ॥

भरतके भाई बाहुवलीने भरतकी आज्ञा स्वीकार न की चक्रवर्तीके चक्रको उन्होंने घेघरीके समान समझा और दूतके मुख यह समाचार भेजकर कि "मैं आपका सेवक नहीं हूं" तत्काल अक्षौहिणी दल ले युद्धार्थ पोदनापुरसे वाहर निकल पडे ॥ ७७–७८ ॥ दूतद्वारा बाहुवलीके उसप्रकारके समाचार सुन सेनारूपी सागरसे समस्त दिशाओंको व्याप्त करनेवाला भरत चक्रवर्ती भी युद्धार्थ तयार होगया एवं पश्चिम दिशा की ओर दोनों सेनाओंकी आपसमें मुटभेढ़ होगई ॥ ७९ ॥ उन भाइयोंका ऐसा जोर शोर देख दोनों पक्षके मंत्रियोंने भलेप्रकार विचारणाकर अपने अपने स्वामियोंसे निवेदन किया "प्रभो! आप दोनोंकी आपसमें अनवनसे इस प्रजाका व्यर्थ क्षय क्यों किया जाय? हमारी यही प्रार्थना है और यह उचित भी है कि आप सेनाका नाशक युद्ध न ठान केवल आपसमें ही धर्म युद्ध ठानें" ॥ ८० ॥ मंत्रियोंकी प्रार्थना दोनों भाइयोंकी समझमें आगई वे परस्परमें ही युद्ध करनेके लिये तय्यार होगये। प्रतिज्ञानुसार सबसे प्रथम दोनों भाइयोंका नेत्र युद्ध प्रारंभ हुआ बहुत समयतक तो वे दोनों भाई निमेष रहित नेत्र किये खडे रहै और कोई किसीसे न हारा अंतमें भरतके पलक लग गये—बाहुवलीने भरतको जीत लिया क्योंकि—भरतका शरीर पांचसौ धनुप और बाहुवलीका सवा पांचसो धनुप ऊंचा था इसलिये बाहुवलीकी दृष्टि तो नीचेकी ओर थी और भरतकी दृष्टि बाहुवलीके मुखकी ओर ऊंचेको थी ऊंचीदृष्टिवाला जल्दी घवड़ा जाता है इसलिये भरतके पलक शीघ्रही लगगये ॥ ८१–८२ ॥ नेत्रयुद्धके अनंतर दोनोंका जलयुद्ध हुआ एक दूसरेपर भुजाओं द्वारा फैंके गये जलकी भयंकर तरंगोंसे सरोवर खलभला उठा और उसमें भी विजय बाहुवलीकी ही हुई क्योंकि—भरतका शरीर पांचसौ धनुप ऊंचा था इसलिये जिससमय बाहुवली उनपर पानीके छींटे मारते थे तो

उनकी आंख नाक तक पहुंचते थे और बाहुवलीका शरीर सवा पांचसौ धनुष ऊंचा था इसलिये भरतके मारे हुये छींटे उनकी छाती तक ही पहुंचते थे ॥ ८३ ॥ जल युद्धके बाद मल्लयुद्ध हुआ वे दोनों भाई अखाडेमें वहुत कालतक गर्जना खंभ ठोकना आदि नाना प्रकारसे लड़ते रहै ॥ ८४ ॥ जिससमय ये दोनों भाई लड़ रहे थे उससमय इनके पादाघातसे पृथ्वीमें जो शब्द होता था उससे ऐसा जान पड़ता था मानो यह पृथ्वीरूपी स्त्री इनके पैरोंसे कुचली जानेके कारण चिल्ला रही है ॥ ८५ ॥ अंतमें बाहुवलीने भरतको अपने भुज पंजरोंसे जिकड़कर ऊपर उठा लिया और दयावश जमीनपर न पटककर जिसप्रकार देव रत्नाचल पर्वतको उठाकर खड़ा हो जाता है भरत को उठा वे (बाहुवली) खडे हो गये ॥८६॥ उससमय जितने वहां देव विद्याधर और मनुष्य इस कौतूहलको देख रहे थे सबके सब अहोवीर्य अहोधैर्य इत्यादि प्रशंसाके शब्द कहकर बाहुवलीका साधुवाद करने लगे ॥ ८७ ॥ जब बाहुवलीने सबतरह भरतको जीत लिया तो उन्हैं बड़ा क्रोध आया उन्होंने बाहुवलीके मारनेके लिये शीघ्रही सहस्रार चक्रका स्मरण किया स्मरण करते ही हजार यक्षोंसे सेवनीय सूर्यके समान देदीप्यमान वह चक्र हाथपर आधरा और भरतसे प्रेरित हो बाहुवलीके मारणार्थ चला ॥८८॥ बाहुवलीतो चरमशरीरी तद्भवमोक्षगामी थे इसलिये अनेक देवोंसे सेवित भी चक्र उनका बध न कर सका और अंतमें बाहुवलीकी तीन प्रदक्षिणा देकर भरतके हाथपर ही लोट आया ॥ ८९ ॥ अपने बडे भाईकी यह निर्दयता देख बाहुवलीको परम दुःख हुआ एवं अपने दोनों हाथ कानोंपर रखकर वे इसप्रकार लक्ष्मीकी निंदा करने लगे—

यह लक्ष्मी मानिंद कीचड़के है क्योंकि जिसप्रकार कीचड़ (स्वच्छानां, अनुकूलानां, संहतानां विपर्यासकरीं) निर्मल अनुकूल रीतिसे बहनेवाले एवं एक जगह एकत्रित जलको गदला करदेती है उसीप्रकार लक्ष्मी भी निर्मल चित्तके धारक, सुलहसे रहनेवाले एवं आपसमें मिलेहुये परमपवित्रभी मनुष्योंके मनको विगाड़ देती है इसलिये इसै धिक्कार है ॥९०-९१॥ अथवा यह लक्ष्मी यंत्रमूर्ति (कोल्हू) के समान है जिसप्रकार यंत्र (मधुरस्निग्धशीलानां चिरस्थस्नेहहारिणीं) अतिशय मधुर एवं चिक्कण स्वभाववाले तिलोंके बहुतकालसे विद्यमान भी स्नेह (तेल) को तत्काल हरलेती है उसीप्रकार लक्ष्मी भी महामिष्टवादी परस्परमें स्नेह करनेवाले मनुष्योंका स्नेह नष्ट करदेती है यंत्रमूर्ति जिसप्रकार (चलाचलात्मिकां) कभी घूमती है कभी स्थिर रहती है लक्ष्मी भी उसीप्रकार चल विचल स्वरूप है ॥ ९२ ॥ अथवा यह लक्ष्मी जिसकी दृष्टिमें विषभरा है ऐसे सर्पकी दृष्टिके समान है क्योंकि जिसप्रकार दृष्टिविष सर्पकी दृष्टि (नरेंद्राणामपि स्वयं सर्वतोऽपि सुदुष्प्रेक्षां भयावहां) स्वयं वाजीगर लोगोंको भी सर्वथा दुष्प्रेक्ष्य एवं भयकरनेवाली है उसीप्रकार लक्ष्मी भी राजा लोगों तकको सर्वथा दुष्प्रेक्ष्य है इसका

जान: आना नहिं दीखता। एवं भय करनेवाली है इसलिये ऐसी लक्ष्मीकेलिये सर्वथा धिक्कार है ॥९३॥ अथवा यह लक्ष्मी अग्निकी ज्वालाके समान है क्योंकि अग्निकी ज्वाला (भास्वरामपि मूलमध्यांतदुस्पर्शा सर्वसंतापकारिणीं) देदीप्यमान होनेपर भी आदि मध्य और अंत तीनों दशामें दुस्पर्शा अर्थात् जलानेवाली होती है और सबको संताप देनेवाली होती है उसीप्रकार यह लक्ष्मी भी देदीप्यमान होकर आदि मध्य और अंत तीनों अवस्थामें दुःखदेनेवाली और सबके चित्तको संताप करने वाली है ॥ ९४ ॥ मनुष्यलोकमें जो कुछ चित्तको संतोष देनेवाला सुख या धन नजर आता है वह तभीतक है जब तक बांधवोंसे प्रीति है उनसे विरोध होते ही न वह सुख ही रहता है और न वह धन ही दीख पड़ता है ॥९५॥ जिसप्रकार शीतज्वरसे पीडित मनुष्यको शीतका स्पर्श दुःख देनेवाला होता है उसीप्रकार बांधवोंके प्रतिकूल होनेपर सुखदेनेवाले उत्तमभोग भी परम दुःख देनेवाले होजाते हैं ॥९६॥ इसप्रकार विचार कर बाहुवलीने राज्यका परित्याग कर दिया वे तपके लिये सीधे कैलाश पर्वतपर चले गये और प्रतिमायोग धारणकर एक वर्षके लिये सुनिश्चल खड़े होगये ॥ ९७ ॥ उनके चरणोंमें शांतमुद्राके प्रभावसे बांमियोंसे निकलकर मणिभूषित अनेक सर्प किलोल किया करते थे सो ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान बाहुवली राज्य अवस्थाके समान यहांपर भी अनेक राजाओंसे वेष्टित विराजमान हैं ॥ ९८ ॥ मुनिराज बाहुवली के समस्त अंगपर माधवीलता फैल गई थी उससे ऐसा मालूम होता था मानो मुनि होनेपर भी इन्हें लक्ष्मीरूपी सुंदर स्त्रीने नहीं छोड़ा है ॥ ९९ ॥ जिससमय उनके शरीरपर लिपटी हुई लताओंको विद्याधरियां दूर करतीं थी उससमय हरितमूर्ति निश्चल मुनिराज बाहुवली मरकतमणिमयी पर्वतके समान रमणीय जान पड़ते थे ॥ ॥ १०० ॥ चक्रवर्ती भरतने उन्हें आकर नमस्कार किया उनके समस्त कषाय नष्ट होगये इसलिये उन्हें शीघ्र ही भगवान ऋषभदेवके समान केवलज्ञान प्राप्त होगया। ॥ १०१ ॥ और चक्रवर्ती राजा भरत भी चौदह रत्न एवं नौ निधियोंसे युक्त हो निष्कंटक समस्त पृथ्वीका भोग करने लगे ॥ १०२ ॥ परम दयालु राजा भरतने व्रती अव्रतीकी कुछ भी परीक्षा न कर बारह वर्षपर्यंत लोगोंको यथेष्ट दान दिया ॥ १०३ ॥ कदाचित् जिनशासनके परमभक्त राजा भरतने व्रती और अव्रतियोंकी परीक्षार्थ किसी स्थानपर यव वपन कराये जब उनके अंकुर ऊग निकले उससमय सब प्रजाको निमंत्रण दिया जो मनुष्य अंकुर खूंदते आये उन्हें अव्रती ठहराया और जो बचकर आये उन्हें व्रती निश्चित किया कांकिणी रत्नसे चिन्हितकर सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रयका सूचक उन्हें यज्ञोपवीत पहिनाया भक्तिपूर्वक पूजाकी विनयपूर्वक दानदिया। और बड़े आदरसे उन्हें ब्राह्मण नामसे पुकारा। उसीसमयसे भगवान ऋषभदेवके स्थापन किये तीनवर्ण और

भरत चक्रवर्ती द्वारा स्थापित ब्राह्मणवर्ण इसप्रकार चारवर्णोंकी संसारमें प्रसिद्धि हुई ॥ ॥१०४–१०६॥ चक्रवर्तीके चक्र १ छत्र २ खड्ग ३ दंड ४ काकिणी ५ मणि ६ चर्म ७ सेनापति ८ गृहपति ९ गज १० अश्व ११ पुरोहित १२ स्थपति १३ और पटरानी १४ ये एक एक हजार देवोंसे सेवित चौदह रत्न थे और काल १ महाकाल २ पांडुक ३ माणव ४ नैसर्प ५ सर्वरत्न ६ शंख ७ पद्म ८ और पिंगल ९ ये नौ निधियां थी इन निधियोंकी निधिपालाख्य देव रक्षा करते थे और ये समस्त लोगोंका उपकार करनेवाली थीं ॥१०७–१११॥ ये समस्त निधियां गाड़ीके आकारकीं थी इनमें हरएकमें चार चार धुरा और आठ आठ पय्या थे वारह बारह योजन चौड़ी बारह बारह योजन लंबी आठ आठ योजन गहरीं थी उनके मध्यभाग वक्षारपर्वतके समान विशाल थे और प्रत्येक निधिके एक एक हजार देव रक्षक थे ॥ ११२–११३ ॥ इनमें काल निधि ज्योतिष-शास्त्र निमित्तशास्त्र न्यायशास्त्र कलाशास्त्र व्याकरणशास्त्र पुराण आदि प्रदान करती थी ॥ ११४ ॥ दूसरी महाकाल निधि लोहा आदि एवं उनसे वननेवाले अनेक प्र-कारके उपकरणोंको प्रदान करती थी ॥११५॥ पांडुक निधिका यह काम था कि वह शालि व्रीहि यव आदि समस्तप्रकार धान्य और कडुआ तीखा आदि अनेक प्रकार के रसद्रव्य देती थी ॥ ११६ माणवक नामकी निधि कवच (वख्तर) खेवट खड्ग वाण धनुष और चक्र आदि आयुधोंकी पूर्ति करती थी ॥ ११७ ॥ निसर्पनिधि शय्या-आसन आदि पदार्थ और घरके योग्य अनेक प्रकारके भोजनपात्र देती थी ॥ ११८॥ सर्वरत्न निधिका यह काम था कि वह इंद्रनीलमणि महानीलमणि वज्रमणि वैडूर्यमणि आदि अतिशय देदीप्यमान और उन्नत शिखाके धारक रत्न प्रदान करती थी। ॥ ११९ ॥ शंख निधिसे नगाड़ा शंख आनक वीन झालर मृदंग और आतोद्य आदि नाना प्रकारके बाजोंका लाभ होता था ॥१२०॥ पद्मनिधि पाटंवर चीना महानेत्र दुकूल उत्तम कंबल आदि चित्र विचित्र वस्त्र प्रदान करती थी॥१२१॥ और पिंगल नामकी नवमी निधि स्त्रीपुरुषोंके योग्य कडे करधनी आदि मनोहर भूषण एवं हाथी घोड़ा आदिके हर-एक प्रकारके भूषणकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाली थी ॥ १२२ ॥ ये समस्त निधियां कामवृष्टि नामक गृहपतिके आधीन थीं और चक्रवर्तीकी समस्त अभिलाषाओंको पूरी करती थीं ॥ १२३ ॥ चक्रवर्तीके तीनसौ साठ रसोइया थे और वे प्रतिदिन चावल दाल आदि महामधुर आहार बनाते थे ॥ १२४ ॥ हजार चावलका एक कवल (कौर ग्रास) होता था चक्रवर्ती ऐसे वत्तीस कवल खाता था उसकी पटरानी सुभद्रा एक कवल खाती थी और एक ही कवलसे शेष अन्य मनुष्योंकी तृप्ति होजाती थी।१२५। चक्रवर्तीके निन्यानवे हजार चित्रकार थे बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा थे बत्तीस हजार ही बड़े बड़े देश थे। अपनी अलौकिक प्रभासे देवांगनाओंको जीतनेवाली छ्यानवे

हजार रानियां थीं ॥ १२६–१२७ ॥ एक करोड़ हल थे तीन करोड़ कामधेनु गायें थीं अठारह हजार घोड़े थे जिनका कि वेग पवन सरीखा था ॥ १२८ ॥ मत्त एवं धीरे धीरे गमन करनेवाले चौरासी लाख हाथी और चौरासी लाख ही रथ थे ॥ १२९ ॥ पिता (चक्रवर्ती) की आज्ञाके भलेप्रकार प्रतिपालक अर्ककीर्ति और विवर्धनको आदिलेकर पांचसौ चरमशरीरी पुत्र थे ॥ १३० ॥ चक्रवर्तीके भाजन १ भोजन २ शय्या ३ सेना ४ वाहन ५ आसन ६ निधि ७ रत्न ८ नगर ९ और नाट्य १० ये दशप्रकारके परमोत्तम भोग थे ॥ १३१ ॥ सेवामें अतिशय प्रवीण आलस रहित परम हितकारी सोलह हजार गणवद्ध जातिके देव (उस चक्रवर्तीके) सेवक थे ॥ १३२ ॥ यद्यपि भरत चक्रवर्ती इसप्रकारके दूसरेको सर्वथा दुष्प्राप्य भोग भोगते थे तो भी उनकी बुद्धि भोगोंमें लीन न थी वे रातदिन शास्त्रोंका तात्पर्य मनन किया करते और इंद्रियोंको वश रखते थे ॥ १३३ ॥ यद्यपि उन्होंने प्रचंड भुजदंडोंसे बत्तीस हजार मुकुटबंध राजाओंको वशकर उनका अभिमान नष्ट कर दिया था तथापि वे स्वयं बड़े निरभिमानी थे ॥ १३४ ॥ श्रीवत्स चिह्नसे शोभित, विस्तीर्ण वक्षःस्थलके धारक, चौसठ परमोत्तम लक्षणोंसे भूपित, अपनी विभूतिसे इंद्रविभूतिको तिरस्कृत करनेवाले भगवान ऋषभदेवके पुत्र, एवं अद्वितीय भाग्यशाली, अखंडित पराक्रमी सोलहवें कुलकर सम्राट् भरत जिससमय इस भरतक्षेत्रकी पृथ्वीके शासन करनेवाले थे उससमय उनके राज्यकालमें धर्म अर्थ काम और मोक्ष चारो पुरुषार्थोंकी परम अनुरागिणी समस्त प्रजा सदा आनंद भोगती थी ॥ १३४–१३७ ॥ राजराजेश्वर भरतने उससमय अपनी परमोत्तम विभूतिसे समस्त लोकको यह बात झलका दी थी कि पूर्वकालमें धर्म करनेसे इसप्रकारके फलोंकी प्राप्ति होती है इसलिये वे उससमय धर्मके साक्षात् उपदेशक गिने जाते थे ॥ १३८ ॥

इसप्रकार पूर्वभवमें आचरण किये गये धर्मके प्रबल माहात्म्यसे लोगोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाला–अद्वितीय कल्पवृक्ष, परमपुरुषार्थी, सुखका भंडार, सम्यग्दर्शन रत्नसे भूपित, इंद्रके समान परमोत्तम विभूतिसे युक्त, सिंहके समान अतिशय पराक्रमी राजा भरत अपना मन सर्वदा जिनेंद्र भगवानके धर्ममें दृढ़ रखने लगा ॥ १३९ ॥

इसप्रकार श्रीजिनसेनाचार्य निर्मित भगवान नेमिनाथके चरित्रको वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें चक्रवर्ती भरतका दिग्विजय वर्णन करनेवाला ग्यारहवां सर्ग समाप्त हुआ।

द्वादश सर्ग।

किसी समय राजराजेश्वर भरतने समवशरणमें जाकर भगवान ऋषभदेवकी वंदनाकी और भक्तिपूर्वक उन (भगवान) से सविस्तर त्रेसठशलाका पुरुषोंका चरित

(पुराण) सुना ॥ १ ॥ राजा भरतने भगवानकी दिव्यध्वनिसे अन्य और होनेवाले तेईस, कुल चौवीस तीर्थंकर जान उनकी वंदनाके लिये घरोंके द्वारोंमें निकलने पर मस्तक चुंविनी वंदनमालायें वंधवांई ॥ २ ॥ जिससमय राजा भरत समवसरणमें गये थे उनके साथ विवर्धन आदि सब पुत्र भी थे उन्होंने कभी पहिले भगवानका दर्शन नहि किया था अनादि मिथ्यादर्शनके प्रभावसे स्थावर कायोंमें अनेक घोर वेदना भोग चुके थे भगवानकी समवशरण विभूति देख उन्हैं बड़ा आश्चर्य हुआ उनमेंसे तेईस सौ नौ कुमार अंतर्मुहूर्त्तमें ही परम संयमके धारक वन गये ॥३–४–५॥ कुमारोंको इसप्रकार संयमी देख राजा भरतने उनकी वड़ी प्रशंसा की एवं भगवानके शासन और मुनियोंके समूहको विनयपूर्वक नमस्कारकर वे सानंद अयोध्या लोट आये ॥६॥ धर्म अर्थ आदि चारो पुरुषार्थोंके पालक सम्यग्ज्ञानरूपी जलसे परम पवित्र अंतःकरणके धारक राजा भरतके साम्राज्यमें थोड़े ही दिनके बाद स्वयंवर (कन्या द्वारा पतिका स्वयं वरना) विधिका प्रारंभ हुआ सबसे पहिले काशीके राजा अकंपनने अपनी पुत्री सुलोचनाका स्वयंवर कराया स्वयंवरमें बड़े २ मनुष्य और विद्याधर इकट्ठे हुये परंतु सुलोचनाने हस्तिनागपुरके स्वामी (जिनका दूसरा नाम मेघेश्वर भी था) राजा जयकुमारको वरा ॥ ७–८ ॥ राजराजेश्वर भरतके वड़े पुत्र अर्ककीर्त्ति भी स्वयंवरमें गये थे जब सुलोचनाने जयकुमारके गलेमें माला पहनाई तो उन्है वड़ा क्रोध आया वे तत्काल जयकुमारसे युद्ध करने भिड़ गये जयकुमारका बल अकूत था इसलिये उन्होंने जीवित ही अर्ककीर्त्तिको पकड़ लिया पश्चात् बंधनसे मुक्तकर भलेप्रकार पूजा सत्कार करके छोड़ दिया। जिससमय सुलोचना सहित अयोध्या आये भरत चक्रवर्ती उन्हैं देख वड़े प्रसन्न हुये उनकी वारंवार प्रशंसा करने लगे और प्रार्थना करने पर उन्हैं (जयकुमार को) हस्तिनागपुर जानेकी आज्ञा दी ॥ ९ ॥

कदाचित् अनेक स्त्रियोंसे युक्त हस्तिनागपुरके स्वामी राजा जयकुमार अपने महलकी छतपर बैठे थे कि उसीसमय एक विद्याधर विद्याधरीके साथ उनके सामनेसे निकला जिसै देखते ही वे (राजा जयकुमार) मूर्छित हो गये ॥ १० ॥ उनकी ऐसी विलक्षण दशा देख अंतःपुरकी रानियां घवड़ा उठीं सबकी सब उनकी मूर्छा दूर करनेका उपाय करने लगीं जब उन्हैं कुछ होश आया तो वे "हाय! प्रभावती तू कहां चलीगई" इत्यादि वारंवार कहते हुये उठे और उसीसमय उन्हैं पूर्वभवका स्मरण हो आया। उधर रानी सुलोचनाको भी महलके छज्जेपर कबूतर कबूतरीको क्रीडा करते देख मूर्छा आ गई शीतोपचार आदिसे उसकी मूर्छा भी दूर की गई उसै भी अपने पूर्वभवका स्मरण हो आया और होशमें आते ही हिरण्यवर्माका नाम पुकारने लगीं ॥ ॥ ११–१२ ॥ हिरण्यवर्माका नाम सुनते ही जयकुमारने कहा—प्रिये मेरा ही नाम हिरण्य-

वर्मा था एवं प्रसन्न होकर सुलोचना भी कहने लगी मैं भी पूर्वभवकी प्रभावती हूं ॥ १४ ॥ इसप्रकार अपनेको पूर्वभवका विद्याधर जान जयकुमार और सुलोचनाको परम आनंद हुआ वे दोनों आपसमें वडे प्रेमसे वार्तालाप करने लगे ॥१५॥ अन्य अंतःपुरके लोगोंको इनका यह चरित्र देख बड़ा आश्चर्य हुआ उन्होंने उसीसमय उस हालके जाननेकी तीव्र अभिलाषा प्रकट की। कौतुक सुननेके लिये उन्हें इसप्रकार उत्सुक देख रानी सुलोचनाने अपने प्राणपतिसे उनका संदेह दूर करनेके लिये आज्ञा मांगी आज्ञा पाते ही वह अपना और अपने प्राणपतिका पहिले चार जन्मोंका चरित्र—जो कुछ उसमें सुख दुःख संयोग वियोग भोगा था उसके साथ—इसप्रकार वर्णन करने लगी ॥ १६—१७ ॥-

"किसी जगह इस पृथ्वीपर सुकांत और रतिवेगा नामके दो स्त्री पुरुष निवास करते थे वहीं पर जिसका दूसरा नाम भवदेव भी था ऐसा कोई उट्टिंटिकारि नामका पुरुष भी रहता था किसी कारणसे उट्टिंटिकारिका सुकांत और रतिवेगासे वैर पड़ गया उट्टिंटिकार वड़ा निर्दयी था इसलिये उस दुष्टने उन दोनों स्त्री पुरुषोंको अग्निमें जलाकर बड़ी क्रूरतासे मार डाला। इधर ये दोनों दंपती तो अपने परिणामानुसार कबूतर कबूतरनी हुये और उधर उट्टिंटिभको राजा शक्तिषेणके सामंतोंने अग्निमें जलाकर मारा सो मार्जार (विलाव) हुआ उस दुष्टने वहां पर भी अपना वैर न छोड़ा। दीन कबूतर कबूतरनीके जोडेको निर्दयतासे भक्षण कर डाला जिससे कि उन्हें मरते समय बड़ी पीड़ा सहनी पडी। कबूतर कवूतरनीके जीवने किसी समय मुनिराजकेलिये किसीको दान देते देख अनुमोदना की थी इसलिये उस पुण्यके प्रभावसे कबूतरका जीव तो विद्याधरकी परम विभूतिका भोक्ता श्रीहिरण्यवर्म नामका विद्याधर हुआ और कबूतरीका जीव उसकी आज्ञाकारिणी प्रभावती नामकी वल्लभा हुई। एवं वह मार्जार विद्युद्वेग नामका चोर हुआ। किसी समय संसारको अनित्य समझ राजा हिरण्यवर्म और रानी प्रभावतीने समस्त राज्यका त्याग करदिया वे वनमें जाकर मुनि और आर्यिका होगये। तपस्या करते हुये इन्हें इधर उधर घूमने वाले चोर विद्युद्वेगने देखा और पूर्वभवके प्रबलवैरसे इन्हें वहां भी प्राणोंसे रहित कर दिया। परिणामोंकी संक्लेशतासे मरकर मुनि और आर्यिका प्रथमस्वर्गमें देव और देवांगना हुए। विद्युद्वेगके जीवको राजाने कारावास (कैद) का दंड दिया वहांपर चांडालके उपदेशसे उसे ज्ञानकी प्राप्ति हुई परंतु तौ भी मुनि आर्यिकाकी प्रबल हत्यासे वह प्रथम नरकमें गया वहांसे निकलकर ज्ञानकी महिमासे भीम नामक वणिक पुत्र हुआ और संसारसे उदासीन हो परम संयमी होगया। कदाचित् मुनि और आर्यिकाके जीव देव देवांगना मध्यलोकमें क्रीड़ार्थ आये थे कि मुनिराज भीमदेवका उन्हें दर्शन होगया उनसे देवधर्मका स्वरूप पूछा उन्होंने

(मुनिने) पूर्वभवके चरित्रके साथ देव धर्मका स्वरूप वर्णन किया और उससमयसे वे मुनि देव और देवांगना तीनों ईर्षारहित निःशल्य होगये। मुनिराज भीमतो उसीभवसे मोक्ष चले गये और हम दोनों स्वर्गसे चयकर यहांपर जयकुमार और सुलोचना नामके राजा रानी हुये हैं।"

इसप्रकार पूर्वमें देखे सुने एवं अनुभव किये अपने पूर्व चार भवका समस्त चरित्र जब सुलोचना वर्णन कर चुकी तो जयकुमारने उसे श्रीपाल चक्रवर्तीके चरित्र कहने की भी प्रेरणा की एवं अपने प्राणपतिकी आज्ञानुसार सुलोचनाने श्रीपाल चक्रवर्तीका वृत्तांत भी सविस्तर वर्णन किया। इसप्रकार अंतःपुरके समस्त लोगोंको एवं राजा जयकुमारको सुलोचनाके मुखसे पूर्वजन्मोंका सविस्तर चरित्र जान बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ १८–२४ ॥ राजा जयकुमार और रानी सुलोचनाका बराबर पांच भवसे गाढ़ स्नेह चला आया था इसलिये पूर्वजन्मका स्मरण होते ही उन्हें पूर्वभवकी समस्त विद्याओं का अनायास ही लाभ होगया ॥ २५ ॥ विद्याओंकी प्राप्ति होनेसे अपने विद्याप्रभाव से विद्याधरोंकी शोभा जीतते हुये वे दोनों दंपती विद्याधरोंके लोकमें विहार करने लगे ॥ २६ ॥ धर्म अर्थ काम तीनों पुरुषार्थोंसे भूषित राजा जयकुमार कभी मंदराचल पर्वतपर जा जिनेंद्र भगवान की पूजा वंदना करते कभी उसकी मनोहर गुफाओंमें दोनों क्रीड़ा करते ॥ २७ ॥ और कभी २ वे जहांपर सदा किन्नर जातिके देव मधुर रीतिसे गाया करते हैं ऐसी कुलपर्वतोंकी तलहटियोंमें जा विशाल नितंबोंसे शोभित परमसुंदरी सुलोचनाके साथ अनुपम क्रीड़ा करने लगते ॥ २८ ॥ इसप्रकार अनेक कला और गुणोंके स्थान यद्यपि राजा जयकुमार और सुलोचना कर्मभूमिसे उत्पन्न थे तथापि वे अपनी विद्याके प्रभावसे भोगभूमियोंमें भी जाकर यथेष्ट क्रीड़ा करते थे ॥ २९ ॥ ये दोनों दंपती परम शीलवान थे इसलिये इंद्रद्वारा इनके शीलकी अति प्रशंसा सुन रतिप्रभ नामका देव अपनी स्त्रीके साथ इनकी परीक्षार्थ आया कठिनसे कठिन परीक्षा करनेपर भी जब जयकुमार अपने शीलव्रतसे न चिगे तो देवने मेरुपर्वतपर भक्तिभावसे इनकी पूजा की। सो ठीक ही है—समस्त प्रकारकी शुद्धियोंमें शीलशुद्धि अतिशय आदरणीय है जिन महापुरुषोंकी आत्मा शीलकी शुद्धिसे शुद्ध है—जो परम शीलवान हैं उनके—औरकी तो क्या बात बड़े बड़े देव भी दास होजाते हैं ॥ ३०–३१ ॥ राजा जयकुमारने अपने कनिष्ठ (छोटे) भाई विजयके साथ बहुत कालतक प्रजाका रक्षण किया बहुतसी स्त्रियोंके साथ उत्तमोत्तम भोग भोगे ॥ ३२ ॥ किसी समय रानी सुलोचनाके साथ अनेक पर्वतोंपर क्रीड़ा करते २ उन्होंने भगवान ऋषभदेवकी वंदनाके लिये समवशरणकी ओर प्रस्थान किया ॥ ३३ ॥ जब वे समवशरणके समीप आये तो वे अपनी प्राणवल्लभा सुलोचनासे इसप्रकार कहनेलगे—

"प्रिये! देखो ये भगवान ऋषभदेव विराजमान हैं इनके चौतर्फा देव मनुष्य आदि तीनोंलोकके देव स्थित हैं ये भगवान आठ प्रतिहार्योंसे शोभित चौंतीस अतिशयोंसे भूपित हैं इनका अंतःकरण रागद्वेषकी कालिमासे रहित होचुका है एवं ये तीन जगतके परमेश्वर हैं ॥ ३४–३५ ॥ इस ओर सौधर्म आदि चारो निकायोंके देव और उनकी देवियां भगवानको मस्तक झुकाकर प्रणाम कर रही हैं ॥ ३६ ॥ ये भगवान ऋषभ-देवके समीप नानाप्रकारकी ऋद्धियोंसे भूपित वृषभसेन आदि सत्तर गणधर विराजमान हैं ॥ ३७ ॥ देखो ये भगवान ऋषभदेवके पुत्र बाहुबली बैठे हैं इनके चौतर्फा मुनि अवस्थाको प्राप्त इनके भाई स्थित हैं उनसे ये अनेक छोटे वृक्षोंसे मंडित वड़वृक्षकी उपमा धारण कर रहे हैं ॥३८॥ प्रिये! अपने भाई श्रेयांससे युक्त तप लक्ष्मीसे मंडित ये हमारे पिता भगवान सोमप्रभ विराजमान हैं ॥ ३९ ॥ अपने हजार पुत्रोंसे वेष्टित तपरूपी लक्ष्मीसे मंडित ये तुम्हारे पिता महाराज अकंपन विराजमान हैं॥ ४० ॥ जिनके साथ तुम्हारे स्वयंवरमें युद्ध हुआ था ऐसे प्रचंड भी दुर्मर्षण आदि राजा यहां राग द्वेपसे रहित उत्तम क्षमाके धारक अतिशय शांत हो विराजमान हैं ॥ ४१ ॥ ये समस्त आ-र्यिकाओंकी अग्रणी भगवान ऋषभदेवकी पुत्री ब्राह्मी और सुंदरी विराजमान हैं इन परम पवित्र पुत्रियोंने कुमार अवस्थामें भी अतिशय बलिष्ठ कामदेवको जीत लिया था ॥४२॥ अनेक राजाओंसे मंडित ये चक्रवर्त्ती भरत भगवानके समीप बैठे हैं एक ओर राजा भरतकी सुभद्रा आदिक रानियां स्थित हैं ॥४३॥ देखो! इधर तो देखो। आपसमें परम विरोधी भी ये तिर्यंच मित्रके समान मध्यस्थ भावसे बैठे हैं" ॥ ४४ ॥ इसप्रकार अपनी प्राणवल्लभा रानी सुलोचनाको समवशरणकी विभूति दिखलाते हुये राजा जयकुमार आकाशसे नीचे उतरे विनयसे भगवानकी स्तुति की एवं अतिविनम्र हो राजा भरतके समीप बैठि गये और रानी सुलोचना भी चक्रवर्तीकी पटरानी सुभद्रा के पास जा बैठी ॥ ४५ ॥ राजा जयकुमारने जिससे सविस्तर कथारूपी अमृत झर रहा था ऐसे धर्मका भलेप्रकार उपदेश सुना मोहनीयकर्मकी सूक्ष्मतासे उन्हैं सम्य-ग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र रूपी बोधिका लाभ होगया स्नेहरूपी जाल को जड़से उखाड़ रानी सुलोचनाको आश्वासन दिया अपने अनंतवीर्य पुत्रके शिरपर राज्यभार रखकर परमस्नेही राजा भरत द्वारा रोकेजानेपर भी अपने भाई विजयसेनके साथ जिनदीक्षा लेली एवं परमसंयमी होगये ॥ ४६–४९ ॥ राजा जयकुमारके साथ आठसौ राजा अन्य भी दीक्षित हुये और उन्होंने भी जयकुमारके समान स्त्री पुत्र मित्र राज्यसे सर्वथा मोह तोड़ दिया ॥ ५० ॥ रानी सुलोचनाने भी संसारका स्वभाव अतिशय भयावह समझ अपनी सौतोंके साथ सफेद वस्त्र धारण कर लिये एवं ब्राह्मी और सुंदरी सुतासे दीक्षा ले आर्यिका होगई ॥ ५१ ॥ राजा

मेघेश्वर (जयकुमार) शीघ्र ही वारह अंगोंके धारक भगवानके गणधर होगये और आर्यिका सुलोचना ग्यारह अंगकी धारिका होगई ॥ ५२ ॥ उससमय अनेक भूमिगोचरी और विद्याधर राजा व्यभिचारिणी स्त्रीके समान राज्यविभूतिको त्याग संयमी होगये ॥ ५३ ॥ भगवान ऋषभदेवके समवशरणमें चौरासी गणधर एवं चौरासीहजार मुनि थे ॥ ५४ ॥ जिनमेंसे चौरासी गणधरोंके नाम ये हैं—वृषभसेन १ कुंभ २ दृढ़रथ ३ शत्रुदमन ४ देवशर्मा ५ धनदेव ६ नंदन ७ सोमदत्त ८ सुरदत्त ९ वायुशर्मा १० सुवाहु ११ देवाग्नि १२ अग्निदेव १३ अग्निभूति १४ तेजस्वी १५ अग्निमित्र १६ हलधर १७ महीधर १८ माहेंद्र १९ वसुदेव २० वसुंधर २१ अचल २२ मेरु २३ भूति २४ सर्वसह २५ यज्ञ २६ सर्वगुप्त २७ सर्वप्रिय २८ सर्वदेव २९ विजय ३० विजयगुप्त ३१ विजयमित्र ३२ विजयश्री ३३ पराख्य ३४ अपराजित ३५ वसुमित्र ३६ वसुसेन ३७ साधुसेन ३८ सत्यदेव ३९ सत्यवेद ४० सर्वगुप्त ४१ मित्र ४२ सत्यवान ४३ विनीत ४४ संवर ४५ ऋषिगुप्त ४६ ऋषिदत्त ४७ यज्ञदेव ४८ यज्ञगुप्त ४९ यज्ञमित्र ५० यज्ञदत्त ५१ स्वायंभुव ५२ भागदत्त ५३ भागफल्गु ५४ गुप्त ५५ गुप्तफल्गु ५६ मित्रफल्गु ५७ प्रजापति ५८ सत्ययश ५९ वरुण ६० धनवाहिक ६१ महेंद्रदत्त ६२ तेजोराशि ६३ महारथ ६४ विजयश्रुति ६५ महाबल ६६ सुविशाल ६७ वज्र ६८ वैर ६९ चंद्रचूड ७० मेघेश्वर ७१ कच्छ ७२ महाकच्छ ७३ सुकच्छ ७४ अतिबल ७५ भद्रावलि ७६ नमि ७७ विनमि ७८ भद्रबल ७९ नंदी ८० महानुभाव ८१ नंदिमित्र ८२ कामदेव ८३ और अनुपम ८४ ॥ ५५–७० ॥ भगवान ऋषभदेवके समवशरणमें नानाप्रकारके गुणोंसे भूपित सात प्रकारके ऋषियोंका मनोहर संघ मोजूद था ॥ ७१ ॥ उसमें चार हजार सातसौ पँचांस महाभाग तो चौदह पूर्वोके धारक थे ॥ ७२ ॥ चार हजार एक सौ पचास श्रुतके शिक्षक मुनि थे ॥ ७३ ॥ नौ हजार अवधिज्ञानी, बीस हजार केवल ज्ञानी, ॥ ७४ ॥ बीस हजार छै सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, (जिनकी विक्रिया शक्ति इतनी चढ़ी वढ़ी थी कि वे चाहते तो इंद्र तकको जीत सकते थे) ॥ ७५ ॥ बारह हजार सात सौ विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानके धारक, ॥ ७६ ॥ और बारह हजार सातसौ पचास ही मुनि तर्कवादके ज्ञाता वादी थे जिनके कि सामने परवादी कितना भी जोर लगाते तव भी उन्हें जीत नहिं सकते थे ॥ ७७ ॥ उससमय समवशरणमें पँचांस हजार आर्यिका पांच लाँख श्राविका एवं तीन लाँख श्रावक मोजूद थे ॥ ७८ ॥ भगवानकी समस्त आयु चौरासी लाख पूर्व वर्षकी थी उनमें तिरासी लाख वर्ष छोड़ कर एक लाख वर्ष पूर्व केवलज्ञानी हो पृथ्वीपर विहार किया एवं संसाररूपी अगाध समुद्रसे अनेक भव्य जीवोंको पार किया ॥ ७९ ॥ इसप्रकार जिसके चरणोंकी वड़े बडे मुनि ऋषि और देवोंने पूजा की ऐसे भगवान ऋषभदेव समस्त

भव्यजीवोंको संसाररूपी समुद्रसे पार करनेवाले रत्नत्रयरूपी धर्म तीर्थकी प्रवृत्ति करके कल्प कालके अंत तक रहनेवाले तीनों लोकके जीवोंको हितकारक क्षेत्र तीर्थकी प्रवृत्ति करनेके लिये निषधाचल पर सूर्यके समान स्वभावसे ही कैलाश पर्वतपर आरूढ हो गये ॥ ८० ॥ जिससमय भगवान ऋषभदेव अनेक मणिमयी शिलाओंसे रमणीय कैलाश पर्वतपर विराजे उससमय उनके साथ २ दश हजार योगी और भी गये भगवानने वहांपर मनोयोग आदि तीनों योगोंका निरोध किया वेदनीय नाम आदि चार अघातिया कर्मोंको जड़से उखाड़ा और कल्पवृक्षोंकी मालाओंको धारण करनेवाले देवोंसे पूजितहो जहां सुख ही सुख है एसे मोक्ष स्थानपर जा विराजे ॥ ८१ ॥

त्रिभुवनके गुरु देवोंके देव भगवान ऋषभदेवके मोक्ष चले जानेपर समस्त मुनि मौन धारणकर दूर बैठि गये चारो प्रकारके देव एवं भरत चक्रवर्ती आदि राजा वहां पर आये सबने बड़ी भक्तिसे भगवानके शरीरकी चंदन पुष्प सुगंधित धूप निर्मल अक्षत एवं जाज्वल्यमान दीपकोंसे पूजाकी स्तुति की और अंतमें यह प्रार्थना कर कि "भगवानके गुणोंकी विभूति हमैं भी प्राप्त हो" अपने २ स्थानोंपर चलेगये ॥ ८२ ॥

इसप्रकार श्रीजिनसेनाचार्यनिर्मित भगवाननेमिनाथके चरित्रको वर्णनकरनेवाले हरिवंशपुराणमें भगवान ऋषभदेवका निर्वाणकल्याण वर्णन करनेवाला बारहवां सर्ग समाप्त हुआ।

त्रयोदश सर्ग।

(राजाओंके वंशकी उत्पत्ति)

अनंतर गौतमस्वाभि श्रेणिकसे कहने लगे—राजन् ! इसप्रकार भरतक्षेत्र के स्वामी चक्री भरतने बहुत कालतक राज्यविभूतिका भोग किया कदाचित् संसारको असारजान वे उदासीन होगये शीघ्रही अपने पुत्र अर्ककीर्तिका राज्याभिषेक करदिया अतिशय कठिन जिसमें केवल आत्माही परिग्रह रहजाता है जो कष्टसे निग्रह करने योग्य इंद्रियरूपी हिरणोंको वश करने के लिये दुर्लंघ्य पाश (जाल) स्वरूपहै ऐसी दिगंवर दीक्षा धारण करली पंच मुष्टियोंसे केशलोंच किया केशलोचके अनंतर ही घातिया कर्मोंके बंधको तोड़ वे तीनों कालके समस्त पदार्थोंको युगपत् जाननेवाले केवलज्ञानी होगये ॥ १-३ ॥ बत्तीसो इंद्रोंने आकर भगवान भरतके केवलज्ञानकी पूजा की और भव्यजीवोंको मोक्षका मार्ग दिखलाते हुये उन्होंने बहुत कालतक पृथ्वीपर विहार किया ॥ ४ ॥ भगवान भरतकी आयु ऋषभदेवके समान चौरासी लाख वर्ष पूर्वकी थी सतहत्तरलाख पूर्व वर्ष तो उनके कुमार अवस्थामें बीते छैलाख पूर्व पर्यंत चक्रवर्तीकी लक्ष्मीका भोग किया एवं एकलाख पूर्वतक केवल ज्ञानी हो जहां तहां पृथ्वीपर विहार किया ॥ ५ ॥ पश्चात् वृषभसेन आदि गणधरोंके साथ कैलाश पर्वतपर

आरुढ़ होगये वहांपर शेष चार अघातिया कर्मोंका नाशकिया एवं अनेक देवोंसे पूजित हो सिद्धि शिलापर जा विराजे ॥ ६ ॥ राजा अर्ककीर्तिका पुत्र यशःश्रुति हुआ अर्ककीर्ति उसै राज्यदे दिगंवर दीक्षा धारणकर मोक्ष चले गये ॥ ७ ॥ राजा यशःश्रुतिका पुत्र वल, वलके सुवल, उसके महाबल, उसके अतिबल, उसके अमृतबल, उसके सुभद्र, उसके सागर, उसके भद्र, उसके रवितेज, उसके शशी, उसके प्रभूततेज, उसके तेजस्वी, उसके तपन, उसके प्रतापवान, उसके अतिवीर्य, उसके सुवीर्य, उसके उदितपराक्रम, उसके महेंद्रविक्रम, उसके सूर्य, उसके इंद्रद्युम्न, उसके महेंद्रजित् उसके प्रभू, उसके विभु, उसके अरिध्वंस, उसके वीतभी, उसके वृषभध्वज, उसके गरुडांक और उसके मृगांक आदि अनेक राजा क्रमसे सूर्यवंशमें उत्पन्न हुये ये समस्त राजा बड़े यशस्वी और पराक्रमी थे एवं अपने पुत्रोंको राज्यभार सोंप मोक्षचले गये ॥ ८—१२ ॥ भरतको आदि लेकर इश्वाकुवंशीय चौदहलाख राजा बरावर मोक्ष गये और एक राजा अहमिंद्र हुआ। उसके वाद अस्सी राजा क्रमसे मोक्ष गये परंतु उनके वीचमें एक २ राजा इंद्र होता रहा ॥ १३—१४ ॥ भरतके पुत्र अर्ककीर्तिने सूर्यवंशकी स्थापना की थी इसलिये ये राजा सूर्यवंशी भी कहलाते थे समस्त सूर्यवंशीय राजा बडे धीर वीर थे इन्होंने राज्यकी धुराका त्यागकर तपकी धुरा धारण की और इनमें अनेक स्वर्ग और अनेक मोक्ष गये ॥ १५ ॥ बाहुवलीका पुत्र सोमयश था इसने सोमवंशकी स्थापना की सोमयशका पुत्र महाबल महाबलका सुबल और सुवलका भुजबली इत्यादि सोमवंशसे उत्पन्न अनेक राजा भी मोक्ष गये ॥ १६—१७ ॥ इसप्रकार भगवान ऋषभदेवके तीर्थकी प्रवृत्ति पृथ्वीपर पचास करोड़ लाख सागर प्रमाण विराजमान रही ॥१८॥ इसवीचमें इक्ष्वाकुवंशकी शाखा सूर्यवंश और सोमवंशमें उत्पन्न होनेवाले अनेक राजा एवं उग्र आदि और कौरव आदि वंशके अनेक राजा यथायोग्य स्वर्ग और मोक्ष गये ॥ १९ ॥ विद्याधरोंके स्वामी राजा नमिके रत्नमाली पुत्र था एवं रत्नमालीका रत्नवज्र, उसका रत्नरथ, उसका रत्नचिन्ह, उसका चंद्ररथ उसका वज्रजंघ उसका वज्रसेन उसका वज्रदंष्ट्र उसका वज्रध्वज उसका वज्रायुध उसका वज्र उसका सुवज्र उसका वज्रभृत् उसके वज्राभ उसके वज्रबाहु उसके वज्रांग उसके वज्रसुंदर उसका वज्रास्य उसका वज्रपाणि उसका वज्रजानु उसका वज्रवान उसका विद्युन्मुख उसका सुमुख उसका विद्युद्दंष्ट्र उसका विद्युत्वान उसका विद्युदाभ उसका विद्युद्वेग और उसका वैद्युत पुत्र हुआ ॥ २०—२४ ॥ इन विद्याधर राजाओंने भी भगवान ऋषभदेवके ही तीर्थमें अपने पुत्रोंको राज्यभार दे तपकर यथायोग्य स्वर्गमोक्षका लाभ किया ॥ २५ ॥

भगवान ऋषभदेवके मोक्षजानेपर पचास करोड़ लाख वर्षके पश्चात् सर्वार्थसिद्धिसे चयकर भगवान अजितनाथ हुये इनके पांचो कल्याण भगवान ऋषभदेवके समान ही

मनाये गये ॥ २६ ॥ अजितनाथके समयमें द्वितीय चक्रवर्ती सगर हुये इनके निधि और रत्न चक्रवर्ती भरतके समान ही थे ॥ २७ ॥ राजराजेश्वर सगरके जन्हुकुमारको आदि लेकर साठ हजार पुत्र थे इन समस्त कुमारोंकी चेष्टा अतिशय सुंदर थी और आपसमें उनका प्रेम अद्वितीय था ॥ २८ ॥ कदाचित् ये समस्त भाई कैलाश-पर्वतपर गये प्रथम ही इन्होंने कैलाशपर आठ पादस्थान वनाये पश्चात् वे खाईके लिये उसकी इधर उधरकी पृथ्वी दंडरत्नसे खोदने लगे इनके इस कर्तव्यपर वहांके निवासी नागराजको वडा क्रोध आया और विना विचारे ही उसने इन सबको भस्म करदिया ॥ २९ ॥ पुत्रोंको इसप्रकार भस्म किये सुन राजा सगरको बड़ा दुःख हुआ किंतु वह संसारकी स्थितिका सच्चा जानकर–विद्वान था इसलिये उसने अपने पुत्रोंके मरनेका शोक दूर कर भगवान अजितनाथके समीप दीक्षा धारण करली और अंतमें समस्त कर्मबंधोंको काटकर मोक्ष चलागया ॥ ३० ॥ भगवान अजितनाथके मोक्ष चलेजानेके वाद तीसरे तीर्थंकर संभवनाथ हुये चौथे अभिनंदन पांचवें सुमतिनाथ छठे पद्मप्रभ सातवें सुपार्श्व आठवें चंद्रप्रभ नवमें पुष्पदंत और दशवें शीतलनाथ हुये ॥३१–३२॥

अनंतर गौतम स्वामीने राजा श्रेणिकसे कहा–राजन्! सबसे प्रथम संसारमें इक्ष्वाकुवंश उत्पन्न हुआ उसके वाद सूर्यवंश और सोमवंश हुये और उसीसमयमें कुरुवंश उग्रवंश आदि वंश भी उत्पन्न हुये। पहिले भरतक्षेत्रमें भोगभूमि थी इसलिये न कोई ऋषि थे और न वंश आदि ही थे किंतु भगवान ऋषभदेवके समयसे ऋषि और वंशोंका प्रचार हुआ इसप्रकार मैं तुम्हारे सामने नरपति और विद्यधारोंके परंपरागत वंशका वर्णन कर चुका अब जिसके केवलज्ञानरूपी दीपकके जाज्वल्यमान प्रकाशसे प्रकाशित इस जगतमें इंद्र और देवोंका आगमन हुआ एसे दशवें तीर्थंकर भगवान शीतलनाथके निर्मल तीर्थकी प्रवृत्तिके समय होने वाले हरिवंशका वर्णन करता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो ॥ ३३–३४ ॥

इसप्रकार श्रीजिनसेनाचार्यनिर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें इक्ष्वाकुवंशका वर्णन करनेवाला तेरहवां सर्ग समाप्त हुआ।

चतुर्दश सर्ग।

इस जंवूद्वीपमें एक वत्स नामका देश है यह देश समस्त देशोंमें गौको दुहते समय वच्छाके समान परमप्रिय और रमणीय जान पड़ता है ॥ १ ॥ वत्सदेशके ठीक मध्यभागमें कौशांवी नामकी एक नगरी है यह नगरी यमुनाके तटपर वसी हुई है इसलिये यमुनाके स्निग्ध और काले जलमें पड़े हुये उन्नत महलोंके प्रतिविंवसे यह अतिशय रमणीय जान पड़ती है ॥ २ ॥ इसे यदि सुंदर स्त्रीकी उपमा दी जाय

तो कोई अत्युक्ति न होगी क्योंकि स्त्री जैसी भूषण और वस्त्रोंसे शोभित रहती है उसी प्रकार यह भी वप्र परकोट और खाईरूपी भूषण और वस्त्रोंसे भूपित है स्त्री जैसी नितंब और स्तनोंके भारसे पीडित हो शिथिल खड़ी रहजाती है उसीप्रकार यह भी छोटे २ पर्वतरूपी स्तनोंके भारसे जिकड़ी हुई निश्चलरूपसे स्थित है ॥ ३ ॥ यह नगरी प्रौढ़ अभिसारिका (व्यभिचारिणी) स्त्री के समान जान पड़ती है क्योंकि अभिसारिका जैसी (रत्नचित्रांबरधरा) रत्नजटित चित्रविचित्र भूषणोंसे भूपित रहती है यह भी रत्नोंके समान चित्र विचित्र आकाशसे मंडित है । व्यभिचारिणी स्त्री जैसी (वर्षानिशासु प्रासादमुखैः घनान् स्निग्धान् लेढि) अंधकारबहुल रात्रिमें प्रसन्न मुखसे अपने बहुतसे प्रेमियोंका चुंबन करती है यह भी वर्षाकालमें अपने उन्नत महलोंके अग्रभागद्वारा जलसे भरे मेघोंका स्पर्श करती है ॥ ४ ॥ परंतु कृष्णपक्षमें यह नगरी सती स्त्रीकी उपमा धारण करती है क्योंकि सती स्त्री जैसी (दोषाकरकराप्राप्ता) दुष्ट कामी मनुष्योंके हाथ नहिं आती यह भी कृष्णपक्षमें चंद्रमाके न होनेसे उसकी किरणोंका स्पर्श नहीं करती । सती स्त्री जैसी (बहुलदोषासु रत्नभूषार्चिषां चयैः परभागं लेभे) दोषोंकी खानिस्वरूप स्त्रियोंमें अपने रत्नमयी भूषणोंकी दीप्तिसे अतिशय उत्कृष्ट सौभाग्यवती मालूम पड़ती है उसीप्रकार यह नगरी भी गाढ़ अंधकारसे युक्त रात्रियोंमें रत्नरूपी भूषणोंकी कांतिसे अतिशय रमणीय जान पड़ती है ॥५॥ इस कौशांबी पुरीका स्वामी अतिशय प्रतापी सुखोंका भंडार राजा सुमुख था जिसप्रकार सूर्य अपनी करों (किरणों) से समस्त दिशाओंको व्याप्त कर देता है उसीप्रकार इस राजाने भी समस्त दिशाओंको अपने कर (टेक्स) से व्याप्त रक्खा था ॥ ६ ॥ इंद्रके धनुषने हरे पीले आदि अनेक वर्णोंको स्थान दे रक्खा है । अर्थात् वह उनसे संकीर्ण है और गुण (फिडच) से रहित है परंतु राजा सुमुखके धनुषमें यह बात (वर्णसांकर्य) न थी अर्थात् उसने अपने प्रभावसे वर्णसंकर (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंका परस्पर एक होजाना) दोष हटा दिया था और गुणसे भूपित था इसलिये इसके धनुषने इंद्रधनुषकी शोभा हरली थी ॥ ७ ॥ यह राजा अतिशय कमनीय अंगका धारक और नवयौवन लक्ष्मीसे विभूपित था इसलिये जिसका शरीर देखनेमें नहिं आता ऐसे अनंग (कामदेव) की इसै उपमा नहिं दी जा सकती थी ॥ ८ ॥ यह राजा धर्मशास्त्रमें अतिशय प्रवीण था कला और गुणोंसे भूपित था शत्रुओंका निग्रह और मित्रोंका अनुग्रह करना इसका परमधर्म था न्यायपूर्वक प्रजाका रक्षण करता था ॥ ९ ॥ अंतःपुरकी रानीरूपी वनश्रेणीकेलिये भ्रमर था जो ऋतु आकर प्राप्त होती उसीके अनुसार भोग भोगनेवाला था एवं परस्पर बाधारहित धर्म अर्थ और कामका पालक था ॥ १० ॥

कदाचित् वसंत ऋतुका आगमन हुआ वसंत के प्रभाव से चारो दिशायोंमें एक

विलक्षणही शोभा नजर आने लगी उससमय वनमाला नवीन पुष्प और पल्लवोंकी लालिमासे व्याप्त होगई थी इसलिये उससे वसंत ऋतु अतिशय रमणीय जान पड़ती थी ॥ ११ ॥ मनुष्योंके मनको हरण करनेवाले आम्रके वृक्ष उससमय लाल लाल नवीन पल्लवोंसे व्याप्त हो गये थे उनसे एसा जान पड़ता था मानो ये राजा सुमुखको वनश्रेणीकी प्रीतिके लिये सूचना दे रहे हैं ॥ १२ ॥ किंशुक (ढाक) के वृक्ष अग्निकी प्रचंड ज्वालाके समान चौतर्फा रक्त हो गये थे उनसे ऐसा जान पड़ने लगा मानो वियुक्त हुये अनुरक्त स्त्री पुरुषोंकी उपशांत विरह ज्वाला फिरसे धधक उठी है ॥ १३ ॥ उससमय अशोक वृक्ष नवीन युवाकी तुलना कर रहा था क्योंकि युवाके शरीरपर जिसप्रकार (रणन्नूपुरचारुस्त्रीकोमलक्रमताडितः पल्लवांगरुहः) झनकार शब्द करती हुई पायजेबोंसे मनोहर स्त्रीके अतिशय कोमल चरणके स्पर्शसे पल्लवोंके समान पुंख (रोंगटे) खड़े हो जाते हैं उसीप्रकार अशोक वृक्षभी झनकार शब्दोंसे युक्त पायजेबोंसे भूषित स्त्रीके कोमल चरण का स्पर्श करते ही नवीन २ पल्लवोंसे लदवदा गया था ॥ १४ ॥ बकुल वृक्ष (मोलसिरी) स्त्रियोंके अखंड मद्यके कुल्लोंसे फूल गया था इसलिये उसै देख प्रमदा जनोंको परम आनंद होता था ॥ १५ ॥ जो मनुष्य उससमय सुखी थे अपनी २ बल्लभाओंसे संयुक्त थे उन्हैं तो अपने ऊपर गुंजार शब्द करते हुये भ्रमरोंसे कुरवक वृक्ष परम आनंद देता किंतु जो दुःखी विरही थे उन्हैं दुःख कर अपने अर्थको (कु—खोटे—रोना चिल्लाना रूप रवक—शब्दकरानेवाला) चरितार्थ करता था ॥ १६ ॥ उससमय चौतर्फा फूले हुये तिलक वृक्षोंने अपनी शोभाद्वारा पटलजातिके वृक्षोंकी सुगंधिसे व्याप्त वन लक्ष्मी रूपी वनिताको पुष्पवती[1] बना दिया था ॥ १७ ॥ जिस प्रकार हस्तियोंके दमन करनेकेलिये केशर (गर्दनके बाल) से शोभित सिंह कूदते फिरते हैं उसीप्रकार वसंत ऋतुमें खिले हुये नाग वृक्षोंके दबानेकेलिये ही मानो सिंहकेसर जातिके वृक्ष खिल उठे थे ॥ १८ ॥ जिसप्रकार कोई पुरुष चिरकालके वियोगसे कृश अपनी वल्लभाको आलिंगन कर पुष्ट एवं पुष्पवती (रजोधर्मवती) कर देता है उसीप्रकार वसंतने चिरकालसे वियुक्त अत एव सूखी हुई अपनी मालती रूपी वल्लभाको अपने मिलापसे प्रफुल्लित और पुष्पोंसे व्याप्त कर दिया था ॥ १९ ॥ उससमय अतिशय रक्त कंठ और अधरोंकी शोभासे मंडित एवं झूलनेके अतिशय प्रेमी अनेक स्त्री पुरुष झूलापर वैठकर हिंदोल नामक रागमें मनोहर गान गाते थे ॥ २० ॥ कोई कोई स्त्रियोंके प्रेमी मनुष्य वसंत ऋतुके अनुकूल भूषण वस्त्र पहिनकर वगीचे और वनोंमें जाते और वड़ी प्रीतिसे मद्यपान करते थे ॥ २१ ॥ वनमें हरिण पहिले दूब घासका स्वयं आस्वादन करते और पीछे उसै हरिणीको देते हरिणी भी उस-

१—पुष्पवती फूलोसे व्याप्त वनितापक्षमे रजोधर्ममें युक्त।

का आस्वादन कर हिरणको देती सो ठीक है कि–अपने प्रियकी सूंघी हुई भी वस्तु परम आनंद देती है ॥ २२ ॥ उससमय मदोन्मत्त हाथी सल्लकी वृक्षके सुंदर पल्लवोंके खानेमें अतिशय लालायत अपनी प्रेयसी हथिनीको अपने मुखसे चुंबन करते और उन्हें चुंबनजन्य सुखमें मस्त कर देते थे ॥ २३ ॥ नूतन २ पुष्पोंमें स्थित मधुको पीते हुये भ्रमर भ्रमरी इधर उधर शब्द करते हुये फिरते थे एवं बड़ी लालसासे एक दूसरेका आघ्राण और चुंबनकर आनंदित होते थे ॥ २ ॥ उससमय कोकिला इधर उधर कुंहू कुहू मनोहर शब्द करतीं थीं उससे ऐसा जान पड़ता था मानो अपने समान सुरीले कंठोंसे भूषित रमणियोंका गान सुनकर वे उनके जीतनेकी इच्छासे ही शब्द कर रहीं हैं ॥ २५ ॥ इसप्रकार संसारमें वसंत राजाके उदित होने पर राजा सुमुखका भी विलासी मन वन विहारके लिये उत्सुक हुआ सो ठीक ही है जिस वसंतके प्रभावसे भ्रमर कोयल आदि क्षुद्र जंतु भी वश हो नाना गान गाने लगते हैं तो मनुष्योंकी बात ही क्या है ? ॥ २६ ॥ प्रथम ही उसने उत्तमोत्तम वस्त्र और आभूषण पहिने पश्चात् वह भलेप्रकार सजाये गये किसी अतिशय उन्नत हाथीपर सवार हो सधधजके वनकी ओर निकला ॥ २७ ॥ उससमय उसके मस्तकपर पूर्ण चंद्रमाके समान अतिशय स्वच्छ छत्र फिरता था जिससे कि सूर्यकी प्रभा (धूप) दब रही थी ॥ २८ ॥ नानाप्रकारके जलोंसे पूर्ण समुद्रके समान अनेक राजाओंसे व्याप्त वंदीगणोंसे स्तुत राजा सुमुख राजमंदिरसे निकल राजमार्गपर अवतीर्ण हुये ॥ २९ ॥ वसंतऋतुके समान सदासे प्रजाके मनमें विराजमान राजा सुमुखके देखनेकेलिये नगरकी नारियोंमें वड़ा कोलाहल मचा ॥ ३० ॥ चारो ओर 'वर्धस्व, जय, नंद' यही ध्वनि सुनी जाने पड़ी, हाथोंको जोड़े हुये अतिशय व्याकुल हो स्त्रियां अपने नेत्ररूपी अंजलियोंसे सुमुखके रूपका पान करने लगीं ॥ ३१ ॥

स्त्रियोंके मध्यमें एक अतिशय मनोहर साक्षात् रतिके समान स्त्री बैठी थी अचानक ही उसपर राजाकी दृष्टि पड़गई उसका मुख चंद्रमाके समान था नेत्र कमलके समान थे दोनों ओष्ठ विंबाफल सरीखे और कंठ शंख तुल्य था उसके स्तन चक्रवालोंकी उपमाको धारण करते थे कटिभाग अतिशय कृश था नाभि अत्यंत गहरी थी दोनों जघन सुघटित थीं नितंब कुंदरूफलसे तुलना करते थे और उसके दोनों चरण–विशाल उरू सुंदर जंघा एवं पार्ष्णियोंसे अतिशय शोभायमान थे ॥ ३२–३४ ॥ राजा सुमुख उसपर अति आसक्त होगया और लालसापूर्वक उसपर गिरी हुई अपनी चंचल दृष्टिको जरा भी न रोक सका ॥ ३५ ॥ उसके मनमें सहसा इस बातकी चिंता हुई कि–मुग्ध हरिणीके समाननेत्रोंसे शोभित यह रमणी किसकी आज्ञाकारिणी स्त्री है ? अतिशय हर्षित यह वरावर अपने रूपरूपी पाशसे मेरे मनको खींच रही है

॥ ३६ ॥ यदि इसजन्ममें मैंने हृदयको आनंद देनेवाली इस रमणीके साथ विलास न किया तो मेरा यह ऐश्वर्य व्यर्थ है यह सुंदररूप और नवीन यौवन भी किसी कामका नहीं ॥३७॥ चाहै यह समस्तलोक परस्त्री सेवन करनेके कारण एक ओर हो मेरा सर्वदाके लिये विरोधी होजाय परंतु मेरा जो चित्त परस्त्रीमें आसक्त होगया है उसै मैं रोक नहिं सकता ॥ ३८ ॥ इसप्रकार बहुत काल तक विचार कर राजा सुमुखने उस स्त्रीके हरण करनेकी ठानली सो ठीक ही है—कामी पुरुष अपना अपवाद सहने सन्नद्ध होजाते हैं परंतु मन वश नहिं कर सकते ॥ ३९ ॥ यद्यपि सूर्य अतिशय प्रतापी है तथापि अस्तकालमें उसको नियमसे अंधकार दबा देता है उसी-प्रकार यद्यपि राजा सुमुख परम यशस्वी और लोकाचारका वेत्ता था परंतु जब उसकी बुद्धि विनाशोन्मुख होगई तो वह शीघ्र ही परस्त्रीमोहरूपी जालमें फँस गया ॥ ४० ॥ वह स्त्री भी अतिशय रूपवान राजा सुमुखको देखकर कामसे व्याकुल होगई एवं जिसप्रकार झूलेमें झूलती हुई स्त्री स्थिर नहिं रह सकती उसका मन जरा भी स्थिर न रह सका ॥ ४१ ॥ उसका मन राजा सुमुखमें अतिशय आसक्त होगया इसलिये वह भी जिसमें कटाक्ष भौंह चलाना आदि चित्र विचित्र रस प्रकट रूपसे छटक रहे थे अनेक भाव प्रकट करने लगी ॥ ४२ ॥ कभी तो वह कटाक्ष फेंकती पीछे उन्हें नेत्रप्रांतमें संकुचित कर लेती कभी राजाके नेत्रोंसे नेत्र भिड़ा देती ॥ ४३ ॥ कभी वह अधर स्तन नाभिका मध्यभाग श्रोणी और चरण दिखलाती कभी टेढ़ी चित-वनसे चितवती इसलिये उसने राजाकी कामाग्नि अतिशय प्रदीप्त करदी ॥ ४४ ॥ अतिशय स्निग्ध आमने सामने लगे हुये अपने नेत्रोंसे उन दोनोंने अपनी प्रिय बात करली और दोनों विह्वल होगये इसलिये विचारी जीभको उससमय बात चीत करनेका अवसर ही नहिं मिल सका ॥ ४५ ॥ जिनके प्रेमका बंधन छूट नहिं सकता था ऐसे वे दोनों स्त्री पुरुष अपने अपने अभीष्ट मनोरथकी आशा कर अतिशय दुर्लभ जो आ-लिंगन और संभोगरूपी फल उसको चाहने लगे ॥ ४६ ॥ अतिशय अनुरक्त उस स्त्री का मन तो राजाने लेलिया और अपना मन उसै देदिया इसलिये ऐसा जान पड़ता था मानो उन दोनोंने परस्परमें फिरसे मिलाप होनेकी साई (नजराना) दे दी है। इसतरह विह्वल हो उस राजाने नगरीसे वनकी ओर चलकर समस्त प्रजाको आनंद देनेवाले यमुनोत्तंस नामक वनमें प्रवेश किया वह वन राजा वसंतका मुकुट सरीखा जान पड़ता था और अपनी अद्वितीय शोभासे नंदनवनकी तुलना करता था ॥ ४७-४८ ॥ उस वनमें जगह २ सुपारी नारियल अनार और केला आदिके वृक्ष फल फूल रहे थे वृक्षोंके चारो ओर नागलता लिपटी हुई थी उनसे वह वन अतिशय रमणीय जान पड़ता था ॥ ४९ ॥ राजा सुमुख अपनी रानियोंसे मंडित हो मनोहर वनमें वि-

हार करने लगा एवं समान अवस्थाके अनुकूल अनेक राजपुत्रोंके साथ क्रीड़ा करनेमें आसक्त होगया ॥ ५० ॥ कुछ समय क्रीड़ा करनेके वाद जिससमय राजा सुमुखको वनमालाकी (जिस स्त्रीपर राजा सुमुख आसक्त हुआ था उसकी) याद आई और अपनेको वनमालासे वियुक्त देखा तो उसै अनेक जनोंसे भराहुआ भी वह उद्यान सूना भासने लगा ॥ ५१ ॥ वनमालाके अनुरागसे हृतचित्त राजा सुमुख शीघ्र ही कौशांबी पुरी लोट आया सो ठीक ही है जिनका कि मन दूसरेके आधीन है वे मनुष्य स्वस्थ कैसे रह सकते हैं ॥५२॥ राजाको अतिशय उदासीन देख मंत्री सुमतिने एकांतमें पूछा-

"प्रभो! आप आज व्याकुल क्यों दीखते हैं कृपाकर इस व्याकुलताका कारण कहिये ॥ ५३ ॥ यह आपका एकछत्र राज्य है प्रजा आपमें अतिशय अनुरक्त है आपने अपने अनुराग और प्रतापसे समस्त राजाओंको निस्तेज दास बना लिया है ॥ ५४ ॥ आप समस्त याचकोंको उनकी इच्छानुसार दान देते हैं इसलिये वे आपकी अतिप्रशंसा करते हैं रानियोंपर आपकी अधिक कृपा है इसलिये वे भी आपकी प्रणयिनी बनी हुई हैं ॥ ५५ ॥ धर्म अर्थ और काम ये तीनो ही पुरुषार्थ आपके पूर्णरीति से पलते हैं इनमें से कोई भी आपको दुर्लभ नहीं समस्त पदार्थ आपकी आज्ञा होते ही उपस्थित हो जाते हैं स्वामिन्! इसप्रकार जब सभी वातोंकी आपके लिये सुलभता है तब न मालूम आपका मन इसतरह क्यों कुंद है ॥ ५६ ॥ जब किसी मनुष्यपर आपत्ति आनकर पड़ जाती है तो वह उसका कुछ भाग अपने मित्रोंमें बांटकर स्वस्थ हो जाता है यह एक सांसारिक नियम है इसलिये नाथ! आप शीघ्र ही आज्ञा करिये मैं आज ही आपकी अभिलाषा पूरी करूंगा क्योंकि स्वामीके सुखी होनेपर ही सेवक सुखी हो सकते हैं ॥५७-५८॥ मंत्री सुमतिके ऐसे अनुकूल वचन सुन राजा सुमुखने कहा-

"मित्र! आज मैंने वनविहारको जाते समय अतिशय सुंदरी एक परस्त्री देखी है उसने मेरे चित्तको सर्वथा वश कर लिया है ॥५९॥ अतिशय रमणीय कटाक्षोंसे अपने भावोंको बतलानेवाली वह सुंदरी तुमने भी शायद अवश्य ही देखी होगी" ॥६०॥ राजा सुमुखके ऐसे वचन सुन मंत्रीने उत्तर दिया-स्वामिन्! मैंने भी वह अवश्य देखी थी वह सेठ वणिक वीरककी स्त्री थी और उसका नाम वनमाला है ॥ ६१ ॥ पुनः राजा सुमुख बोले-"मंत्रिन्! यदि आज मेरा उसके साथ मिलाप न हुआ तो विश्वास रक्खो न तो मैं ही जीवित रहसकता हूं और न वह सुंदरी ही जी सकेगी ॥ ६२ ॥ मुझे जान पड़ता है मेरे विना वह एक दिन भी नहिं ठहर सकती और न उसके विना मैं ही रह सकता हूं इसलिये जल्दी ही हम दोनोंका मिलाप हो जाय इसवातके लिये बहुत शीघ्र ही उपाय करो ॥ ६३ ॥ यद्यपि इसकार्यके करनेसे इसजन्ममें मेरी निंदा होगी और परभवमें मुझे अनर्थका सामना करना पड़ेगा परंतु जन्मांध जिसप्रकार कुछ भी

नहिं देख सकता उसीप्रकार कामांध अज्ञानी मैं भी कार्य अकार्यका कुछ भी विचार नहिं कर सकता ॥ ६४ ॥ यद्यपि मैं इससमय सर्वथा अकार्यमें प्रवृत्त हो रहा हूं तथापि इससे मुझै रोकना तुम्हैं उचित नहीं क्योंकि यदि जीवन रहा तो पापकी निवृत्तिकेलिये बहुतसे उपाय करलिये जांयगे" ॥ ६५ ॥ उससमय राजा सुमुखके मुखसे निकले हुये वचन यद्यपि सर्वथा अन्यायस्वरूप थे तथापि मंत्री सुमतिने उन्हैं मान लिया सो ठीक ही है राजाके ऊपर किसी विपत्ति के आनेपर मंत्रिगण ही उस विपत्तिको दूर करते हैं ॥ ६६ ॥ उसने प्रतिज्ञापूर्वक राजासे कहा "राजन्! आप खिन्न न हों मैं इसबातका अभी प्रयत्न करता हूं आप आज ही वनमालाको अपने पास आई हुई देखेंगे ॥६७॥ महाराज! आप पहिलेहीके समान स्नान भोजन उपटन आदि नित्यक्रियायें करें सुंदर वस्त्र पहिनें और महासुगंधित मालायें धारण करैं" ॥ ६८ ॥ अतिशय बुद्धिशाली मंत्री सुमतिके नम्रतासे भरे ऐसे वचन सुन राजा सुमुख भोजनादिके लिये पूर्ववत् प्रवृत्त होगया यद्यपि उसका मन वनमालाकी ओर ही झुका हुआ था उसकी अभिलाषा भोजनकेलिये न थी परंतु उससमय वह मंत्रीके वचनानुसार वैसा करनेमें तत्पर हुआ ॥६९॥ कुछ समयके बाद पृथ्वीपर संध्याकालने डेरा आ जमाया भगवान सूर्यने अपनी किरणोंका धीरे २ संकोचकर लिया सो उससे ऐसा जान पड़ने लगा मानों राजा सुमुखके भीतरी अभिप्रायको समझकर दयालु भास्कर पश्चिम दिशाकी ओर गमन कर गये हैं ॥ ७० ॥ जिससमय प्रौढ (प्रतापी) मित्रमंडल (सूर्यमंडल या मित्रोंका समूह) नष्ट प्रतापहो अस्त (नष्ट) होने लगा उससमय अतिशय उद्यमी (दिनभर काम करनेवाले या मित्रोंकी सहायता करनेमें उद्यमी) लोग भी निरुद्यमी (रात्रि होनेसे परिश्रम रहित या मित्रों के नष्टभ्रष्ट होनेसे उत्साहरहित) होगये ॥ ७१ ॥ उससमय चकवा चकवी अपनी स्नेह दृष्टिरूपी रस्सियोंसे सूर्यको अपनी तरफ खींचने लगे थे इसलिये ही मानो कठिनतासे वह धीरे धीरे पश्चिम दिशाकी ओर जाने पाया था ॥ ७२ ॥ जिसप्रकार राजा सुमुखका चित्त विवेकके चले जानेपर वनमालाके अनुरागसे अतिशय रक्त होगया था उसीप्रकार सूर्यके चलेजानेपर संध्याकी ललोंईसे समस्त आकाश ललोंआ होगया ॥ ७३ ॥ सूर्यके चलेजानेपर कमलोंका तेज खंडित होगया इसलिये वे संकुचित होगये सो ठीक ही है जो मित्र (सूर्य) के बढ़नेपर हर्ष मानते हैं वे मित्रपर (सूर्यपर) आई हुई आपत्ति (अस्त होना) देख कब प्रफुल्लित रह सकते हैं? ॥ ७४ ॥ धीरे धीरे संध्याकी रक्तिमा भी खसकने लगी समस्त पृथ्वीपर अंधकारका प्रताप जमगया उससमय ऐसा जान पड़ता था मानों समस्त जगतने रक्त वस्त्र छोड़ नीलवस्त्र धारण किया है ॥ ७५ ॥ जिसप्रकार (विषमे प्रदोषे काले) भयंकर आपत्तिके समय (क्षणं तिमिरोपहतं लब्धवर्णैरपि वर्णविवेको न लब्धः) बुद्धिमान मनुष्योंको भी घबड़ाहटके सबब अपने उत्तमवर्णका कुछ भी ख्याल

नहिं रहता उससमय उनसे नीचसे नीच भी काम बन जाता है उसीप्रकार उससमय संध्याकाल होनेके कारण मनुष्योंके नेत्र अंधकारसे ढकचुके थे इसलिये अच्छे नेत्रवालोंको भी 'यह वर्ण पीला है यह सफेद है' इसबातका कुछ भी ज्ञान नहिं हो सकता था ॥७६॥ इसतरह रात्रिके होनेपर मंत्री सुमतिने राजा सुमुखकी आज्ञा लेकर आत्रेयी नामकी कोई दूती शीघ्र ही बनमालाके पास भेजी ॥ ७७ ॥ वह दूती दूतविद्यामें बड़ी प्रवीण थी मंत्रीकी आज्ञासे बहुत जल्दी वनमालाके पास प्रहुंच गई वनमालाने दूतीका वड़ा सन्मान किया बैठनेकेलिये उत्तम आसन दिया वनमालाके वर्तावसे दूती वड़ी प्रसन्न हुई उसने वनमालाकी अधिक प्रशंसा की एवं एकांत स्थानमें ले जाकर उससे इस प्रकार प्रेमटपकते हुये वचनोंमें कहने लगी—

प्यारी बेटी वनमाला! तू आज मुझै अति उदास जान पडती है इस उदासीका क्या कारण है? क्या तेरे पतिने तुझसे कुछ कहा सुनी की है इसवास्ते रूसी हुई है? ॥ ७८–७९ ॥ सेठ वीरक तो स्वदारसंतोषी है उसके तो तू ही अकेली स्त्री है फिर नहिं समझमें आता तू क्यों अनमनीसी है? यदि कोई दूसरा कारण है तो उसै कह ॥ ८० ॥ बेटी! मुझसे तो कोई बात बाकी बची नहिं है मै सब बातोंकी भलेप्रकार जानकार हूं मेरे जीते तेरी इच्छा पूरी न हो यह बात जरा कठिन है ॥ ८१ ॥ वनमालाने जब दूतीके ऐसे अनुकूल वचन सुने तो उसका हृदय पिघल गया वह गरम गरम श्वास लेने लगी उसके अधररूपी कोमल पल्लव मुरझा गये एवं अधिक आग्रह करनेपर वह इसप्रकार अपने मनका भाव कहने लगी—

"मा! तुम्हारे सिवाय संसारमें मैं किसीपर विश्वास नहिं करती गुप्तसे गुप्तभी बात छै कानोंमें पड़ते ही चट प्रकट हो जाती है इसलिये यह प्रार्थना है कि–मैं जो बात कहूं आप उसकी भले प्रकार रक्षा करैं किसी को भी मालूम न होने दें ॥८२–८३॥ आज मैंने कमनीय रूप और मुखसे शोभित राजा सुमुख देखा था उसके देखते ही वह और कामदेव दोनों मेरे मन में हठात् प्रवेश कर गये हैं ॥ ८४ ॥ इससमय मेरे हृदय की खल (दुर्जन) के समान अवस्था हो रही है क्योंकि खल जैसा दुर्लभ वस्तुकी इच्छा कर सुलभ से द्वेष करने लगता है पश्चात् दोनोंके हाथ न आने से पछतावा करता है उसीप्रकार मेरा यह हृदय भी दुर्लभ सुमुख राजा की चाहना कर उसकी प्राप्ति न होनेसे पछतावा कर रहा है ॥ ८५ ॥ यद्यपि संतापकी निवृत्तिकेलिये इस हृदयपर चंदनका लेप करती हूं तो भी उससे उलटा संताप ही बढ़ता है सो ठीक ही है अंतरंग कार्यमें वहिरंग कारण क्या कर सकता है? भीतरे दाहको वाह्य उपचार कैसे शांत कर सकता है? ॥८६॥ शांतिकेलिये मैं शरीरपर गीला कपड़ा भी रखतीहूं परंतु तो भी मुझे शांति नहिं होती उलटी जलन ही भभकती जाती है क्या किया जाय

दाह तो अधिक एवं प्रबल है और यह शीतस्पर्श बिलकुल थोड़ा है भला इससे उग्र दाहकी शांति कैसे हो सके ? ॥८७॥ संतापके दूर करनेकेलिये कोमल पल्लवोंकी सेजपर भी शयन करती हूं परंतु वे पल्लव भी मुरझा जाते हैं क्योंकि शरीरका यह तीक्ष्ण तो संताप और इतनी थोड़ी सी शीतलता! इससे कैसे वह संताप मिट सकता है ? ॥ ८८ ॥ मा ! जबतक मैं राजा सुमुखके अंगका स्पर्श न करलूंगी तबतक कदापि मेरे चित्तको शांति न होगी इसलिये दयाकर शीघ्र ही ऐसा प्रयत्न कीजिये जिससे कि उनके साथ मेरा समागम होजाय॥८९॥ तुम यह निस्संशय समझो कि मुझै देखनेसे राजा सुमुखकी मनोवृत्ति भी मेरे ही समान होगई थी उनकी उससमयकी चेष्टाओंसे यह स्पष्ट जाना जाता था कि वे भी मुझमें आसक्त होगये हैं इसलिये अब तुमसे यही प्रार्थना है कि हम दोनों कामकी ज्वालासे अतिशय संतप्त हैं तुम समयकी जानकार हो इसलिये योग्य समय सोच समझकर हम दोनोंका एकांतमें मिलाप करा दो क्योंकि संतप्त पदार्थका संतप्त पदार्थसे मिलान ही करा देना उचित है ॥ ९०-९१ ॥ वनमालाके इसप्रकार अपने अनुकूल भावको लिये वचन सुन दूती आत्रेयीको बड़ी प्रसन्नता हुई और वनमालाके चित्तको शांति देनेवाले ऐसे वचन कहने लगी—

"बेटी ! वत्सदेशके स्वामी (राजा सुमुख) का चित्त भी तुम्हारे अनुपम रूपपर मुग्ध होगया है—वह भी तुम्हैं हृदयसे चाहता है तुम्हारे लेनेकेलिये ही उसने मुझै यहां भेजा है आओ मैं तुम्हैं उससे जल्दी मिला दूं" ॥ ९२-९३ ॥ इसप्रकार जब दोनोंका परस्पर संवाद हो चुका तो पतिको विना ही पूछे कामसे अतिशय पीड़ित वनमाला दूतीके साथ चलदी और शीघ्र ही राजमंदिरमें पहुंच गई ॥९४॥ सुमुख भी अपने शयनागारमें वनमालाकी बांट जो रहा था ज्योंही उसने अपने मनको चुरानेवाली सुमुखी वनमालाको अपने पास आते देखा उसै बड़ी प्रसन्नता हुई बड़े आदरसे 'आइये आइये' कहकर उसका स्वागत किया और उसके मिलापसे अपनेको सुखी मान उसै मीठे मीठे वचन कहकर सुखी करने लगा ॥ ९५ ॥ उससमय वनमालाको कुछ लज्जासी आगई उसने अपने स्तन और मुख हाथसे ढक लिये यह देखकर राजा सुमुखने कामकी तीव्रतासे पसेव युक्त हाथोंसे तन्वंगी वनमालाको पकड़कर अपनी सेजपर बैठा लिया ॥ ९६ ॥ प्रौढ़ यौवनसे मत्त राजा सुमुख और वनमालाको भोग विलास करते देख उनकी नकल करनेकेलिये ही मानो चंद्रदेव रात्रिरूपी नायिकाके मुख (प्रारंभ) को प्रसन्न (उज्ज्वल) करते हुये आकाशरूपी सेजपर आ विराजे—उससमय रात्रिका प्रारंभ चांदनीसे जगमगा उठा ॥ ९७ ॥ उससमय जिसप्रकार राजा सुमुखके मनोहर करके स्पर्शसे वनमालाका हृदय प्रफुल्लित हो रहा था उसीप्रकार चंद्रमाके उदयसे कुमुदिनी प्रफुल्लित होने लगी ॥ ९८ ॥ परस्परमें प्रेमबंधकी वृद्धिकेलिये वे दोनों उक्ति

प्रत्युक्तिपूर्वक स्त्री पुरुषोंमें होनेवाले अनेक प्रकारके भाव प्रकट करने लगे ॥ ९९ ॥ मीठे मीठे वचनोंसे विश्वास दिलाकर जिसका नवीन संगमके समयका भय दूर कर दिया था ऐसी कामिनी वनमालाको अपने अंकमें स्थापनकर राजा सुमुख गाढ़ आलिंगन करने लगा ॥ १०० ॥ कभी वे दोनों कामी परस्पर भुजाओंसे आलिंगन करते कभी एक दूसरेका चुंबन चूषण दंशन करते कभी कंठ और केशोंको पकड़ते और कभी वे दोनों मिलकर एक दूसरेका अंग प्रत्यंग स्पर्शते इसप्रकार कामाग्निसे अतिशय दीप्त वे दोनों दंपती अनेक प्रकारसे क्रीडा करने लगे ॥ १०१–१०२ ॥ उससमय राजा सुमुखके लिये—जो कुछ सत्त्व जो कुछ भाव और जो कुछ चतुरता थी उन सबसे कामिनी वनमालाने सुख दिया ॥ १०३ ॥ क्रीड़ा करते २ जब वे दोनों थकगये दोनोंके शरीर पसेवसे व्याप्त होगये तो वे परस्पर आलिंगन कर हस्ती हस्तिनीके समान निद्रासुखका अनुभव करने लगे ॥ १०४ ॥ इसप्रकार प्रबल विषयवासनासे जिनके आत्मा ज्ञानशून्य होगये थे एवं जिनका चित्त प्रेमबंधनसे सर्वथा जिकड़ा हुआ था ऐसे निद्रामें मग्न उन दोनोंका वृत्तांत जाननेकेलिये ही मानों सूर्यदेवने अपने पाससे प्रभात संध्याको भेजा—प्रातःकाल होगया ॥ १०५ ॥ उससमय अतिशय मनोहर चंद्रमा और प्रभात संध्यासे रंजित (रक्तवर्ण) आकाशरूपी स्त्री—राजा सुमुख द्वारा निश्चिंततासे नवीन वधूके समान भोगी हुई अतएव रंजित (अनुरक्त) कामिनी वनमालाके समान अतिशय रमणीय जान पड़ने लगी ॥ १०६ ॥ जिसप्रकार समवशरणमें सिंहासनपर विराजमान हो भगवान जिनेंद्र समस्त लोकको प्रबुद्ध करते हैं उसीप्रकार उदयाचलपर विराजमान हो सूर्यदेवने कमलिनियोंके साथ २ सुंदर सेजपर शयन करते हुये राजा सुमुख और वनमालाको प्रबोधित किया ॥ १०७ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेन द्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथके चरित्रको वर्णनकरनेवाले हरिवंशपुराणमें राजा सुमुख और वनमाला का समागम वर्णन करनेवाला चौदहवां सर्ग समाप्त हुआ ।

पंचदश सर्ग ।

प्रातःकालमें राजा सुमुख और कामिनी वनमालाके शरीरने जिससमय विकसित कमलवनको स्पर्शकरनेवाले शीतल मंद सुगंध पवनका स्पर्श किया तो उनकी सब थकावट दूर होगई और कुछ समय पहिले जो उनकी आलिंगन करनेकी घनिष्ठ इच्छा थी वह भी धीरे २ शिथिल होनेलगी ॥ १ ॥ कोमल तरंगोंसे व्याप्त वालूके स्थलसे उठकर तरुण और मत्त हंस जिसप्रकार हंसिनीके साथ अतिशय शोभित जान पड़ता है राजा सुमुख भी उसीप्रकार कोमल तरंगोंके समान सुंदर मुरझाये हुये पुष्पोंसे व्याप्त अपनी सेजसे उठकर कामिनी वनमालाके साथ अतिशय रमणीय जान पड़ने लगा ॥ २ ॥ रात्रिमें जिसप्रकार विरही

पक्षिगण (चकवा–चकवी) का हृदय अपनी प्राणप्यारियोंसे रत्तीभर भी वियुक्त होना नहिं चाहता उसीप्रकार परस्पर अतिशय अनुरागी राजा सुमुख और वनमालाके हृदयों ने भी वियोग सहनेकी जरा भी इच्छा प्रकट न की ॥ ३ ॥ इसलिये राजा सुमुखने कामिनी बनमालाको अपने पतिके घर न जाने दिया अपनेही राजमंदिरमें रोक रक्खा सो ठीकही है जिस मनुष्यने अतिशय दुर्लभ अभीष्ट पदार्थको पाकर यदि उसका अनुभव करलिया है तो वह उसै कैसे छोड़ सकता है ? ॥ ४ ॥ वनमाला यौवनादि अनुपम गुणोंसे भूषित थी इसलिये राजा सुमुखने उसै अपनी मुख्य रानियोंमें भी अग्रेसरी पटरानी बना दिया और पूर्णरीतिसे उसका गौरव करने लगा सो ठीकही है स्वामीके अनुकूल रहनेपर संसारमें कौन पदार्थ दुर्लभ रहसकता है ?

एकदिन राजा सुमुखके मंदिरमें निधिके समान महातपसे शोभित कोई परम धर्मात्मा मुनिराज आहारार्थ आये सो ठीकही है–अतिथियोंका घरमें आना बडे पुण्यके उदयसे होता है ॥ ६ ॥ वे मुनिराज साधारण मुनि न थे उनकी बुद्धि परम (सम्यक्) दर्शनकी शुद्धिसे अतिशय विशुद्ध थी उनका ज्ञान चढ़ा बढ़ा था इसलिये भलेप्रकार पदार्थोंके जानकार थे उनका शरीर पंचमहाव्रत तीन गुप्ति और पांचप्रकारकी समिति रूपी चारित्रसे सर्वथा पवित्र था ॥ ७ ॥ जिसप्रकार वृद्धावस्थाके कारण मनुष्योंके बाल सफेद होजाते हैं कामादि समस्त विकार शांत एवं अस्त होजाते हैं और गौरव बढ़ने लगता है उसीप्रकार मुनिराज अनशन और अध्ययन आदि तपरूपी लक्ष्मीसे अतिशय निर्मल थे समस्त काम आदि विकारोंसे शांत और रहित थे कर्मोंकी निर्जरा करनेवाले थे एवं गौरव मंडित थे ॥ ८ ॥ अतुलमहिमासे भूषित वे मुनिराज राग आदि दोष, क्रोध आदि कषाय और क्षुधा आदि परीषहोंके जीतनेवाले थे उनकी समस्त इंद्रियां भलेप्रकार वश थीं ऐसे मुनिराजको अपने राजमंदिरमें आया देख राजा सुमुख शीघ्रही सिंहासनसे उठखड़ा हुआ मारे आनंदके उसका चित्त पुलकित होगया उसने शीघ्रही मुनिराजके सन्मुख जा रानी वनमालाके साथ उनकी तीन प्रदक्षिणा दीं और पवित्र हो विनयपूर्वक पडिगाहन (प्रतिग्रह) कर अतिशय निर्मल मणिमयी आंगनमें उन्हैं विराजमान किया ॥ ९–१० ॥ वनमालाके हाथमें जलसे परिपूर्ण अतिशय देदीप्यमान सुवर्णमयी झारी थी राजाने उसके हाथसे वह झारी लेली और उसकी अत्यंत प्रासुक धारासे मुनिराजके चरणोंका स्वयं (अपने हाथोंसे) प्रक्षाल करने लगा ॥ ११ ॥ पश्चात् सुगंधित चंदन, शुभ अक्षत, प्रफुल्लित पुष्प, बहुमूल्य नैवेद्य, देदीप्यमान दीपक, और महकती हुई धूपसे पूजाकर स्तुति और वंदना की एवं बड़े हर्षसे उन्हैं आहारदान दिया ॥ १२ ॥ दान देते समय राजा सुमुख और रानी वनमालाका मन पवित्र था दोनोंके परिणाम शुद्ध और एकसे थे इसलिये उन दोनोंने परभवमें एक साथ भोग

भोगनेरूप फलको देनेवाले उत्तमपुण्यका संचयकर पापोंका नाश किया ॥ १३ ॥ मुनिराज परम तत्त्वज्ञानी थे उन्होंने बहुत दिनोंसे अनशनव्रत धारण कर रक्खा था शरीर बहुतही निर्बल—कृश था उसकी स्थितिके लिये वे राजा सुमुखके घर पारणाकर और उसकेलिये परजन्ममें कल्याणकरनेवाले पुण्यरूपी कारणको जुटाकर विहार करगये ॥ १४ ॥ इस प्रकार पुण्यफलके भोक्ता राजा सुमुखका समय कामिनी वनमालाके साथ आनंदसे वीतने लगा साथ साथ उसके हृदयमें यह पश्चात्ताप भी स्थान पा निकला था कि मैंने हठसे पराई स्त्री वनमालाका हरण किया सो घोर पापका संचय किया ॥ १५ ॥

कदाचित् राजा सुमुख अतिशय प्रिय एवं जिसका मध्यभाग मणियोंकी तीखी प्रभासे जगमगा रहा था ऐसे किसी मनोहर सुगंधित महलमें गुणोंकी माला स्वरूप प्रियतमा वनमालाके साथ सो रहे थे उन दोनोंका आयुकर्म पूर्ण प्राय हो चुका था इसलिये अचानक ही उन दोनों पर एक साथ विजली आकर गिर पड़ी जिससे कि पलभरमें इनके प्राण पखेरू उड़ गये ॥ १६–१७ ॥ राजा सुमुख और रानी वनमालाने मुनिदानसे पुण्यका संचय किया था इसलिये परम पातकी भी साथ साथ जीनेकी अभिलाषा करनेवाले वे दोनो विजयार्ध पर्वतमें विद्याधर विद्याधरी हुये और सुखसे रहने लगे ॥ १८ ॥

वह विजयार्ध चांदीके समान श्वेत मूर्तिका धारक है अपनी सफेदाईसे इसने चंद्रमा एवं क्षीर समुद्रकी सफेदाई जीत ली है और पूर्व पश्चिम समुद्रतक लंबा होनेसे यह पृथ्वीरूपी स्त्रीका विशाल हार सरीखा जान पड़ता है ॥ १९ ॥ मूलभागसे दश योजनकी ऊंचाईपर इसकी विस्तीर्ण भुजाओंके समान दो श्रेणियां है हर एक श्रेणीमें विद्याधरोंके नगर और पर्वत हैं जो कि अपनी विभूतिसे भोगभूमिकी तुलना करते हैं ॥ २० ॥ विजयार्ध पर्वतपर अतिशय मनोहर सौ पर्वत और एकसौ दश उत्तम नगर हैं यह पचीस योजन ऊंचा और पचास योजन चौड़ा है एवं सुखका भंडार है ॥ २१ ॥ इसीकी उत्तर दिशामें एक हरिपुर नामका नगर है इसमें उन्नत २ वृक्ष और वन हैं उनसे वह कुरुभूमिकी नकल करते हुयेके समान जान पड़ता है सुखकी खानि है और शोभासे इंद्रकी पुरीकी तुलना करता है ॥ २२ ॥ इसी हरिपुरका स्वामी विद्याधर पवनगिरि सुमुखके जीवका पिता था और अनेक कला और गुणोंमें प्रवीण इसकी स्त्री रानी मृगावती सुमुखके जीवकी जननी थी ॥ २३ ॥ सुमुखके जीवका अतिरमणीय 'आर्य' नाम रक्खा गया बालक आर्यके वचन समस्त आर्य मनुष्योंको आनंद देने वाले थे और उसे अपने पूर्वभवका स्मरण था ॥ २४ ॥

विजयार्धकी उत्तर दिशामें एक मेघपुर नामका भी नगर है यह नगर अतिशय रमणीय है मणिमयी महलोंकी पंक्तियोंसे व्याप्त है ॥ २५ ॥ उस मेघपुरका स्वामी राजा पवनवेग था पवनवेग शत्रुरूपी हस्तियोंका मान मर्दन करनेवाला था इसकी रानी

मनोहरी थी मनोहरी रतिकालमें पतिके मनको हरण करती थी इसलिये राजा पवनवेगको यह रतिके समान प्यारी थी ॥२६॥ वनमालाने (पूर्वभवकी राजा सुमुखकी स्त्रीने) इन दोनोंके यहां जन्म लिया और उसका नाम मनोरमा रक्खा गया बालिका मनोरमा चंद्रकलाके समान अतिशय मनोहर थी और उसे अपने पूर्वभवका भलेप्रकार स्मरण था ॥ २७ ॥ इस तरह उन दोनोंने (सुमुख, वनमालाने) परस्परमें जो एक साथ भोग भोगनेका निदान बांधा था उसीके अनुसार विवाहके योग्य पवित्र कुलोंमें जन्म लिया ॥२८॥ ये दोनों बालक सुखपूर्वक लालित पालित होते थे ये कभी अपनी हथेलियोंसे आंखें मिसलते, कभी मंद २ हास्य करके मुस्कराते, कभी टूटी फूटी बोली बोलने लगते, और कभी दूसरेके वचनोंकी नकल करते थे इसलिये इन्हैं देख इनके कुटुंबियोंको परम आनंद होता था ॥२९॥ ये दोनों बालक अपनी २ माताओंके स्तन पान करते थे सूर्यके समान देदीप्यमान कांतिके धारक थे इसलिये परमप्रतापी भोगभूमियां बालकोंकी तुलना करते थे ॥३०॥ चंद्रमाकी कलाके समान जैसे २ ये बालक वढते जाते थे कुटुंबीजनोंका आनंद सागर भी वैसा ही वैसा वृद्धिंगत होता जाता था ॥ ३१ ॥ दोनों बालकोंने अल्पकालमें ही विद्याधरोंकी विद्यायें और सांसारिक विद्यायें सीखलीं सुंदर यौवनकी शोभासे मंडित होगये और अपने गुणोंसे समस्त मनुष्योंके मन हरण करने लगे ॥ ३२ ॥

जिससमय कुमार 'आर्य' युवा होगया तो उसके पिता राजा पवनगिरिने साक्षात् लक्ष्मीके समान विद्याधर कन्या कुमारी मनोरमाके साथ वड़े ठाट वाटसे उसका विवाह कर दिया ॥ ३३ ॥ विवाहके बाद कुमार 'आर्य' कामजनित हाव भावोंके करनेमें पंडित, कामदेव रूपी नर्तकाचार्यकी शिक्षासे शिक्षित, सुरतरूपी नाटकघरमें लाई गई नर्तकी मनोरमाके साथ सानंद भोग भोगने लगा ॥३४॥ कभी वह प्रियतमा मनोरमाके साथ देवांगनाओंसे अतिशय सुंदर मेरु पर्वतकी कंदराओंमें रमण करता कभी अतिशय सुगंधित देवदारु और चंदन वृक्षोंकी सुगंधिसे व्याप्त नंदनवनमें क्रीड़ा करता ॥ ३५ ॥ कभी वह कुलपर्वत सरोवर और नदियोंके तटोंपर उसके साथ जाता और कभी वह भोगभूमियोंके कल्पवृक्षोंकी लताओंमें रतिसुखका अनुभव करने लगता ॥ ३६ ॥ इसप्रकार देवांगनाओंकी पायजेवोंके शब्दोंसे व्याप्त विजयार्धपर्वतपर रहनेवाला वह नाना भोग भोगने लगा तात्पर्य यह है कि—संसारमें जो वातें दूसरोंके लिये अत्यंत दुर्लभ हैं वे सव उन दोनोंके लिये उससमय अतिशय सुलभ थीं ॥ ३७ ॥

जिससमय राजा सुमुखने वनमालाका हरण करलिया तो उसके पति सेठ वीरकको बड़ा दुःख हुआ प्रियतमा वनमालाकी विरहज्वाला उसै बुरीतरह जलाने लगी यहांतक कि—यदि वह विरहकी शांतिकेलिये कोमल पल्लवोंसे व्याप्त शीतल सेजपर

सोता तो उसके विरहकी भभकसे कोमल पल्लव मुरझा जाते ॥३८॥ जिसप्रकार वरफके समान अतिशय शीतल जलवाला भी सरोवर, रात्रिमें अपनी प्रियतमा चकवीसे वियुक्त विरही चकवाकी विरहज्वाला शांत नहीं करसकता उसीप्रकार विरही वीरकके हृदय-दाहको शीतल भी चंद्रकिरणें न मिटासकीं ॥ ३९ ॥ बहुत दिनोंतक तो सेठ वीरकने विरहव्यथा भोगी जब वह नितांत दुःखित होगया तो उसने प्रिय भी गृहस्थाश्रमको सर्वथा छोड़ दिया दिगंबर दीक्षा धारणकर ली और इंद्रियोंका दमन करने लगा सो ठीक ही है जो मनुष्य संसारसे दुःखी होगये हैं उनकेलिये जिनोक्त मार्गही परम शरण है ॥ ४० ॥ बहुत कालतक मुनि वीरकने शरीर सुखानेवाला एवं विषयी मनुष्योंकी कामव्यथा को खंड २ करनेवाला जिनोक्त तप तपा बादको आयुके अंतमें मरकर वह अनेक सुखोंके भंडार देवोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले प्रथमस्वर्गमें जाकर देव हुआ ॥ ४१ ॥ और अनेक उत्तमोत्तम देवांगनाओंसे वेष्टित भांति २ के आभूषणोंसे शोभित शरीरसे मंडित हो अमृत तुल्य देवोंके सुखरूपी समुद्रमें अवगाहन कर आनंद से रहने लगा एवं अनेक प्रकारके भाव और रसोंका आस्वादन करने लगा ॥ ४२ ॥ कदाचित् वीरकका जीव आनंदसे स्वर्गमें विराजमान था उसके चौतर्फा परम सुंदरी कामिनी वैठीं थी अचानकही उसे अपने पूर्वभवकी स्त्री वनमालाकी याद आगई अपने अवधिबलसे वह उसका पता लगाने लगा सो ठीकही है—गाढ़ स्नेहका छूटना अति कठिन है ॥ ४३ ॥ अवधिबलसे देवको वनमालाका पता लगगया राजा सुमुखने जो पूर्वभवमें उसका पराभव किया था वह उसके सामने नाचने लगा मारे क्रोधके उसका अंतरंग पूर्ण होगया निमेष उन्मेष रहित अपने अवधिज्ञानरूपी नेत्रसे तत्काल आर्य एवं मनोरमाको स्पष्ट देखलिया और वह इसप्रकार विचार करने लगा ॥ ४४ ॥

"अहा! इस दुष्ट सुमुखके जीव आर्यने अपनी राजविभूतिका घमंडकर मेरा अपमान किया था मेरी परमप्रिया वनमाला हरली थी अब भी यह दुष्ट उसीके साथ भोग विलास करता नजर आरहा है ॥ ४५ ॥ इस दुष्टने मेरा बड़ा अपकार किया है मैं इससमय हरएक बातसे समर्थ हूं यदि मैंने इस दुष्टका दूना अपकार नहिं किया तो इस मेरी प्रभुताकेलिये धिक्कार है" ॥ ४६ ॥ इसतरह विचार करते २ मारे क्रोधके उसका शरीर भभक उठा आर्यसे पूर्वभवके अपमानके बदला लेनेकी मनमें ठान ठानली जिससे कि सूर्यके समान तेजस्वी वह तत्काल स्वर्गसे जमीनपर अवतीर्ण होगया। ॥ ४७ ॥ उस समय पूर्ण यौवनसे मंडित विद्याधर आर्य और विद्याधरी मनोरमा दोनों अतिशय मनोहर हरिक्षेत्रमें क्रीड़ा कररहे थे देव स्वर्गसे उतर सीधा उनके पास गया उन्हें देख अपनी स्वाभाविक अखंड मायासे तत्काल उनकी विद्या हरली और अतिशय क्रुद्ध हो इसप्रकार कहा ॥ ४८-४९ ॥

" अरे परस्त्रीके हरण करनेवाले सुमुख ! क्या तुझै इससमय अपने वीरक वैरीका स्मरण है ? री व्यभिचारिणी वनमाला ! क्या तुझै भी अपने पूर्वभवकी याद है ? ॥ ५० ॥ देखो ! मैं तपके प्रभावसे प्रथमस्वर्गमें देव हुआ हूं और तुम मुनिदानके प्रभावसे विद्याधर विद्याधरी हुये हो तुमने मुझे पूर्वभवमें बड़ा दुःख दिया था अब मैं तुम्हैं भी दुःख देने आया हूं " ॥ ५१ ॥ देवके अकस्मात् ऐसे वचन सुन आर्य और मनोरमा बड़ा आश्चर्य करनेलगे मारे भयके उनका शरीर थरथर कांपने लगा और गरुड जैसे पक्षीको उठालेता है उसीप्रकार उन दोनोंको उठाकर उस देवने दक्षिण भरत क्षेत्रमें ला पटका ॥ ५२ ॥ दक्षिण भरतक्षेत्रमें एक चंपापुरी नामकी नगरी है उससमय चंद्रमाके समान स्वच्छ कीर्तिका धारक उसका स्वामी मरचुका था वह उससमय एक प्रकार से अनाथ सरीखी होगई थी देवने विद्याधर आर्यको अनेक राजाओंसे नमस्कृत उसका राजा बनाया और वह अपने स्थानपर चलागया ॥ ५३ ॥ देवद्वारा विद्याधर आर्य और विद्याधरी मनोरमाकी विद्या हरण करली गई थी जिससे वे पंखरहित पक्षीके समान हो गये इच्छा रहनेपर भी आकाशमें न उडसके इसलिये धैर्य धारणकर पृथ्वीपर ही जहां तहां विहार करनेलगे ॥ ५४ ॥ यह पूर्वोक्त (राजा सुमुख आदिका) वृत्तांत नव्वे धनुष ऊंचे शरीरसे शोभित एकलाख पूर्व आयुके धारक दशवें तीर्थंकर भगवान शीतलनाथके समयमें हुआ था और उससमय चतुर्थकालका समय कुछ अधिक सौ सागर कम एक करोड सागर अर्थात् छयासठ लाख छब्वीस हजार वर्ष निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार नौसौ सागर बांकी था ॥ ५५ ॥ राजा आर्यने अपने भुजदंडोंसे समस्त राजाओंको वशकर आज्ञापालक बनाया और अखंडित प्रेमवाली मनोरमाके साथ बहुत कालतक विषय सुख भोगा तथापि वह विषयोंसे तृप्त न हो सका ॥ ५६ ॥

कदाचित् पुण्योदयसे उन दोनों दंपतीके हरि नामका पुत्र हुआ यह हरि सिंहके समान तेजस्वी राजा हुआ राजा आर्य और रानी मनोरमाने बहुतकालतक पुत्रकी विशाल विभूतिका अवलोकन किया पश्चात् अपने कर्मानुसार वे परलोक वासी हुये ॥५७॥ राजा हरि परम यशस्वी हरिवंशका प्रथम राजा हुआ—इसीके नामसे संसारमें हरिवंशकी प्रसिद्धि हुई ॥ ५८ ॥ राजा हरिका पुत्र हिमगिरि हुआ हिमगिरिका वसुगिरि और वसुगिरिका गिरि हुआ एवं ये यथायोग्य स्वर्ग और मोक्ष गये ॥ ५९ ॥ इस हरिवंशके तिलकस्वरूप विभूतिमें इंद्रके समान बहुतसे राजा हुये हैं उन सबने राज्यका सर्वथा त्यागकर दिगंबर दीक्षा धारण की थी जिससेकि उनमेंसे बहुतसे मोक्ष गये थे और बहुतसे स्वर्ग गये थे ॥ ६० ॥ इसप्रकार बहुतसे राजाओंके होनेपर उसी हरिवंशमें मगधदेशका स्वामी राजा सुमित्र हुआ उसकी राजधानी अतिशय प्रसिद्ध कुशाग्रपुर थी राजा सुमित्र बड़ा पराक्रमी और अनेक शास्त्रोंका असाधारण

वेत्ता था उसकी पटरानीका नाम पद्मावती था पद्मावती परम जिनभक्ता थी अपने पतिकी अत्यंत प्यारी थी इसलिये राजा सुमित्रने चिरकालतक पद्मवतीके साथ साथ मगधदेश की पृथ्वीका शासन किया ॥ ६१–६२ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेन द्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथके चरित्रको वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें हरिवंशकी उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला पंद्रहवां सर्ग समाप्त हुआ ।

षोडश सर्ग ।

समस्त जीवोंके हितार्थ भरतक्षेत्रमें तीर्थोंकी प्रवृत्ति कर जब शीतलनाथ भगवानको आदिलेकर मल्लिनाथ पर्यंत और नौ भगवान मोक्ष चले गये तब कालक्रमसे वीसवें तीर्थंकर भगवान मुनिसुव्रतकी उत्पत्तिका समय आया स्वर्गसे चयकर भगवान राजा सुमित्रकी पटरानी पद्मावतीके गर्भमें आवेंगे ऐसा अवधिज्ञानसे जानकर इंद्रने शीघ्रही रत्नवर्षा करनेके लिये कुवेरको आज्ञा दी और कुवेर आज्ञा पाते ही राजा सुमित्रके आंगनमें प्रतिदिन आकाशसे धनवर्षा करने लगा । कदाचित् रानी पद्मावती अतिशय कोमल सेजपर सो रही थी कि प्रातः कालके समय अचानक ही उसे गज १ वृषभ २ सिंह ३ लक्ष्मी ४ पुष्पमाला ५ चंद्र ६ सूर्य ७ मत्स्य ८ कलश ९ कमलोंसे व्याप्त सरोवर १० समुद्र ११ सिंहासन १२ देवविमान १३ शेषनागका मंदिर १४ रत्नराशि १५ और निर्धूम अग्नि १६ ये सोलह स्वप्न दीख पड़े ॥ १–३ ॥ माता पद्मावतीकी उससमय उपमारहित दिव्य प्रभाकी धारण करनेवालीं निन्यानवे दिक्कुमारियां सेवा करती थीं वह तत्काल कोमल पुष्पोंसे व्याप्त सेजपर उठकर बैठि गई एवं जिसप्रकार आकाशमें तारोंसे मंडित चंद्रलेखा शोभित होती है उसीप्रकार वह भी अनेक कुमारियोंसे व्याप्त शोभित होने लगी ॥ ४ ॥ प्रातःकाल होते ही प्रफुल्ल कमलके समान नेत्र मुख हस्त और चरणोंसे शोभित, श्वेत छत्रसे मंडित, परम स्नेहसे युक्त, रानी पद्मावती उन्नत आसनपर विराजमान राजा सुमित्रके पास गई सो ऐसी मालूम पड़ने लगी मानो विकसित कमल रूपी नयन मुख हस्त और पादोंके राग (लालिमा) से युक्त स्थलपद्मिनी ही उदयाचलपर विराजमान अपने पति सुमित्र (सूर्य) को देखने जा रही है ॥ ५ ॥ राजा सुमित्रके पास जाते हुये रानी पद्मावतीने समुद्रके पास जाती हुई विशाल नदीकी तुलनाकी क्योंकि जिसप्रकार नदी जलसे व्याप्त रहती है रानी भी चित्रविचित्र वस्त्ररूपी जलोंसे व्याप्त थी । नदी पक्षियोंके कोलाहलसे शोभित रहती है यह भी मंद २ शब्द करते हुये मनोहर पायजेवोंके शब्दोंसे शोभायमान थी नदीमें मीन रहती हैं यह भी मीनतुल्य नेत्रोंसे रमणीय थी नदी जैसी तरंगोंसे पूर्ण रहती है यह भी कमनीय त्रिवलिरूपी तरंगोंसे अलंकृत थी ॥ ६ ॥ सभामें जाकर जिसस-

मय अनेक मणिमयी भूषणोंसे भूषित रानी पद्मावतीने राजाको प्रणाम किया तो वह उससमय कल्पवृक्षको नमस्कार करनेवाली संचारिणी कल्पलता सरीखी जान पड़ने लगी क्योंकि जिसप्रकार कल्पलता फलगुच्छोंके भारसे नमी हुई रहती है यह भी पीनस्तनरूपी फलगुच्छोंसे अतिशय नम्र थी जिसप्रकार लतापर लाल २ पल्लव होते हैं यह भी ललोंए पल्लवोंके समान हाथोंसे शोभित थी लता जैसी छोटी २ शाखाओंसे व्याप्त रहती है यह भी कोमल भुजारूपी शाखाओंसे कमनीय थी ॥ ७ ॥ राजा सुमित्रके समीप जाकर रानी पद्मावती अर्धसिंहासनपर बैठ गई और स्वप्नोंका फल पूछने लगी राजा सुमित्रको स्वप्न सुनते ही परम आनंद हुआ और वे इसप्रकार कहने लगे—

"प्रिये ! तीन जगतके स्वामी भगवान जिनेंद्र तुम्हारे गर्भमें आवेंगे और हम दोनों उनके माता पिता होंगे" ॥ ८ ॥ जिसप्रकार चंद्रकिरणोंके स्पर्शसे कमलिनी विकसित होजाती है उसीप्रकार अमृततुल्य राजा सुमित्रके वचन सुन रानी पद्मावतीको परम संतोष हुआ मारे हर्षके उसका शरीर पुलकित होगया एवं कुछ समय पहिले वह जिस स्त्री पर्यायको निकृष्ट समझती थी उसै ही वह अपनेको तीर्थंकरकी माता समझ परमपवित्र समझने लगी ॥ ९ ॥ हजारो देवोंसे नमस्कृत भगवान मुनिसुव्रत सहस्रार स्वर्गसे चयकर दिक्कुमारियों द्वारा अतिशय शुद्ध किये गये माता पद्मावतीके गर्भमें अवतीर्ण हुये ॥ १० ॥ जिससमय भगवान मुनिसुव्रत गर्भमें आये उससमय माता शरद ऋतुमें वर्षासे व्याप्त आकाश सरीखी रमणीय जान पड़ने लगी क्योंकि जिसप्रकार शरद ऋतुमें वर्षायुक्त आकाश (आनीलचूचुकविपांडुपयोधरश्रीः) कुछ नीलमाको लिये श्वेत पयोधरों (मेघों) से शोभित रहता है उसीप्रकार माताके पयोधरों (स्तनों) का अग्रभाग नीला और शेष भाग सफेद होगया था इसलिये उनसे वह अतिशय रमणीय जानपड़ती थी आकाश जैसा (वज्रसंहतिसगर्भतया स्फुरंती) वज्रसंहति (वज्रोंके समुदाय) से देदीप्यमान जान पड़ता है माता भी गर्भमें वज्रसंहति (वज्रवृषभनाराचसंहनन) के धारक भगवानके विराजमान होनेसे अतिशय देदीप्यमान थी आकाश जैसा (विद्युत्प्रभाभरणवृंहितभा) बिजलीकी प्रभासे मंडित रहता है उसीप्रकार माता भी बिजलीके समान चमकीले आभरणोंसे अलंकृत थी ॥११॥ प्रसवकालके आनेपर माता पद्मावतीने माघ मासमें शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन श्रवण नक्षत्रमें समस्त जनोंके मन और नेत्रोंको आनंद देनेवाले भगवान मुनिसुव्रतनाथको जना ॥१२॥ अनेक शुभ लक्षणोंसे भूषित भगवान मुनिसुव्रतकेजन्मसे माता पद्मावतीको परम आनंद हुआ भगवानके शरीरकी कांति नीलवर्णकी थी इसलिये उससमय जिसप्रकार इंद्र (नील) मणियोंसे खानि शोभित होती है उसीप्रकार मत्तमयूरकी कांतिके समान भगवानकी प्रभासे रानी पद्मावती अतिशय शोभित जान पड़ती थी ॥ १३ ॥ भगवानके उत्पन्न होते ही इंद्रोंके

आसन मुकुट कंपायमान होगये ज्योतिषी आदि देवोंके घरोंमे घंटा सिंहनाद पटह शंख वजने लगे इसलिये अवधिज्ञानके बलसे शीघ्र ही भगवानके जन्मका निश्चय कर वे लोग उत्सवार्थ कुशाग्रपुरकी ओर चल दिये ॥ १४ ॥ मार्गमें ज्यों ज्यों वे चलते थे बरावर सुंगधित जल और देवमयी उत्तम पुष्पवृष्टिसे समस्त लोकको व्याप्त करते जाते थे कुछ समयके वाद वे कुशाग्रपुरमें आगये और बड़े आनंदसे नगरकी तीन प्रदक्षिणा दीं उससमय उत्तमोत्तम भूषण वस्त्रोंसे मंडित इंद्र आदि देव अतिशय मनोहर जान पड़ते थे ॥ १५ ॥ नगरमें प्रवेशकर इंद्र आदि देवोंने भगवान और उनके माता पिताको नमस्कार किया जब कि दिक्कुमारियां जातकर्म समाप्त करचुकीं इंद्रने वड़े ठाठ वाटसे भगवानको ऐरावत गजपर सवार किया वहांसे सबके सब साथ चलकर गिरिराज मेरुपर्वतपर पहुंचे पर्वतकी प्रदक्षिणा देकर उसकी तलहटीमें पांडुक शिलापर विद्यमान सिंहासनपर जिनेंद्रको विराजमान किया क्षीरसमुद्रके उत्तम जलसे उनका अभिषेक किया भांति २ के उत्तमोत्तम भूषण वसन पहिनाये भक्तिपूर्वक स्तवन पूजन किया एवं उनका मनोहर नाम मुनिसुव्रत रक्खा ॥ १६–१७ ॥ जब मेरुपर्वतपर कर्तव्य कर्म समाप्त हो चुका तो इंद्र आदि देव कुशाग्रपुर लोट आये भगवानको माताकी गोदमें विराजमान किया नृत्य आदि कृत्य किये एवं तीन भुवनको आनंद देनेवाले भगवान और उनके माता पिताको भक्तिपूर्वक नमस्कारकर वे अपने २ स्थानोंपर चले गये ॥१८॥

विशाल नेत्रोंके धारक मति श्रुति अवधिरूप स्वाभाविक तीन नेत्रोंसे शोभित अनेक देवकुमारोंसे सेवनीक कुवेर द्वारा कालानुसार भूषण वस्त्र आदिसे सज्जित भगवान मुनिसुव्रतनाथके शरीर और गुण दिनोंदिन वढ़ने लगे ॥ १९ ॥ जिसप्रकार कुलाचलसे उत्पन्न आदि मध्य और अंतमें समरूप मनोहर नदियां निर्मलजलसे परिपूर्ण हो लवण समुद्रमें मिलती हैं उसीप्रकार उत्तमोत्तम कुलोंसे उत्पन्न, वालक युवा वृद्ध तीनों अवस्थाओंमें परमसुंदरी रहनेवाली रमणियोंने विवाह पूर्वक अतिशय कमनीय भगवान मुनिसुव्रतको वरा ॥ २० ॥ इसप्रकार प्रजारूपी कमलिनीकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले, हरिवंशके सूर्य, अनेक राजा महाराजाओंसे सेवित चरणकमलोंसे शोभित, अखंडित आज्ञावाले, भगवान मुनिसुव्रतने वहुतकालतक राज्य किया और नाना प्रकारके विषय सुख भोगे ॥ २१ ॥

कदाचित् वर्षाकालके व्यतीत होजानेपर शरद ऋतुका प्रारंभ हुआ उससमय शरद ऋतु सर्वथा सुंदर स्त्रीकी उपमा धारण करती थी क्योंकि स्त्रीके जैसा मुख होता हैं यह कमलरूपी मुखसे शोभित थी स्त्री जैसी अधर पल्लवोंसे मंडित रहती है यह भी बंधूक जातिके वृक्षोंके मनोहर पल्लव रूप अधरोंसे शोभित थी स्त्री जैसी श्वेत चमरोंसे अलंकृत रहती है यह भी विकसित कांसके वृक्षरूपी शुभ्र चमरोंसे युक्त थी स्त्री जैसी

वस्त्रोंसे वेष्टित रहती है यह भी निर्मल जलरूपी वस्त्रोंसे वेष्टित थी ॥ २२ ॥ उससमय धूमके समान काली मेघपंक्ति नजर नहिं पडती थी उससे ऐसा जान पड़ता था मानो श्वेतवर्ण गौओंके उन्नत शब्दोंने उसके शब्दोंको प्रच्छन्न करदिया था इसलिये वह लज्जित हो छिपगई है। वर्षाकालमें मेघमंडलसे आवृत होनेके कारण दिशाओंमें सूर्यके पाद (किरण) नहिं फैलपाते थे परंतु इससमय मेघका आवरण विलकुल नष्ट होचुका था इसलिये उस (सूर्य) ने अपने पैर (किरण) सब ओर पूर्णरीतिसे फैला रक्खे थे ॥२३॥ उससमय रोधरूपी नितंबोंसे झरते (गिरते) हुये जलरूपी चित्रविचित्र वस्त्रोंसे मंडित, भँवररूपी नाभिसे रमणीय, मीनरूपी नेत्रोंसे मनोहर, फैनरूपी चूड़ाओंसे अलंकृत, तरंग रूपी विशाल भुजाओंसे भूषित, नदीरूपी रमणियां क्रीड़ा कालमें भगवानके मनको हरण करती थीं ॥ २४ ॥ लहररूपी भ्रुकुटियोंसे शोभित, मीनके समान चंचल कटाक्षोंसे युक्त, कामी पुरुषोंके मनोहर आलापोंके समान मत्त भौंरे और हंसोंके शब्दोंसे रम्य, विकसित कमलोंकी परागरूपी अंगरागको धारण करनेवालीं सरसीरूपी स्त्रियां रतिकालमें भगवानको अतिशय अनुरक्त करतीं थी ॥ २५ ॥ शालिक्षेत्रोमें सुगंधित शालिवृक्ष फलोंके भारसे नमीभूत होगये और उन्हीं क्षेत्रोंमें कमलभी प्रफुल्लित होगये उनसे ऐसा प्रतीत होता था मानों सुगंधके अतिशय लोलुपी कमल और शालिफल शरीरसे शरीर मिलाकर चिरकालतक एक दूसरेकी सुगंध सूंघना चाहते हैं ॥ २६ ॥ कदंब वृक्ष वर्षाऋतुमें पुष्पित होते हैं इसलिये शरदऋतुके प्रारंभमें जब कंदबधूलिसे धूसरित विचारे भौंरोको कदंब पुष्पोंका मधु न मिला तो वे मत्त हाथियोंके मदकी गंध देनेवाले सप्तच्छदवृक्षोंसे ही मन वहलाने लगे ॥ २७ ॥

एक दिन भगवान मुनिसुव्रतरूपी राजहंस अपनी क्रीड़ासे रतिके विलासोंको तिरस्कार करनेवाली, लज्जा भयरूपी सुंदर आभरणोंसे मंडित, रानीरूपी राजहंसियोंको देखते हुये कैलासके समान विशाल राजमहलके अग्रभागपर विराजमान थे ॥ २८ ॥ समस्त शरद ऋतुके धान्योंसे परिपूर्ण दिशाओंको देखते २ अचानक ही उनकी दृष्टि एक मेघपर जापड़ी। यह मेघ चंद्रमाके समान शुभ्र, अतिशय रमणीय था और आकाशरूपी समुद्रमें क्रीड़ा करनेकी अभिलाषासे अवतीर्ण, भ्रमणका प्रेमी, गजराज ऐरावत सरीखा जान पड़ता था ॥ २९ ॥ जलरूपी उत्तरीय वस्त्रके गलित होजानेसे दिशारूपी स्त्रीके नग्न कठिन विशाल पीनस्तनके समान मालूम होनेवाले इस मेघको देख कर भगवान मुनिसुव्रतको परम आनंद होरहा था ॥३०॥ इतनेही में एक प्रचंड पवनका वेग आया और जिसप्रकार अग्निपर रक्खा हुआ मक्खन पिघलकर नष्ट होजाता है उसी प्रकार उस (पवन) के वेगसे वह खण्ड २ हो वातकी वातमें विलीन होगया मेघका यह विचित्र दृश्य देख भगवान मुनिसुव्रतनाथ इस प्रकार विचार करने लगे—

"अरे! अतिशय मनोहर यह शरदऋतुका मेघ देखते २ कैसे विलीन हो गया? अहा! ठीक है संसारमें आयु शरीर आदि सब पदार्थ क्षणभंगुर हैं परंतु इस मूर्ख लोकको इस बातका जरा भी स्मरण नहीं इसलिये उसै उपदेश देनेकेलिये ही इसकी यह अवस्था हुई है ॥ ३२ ॥ हाय! शुभ अशुभ परिणामों द्वारा संचित अल्प प्रमाण परमाणुओंका राशिस्वरूप यह आयुरूप मेघ निस्सार है क्योंकि कालरूपी प्रचंड पवनके वेगाघातसे तितर वितर होकर यह पलभरमें नष्ट हो जाता है ॥ ३३ ॥ जिसकी संधियां वज्रस्वरूप (वज्रवृषभनाराच) हैं और रचना सुंदर है ऐसा मनोहर भी यह शरीररूपी मेघ मृत्युरूपी महापवनके वेगसे भग्न हुआ असमर्थके समान विफल हो जाता है ॥ ३४ ॥ सौभाग्य रूप और नवीन यौवनरूपी भूषणसे भूषित, समस्त मनुष्योंके मन और नेत्रोंको अमृत तुल्य सुख वर्षानेवाले इस शरीररूपी मेघकी कांति वृद्धावस्थारूपी पवन समूहसे समय समयपर नष्ट होती रहती है अर्थात् ज्यों ज्यों आयु बढती जाती है त्यों त्यों यह शरीर क्षीण होता चलता है ॥ ३५ ॥ जो राजा अपने पराक्रमसे बडे २ राजाओंको वश करनेवाले हैं चिरकाल तक नीतिपूर्वक पृथ्वीका रक्षण करनेवाले हैं मनोहर राज्यके भोक्ता पर्वतके समान उन्नत हैं उन्हें भी यह कालरूपी प्रचंड वज्रका घात बातकी बातमें चूर चूर कर देता है ॥ ३६ ॥ संसारमें नेत्र और मनको अतिशय प्यारी स्त्रियां और प्राणोंके समान प्यारे, सुखमें सुखी, दुःखमें दुःखी मित्र और पुत्र भी सूखे पत्तेके समान कालरूपी पवनसे तत्काल नष्ट हो जाते हैं ॥ ३७ ॥ जीवोंके शरीर आदि क्षणभंगुर हैं इस बातको पूर्णरीतिसे जाननेवाला और सदा मृत्युसे डरनेवाला भी यह प्राणी मोहरूपी गाढ़ अंधकारसे अंधा होकर इष्ट मार्गपर गमन न कर अनिष्ट विषयोंकी ओर ही झुकता है ॥ ३८ ॥ यह विचारा दीन प्राणी कामरूपी मत्त हाथीके फंदेमें पड़कर अपने शरीरसे स्त्रियोंके शरीररूपी यष्टियोंका स्पर्श करता है और उस स्पर्शसे अंधा हो माते हाथीके समान विषम बंधनमें पड़ जाता है इसलिये इस स्पर्शजन्य सुखकेलिये धिक्कार है ॥ ३९ ॥ जिसप्रकार कांटेपर लगे हुये मांसके भक्षणका लोभी मीन जिह्वा इंद्रियके वश हो कांटेमें फंस जाता है उसीप्रकार षट्रस आहारके स्वादसे अंधा हुवा यह जीव घोर कर्मबंध बांधता है ॥ ॥ ४० ॥ जिसप्रकार सुगंधका लोभी भौंरा विषस्वरूप कच्चे पुष्प सूंघनेसे तत्काल मृत्युको प्राप्त हो जाता है उसीप्रकार नासिकाके अतिशय प्रिय मद्य अतर आदि पदार्थोंकी सुगंधिका लोलुपी यह जीव निर्बुद्धि हो कालके गालमें फंस जाता है ॥ ४१ ॥ जिसप्रकार रूप देखनेका अतिशय लोभी पतंग विना विचारे ही दीपशिखापर आकर गिर जाता है और अनेक प्रकारके संतापोंको सहता है उसीप्रकार चित्तको चंचल करनेवाले कटाक्षपात और मंद मंद मुस्कराहटसे युक्त मुखसे शोभित रमणियोंके शरीर देखने

का अतिशय लोभी यह जीव भयंकर संताप सहता है ॥ ४२ ॥ जिसप्रकार कर्णेंद्रियके वशीभूत मृग मधुर २ गाना सुननेमें मस्त हो जाता है और शिकारीके हाथमें अपनेको सुपुर्दकर जानसे हाथ धो बैठता है उसीप्रकार मनोहर रमणियोंकी शब्द करती हुई पायजेव करधनी आदि भूषणोंके सुंदर शब्द, प्रिय भाषण, और मधुर मधुर गायन, सुननेवाला यह जीव अधीर हो अज्ञानी हो जाता है और अपने प्राणतक खो बैठता है ॥ ४३ ॥ जो पुरुष थोड़ी शक्तिके धारक हैं निर्बुद्धि हैं वे यदि इस विषयभोगरूपी कीचड़में फंस जांय तो कोई आश्चर्य नहीं किंतु जो वज्रवृषभनाराचसंहननके धारक हैं और उत्तम हैं वे भी इसमें फंस जाते हैं यह बड़ा आश्चर्य है ॥ ४४ ॥ जो जीव अनेक वार स्वर्गसुखरूपी अनंत समुद्रोंको पी कर जरा भी तृप्त न हुआ वह बिलकुल थोड़े दिवस रहनेवाले इस भूलोकके सुखरूपी जलविंदुसे कब तृप्त हो सकता है ॥४५॥ जिसप्रकार ईंधनके बहुतसे भी गट्ठोंसे अग्नि तृप्त नहिं होती, और हजारों नदियोंके मिलजानेसे भी समुद्र नहिं भरता उसीप्रकार अनेक प्रकारके स्नान और सांसारिक काम भोगोंसे इस जीवकी भी कभी तृप्ति नहिं होती ॥ ४६ ॥ भोगवांछारूप भयंकर अग्नि-ज्वालाके बढ़नेकेलिये ये विषय, ईंधनकी राशिके समान हैं और विषयोंसे हटजाना एवं इंद्रियोंका वशकरना आदि संयम उस अग्निज्वालाकी शांति करनेवाली निश्चल जलधारा है। ॥ ४७ ॥ अब मुझै असारभूत इस विषय सुखका परित्यागकर बहुत जल्दी परम पवित्र मोक्षकेलिये प्रयत्न करना चाहिये और पहिले अपना प्रयोजन सिद्धकर दूसरे प्राणियोंके हितार्थ परमपवित्र सच्चे तीर्थकी प्रवृत्ति करनी चाहिये ॥ ४८ ॥

इसप्रकार मति श्रुति और अवधिरूप तीन नेत्रोंसे शोभित स्वयंभू भगवान मुनिसुव्रतनाथके स्वयमेव वैराग्य होनेपर देवेंद्रोंके आसन कंपायमान होगये एवं सौधर्म आदि स्वर्गोंके देव तत्काल कुशाग्रपुरमें आगये ॥४९॥ उससमय मनोहर कुंडल और हारोंसे शोभित श्वेतकांतिके धारक सारस्वत आदि लौकांतिक देवोंने आकर पुष्पांजलियोंकी बर्षाकी एवं हाथ जोड़ मस्तक नवा नमस्कार कर वे इसप्रकार स्तुति करने लगे ॥ ५० ॥ " अखंड ज्ञानरूपी किरणोंसे प्रवल मोहांधकारको नाश करनेवाले, भव्यरूपी कमलनियोंके विकास करनेमें अकारण बंधु (सूर्य) हितकारी, वीसवें तीर्थके प्रवर्तक हे भगवान जिनेंद्र ! आप वढें नंदे जयवंत रहैं और जीवें ॥५१॥ प्रभो! यह समस्त लोक भयंकर संसाररूपी दुःख ज्वालासे संतप्त हो रहा है इसके हितार्थ आप शीघ्रही धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति करें जिससे कि यह आपके द्वारा प्रकटित धर्मतीर्थमें स्नानकरके महामोहरूपी मैलको धोकर लोकके अग्रभागमें विराजमान परमसुखके स्थान मोक्षलोकमें चला जाय " ॥ ५२ ॥ इसप्रकार चारित्रमोहनीय कर्मके अतिशय क्षयोपशमसे स्वयं वैरागी भी भगवानको लौकांतिक देवोंने आकर प्रतिबोधा। यद्यपि भगवानको

प्रतिबोधनेकी कोई आवश्यकता न थी क्योंकि भगवान स्वयंबुद्ध संसारकी वास्तविक स्थितिके जानकार थे तथापि लौकांतिक देवोंका यह नियोग (फर्ज) होता है अतएव उन्होंने अपना नियोग निभाया इसलिये यहांपर भगवान स्वयंबुद्ध थे फिर लौकांतिक देवोंने उन्हैं क्यों प्रतिबोधा ? ऐसे पुनरुक्त दोषकी शंका न करनी चाहिये ॥ ५३ ॥ जिनके विमानोंके समूहसे चौतर्फा आकाश आच्छन्न होगया था ऐसे सौधर्म इंद्र आदि चारो निकायोंके देवोंने सुगंधित जलसे तत्काल भगवानका दीक्षाभिषेक किया एवं नानाप्रकारके उत्तमोत्तम भूषण पहिनाये ॥ ५४ ॥ भगवान मुनिसुव्रतका पुत्र महाराणी प्रभावतीसे उत्पन्न कुमार सुव्रत था भगवानने उसका राज्याभिषेक किया जिससे कि हरिवंशरूपी विशाल आकाशका चंद्रमास्वरूप कुमार सुव्रत श्वेत छत्र चमर और सिंहासनोंको तत्काल शोभित करने लगा ॥ ५५ ॥ अनंतर इंद्रकी आज्ञासे कुंवेरद्वारा तयारकर लाईगई पालकीमें सवार हो भगवान शीघ्रही वनकी ओर चलदिये जबतक वह पालकी पृथ्वीपर चली तबतक तो उसै राजाओंने वाहा और आकाशमें देवगण वाहनेलगे। वनमें जाकर भगवानने कार्तिक सुदी सप्तमीके दिन योग धारण किया और छै दिनका उपवासकर निश्चल बैठि गये ॥ ५६ जिससमय भगवान मुनिसुव्रतने दीक्षा ली थी उनके साथ हजार राजा और दीक्षित हुये थे दीक्षाके समय भगवानने लोंचकर जो केश उखाड़े थे उन्हें इंद्रने अपने मस्तकपर रखकर विधिपूर्वक क्षीरोदधि समुद्रमें क्षेपण किया ॥ ५७ ॥ इसप्रकार भगवानके तीसरे दीक्षाकल्याणकी पूजनकर देवगण अपने २ स्थानोंपर चलेगये। जिसप्रकार हजार किरणोंका धारक सूर्य शोभित होता है उसीप्रकार मति श्रुति अवधि और मनःपर्यय इन चार ज्ञानोंसे भूषित भगवान हजार राजाओंसे मंडित अतिशय रमणीय जान पड़ने लगे ॥ ५८ ॥ उपवासके अंतमें दूसरे दिन भगवान आहारविधिके बतलानेकेलिये आहारार्थ कुशाग्रपुर आये और वहां वृषभदत्तने उन्हैं सत्पात्र विधिसे आहार दान दिया ॥ ५९ ॥ उससमय धर्मकी मर्यादाके भलेप्रकार जानकार भगवान मुनिसुव्रतने परम चारित्रके धारक साधुओंके सर्वथा योग्य स्वाधीन (जो स्वयं जाकर ग्रहण कियाजाय) दोषरहित, शास्त्रानुकूल, खड़े होकर पाणिपात्रमें आहार लिया ॥ ६० ॥ पुण्यात्मा ऋषभदत्तने भगवान मुनिसुव्रतको परमान्न दिया था इसलिये उसदिन अवशिष्ट अन्न अपरिमित होगया उसी अन्नसे भगवानके साथके हजार मुनियोंको आहार दिया गया दूसरे मनुष्योंने भी उसै खाया परंतु वह निवट न सका ॥ ६१ ॥ उससमय सुंदरशब्दोंसे समस्त आकाशको आच्छन्न करनेवालीं देव दुंदुभियां वजने लगीं सुगंधित जल वरसने लगा अनुकूल पवन वहने लगा पुष्प वृष्टि होनेलगी और आकाशसे रत्नवर्षा हुई ॥ ६२ ॥ इसप्रकार वहुत समयतक देवोंने आकाशमें स्थित हो अतिशय उत्तम एवं अन्यकेलिये

दुर्लभ ये पांच आश्चर्य किये एवं पुण्यमूर्ति दाता वृषभसेनकी पूजाकर अपने २ स्थानों-पर चले गये। इसके बाद भगवान मुनिसुव्रतने भी विहारके योग्य स्थानपर विहार किया ॥ ६३ ॥ भगवान मुनिसुव्रत तेरह मासपर्यंत छद्मस्थ रहे पश्चात् ध्यानरूपी प्रबल अग्निसे घातिया कर्मरूपी ईंधनके जलते ही उन्हें आश्विन सुदी पंचमीके दिन कैवल्य लाभ हुआ ॥ ६४ ॥ उससमय केवलज्ञानरूपी अखंडनेत्रसे समस्त जगत भगवानको एक साथ भासने लगा एवं जिसप्रकार निरावरण सूर्यको पदार्थोंके प्रकाश करनेमें दूसरेकी सहायता नहिं लेनी पड़ती उसीप्रकार भगवान मुनिसुव्रतको भी क्रमकरीतिसे जतलानेवाले अन्य पदार्थकी सहायता न लेनी पड़ी ॥ ६५ ॥ भगवानको केवलज्ञान होते ही इन्द्रोंके आसन कंपित होगये वे तत्काल आसनोंसे उतर सात पैंड चले हाथ जोड़ मस्तक नवा भगवानको नमस्कार किया एवं अतिशय आनंदित हो देवों के साथ भगवानके पास आये ॥ ६६ ॥ उससमय तीन भुवनके स्वामी चंपक आदिके चारवनोंमें स्थित चार चैत्यवृक्षोंसे मंडित, अष्ट प्रातिहार्यरूपी परम विभूतिसे शोभित, अचिंत्य अनंत आर्हत्य विभूतिसे भूपित, भगवान मुनिसुव्रतकी मनुष्य और देवोंने भक्ति भावसे पूजनकी ॥ ६७ ॥ भगवानके समवशरणमें बारह सभायें थीं जिससमय मुनि देव आदि अपने २ स्थानोंपर बैठिगये तो गणधर विशाखने भगवानसे धर्मके विषयमें प्रश्न किया भगवानने भी द्वादशांगपूर्वक चारो अनुयोगोंका सविस्तर वर्णन किया और पवित्र धर्मका पृथ्वीपर प्रसार किया ॥ ६८ ॥ देवोंने भगवानके चतुर्थ कल्याणकी पूजनकी और वादको उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार कर सबलोग अपने २ स्थानोंको चलेगये भगवानने भी बहुत देशोंमें विहार किया और मेघके समान समस्त जीवोंके हितार्थ धर्मामृतकी बर्षाकी ॥ ६९ ॥ भगवानके समस्त अंग और पूर्वोंके वेत्ता अट्ठाईस गणधर थे उत्तमोत्तम गुणोंसे भूपित तीस हजार मुनि थे जिनका कि सात प्रकारका संघ था ॥ ७० ॥ संघमें पांचसो मुनि पूर्वपाठी थे इक्कीस हजार शिष्य अठारहसो अवधिज्ञानी अठारहसो केवलज्ञानी बावीससौ विक्रिया ऋद्धिके धारक पंद्रहसौ विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी एवं बारहसौ रागद्वेषरहित भलेप्रकार वाद करनेवाले मुनि थे ॥ ७१-७२ ॥ तथा पचास हजार आर्यिका, एकलाख शिक्षाव्रत गुणव्रत अणुव्रतोंके पालन करनेवाले श्रावक एवं तीनलाख सम्यग्दृष्टि श्राविका थीं इसलिये जिसप्रकार नक्षत्रोंसे वेष्टित चंद्र शोभित होता है उसी प्रकार सभामें स्थित मुनि आदिसे वेष्टित भगवान अतिशय रमणीय जान पड़ते थे ॥ ७३ ॥ भगवान मुनिसुव्रतका समस्त आयु तीस हजार वर्ष था उसमें साड़े सात हजार वर्ष कुमार अवस्थामें व्यतीत हुये पंद्रह हजार वर्ष राज्य अवस्थामें एवं शेष वर्ष संयमी अवस्थामें व्यतीत हुई ॥ ७४ ॥ अंतमें उन्होंने परम आनंद देनेवाले उत्तमोत्तम वनोंसे रमणीय सम्मेद शिखरपर आरोहण किया योग नि-

रोधकर अघातिया कर्म क्षय किये एवं हजारों मुनियोंके साथ मोक्ष शिलापर जा विराजे ॥ ७५ ॥ एक मास प्रथम विहारका त्यागकर माघ सुदी तेरसको पुष्य नक्षत्रमें दुपहरके बाद भगवान अर्हंत अवस्था छोड़ सिद्ध हुये और उसीसमय देवेंद्रोंने उनके पंचम मोक्षकल्याणककी पूजनकी ॥ ७६ ॥ इसप्रकार केवलज्ञानसे समस्त पदार्थ जाननेवाले मुनियोंके प्रभाव को बतलाने वाला, निरंतर आनेवाले देवोंसे समस्त लोकको हर्षित करनेवाला भगवान मुनि सुव्रतका धर्मतीर्थ छैलाख वर्षपर्यंत पृथ्वीपर विराजमान रहा ॥ ७७ ॥ जो मनुष्य पांचो कल्याणोंकी विभूतिका विचार करता हुआ वीसवें तीर्थंकर श्रीमुनिसुव्रत नाथके चरित्रका भक्तिपूर्वक श्रवण पठन और स्मरण करता है उसे बहुतजल्दी ही मोक्षसुखकी प्राप्ति होती है ॥ ७८ ॥

इसप्रकार पवित्र चरित्रसे शोभित धीर वीर समस्त संसारका नाश करनेवाले भगवान मुनिसुव्रत इस वसंततिलका छंदरूपी पुष्पोंसे गुंफित मालाको धारण कर हमारे विघ्नोंका नाश करैं और हमें समाधिबोधी बनावें ॥ ७९ ॥

इसप्रकार श्री जिनसेनाचार्यनिर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णनकरनेवाले हरिवंशपुराणमें भगवान मुनिसुव्रतके पांचो कल्याण वर्णन करनेवाला सोलहवां सर्ग समाप्त हुआ।

सप्तदश सर्ग।

हरिवंशके स्वामी समस्तपृथ्वीको वश करनेवाले, काम क्रोध आदि छै अंतरंग वैरियोंके विजेता, धर्म अर्थ काम तीनों पुरुषार्थोंके सिद्ध करनेवाले, राजा सुव्रत सानंद राज्य कर रहे थे कि अचानकही उन्हैं संसारकी असारता जान वैराग्य हो गया अपना पद अपने पुत्र दक्षको दे भगवान् मुनिसुव्रत के निकट दीक्षा धारण करली और तप तपकर मोक्ष चले गये ॥ १–२ ॥ राजा दक्षके रानी इलासे उत्पन्न पुत्र पुत्री दो संतान थी पुत्रका नाम ऐलेय और पुत्रीका नाम मनोहरी था कन्या मनोहरी समुद्रसे उत्पन्न लक्ष्मी सरीखी जान पड़ती थी ॥ ३ ॥ जिसप्रकार चंद्रमाकी वृद्धिके साथ २ कलारूपी गुणोंसे युक्त उसकी कांति दिनों दिन बढ़ती चली जाती है उसी प्रकार कुमार ऐलेय के साथ २ नेत्रोंको हरण करनेवाली कन्या मनोहरी दिनों दिन बढ़ने लगी ॥ ४ ॥ जब वह युवती हुई तो उसके स्तन अतिशय पीन होगये जंघा विशाल होगई कटिभाग विलकुल पतला होगया ॥ ५ ॥ गार आदिके विना ही उसका स्वाभाविक रूपरूपी शस्त्र इतना तीक्ष्ण था कि वह धीर वीर भी मनुष्यके मनको घायल कर देता था ॥ ६ ॥ अन्यकी तो क्या बात ? कन्या मनोहरीके रूपसे पिता दक्षका भी चित्त चंचल होगया और उसे भी कामदेवने मनोहरीरूपी अस्त्रसे अपने वशकर लिया ॥ ७ ॥ जब राजा दक्ष कन्यापर अतिशय मुग्ध होगया तो उसने छलसे प्रजाको राज सभामें बुला-

या और इसप्रकार प्रस्ताव किया—"सज्जनो! आप भलेप्रकार संसारकी रीतिरिवाजोंके जानकार है मैं आपसे प्रश्न करना चाहता हूं आप लोककी अनुकूल स्थिति विचार कर उत्तर दें ॥८-९॥ संसारमें हाथी घोड़ा स्त्री आदि कोई वस्तु अमूल्य हो और वह प्रजाके लायक न हो तो उसका स्वामी राजा हो सकता है या नहीं?" ॥ १० ॥ राजाका यह वेढवा प्रश्न सुन सभा निस्तब्ध होगई सबके सब मनुष्य अपने मनमें विचार करने लगे अंतमें राजाके मनका अभिप्राय न समझ कुछ मनुष्योंने कहा—

"प्रभो! इस वातका क्या विचार करना है जो वस्तु प्रजाके योग्य नहिं है उसका स्वामी राजा है ही ॥ ११ ॥ जिसप्रकार हजारों नदियों और उत्तमोत्तम रत्नोंका स्वामी समुद्र है अमूल्य रत्नोंकी मालकिन खानि है उसीप्रकार राजा भी उत्तम पदार्थोंका अधिकारी है ॥ १२ ॥ इसलिये यदि आपके मनमें रत्नग्रहण करनेकी अभिलाषा है तो समस्त पृथ्वीकी खानियोंसे उत्पन्न उत्तमोत्तम रत्नोंको आप निःशंक हो अपने हाथमें करिये" ॥१३॥ प्रजाके ऐसे वचन सुन राजा दक्षकी बुद्धि विपरीत होगई उसकी सम्मति ले उसै विदा किया और शीघ्र ही पुत्री मनोरमाके पास आकर अपने आप उसका हाथ पकड़ लिया सो ठीक ही है जो मनुष्य कामरूपी पिशाचके फंदेमें पड़जाते हैं उन्हैं न तो मर्यादाका विचार रहता है और न कुलक्रमका ही स्मरण रहता है ॥ १४-१५ ॥ राजा दक्षको अपनी ही आत्मजा मनोहरीपर आसक्त जान रानी इलाको वड़ा दुःख हुआ उसने रुष्ट हो तत्काल पुत्रका पितासे वैर करादिया सो ठीक ही है जवतक मनुष्य अपनी मर्यादापर स्थित रहता है हेय उपादेयका विचार रखता है तभीतक स्त्री पुत्र आदि उसके आधीन रहते हैं और मर्यादासे च्युत होते ही न उसके स्त्री ही अपनी रहती है और न पुत्र ही अपने वशमें रहता है ॥ १६ ॥ बड़े २ सामंतोंसे वेष्टित हो रानी इलाने अपने इकलोते ऐलेय पुत्रको साथ ले दुर्गदेशकी ओर प्रस्थान किया वहां जाकर उसने किसी विस्तीर्ण भूमिपर शोभामें स्वर्गके समान एक इलावर्धन नामका नगर वसाया और धीर वीर नीतिसे युक्त हरिवंशके तिलकस्वरूप कुमार ऐलेयको उसपुरका राजा वनाया ॥ १७-१९ ॥ राजा ऐलेयने अंगदेशमें एक अतिशय मनोहर ताम्रलिप्ति नामका नगर वसाया कदाचित् वह समस्त देशोंको जीतनेकी इच्छासे नर्मदानदीके तटपर आया और वहांपर अतिशय प्रसिद्ध एक माहिष्मती नामकी नगरी वसाई ॥२०-२१॥ नगरी माहिष्मतीमें रहकर राजा ऐलेयने वहुत दिनतक राज्य किया एवं संसारको असार जान अपने कुणिमनामक पुत्रको राज्य दे तपके लिये वनमें चलागया ॥२२॥ शत्रुओंको संताप देनेवाले राजा कुणिमने विदर्भदेशमें वरदा नदीके किनारे एक कुंडिन (कुंडल) पुर नामका मनोहर नगर वसाया ॥ २३ ॥ कुछ समयके वाद कुणिमको संसार असार जान पड़ा, ऐश्वर्य और जीवन क्षणभंगुर जंचने लगे इसलिये

अपने पुलोमनामक पुत्रको राज्य दे वह तत्काल तपोवन चला गया ॥२४॥ राजा पुलोमने एक पौलोमपुर नामका नगर वसाया और इसने भी अपने पौलोम और चरम दोनों पुत्रोंको राज्य दे दिगंबर दीक्षा धारण करली राजा पौलोम और चरम बड़े प्रभावी थे अ-खंडित मंडलके धारक सूर्यचंद्रमाके समान देदीप्यमान और विजयके अभिलाषी थे इस लिये इन्होंने बहुतसे राजाओंपर विजय प्राप्त किया ॥ २५–२६ ॥ इन दोनोंने मिलकर रेवा नदीके किनारे इंद्रपुर नगर वसाया एवं केवल चरमने जयंती और वनवास्य दो नगर पृथक् वसाये ॥२७॥ राजा चरमका पुत्र संजय और पौलोमका महीदत्त हुआ राजा पौलोम और चरम दोनों पुत्रोंको राज्य दे तपके लिये वनको चलेगये ॥ २८ ॥ राजा महीदत्तने कल्पपुर नामका नगर वसाया महीदत्तके अरिष्टनेमी और मत्स्य दो पुत्र हुये ॥२९॥ प्रतापी राजा मत्स्यने चतुरंग सेनासे भद्रपुर और हस्तिनागपुरका विजयलाभकर हस्तिनागपुरको अपनी राजधानी बनाया और सानंद रहने लगा ॥३०॥ राजा मत्स्यके आयोधन आदि सौ पुत्र हुये और ये समस्त इंद्रके समान पराक्रमी थे। कदाचित् सं-सारसे उदासीन हो राजा मत्स्यने अपने ज्येष्ठ पुत्र आयोधनको राज दे दिगंबर दीक्षा लेली ॥ ३१ ॥ राजा आयोधनके मूल नामका पुत्र हुआ मूलका शाल शालका सूर्य हुआ और इसने शुभ्रपुर वसाया ॥ ३२ ॥ सूर्यका पुत्र अमर हुआ और उसने वज्रपुर निर्माण किया अमरका पुत्र देवदत्त हुआ जो कि इंद्रके समान पराक्रमी था ॥ ३३ ॥ देवदत्तके मिथिलानाथ नामका पुत्र हुआ यह विदेहका अधिपति था मिथिलानाथके हरिषेण, हरिषेणका नभसेन, उसका शंख उसका भद्र और भद्रका अभिचंद्र हुआ यह अभिचंद्र अपने प्रतापसे शत्रुओंका प्रताप खंडित करनेवाला था और इसने विंध्याचल पर्वतके पृष्ठभागपर चेदिराष्ट्रकी स्थापनाकी एवं शुक्तिमती नदीके तटपर शुक्तिमती नामकी पुरी वसाई ॥ ३४–३६ ॥ राजा अभिचंद्रने उग्रवंशसे उत्पन्न रानी वसुमती-से विवाह किया और उसके वसु नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३७॥ उसी नगरमें एक क्षीरकदंब नामका ब्राह्मण निवास करता था यह क्षीरकदंब भलेप्रकार वेदोंका जानकार था इसकी स्त्री स्वस्तिमती थी और उन दोनोंसे उत्पन्न पुत्रका नाम पर्वत था ॥ ३८ ॥ अतिशय विद्वान पंडित क्षीरकदंवने वसु पर्वत और नारद इन तीन बालकोंको एक साथ पढ़ाया-और शास्त्रोंके अनेक रहस्य समझाये ॥ ३९ ॥

कदाचित् ब्राह्मण क्षीरकदंवक तीनों बालकोंको अरण्य (वन) में आरण्यक वेद पढ़ा रहा था उसीसमय चारण ऋद्धिके धारक अवधिज्ञानी कोई मुनि किसी साधुको यह कहते हुये कि "इन वेदके अध्ययन अध्यापन करनेवालोंमें दो पापके कारण अधोगतिको और दो पुण्यके कारण ऊर्ध्वगतिको जावेंगे" आकाश मार्गसे जा रहे थे मुनिराजकी उपर्युक्त वाणी सुन अध्यापक क्षीरकदंवको बड़ा संशय हुआ उसने संध्यासमय शिष्यों-

को तो घर रवाना किया और स्वयं मुनिराजके अन्वेषण करनेकेलिये चल दिया ॥ ४०-४३॥ शिष्योंके साथ अपने पति क्षीरकदंबको आता न देख ब्राह्मणी स्वस्तिमतीने संदेहयुक्त हो शिष्योंसे पूछा—

"पुत्रो! आज तुम्हारे गुरु उपध्याय कहां रहगये हैं? शीघ्रही बतलाओ" ब्राह्मणीके ऐसे आकुलतापूर्ण वचन सुन पुत्रोंनें जबाब दिया "माता! मैं अभी आता हूं ऐसा कहकर गुरुजीने हमैं घर भेज दिया है वे भी नियमसे हमारे पीछे २ ही आते होंगे आप व्याकुल न हों" ॥ ४४-४५ ॥ शिष्योंके ऐसे वचन सुन ब्राह्मणी स्वस्तिमतीके चित्तको कुछ शांति मिली उसने क्षीरकदंबकी दिनभर वाट जोई रातको भी वाट हेरी किंतु जब वह घर न आया तो ब्राह्मणी (स्वस्तिमती) को बड़ा शोक हुआ 'वे नियमसे संन्यासी होगये' ऐसा अपने पतिका अभिप्राय समझ उसै बड़ी आकुलता हो गई और रातभर रोती रही ॥ ४६-४७॥ प्रभात होते ही पर्वत और नारद गुरुकी खोजकरने चलदिये बहुत दिनतक इधर उधर घूमनेके बाद उन्हैं एक दिन वे किसी वनमें दीख पड़े उससमय वे किसी दिगंबर गुरुके पास विराजमान हो आचारांग सूत्रका अध्ययन कर रहे थे सो पर्वत तो पिताको दूरसे ही देखकर लोट आया आकर उनका समस्त वृत्तांत मातासे कह दिया स्वस्तिमतीने दुःखित हो बहुत काल तक दुःख और शोक मनाया अंतमें शोकरहित हो पहिलेके समान ही सुखपूर्वक रहने लगी ॥ ४८-५० ॥ किंतु नारद परम विनयी था वह सीधा गुरुके पास चलागया तीन प्रदक्षिणा दे उन्हैं नमस्कार किया और वार्तालाप कर अणुव्रती श्रावक हो वापिस लौट आया। नगरमें आकर नारदने शोकसे तप्तायमान पर्वतकी माताको आश्वासन दिया और उसै नमस्कार कर अपने घर चला गया ॥ ५१-५२ ॥ राजा अभिचंद्र पुत्र वसुको राज्य दे संसारसुखसे उदासीन हो तपोवनके लिये चलेगये ॥ ५३ ॥ नवीन यौवनश्रीसे मंडित राजा वसु इंद्रके समान प्रतापी था नीतियोंका वेत्ता था इसलिये उसने थोड़े ही कालमें समस्त पृथ्वी स्त्रीके समान विनीत करली ॥ ५४ ॥ जिससमय राजा वसु आकाशके समान निर्मल स्फटिकमयी सिंहासनपर विराजमान होता उससमय समस्त राजाओंको यही जान पड़ता कि वह आकाशमें ही विराजमान है ॥ ५५ ॥ राजा वसु सर्वदा सत्य बोलता था इसलिये सत्यधर्मके प्रभावसे उसके धर्मात्मापनेकी चौतर्फा कीर्ति दुन्दुभि वजती थी ॥ ५६ ॥ उसकी एक रानी इक्ष्वाकुवंशकी और दूसरी कुरुवंशकी थी उसके इन दोनों रानियोंसे उत्पन्न वृहद्वसु १ चित्रवसु २ वासव ३ अर्क ४ महावसु ५ विश्वावसु ६ रवि ७ सूर्य ८ सुवसु ९ और वृहद्ध्वज १० ये दश पुत्र थे और ये दशो वसुके समान पराक्रमी परम विजिगीषु थे॥५७-५९॥ पांच इंद्रियां और उनके पांच विषयोंके समान एक दूसरेसे अतिशय प्रेम करनेवाले इन दशो कुमारोंके

साथ राजा वसु परम सुखका अनुभव करता था ॥ ६० ॥

एक दिन अनेक छात्रोंसे मंडित नारद गुरुपुत्र पर्वतको गुरुके समान मानकर उससे मिलने आये ॥ ६१ ॥ पर्वतने नारदका बड़ा सत्कार किया नारदने पर्वत और गुरुपत्नी स्वस्तिमतीकी कुशल क्षेम पूछी और गुरुकी कथा करते हुये उनके पास बैठि गये ॥ ६२ ॥ परम अभिमानी पर्वत उससमय वेदकी व्याख्या कर रहा था उसके चौतर्फा अनेक छात्र बेठे थे वह नारदके समक्षमें ही निःसंशय हो कहने लगा "अजैर्यष्टव्यं" इस वेद वाक्यमें अज शब्दका अर्थ आम्नाय (पूर्वाचार्योंसे चला आया) से पशु (छाग) है जो द्विज, पद वाक्य और पुराणोंके वास्तविक अर्थके जानकार हैं स्वर्गके अभिलापी हैं उन्हें चाहिये कि वे छागोंसे यज्ञ करें ॥ ६३-६५ ॥ पर्वतका ऐसा अंडवंड अर्थ सुन नारदसे न रहागया युक्ति और आगमरूपी प्रकाशसे अज्ञानांधकारको दूर करनेवाला नारद पर्वतको उसकी अज्ञानता दूर करनेकेलिये इसप्रकार कहने लगा—

गुरुपुत्र! वेदवाक्यका यह भ्रष्ट अर्थ आपने कहांसे जाना? मित्र! यह नवीन आम्नाय (संप्रदाय) आपने कब कहांसे सुनी ॥ ६६-६७ ॥ हम आप तो एकही उपाध्यायसे पढ़े हैं सर्वदा एक साथ ही गुरुकी सेवा शुश्रूषामें लगे रहे हैं और एक साथ ही पढ़ना छोड़ा है फिर यह संप्रदायभेद आपको गुरु महाशयने कब बतलाया? ॥ ६८ ॥ तुम्हें मालूम नहीं गुरुजीने अज शब्दका अर्थ क्या बतलाया था? मुझे पूर्ण स्मरण है उन्होंने 'तिवर्षे शालिके वीज' अज बतलाये थे और यही अर्थ उत्तम पुरुष मानते हैं ॥ ६९ ॥ पर्वत बड़ा आग्रही था—अनिवार्य आग्रहरूपी पिशाचका उसपर पूर्ण प्रभाव जमा हुआ था इसलिये नारदके समझानेपर भी उसने एक न मानी उल्टा क्रुद्ध हो नारदके वचनोंका सर्वथा तिरस्कार कर गर्वित हो इसप्रकार कहने लगा—

"नारद! सुनिये इस विषयमें विशेष बोलनेकी कोई आवश्यकता नहीं मैं प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूं यदि इस विवादमें मै पराजित होगया तो अपनी जिह्वाको छेद डालूंगा ॥ ७०-७१ ॥ नारदने इसके उत्तरमें कहा—

"पर्वत! ऐसे करनेकी कोई आवश्यकता नहीं मिथ्यापक्षका आश्रयकर पतंगके समान भयंकर दुःखरूपी अग्निशिखापर क्यों अपने आप गिरते हो" ॥ ७२ ॥ पर्वतने पुनः उत्तर दिया—

"अधिक बोलनेमें कोई लाभ नहीं चलो अपन दोनों राजा वसुकी सभामें चलें और वहीं इस विषयपर हमारा तुम्हारा शास्त्रार्थ हो" ॥ ७३ ॥ नारदतो 'तुम्हारी इच्छा'! ऐसा कहकर अपने स्थानपर चलागया और पर्वतने अति दुःखित हो शास्त्रार्थका सबहाल मातासे जाकर कहा ॥ ७४ ॥ पुत्रकी वैसी बात सुन स्वस्तिमतीका चित्त बड़ा खिन्न हुवा पुत्रका कथन सर्वथा झूठा जान वह उसकी वार वार निंदा करने लगी और यह

बोली—नारद जो अज शब्दका अर्थ करता है वह सर्वथा सत्य है क्योंकि परमार्थमें उसका वही अर्थ है तुम्हारा अर्थ सर्वथा झूठा है क्योंकि तुमने विपरीत मार्गका सहारा लिया है ॥ ७५–७६ ॥ पुत्र ! समस्त शास्त्रोंके वेत्ता अतिशय विद्वान तुम्हारे पिताने जो अज शब्दका अर्थ कहा था वही नारद कहता है" ॥७७॥ इसप्रकार पर्वतको उसके अर्थकी अशुद्धि बताकर वह प्रातःकाल होते ही राजा वसुके राजमंदिरमें गई वसुने देखते ही उपाध्यायनीका बड़ा सत्कार किया और उससे आनेका कारण पूछा ॥७८॥ स्वस्तिमतीने जो कुछ नारद और पर्वतका शास्त्रार्थ हुआ था सब कह सुनाया और पढ़ते समय गुरुके समक्ष राजा वसुने जो प्रतिज्ञा की थी उसका हाथसे स्मरण दिलाती हुई इसप्रकार गुरुदक्षिणाकी याचना करने लगी—

"पुत्र ! यद्यपि तुम सत्य और असत्यके पूर्णतया जानकार हो तो भी इससमय तुम्हें पर्वतके वचनोंकी ही पुष्टि करनी चाहिये और नारदका वचन दूषित ठहराना चाहिये" ॥७९–८०॥ उपाध्यायीका यह प्रबल आग्रह देख सत्यसे च्युत होकर राजा वसुको उसके वचन स्वीकार करने पड़े और उपाध्यायी यह देख अपनेको कृतार्थ समझ निजस्थान लोट आई ॥ ८१ ॥ प्रातःकाल सभाके समय राजा वसु सिंहासनपर विराजमान हुये जिसप्रकार इंद्रके चारोओर देव बैठते हैं राजा वसुके चौतर्फा अनेक क्षत्रिय राजा बैठै ॥ ८२ ॥ इसी समय पर्वत और नारदने भी राजाकी सभामें प्रवेश किया उससमय उनके साथमें सर्वशास्त्रोंके वेत्ता बहुतसे जिज्ञासु विद्वान भी पधारे ॥ ८३ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र और तपस्वी भी क्रम २ से आये एवं न बुलानेपर भी बहुतसे अन्य लोग इस कौतूहलके देखनेके लिये आबैठे ॥ ८४ ॥ उससमय बहुतसे विप्र तो सभ्योंके कानोंको अतिशय आनंद देनेवाले सामवेदका पाठ कररहे थे बहुतसे मंत्रोंका जोर २ से उच्चारण करते थे ॥८५॥ बहुतसे प्रारंभमें जिसका ओंकार बड़े जोरसे बोला जाता था ऐसे यजुर्वेदका पाठ करते थे बहुतसे पदक्रमसे मंत्र बोलते थे ॥ ८६ ॥ और बहुतसे ह्रस्व दीर्घ प्लुत भेदसे भिन्न उदात्त अनुदात्त और स्वरितका स्वरूप समझाते थे ॥ ८७ ॥ इसप्रकार अपने उचारणोंसे समस्त दिशाओंको बधिर करनेवाले, साम और यजुर्वेदके पाठोंमें दत्तचित्त ब्राह्मणोंने उससमय राजा वसुका आगन गुंजा दिया था सिंहासनपर विराजमान राजाको देख पर्वत और नारदने आशीर्वाद दिया और सिंहासनके पास जाकर बैठगये ॥ ८८–८९ ॥ सभामें जो बहुतसे तपस्वी आये थे वे उस समय वृक्षके समान जान पड़ते थे क्योंकि वृक्षमें अंकुरे होते हैं इनके भी डाढ़ीरूपी अंकुरे मोजूद थे वृक्षपर फल रहते हैं ये भी कमंडलुरूप फलके धारक थे वृक्षोंपर वल्कल होते हैं ये भी जटारूपी बल्कलोंसे युक्त थे ॥ ९० ॥ सभामें अनेक पंडित तो क्षोभको प्राप्त सभारूपी समुद्रकेलिये सेतुबंध (पुल) के समान थे अनेक पक्षपातरहित

तराजूकी दंडीके समान थे ॥ ९१ ॥ कोई कुमार्गपर जाते हुये वादीरूपी हस्तियोंको रोकनेकेलिये अंकुश सरीखे थे और बहुतसे सत्य असत्यका निर्णय करनेकेलिये निकषोपल (कसोटी) के तुल्य थे ॥ ९२ ॥ जब ये समस्त विद्वान यथायोग्य अपने अपने स्थानोंपर बैठिगये तो जो पुरुष उससमय सभामें ज्ञान और वयमें वृद्ध थे वे इसप्रकार राजासे कहने लगे—

"राजन्! आप भलेप्रकार न्याय मार्गके जानकार हैं किसी वस्तुमें विसंवाद होजानेके कारण ये दो विद्वान नारद और पर्वत आपकी सभामें आये हैं ॥ ९३–९४ ॥ इनका विवाद किसी वैदिक विषयपर है उसका निर्णय आपके सिवाय दूसरा कोई नहिं करसकता क्योंकि इससमय पृथ्वीपर वेदोंकी संप्रदायोंका नाश सरीखा होगया है ॥९५॥ इसलिये आपके और इन विद्वानोंके समक्षमें इनका वास्तविक न्याय होना चाहिये और जो यथार्थ बोलनेवाला हो उसका जय एवं मिथ्या बोलनेवालेका पराजय स्वीकार करना चाहिये ॥ ९६ ॥ आजकी सभामें जो वात तर्क वितर्कसे निश्चित होजायगी वेदमार्गियोंकी उसीपर असंदिग्धरूपसे प्रवृत्ति होगी और उसीसे सर्वलोकका उपकार होगा"॥ ९७ ॥ राजाको उससमय न्याय अन्यायका कुछ भी ज्ञान न था उसे तो पर्वतका पक्षलेना था इसलिये वृद्धोंकी प्रेरणासे उसने शीघ्रही पर्वतको पूर्वपक्ष करनेकी आज्ञा देदी जिससे की पर्वत राजाकी कृपासे अति गर्विष्ठ हो इसप्रकार पूर्वपक्ष करनेलगा ॥ ९८ ॥

वेदमें "अजैर्यष्टव्यं" यह जो वाक्य है इसका अर्थ यह है—जो मनुष्य स्वर्ग के अभिलाषी हैं उन्हैं अजों से यज्ञ करना चाहिये। यहां पर अज शब्दका अर्थ चौपाया पशु (छाग) है ॥ ९९ ॥ अज शब्दका पशु अर्थ केवल वेदमें ही नहीं किंतु लोकमें भी वृद्ध पुरुष स्त्रियां और बालक तक जानते और करते हैं ॥ १०० ॥ संसारमें—'इस मनुष्यके शरीरमें अज (छाग) की गंध आती है' 'यह अजा—छागी का दूध है' इत्यादि कहावतें भी प्रसिद्ध हैं इन प्रसिद्धियों का लोप देवभी नहिं कर सकते ॥ १०१ ॥ जिन शब्दोंका अर्थ स्वभाव सिद्धहै यदि उनका बाध किया जायगा और का और ही मान लिया जायगा तो संसारके समस्त व्यवहार बंद हो जायंगे और यह समस्त जगत दिनमें उल्लूके समान अंधा हो कार्यरहित हो जायगा ॥ १०२ ॥ शब्दकी प्रवृत्ति योग्य अर्थमें अबाधित रूपसे होती है और ऐसा होनेपर ही लौकिक एवं शास्त्रीय व्यवहार चलता है ॥ १०३ ॥ वेदमें जिसप्रकार 'स्वर्गकामः, अग्निहोत्रं जुहुयात्' (स्वर्गका अभिलाषी अग्नि होत्र यज्ञकरै) इसवाक्यमें अग्नि आदि शब्दोंका जो अग्नि आदि प्रसिद्ध अर्थ है वही लिया गया है औरका और नहीं उसीप्रकार अज शब्दका भी प्रसिद्ध अर्थ 'पशु' ही ग्रहण करना चाहिये अन्य नहीं ॥ १०४–१०५ ॥ और याग शब्दका 'पशु डालना अर्थ तो निश्चित ही है इसलिये जो मनुष्य अनुष्ठानके प्रेमी हैं उन्हैं अजैर्यष्टव्यं

इसवाक्यसे निस्संशय हो छागोंको मारना चाहिये और अनुष्ठान करना चाहिये ॥१०६॥ कोई मनुष्य यदि इस बातकी आशंका करै कि पशुके मारनेपर उसे दुःख होता है तो उसकी वह आशंका व्यर्थ है क्योंकि मंत्रकी कृपासे उसकी सुखपूर्वक मृत्यु होती है उसै किसी प्रकारका दुःख नहीं होता ॥ १०७ ॥ मंत्रोंके उच्चारणसे यज्ञदीक्षाके अंतमें पशुको साक्षात् सुखस्थान दीखने लगजाता है। यदि कोई यह संदेह करै मंत्रसे यह बात कैसे हो जाती है? तो वह भी ठीक नहीं क्योंकि मणि मंत्र और औषधियोंका प्रभाव अचिंतनीय है ॥ १०८ ॥ और यह भी बात है आत्मा तो अतिशय सूक्ष्म हैं अमर है उसका तो निपात (मरण) हो ही नहीं सकता जब वह अग्नि विष और शस्त्रोंसे भी अवध्य है तव मंत्रपाठी मनुष्योंसे वह कैसे मर सकता है? ॥ १०९ ॥ जीवके शरीरके जो २ अवयव नष्ट होते हैं वे सब अपने २ देवताओंमें मिल जाते हैं नेत्रका स्वामी सूर्य है इसलिये नेत्र तो सूर्यमें मिलजाते हैं कानोंकी स्वामिनी दिशायें हैं इसलिये कान दिशाओंमें मिलजाते हैं प्राणोंका स्वामी पवन है इसलिये वे पवनमें मिलजाते हैं रुधिरका मालिक जल है इसलिये वह जलमें मिलजाता है और शरीर पृथ्वीमें मिलजाता है इसलिये यज्ञ करनेवाले मनुष्य पशुको शांति प्रदान करनेवाले हैं ॥ ११० ॥ जिसप्रकार यज्ञ करनेवाला पुरुष सीधा स्वर्ग लोक चला जाता है और वहां चिरकालतक भांति भांतिके सुख भोगता है उसीप्रकार मंत्रपूर्वक होम कियागया पशु स्वर्ग जाता है और वहां अनेक भोग भोगता है ॥ १११ ॥ यदि कहो इच्छापूर्वक स्वयं किया हुआ पुण्यबंध स्वर्ग प्राप्तिमें कारण होता है यज्ञमें पशुको जबरन होमा जाता है उसके परिणाम संक्लेशमय रहते हैं इसलिये उसे स्वर्गप्राप्ति नही हो सकती सो भी ठीक नहीं क्योंकि जो वस्तु सुखदायक है वह हठात्‌की जाय या स्वयं इच्छासे कीजाय परंतु वह अपना फल सुखरूप अवश्य देती है जैसे कि—घी आदि पदार्थ पुष्टिकारक हैं वे चाहे स्वयं इच्छासे खाये जांय चाहें बलपूर्वक विना इच्छाके बालक आदिको खिलाये जांय अवश्यही पुष्टि प्रदान करते हैं। इसीप्रकार विना इच्छा के होमागया भी पशु स्वर्गही जाता है इसमें कोई संशय नहीं है" ॥ ११२ ॥ इसप्रकार अपने पक्षका समर्थन कर पर्वत शांत होगया और उसके पक्षको खंडन करनेकेलिये विद्वान नारद इसप्रकार कहने लगा ॥ ११३ ॥

"सज्जनो! अब आप सावधान हो मेरे वचन सुनें मैं अभी पर्वतके मिथ्यापूर्ण वचनोंको खंड खंड किये डालता हूं— 'अजैर्यष्टव्यं' इसवाक्यमें जो अज शब्दका 'पशु' अर्थ-पर्वतने प्रतिपादन किया है वह इसीकी बुद्धिसे कल्पित होनेके कारण मिथ्या है क्योंकि वेदमें अपनी इच्छानुसार शब्दोंका अर्थ नहिं किया जा सकता वेदके अध्ययन (उच्चारण)में जिसप्रकार गुरुकी आवश्यकता पड़ती है उसीप्रकार उसके अर्थका उप-

देश भी विना गुरुके नहीं हो सकता ॥ ११४-११५-११६ ॥ परंपरासे जो गुरुओं ने शब्दोंका अर्थ निश्चित कर रक्खा है वही अर्थ शब्दोंका ठीक हो सकता है यदि गुरुओंका द्वारा निश्चित अर्थोंकी परिपाटी अन्यथा हो जायगी तो अध्ययन भी अन्यथा मानना पड़ेगा ॥११७॥ कहोगे अध्ययनकी वात दूसरी है वह अन्यथा नहीं हो सकता, अर्थज्ञान भिन्न होसकता है तो इसमें क्या प्रमाण है ? अर्थज्ञानमें ही भेद क्यों ? और अध्ययनमें भेद क्यों नहीं ॥ ११८ ॥ यदि पर्वतका मंतव्य यह है कि जो मनुष्य प्रज्ञाशाली विद्वान है वह शब्दोंका अर्थ करसकता है शब्द नहीं बना सकता तो यह भयंकर शाप क्यों ? और किसके ऊपर ? विद्वान होनेसे इच्छानुसार उसै शब्द भी गढ़लेने चाहिये अर्थात् जिस तरह विद्वान् अपनी बुद्धिके प्रभावसे नवीन अर्थ बना सक्ता है उसतरह शब्द क्यों नहीं बना सकता शब्द बनानेमें उसकी बुद्धि क्यों काम नहीं देती ॥११९॥ अज शब्दका पशु अर्थ संप्रदायसे सिद्ध भी नहीं है क्योंकि मैं पर्वत और वसु ये तीनों एक गुरुके शिष्य हैं गुरुने एकके लिये अज शब्दका अर्थ पशु बतलाया हो और दूसरेको अन्य, यह बात युक्तियुक्त नहिं हो सकती ॥ १२० ॥ यह जो कहाकि अज शब्दका पशु अर्थ लोकमें भी प्रसिद्ध है सो भी ठीक नहीं गौ आदि बहुतसे ऐसे शब्द हैं जिनका श्रवण समानरीतिसे अर्थात् गौ गौ आदि ऐसाही होता है परंतु अर्थके भिन्न २ होनेसे उनका प्रयोग जुदा २ ही होता है ॥ १२१ ॥ जैसे—गो शब्दके पशु किरण, हिरण, नेत्र, दिशा, वज्र; तुरंग, वाणी पृथ्वी अनेक अर्थ होते हैं परंतु उसका प्रयोग यथावसर जुदा २ होता है ॥ १२२ ॥ चित्रगु शब्दका 'चितकवरी गायवाला' अर्थ होता है यहांपर गो शब्दका किरण अर्थ कोई नहिं करता एवं अशीतगुका अर्थ उष्णकिरण (सूर्य) होता है यहांपर गोशब्दसे गायको कोई नहीं पकड़ता ॥ १२३ ॥ इसतरह यातो शब्दोंका अर्थ रूढ़िसे किया जाता है या क्रियाके आधीन होता है अन्यथा नहीं इसलिये जिन मनुष्योंके हृदयमें गुरुका उपदेश चिरकाल तक नहिं रहता—विस्मरण शील हैं वे उसे शीघ्रही भूलजाते हैं ॥ १२४ ॥ 'अजैर्यष्टव्यं' इस वेदवाक्यमें रुढ़िबलसे अज शब्दका अर्थ न मानकर क्रियाबल अर्थात् व्युत्पत्तिसे माना गया है वह अर्थ 'न जायंत इत्यजाः' (जो उत्पन्न न होसकें वे अज हैं) इस व्युत्पत्तिसे 'तिवर्षे शालि धान्य' लिया गया है ॥ १२५ ॥ विद्वान लोग लोक और शास्त्र दोनोंमें रूढ़ि शब्द भी स्वीकार करते हैं इसलिये इस मनुष्यके अंगमें अजकी गंध आती है इत्यादि प्रयोग भी वाधित नहिं होसकते ॥ १२६ ॥ पर्वतने जो यह प्रतिपादन किया था कि यदि स्वभावसिद्ध शब्दोंका अर्थ न किया जायगा तो व्यवहारका लोपही होजायगा सो यह दोष भी परिहृत हुआ क्योंकि व्यवहार सिद्धिके लिये शब्दोंका जहां जैसा चाहिये उचित अर्थ कियाही जाता है ॥ १२७ ॥ इसलिये

अब यह वात निर्विवाद सिद्ध हो चुकी कि पृथ्वी आदि बलवान कारणोंके रहते भी जिन शाली धान्योंके अंकुरे न फूटसकें उन्हें अज समझना चाहिये और उन धान्योंसे ही यज्ञ करना चाहिये ॥ १२८ ॥ यज धातुका अर्थ देवपूजा (यज्ञ) है इसलिये जो मनुष्य द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य हैं उन्हें तिवर्षे शालिधान्योंसे यज्ञ करना चाहिये क्योंकि नैवेद्य आदिसे की हुई पूजाही स्वर्गरूप फल देनेवाली होती है ॥१२९॥ जो मनुष्य हितके अभिलाषी हैं वे जो देवपूजा गुरुसेवा आदि षट्कर्मोंके विधाता, प्राचीन पुरुष, उत्कृष्ट, रक्षक, मुनियोंके इंद्र, इंद्रोद्वारा पूजनीक, वेदमें वर्णित, स्वयंभू, मोक्षमार्गके उपदेशक, संसाररूपी समुद्रके शोषक, अनंतज्ञान अनंतसौख्य आदिके स्वामी, महादेव, ब्रह्मा, विष्णु, ईशान, सिद्ध, बुद्ध, अनामय, (रोगरहित) और सूर्यके समान देदीप्यमान, भगवान ऋषभ देवहैं उनकी पूजा आराधना करते हैं ॥ १३०–१३२ ॥ उससेही उन्हें स्वर्गसुख और अविनाशी मोक्षसुखका लाभ होता है और उससे ही कीर्ति कांति दीप्ति और धीरताकी प्राप्ति होती है ॥ १३३ ॥ पशुके आकारका चून आदिका पिंड बनाकर और उसमें पशुकी स्थापनाकर उससे भी यज्ञ करना मना है क्योंकि अशुभ संकल्पसे पाप और शुभ संकल्पसे पुण्य होता है॥ १३४ ॥ नाम स्थापना द्रव्य और भावके भेदसे पशुके चार भेद बतलाये हैं उन चारोप्रकार के पशुओंकी हिंसाका कदापि विचार नहिं करना चाहिये ॥ १३५ ॥ और पर्वतने जो यह बात प्रतिपादन की है कि मंत्रपूर्वक मारनेसे पशुको दुःख नहिं होता यह भी उसका कथन मिथ्या है क्योंकि यदि मंत्रसे दुःख न होता तो जीवको न मरकर पहिलेही की तरह स्वस्थ (जीवित) रहना चाहिये था॥ १३६ ॥ यदि पैरोंके विना बांधे नाकको विना मूंदे जीव मरजाय तब तो यह माना जा सकता है कि मंत्रके प्रभावसे जीवकी मृत्यु होती है परंतु यह बात तो कदापि होती नहीं इसलिये मंत्रसे जीव मरजाता है यह भी सिद्धांत नितांत मिथ्या है ॥ १३७ ॥ पर्वतका यह कहना कि मंत्रके प्रभावसे मरनेवाले प्राणीको दुःख नहीं होता उसे उससमय सुख स्थान नजर आता है यह भी ठीक नहीं क्योंकि मरते समय जीव अति आर्त शब्द करता नजर आता है उससे यह स्पष्ट जाना जाता हैं कि उसे अतिशय दुःख होता है॥ १३८ ॥ और यह जो कहा था कि आत्मा अतिशय सूक्ष्म है उसका वध कदापि नहिं हो सकता यह भी मिथ्या है क्योंकि स्थूल शरीर में रहनेके कारण आत्मा स्थूल भी माना गया है ॥ १३९ ॥ यह आत्मा दीपकके समान संकोच विकासशाली है अर्थात् दीपक जैसे छोटे वड़े वर्तन में रक्खा जाता है उसका प्रकाश उसीके अनुकूल (छोट बडा) परिणत होजाता है उसीप्रकार यह जीव भी अपने कर्मानुसार जैसा स्थूल सूक्ष्म शरीर धारण करता है उसके प्रदेशभी उसीके आकार परिणत होजाते हैं और इस प्रकार स्थूल या सूक्ष्म शरीरके धारण करनेसे यह स्थूल

वा सूक्ष्म कहा जाता है ॥ १४० ॥ संसारमें ऐसा कोई जीव नहीं जिसने अनंत स्थूल सूक्ष्म शरीर धारण न किये हों यदि जीवको सर्वथा सूक्ष्मही माना जायगा तो सुख दुःखका भोक्ता कौन होगा अर्थात् जिसप्रकार पर्वतके कथनानुसार सूक्ष्म आत्मा दुःखका अनुभव नहीं करसकता उसीप्रकार सुखका भी कैसे अनुभव करसक्ता है और यदि दोनोंका अनुभव नहीं कर सकता तो यज्ञ करनेसे जो सुखहोना वतलाया है वह मिथ्या होजायगा ॥ १४१ ॥ इसलिये यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि मंत्र तंत्र और अस्त्र आदिसे जीवके शरीरका घात होनेपर नियमसे इस देहधारीको पीड़ा होती है क्योंकि संसारावस्थामें शरीर और जीवका अभेद सरीखा जान पड़ता है ॥ १४२ ॥ जब यह जीव अतिशय दुःखित हो मरता है उससमय इसका नेत्र आदि इंद्रियोंसे स्वयं वियोग होजाता है इसका वियोग करानेवाला दूसरा (पुरोहित आदि) कोई नहीं इसलिये जो यह बात कही थी कि याजक लोग नेत्र आदि इंद्रियोंको सूर्यादि पंचभूतोंमें मिला देते हैं वह बात मिथ्या हुई ॥ १४३ ॥ जो पहिले याज्य (पशु आदि) के स्वर्गजानेमें याजक (यज्ञकरनेवालों) का दृष्टांत दे आये हैं वह भी ठीक नहीं क्योंकि याजक प्राणियोंका घातरूप अधर्म करनेवाले हैं उन्हें स्वर्ग कैसे मिलसकता है और जब याजकोंका स्वर्गजाना सिद्ध न हुआ तब याज्य पशु तो उसके समान स्वर्ग जाही नहिं सकते और इसप्रकार 'छागसे यज्ञकरना, जब अधर्म सिद्ध हुआ तब वह चाहें इच्छासे किया हो चाहें अनिच्छासे किया हो सुख कभी नहीं देसकता जैसे कि बालकको पथ्य दुग्धादि दिये गयेही सुखी पुष्ट करसकते हैं विषादिक अपथ्य नहीं" ॥१४४–१४५॥

इसप्रकार सभारूपी वर्षाकालमें अपने वचनरूपी वज्रोंसे दुराग्रही पर्वतका मानरूपपर्वत भेदनकर जब नारद शांत होगया तो उससमय सभामें स्थित धर्मात्मा परीक्षक उसका बारंवार साधुवाद करनेलगे और अंगुलीके शब्दपूर्वक मारे हर्षके शिर हिलाने लगे ॥ १४६–१४७ ॥ अंतमें विद्वान शिष्ट मनुष्योंने सिंहासनपर विराजमान राजासे पूछा "राजन्! गुरुने जो अज शब्दका अर्थ वतलाया था उसे आपने भी अवश्य सुना होगा अब आप उसे ठीक २ कहैं" ॥ १४८ ॥ यद्यपि राजा वसु पूर्ण विद्वान था और गुरुने जो अज शब्दका अर्थ वतलाया था उससमय उसका उसे पूर्णतया स्मरण था परंतु उपाध्यायी को वचन देनेके कारण वह सत्यसे च्युत हो कहने लगा–

"सज्जनो! नारदका कथन सर्वथा युक्तियुक्त है परंतु पर्वतने 'जो अर्थ गुरुने वतलाया था' वह कहा है"। बस राजा वसु ऐसा कथन ही कर रहा था कि देखते देखते ही उसका स्फटिकमयी सिंहासन तत्काल भूमिमें नीचे धसक गया और पातालमें जाकर गिरा सो ठीक ही है पापसे निश्चय ही नीचे गिरना पड़ता है ॥ १४९–१५१ ॥ पातालमें गिरनेसे मरकर वसु सातवें नरकके महारौरव बिलमें नारकी हुआ ॥ १५२ ॥

राजा वसुको हिंसानद और मृषानंद रूप रौद्रध्यानसे युक्त होनेके कारण नरक जाना पड़ा इसलिये यह रौद्रध्यान महाभयंकर और परम दुःखका देनेवाला है ॥ १५३ ॥ समस्त लोगोंके देखते देखते जब राजा वसु पाताल चला गया तो आकुल हो वे एकदम खड़े होगये और उनके हा हा धिक् धिक् शब्दोंसे सभामंडप गूंज उठा ॥१५४॥ लोग राजा वसुको झूठका तत्काल फल पाया देख उसकी निंदा करने लगे दुष्ट पर्वत को तत्काल पुरसे अकेला निकाल दिया तत्त्ववादी, गंभीर, वादमें विजय पानेवाले नारदको ब्रह्मरथमें सवार किया भलेप्रकार उसकी पूजाकी और अपने अपने स्थानोंपर चले गये ॥ १५५–१५६ ॥

जब पर्वत तिरस्कार पूर्वक नगरसे निकाल दिया गया तो वह इधर उधर बहुत देशोंमें घूमा कदाचित् उसकी किसी महाकाय (ल) नामक असुरसे भैंट होगई महाकाय बड़ा क्रूर था परमद्वेषी था और परभवमें तिरस्कारजन्य क्लेशसे संतप्त था पर्वतने अपने समस्त पराभवका समाचार उसे कह सुनाया असुरने उसके साथ मिलकर हिंसागमकी प्रवृत्ति की लोकमें वंचकवन हिंसायज्ञका प्रसार किया एवं जो प्राणी मूर्ख और प्राणियोंकी हिंसाके प्रेमी थे उन्हें अपने ग्रंथ दिखला प्रसन्न किया ॥१५७–१५९॥ इसतरह सर्वत्र पापका उपदेश देता हुआ पर्वत कुछ समयके बाद पाप और शापके कारण शीघ्रही मर गया और मरकर असत्यवादी राजा वसुकी सेवा करनेके ही लिये मानो नरकमें गया ॥ १६० ॥ मंत्री आदिने वसुकी गद्दीपर उसके आठ पुत्रोंको क्रमसे एक दूसरेके बाद बिठाया परंतु प्रबल पापके उदयसे वे भी बहुत थोड़े ही दिनोंमें चल बसे ॥ १६१ ॥ पिता और भाइयोंको इसप्रकार बहुत शीघ्र मरते देख सुवसु और बृहद्ध्वज दोनों पुत्रोंको बड़ा भय हुआ इसलिये उनमेंसे सुवसु तो भाग कर नागपुरमें रहने लगा और बृहद्ध्वज मथुरामें जा बसा ॥ १६२ ॥

देखो! वसु और पर्वत कितने बडे संसारमें विद्वान् थे परंतु पापके कारण उन्हें भी नरक जाना पड़ा और पर्वतके मानको मर्दन करनेवाला नारद धर्मात्मा होनेके कारण सम्यग्दृष्टि दिवाकर नामके किसी विद्याधरकी सहायतासे पुण्योपार्जनकर स्वर्ग गया इसलिये पाप पुण्यकी महिमा विचित्र है ॥१६३॥ जीवोंपर दया करना धर्म है निरंतर हिंसाका त्यागना दया है अपने प्राण जानेपर भी मन वचन कायसे जीवोंका वध न करना हिंसात्याग है और यही धर्मका स्वरूप भगवान जिनेंद्रने बतलाया है जो मनुष्य आदरपूर्वक इस धर्मका आराधन करता है वह पुरुष स्वर्ग और मोक्षमें जानेकेलिये सर्वथा प्रतिबंधक 'मोहरूपी अर्गला (बेंडा) को खंड खंडकर अचिंत्य अनंत सुखका लाभ करता है ॥ १६४ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेन द्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथके चरित्रको वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें राजा वसुके चरित्रमें नारद और पर्वतका विवाद वर्णन करनेवाला सत्रहवां सर्ग समाप्त हुआ।

अष्टादश सर्ग।

वसुके पुत्र राजा बृहद्ध्वज मथुरामें रहने लगे उनके अतिशय विनयी सुबाहु नामका पुत्र हुआ कदाचित् संसारसे उदासीन हो राजा बृहद्ध्वज सुबाहुको राज्य सोंप आप तपकेलिये वनमें चले गये राजा सुबाहुका पुत्र दीर्घबाहु हुआ दीर्घबाहुका वज्रबाहु उसका अभिमान अभिमानका भानु भानुका यवि यविका सुभानु और उसका भीम इत्यादि सैकड़ों हजारों राजा भगवान मुनिसुव्रतके तीर्थमें हुये और अपने २ पुत्रोंको राज्य दे सबोंने तपोवनका आश्रय लिया ॥ १-२-३-४ ॥ भगवान मुनिसुव्रतका तीर्थ (समय) छै लाख वर्ष पर्यंत पृथ्वीपर विराजमान रहा उनके पश्चात् इक्कीसवें तीर्थंकर भगवान नमिनाथका तीर्थ पांच लाख वर्ष पर्यंतका हुआ उससमय हरिवंशमें राजा यदु हुये राजा यदुकी आयु पंद्रह हजार वर्षकी थी ये हरिवंशरूपी उदयाचलमें सूर्यके समान थे और इन्हींसे यादव वंशकी उत्पत्ति हुई थी ॥ ५-६ ॥ राजा यदुके नरपति नामका पुत्र उत्पन्न हुआ और उसे राज्य सोंप वे स्वर्गलोक गये ॥ ७ ॥ राजा नरपतिके शूर और सुवीर दो पुत्र हुये ये पुत्र वास्तवमें शूर वीर थे राजा नरपतिने इन दोनोंको राज्य देदिया और आप दिगंबर दीक्षासे दीक्षित हो गये ॥ ८ ॥ कृती राजा शूरने अपने छोटे भाई सुवीरको मथुराका अधिपति बनाया और कुशद्यदेशमें परम रमणीय एक शौर्यपुर नामका नगर वसाया ॥ ९ ॥ राजा शूरकके अतिशय शूर अंधकवृष्णि आदि पुत्र हुये और मथुराके स्वामी राजा सुवीरके अतिशय वीर, भोजकवृष्णि आदि पुत्र हुये ॥ १० ॥ कदाचित् राजा शूर और सुवीरको संसारसे वैराग्य होगया राजा शूरने अपने बड़े पुत्र अंधकवृष्णिको और सुवीरने ज्येष्ठपुत्र भोजकवृष्णिको राज्य देदिया और वे दोनों मुनिराज सुप्रतिष्ठके चरणोंमें दिगंबर दीक्षासे दीक्षित होगये ॥ ११ ॥ राजा अंधकवृष्णिकी पत्नीका नाम सुभद्रा था और उससे समुद्रविजय १ अक्षोभ्य २ स्तिमितसागर ३ हिमवान ४ विजय ५ अचल ६ धारण ७ पूरण ८ अभिचंद्र ९ और वसुदेव १० ये दश पुत्र उत्पन्न हुये ये समस्त पुत्र देवोंके समान प्रभावी थे स्वर्गोंसे चयकर सुभद्राके गर्भमें अवतीर्ण हुये थे अतिशय मनोहर थे जैसा इनका नाम था उसीके अनुकूल गुणोंसे भूपित थे और लोकमें दशार्ह नामसे पुकारे जाते थे ॥ १२-१३-१४ ॥ इसकी कुन्ती और मद्री दो कन्यायें थीं ये दोनों कन्या वास्तविक स्त्रियोंके गुणोंसे भूपित थीं और अपने गुणोंसे लक्ष्मी और सरस्वतीकी तुलना करती थीं ॥ १५ ॥ तथा सुवीरके पुत्र राजा भोजकवृष्णिकी स्त्री पद्मावति थी उससे उग्रसेन १ महासेन २ और देवसेन ३ ये तीन पुत्र उत्पन्न हुये थे ॥ १६ ॥

राजा वसुका जो सुवसु नामका पुत्र नागपुर जाकर रहा था उसका बृहद्रथ हुवा और वह मागधेशपुरमें रहने लगा ॥ १७ ॥ बृहद्रथका पुत्र दृढ़रथ हुआ दृढ़रथका

नरवर उसका दृढ़रथ दृढ़रथका सुखरथ सुखरथका कुलको दीप्त करनेवाला दीपन, उसका सागरसेन सागरसेनका सुमित्र सुमित्रका वप्रथु उसका विंदुसार विंदुसारका देवगर्भ और देवगर्भका शतधनु पुत्र हुआ यह शतधनु बड़ा वीर और धनुर्धारियोंमें अग्रणी था इसप्रकार सैकड़ों हजारों राजा हरिवंशमें हुये और अपने २ पुत्रोंको राज्य दे सबोंने दिगंबर दीक्षाका आश्रय लिया। हजारों राजाओंके पश्चात् उसी वंशमें विहतशत्रु नामका राजा हुआ। राजा विहतशत्रुका शतपति और शतपतिका बृहद्रथ पुत्र हुआ यह बृहद्रथ राजगृहका स्वामी था। राजा बृहद्रथका पुत्र जरासंध हुआ यह राजा जरासंध समस्त पृथ्वीका वश करने वाला रावणके समान विभूतिका धारक तीन खंड का अधिपति (अर्धचक्री) था एवं देवोंके समान प्रतापी नो प्रतिनारायणोंमें अंतिम प्रतिनारायण था ॥ १८–२०–२१–२३ ॥ राजा जरासंधकी पटरानी कलिंदसेना था कलिंदसेना पटरानीकेसमस्तगुणोंसे भूपित थी और उससे परमनीतिशाली कालयवन आदि पुत्र उत्पन्न हुये ॥ २४ ॥ राजा जरासंधके अपराजित आदि भाई थे इसतरह वह पुत्र एवं भाइयोंसे वेष्टित हरिवंशरूपी विशालवृक्षकी शाखाओंका फलस्वरूप जान पड़ता था ॥ २५ ॥ यह राजा पृथ्वीके पालन करनेमें अद्वितीय वीर था नृपोंमें सिंहके समान पराक्रमी था एवं राजगृहमें ही स्थित होकर अनेक विद्याधर राजाओंसे व्याप्त विजयार्धकी दक्षिणश्रेणीका शासन करता था समस्त उत्तर और दक्षिण के राजा इसके वश थे पूर्व पश्चिम समुद्रके अंतके देश और मध्यके देशोंपर इसने पूर्ण अधिकार जमा रक्खा था इसकी आज्ञा समस्त नरपति और खगपतियोंकी शिरोभूषण वन रही थी अर्धचक्रवर्तीकी लक्ष्मीका भोक्ता था एवं विभूतिसे इंद्रकी तुलना करने वाला था ॥ २७–२९ ॥

शौर्यपुरके उद्यानमें एक गंधमादन नामका पर्वत था कदाचित् वहां अतिशय प्रतिष्ठित एक सुप्रतिष्ठ नामके मुनिराज आ प्रतिमायोगसे विराजे उसीपर्वत पर उनके पूर्व भवका वैरी एक सुदर्शन नामका यक्ष रहता था मुनिराजको देखते ही उस दुष्टने उन पर पूर्व वैरके कारण अग्निपात[1] महावात[2] मेघवृष्टि[3] आदि उपसर्ग करने प्रारंभ किये क्षमाशील मुनिराजने उसके समस्त उपसर्गों को जीतलिया और समस्त घातियाकर्मोंका नाशकर वे केवलज्ञानी होगये ॥ ३०–३१ ॥ मुनिराज सुप्रतिष्ठकी वंदनार्थ सौधर्म आदि इंद्र और चारो निकायोंके देव आये और भक्तिभावसे उनकी पूजा कर स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥ शौर्यपुरके स्वामी राजा अंधकवृष्णि भी पुत्र स्त्रियों के साथ मुनिराजके समवशरणमें आये और उन (मुनिराज) की पूजा स्तुति कर अपने स्थान पर बैठिगये ॥ ३३ ॥ धर्मश्रवणके लिये अत्यंत आतुर समस्त जगतके जीव सावधान हो जब अपने २

१ आगवर्षाना २ प्रचंड पवन चलाना ३ मेघवर्षा करना।

स्थानों पर स्थित होगये तव केवली भगवान सुप्रतिष्ठ इसप्रकार धर्मोपदेश देने लगे—

"अर्थ काम और मोक्ष इन तीनों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति धर्मसे होती है जो पुरुषार्थोंके अभिलाषी हैं उन्हैं सदा धर्मका आराधन करना चाहिये ॥ ३४–३५ ॥ मन वचन कायकी शुभ प्रवृत्तिसे किंया गया यह धर्म मनुष्योंको कल्याणस्वरूप मोक्षमार्गमें पहुंचाता है ॥ ३६ ॥ यह धर्म परम मंगल स्वरूप है अहिंसा, संयम और तपकी कृपासे प्रकट होता है और उसका लक्षण सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूप है ॥३७॥ संसारमें जितने पदार्थ मोजूद हैं उन समस्त पदार्थोंमें उत्तम पदार्थ धर्म है। यह धर्म धेनुओं (गौओं) का भी कामधेनु है-समस्त अभिलाषाओंका पूर्ण करनेवाला है एवं अनुपम अचिंत्य सुखका प्रदान करनेवाला है ॥ ३८ ॥ जो जीव मरण जन्म जरा रोग शोक और दुःखरूपी जाज्वल्यमान अग्नियोंसे तप्तायमान हैं और शरण लेना चाहते हैं संसारमें उनकेलिये धर्मही शरण है ॥ ३९ ॥ यह धर्म मनुष्य और देव संबंधी समस्त कल्याण एवं सुखोंका देनेवाला है और मोक्षरूपी परमसुखकी प्राप्तिमें असाधारण कारण है ॥ ४० ॥ स्वर्गसे अवतरण (जन्म) आदि अवस्थाओंमें पंचकल्याणकपूजनके पात्र तीर्थके कर्ता इक्कीसवें तीर्थंकर भगवान नमिनाथने जो अपने तीर्थवर्ती प्राणियोंको धर्मका उपदेश दिया है उस धर्मका स्वरूप यह है ॥ ४१–४२ ॥

मुनि और श्रावकके भेदसे धर्म दो प्रकार है जिसमें समस्त पाप योगोंका त्याग हो उसै मुनिधर्म कहते हैं वह मुनिधर्म—अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य निष्परिग्रह यह पंच प्रकारका महाव्रत, मनोगुप्ति वचनगुप्ति कायगुप्ति तीनप्रकारकी गुप्तियां, ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेप और व्युत्सर्ग ये पांचप्रकारकी समितियां इसप्रकार तेरह प्रकारका चारित्र स्वरूप है ॥४३–४४॥ और जिसमें एक देश पाप योगोंका त्याग हो वह श्रावकधर्म कहलाता है एवं वह श्रावकधर्म पांच प्रकारका अणुव्रत[1] तीन प्रकारका गुणव्रत और चारप्रकारका शिक्षाव्रत[3] स्वरूप बारह प्रकारका है ॥४५॥ हिंसा आदिका एकदेश त्याग अणुव्रत कहा-जाता है दिशाकी मर्यादा देशकी मर्यादा और अनर्थ बातोंका त्यागकरना गुणव्रत है। ॥ ४६ ॥ तीनों समय सामायिक करना प्रोषधोपवास करना अतिथियोंका पूजन सत्कार करना और अंतमें सल्लेखना पूर्वक मरना शिक्षाव्रत कहा जाता है ॥ ४७ ॥ मांस १ मदिरा २, मधु ३ जूआ ४ जिनवृक्षोंसे दूध झरता हो उनके फलोंका खाना ५ वेश्या ६ और परस्त्री ७ इन सात व्यसनोंका कालकी मर्यादा लेकर त्याग करना नियम कहलाता है और यावज्जीव त्याग करना यम कहा जाता है ॥ ४८ ॥ सम्यग्ज्ञान पूर्वक यही है ऐसाही है इसप्रकार वास्तविक पदार्थोंका दृढ़ श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है और उसकी

१ स्थूल—अहिंसा झूठ अचौर्य ब्रह्मचर्य निष्परिग्रह ५। २ दिग्व्रत देशव्रत अनर्थदंडविरत ३। सामायिक प्रोषधोपवास वैयावृत्य सल्लेखना

शुद्धिके कारण निश्शंकित २ निःकांक्षित २ निर्विचिकित्सित ३ अमूढ़दृष्टित्व ४ उपगूहन ५ स्थितिकरण ६ वात्सल्य ७ और प्रभावना ८ ये आठ अंग हैं ॥ ४९-५० ॥ यह श्रावक धर्म स्वर्ग आदि अभ्युदयोंका साक्षात् कारण है और मोक्षप्राप्तिमें परंपरा कारण है परंतु मुनिधर्म मोक्षसिद्धिमें साक्षात् कारण है ॥ ५१ ॥ यह दोनों प्रकारका धर्म सिवाय मनुष्यभवके अन्यभवमें प्राप्त नहिं होता और इस संसाररूपी विकट वनमें मनुष्यभवकी प्राप्ति बड़ी कठिनतासे होती है ॥ ५२ ॥ ये जीव कर्मके उदयसे इस भववनमें चारो गतियोंमें त्रस स्थावर कायोंमें भटकते फिरते हैं और अनेक कष्ट सहते रहते हैं ॥ ५३ ॥ केवल स्पर्शन इंद्रियका धारक जीव पृथ्वी जल तेज वायु और वनस्पतिकायोंमें चिरकाल पर्यंत घूमता है ॥ ५४ ॥ कर्मोंसे कलंकित संसारी जीवोंके अनंत भेद हैं बहुतसे जीव अनादि कालसे निकृष्टस्थान निगोदमें पडे हुये हैं उन विचारोंने आजतक त्रस पर्यायकी ओर झांककर भी नहिं देखा है ॥ ५५ ॥ और बहुतसे विचारे दीन चौरासीलाख योनियोंमें अनेक कुलकोटियोंमें भ्रमण करते रहते हैं॥५६॥

नित्यनिगोद इतरनिगोद पृथ्वीकाय जलकाय अग्निकाय और पवनकाय इन छैमें प्रत्येककी सात २ लाख योनियां है और मिलकर ब्यालीस लाख हैं वनस्पतिकायमें दश लाख हैं विकलेंद्रिय अर्थात् द्वींद्रिय त्रींद्रिय और चतुरिंद्रियोंमें प्रत्येकमें दो २ लाख और मिलकर छै लाख योनियां हैं मनुष्योंमें चौदह लाख और तिर्यंचोंमें चार नारकियोंमें चार और देवोंमें चार इसप्रकार तीनोंकी मिलकर बारह लाख योनियां है और ये सब जुड़नेपर चौरासी लाख होती हैं ॥ ५७-५८ ॥ पृथ्वीकायमें बाईस लाख कुलकोटियां है और जलकायमें सातलाख वायुकायमें सातलाख अग्निकायमें तीनलाख एवं वनस्पतिकायमें अट्ठाईसलाख कुलकोटियां हैं ॥ ५९ ॥ विकलेंद्रियोंमेंसे द्वींद्रियोंमें सात लाख त्रींद्रियोंमें आठ और चतुरिंद्रियोंमें नौ लाख हैं ॥ ६० ॥ जलचर जीवोंमें साढे बारहलाख पक्षियोंमें बारहलाख चौपाये पशुओंमें दशलाख सर्पोंमें नौलाख मनुष्योंमें चारलाख नारकियोंमें पच्चीसलाख और देवोंमें छब्बीसलाख हैं एवं जोड़नेपर ये सब कुलकोटियां एकसो साड़े निन्यानवे लाख हैं ॥ ६१-६२-६३ ॥

कठिनपृथ्वीकायिकोंकी उत्कृष्ट आयु बावीस हजार वर्ष है कोमलपृथ्वीकायिकोंकी बारह हजार वर्ष, जलकायिकोंकी सात हजार वर्ष वायुकायिकोंकी तीन हजार वर्ष अग्निकायिकोंकी तीन दिन और वनस्पतिकायिकोंकी आयु दश हजार वर्ष प्रमाण है। विकलेंद्रियोंमें द्वींद्रियोंकी बारह हजार वर्ष, त्रींद्रियोंकी उनचास दिन और चतुरिंद्रियजीवोंकी छै मास प्रमाण है पक्षियोंकी उत्कृष्ट आयु बहत्तर हजार वर्ष विशेषजातिवाले पक्षियोंकी तीसहजार वर्ष छातीसे चलनेवाले सर्पोंकी नौ पूर्वांग[1] प्रमाण, मनुष्योंकी पू-

[1] चौरासीलाख वर्षोंका एक पूर्वांग होता है।

र्वकोटि और मत्स्योंकी भी पूर्वकोटी है। पृथ्वीकायके जीवोंकी कायका आकार मसूरके समान है जलजीवोंका तृणके ऊपर स्थित जलके समान, अग्निजीवोंका सुईके समान, पवनकायके जीवोंका ध्वजाके समान, और वनस्पति कायके जीवोंका आकार अनेक प्रकारका है। विकलेंद्रिय और नारकियेंका संस्थान (आकार) हुंडक है मनुष्योंके छहोऊ संस्थान होते हैं और देवेंके केवल समचतुरस्रसंस्थान होता है ॥ ६४-७२ ॥ जीवोंमें सबसे छोटे अपर्याप्त सूक्ष्मनिगोदिया जीवके शरीरका प्रमाण अंगुलके असंख्यातवें भाग है और यह तीसरे समयमें नवीन शरीरकी जघन्य अवगाहना करता है ॥ ७३ ॥ सूक्ष्म और स्थूल शरीरोंके धारक एकेंद्रियसे आदि लेकर पंचेद्रियपर्यंत जीवोंका यदि छोटेसे छोटा शरीर होगा तो अंगुलके असंख्यातभाग प्रमाण ही होगा इससे छोटा न होगा ॥ ७४ ॥ समस्त एकेंद्रिय जीवोंमें सबसे उत्कृष्ट शरीरका धारक वनस्पतिकाय कमल है और उसका प्रमाण (ऊँचाई) एक कोश अधिक एक हजार योजन है ॥ ७५ ॥ द्वींद्रियोंमें सबसे उत्कृष्ट शरीरका धारक शंख है और उसकी अवगाहना (शरीर प्रमाण) वारह योजनकी है त्रींद्रियोंमें सबसे बड़ा कर्णखजूरा है और उसका प्रमाण तीन कोसका है। चोइंद्रियोंमें सबसे उत्कृष्ट शरीर भोंरेका है और उसका प्रमाण एक योजनका है ॥ ७६ ॥ और पचेंद्रियोंमें सबसे बड़ा मत्स्य है उसके शरीरका प्रमाण हजार योजन है पर्याप्त है और स्वयंभू समुद्रमें रहता है। तथा अतिशय छोटा सिक्थ स्वरूप प्रमाणका धारक जलचर जीव तंदुल मच्छ है ॥ ७७ ॥ सन्मूर्छन जीवोंमें जलचर नभश्चर और स्थलचर तिर्यचोंका शरीर अपर्याप्त अवस्थामें वितस्ति (विलस्त) प्रमाण है ॥ ७८ ॥ गर्भजोंमें अपर्याप्त तिर्यंच जलचर एवं थलचर, और सन्मूर्छनोंमें पर्याप्त तिर्यच नभचर और जलचरोंके उत्कृष्ट शरीरका प्रमाण धनुः प्रमाण धनुः पृथक्त्व—अर्थात् तीन धनुषसे ऊपर और नौ धनुषके भीतर जानना चाहिये। और इतना ही शरीरका प्रमाण गर्भज नभचर तिर्यचोंका पर्याप्त अपर्याप्त दोनों अवस्थाओंमें समझना चाहिये ॥ ७९-८० ॥ किंतु गर्भज जलचर पर्याप्तोंके शरीरका प्रमाण पांचसौ योजनका है। भोगभूमिमें मनुष्य और तिर्यचोंकी आयु तीन पल्य है और शरीरका प्रमाण तीन कोशका है ॥ ८१ ॥ उत्कृष्टतासे नारकियोंके शरीरकी ऊंचाई पांचसौ धनुष है और देवोंके शरीरकी ऊँचाई पचीस धनुष है इनकी आयुका वर्णन पहिले किया जा चुका है ॥ ८२ ॥ आहार, शरीर, इंद्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा,

---

१ यह समस्त आयु कर्म भूमिकी अपेक्षा है भोगभूमिमे मनुष्य और तिर्यंचोका उत्कृष्ट आयु तीन पल्य देव और नारकियोका तेतीस सागर है। तथा मनुष्य और तिर्यचोका जघन्य आयु अतर्मुहूर्त और देव नारकियोका दश हजार वर्ष है। २ यह महामच्छके कानमें रहता है। ३ नवीन कर्मवर्गणाओका ग्रहण।

और मनके भेदसे पर्याप्ति[1] छै प्रकारकी है ॥ ८३ ॥ त्रस और स्थावर जीवोंके यथायोग्य स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षुः और श्रोत्र ये पांच इंद्रियां होती हैं अर्थात् स्थावर कायके जीवोंके एक स्पर्शन इंद्रिय और त्रसकायके जीवोंमें किसीके दो किसीके तीन किसीके चार और किसीके पांचो होती हैं ॥ ८४ ॥ इंद्रियोंके मूल भेद दो हैं–एक भावेंद्रिय, दूसरा द्रव्येंद्रिय। लब्धि–क्षयोपशमरूप शक्ति, उपयोग–जानने देखनेकी शक्ति, भावेंद्रिय हैं और निर्वृत्ति–भीतरी रचना, उपकरण–बाह्यरचना द्रव्येंद्रिय हैं ॥ ८५ ॥ इंद्रियोंमें स्पर्शन इंद्रियकी आकाररचना अनेक प्रकार है रसना (जीभ) का आकार खुरपाके समान, नाकका तिलपुष्प सरीखा, नेत्रका मसूरके समान और श्रोत्रका यवकी नाली (डंडी) के तुल्य है। यह समस्त आकार द्रव्येंद्रियोंका बतलाया है। भावेंद्रिय ज्ञान स्वरूप पड़ती है इसलिये उसका कोई आकार नहीं ॥ ८६–८७ ॥

एकेंद्रियजीवके स्पर्शन इंद्रियका विषय चारसौ धनुष प्रमाण है अर्थात् वह स्पर्शन इंद्रियसे चारसो धनुष तकके स्पर्शको जान सकता है। द्वींद्रियके स्पर्शनका विषय आठसौ धनुष त्रींद्रियके सोलहसौ धनुष, चौ इंद्रियके बत्तीस सौ धनुष और असैनी पंचेंद्रियके चौसठसौ धनुष है। रसना इंद्रियका विषय द्वींद्रिय जीवके चौसठ, त्रींद्रियके एकसौ अट्ठाईस, चौइंद्रियके दोसौ छप्पन और असेनी पचेंद्रियके पांचसौ बारह धनुष प्रमाण है। त्रींद्रियके घ्राणका विषय सौ धनुष प्रमाण है चौ इंद्रियके दोसौ धनुष है और असैनी पंचेंद्रियके चारसौ धनुष प्रमाण है ॥ ८८–८९ ॥ चौइंद्रियके नेत्र इंद्रियका विषय उनतीससौ चव्वन योजन प्रमाण है और असेनी पचेंद्रियके उनसठसौ आठ योजन प्रमाण है एवं असेनी पंचेंद्रियके श्रोत्र इंद्रियके विषयका प्रमाण एक योजन है ॥ ९०–९१ ॥ तथा सेनी पंचेद्रिय स्पर्शन आदि तीन इंद्रियोंके स्पर्श, रस, और गंधको नो योजनकी दूरीसे जान सकता है बारह योजन दूरतकके शब्द सुन सकता है और नेत्रसे सैंतालीस हजार दोसौ त्रेसठ योजनकी दूरीपर स्थित भी पदार्थको देख सकता है ॥ ९२–९३ ॥ इसप्रकार यह संसार अनेक विकल्पोंसे व्याप्त है और निस्सार है प्रथम तो इसमें मनुष्यभवका पाना ही अति दुर्लभ है यदि मनुष्यभव भी मिल-जाय तो उससे मोक्ष मिलनी तो अतिही कठिन है ॥ ९४ ॥ इससंसारमें दुष्कर्मोंके उपशमसे बड़ी कठिनतासे मनुष्यभवकी प्राप्ति होती है इसलिये जो मनुष्य विद्वान हैं

१ एकेंद्रियजीवके भाषा और मनको छोडकर शेष चार पर्याप्तियां होती हैं और द्वीद्रियसे लेकर असैनी पंचेंद्रिय पर्यंतके मनके सिवाय पाच पर्याप्तियां होती हैं और सैनी (समनस्क] पंचेंद्रियके मन सहित छैओ पर्याप्तियां होती हैं। इन पर्याप्तियोमें जिस जीवकी जितनी पर्याप्ति बतलाई गई है उनकी पूर्णता होजानेपर जीव पर्याप्त कहलाताहै एक भी कम होनेपर अपर्याप्त होता है पूर्णता न होनेपर भी यदि वह पर्याप्ति आगे पूर्ण होनेवाली होतो उसे पर्याप्तकाल कहते हैं यदि जीव अपर्याप्त कालमें ही मर जाय, तो वह अलब्धपर्याप्त कहा जाता है।

उन्हैं चाहिये इस दुःखमय संसारसे विरक्त हों परमसुखके स्थान मोक्षके लिये प्रयत्न करैं" ॥ ९५ ॥ इसप्रकार भगवान सुप्रतिष्ठके उपदेश समाप्त होनेपर शौर्यपुरके स्वामी राजा अंधकवृष्णिने उन्हैं अपने पूर्वभव पूछे और भगवान केवली उसके पूर्वभवोंका इस प्रकार वर्णन करने लगे—

"किसी समय अयोध्यापुरीमें राजा रत्नवीर्य राज्य करता था उससमय जीवोंका हितकारक, परमतेजका धारक, भगवान आदीश्वरका तीर्थ चल रहा था ॥ ९६-९७ ॥ उसी अयोध्यामें उससमय सुरेंद्रदत्त नामका एक सेठ भी रहता था सुरेंद्रदत्त वत्तीस करोड़ दीनारोंका अधिपति जैन था और उसका मित्र रुद्रदत्त नामका एक ब्राह्मण था ॥ ९८ ॥ कदाचित् सेठ सुरेंद्रदत्तको व्यापारके लिये विदेश जानेकी आवश्यकता पड़ी इसलिये उसने अपने मित्र रुद्रदत्तको बुला बारह वर्षतक अष्टमी चतुर्दशी अष्टाह्निक पर्व और चौमासोंमें भगवान जिनेंद्रकी पूजा करनेके लिये द्रव्य सुपुर्द कर दिया ॥९९॥ रुद्रदत्त बड़ा दुश्चरित्र था जूआ और वेश्याका व्यसनी था सुरेंद्रदत्तके चले जानेपर उस दुष्टने समस्त धन वातकी वातमें उडा दिया पूजा आदिकेलिये कुछ भी न छोड़ा इसतरह धनके समाप्त होजानेपर वह चोरी करनेमें प्रवृत्त हुआ एकदिन चोरी करतेहुये उसे कोतवालने पकड़ कारागृहमें डालदिया कुछदिनके बाद कैदसे छूटकर वह उल्कामुख नामके एक वनमें जा रहने लगा ॥१००॥ वनमें बहुतसे भील रहते थे रुद्रदत्तकी उनसे मित्रता होगई जिससे कि उनके साथ २ लोगोंको लूटनेलगा कदाचित् अयोध्याके अधिपति राजा रत्नवीर्यका श्रेणिक नामका सेनापति सेनाके साथ २ उस वनसे जा रहा था कि अचानक ही भीलोंने आ उसपर धावा किया परस्परमें घोर युद्ध हुआ युद्धमें अनेक लोग हताहत हुये संयोगवश उनमें यह रुद्रदत्त भी मारागया और मरकर कुकर्मके कारण सातवें नरकके रौरव विलेमें जाकर नारकी हुआ ॥ १०१ ॥ रुद्रदत्तने देवद्रव्यका नाश किया था इसलिये उसै नरकमें तेतीस सागरतक बराबर दुःख सहना पड़ा आयुके समाप्त होजानेपर वह नरकसे निकल इधर उधर अनेक कुगतियोंमें घूमा ॥ १०२ ॥ उससमय हस्तिनागपुरमें एक कपिष्ठलायन नामका ब्राह्मण रहता था उसकी स्त्रीका नाम अनुमति था कदाचित् पापके उपशमसे रुद्रदत्तके जीवने इनके यहां जन्मलिया उसका नाम गौतम रक्खा गया जन्मतेही उसके माता पिता मरगये इसलिये निस्सहाय दरिद्री होनेसे अनेक दुःख भोगने लगा । कदाचित् वह भिक्षाके लिये इधर उधर घूम रहा था अचानक ही उसै आहार करते हुये मुनि समुद्रदत्त दीख पड़े मुनिराज आहार लेकर वनकी ओर चलदिये गौतम भी उन्हैं पूज्य मान उनके पीछे पीछे चलदिया और वनमें पहुंचकर मुनिराजसे इसप्रकार वोला "प्रभो! अपने समान मुझैभी पाणिपात्रमें आहार करनेवाला साधु वनाइये" ॥ १०३-१०५ ॥ मुनिराजने

आसन्न भव्य जान उसै दिगंबर दीक्षा देदी । दीक्षित हो गौतमने एकहजार वर्षपर्यंत-दुर्धर तपकर विघ्नकारक-पापोंका उपशम किया और तपके प्रभावसे अक्षीणऋद्धि पदानुसारिणीऋद्धि बीजबुद्धिऋद्धि और रसऋद्धिकी प्राप्तिकी ॥ १०६-१०७ ॥ कुछ समय के बाद मुनिराज समुद्रदत्तने भलेप्रकार आराधना आराध शरीरका त्याग किया और छठे ग्रैवेयकके सुविशाल विमानमें अहमिंद्र हुये । गौतमने पचास हजार वर्षपर्यंत घोरतप तपा जिससे कि आयुके अंतमें अट्ठाईस सागर प्रमाण स्थितिका भोक्ता ग्रैवेयकके सुविशाल विमानमें अहमिंद्र हुआ ॥ १०८-१०९ ॥ और भलेप्रकार अहमिंद्रके सुख भोगे अब वहांसे चयकर गौतमका जीव तो तू राजा अंधकवृष्णि हुआ है और तेरा गुरु मुनि समुद्रदत्तका जीव मैं सुप्रतिष्ठ हुआ हूं" ॥ ११० ॥

अपने पूर्वभवका ऐसा वृत्तांत सुन राजा अंधकवृष्णिको बड़ा दुःख हुआ उसने अपने दशों पुत्रोंके भी पूर्वभव जाननेकेलिये प्रश्न किया प्रश्नके अनुसार भगवान केवली उन सबके पूर्वभवका इसप्रकार वर्णन करनेलगे—

"भद्रलपुरनामके एक नगरमें किसीसमय राजा मेघरथ राज्य करता था उसकी रानीका नाम सुभद्रा और उन दोनोंसे उत्पन्न पुत्रका नाम दृढरथ था ॥ १११-११२ ॥ उसी नगरमें विभूतिमें राजाके समान एक धनदत्त नामका सेठ रहता था धनदत्तकी स्त्रीका नाम नंदयशा था और उससे सुदर्शना सुज्येष्ठा ये दो कन्यायें, एवं धनपाल १ जिनपाल २ देवपाल ३ अरहदास ४ जिनदास ५ अरहदत्त ६ जिनदत्त ७ प्रियमित्र ८ और धर्मरुचि ९ ये नौ पुत्र इसप्रकार ग्यारह संतान उत्पन्न हुईं थीं ॥ ११३-११५ ॥ कदाचित् राजा मेघरथको संसारसे उदासीनता होगई जिससे कि मुनिराज सुमंदरके समीप दिगंबर दीक्षासे दीक्षित होगया सेठ धनदत्त भी अपने नौ पुत्रोंके साथ मुनिहोगया एवं कन्या सुदर्शना सुज्येष्ठा और रानी सुभद्रा तीनों एकसाथ सुदर्शना नामकी आर्यिकाके समीप आर्यिका होगई ॥ ११६-११७ ॥ कदाचित् विहार करते करते मुनिराज सुमंदर मेघरथ और धनदत्त तीनों बनारस आये वहां समस्त घातियाकर्मोंके नाश होजानेसे उन्हैं केवल ज्ञानकी प्राप्ति हुई । केवली हो धनदत्तने सात, सुमंदरने पांच और मेघरथने बारह वर्षतक विहारकर धर्मोपदेश दिया और आयुके अंतमें समस्तकर्मोंका क्षयकर राजगृहनगरसे सिद्धहो सिद्ध शिलापर जा विराजे ॥ ११८-११९ ॥ सेठ धनदत्तकी स्त्री नंदयशा उससमय गर्भवती थी इसलिये सबके साथ वह दीक्षा न लेसकी उसके धनमित्र नामका पुत्र उत्पन्न हुआ जिससमय पुत्र योग्य होगया नंदयशा भी उसै छोड़ आर्यिका होगई ॥ १२० ॥

एकदिन सेठ धनदत्तके पुत्र धनपाल आदि नौऊ मुनिराज प्रायोपगमन सन्यास धारणकर किसी विस्तीर्ण शिलापर विराजमान थे मुनियोंकी माता आर्यिका नंदयशा-

ने इन्हैं देख वंदनाकी और मनमें अति आनंदित हो 'अग्रिमभवमें भी मैं इनकी मा बनूं' ऐसा निदान बांधा कन्या सुदर्शना और सुज्येष्ठाने भी इन्हैं देख गाढ़ स्नेहके कारण 'अग्रिमभवमें भी ये हमारे भाई हों' ऐसी इच्छाकी सो ठीकही है स्नेहसे क्या नहीं होता ॥ १२१-१२२ ॥ आयुके अंतमें शुभ परिणामोंसे इस देहको छोड़कर वे सब (मा पुत्र, पुत्री) वावीससागर प्रमाण स्थितिवाले सोलहवें अच्युत स्वर्गमें जाकर उत्पन्न हुये और अनेक सुख भोगने लगे ॥ १२३ ॥ राजन् ! आयुके अंतमें वहांसे चयकर नंदयशाका जीव तो तुम्हारी रानी सुभद्रा हुआ है सुदर्शना और सुज्येष्ठा कन्यायें कुंती और मद्री हुई हैं और धनपाल आदि वसुदेवके सिवाय नौ पुत्र हुये हैं इसमें आश्चर्य नहिं करना चाहिये क्योंकि जीवोंके परिणाम अनेक प्रकारके होते हैं उसीके अनुसार उन्हैं गतियें भी अनेक प्रकारकी मिलती हैं" ॥ १२४ ॥

इसप्रकार भगवान सुप्रतिष्ठने राजा अंधकवृष्णिके नौ पुत्रोंके पूर्वभवका वर्णनकर दशवें पुत्र वसुदेवके पूर्वभवका वर्णन करना प्रारंभ किया—

"यह दीन प्राणी संसाररूपी गहन समुद्रमें दुःखरूपी तरंगोंसे कभी उछलता और कभी डूबता हुआ अनेक प्रकारके संताप सहता है एवं जिसप्रकार समुद्रके पूर्वतटपर पड़ा हुआ जूआ (युग) और पश्चिम तटपर पड़ी हुई कीली इनदोनोंका आपसमें मिलना अतिकठिन है उसीप्रकार संसारमें भ्रमण करते हुये इस जीवको मनुष्यभवका मिलना अतिशय दुस्साध्य है ॥ १२५-१२६ ॥ इसी पद्धतिके अनुसार वसुदेवके जीवने अनेक स्थानोंपर भ्रमण किया और क्रमशः सुखजनक कर्मोंका उपार्जनकर मगधदेशके शालिग्राम नामक नगरमें रहनेवाले अतिशय दरिद्री ब्राह्मण ब्राह्मणीके यहां वह पुत्र हुआ ॥ १२७ ॥ गर्भमें आतेही इसका पिता मरगया माताका बाल्य अवस्थामेंही शरीरांत होगया इस अभागेको इसकी मौसीने पाला वह भी अधिक दिन इसै न पालसकी जब यह आठ वर्षका हुआ तो वह भी चलवसी अनाथ जान इसका मामा इसै राजगृह नगर ले आया और अपनी स्त्रीको उसै पालनेकेलिये कहा स्त्रीने भी निकटसंबंधी जान उसै पालना स्वीकार करलिया ॥ १२८-१२९ ॥ इसका शरीर अतिशय मलिन था उससे छागके बच्चाके समान दुर्गंध आती थी बाल खुरखुरे विखरे थे कपड़े मैले कुचैले पहिने रहता था और नेत्र स्वभावसेही पिलोंये थे ॥ १३० ॥ एक दिन इसके मनमें अपने मामा दमरककी पुत्रियोंके साथ विवाह करनेकी अभिलाषा हुई परंतु उन्होंने दुर्गंधित होनेके कारण इसै पसंद करना तो दूर रहा दिक्कर घरसे भी निकाल दिया जिससे कि इसै अधिक दुःख उठाना पड़ा ॥ १३१ ॥ जब इसै कहीं सहारा न मिला और स्थाणुके समान दुर्भाग्यरूपी प्रबल अग्निकी ज्वालासे जलने लगा तो इसने मरनेका सर्वथा निश्चय करलिया एवं पतंग जैसा मरनेके लिये दीपकके पास आता है यह

भी शीघ्र वैभारपर्वतपर चढ गिरनेकेलिये उतारू होगया। परंतु वहांपर जो अनेक मुनि तप तप रहे थे उन्होंने इसै आश्वासन दे एसा करनेसे रोकलिया और धर्म अधर्मका स्वरूप समझाया। जब इसने धर्म अधर्मका फल जानलिया तो इसै बड़ा पश्चात्ताप हुआ अपनी आत्माकी वार वार निंदा करने लगा एवं एक शंखनामके मुनिराजके चरण कमलोंमें दिगंबर दीक्षासे दीक्षित होगया ॥ १३२–१३३ ॥ गुरुके उपदेशसे क्षणभर पहिले जो इसके मनमें आशारूपी पाशका फंदा पड़ा था वह तत्काल नष्ट होगया और सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चरित्रका धारकहो दुश्चर तप तपने लगा ॥१३४॥ इसका नाम नंदिषेण था तपके प्रभावसे मुनि नंदिषेणको अनेक लब्धियोंकी प्राप्ति होगई समस्त परीषहोंका विजयी और ग्यारह अंगका पाठी होगया। जैन शास्त्रमें वतलाई गई जो उपवास विधि अन्य मनुष्योंकेलिये अतिशय कठिन मालूम होती है धीर वीर मुनिराज नंदिषेणकेलिये वह उससमय अतिशय सुलभ थी ॥ १३५–१३६ ॥ यह मुनि आचार्य ग्लान शैक्ष्य आदि दश प्रकारके साधुओंका वैयावृत्य रूप तप विशेषतया करता था। महान लब्धियोंके प्रभावसे वैयावृत्यके योग्य औषधि आदि जिस पदार्थको यह चाहता तत्काल इसके हाथमें आजाते ॥ १३७–१३८ ॥ जब मुनिराज नंदिषेणको हजारों वर्ष तप करते वीत चुकीं तो एकदिन इंद्र देवसभामें उनके वैयावृत्य तपकी इसप्रकार प्रशंसा करनेलगा—

"इससमय जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें साधुओंका भलेप्रकार वैयावृत्य करनेवाला सबोंमें चतुर मुनिराज नंदिषेण है ॥ १३९–१४० ॥ परम सम्यग्दृष्टि क्षमाशील मुनि नंदिषेण जिस पदार्थको चाहता है लब्धिके प्रभावसे उसै तत्काल वह पदार्थ प्राप्त होजाता है ॥ १४१ ॥ वह मुनियोंका वैयावृत्य प्रासुक द्रव्यसे करता है इसलिये उसके कर्मका बंध न होकर निर्जरा होती है ॥ १४२ ॥ आगममें धर्मका सबसे प्रधान कारण शरीर वतलाया है इसलिये उसकी यथाशक्ति अवश्य रक्षा करनी चाहिये ॥ १४३ ॥ जो सम्यग्दृष्टि हैं उन्हैं चाहिये कि वे ग्लान आदि समस्त सम्यग्दृष्टियोंकी भलेप्रकार उपासना और उपचर्या करैं ॥ १४४ ॥ जो मनुष्य व्याधि दूर करनेमें सर्वथा समर्थ है और व्याधिग्रस्त-सम्यग्दृष्टिको देखकर उपेक्षा करदेता है–प्रमादवश उसकी सेवा शुश्रूषा करना नहिं चाहता वह पापी है और उसे सम्यक्त्वका पालक न समझ घातक समझना चाहिये ॥ १४५ ॥ जिस पुरुषका धन और शरीर सहधर्मी जनोंकी सेवामें नहिं लगता उसके वह धन और शरीर केवल अशुभकर्मबंधका ही कारण है उससे कुछ फल नहिं निकलता ॥ १४६ ॥ जो धन और शरीर सहधर्मी जनोंकी सेवामें यथा योग्य काम आवे समझना चाहिये वही धन और शरीर सफल है ॥ १४७ ॥ जो मनुष्य समर्थ होकर भी आपत्तिकालमें सम्यग्दृष्टिकी उपेक्षा कर देते हैं–उसके विघ्नकारक रोग आदिके

दूर करनेके किये तनिक भी उपाय नहिं करते वे बड़े कठोरचित्त हैं निर्दयी हैं और उनकी जिनशासनमें रंचमात्र भी भक्ति नहीं समझनी चाहिये॥ १४८ ॥ जिस मनुष्यने सम्यक्त्वकी शुद्धिसे शुद्ध जिन धर्मके धारक धर्मात्माकी भक्तिका लोप करदिया तो वह विनयी न ठहरा विनयके अभावसे उसके दर्शनविशुद्धता नहिं हो सकती। दर्शनकी विशुद्धता सम्यग्ज्ञानमें कारण है जब वह न हुई तो सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति नहिं हो सकती जो कि इस संसारमें अतिशय कठिन है जब सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति न हुई तो मोक्षका कारण सम्यक्चारित्र कैसे प्राप्त हो सकता है? सम्यक्चारित्रके अभावमें मोक्षाभिलाषीको मोक्ष मिलनी कठिन है मोक्षके न मिलनेपर अनंत अविनाशी सुखकी प्राप्ति नहिं हो सकती सुखके अभावमें निराकुलता नहीं और निराकुलताके अभावमें कृतार्थ (कृतकृत्य) होना असंभव है ॥१४९-१५१॥ इसलिये जो जीव अपने हितकेअभिलाषी हैं चाहैं वे मुनि हों या गृहस्थ हों उन्हैं अवश्य यथायोग्य वैयावृत्य करना चाहिये ॥ १५२ ॥ जिस पुरुषने दूसरोंका वैयावृत्य किया समझना चाहिये उसने उसके संयममें कारणभूत शरीरकी, और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी एवं उत्तम तपकी रक्षाकी ॥ १५३ ॥ जैनशास्त्रके भलेप्रकार जानकार विद्वान मनुष्य निष्काम हो दूसरेका उपकार करते हैं क्योंकि विना किसी कामनाके किया गया उपकार जीवोंको (उपकारी, और उपकृतदोनोंको) बहुत शीघ्र ही मोक्ष प्रदान करता है ॥ १५४ ॥ जो मनुष्य जैनशास्त्रकी भावनामें दृढ है और वैयावृत्य करनेवाला है क्षुद्रजीवोंकी तो बात ही क्या है प्रतापी देव भी उसका कुछ नहिं कर सकते॥ १५५ ॥ नंदिषेण मुनि इससमय ठीक अचंल वैयावृत्य करनेवाला है और प्रशंसाके योग्य है।"

जव इंद्र मुनिराजकी इसप्रकार स्तुति करचुका तो सभामें स्थित देवोंने उनकी वडी प्रशंसाकी और भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ॥ १५६ ॥ इंद्रद्वारा मुनि नंदिषेणकी इसप्रकार स्तुति सुन सभामें वैठे एक देवको उनकी धीरताकी परीक्षाका कौतूहल उत्पन्न हुआ इसलिये वह मर्त्यलोकमें अवतीर्ण हो रोगी मुनिका रूप धरकर मुनि नंदिषेणके पास जा कहनेलगा "हे वैय्यावृत्य करनेमें महान आनंद माननेवाले मुनिराज नंदिषेण! सुनिये यह मेरा शरीर व्याधिसे अति संतप्त है मुझै कुछ औषधि दीजिये जिससे यहँ व्याधि दूर होजाय" ॥ १५७-१५८ ॥ मुनिराज नंदिषेण तो दुःखितोंपर अतिशय अनुपम दयालु थे देवके वचन सुनते ही उन्होंने कहा "साधो! मैं औषधि देता हूं परंतु आप यह कहैं—किस पदार्थके खानेमें आपकी अधिक रुचि है?" ॥ १५९ ॥ देवने कहा "पूर्वदेशमें उत्पन्न होनेवाले शालियोंका तो में सुगंधित स्वच्छ भात खाना चाहता हूं पंचालदेशकी स्वादिष्ट मसालेदार मूगकी दाल खानेकी अभिलाषा है पश्चिमदेशकी गौओंका तपा हुआ मक्खन और कलिंग देशकी गौओंका दूध चाहिये

यदि यह भोजन मिलजाय तो अतिशय उत्तम हो क्योंकि मेरी अधिक रुचि इन्हीं पदार्थोंके खानेकी है।" देवकी यह विलक्षण रुचि सुन मुनि नंदिषेण 'अच्छा मैं लाता हूं' ऐसा कहकर विनाही किसी खेदके चलदिये आहारके समय गृहस्थोंके घर जा अपनी लब्धिबलसे उन्हीं चीजोंका उत्तम भोजन तयार करा देवको लाकर दिया। यद्यपि देवने मुनिसे विरुद्ध देशोंके पदार्थोंकी प्रार्थनाकी थी उससमय मुनिका क्रुद्ध होना या घबड़ा जाना सुलभ था पर वे (मुनि नंदिषेण) धैर्यसे च्युत न हुये और न उनके मनमें रंचमात्र भी खिन्नताही हुई॥ १६०–१६३॥ देवने खाये हुये समस्त अन्नका रात्रिमें वमन करदिया जिससे कि उसका सब शरीर मलिन होगया यह देख मुनिने उससे जरा भी ग्लानि न की और अपने हाथसे उसे धोकर साफ करदिया॥ १६४॥ इसतरह मुनि नंदिषेणको जब उसने भग्नोत्साह न पाया बराबर वैय्यावृत्य करते ही देखा तो देवको बड़ी प्रसन्नता हुई उसने अपना मुनिरूप बदलकर सच्चारूप प्रकटकिया और इसप्रकार विनयपूर्वक कहने लगा—

"ऋषे! मुनिराज नंदिषेण परम वैयावृत्य करनेवाले हैं इससमय उनके समान कोई नहीं" ऐसी जो इंद्रने अपनी सभामें आपकी प्रशंसाकी थी वास्तवमें मैंने आपको वैसाही पाया॥ १६५–१६६॥ भगवन्! आपकी लब्धि आपका धैर्य आपकी निर्विचिकित्सता और आपका निष्कपट जिनशासनवात्सल्य अपार है आपको धन्य है॥ १६७॥ तपस्वी अवस्थामें यदि अन्य विद्वानोंकी भी आपके ही समान वैयावृत्य करनेकी बुद्धि होजाय तो उन्हें जिनशासनका भक्त मानना चाहिये"। इसप्रकार मुनिराजकी स्तुतिकर देवने उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और सम्यक्त्वका लाभकर जैनधर्ममें अतिशय दृढ़हो वह अपने स्थानपर चलागया॥ १६८–१६९॥ मुनिराज नंदिषेणने पैंतीस हजार वर्षपर्यंत तप किया आयुके अंतसमयमें छै मास पहिले से प्रायोपगमन सन्यास धारण कर आहारका त्याग करदिया अपना और पराया वैयावृत्य करना छोड़दिया और गाढ़ मोहसे "मै परभवमें लक्ष्मीवान् अतिशय सुंदर बनूं" इसप्रकारके निदानको करते हुये शरीर छोड़ा॥ १७०–१७१॥ यदि मुनिराज नंदिषेण वैसा निंदित निदान नहिं बांधते तो इसमें कोई संदेह न था कि विशिष्ट तपके प्रभावसे वे नियमसे तीर्थंकर होते॥ १७२॥ शरीर परित्याग करते समय मुनिराज नंदिषेणने भलेप्रकार आराधना आराधीं थी इसलिये महाशुक्रस्वर्गमें वे इंद्रके समान विभूतिके धारक देव हुये और वहां साढ़े सोलह सागर प्रमाण दिव्य सुखोंका अनुभव किया॥१७३॥ राजन्! स्वर्ग में भलेप्रकार दिव्य सुखोंको भोगकर और वहांसे चयकर मुनि नंदिषेणका जीव रानी सुभद्रासे उत्पन्न यह तुम्हारे वसुदेव नामका पुत्र हुआ है"॥ १७४॥ इसप्रकार भगवान केवलीसे अपने पूर्वभवोंका श्रवणकर राजा अंधकवृष्णि, सुभद्रा,

उनके पुत्र, एवं अन्य सुननेवाले देव मनुष्य आदि धर्मके अतिशय श्रद्धानी होगये॥ १७५॥ भगवान सुप्रतिष्ठको सविनय नमस्कार कर सब लोग अपने २ स्थानोंपर चले गये। शौर्यपुर आते ही राजा अंधकवृष्णिने अपने ज्येष्ठपुत्र समुद्रविजयका राज्याभिषेक किया कुमार वसुदेवको समुद्रविजयकी सुपुर्दकर आप वनको चलदिये और भगवान सुप्रतिष्ठके चरणोंमें दिगंबर दीक्षाले संसारको नाशकरनेवाला तप तपने लगे॥ १७६–१७७॥ मथुराके स्वामी राजा भोजकवृष्णिको भी संसारसे उदासीनता हो गई वे भी बड़े पुत्र उग्रसेनको राज्य दे निर्ग्रंथ मुनि होगये॥ १७८॥ राजा समुद्रविजयकी परमप्रिया रानी शिवा थी उन्होंने उसे समस्त स्त्रियोंकी शिरोभूषण बना पटरानीका पद प्रदान किया और प्रतापकी वृद्धिके साथ २ राज्यकी स्थिररूपसे रक्षा करनेलगे एवं जिसप्रकार जिनेंद्ररूपी सूर्य भव्यरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करता है उसीप्रकार वे (राजा समुद्रविजय) भी अपने बंधुरूपी पद्मोंको अतिशय प्रमुदित करनेलगे॥ १७९॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेन द्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णनकरनेवाले हरिवंशपुराणमें राजा समुद्रविजयका राज्यलाभ वर्णन करनेवाला अठारहवां सर्ग समाप्त हुआ।

उन्नीसवां सर्ग।

अनंतर गणधर गौतमस्वामीने कहा–राजन्! (श्रेणिक) अब मैं विजयार्धपर्वतपरकी हुई राजा वसुदेवकी चेष्टाओंका वर्णन करता हूं तुम ध्यानपूर्वक सुनो॥ १॥ जब राजा समुद्रविजयके अक्षोभ्य आदि आठ छोटे भाई पूर्ण युवा होगये उससमय राजाने बडे २ राजाओंकी कन्याओंके साथ उनका विवाह करदिया॥ २॥ कुमार अक्षोभ्यकी रानी धृति हुई, स्तिमितसागरकी स्वयंप्रभा, हिमवानकी सुनीता, विजयकी सिता, अचलकी प्रियालापा, धारणकी प्रभावती, पूरणकी कालिंदी, और अभिचंद्रकी सुप्रभा हुई। ये समस्त स्त्रियां अपने स्वामियोंकी मुख्यरानियां थीं समस्त स्त्रियोंसे कला और गुणोंमें बढी चढ़ी थीं एवं अपने अपने पतियोंपर अतिशय प्रेम करनेवाली थीं इसलिये इनके समान दूसरोंकेलिये रतिजन्य सुख संसारमें दुस्साध्य था॥ ३–६॥ कुमार वसुदेव उससमय बालक थे अद्वितीय शोभासे मंडित होनेके कारण देवकुमारोंकी तुलना करते थे और शौर्यपुरमें इच्छानुसार खेलते कूदते थे॥ ७॥ रूप लावण्य सौभाग्य और चतुरताके सागर, कामदेवके समान कमनीय कुमार वसुदेवको जो मनुष्य देखलेता था वह उन्हींकी ओर टकटकी लगाये रहता था–उसै अपने शरीरकी भी सुधिबुधि नहिं रहती थी॥८॥ जिससमय कुमार वसुदेव पूर्वदिशाकी ओर जाते थे उससमय उनमें सोम लोककपाल (पूर्वदिशाके स्वामी) की भ्रांति होती और जिससमय दक्षिण पश्चिम एवं उत्तर दिशाओंमें जाते उससमय क्रमसे यम वरुण और कुबेर सरीखे मालूम होते

थे इसप्रकार लोगोंको चारो लोकपालोंके रूपकी भ्रांति दिलानेवाले वे निर्भय हो चारोदिशाओंमें नगरीसे बाहर क्रीड़ार्थ जले जाते थे ॥ ९ ॥ सूर्यके समान तेजस्वी, चंद्रमाके समान सौम्य, मुखकमलसे शोभित कुमार वसुदेव जिससमय राजमंदिरसे बाहर आते थे उससमय शौर्यपुरकी रमणियोंमें बड़ी आकुलता मचजाती थी ॥ १० ॥ जिसप्रकार पूर्णमासीके चंद्रमाको देखकर समुद्रकी वेला लहलहा उठती है उसीप्रकार कुमार वसुदेवके देखनेकेलिये पुरवासी स्त्रियोंका संघट्ट हो जाता था ॥ ११ ॥ उससमय वे अपने आवश्यक भी कामको छोड़ देतीं और कुमार बसुदेवको देखनेकेलिये चलदेतीं थी जिससे कि सड़क गलियां और महलोंके झरोखे उनहीं उनसे भरेहुये दीखाई पड़ते थे । ॥ १२ ॥ इसप्रकार वसुदेवके सौंदर्यकी समस्त नगरमें धूम मचजाती और बाहिर भीतर उन्हीं उनकी चर्चा सुनाई पड़ती थी ॥ १३ ॥ पुरका यह विचित्र दृश्य देख नगरके प्रधान पुरुषोंको वड़ी चिंता हुई वे समस्त आपसमें सुलहकर एकदिन राजसभामें आये और राजाको नमस्कार कर इसप्रकार विनयके वचन कहने लगे—

"प्रभो! जिसप्रकार बालकका वचन युक्त हो या अयुक्त हो पिता सहर्ष उसै सुनता है उसीप्रकार आप हमारे पिता हैं हमारी भी एक प्रार्थना है उसै आप सुनें और हमें अभय दान देवें ॥ १४-१५ ॥ स्वामिन्! आप समस्त मनुष्योंकी रक्षा करनेवाले हैं इसलिये नृप हैं समस्त पृथ्वीकी रक्षा करनेवाले हैं इसलिये भूप हैं आपसे समस्त प्रजा राजी है इसलिये आप राजा हैं ॥ १६ ॥ आपके पिताके समान आपके राज्यमें भी प्रजा दुष्टोंके उपद्रवोंसे रहित है और अतिशय प्रसन्न है ॥ १७ ॥ इस पृथ्वीमें वाधारहित शालि व्रीहि आदि सब प्रकारके धान्य प्रतिवर्ष होते रहतेहैं इसलिये आपके राज्यमें मनुष्य अन्नसे दुःखित नहिं रहते ॥ १८ ॥ मनुष्योंको जिसप्रकार खेतीसे लाभ है उसीप्रकार व्यापार से भी लाभ है आपके राज्यमें वणिक लोग लेन देन करनेसे राजा सरीखे जान पड़ते हैं ॥ १९ ॥ प्रभो! आपके राज्यमें गौ भैंसियोंके स्तन कुंभोंके समान हैं और वे तृण खाकर ही स्वादिष्ट और प्रचुर दूध देती हैं ॥ २० ॥ घरके लायक थोड़ाही भोजन बनाया जाता है परंतु न मालूम मंत्र आदि प्रयत्नके विना ही उसमें इतना अतिशय कहांसे होजाता है कि दिनभर धर्मात्माओंको दान देनेपर भी वह समाप्त नहिं होता ॥ २१ ॥ देव! यह स्वभाव सिद्ध वात है कि सर्वदा पदार्थोंके स्वभावमें हेर फेर होता रहता है कभी सुकाल पडता है कभी दुष्काल होता है परंतु आपके प्रभावसे समस्त पदार्थ स्थिरही जान पड़ते हैं चौतर्फा सुकाल ही नजर आता है और आपके प्रतापसे हमारी आनंददुंदुभि वजती रहती है ॥ २२ ॥ कृपानाथ! इसप्रकार यद्यपि आपके राज्यमें हमारे लिये सब प्रकारका सुभीता है परंतु उसके साथ थोड़ासा दुःख लगा हुआ है परंतु जिसप्रकार अपना पेट फाड़ा नहिं जाता उसीप्रकार उस दुःखका प्रकाश करना भी भयंकर जान

पड़ता है" ॥ २३ ॥ नगरके प्रधान मनुष्योंके ऐसे वचन सुन राजा समुद्रविजयने कहा—

"वृद्धो ! यदि आपलोग मेरा हित करनेवाले हैं तो निर्भीक हो खुलकर अपना दुःख प्रकट करैं क्योंकि जिसप्रकार अन्न जीवनका कारण होता है परंतु वही यदि हृदयमें लगजाय तो मारही देता है उसीप्रकार हृदयमें लगी हुई थोड़ी सी भी आधि और व्याधि प्राणनाशक होजाती है इसमें कोई संदेह नहीं" ॥ २४–२५ ॥ जब राजाने इसप्रकार आश्वासन देनेवाले वचन कहे तो नगरके प्रधान पुरुषोंको विश्वास होगया और वे विनम्र हो इसप्रकार कहने लगे—

"राजन् ! हमारी विज्ञप्ति नहीं दुर्विज्ञप्ति है क्या करैं परवश करनी पड़ती है कृपाकर आप प्रजाके हितार्थ उसे अवश्य स्वीकार करैं ॥ २६ ॥ कुमार वसुदेव प्रतिदिन क्रीड़ार्थ नगरसे वाहिर जाते हैं उनका रूप देख नगरकी स्त्रियां पागल बन जाती हैं उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि बुधि नहिं रहती ॥ २७ ॥ कुमारके निकलते समय और नगरमें प्रवेश करते समय स्त्रियां सिवाय कुमारके न दूसरेको देखती हैं और न किसीका शब्द ही सुनती हैं इसलिये उससमय ऐसा मालूम पड़ता है मानो इन स्त्रियोंके सिवाय नेत्र इंद्रियके दूसरी इंद्रियां ही नहिं है ॥ २८ ॥ कुमारके देखनेके लिये वे अपने अन्य आवश्यक कामोंको छोड़कर दौड़ निकलती हैं इसमें तो कोई आश्चर्य नहीं किंतु सबसे अधिक आश्चर्य और कष्ट इस बातका है कि वे कुमारके देखनेमें इतनी मस्त और अनुरक्त होजाती हैं उन्हें अपने छोटे २ बच्चोंको दूध पिलानेतककी भी याद नहिं रहती ॥ २९ ॥ इसमें कोई संदेह नहीं इसप्रकारके दिव्यरूपके अगार भी कुमार धीर हैं स्वाभाविक निर्मल चित्तके धारक हैं कामजन्य समस्त विकारोंसे शून्य हैं और शीलवानोंके शिरोभूषण हैं ॥ ३० ॥ राजन् ! कुमार वसुदेवके शीलवानपनेकी हम ही प्रशंसा नहिं करते उनके शीलकी कीर्ति समस्त पृथ्वीपर फैली हुई है। यद्यपि ऐसे परम पवित्र कुमारके विषयमें कुछ कहना अवश्य दुःखकारक है परंतु क्या करैं जिसप्रकार पित्तके प्रकोपसे मनुष्य पागल होजाता है उसीप्रकार समस्त पुर कुमारके देखनेसे बुद्धिशून्य होजाता है इसलिये हमैं यह जवरन कहना पड़ा है ॥ ३१ ॥ प्रभो ! आप पूर्ण विद्वान हैं इसमें जो युक्त हो आप उसका पूर्ण विचार करलें किंतु यह प्रार्थना है आप ऐसा उचित रीतिसे काम करैं जिससे पुरकाभी कल्याण हो और कुमारको भी बुरा न लगे" ॥ ३२ ॥ नगरवृद्धोंकी ऐसी प्रार्थना सुन राजा समुद्रविजयने बहुत समयतक विचार किया एवं उन्हें यह आश्वासन दे कि आप लोगोंके अनुकूल ही काम किया जायगा विदा किया जिससे कि वे लोग अपने अपने स्थानोंपर चलेगये ॥ ३३ ॥ इतनेहीमें कुमार वसुदेव इधर उधर डोल फिरकर राजसभामें आये भक्तिपूर्वक अपने बड़े भाईको नमस्कार किया राजा समुद्रविजय ने भी उसै छातीसे लगा अपनी गोद में वैठा लिया

गाढ़ स्नेहके कारण उसका माथा चूमने लगे एवं कुमारको इधर उधर घूमनेसे अतिशय श्रांत देख वे इसप्रकार मधुर वचनों से बोले—

"कुमार! बहुत कालतक वनमें भ्रमण करनेसे तुम थक गये हो तुम्हारा मनोहर रूप कुम्हला गया है भूख और प्याससे व्याकुल दीखते हो एसे अधिक घूमनेसे क्या लाभ? ॥ ३४-३५ ॥ यह देखो तुम्हारा मस्तक पवन और धूपसे म्लान होगया है कांति फीकी पड़गई है शरीर खिन्न होगया है तथापि इसका कुछ भी विचार न कर तुम घूमते फिरते हो ऐसा भ्रमणका आनंद किस कामका? ॥ ३६ ॥ अब तुम्हारेलिये हमारी यही आज्ञा है कि तुम स्नानके समय स्नान और भोजनके समय भोजन अवश्य किया करो स्नान और भोजनका समय टालना ठीक नही एवं बाहर न जाकर अंतःपुरके वनोंमें ही आनंदसे खेला कूदा करो" ॥ ३७ ॥ इसप्रकार राजा समुद्रविजय अतिशय विनम्र लघुभाई वसुदेवको समझाकर और उनका हाथ पकड़कर साथ २ महारानी शिवाके सतखने मकानमें गये ॥ ३८ ॥ कुमार वसुदेवके साथ राजाने स्नान और भोजन किया महलमें भीतर रखनेकी उसकी दृढ़ रक्षा करदी एवं अपनी (कुमारकी) कैदका पता कुमारको मालूम हुआ न जान राजा समुद्रविजय आनंदसे रहने लगे ॥ ३९ ॥ कुमार भी रानी शिवा देवीके वन वगीचोंमें क्रीड़ा करनेलगा एवं गीत आदि विनोद करता हुआ सुखसे रहने लगा ॥ ४० ॥

कदाचित् एक दासी रानी शिवादेवीके लिये सुगंधित उपटन मार्गमें लिये जाती थी इतनेमें कुमार उसके पास आया और उसे बीच ही बीच लूटलिया इससे दासीको बड़ा रोष आया और वह इसप्रकार कहने लगी "कुमार! इन्हीं चेष्टाओंसे तो तुम्हारी कैद की गई है और यहां रक्खें गये हो" दासीके ऐसे विचित्र वचन सुन कुमारको बड़ा संदेह हुआ इसलिये उन्होंने उससे पूछा—क्या? तुमने क्या कहा! कुमारके ऐसा पूछनेपर दासीने राजा के अंतरंगका सारा विचार उसे कह सुनाया। दासीके मुखसे सब समाचार सुन और अपने विषयमें छल जान कुमारको बड़ा दुःख हुआ वह एकाएक राजा समुद्रविजयसे विमुख हो राजमंदिरसे छलपूर्वक निकलकर नगरके बाहर होगया चलते समय साथमें एक नौकर लिया था उसे तो रात्रिमें किसी श्मशानभूमिमें जाकर एक जगह बिठादिया और मंत्र सिद्धिका बहाना कर आप कुछ दूर चला गया वहांपर एक मुर्दा पड़ा हुआ था अपने भूषण वस्त्र उसे पहिना दिये और चितामें उसै रखकर उच्चस्वरसे (जिससे कि नौकर सुनले और नगरमें सबको कहदे) इसप्रकार कहने लगा—

"राजा हमारे पिताके समान है वे सुखसे रहैं नगरके लोग भी चिरकालतक सुखसे जीवन व्यतीत करैं मेरे शत्रु भी भलेप्रकार संतोष माने लो! इसलिये मैं चितामें प्रविष्ट हो मरा जाता हूं" ऐसा कहकर और नौकरको यह दिखलाकर कि मैं अग्निमें

प्रवेश कर गया कुमार भागकर शीघ्र ही आंखोंकी ओझल होगये । इसप्रकार कुमारके अंतर्हित होनेपर नौकरको उनकी वातोंपर विश्वास होगया जिससे वह नगरकी ओर वापिस लौट आया नगरमें आकर वसुदेवका समस्त वृत्तांत राजा समुद्रविजयसे कह सुनाया जिसे सुनते ही राजा प्रजा रणवांस भाई और कुटुंबियोंमें भारी खलबल मचगई सवके सव करुणाजनक रोदन करने लगे प्रातःकाल होते ही राजा समुद्रविजय श्मशान भूमिमें गये भस्ममें पड़े हुये कुमारके आभरणोंको देखकर और 'वह मरगया' एसा पूर्ण निश्चयकर वे बहुत रोये दुःखित हो पश्चात्ताप करने लगे–मारे पश्चात्तापके उनका शरीर जलने लगा मरतेसमयकी जो उचित क्रियायें थी वे कीं और अपनी बारंबार निंदा करने लगे इसप्रकारके शोकसे कछ समयके लिये राज्यकार्यमें भी मंदता आगई परंतु भवितव्यता विचार शीघ्र ही शोकरहित हो वे पूर्वकी तरह रहने लगे ॥ ४१–५१ ॥ धीर कुमार वसुदेव ब्राह्मणका वेष धर निर्भय हो पश्चिम दिशाकी ओर चलदिये और चलते २ जब बहुत योजनकी दूरीपर निकल गये ॥ ५२ ॥ तब उन्हें देवनगरके समान अतिशय मनोहर एक विजयखेट नामका नगर पड़ा उससमय वहांपर एक गंधर्व विद्याके प्रेमियोंको गंधर्व विद्या सिखानेवाला क्षत्रियवंशी सुग्रीव नामका गंधर्वाचार्य रहता था कुमारकी उससे भेंट होगई । गंधर्वाचार्य कुमारका मनोहर रूप देखते ही भृत्य सरीखा बन गया ॥ ५३–५४ ॥ गंधर्वाचार्य सुग्रीवके सोमा और विजयसेना नामकी दो कन्यायें थीं इन दोनों कन्याओंकी तुलना करनेवाली उससमय कोई दूसरी कन्या न थी ये चंद्रवदनी उत्तमरूपकी अंतिम सीमापर पहुची हुई थीं । ॥ ५५ ॥ इन दोनों कन्याओंका गांधर्वविद्यामें भी पूर्ण पांडित्य था इसलिये इनके पिताने इसबातका संकल्प करलिया था कि जो मनुष्य इन्हें गांधर्व विद्यामें परास्त करदेगा वही नियमसे इनका स्वामी होगा ॥ ५६ ॥ कुमार वसुदेव भी गानविद्याके पूर्ण जानकार थे एकदिन दोनों कन्याओं का और इनका सभामें शास्त्रार्थ होगया लक्ष्य लक्षणयुक्त जिन २ वातोंमें वे दोनों कन्यायें पूर्ण चातुर्य रखती थीं कुमारने उन्हीं उन्हीं वातोंमें उन्हें छका दिया । इसप्रकार कुमारका रूपके साथ पांडित्य देख सुग्रीवको बड़ा संतोष हुआ उसने शीघ्र ही उन दोनों कन्याओंका उनके साथ विवाह करदिया और वे (कुमार) भी उत्तमोत्तम महलोंमें उनके साथ रमणक्रीड़ा करने लगे ॥ ५७–५८ ॥ इसतरह रमण करनेके कुछ दिन बाद रमणी गंधर्वसेनाके गर्भ रहगया और अक्रूरनामका पुत्र उत्पन्न हुआ पराक्रमी कुमार वसुदेव वहांपर कुछदिन और रहे एकदिन वे विनाही किसीको पूछे गुप्तरूपसे चलदिये ॥ ५९ ॥ मार्गमें चलते चलते वे किसी गहन अटवीमें जा निकले वहां उन्हें हंस सारस और कमलोंसे व्याप्त एक निर्मल जलावर्त नामका सरोवर दीख पड़ा कुमार वहां ठहर गये उसका शीतल जल पीया और बहुत का-

लतक उसमें स्नान करनेके बाद उसके तटपर बैठ मृदंगके समान शब्द करनेवाला जल (जलजातिका वादित्र) बजाने लगे। वहांपर अतिशय विशाल एक गज सो रहा था बाजेका शब्द सुनते ही वह तत्काल उठकर खड़ा होगया और एकदम कुमारकी ओर रूर पडा कुमार अतिशय चतुर और बलिष्ठ था गजको सामने आते हुये देख वह जरा भी न डरा पैंतरा बदल उसके दावोंको चुकाने लगा और जिसप्रकार झूलेमें झूलते हैं उसीप्रकार उस हाथीके विशाल दांतोंपर झूलकर क्रीडा करनेलगा जिससे कि चंद्रमाके समान शुभ्र उस हाथीको तत्काल वश करलिया हाथी शांत हो निश्चल खडा होगया इसलिये कुमार उसपर सवार होलिये और उसके कुंभस्थलपर बैठ खुशीसे अपने आपही ताली बजाकर शिर हिलाते हुये इसप्रकार विचार करने लगे--

"हा! जिसप्रकार वनका रोना किसीको सुनाई नहिं पड़ता व्यर्थ जाता है उसीप्रकार यह मेरी हाथीके वश करनेमें वीरता निष्फल गई किसीने देखतक न पाई यदि मैं इसप्रकारकी हाथीके साथ वीरता शौर्यपुरमें करता तो समस्त लोग मेरी वडी प्रशंसा करते और चौतर्फा मेरीही मेरी कीर्तिध्वनि सुन पड़ती" ॥ ६०-६६ ॥ कुमार ऐसा विचारही कररहे थे कि इतनेहीमें सुंदररूपके धारक दो धीर विद्याधर कुमार उनके पास आये उन्होंने हाथीके मस्तकसे कुमारको उडाकर विजयार्धके कुंजरावर्त नगरके सार्वकामिक नामक किसी बाह्य उद्यानमें अशोक वृक्षके नीचे ला उतारा जब कुमार स्वस्थ होगये शोक और क्लेश नष्ट होगया तो वे दोनों विद्याधर विनयपूर्वक नमस्कार कर इसप्रकार निवेदन करने लगे--

"स्वामिन्! इसी कुंजरावर्त नगरका स्वामी विद्याधरोंका अधिपति राजा अशनिवेग है उसीकी आज्ञासे हम आपको यहां लाये हैं आप निश्चयसे समझिये अब वे आपके श्वसुर हैं और हम दोनों आपके सेवक हैं हमारा नाम क्रमसे अर्चिमाली और वायुवेग है।" कुमारको इसप्रकार वास्तविक वृत्तांत निवेदनकर उनमें एक विद्याधर तो राजाको समाचार देने नगर चलागया और दूसरा कुमारका रक्षक बन वहीं रहगया। ॥ ६७-७१ ॥ राजसभामें प्रवेश करतेही विद्याधरने राजा अशनिवेगको विनयपूर्वक प्रणाम किया और कहा "कृपानाथ! आप बड़े भाग्यशाली हैं हस्तीके मर्दन करनेवाले पुरुषको हमलोग ले आये हैं वह पुरुष साधारण पुरुष नही बड़ा धीर वीर है परमसुंदर है विनीत है और नवीन यौवनसे मंडित है"। विद्याधरके मुखसे ऐसे प्रसन्नता सूचक वचन सुन राजा अशनिवेगको परम आनंद हुआ उससमय राजाके अंगपर जो कीमती भूषण और वस्त्र थे तत्काल उसे प्रदान करदिये ॥७२-७३॥ और जहां कुमार बैठे थे शीघ्रही वहां गया कुमारको अनेकप्रकारके अलंकार पहिना गाजेबाजे के साथ बडे ठाट बाटसे नगरमें प्रवेश कराया जिससमय कुमार नगरमें आये पुरवासी नर-

नारीगण उनके रूपकी अतिशय प्रशंसा करने लगे राजमंदिरमें आकर राजाने कुमारको मनोहर स्थानमें ठहराया एवं प्रशस्त तिथि नक्षत्र और शुभमुहूर्तमें अपनी (राजा अशनिवेगकी) पुत्री युवती श्यामाके साथ उसका विवाह करदिया कामिनी श्यामा अनेक कला और गुणोंमें पंडिता थी इसलिये कुमार उसके साथ मनमानी क्रीड़ा करने लगे विशेष कहांतक कहा जाय उससमय कुमार श्यामाके देदीप्यमान मुखरूपी कमल के भ्रमर सरीखे होगये थे ॥ ७४–७६ ॥ श्यामाको वीणा बजाना बहुत अच्छा आता था इसलिये एकदिन वह सत्रह तंत्रीवाली वीणा बजाने लगी कुमार उसके पांडित्यपर बड़े मुग्ध हुये और प्रसन्न हो बोले "प्रिये! हम तुमसे बड़े प्रसन्न हैं इसलिये तुम हमसे इच्छानुसार वर मागों" कुमारको प्रसन्न देख और वर मांगनेका ठीक अवसर समझ नम्रतापूर्वक उसने उत्तर दिया–प्राणनाथ! मैं यही प्रसादवर मांगती हूं कि आप चाहैं दिन हो चाहैं रात हो मेरे विना कहीं अकेले न रहैं क्योंकि मुझे प्रतिसमय इसवातका भय रहता है कि अवसर पाकर वैरी अंगारक आपको कहीं हर न लेजाय मैं इस बरके मांगनेका और अंगारकके साथ विरोधका कारण भी वतलाती हूं आप ध्यानपूर्वक सुनिये

वैताढ्य पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें मनुष्योंसे परिपूर्ण अनेक गुणोंका भंडार किन्नरदेवोंसे भलेप्रकार स्तुत एक किन्नरोद्गीत नामका नगर है ॥ ७७–८० ॥ किन्नरोद्गीतपुरका स्वामी विद्याधरोंपर पूर्णरीतिसे आज्ञा चलानेवाला राजा अर्चिमाली था उसकी स्त्रीका नाम प्रभावती है और उसके ज्वलनवेग और अशनिवेग नामके दो पुत्र हैं ॥ ८१ ॥ कदाचित् राजा अर्चिमालीको संसारसे उदासीनता होगई इसलिये अपने वड़ेपुत्र ज्वलनवेगको प्रज्ञप्तिनामकी विद्या और राज दे लघुपुत्र अशनिवेगको युवराज बना आप मुनिराज अरिंदमके चरण कमलोंमें दीक्षित होगया ॥ ८२ ॥ राजा ज्वलनवेगके रानी विमलासे अंगारक नामका पुत्र हुआ और युवराज अशनिवेगके रानी सुप्रभासे मैं श्यामा नामकी पुत्री हुई ॥ ८३ ॥ कदाचित् राजा ज्वलनवेगको भी संसारसे वैराग्य होगया। इसलिये वह मेरे पिताको राज्य दे और अपने पुत्र अंगारकको प्रज्ञप्तिविद्याके साथ युवराज पद प्रदान कर मुनि होगया ॥ ८४ ॥ अंगारक प्रकृतिका बड़ा दुष्ट था मेरे पिता अशनिवेगसे उसने संग्राम ठान दिया और प्रज्ञप्तिविद्याके वलसे उसे बांधकर समस्त राज्य हरण करलिया ॥ ८५ ॥ अव मेरे पिता राज्यसे भ्रष्ट होकर इस कुंजरावर्त नगरमें रहते हैं जिससे कि पींजरेमें फंसे हुए पक्षीके समान अहोरात्र अपमानजनित चिंता उन्हैं व्याकुल बनाये रहती है ॥ ८६ ॥ किसीसमय मेरे पिता वंदनार्थ कैलाशपर्वतपर गये थे वहां उन्हें चारण ऋद्धिके धारक एक मुनिराजके दर्शन होगये पिताने उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और मुनिराजको त्रिलोकदर्शी जान पूछा–

भगवन्! आप अवधिज्ञानरूपी दिव्य चक्षुसे सब वस्तु जानते हैं कृपाकर क-

हिये मेरा राज्य फिरसे मेरे हाथ आवेगा या नहीं ? ॥ ८७-८८ ॥ राजाके ऐसे वचन सुन मुनिराजने अपने दिव्य ज्ञानरूपी चक्षुसे प्रत्यक्ष देख कहा—"राजन्! तुम्हारी पुत्री श्यामाको जो वरैगा उसीकी कृपासे तुम्हैं पुनःराज्यकी प्राप्ति होगी" ॥ ८९ ॥ मुनिराजके मुखसे ऐसे वचन सुन मेरे पिताने फिर पूछा-"कृपानाथ! मेरी पुत्रीका पति कोन और कैसे होगा ? मुनिराजने उत्तर दिया "राजन्! जलावर्त सरोवर पर जो मत्त हाथीके मदको चूर २ करैगा नियमसे वही तुम्हारी पुत्री श्यामाका पति होगा" मुनिराजके ऐसे आनंदवचन सुन मेरे पिता अपने नगर लोट आये और मुनिराजकी आज्ञासे उसीदिनसे मेरे पिताने आपके आगमनकी प्रतीक्षार्थ प्रतिसमय जलावर्तके तटपर दो विद्याधर नियत करदिये जिससे कि मेरे समस्त मनोरथोंको पूर्णकरनेवाले आपकी थोडेही कालमें प्राप्ति होगई और मुनिराजका वचन कभी असत्य नहिं होता यह बात विल्कुल प्रत्यक्ष होगई ॥ ९०-९२ ॥ दुष्ट अंगारकको भी इस समस्त वृत्तांतका पता अवश्य लग गया होगा जिससे कि वह अवश्य आपसे जल रहा होगा स्वामिन्! दुष्ट धूमके समान मूर्तिका धारक अंगारक हमारेलिये देदीप्यमान प्रबल अग्निके समान है महाविद्याके प्रभावसे मत्त होरहा है आपको आकाशगामिनी आदि विद्या आतीं नहीं इसलिये यदि वह दुष्ट कदाचिद् आपको हर भी ले जायगा तो मैं विद्या जानने वाली हूं इसलिये उससे बचा लूंगी"। श्यामाके ऐसे युक्तिपूर्ण वचन सुन कुमारने "क्या हर्ज है! हम तुम्हारे ही साथ रहैंगे" ऐसा कहकर आनंद पूर्वक आनंदमुखी प्रियतमा श्यामाका गाढ आलिंगन करलिया ॥ ९३-९५ ॥ और उसै ईर्षारहित हो विद्याधरोंके लोक विजयार्धमें सबसे अधिक अतिशय मनोहर गांधर्व विद्या सिखलाई ॥ ९६ ॥ कुमार वसुदेव और रमणी श्यामाका इच्छानुसार भोग भोगनेसे आनंदपूर्वक काल व्यतीत हो रहा था कि कदाचित् रात्रिमें अधिक सुरतक्रीडा करनेसे वे गहरी नीदमें सोगये इतने ही में दुष्ट अंगारक आकूदा कुमारको श्यामाके भुजपंजरसे जुदा करदिया एवं जिसप्रकार गरुड सर्पको ले उडता है कुमारको सेजसे उठा लेगया ॥ ९७-९८ ॥ जब कुमारकी नींद टूटी होश आया और अपनेको किसी विद्याधर द्वारा हरण किया जाना तो वे तत्काल ऐसा बोलने लगे-रे अधम! तू कौन है ? जो मुझे हरे लिये जाता है! छोड छोड! परंतु उसीसमय उन्हैं श्यामाद्वारा बतलाये हुये अंगारकके स्वरूपका स्मरण होआया जिससे अंगारकको पहिचानलिया। यद्यपि उससमय वसुदेवमें यह सामर्थ्य थी कि वे उसे मुष्टिके आघातसे चकनाचूरकर देते परंतु नीचे गिर मरजाऊंगा इस शंकासे उन्होंने वैसा नहिं किया ॥ ९९-१०० ॥ कुछ समयबाद श्यामाकी भी आंख खुल गई वह हाथमें ढाल तलवार ले बडे वेगसे धरउडी शीघ्रही आकर कुमारके हरण करनेवाले वैरी अंगारकका मार्ग रोक लिया और वडी

वीरतासे–"रे निर्दयी! दुराचारी! चोर! पातकी! ठहर ठहर मेरे जीते जी तू मेरे प्राणनाथको कहां हरे लिये जाता है? रे हमै नाना दुःख देनेवाले दुष्ट! मेरे पितासे तूने राज्य लेलिया तो भी संतुष्ट न हुआ! ठहर बहुतदिनके बाद आज मैंने तू देखा है कहां जाता है? अभी तू मेरे हाथसे अपनेको मरा हुआ देख" ऐसा कहकर म्यानसे तलवार निकाल सामने खड़ी हो गई। श्यामाकी इसप्रकारकी शूरवीरता देख विद्याधर अंगारक कुछ हिचका और अपनी रक्षा करनेके लिये रूक्षवचनोंमें उसे इसप्रकार उत्तर दिया–श्यामा! संसारमें स्त्रीका मारना अतिशय निंदित है इसलिये रे दुष्टिनी तू मेरे सामनेसे हट जा॥ १०१–१०४॥ तू मेरी काकाकी पुत्री बहिन भी लगती है इसलिये तेरे मारनेके लिये मेरा हाथ भी नहिं उठता"॥ १०५॥ अंगारकके ऐसे वचन सुन कर्मवीरा श्यामाने कहा "जो मनुष्य अपना स्वार्थ गांठना चाहता है उसकेलिये कौन स्त्री? कौन बहिन? और कौन भाई? यदि वैरी अपना प्राणघातक हो तो उसे अवश्य मारदेना चाहिये-इसमें कोई अकीर्ति नहीं क्या मनुष्योंको मारनेवाली सिंहिनी और वाघिनी मारी नहिं जाती। दुष्ट! बहिन भाई आदि रिस्तोंपर विचार करना तेरा व्यर्थ है यदि तुझमें कुछ भी पौरुष है तो उसे तू काममें ला।"॥१०६–१०७॥

श्यामाके ऐसे कठोर वचन सुन और उसै मार्ग रोके हुये देख अंगारक आग बबूला होगया वह दुष्ट विद्याबलसे तलवार और शिलाओंके आघातसे कोमलांगी श्यामापर वार करने लगा॥ १०८॥ बहुत कालतक इनका आघात प्रतिघात होता रहा ढाल तलवारसे सन्नद्ध रमणी श्यामाने खड्गसे निकलते हुये फुलिंगो द्वारा विद्याधर अंगारक का तमाम शरीर आच्छन्न करदिया॥ १०९॥ इन दोनों का इसप्रकार भयानक युद्ध देख कुमार वसुदेवको भी रोष आगया ये भी विद्याधर अंगारकके वक्षःस्थलमें दृढतासे मुष्टियोंकी मार मारनेलगे दुतर्फा मारसे अंगारकके नाकमें दम आगई उसै अपनी जीवन आशामें भी संदेह होगया इसलिये दुःखित हो उसने कुमारको नीचे छोड़दिया अपनेको नीचे गिरा देख कुमार बड़े खिन्न हुये किंतु श्यामाने कुमारकी रक्षार्थ पहिलेसेही श्यामलछाया नामकी दासी नियुक्त कर रक्खी थी उसने चट कुमारको डाट लिया एवं ज्योंही वह कुमारको ्ँुजरावर्त नगरकी ओर ले जाने लगी तत्काल यह वाणी सुनाई पड़ी—

"कमारको इससमय यहीं छोड़ जाओ यहांपर इसे अधिक लाभ होनेवाला है" वाणी सुनतेही दासीने लघुपर्णी विद्याके सहारे कुमारको वहीं छोड़ दिया और अपने नगरकी ओर चल दी। कुमार भी धीरे २ हलके पत्तेके समान लघुपर्णी विद्याके प्र ा-वसे नीचे पृथ्वीपर उतरने लगे। जिससमय वे नीचे उतर आये तो उन्होंनें अपनेको चंपानगरीके वाह्य उद्यानमें अनेक कमलोंसे व्याप्त अंबुजसंगम नामक सरोवरमें पाया

जिससे कि तैरकर उसकी पार पर आ गये ॥ ११०–११४ ॥ सरोवरके तटपर मान-स्तंभ आदिसे शोभित भगवान वासुपूज्यका एक मंदिर था कुमार उसके पास आये तीन प्रदक्षिणा दे नमस्कार किया और दीपकके प्रकाशमें बैठिगये ॥ ११५॥ प्रातःकाल भगवान वासुपूज्यकी पूजार्थ एक ब्राह्मण आया कुमारने उसे देखते ही पूछा—"प्रिय-विप्र! इस देशका नाम क्या है? और कौनसी यह पुरी है"? विप्रने उत्तर दिया—महा-भाग! देशका नाम अंग है और त्रिभुवनविख्यात यह चंपापुरी नामकी नगरी है क्या आप आकाशसे गिरे हैं जो नहीं जानते हैं?" कुमारने कहा—विप्र! बहुत ठीक! तुमने सत्य जाना। क्या तुम ज्योतिष विद्याके जानकार हो? तुम्हारा ज्ञान बिलकुल सच्चा है अहा! जैन शासन अन्यथा नहिं हो सकता मेरे रूपपर मुग्ध हो मुझे दो यक्ष-कुमारियां हर लेगई थीं उन दोनोंमें झगड़ा हो गया जिससे कि मैं आकाशसे गिरकर पृथ्वीपर पड़ गया ॥ ११६–११७–११८ ॥ इसप्रकार ब्राह्मणको उत्तर दे कुमार ब्रा-ह्मणका वेष धर गंधर्व नगरीके समान मनोहर चंपापुरीकी ओर रवाना हुये ॥ ११९ ॥ उससमय चंपापुरीमें बहुतसे लोग जहां तहां वीणा हाथोंमें लिये घूम रहे थे कुमारको यह दृश्य देख बड़ा कौतूहल हुआ इसलिये एक ब्राह्मणके पास जाकर पूछा—भाई! ये लोग वीणा लिये क्यों घूम रहे हैं?" ब्राह्मणने कहा—

"महाभाग! इस चंपापुरीमें विभूतिमें कुवेरके समान वैश्योंका अधिपति एक चारु-दत्त नामका सेठ रहता है इसके एक गंधर्वदत्ता नामकी कन्या है गंधर्वदत्ता परम रूप-वती है गांधर्व विद्यामें पूर्ण पांडित्य रखती है और उसकी प्रतिज्ञा है जो पुरुष मुझे गंधर्वविद्यामें जीत लेगा वही मेरा पति होगा इसीलिये कन्याके लाभके लोभसे प्रेरित वीणाके बजानेमें पूर्ण पांडित्य रखनेवाले ये समस्त लोग नाना देशोंसे आकर यहां जमा हुये हैं ॥ १२०–१२४ ॥ इससमय रूप लावण्य और सौभाग्यकी खानि मृगन-यनी मनोहारिणी कन्या गंधर्वसेनाने समस्त जगतको व्यामोहित कर दिया है ॥१२५॥ जितने मनुष्य ठहरे हैं उनमें बहुतसे ब्राह्मण बहुतसे क्षत्रिय और बहुतसे वैश्य हैं समस्त ही वीणा बजानेमें चतुर हैं और कन्या कीर्ति एवं विजयके अभिलाषी हैं॥ १२६ ॥ कन्या के साथ विवादार्थ प्रतिमास यहां गंधर्वविद्याके जानकार विद्वानोंकी सभा जुड़ती है। परंतु जयपताका सदा सरस्वतीके समान कन्या गंधर्वसेनाके ही हाथमें रहती है ॥ १२७ ॥ अभी कल ही एक सभा हो चुकी है और एक मासके बाद पुनः विद्वानोंकी सभा होगी" ॥ १२८ ॥ विप्रके मुखसे ऐसा समाचार सुन कुमारने पूछा—

"इससमय इस पुरीमें सबसे प्रसिद्ध उपाध्याय कौन है और उनका नाम क्या है?" ब्राह्मणने उत्तर दिया—"सुग्रीव" कुमार सीधे सुग्रीवके पास चले गये और सन्मुख जाकर कुटुंबीके समान कुशल क्षेम पूछ इसप्रकार बोले—"मैं गौतम ब्राह्मण हूं और आपका

शिष्य बनना चाहता हूं"। सुग्रीवने कुमारकी ओर देखा और उसे परम सुंदर भोला भाला समझ दयापूर्वक अपना शिष्य बना लिया कुमार भी मूर्खवन उल्टी सीधी वीणा वजाकर समस्त वीणा वजानेवालोंको हंसाते हुये वहां रहने लगे॥१२९-१३१॥ सभाका दिन आ गया पहिलेके ही समान विद्वानोंसे सभा भर गई कुमार वसुदेव भी सभामें गये और जहां तहां मनुष्योंको निहार एक आसन पर बैठिगये ॥ १३२ ॥ कुमार वसुदेवको देखते ही सभामें क्षोभ होगया और वादित्र सुनने वजानेवाले तमाशा-देखनेवाले एवं अन्य मनुष्योंमें कुमारके स्वरूपकी प्रशंसाका कोलाहल मच गया॥१३३॥ जब समस्त विद्वानोंसे सभा भर गई तब निर्मल प्रभासे मंडित कन्या गंधर्वदत्ताने सभामें प्रवेश किया उससमय नाना आभरणोंसे भूषित वह वर्षाकालमें आकाशके मध्यमें प्रवेश करती हुई विजलीके समान जान पड़ती थी ॥ १३४ ॥ गंधर्व विद्याकी साक्षात् मूर्तिस्वरूप कन्या गंधर्वसेनाने शास्त्रार्थ करना प्रारंभ किया वीणा वजानेमें अतिशय चतुर भी बहुतसे विद्वानोंको शीघ्रही जीत लिया क्रमसे बढ़ती २ वह कुमार वसुदेवके समीप आई कुमार उससमय उत्तम आसन पर विराजमान थे गंधर्वसेनाने आकर वीणा दी हाथमें वीणा लेते ही कुमारने उसमें अनेक दोष बतलाये और वापिस करदी गंधर्वसेनाने फिर उन्हें सुघोषा वीणा दी सुघोषा सप्तदश तंत्रियोंकी धारक और उत्तम थी कुमारने खींचकर उसे वजाया और प्रसन्न हो इसप्रकार कहने लगे—

"अयि साध्वि! यह वीणा अति उत्तम निर्दोष है अच्छा! बतलाओ क्या गेय वस्तु सुनना चाहती हो उसीको गाकर वतलाऊंगा ॥ १३५-१३८ ॥ सभामें ये समस्त वड़े विद्वान बैठे हुये हैं मैं इनके सामने बहुत अच्छी वीणा बजाना चाहता हूं इसलिये अब मुझै शीघ्रही किसी भी गेय पदार्थके गानेकी आज्ञा करो" ॥१३९॥ गंधर्वसेनाने कहा—

"महाभाग! यदि आप वीणा वजानेमें प्रवीण हैं तो जिससमय राजा बलिने मुनियोंपर उपसर्ग किया था और विष्णुकुमार मुनिने वामनका रूप धारणकर उसै दूर किया था उससमय हाहा तुंबुर नारदोंने जो उनकी प्रशंसामें गायन गाया था उसी गायनको लेकर आप वीणा वजावें क्योंकि जो वस्तु पुराणोंमें वर्णित है वह वस्तु विशेष महत्त्वकी समझी जाती है और वही प्रशंसाके योग्य भी होती है" ॥१४०-१४१॥ गंधर्वसेनाकी यह आज्ञा सुन कुमार वर्णन करने लगे—

वाजोंके चार भेद हैं तत १ अनवद्ध २ घन ३ और सुषिर ४ ॥ १४२ ॥ तारके बाजे वीणा आदि तत हैं मृदंग आदि चर्मसे मढ़े हुये वाजे अनवद्ध कहलाते हैं कांसेके मजीरा आदि वाजोंका नाम घन है और वंशी आदि वांशके वाजोंका नाम सुषिर है ॥ १४३ ॥ तत (वीणाआदि) वादित्रको गांधर्व विद्याका शरीर मानागया है क्योंकि इसके सुननेसे मनुष्योंके कान विशेष रीतिसे तृप्ति होते हैं उन्हें परम

आनंद होने लगता है इसलिये गांधर्व विद्यासे इसका विशेष संबंध होनेसे इसे गांधर्व नामसे भी कहते हैं ॥१४४॥ गांधर्वकी उत्पत्तिमें वीणा वंश और गान ये तीन कारण हैं और वह स्वरगत तानगत, पदगत इसप्रकार त्रिविध स्वरूप है ॥ १४५॥ स्वरके मूलमें दो भेद हैं—एक वैण दूसरा शारीर। उसमें भी वैण स्वरके अतिवृत्ति स्वर ग्राम वर्ण अलंकार मूर्छना और धातु साधारण आदि अनेक भेद हैं और जाति वर्ण स्वर ग्राम स्थान साधारणक्रिया और अलंकार शारीर स्वरोंके भेद हैं ॥ १४६–१४७ ॥ कृदंत तद्धित समास संधि स्वर विभक्ति सुवंत तिङंत और उपसर्ग आदि पदविधि बतलाई हैं और ताल संबंधिविधि—आवाय निष्क्राम विक्षेप प्रवेशन शम्या ताल परावर्त सन्निपात वस्तुक मंत्र अविदार्यंग लय गति प्रकरण यति गीति मार्गावयव और पाणियुक्त पादावयव(?) ये वावीसप्रकारकी वर्णन की हैं इसप्रकार उससमय इन तीनों भेद प्रभेद और उनके लक्षणोंके वर्णन करनेसे कुमारने गांधर्व विद्याको बहुत बड़े विस्तार से बतलाया। स्वर दूसरी तरह—षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, और निषाद इन भेदोंसे सात प्रकारके भी होते हैं और वे सातोही—वादी[1] संवादी[2] विवादी और अनुवादी इन भेदोंसे चार २ प्रकारके हैं ॥ १४८–१५४ ॥ मध्यमग्राममें[3] पंचम और ऋषभस्वरका संवाद होता है षड्जग्राममें षड्ज और पंचमका संवाद होता है ॥ १५५ ॥ जब कि षड्ज स्वरमें चार, ऋषभमें तीन, गांधारमें दो, मध्यममें चार, पंचममें चार, धैवतमें दो और निषादमें तीन श्रुति[4] होती हैं तब वह षड्ग (ज) ग्राम कहलाता है॥१५६–१५७ ॥ और जब मध्यम स्वरमें चार, गांधारमें दो, ऋषभमें तीन, षड्जमें चार, निषादमें दो धैवतमें तीन, और पंचममें तीन श्रुति होती हैं, तब वह मध्यमग्राम कहलाता है इस प्रकार दोनों ग्रामों (षड्गग्राम, मध्यमग्राम) में प्रत्येककी बाईस २ श्रुति होती हैं ॥ १५८–१५९॥ एवं इन दोनों ग्रामोंमें (प्रत्येकमें सात सात) कुल चौदह मूर्च्छना[5] होती हैं जिसमेंसे षड्गग्रामकी सातो मूर्च्छनाओंके क्रमशः—उत्तरमंद्रा, रजनी, उत्तरायता, शुद्धषड्गा, मत्सरीकृता, अश्वक्रांता और आभिरुद्गता ये सात नाम हैं। और मध्यम-

१—रागोत्पादनशक्तेर्वदनं तद्‍योगतो वादी। वादी राजा स्वरस्तस्य संवादी स्यादमात्यवत्। शत्रुर्विवादी तस्य स्यादनुवादी तु भृत्यवत् ॥ २—श्रुतयोऽष्टौ द्वादश वा भवंति मध्ये ययोः स्वरयोः। संवादिनौ तु कथितौ परस्परं निषादगांधारौ ॥ (संगीतदर्पणे १–६–६९) ३—ग्रामः स्वराणांसमूह स्यान्मूर्च्छनादे समाश्रयः। तौ द्वौ धरातले तत्र स्यात् षड्गग्राम आदिम.। द्वितीयो मध्यमग्रामः ॥ (संगीतमहोदधौ १–७–५) —मूर्च्छना आदिसे युक्त स्वरोंके समूहको ग्राम कहते हैं उस ग्रामके दो भेद हैं—मध्यमग्राम और षड्गग्राम। ४—तीव्रा कुमुद्वती मंदा छंदोवर्त्यस्तु षड्गगा.। दयावती रंजनी च रतिका चर्षभे स्थिता ॥ रौद्री क्रोधा च गांधारे वज्रिकाऽथ प्रसारिणी। प्रीतिश्च मार्जनीत्येता. श्रुतयो मध्यमाश्रिताः ॥ क्षिती रक्ता च संदीपन्यालापी चैव पंचमे। मदन्ती रोहिणी रम्येत्येता धैवतसंश्रया ॥ उग्रा च क्षोभिणीति द्वे निषादे वसत. श्रुती ॥ (संगीतरत्नाकरे १–५३–५६) ५—क्रमात्स्वराणा सप्तानामारोहश्चावरोहणं। मूर्च्छनेत्युच्यते। (सं० र० १–४–९) सातो स्वरोंका क्रमपूर्वक आरोह [चढाना] अवरोहण [उतारना] होनेको मूर्च्छना कहते हैं।

ग्रामकी मूर्च्छनाओंके सौवीरी, हरिणाश्वा, कलोयवना, (कलोपनंता) शुद्धमध्यमा, मार्गवी, पौरवी, और रि(हृ)ष्यका ये सात नाम हैं ॥ १६०–१६३॥ षड्ज (ड्ग) स्वरमें षड्गग्रामसंभूत उत्तरमंद्रा मूर्च्छना होती है ऋषभमें अभिरुद्गता, गांधारमें अश्वक्रांता, मध्यममें मत्सरीकृता, पंचममें शुद्धषड्गा, धैवतमें उत्तरायता और निषादमें रजनी मूर्च्छना होती है। इसीप्रकार मध्यमग्रामसंभूत–मध्यम स्वरमें सौवीरी, गांधारमें हरिणाश्वा, ऋषभमें कलोयवना, षड्गमें शुद्धमध्यमा, निषादमें मार्गवी और धैवतमें पौरवी मूर्च्छना होती है। छै और पांच स्वरवाली मूर्च्छनाको तान कहते हैं उनमें छै स्वरवाली षाडव और पांच स्वरवाली औडव कही जाती है। मूर्च्छनाओंके साधारण कृत (साधारणस्वरसंभूत) और काकलीस्वरसंभूत ये दो सामान्य भेद हैं इसलिये पूर्वोक्त दोनों ग्रामोंकी आंतरस्वरसंयुक्त मूर्च्छनाओंके दो २ भेद हो जाते हैं। तान चौरासी प्रकारकी होती हैं उनमें औडव (पंचस्वरसंभूत) के पैंतीस और षाडव (षट्स्वरसंभूत) के उनचास भेद हैं। आंतरस्वरसंयोग आरोही कोटिमें अल्प विशेष दोनों रूपसे रहता है अवरोहीमें नहीं। यदि वह अवरोही में उक्त दोनों (अल्प या विशेष) रूपसे होगा तो श्रुति राग रूप परिणत हो जायगी और जो स्वर वहां होना चाहिये वह चला जायगा।॥१६४–१७२॥ जातियोंके अठारह भेद हैंऔर उनके नाम–षड्गी, आर्षभी, धैवती, निषादजा, सुषड्गा, दिव्यवा, षड्गकौशिकी, षड्गमध्या, गांधारीमध्यमा, गांधारीदिव्यवा, पंचमी, रक्तगांधारी, रक्तपंचमी, मध्यमोदीच्यवा, नंदयंती, कर्मारवी, आंध्री, और कै(कौ)शिकी हैं॥१७३–७६॥ मध्यमा, षड्गमध्या, और पंचमी ये तीन जातियां साधारणस्वरगत हैं ॥ १७७ ॥ ये जातियां शुद्ध और विकृत भेदसे दो प्रकारकी हैं उनमें जो आपसमें एक दूसरेसे उत्पन्न नहिं होती वे शुद्ध हैं और जो समानलक्षणवालीं स्वरप्लुत हैं वे विकृत हैं इन जातियोंमें चार जातियां सात स्वरवालीं चार छै स्वरवालीं और अवशिष्ट दश, पांच स्वरवालीं हैं। उनमें मध्यमोदीच्यवा षड्गकौशिकी कर्मारवी और गांधारपंचमी ये चार जातियां सातस्वरवाली हैं। षड्गा, आंध्री, नंदयंती और गांधारोदीच्य(च्य)वा ये चार जातियां छै स्वरवालीं है और शेष दश पांच स्वरवालीं समझना चाहिये। उनमें–निषादकी आर्षभी, धैवती, षड्गमध्यमा और षड्गोदीच्यवती ये पांच स्वरवाली पांच जातियां षड्गग्राममें और गांधारी, रक्तगांधारी, मध्यमा, पंचमी, और कौशिकी ये पांच मध्यमग्राममें होती हैं। पांच स्वरवाली जाति कभी षाडव (छै स्वरवालीं) और छै स्वरवाली कभी औडव पांच स्वरवालीं होजाती हैं (?) ॥१७८–८५ ॥ षड्गग्राममें सात स्वरवाली षड्ु(षड्ग) कौशिकी

१--मूर्छना एव तानाः स्यु· शुद्धा आरोहणाश्च ता । [नादपुराणे] विस्तार्यंते प्रयोगाय मूर्च्छना शेषसंश्रयाः ।·तानास्तेषूनपंचाशत् सप्तस्वरसमुद्भवाः ॥ [संगीतदामोदरे] [१-३५]

जाति होती है और गानके योगसे छै स्वरवाली भी होती है ॥१८६॥ मध्यमग्राममें सात स्वरवाली कर्मारवी गांधारपंचमी मध्यमोदीच्यवा, होती हैं और छै स्वरवालीं गांधारोदीच्यवा आंध्री (घ्री) और नंदयंती ये जातियां होती हैं ॥१८७–१८९॥ जहांपर छै स्वर होते हैं वहांपर मध्यम अथवा षड्गस्वर नहिं रहता और सवांदीका लोप होनेसे गांधार स्वरमें विशेषता नहिं होती ॥ १९० ॥ गांधारी रक्तगांधारी कैशिकी और षड्गामें पंचमस्वर और गांधारस्वर नहिं होता ॥ १९१ ॥ षाडवमें धैवत स्वर नहिं रहता क्योंकि वहां षड्गोदीच्या जातिका वियोग होजाता है। एवं ये सात जातियां छै स्वरवाली नहिं होतीं ॥१९२॥ इनमेंसे रक्तगांधारी जातिमें षड्ग मध्यम और पंचमस्वर सप्तमस्वर होजाते हैं और वहां औडवित नहिं रहता (?) ॥१९३॥ षड्ग मध्यम गांधार निषाद और ऋषभ ये पांच अंश पंचमी जातिमें रहते हैं और धैवतके साथ कौशिकीमें छै रहते हैं इसप्रकार बारह जातियां सर्वदा पांच स्वरमें रहती हैं और इनको स्वराश्रय औडवित करना चाहिये ॥ १९४–१९५ ॥ जातियोंमें समस्त स्वरोंका नाश करनेपर भी मध्यम स्वरका कदापि नाश न करना चाहिये ॥ १९६ ॥ क्योंकि समस्त स्वरोंमें मध्यमस्वर प्रधान है और समस्त गांधर्व भेदोंमें मध्यमस्वर स्वीकार किया जाता है ॥१९७॥ जातियोंके तार, मंद्र, न्यास आदि, अल्पत्व, बहुत्व, षाडव, और औडव भेदसे दश लक्षण हैं और जिस रसमें जो जातिका लक्षण कार्यकारी होता है वह स्वीकार कर लिया जाता है ॥१९८–१९९॥ जहांसे राग उत्पन्न होता है वा जहांसे रागकी प्रवृत्ति होती है वहां तार मंद्र बहुलतासे उपलब्ध होते हैं ॥ २०० ॥ ग्रह उपन्यास विन्यास सन्यास न्यासगोचर और अनुवृत्ति ये औपलक्षणिक अंश हैं॥ २०१ ॥ जहांपर जातियां बलवान नहिं होती हैं दुर्बल होती हैं वहांपर यह अंश अल्परूपसे संसरण करता है तथा दोनों प्रकारकी उत्तरमार्ग जातियोंका व्यक्त करनेवाला होता है॥ २०२॥ जहांपर मंद्रलक्षण न हो और दो न्यास हों वहां गांधार होता है और न्यासका कारण दुष्ट ऋषभ होता है ॥ २०३ ॥ समस्तजातियोंमें जिसप्रकार अंश स्वीकार किया गया है उसीप्रकार ग्रह माना गया है और जहां अंशकी प्रवृत्ति होती है वहां ग्रह नहि रहता ॥ २०४ ॥ समस्त द्वै ग्रामकी जातियोंमें त्रेसठ अंश रहते हैं और उनका संग्रह छै स्वरोंमें माना गया है ॥२०५॥ मध्यमोदीच्यवा नंदयंती और गांधारपंचमीमें पंचम (स्वर) अंश और ग्रह रहता है ॥२०६॥ धैवतीमें धैवत और ऋषभ ये दो अंश और ग्रह हैं पंचमीमें पंचम और ऋषभ ये दो ग्रह और अंश हैं ॥ २०७ ॥ गांधारोदीच्यवामें षड्ग मध्यम ये दो अंश एवं ग्रह हैं आर्षभीमें धैवत ऋषभ निषाद षाडव और गांधार अंश ग्रह हैं षड्गकौशिकीमें ऋषभ षड्ग गांधार और मध्यम ये ग्रह हैं ॥ २०८–२०९ ॥ तीनों प्रकारकी जातियोंके ग्रह और न्यासोंका वर्णन करदिया गया। तथा ग्रहके आदि अंश

गांधार ऋषभ मध्यम और पंचम है एवं अंत्य अंश षड्ग ऋषभ मध्यम और पंचम हैं ॥ २१०–२११ ॥ मध्यम जातिमें गांधार और धैवत ग्रहांश हैं निषाद षड्ग गांधार मध्यम और पंचम ये रक्तगांधारीमें ग्रहांश हैं कैशिकीमें ऋषभयोगके साथ समस्त ग्रहोंसे मंडित समस्त स्वर हैं तथा ग्रहांश षड्ग और मध्यम हैं इसप्रकार स्वजातियोंमें ग्रह और अंश त्रेसठ समझ लेने चाहिये ॥ २१२–२१४ ॥ तथा समस्त जातियोंमें अंशोंके समानही ग्रह जानने चाहिये और सब जातियोंमें तीन प्रकारके गुण हैं ॥ २१५ ॥ एकसे लेकर बढ़ते बढ़ते छै गुणे स्वर होजाते हैं और वे एकस्वर दोस्वर तीनस्वर चार स्वर पांच स्वर छै स्वर और सातस्वर इस क्रमसे होते हैं जातियोंमें इनस्वरोंकी जो ग्रहांश कल्पनाकी गई है वह पहिलेकी जा चुकी है ॥ २१६–२१७ ॥ षड्गमें निषाद और ऋषभको छोडकर शेष पंचस्वर होते हैं और वहां गांधार और पंचम उपन्यास होते हैं षष्ठस्वर न्यास होता है और ऋषभ एवं सप्तम स्वरका लोप होता है एवं गांधारका विशेष बाहुल्य रहता है ॥ २१८–२१९ ॥ आर्षभीमें अंश निषाद धैवत उपन्यास और ऋषभ न्यास होता है ॥ २२० ॥ धैवतीमें धैवत और ऋषभ न्यास और धैवत ऋषभ एवं पंचम उपन्यास होते हैं ॥ २२१ ॥ षड्ग और पंचमसे रहित पंचस्वर माने जाते हैं और पंचमके विना षाडव माना जाता है ॥ २२२ ॥ पंचस्वर्य और षाडव आरोहणकोटिमें भी लेजाने चाहिये और इनका उल्लंघन भी करदेना चाहिये तथा इसीप्रकार निषाद ऋषभ और बलवान गांधारका भी आरोहण और लंघन होता है ॥ २२३ ॥ निषाद और निषादके अंश गांधार और ऋषभ ये उपन्यास हैं और सप्तम स्वर न्यास कहा जाता है ॥ २२४ ॥ धैवती जातिमें भी षाडव औडव स्वर होते हैं और इनका बल (आरोहण) और उल्लंघन होता है ॥ २२५ ॥ षड्ग-कौशिकीके गांधार और पंचम ये ग्रहांश हैं और षड्ग पंचम और मध्यम उपन्यास हैं ॥२२६॥ यहांपर गांधार चाहैं वह अधिक स्वर वाला हो वा अल्पस्वरवाला हो न्यास होता है और धैवत ऋषभ दुर्बल पड़जाते हैं ॥ २२७ ॥ षड्ग मध्यम निषाद धैवत ये षड्गोदीच्यवामें ग्रहांश हैं मध्यम न्यास है और धैवत षड्ग उपन्यास हैं एवं यहां छंदके समय अंशोंका व्यतिक्रम भी हो जाता है ॥ २२८–२२९ ॥ इस षड्गोदीच्यवा-में पंचम और ऋषभको छोड़कर पांच स्वर माने गये हैं जिनमें षड्ग ऋषभ गांधार बलवान होते हैं ॥ २३० ॥ षड्ग और मध्यम सबके उपन्यास एवं षड्ग और सप्तम सबके न्यास मानने चाहिये ॥ २३१ ॥ सप्तम स्वर से युक्त गांधार यवस्वर्य होता है यहां सप्तम स्वरसे युक्त षाडवका अवश्य प्रयोग करना चाहिये ॥ २३२ ॥ इन समस्त स्वरों-का प्रयोग इच्छानुसार होता है ये सात जातियां षड्ग ग्रामके आश्रय रहती हैं ॥२३३॥ गांधारीजातिमें धैवत और ऋषभको छोड़कर शेष पांच अंश रहते हैं षड्ग और

पंचम उपन्यास होते हैं। षाडव और ऋषभसे उत्पन्न यहां गांधार न्यास होता है और धैवत एवं ऋषभके विना औडवित होता है ॥ २३४-२३५ ॥ यहां धैवत और ऋषभका नियमसे उल्लंघन होता है इसप्रकार गांधारमें स्वर न्यास और अंशका संचार वर्णन कर दिया ॥ २३६ ॥ रक्तगांधारी भी इसीके समान है और यहां धैवत और पंचम बलवान रहते हैं। धैवत और पंचमके विना ही यहां गांधार और षड्गका संचार होता है और मध्य सहित मध्यम उपन्यास होता है ॥२३७॥ गांधारोदीच्यवामें षड्ग मध्यम और सप्तम अंश समझने चाहिये और वहां ऋषभको छोड़कर शेष सात स्वर होते हैं ॥ २३८ ॥ इस गांधारोदीच्यवामें अंतरमार्ग न्यास उपन्यास समस्त विधि समझनी चाहिये ॥ २३९ ॥ मध्यमामें अंशोंके विना गांधार और सप्तम स्वर होते हैं वहां एकही मध्यम न्यास और उपन्यास रहता है ॥ २४० ॥ सप्तम अंशसे युक्त गांधार पंच स्वरवाला होता है और गांधार अंश रहित षट् स्वर गांधारका सदा प्रयोग करना चाहिये ॥२४१॥ बहु और मध्यम अंशोंकी यहां बहुलता रखनी चाहिये यहां गांधारका लंघन भी हो जाता है ॥ २४२ ॥ मध्यमोदीच्यवामें मध्यम नाम का एक अंश रहता है और मध्यमामें जो रीति होती है वह यहां भी समझलेनी चाहिये ॥ २४३ ॥ पंचमी जातिमें ऋषभ पंचम उपन्यास होते हैं और पंचम न्यास रहता है ॥ २४४ ॥ जो विधि मध्यमामें बतला आये हैं वह और षाडव औडव स्वर यहां समझने चाहिये और यहांपर षड्ग गांधार और पंचमकी बहुलता होती है ॥२४५-२४६॥ यहांपर पंचम और ऋषभका संचार होता है और पंचमस्वरोंके साथ गांधारका गमन भी होता है ॥ २४७ ॥ गांधारपंचमीमें पांचप्रकारके दोष माने गये हैं और पंचम एवं ऋषभको उपन्यास माना है ॥ २४८ ॥ गांधारके साथ न्यास रहता है एवं वह पूर्व स्वर होता है गांधारीमें पंचम संचार माना गया है ॥ २४९ ॥ ऋषभ पंचम गांधार और निषाद ये चार अंश हैं और येही उपन्यास हैं गांधार न्यास और षड्गसे युक्त षाडव होता है तथा गांधार और ऋषभोंमें परस्पर संचार होता रहता है ॥ २५० ॥ यहांपर गतिके अनुकूल षष्ठ और सप्तमका न्यास होता रहता है और जब औडवित स्वर रहता है तब षड्जका लंघन नहिं होता ॥ २५१ ॥ नंदयंतीमें गांधार मध्यम और पंचम जो अंश होते हैं वेही न्यास मानेजाते हैं ॥ २५२ ॥ षड्गमें कोई अंश लंघनीय नहिं होता आंध्रीमें संचार नहिं होता यहां मंद्रस्वरमें ऋषभ लंघित होता है ॥ २५३ ॥ आंध्री जातिमें तारस्वरमें ग्रह और न्यास होता है ऋषभ और पंचम अंश होते हैं धैवत और निषाद न्यास हैं और पंचम उपन्यास होता है ॥ २५४ ॥ विशेषरूपसे गांधारका सर्वत्र गमन होता है तथा कौशिकीषड्गामें ऋषभके विना सबका संचार होता है यहांपर ऋषभके विना सब अंश उपन्यास माने गये हैं गांधार सप्तम

होजाता है और वहां निषादके होनेपर पंचम न्यास माना जाता है कभी कभी यहां ऋषभ भी उपन्यास होजाता है और धैवत षाडवके विना दो रिषभवाला षाडव होता है। यहांपर औडवित भी होता है। बलवान स्वरके स्थानमें पंचम होजाता है। यहां रिषभकी दुर्बलता और लंघन होजाता है। षड्गके साथ मध्यमका संचार होता है और जाति स्वर और संचार यथायोग्य समझलेना चाहिये ॥ २५५-२६१ ॥

इसप्रकार गंधर्वशास्त्रके विस्तारके साथ जब वसुदेवने गाना गाया तो सभामें बैठे हुये समस्त श्रोताओंको वड़ा आश्चर्य हुआ ॥ २६२ ॥ उससमय उनके मुखोंसे ये शब्द निकलने लगे कि-यह तुंबुर है या नारद है या गंधर्व अथवा किन्नर है भला इस प्रकारका वीणा वजाना इनके सिवाय किसे आ सकता है? ॥ २६३ ॥ कन्या गंधर्वसेनाकी आज्ञानुसार कुमार वसुदेवने बलिके बांधते समय विष्णुकुमारका जिसरीतिसे नारद आदिने स्तवन किया था वही गाया इसलिये गंधर्वसेनाको बड़ा आश्चर्य हुआ और उससे कुछ भी उत्तर न बना ॥ २६४ ॥ इसप्रकार जब गंधर्वसेना पराजित होगई तो संपूर्ण सभाके लोग उनका साधुवाद करने लगे ॥ २६५ ॥ कन्या गंधर्वसेनाने भी प्रसन्न हो कुमार वसुदेवके कंठमें माला पहिना दी और स्वाभाविक अनुरागसे पूर्ण हो कुमार वसुदेवको स्वीकार करलिया ॥ २६६ ॥ उससमय गंधर्वसेनासे मंडित कुमार वसुदेव गंधर्वोंकी सेनासे युक्त गंधर्व देवकी तुलना करते थे ॥ २६७ ॥ चारुदत्तको भी बड़ी प्रसन्नता हुई जिससे कि उसने विधिपूर्वक उन दोनोंका विवाह कर दिया ॥ २६८ ॥ उपाध्याय सुग्रीव और यशोग्रीवने भी अपनी दोनों कन्यायें कुमार वसुदेवको प्रदान कीं और परम संतोष माना ॥ २६९ ॥ ये तीनों कन्यायें अनेक कला और गुणोंमें चतुर थीं इसलिये कुमार वसुदेवने इनके साथ मनमानी क्रीड़ा की ॥ २७० ॥

यद्यपि वैरी विद्याधर छिद्र पाकर कुमार वसुदेवको हरकर ले गया था आकाशमें बहुत दूरी पर ले जाकर उसने दूरसे सरोवरमें पटका था तथापि धर्मकी कृपासे उनके कहीं कैसी भी चोट न आई। जो मनुष्य धर्मका आराधन करनेवाले हैं उन्हें यह धर्म उत्तमोत्तम लाभोंकी प्राप्ति कराता है इसलिये भव्यजीवोंको चाहिये कि वे भगवान जिनेंद्रके मार्गके अनुयायी होकर बंधुस्वरूप इस धर्मका आराधन करें ॥ २७१ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेन द्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णनकरनेवाले हरिवंशपुराणमें कुमार वसुदेवको गंधर्वसेनाका लाभ वर्णन करनेवाला उन्नीसवां सर्ग समाप्त हुआ।

वीसवां सर्ग।

राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे पूछा-प्रभो! गंधर्वसेनाने जो कुमार वसुदेवसे मुनि विष्णुकुमारकी स्तुतिके समयके गायन गानेकी प्रार्थना की थी वे विष्णुकुमार मुनि कोन थे? और उन्होंने राजा बलिको कैसे बांधा था? कृपाकर कहैं ॥१॥ गौतम गणधरने कहा-

राजन्! यदि तुम मुनिराज विष्णुकुमारकी कथा सुनना चाहते हो तो ध्यान दे कर सुनो मैं कहता हूं क्योंकि मुनि विष्णुकुमारकी कथा सम्यग्दर्शनकी शुद्धि करने वाली है सुननेके लायक है और उत्तम है ॥ २ ॥

किसीसमय उज्जयिनी नगरीका स्वामी अतिशय प्रसिद्ध राजा श्रीधर्म था और उसकी पटरानी श्रीमती थी श्रीमती वास्तवमें श्रीमती—अनुपम शोभासे मंडित थी और उत्तमोत्तम गुणोंकी खानि स्वरूप थी ॥ ३ ॥ राजा श्रीधर्मके वलि वृहस्पति नमुचि और प्रल्हाद ये चार मंत्री थे और ये चारो ही मंत्रकलामें पूर्ण दक्ष थे ॥ ४ ॥ नगरी उज्जयिनीके वाहिर एक उत्तम उद्यान था कदाचित समस्त श्रुतके ज्ञाता मुनिराज अंकपनाचार्य सातसौ मुनियोंसे मंडित उस उद्यानमें आये ॥ ५ ॥ नगरनिवासी लोगोंको मुनिराजोंके आगमनका पता लगा जिससे कि वे लोग समुद्रके प्रवाहके समान तत्काल मुनियोंकी वंदनाके लिये तयार हो चल दिये ॥ ६ ॥ राजा श्रीधर्म उस समय महलकी छतपर बैठा था लोगोंको इसप्रकार नगरसे निकलता देख उसने पास बैठे हुये मंत्रियोंसे पूछा—"मंत्रियो! यह समय यात्राका तो है नहीं फिर ये समस्त नगरके लोग कहां जारहे हैं?" यह सुन प्रधानमंत्री बलिने कहा—"राजन्! वनमें अज्ञानी मूर्ख दिगंबर मुनियोंका संघ आया है उन्हींकी बंदनाके लिये ये सव लोग जारहे हैं" ॥ ७–८ ॥ इस तरह मंत्रियोंके मुखसे मुनियोंका आगमन जान राजा श्रीधर्मने भी जानेकी इच्छा प्रकट की मंत्रियों द्वारा बार बार रोके जानेपरभी वनकी ओर चलदिया राजाको वंदनार्थ जाते देख मंत्रियोंको भी झकमार साथ जाना पड़ा ये समस्त मंत्री जैनधर्मके कट्टर द्वेपी थे इसलिये मुनिराजोंको देखते ही वे हंसने और अंड वंड बकने लगे ॥ ९ ॥ मुनिराज अकंपन अवधिज्ञानी थे आनेवाली आपत्तिका उन्हैं प्रथमही भान होगया था इसलिये उससमय समस्त संघको मौन धारण करनेकी कड़ीआज्ञा देदी थी जिससे कि वे समस्त मुनि उससमय कुछभी बोलते चालते न थे अपनी आत्मांके ध्यानमें तल्लीन थे मंत्रियोंने मुनियोंके मौनभंग करनेकेलिये अनेक प्रयत्न किये परंतु उनकी जब कुछ भी न चली और मुनियोंने अपना मौन न छोड़ा तो वे लाचार हो अपनासा मुह लेकर नगर लौटने लगे। जिससमय मुनिराज अकंपनने मुनियोंको मौन धारण करनेका उपदेश दिया था उससमय मुनि श्रुतसागर संघमें न थे आहारार्थ नगरमें चले जानेसे उन्हैं गुरुके उपदेशका पता नहिं लग पाया था। इसलिये वे (श्रुतिसागर) तो आहार लेकर वनको आते थे और वलि आदि मंत्री नगरको लोट रहे थे दोनोंका मार्गमें मिलाप होगया और राजाके समक्षमें ही मंत्रियोंने स्वभावानुसार मुनिराजसे अंडवंड प्रश्न करना प्रारंभ करदिया। मुनि श्रुतसागर पूर्ण तर्कके वेत्ता थे इसलिये प्रमाण और नयोंके बलसे उन्होंने वातकी वातमें मंत्रियोंको निरुत्तर करदिया ॥ १० ॥ इधर मुनिराजतो अपने गुरु

अकंपनाचार्यके समीप आये उनसे शास्त्रार्थका समस्त वृत्तांत कहा गुरुने उन्हें आनेवाली आपत्ति वतलाई एवं जहां शास्त्रार्थ हुआ था वहीं पर्यंक आसन मार बैठनेका प्रायश्चित्त दिया इसलिये वे गुरुकी आज्ञानुसार वहां ही जा विराज गये । और उधर मंत्रियोंको अपनी हारसे अधिक संताप हुआ इसलिये वे दुष्ट रात्रि होते ही मुनिराजके मारनेके लिये आये मुनिराज पर यह अत्याचार देख वन देवतासे न रहा गया उसने तत्काल उन्हें कील दिया प्रातःकाल होते ही जब राजाने उन्हें उस दशामें देखा तो बड़ा क्रोध आया और उन्हें उसीसमय अपने देशसे तिरस्कार पूर्वक निकालनेकी आज्ञा देदी ॥११॥

उससमय हस्तिनापुरमें महापद्मनामका चक्रवर्ती राज्य करता था उसके आठ कन्यायें थीं उनके रूपपर मुग्ध हो आठ विद्याधर उन्हें हरले गये जब चक्रवर्तीको इस वातका पता लगा तो उसने उनके लानेके लिये सामंत भेजे जिससे कि शीघ्र ही वे उन्हें वापिस ले आये वे कन्यायें अतिशय शीलवती थीं उनके परिणाम संवेगरूप थे इसलिये हस्तिनापुर आते ही उन्होंने दीक्षा ले ली कारणवश उनके हरण करनेवाले विद्याधरोंको भी संसारसे उदासीनता होगई वे भी दीक्षाले मुनि होगये ॥ १२–१३ ॥ राजराजेश्वर महापद्म चरमशरीरी–तद्भवमोक्षगामी थे कन्याओंका यह दृश्य देख उन्हें भी संसारसे वैराग्य होगया रानी लक्ष्मीमतीसे उत्पन्न सबसे वड़े पुत्र कुमार पद्मको राज्य देदिया और लघुपुत्र विष्णुकुमारके साथ तत्काल दिगंबर दीक्षासे दीक्षित होगये ॥१४॥ परम रत्नत्रयके धारक मुनिराज विष्णुकुमार तीव्र तप तपनें लगे और वर्षा होनेसे जिसप्रकार समुद्रमें आप ही आप हजारों नदियां आकार मिल जाती हैं उसीप्रकार तपके प्रभावसे उन्हें भी अनेक लब्धियां प्राप्त होगई ॥१५॥ बलि आदि मंत्री देश कालको अच्छी तरह पहिचानते थे जिससमय उनको इसबातका पता लगा कि हस्तिनापुरके वृद्ध राजा दीक्षित होगये हैं और हालहीमें उनके पुत्र पद्मका राज्याभिषेक हुआ है तो वहांसे वे सीधे हस्तिनापुर ही आये और राजा पद्मसे मिलकर अपने बुद्धिकौशलसे उसके राज्यकी श्रीवृद्धि करने लगे ॥ १६ ॥

राजा पद्मके राज्यमें एक सिंहवल नामका राजा रहता था उसके पास एक सुदृढ़ किला था उस किलेकी कृपासे उसका पराजय होना कठिन था इसलिये वह स्वच्छंद हो प्रतिदिन अनेक उपद्रव खड़े किया करता था यह देख राजा पद्मको उसकी ओरसे वड़ी चिंता रहने लगी राजाको इसप्रकार चिंतित देख मंत्री वलिने–जो कि राज्यकार्यमें वड़ा चतुर था सिंहबलके पकड़नेके लिये एक उपाय बताया उपाय बहुत अच्छा और सीधा था उससे राजाने शीघ्र ही विद्रोहीको अपने वश करलिया और बलिकी बड़ी प्रशंसा की एवं प्रसन्न हो उसै इच्छित वर मांगनेके लिये वाध्य किया । वली वड़ा चालाक था इसलिये उसने राजाको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर कहा "प्रभो ! आपकी

कृपासे मुझे इससमय किसी भी पदार्थकी आवश्यकता नहीं जब किसी प्रकारकी आवश्यकता पड़ेगी तब आपसे कहूंगा आप मेरे इस वरको धरोहरस्वरूप रखिये" वलिकी यह प्रार्थना सुन राजा अति प्रसन्न हुआ और उनको तबसे सम्मानकी दृष्टिसे देखने लगा जिससे कि वे चारो जने राजाके मुहलग मंत्री बनगये ॥ १७–१८ ॥ कदाचित जहां तहां विहार करते करते वे ही अकंपनाचार्य अपने समस्त शिष्योंसे मंडित हो हस्तिनापुर आये उससमय चौमासा भी आगया था इसलिये वे सबके सब हस्तिनापुरके वनमेंही चारमासका योग धारण कर विराजमान होगये ॥ १९॥ बलि आदिको मुनियोंके आगमनका समाचार मिला उन्हैं बड़ा भय हुआ उज्जयिनीमें उपद्रव करनेसे जो अनिष्ट हुआ था उसकी शंका उन्हैं बुरीतरह सताने लगी इसलिये इस आपत्तिसे छूटनेके लिये वे बलवान उपाय सोचने लगे ॥ २० ॥ बहुत देरतक सोचनेकेबाद राजाने जो पहिले वर देना स्वीकार किया था बलिको उसकी याद आई वह तत्काल राजाके समीप आया और इसप्रकार विनय करने लगा—

" प्रभो ! पहिले जो आपने मुझे वरकेलिये कहा था आज मुझै उसकी आवश्यकता पड़गई है इसलिये कृपाकर उसके वदलेमें आप सात दिनका राज्य प्रदानकर अनुगृहीत करैं" । प्रतिज्ञानुसार राजा पद्मरथनें वलिकी यह प्रार्थना सुन उसै राज्य देदिया और आप राजमंदिरमें रहनेलगा राज्य पातेही राजा बलिने क्षमाशील मुनियों पर नाना उपसर्ग करने प्रारंभ करदिये ॥ २१–२२ ॥ जिस प्रदेशमें मुनिराज विराजे थे उसी प्रदेशके चारो ओर उस दुष्टने पत्ते, जूंठी पत्तलें, सरावे, भोलुये आदि कूडे कचडेका ढेर कर जलानेकी आज्ञादी कूडे कचडेके जलतेही दुर्गंधयुक्त धूम निकलना प्रारंभ हुआ उस धूमसे मुनियोंको अति बाधा होनेलगी॥ २३ ॥ परंतु विचारे मुनिगण शांतिपूर्वक 'जबतक यह उपसर्ग न टलजायगा तबतक हम आहार विहार न करैंगे' ऐसा दृढ़ निश्चय कर कायोत्सर्ग मुद्रा धारि उपसर्ग सहने लगे ॥ २४ ॥

उससमय मुनि विष्णुकुमारके अवधिज्ञानी गुरु मिथिलामें विराजमान थे उन्होंने अपने दिव्यज्ञानसे हस्तिनागपुरका समस्त वृत्तांत जानलिया और अचानकही दयासे प्रेरित हो "खेद ! इससमय अकंपन आदि सातसौ मुनियोंपर भयंकर उपसर्ग आकर पड़ा है" ऐसे वचन उनके मुखसे निकल पड़े ॥ २५–२६ ॥ उससमय उनके पास एक पुष्पदंत नामका क्षुल्लक बैठा था गुरुके मुखसे ऐसे दयार्द्र शब्द निकलते ही उसने पूछा " प्रभो ! उपसर्ग कहां होरहा है ? " गुरुने कहा–"हस्तिनापुरमें" । क्षुल्लकने पुनः विनयपूर्वक पूछा " प्रभो ! उसकी निवृत्तिका क्या उपाय है ? " गुरुने कहा–इससमय मुनि विष्णुकुमारको ऋद्धिकी प्राप्ति होगई है उनसे यह घोर उपसर्ग दूर किया जा सकता है । गुरुका यह उत्तर सुन क्षुल्लक मुनि विष्णुकुमारके पास आ-

या और गुरुद्वारा वतलाया गया समस्त समाचार उन्हैं आकर कह सुनाया । मुनि विष्णुकुमारको इस बातका पता भी न था कि उन्हैं विक्रिया लब्धि प्राप्त होगई है इसलिये पुष्पदंत क्षुल्लकके मुखसे अपनेको विक्रिया लब्धि प्राप्त हुई जान उन्होंने उसकी जांच की। परीक्षाकेलिये ज्योंही उन्होंने अपनी भुजा फैलाई त्योंही वह पर्वतकी दीवालोंको भेदती हुई जल आदिमें न रुकती हुई बहुत दूरतक चलीगई। जब मुनि विष्णुकुमारको विक्रिया ऋद्धिका पूर्ण निश्चय होगया तो वात्सल्यभावसे प्रेरित हो वे तत्काल राजा पद्मके पास आये राजाने देखतेही मुनिको नमस्कार किया और मुनि आशीर्वाद दे उसे इसप्रकार कहने लगे—

"पद्मराज! राज्य पातेही तुमने यह क्या घोर पाप करना प्रारंभ करदिया? अरे! कुरुवंशियोंसे तो इस पृथ्वीपर ऐसा दुष्कर्म कभी नहिं हुआ ॥ २७—३२ ॥ जब जब क्षमाशील मुनिराजोंपर दुष्ट मनुष्योंने उपसर्ग किया है तब तब कुरुवंशियोंने उपसर्ग दूरकर उनकी रक्षाकी है परंतु ऐसा कभी नहिं हुआ कि उल्टा जा उन्होंने मुनियोंपर उपसर्ग जमाया हो ॥ ३३ ॥ राजन्! प्रबलरूपसे जाज्वल्यमान अग्निकी शांति जलसे होती है परंतु यदि जलही उसै जलानेमें सहायता दे तो वतलाओ फिर उसकी शांति किससे होगी? इसीप्रकार प्रजाके दुःखोंका निवारक राजा है और वही यदि दुःख देने लगजायगा तो अनाथ प्रजाका कौन रक्षक होगा? ॥ ३४ ॥ आज्ञाका फल ऐश्वर्य है और दुष्टोंका शासन करना आज्ञा है यदि ये दोनोंही बातें ईश्वरमें न हों तो उसै ईश्वर न समझकर स्थाणु (सूखा ठूंठ) समझना चाहिये (कोषोंमेंभी ईश्वरका दूसरा पर्याय स्थाणु वतलाया है) ॥ ३५ ॥ इसलिये पशुके तुल्य वलिको शीघ्रही इस दुष्कर्मसे रोको अरे! ये विचारे मुनि परमक्षमाके धारक हैं शत्रु और मित्रोंको एकसा मानते हैं इन विचारोंपर क्यों द्वेष? ॥ ३६ ॥ याद रक्खो क्षमाशील इन साधुओंको संताप देनेसे कदापि शांति नहिं मिल सकती क्योंकि शीतलभी जल जिसप्रकार गरम करनेसे विकृत होजाता है और स्पर्श करतेही वह जलादेता है उसीप्रकार यद्यपि ये साधु परम शांत हैं इनकी शक्ति छिपी हुई है परमशक्तिके धारक हैं शरीरको वश किये रहते हैं परंतु यदि इन्हैं क्रोध आगया तो समझलो अग्निके समान जलाकर खाकही करदेंगे ॥ ३७—३८ ॥ इसलिये राजन्! तुम्हारे लिये यही उपदेश है जबतक वलि आदिका नाश न हो उसके पहिलेही तुम उसै रोक दो उसकी उपेक्षा न करो इससमय विलंब करनेका काम नहीं है" ॥ ३९ ॥ मुनिराज विष्णुकुमारके ऐसे वचन सुन नम्रतापूर्वक राजा पद्मने कहा—

"प्रभो! मैंने सातदिनका राज्य वलिको देदिया है इससमय मेरा कुछभी अधिकार नहिं चलसकता आपही उसके पास जायें और उसे राहपर लायें आप परम चतुर हैं

नियमसे वह आपके वचन मानेगा,, । बस फिर क्या था? मुनिराजने यह सुन तत्काल वामनका स्वरूप धारण किया और राजसभामें जाकर इसप्रकार कहना प्रारंभ किया—

"राजन! इस थोड़ेसे जीवनकेलिये तुम यह क्या अधर्मका संचय और दुष्कर्म कर रहे हो? ॥ ४०-४२ ॥ इन साधुओंका केवल तप करना काम है इन्होंने तुम्हारा क्या अनिष्ट किया है? जिससे कि तुम महापुरुष होकर भी इनके साथ नीच पुरुषके समान बर्ताव कर रहे हो ॥ ४३ ॥ ये तपस्वी सदा कर्मबंधसे भय करते रहते हैं इनसे किसीका अनिष्ट नहीं हो सकता इनके मन वचन काय कभी अनिष्ट करनेकेलिये प्रवृत्त ही नहिं होसकते ॥ ४४ ॥ राजन्! जब ये ऐसे शांत हैं क्षमाशील हैं तो इनके साथ तुम्हारा यह निकृष्ट वर्ताव करना सर्वथा अयोग्य है अस्तु जो हुआ सो हुआ अब तुम इनकी शांतिकेलिये इस प्रमादजनित उपसर्गको दूर करो" ॥ ४५ ॥ बली बड़ा अहंकारी और दुष्ट था विष्णुकुमारके शांत उपदेशका उसपातकीके हृदयपर जराभी असर न हुआ इसलिये उसने मुनिराजसे उत्तरमें कहा—

"जबतक ये मुनि मेरे राज्यमें रहेंगे तबतक इनका यह उसर्ग दूर नहीं हो सकता यह योंका योंही बना रहैगा इसलिये! यदि ये यहांसे अन्यत्र कहीं चले जांय तो अच्छा है" ॥ ४६ ॥ विष्णुकुमारने फिर कहा—

"राजन्! ये समस्त मुनिराज इससमय ध्यानमें लीन होगये हैं इनकी यह कड़ी प्रतिज्ञा है जब तक यह उपसर्ग न टलेगा हम विचलित न होंगे इसलिये तुम इनकेलिये देशसे चलेजानेकी जो कहरहे हो सो ये एक पैरभी नहिं हटसकते तुम निश्चय समझो इन्हैं अपना शरीर त्यागना मंजूर है धर्मकी मर्यादा त्यागना स्वीकार नहीं ॥ ४७ ॥ अस्तु यदि तुम्हारी ऐसीही इच्छा है कि तुम अपने राज्यमें रहते हुये इनका उपसर्ग दूर नहीं करसकते तो कृपाकर मुझे इनकी रक्षार्थ तीन पैड़ जमीनही प्रदान करदो तुम्हैं अपनी आत्माको सर्वथा कठोर न बनाना चाहिये मैंने आजतक किसीसे भिक्षा नहिं मांगी है आज भिक्षा मांगने का यह पहिलाही मोका है आशा है इस बातको विचारकर तुम मेरी इच्छा सफल करोगे" ॥ ४८ ॥ बलीका चित्त कुछ पसीज गया मुनिराजके वचनोंसे उसने तीन पैंड जमीन तो देनी स्वीकार करली परंतु उसकी सर्वथा क्रूरता न गई उसने मुनिराजसे यह वायदा करालिया—"यदि ये लोग तीन पैंड जमीनसे एक पैंड भी बाहिर निकलगये तो ये अवश्य दंडित होंगे फिर मेरा कोई दोष नहीं ॥ ४९ ॥ क्योंकि जो मनुष्य जिसबातको स्वीकार करलेता है यदि वह उस बातसे टलजाय अथवा अपने वचनका पालक न हो सकै तो उसै अवश्य अनिष्टका सामना करना पड़ता है" ॥ ५० ॥ राजा बली बड़ा अविनयी कुटिल और दुश्शील था इसलिये मुनि विष्णुकुमारने उसै दुष्ट सर्पके समान वशकर और "पापिष्ठ! ले देख मैं तीन पैंडही जमीन लेता हूं अधिक

नहीं" ऐसा कह अपना शरीर विक्रिया ऋद्धिके प्रभावसे सूर्य आदि ज्योतिष विमानों तक विस्तीर्ण करदिया एक पैर मेरुपर्वतकी चोटीपर रक्खा दूसरा पैर मानुषोत्तर पर्वत पर जा जमाया तीसरे पैरको रहनेका कोई अवकाश न मिला तो वह आकाशमें घूमने लगा ॥ ५१–५३ ॥ उससमय मुनिराज विष्णुकुमारकी ऋद्धिके प्रभावसे समस्तलोकमें हलचल मचगई किंपुरुष आदि जातिके देव क्या हुआ ? क्या हुआ ? ऐसा प्रबल कोलाहल करने लगे ॥ ५४ ॥ वीन वांसरी आदि बाजोंके बजानेवाले और मनोहर गीत गानेवाले गंधर्व आदि देव अपनी स्त्रियों सहित मुनिराजके पास आकर मनोहर मनोहर गीत गानेलगे ॥ ५५ ॥ मुनिराज विष्णुकुमारका उससमय रक्ततलसे शोभित चरण समस्त आकाशमें घूम रहा था और उसके देदीप्यमान नख–भलेप्रकार गान करती हुई किन्नर आदि स्त्रियोंको अपने मुखकमल देखनेकेलिये सुंदर दर्पण सरीखे जान पड़ते थे ॥ ५६ ॥

उससमय देव विद्याधर, मनोहर वीणा बजानेवाले गंधर्व, सिद्धांतके रहस्योंके गाने वाले, चारण ऋद्धिके धारक मुनि आदि सब लोग एकत्र हुये और "प्रभो! अब इस पैरको संकोचिये संकोचिये आपके दुर्धरतपके प्रभावसे इससमय तीनोंलोक चल विचल होगया है" ॥ ५७ ॥ इत्यादि वचनोंसे मुनि विष्णुकुमारकी स्तुति करने लगे सबोंने बडी कठिनतासे मुनिराजको शांत कर पाया धीरे धीरे उन्होंने अपनी विक्रिया संकोची और उत्पात समयमें प्रचंड हो सूर्य जिसप्रकार पुनः जैसाका तैसा हो जाता है उसी-प्रकार मुनि विष्णुकुमार जैसे शांत थे वैसेके वैसे ही होगये ॥५८–५९॥ देवोंने तत्काल मुनियोंका उपसर्ग दूर करदिया और दुरात्मा बलिको कडी रीतिसे बांध अनेक तिर-स्कारपूर्वक देशसे वाहिर निकाल दिया ॥ ६० ॥ उससमय किन्नरदेव तीन वीणा लाये थे उनमें घोषा नामकी वीणा तो उत्तर श्रेणीमें रहनेवाले विद्याधरोंको दी महा-घोषा सिद्धकूटवासियोंको और सुघोषा दक्षिणतटवासी विद्याधरोंको दी ॥ ६१ ॥ इसतरह भलेप्रकार मुनियोंके उपसर्ग दूर करनेसे जिन शासनमें वात्सल्य भाव को प्रकट करनेवाले मुनि विष्णुकुमार वहांसे सीधे अपने गुरुके पास गये और वहांपर विक्रियाशल्यका सर्वथा परित्याग कर बहुत दिनतक घोर तप तपा तपके प्रभावसे समस्त घातिया कर्म नष्ट किये केवली पद पाया जीवोंके हितार्थ चिरकालतक पृथ्वीपर विहार किया और अंतमें अघातियाकर्मोंको भी मूलसे उखाडकर सिद्ध शिलापर जा विराजे ॥ ६२–६३ ॥

यह मुनिराज विष्णुकुमारका चरित्र सर्वथा पापोंका नाश करनेवाला है जो उत्तमपुरुष भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करते हैं उनके सम्यग्दर्शनकी शुद्धि होती है। ॥ ६४ ॥ साधुओंकी सामर्थ्य अचिंत्य है यदि वे चाहें तो बडी २ गुफाओंसे शोभित अचल भी मंदराचलको चलायमान कर सकते हैं यदि वे आकाशमें कुछ चेष्टा करें

तो सूर्य चंद्रमाको भी नीचे गिरा सकते हैं लहलहाते हुये समुद्रोंको भी तितर वितर कर सकते हैं और अंतमें समस्त कर्मोंका नाशकर अतिशय कठिन मोक्षको भी पा सकते हैं इसलिये जो महानुभाव जैनतपरूपी लक्ष्मीसे मडित योगी हैं संसारमें उनके लिये कोई काम कठिन नहीं ॥ ६५ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेन द्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें विष्णुकुमारका माहात्म्यवर्णन करनेवाला वीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ २० ॥

इक्कीसवां सर्ग।

यदुवंशियोंके शिरोमणि कुमार वसुदेव उत्तमोत्तम वातोंके सुननेके वड़े शौकीन थे वे स्वयं उदार चरित्रके धारक थे और अन्य मनुष्योंके उदार चरित्रको बहुत अच्छा मानते थे इसलिये जिससमय उन्होंने गंधर्वसेनाको विद्याधर कन्या जाना और राजाकी विभूतिको भी अतिक्रांत करनेवाली विभूतिसे मंडित सेठ चारुदत्तको देखा तो उन्हें उन दोनोंके वृत्तांत जाननेकी बड़ी इच्छा हुई वे सेठ चारुदत्तसे पूछने लगे—

"महानुभाव ! जिसकी तुलना संसारमें दूसरी संपत्तियोंसे नहिं की जासकती जिसके द्वारा आपके विशाल भाग्य और महान परिश्रमका पता लगता है ऐसी यह अनुपम संपत्ति आपने कैसे प्राप्तकी ? अतिशय प्रशंसाके योग्य नेत्रोंको आनंदामृत वर्षानेवाली यह विद्याधर कन्या कौन है ! और आपके घरमें कैसे रहती है ! कृपाकर मुझसे कहिये ॥ १-४ ॥ कुमारके ऐसे वचन सुन चारुदत्तको बडा आनंद हुआ उसने आदर पूर्वक कहा कि तुमने बहुत अच्छा पूछा लो मैं अपना वृत्तांत सुनाता हूं तुम ध्यानपूर्वक सुनो—

इसी चंपापुरीमें अतिशय धनाढ्य वैश्योंका सरदार एक भानुदत्त नामका सेठि रहता था उसकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था ॥५-६॥ वे दोनों दंपती परमसम्यग्दृष्टि और भलेप्रकार अणुव्रतोंके पालन करनेवाले थे यौवनलक्ष्मीसे मंडित थे और नाना सुखोंका अनुभव करते थे जिससे उनका काल आनंदसे कटता था ॥ ७ ॥ चिरकालतक रतिक्रीड़ा करते भी जब उनके कोई संतान न हुई—उन्होंने मन और नेत्रोंको आनंदामृत वर्षानेवाले गृहस्थीके साक्षात् फल स्वरूप उत्तम पुत्रका मुख न देखा तो वे अतिचिंतित रहने लगे। ॥८॥ कदाचित् वे दोनों सेठ सेठानी मंदिरमें भगवान जिनेंद्रकी पूजा कर रहे थे उसीसमय वहां एक चारण ऋद्धिके धारक मुनिराज आये दोनोंने भक्तिपूर्वक मुनिराजको नमस्कार किया एवं "पुत्र कब और कैसे होगा ! या होगा ही नहीं" ऐसा उनसे प्रश्न किया ॥ ९ ॥ मुनिराज परमदयालु थे दोनों दंपतीका प्रश्न सुनते ही उन्होंने कहा—

"आप लोग हताश न हों बहुत जल्दी ही तुम्हें एक अत्युत्तम पुत्रकी प्राप्ति होगी"

॥ १० ॥ थोड़े दिन बाद पिता माताको परम आनंद बढानेवाला मैं पुत्रहुवा मेरा नाम चारुदत्त रक्खा गया और मेरे जन्मका पूर्ण उत्सव मनाया गया मुझै अणुव्रतोंकी दीक्षासे दीक्षितकर समस्त कलाओंके पढ़ानेका प्रबंध किया गया जिससे कि शीघ्रही मैं उनमें पारंगत होगया इसलिये जिसप्रकार चंद्रमा जैसा २ बढ़ता जाता है वैसा वैसाही समुद्र बढ़ता जाता है उसीप्रकार जैसा जैसा मैं बढ़ता गया मेरे माता पिताका आल्हाद भी वैसाही वैसा बढ़ता चला गया ॥११-१२॥ वराह गोमुख हरिसिंह तमोंतक और मरूभूति ये पांच मेरे मित्र थे ये मुझे अतिशय प्रिय थे इसलिये सदा मैं इनके साथ क्रीड़ा करता रहता था ॥ १३ ॥ कदाचित् हम सबके सब रत्नमालिनी नदीके तटपर क्रीड़ार्थ गये और वहां हमें उसके पुलिनमें विपत्तिके सताये हुये किसी दंपतीके पैर दिखाई पड़े ॥ १४ ॥ पैरोंको देखकर हमारे मनमें इसबातकी शंका हुई कि दंपती विद्याधर होने चाहिये इसलिये उन पैरोंको देखते २ हम अगारी बढ़े कुछ दूर चलकर हरे हरे केलोंके स्तभोंसे बने हुये घरमें रतिक्रीड़ाकी सेज दीख पड़ी ॥ १५ ॥ उससमय रतिक्रीडा करनेसे सेजपरके पुष्प और पत्ते म्लान थे यह देखकर हमारा कुतूहल और भी बढ़ा जिससे थोडा आगे चलकर एक वन देखा उस वनमें एक वृक्षपर एक विद्याधर लटक रहा था किसी दुष्टने लोहकी कीलोंसे उसै कीलित कर रक्खा था उसकी बगलें तलवारोंकी नोंकोंसे लोह लुहान करदीं थी ॥ १६-१७ ॥ वहांपर चालन १ उत्कीलन २ और व्रणसंरोहण ३ नामकी तीन दिव्य औषधियां ढालके नीचे दवी हुई रक्खी थीं इशारा कर विद्याधरने उन्हैं मुझै वतलाया चालन औषधिके प्रभावसे मैंने विद्याधरको चलाया उत्कीलनसे छुटाया और व्रणसंरोहणसे उसके घाव अच्छे किये जब विद्याधर स्वस्थ होगया तो वह विना ही बोले चाले ढाल तलवार हाथमें ले उत्तरदिशाकी ओर धर उडा उसका वैरी विद्याधर उसी ओर उसकी स्त्रीको हरण किये लिये जाता था इसलिये रोनेकी आवाज सुन वह वहीं पहुचा और वैरीसे युद्ध करना प्रारंभ करदिया युद्धमें वैरीको हरा स्त्रीको छुटा लाया और फिर उसी स्थानपर वापिस आकर आदरपूर्वक मुझसे इसप्रकार कहने लगा--

"भद्र! मैं इससमय परवश मुर्दाके समान था तुमने स्वाधीनकर मुझे प्राण-दान दिये हैं इसलिये आज्ञा दीजिये मैं इस महान उपकारके बदलेमें आपका क्या प्रत्युपकार करूं! ॥१८-२१॥ प्रियवर! वैताढ्य पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक शिवमंदिर नामका नगर है उसका स्वामी राजा महेंद्रविक्रम है मैं उस महेंद्रविक्रमका पुत्र हूं मेरा नाम अमितगति है धूमसिंह और गौरमुंडनामके दो मेरे मित्र हैं॥ २२-२३ ॥ कदाचित् मैं अपने दोनों मित्रोंके साथ क्रीडार्थ ह्रीमंत पर्वतपर गया वहांपर एक हिरण्यरोम नामका तपस्वी रहता था उसके एक सुकुमारिका नामकी पुत्री थी सुकुमारिका पूर्ण यौवनश्रीसे मंडित शिरीष-

पुष्पके समान कोमलांगी थी उसने देखते २ मेरे हृदयको हरलिया जिससे कि मैं उसपर पूर्णमुग्ध होगया ॥ २४–२५ ॥ मैं घर तो लौट आया परंतु उसकी अभिलाषारूपी शल्य प्रतिसमय मेरे हृदयमें चुभती रही उड़ते २ यह बात मेरे पिताको भी मालूम पड़ी उन्होंने शीघ्र ही दूत भेज समस्त वृत्तांत तपस्वीसे कहलवाया और उससे मेरेलिये कन्याको मांगा प्रार्थना करनेपर तपस्वी कन्या देनेको राजी होगया जिससे कि शीघ्र ही बड़े ठाठ बाटसे मेरा और उसका विवाह होगया ॥ २६ ॥ मेरा मित्र धूमसिंह भी सुकुमारिका पर मोहित था। मुझै सदा आनंदके साथ अपनी स्त्रीके साथ विहार करता देख वह जला करता था। आज मैं इस नदीके पुलिनमें रतिक्रीड़ा कर रहा था अचानकही दुष्ट धूमसिंह भी यहां आ पहुंचा और मुझै कीलित कर मेरी प्यारी सुकुमारिकाको ले चलता बना धूमसिंह द्वारा कीलित हो मैं यहां वृक्षपर मुर्दाके समान लटक रहा था इतनेमें ही आपके दर्शन हुये और उस दुःखसे छुटकारा मिला। उस दुष्टद्वारा हरी गई इस सुकुमारिकाकी भी आपहीकी कृपासे रक्षा हुई अब आपको जिसवातकी अभिलाषा हो आज्ञा करैं यह सेवक उसै सहर्ष पालन करनेके लिये तयार है। यद्यपि मैं वयोवृद्ध हूं तथापि तुम मेरे प्राणदाता हो इसलिये तुम्हारी सेवा करनेकेलिये मैं सर्वथा योग्य हूं ॥ २७–२९ ॥ आपने जब मुझै कीलनेरूप एक शल्य मिटाकर जिलाया है तो कृपाकर इस आपके प्रत्युपकार करनेकी इच्छारूप द्वितीय शल्यको भी मिटाकर जिलाइये इतनेके लिये क्यों मुझै अधमरा छोड़ते हैं सचमुच मैं जबतक आपको इस उपकारका वदला न दे लूंगा तबतक जीवित नहीं कहा जा सकता" ॥३०॥ विद्याधरके ऐसे स्नेहभरे वचन सुन मैंने कहा—

"आपने मेरे प्रति कृतज्ञता प्रगटकर जो शुभभाव वतलाये–हितकामना की यही मेरा सब कुछ उपकार हुआ। आपही कहैं कृतज्ञतासे अधिक और उपकारीका क्या उपकार हो सकता है? संसारमें एक मनुष्यका दूसरेके साथ शुभभाव प्रकट करनाही परम उपकार है ॥ ३१–३२ ॥ आज मैं अपनेको पुण्यवान् बलवान् और पूज्य समझता हूं जो कि सामान्य मनुष्योंके लिये सर्वथा दुर्लभ यह आपके शुभदर्शन मुझे अचानक ही हो गये ॥३३॥ मनुष्योंकी अवस्था सदा पलटती रहती है कभी वह सुखरूप रहती है और कभी वह दुःखरूप इसलिये आप इस दुःखमयी अपनी अवस्थाकेलिये कुछ भी खेद न करें ॥ ३४ ॥ अथवा यदि आपकी यही अभिलाषा है कि मैं इसका अवश्य ही कोई न कोई प्रत्युपकार करूं तो मैं इसकेलिये आपसे यही प्रार्थना करता हूं कि आप सर्वदा मुझपर पुत्रका भाव रक्खैं।" जिससमय मैंने उसै पिता पुत्रका व्यवहार स्वीकार करनेकेलिये बाध्य किया तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ उसने उसै स्वीकार कर मेरा नाम धाम और गोत्र पूछा एवं प्रसन्नतापूर्वक मेरी अनुमति ले अपनी

स्त्रीके साथ आकाश मार्गसे चला गया ॥ ३५–३६ ॥ इसप्रकार विद्याधरके चलेजाने-पर हम सब मित्र परस्पर उसीकी कथा करते हुये चंपापुरी लोट आये और सुखपूर्वक रहने लगे सो ठीक ही है जो पदार्थ प्रथम ही प्रथम देखने सुनने और अनुभव करने-में आता है उससे मनुष्यका अधिक मनोरंजन होता है ॥ ३७ ॥ जब मैं पूर्ण युवा होगया तो मामा सर्वार्थकी स्त्री सुमित्रासे उत्पन्न कन्या मित्रवतीके साथ मेरा विवाह होगया ॥ ३८ ॥ मै शास्त्र पढ़ने पढ़ानेका बड़ा शौकीन था इसलिये स्त्रीके विषयमें मेरी जराभी रुचि न होती थी सो ठीक ही है शास्त्रका व्यसन अन्य समस्त व्यसनों का बाधक होता है ॥ ३९ ॥ मुझै स्त्रीसे बातचीत करता न देख मेरी माके चित्तमें अधिक चिंता हुई उससमय मेरा एक रुद्रदत्त नामका काका बड़ा व्यसनी था समस्त कामचेष्टाओंका भलेप्रकार जानकार था इसलिये मेरी माने उसै बुलाया और सन्मान कर सब बातैं समझा बुझाकर मुझै उंसै सौंप दिया ॥ ४० ॥ चंपापुरीमें ही उससमय एक वेश्याओंमें मुख्य कालिंगसेना नामकी वेश्या रहती थी और उसकी एक अतिशय मनोहर वसंतसेना नामकी पुत्री थी। वसंतसेना शोभामें साक्षात् वसंतलक्ष्मी सरीखी जान पड़ती थी नृत्य गीत आदि कला कौशलोंमें परमपंडिता थी सुंदरताकी सीमा और नवीन यौवनरूपी लक्ष्मीसे मंडित थी ॥ ४१–४२ ॥ कदाचित वेश्या वसंतसेनाका किसी नृत्यमंडपमें नृत्य हुआ काका रुद्रदत्तके साथ मैं भी वहां गया मंडपमें साहित्य आदि कलाओंमें पूर्ण निष्णात अनेक मनुष्य बैठे थे मैं भी उनके मध्यमें जाकर बैठ गया ॥ ४३ ॥ वसंतसेना उससमय सूचीनाटक (सुइयोंके अग्रभागपर नाचना) प्रारंभ करना चाहती थी उसके पहिले ही उसने विना खिले हुए जातिपुष्पोंको बखेर दिया और वे तत्काल गायनके प्रभावसे खिल गये। यह देख मंडपमें बैठे हुये लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। मुझे इसबातका पूर्णज्ञान था कि पुष्पोंके खिलनेसे कौनसा राग होता है इसलिये मैंने शीघ्र ही उसै मालाकार रागका इशारा कर दिया। वेश्याने अंगुष्ठका अभि-नय किया लोगोंने फिर उसकी प्रशंसा की और मैंने नखमंडलको साफ करनेवाले नापितरागका इशारा किया। जब वह गौ और मक्षिकाकी कुक्षिकाका अभिनय करने लगी तो और लोग तो पहिलेहीके भांति वेश्याकी प्रशंसा करने लगे और मैंने गोपाल रागका इशारा कर दिया ॥ ४४–४७ ॥ वेश्या वसंतसेना हाव भाव कलाओंमें पूर्ण पंडिता थी इसलिये जब उसने मेरा यह चातुर्य देखा तो वह बड़ी प्रसन्न हुई अंगु-लीकी आवाज कर मेरी प्रशंसा करने लगी ॥ ४८ ॥ और अनुरागवश समस्त लोगोंको छोड़ मेरे सामने आकर अतिमनोहर नाच नाचने लगी ॥ ४९ ॥ नृत्य समाप्त कर वेश्या वसंतसेना अपने घर चली गई परंतु मेरे उस चातुर्यसे उसके ऊपर कामदेवने अपना पूरा अधिकार जमा लिया था इसलिये वह घर जाते ही अपनी मासे बोली—

"मा! इस जन्ममें सिंवाय चारुदत्तके मेरी दूसरेके साथ संभोग करनेकी प्रतिज्ञा है इसलिये तू बहुत जल्दी मेरा और उसका मिलाप करानेका प्रयत्न कर" ॥ ५०-५१ ॥ पुत्रीकी यह प्रतिज्ञा सुन कलिंगसेनाने शीघ्र ही मेरे काका रुद्रदत्तको बुलाया और दान मान आदिसे पूर्ण सत्कारकर मेरे और वसंतसेनाके मिलापका समस्तभार उसके शिर मढ़दिया ॥ ५२ ॥ रुद्रदत्त इनवातोंमें बड़ा प्रवीण था उसने एकसमय मार्गमें जाते हुये मेरे आगे और पीछे दो मत्त हाथी निकाले जिससे कि घबड़ाकर काकाके साथ उसके कहनेसे मैं उसी वेश्याके घरमें चलागया ॥ ५३ ॥ कलिंगसेनाको पहिलेसे ही सब बात मालूम थी इसलिये वहां पहुंचते ही उसने हम दोनोंका बड़ाही स्वागत किया और आसन आदि देकर पूर्ण सत्कार करने लगी ॥ ५४ ॥ थोडे समयके बाद रुद्रदत्त और कलिंगसेनाका जूआ डटा कलिंगसेना बड़ी चालाक थी उसने काकाका डुपट्टा तक जीत लिया यह देख मुझै बड़ा क्रोध आया मैंने रुद्रदत्तको तो अलग हटाया और मैं स्वयं उसके साथ जूआ खेलने बैठ गया ॥ ५५ ॥ कलिंगसेनाको मेरे साथ जूआ खेलते देख वसंतसेनासे न रहागया वह भी अपनी माको अलग हटा मेरे सामने बैठकर जूआ खेलने लगी ॥ ५६ ॥ मैं जूआ खेलनेमें सर्वथा लीन होगया मेरी सब सुधिबुधि किनारा करगई थोड़ी देरके बाद मुझै बड़े जोरसे प्यास लगी मुझे प्याससे पीडित जान वसंतसेनाने मोहनीचूर्ण डाल अतिशय सुगंधित शीतल जल पिलाया। अब वसंतसेनापर मेरा पूर्ण विश्वास होगया धीरे २ मेरा अनुराग भी उसपर प्रबल रीतिसे बढ़नेलगा जब कलिंगसेनाने हम दोनोंको आपसमें पूर्ण अनुरक्त देखा तो वह शीघ्रही हमारे पास आई और मेरे हाथमें अपनी पुत्री वसंतसेनाका हाथ गहा चलीगई। ॥ ५७-५८ ॥ मैं विषयोंमें इतना आसक्त होगया कि बारह वर्षतक वसंतसेनाके घरमें ही रहा अन्य कार्योंकी तो क्या बात? अपने पूज्य माता पिता और अपनी प्यारी धर्मपत्नी मित्रवती तकको भी भूलगया ॥ ५९ ॥ उससमय तरुणी वसंतसेनाकी सेवासे अनेक दोषोंने मुझै अपना लिया था इसलिये दुर्जन जिसप्रकार सज्जनोंको दवा देते हैं उसीप्रकार विद्या और वयोवृद्ध मनुष्योंकी सेवासे उपार्जन किये हुये मेरे अनेक उत्तमोत्तम गुणोंको आकर दोषोंने सर्वथा दवा दिया था ॥ ६० ॥ मेरा पिता सोलह करोड़ दीनारोंका अधिपति था धीरे २ वे सोलहोही करोड़ दीनार वेश्याके घर आगई जब समस्त धन समाप्त होचुका तो मेरी प्यारी स्त्री मित्रवतीका गहना भी आना शुरू हुआ। भूषण देखतेही कलिंगसेनाको मेरे घरके खोखेपनेकी जांच होगई उस दुष्टिनीने मेरे छोड़नेका पक्का निश्चय करलिया एकदिन अवसर पाकर वह एकांतमें वसंतसेनाके पास आई और इसप्रकार कहने लगी—

"प्यारी पुत्री! मैं तुझै हितकारी वचन कहती हूं तू ध्यानपूर्वक सुन क्योंकि जो मनुष्य

अपने गुरुओंके उपदेश वाक्यरूपी मंत्रका अभ्यास करता है उसै कभी भी अनर्थोंका सामना नहिं करना पडता ॥ ६१–६३ ॥ तू जानती है ! संसारमें हमारी आजीविका सबसे नीच है वेश्यावृत्तिसे अधिक निंद्य कर्म कोई नहीं इसलिये हमैं यही योग्य है कि जबतक पुरुष धनी रहे तभीतक उससे प्रेमकर काम लें पश्चात् पीतसार–निर्धन होनेपर पीतसार–चूसे गये ईखके गन्नेके समान उसे छोड़ दें ॥ ६४ ॥ आज, चारुदत्तकी स्त्री मित्रवतीके आभरण मेरे पास आये थे उन्हैं देखते ही मुझै दया आ गई इसलिये मैंने ज्योंके त्यों उन्हैं वापिस लौटा दिया। अब यह चारुदत्त पीतसार–निर्धन हो चुका है तू इसै छोड़दे रसपूर्ण ईखके समान किसी अन्य रसपूर्ण–धनवान पुरुषके साथ भोगकर" ॥ ६५–६६ ॥ माता कलिंगसेनाकी ऐसी बात सुन वसंतसेनाके कर्णपर वज्रका सा आघात हुआ उसने उसीसमय माताको उत्तर दिया—

"मा ! तूने यह क्या कहा ? अरे यह चारुदत्त कुमार अवस्थासे ही मेरा पति है चिरकालसे मैंने इसके साथ भोग विलास किंया है मैं इसै कदापि नहिं छोड़ सकती यदि इससे अन्य मनुष्य कुवेरके समान भी ईश्वर हो तो भी वह मेरे कामका नहीं ॥६७–६८॥ यदि ये मेरे प्राण भी चाहें कि हम चारुदत्तके वियोगमें रहेंगे संयोगमें नहीं तो ये खुशीसे चले जांय मुझै इनसे भी कोई काम नहीं। मा ! यदि तू मेरा जीना अच्छा समझती है तो ऐसे वचन अब फिर मत कहना ॥ ६९ ॥ हाय ! जिसके घरसे आई हुई करोडों दीनारोंसे तेरा घर भरगया उसी महापुरुषके छोड़नेकी तेरी इच्छा होगई ठीक है स्त्रियां बड़ी कृतघ्नी और दुष्ट होतीं हैं ॥ ७० ॥ अरी ! यह चारुदत्त अनेक कलाओंमें पारंगत है-परम सुंदर है उत्तम धर्मका परमोपदेष्टा है महा उदार है भला इसका मैं कैसे त्याग कर सकती हूं ?" ॥ ७१ ॥ इसप्रकार पुत्रीको मुझमें अति आसक्त जान उससमय तो कलिंगसेनाने कुछ भी उत्तर न दिया उसीकी हांमें हां मिला दी परंतु मन ही मन हम दोनोंको वियुक्त करनेका वह गहरा विचार करने लगी ॥ ७२ ॥ आसनपर सोनेके समय स्नान और भोजनके समय हम दोनों सदा एक साथ रहा करते थे कदाचित् रात्रिमें हम दोनोंको बड़े जावितेसे सुला दिया जब हम गहरी नींदमें सो गये तो उस दुष्टिनीने मुझै उठा घरसे निकाल बाहिर किया ॥ ७३ ॥ जब मेरी नींद खुली होश आया तो मैं वेश्याके घर न जाकर सीधा घर आया मेरे पिता मुनि होगये थे इसलिये मेरी मा और स्त्री वड़ी दुःखित थीं मुझे देखते ही उनके गले भर आये और वे विलख विलख कर रोने लगीं ॥ ७४ ॥ मैंने उन्हैं आश्वासन दिया–धीरज बंधाया और अपनी स्त्रीके आभरण ले व्यापार करनेकेलिये अपने मामाके साथ उशीरावर्त देशकी ओर चल दिया ॥ ७५ ॥ उशीरावर्तमें पहुंचते ही मैंने कपास खरीदा और उसे ताम्रलिप्त नगरकी ओर वेचनेके लिये ले चला उससमय मेरा दैव

और काल सर्वथा प्रतिकूल था इसलिये वह मार्गमें ही वनाग्निसे जलकर खाक होगया ॥ ७६ ॥ मामाको तो मैंने वहीं छोड़ा और अकेलाही घोड़ापर सवार हो मैं पूर्वदिशाकी ओर चला दुर्दैवसे मेरा घोड़ा भी मेरा साथ छोड़ चलवसा इसलिये मार्गमें अनेक दुःख भोगता भोगता मैं प्रियंगु नगर तक पैदल ही आया ॥ ७७ ॥ उससमय प्रियंगु नगरमें मेरे पिताका परम मित्र एक सुरेंद्रदत्त नामका सेठ रहता था उसने मुझे देख आदरपूर्वक अपने घर ठहराया इसलिये वहांपर कई दिन तक मैंने सुखपूर्वक विश्राम किया ॥ ७८ ॥ वहांसे मैंने समुद्रयात्रा करनी प्रारंभ की छै वार तो मेरी समुद्र यात्रा सफल हुई किंतु ज्यों ही मैं सातवीं वार जहाज लादकर चला वीच समुद्रमें पहुंचते ही जहाज फट गया और जो मैंने आठ करोड़ धन कमाया था वह तमाम उसके फटते ही समुद्रमें डूबकर नष्ट हो गया ॥ ७९ ॥ भाग्यवश मेरे हाथ एक जहाजका तख्ता पड़ गया बड़ी कठिनतासे मैं उसके सहारे पार पर आया और वहां मुझे एक साधुसे भैंट होगई ॥ ८० ॥ उस साधुका वेश बड़ा शांत जान पड़ता था उसने मुझे नाना तरहसे आश्वासन दिया और जब मेरी थकावट दूर होगई तो कुछ समय के वाद रसायनका लोभ देकर वह मुझे एक गहन वनमें लेगया ॥ ८१ ॥ मैं भोला भाला था उस दुष्ट साधुकी कुटिलताको कुछ भी न जानता था इसलिये उसके कहनेसे वहां रस्सीके सहारे एक कुएमें उतर पड़ा। कुएमें एक वड़ा भयंकर बिल था रसकी तृष्णासे ज्योंही उसमें घुस रस लेने लगा त्योंही एक मनुष्यने जो वहां पहिलेसे ही पड़ा २ दुःख पारहा था रोक कर कहा—

" भद्र ! यदि तुम जीना चाहते हो तो इस दुष्ट रसका स्पर्शतक मतकरो यह रस क्षयरोगकी तरह है इसके स्पर्श करते ही धीरे धीरे शरीर सूकने लगता है और अंतमें प्राण लेकरही छोड़ता है" ॥ ८२-८४ ॥ उसके ऐसे वचन सुनतेही मैं एकदम चौंक पड़ा मैंने उसीसमय उससे पूछा—" भाई तुम कौन हो ! किस दुष्टने तुम्हैं यहां लाकर पटकदिया है ? कृपया अपना सब वृत्तांत कहो" उस मनुष्यने कहा—

" मित्र ! मैं उज्जयिनीका रहनेवाला एक वणिक हूं मैं व्यापारार्थ आया था अचानकही समुद्रमें मेरा जहाज फटगया वड़ी कठिनतासे मैं पार लगा पारपर आते ही मेरी एक दुष्ट साधुसे मुलाकात होगई वह दुष्ट मुझे रसायनका लोभ देकर यहां ले आया मैंने एक घड़ा भरके रसतो उसे दे दिया ज्योंही उसने दूसरीवार रस्सा डाला त्योंही मै उसे पकड़ चढ़ने लगा और जब मैं अधवारपर जा पहुंचा तो "यह रसमें वटवारा करैगा" ऐसा विचार उसने रस्सा काट दिया वह दुष्ट तो रस लेकर चलागया और मुझे यहां रसरूपी राक्षसके वक्षःस्थलमें फंसा गया ॥ ८५-८६ ॥ मित्र ! देखो इस रसरूपी राक्षससे खाते खाते यह मेरा चरम और अस्थिमात्र भाग वांकी रहगया है

अब यदि मैं मरूं तो वेशक वाहिर निकलूं जीतेजी इससे निकलना तो सर्वथा असंभव है" ॥ ८७ ॥ कूपवर्त्ती पुरुषने इसप्रकार अपना समस्त वृत्तांत सुनाकर मुझसे भी पूछा मित्र तुम कौन हो ! मैंने कहा—मैं चारुदत्त नामका वणिक हूं दुष्ट तापसने मुझे भी लाकर यहां डालदिया है यदि कोई भोलाभाला पुरुष किसी दुरात्मा बगलाके समान ढोंगी पुरुषकी चापलूसीमें आ यदि उसका विश्वास करले और उसके कथनानुसार चलकर नीचा देखे अनेक कष्ट भोगे तो इसमें आश्चर्यही क्या है" ॥ ८८–८९ ॥ इसके बाद मैंने एकघड़ा रसका भरकर रस्सीसे बांध दिया और रस्सी हिलादी दुष्ट तापसने उस घड़ेको खींच लिया दूसरीवार उसने मुझे निकालनेकेलिये जो रस्सा फांसा तो कूपवर्ती मनुष्यके कथनानुसार मैंने उससे एक बोझदार पत्थर बांधदिया जिससमय पत्थर अधवारपर पहुंचा साधुने रस्सा काटदिया पत्थर नीचे गिरा और वह दुष्ट रसका घड़ा ले चलता बना ॥ ९० ॥ कुएकी खोहमें बैठे २ मुझे बहुत समय बीत गया जब कोई मार्ग बाहिर निकलनेका न सूझा तो मैंने कूपवर्ती मनुष्यसे निकलनेका उपाय पूछा वह पुरुष बड़ा सज्जन और दयालु था उसने कहा—"यहांपर एक गोह (गोधा) प्रतिदिन रस पीनेकेलिये आती है यदि तुम उसकी पूंछ पकड़ लोगे तो नियमसे जल्दी बाहिर निकल जाओगे बाहिर निकलनेका यही एक उपाय है दूसरा कोई नहीं" ॥९१–९२॥ उस मनुष्यके प्राण कंठगत होचुके थे थोड़ीही देरमें मरनेवाला था मैंने उसे जैनधर्मका श्रद्धान कराया और स्पष्टतया पंच नमस्कार मंत्रका उच्चारण किया ॥९३॥ दूसरे दिन गोह रस पीनेकेलिये आई और ज्योंही वापिस जानेलगी मैंने भुजाओं से उसकी पूंछ जकड़कर पकड़ली जिससे कि उसके सहारे मैं वाहिर निकल आया निकलते समय कुएकी दीवालके घिस्सोंसे मेरा समस्त शरीर छिलगया था इसलिये बाहिर निकलते ही मैं मूर्छित होगया थोड़ीदेर बाद जो होश आया तो मुझे अपना नवीन जन्म सा मालूम होनेलगा ॥९४–९५॥ मैं कूएके तटसे उठकर धीरे २ चला चलते २ जिससमय वीच वनमें पहुंचा यमराजके समान एक भैंसाने मेरा पीछा किया मैं मारे भयके एक गुफामें घुस गया वहांपर एक विशाल अजगर सो रहा था अंधेरेमें मेरा पैर पड़ते ही वह उठ खड़ा हुआ मेरे पीछे वेगसे भैंसा दौड़ता आरहा था अजगरने उसे अपना वैरी समझा और पकड़कर निगल गया निगलनेके पहिले भैंसा और अजगरका घोर युद्ध हुआ था इसलिये मुझे निकलनेका अवसर मिल गया और मैं धीरेसे उनके पीछे होकर गुफासे निकल आया ॥९६–९८॥ धीरे धीरे मैंने महावनका मार्ग तय किया और उसके पासके एक गांवमें जा पहुंचा काकतालीय न्यायसे (अचानकही) वहां मेरे काका रुद्रदत्तसे मेरी भेट होगई रास्ता चलते चलते भूख प्याससे मैं अधिक घबड़ा गया था मेरे काकाने मुझे खिलाया पिलाया और आश्वासन देते हुये इसप्रकार कहा—

"चारुदत्त! तू किसी भी प्रकारका विषाद मत कर भाग्यवश जो हुआ सो हुआ अब चलो अपन दोनों सुवर्णद्वीप चलें वहांसे बहुतसा धन कमाकर लावेंगे और चंपापुरी पहुंचकर अपने कुल संतानकी रक्षा करेंगे" ॥ ९९-१०१ ॥ मेरी समझमें काकाकी सलाह आगई मैं उसके साथ होलिया चलते चलते ऐरावती नदीको पार किया उसके वाद हम दोनों गिरिकूट नामक पर्वत और वेत्रवन नामक वनको उलंघते हुये टंकण देशमें जा दाखिल हुये। आगे जानेके लिये मार्ग विलकुल संकुचित था घोडा आदि सवारी जा नहीं सकती थी इसलिये तेजगतिसे चलनेवाले दो वकरे खरीदे और हम दोनों उनपर सवार हो धीरे धीरे उस विषम भयंकर मार्गको तयकरने लगे जब हमने उस मार्गको तय करलिया और ठीक ठिकाने पहुंच गये तो रुद्रदत्तने बडे आदरसे मुझसे कहा—

"यहांसे सुवर्णद्वीपके जानेका मार्ग नहीं हैं इसलिये आओ इन वकरोंको मारकर उनके चर्मके भीतर छिपजांय यहांपर बडी २ चोंचोंके धारक भेरुंड पक्षी आते हैं मांसके लोभसे वे हमें उठा लेजांयगे और सुवर्णद्वीपमें जा पटकेंगे" मैंने वकरा मारनेकेलिये विलकुल सलाह न दी परंतु रुद्रदत्त प्रकृतिका बडा रौद्र निर्दयी था भला वह कब माननेवाला था उसने मेरे निषेध करते २ ही अपना वकरा मारडाला और उसके वाद मेरे वकरे को भी पास आ मारने लगा यह देख मुझे वडी दया आई इसलिये मैंने उसै प्राण निकलनेके पहिलेही पंच नमस्कार मंत्र सुना दिया ॥ १०२-१०७ ॥ इसतरह मारेगये दोनों बकरोंके चर्मको सिलाईकर रुद्रदत्तने दो भस्त्रायें (धोंकनी) तयारकीं उनमेंसे एकमें तो मुझे हाथमें एक छुरी देकर बिठा दिया और दूसरीमें हाथमें छुरी लेकर स्वयं बैठगया ॥ १०८ ॥ कुछ देरके वाद भेरुंड पक्षी आये और अपनी लंबी २ चोंचोंसे हम दोनोंकी भस्त्राओंको आकाशमार्गमें उडा लेगये रुद्रदत्तकी भस्त्राको तो कहीं दूसरी जगह जा पटका और मेरी भस्त्रा एक काने भेरुंडने उठाई थी सो वह उसने दूसरी जगह जाकर पटकी ॥ १०९ ॥ ज्योंही वह पक्षी जमीनपर रख उस भस्त्राको खानेलगा त्योंही मैं छुरीसे फाडकर उस (भस्त्रा) से बाहर निकल आया जिससे कि वहां मुझे शोभामें स्वर्गके समान रत्नोंकी किरणोंसे देदीप्यमान एक विशाल द्वीप दीख पड़ा और इधर उधर दिशाओंकी ओर निहारते निहारते पर्वतकी शिखरपर एक जिनालय भी दीखा पवनके वेगसे उसपर जो ध्वजायें फैरहा रहीं थी उनसे वह ऐसा जान पडता था मानो यह नृत्यही कर रहा है। समीपमें ही वहां चारण ऋद्धिके धारक एक मुनिराज तापन योगसे विराजमान थे उन्हें देखतेही मुझे इतना सुख हुआ कि अपने समस्त जीवनमें शायद ही मैंने वैसे सुखका कभी अनुभव किया हो ॥ ११०-१११ ॥ इसके वाद मैं सहर्ष पर्वतपर चढ़ा जिनालयके पास जाकर उसकी तीन प्रदक्षिणा दीं और अति-

शय मनोज्ञ कृत्रिम जिनेंद्रभगवानकी प्रतिमाओंको भलेप्रकार नमस्कार किया। मुनिराज उससमय ध्यानारूढ़ थे मन वचन कायसे भक्तिपूर्वक उन्हैं नमस्कारकर मैं उनके पास बैठ गया जब मुनिराज अपना योग समाप्त करचुके तो मुझे शुभ आशीर्वाद दे इसप्रकार बोले—

"चारुदत्त! कुशलसे तो हो? यहां तक लानेमें तुम्हारा कोई सहायक तो दीख नहिं पडता फिर तुम्हारा स्वप्नके समान यहां आगमन कैसा?" ॥११२-११४॥ मुनिराज के मुखसे अपना नाम सुन मुझे बडा आश्चर्य हुआ इसलिये मैंने कहा—"नाथ! आपके प्रसादसे मैं सकुशल हूं परंतु यह कहिये कि आप मुझे कैसे पहचानते हैं? मैं तो परम-पूज्य आपके इस पवित्र दर्शनको प्रथम दर्शन समझता हूं ॥११५-११७॥ मुनिराजने उत्तर दिया—

मैं वही अमितगतिनामका विद्याधर हूं जिसको कि एकसमय चंपापुरीमें वैरीने कील दिया था और उसकी तुमने रक्षाकी थी ॥११८॥ तुम्हारे यहांसे आनेके थोडेही दिनबाद मेरे पिताको वैराग्य होगया मैं परम सम्यग्दृष्टि सच्चरित्र था मेरे पिताने मुझे राज्य सोंप दिया और आप हिरण्यकुंभनामक गुरुके चरणकमलोंमें दिगंबर दीक्षासे दीक्षित होगये ॥ ११९ ॥ मेरी विजयसेना और मनोरमा नामकी दो पटरानियां थीं विजयसेनाके गंधर्वसेना नामकी पुत्री हुई और मनोरमाके बड़ा पुत्र सिंहयश और छोटा पुत्र वराहग्रीव नामक हुआ ये दोनों पुत्र विनय आदि गुणोंके मंदिर हैं ॥१२० १२१॥ एकदिन मुझे भी संसारसे उदासीनता होगई मैंने बडेपुत्रको तो राज सोंपदिया और छोटेको युवराज बना महामुनि अपने पिताके पास जाकर दिगंबर दीक्षा धारण करली ॥ १२२ ॥ चारुदत्त! इस द्वीपका नाम कुंभकटक है इसके चौतर्फा संमुद्र है और यह कर्कोटक नामका विशाल पर्वत है इसलिये अब तुम बताओ तुम यहां कैसे आये?" ॥ १२३ ॥ मुनिराजके इसप्रकार पूछनेपर मैंने जो अपनी सुख दुःखसे मिली हुई कथा थी धीरे धीरे सब कह डाली ॥ १२४ ॥ उसीसमय दो विद्याधर आकाश-मार्गसे आये वे दोनों मुनिराज अमितगतिके सिंहयश और वराहग्रीव पुत्र थे देखनेमें परमसुंदर और सच्चरित्र जान पड़ते थे दोनोंने आकर मुनिराजको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ॥ १२५-१२६ ॥ कुमारोंके देखतेही मुनिराजने कहा—

कुमारो! यही तुम्हारा भाई चारुदत्त है जिसका कि एकदिन मैंने तुम्हैं वृत्तांत सुनाया था। मुनिराजके ये वचन सुनतेही दोनों कुमार मुझसे बड़े आदरसे मिले और मेरे साथ प्रेमयुक्त वार्तालाप करते हुये मुनिराजके पास बैठगये ॥ १२७ ॥ उसीसमय विमानसे दो देव उतरे प्रथम उन्होंने मुझे और पश्चात् मुनिराजको नमस्कार किया और आकर मेरे सामने बैठगये ॥ १२८ ॥ देवोंको चाहिये था कि वे प्रथम मुनिराजको और पीछे मुझे नमस्कार करते वैसा न कर उन्होंने क्रमभंग किया इसलिये

विद्याधरोंने उनसे पूछा–देवो! मुनिराजको प्रथम नमस्कार न कर आपने श्रावक चारुदत्तको जो पहिले नमस्कार किया उसका क्या अभिप्राय है? देवोंने कहा–यह चारुदत्त जिनधर्मका उपदेश देनेवाला हमारा साक्षात् गुरु है इसलिये हमने पहिले इसै नमस्कार किया है देवोंकी यह विचित्र बात सुन विद्याधरोंने फिर पूछा–

"यह बात कैसे?" यह सुन उनमेंसे एकदेवने (जो पहिले वकरा था और पश्चात् देव हुआ उसने) कहा–विद्याधरो! मैं अपनी समस्त कथा सुनाता हूं तुम ध्यान पर्वक सुनो–

किसीसमय बनारसमें पुराणवेद और व्याकरणोंके रहस्योंका भलेप्रकार जानकार एक सोमशर्मा नामका ब्राह्मण रहता था उसकी स्त्रीका नाम सौमिल्ला था ॥ १२९–१३१ ॥ ब्राह्मण सोमशर्माके सौमिल्लासे उत्पन्न भद्रा और सुलसा नामकी दो कन्यायें थीं ये दोनोंही कन्यायें पूर्णयौवनसे मंडित थी और वेद व्याकरण आदि शास्त्रोंमें पूर्ण पंडिता थीं ॥ १३२ ॥ कदाचित कन्याओंको संसारसे उदासीनता होगई दोनोंने परिव्राजकका बेष धारण करलिया और अपने शास्त्रकौशलसे समस्त वादियोंका विजयकरने लगीं विवादमें नाना पंडितोंको जीतनेसे पृथ्वीपर इनकी अतिशय प्रसिद्धि होगई ॥१३३॥ उसीसमय एक याज्ञवल्क्य नामका परिव्राजक भी समस्त पृथ्वीपर वादकी इच्छासे घूमता फिरता था उसको भी उन दोनों कन्याओंके अद्वितीय पांडित्यका पता लगा और वह इनके विजय करनेकी अभिलाषासे बनारस आया ॥ १३४ ॥ सभामें उनका शास्त्रार्थ होना प्रारंभ हुआ बडे अहंकारसे कन्या सुलसाने यह प्रतिज्ञाकी जो मुझे शास्त्रार्थमें जीतलेगा मैं उसीकी सेविका (स्त्री) बन जाऊंगी ॥ १३५ ॥ विद्वानोंके समक्षमें सुलसाने अपना पूर्वपक्ष किया याज्ञवल्क्यनें उसै दूषित कर अपने पक्षकी पुष्टि की ॥ १३६ ॥ बस ! सुलसा पराजित होगई उसने प्रतिज्ञानुसार याज्ञवल्क्यके साथ अपना विवाह करलिया याज्ञवल्क्य विषयरूपी मांसका बडा लोलुपी था वह कामके वश हो सुलसाके साथ मनमाना रमण करने लगा॥ १३७॥ बहुत दिन रमण करते २ उन दोनों के (सुलसा और याज्ञवल्क्यके) एक पुत्र हुआ वे दोनों परम निर्दयी थे बालकको अश्वस्थ (पीपल) वृक्षके मूलमें डालकर चले आये ॥ १३८ ॥ पीपलके नीचे पडाहुआ वह बालक सुलसाकी बड़ी वहिन भद्राकी नजर पड़ा भद्रा उसै अपनी छोटी वहिन सुलसाका बालक जान उठालाई और पीपलके नीचे पडा मिला था इसलिये पिप्पलाद नाम रखकर उसका भलेप्रकार भरण पोषण करनेलगी॥ १३९ ॥ जब पिप्पलाद समस्त शास्त्रोंमें पारंगत विद्वान होगया तो उसने एकदिन भद्रासे पूछा-मा! मेरे पिताका नाम क्या है? वह इससमय जीता है या नहीं? भद्राने कहा—

"पुत्र! तेरे पिताका नाम याज्ञवल्क्य है मेरी छोटी वहिन सुलसाको उसने वादमें जीतलिया था इसलिये उन दोनोंका आपसमें विवाह होगया सुलसाके तू पुत्र हुआ

इसलिये तेरी मा सुलसा है ॥ १४०-१४१ ॥ पुत्र ! जब तू उत्पन्न हुआ था उससमय तेरी रक्षाका कुछ भी उपाय न कर परम निर्दयी वे दोनों तुझे पीपलके वृक्षके नीचे डाल आये थे वे पापी अब भी इस संसारमें जीवित-मोजूद हैं ॥ १४२ ॥ मेरे कोई संतान न थी इसलिये बड़ी कठिनतासे मैंने दूसरी स्त्रियोंका दूध पिला २ कर तुझे पाला और बढ़ाया है तेरे माता पिता तो परमकामी हैं उन्होंने तेरी कुछ भी चिंता न की सर्सें उनका दोष न समझकर पूर्वकृत कर्मोंका ही दोष समझना चाहिये" ॥ १४३ ॥ मौसीके ऐसे वचन सुन पिप्पलादके हृदयपर वडी चोट लगी उसके कान खडे होगये और बड़ा क्रोध आया ॥१४४॥ वह तत्काल अपने पिताके पास गया एवं वादमें उन्हें परास्त कर मिथ्याविनयसे मंडित हो उनकी सेवा-शुश्रूषा करने लगा ॥ १४५॥ पिप्पलादने पिता माताकी सेवा तो की परंतु उन्हें अपने बनाये हुये नवीन धर्मपर चलाया और इसतरह कुछ दिनके बाद उसका शरीरांत होगया ॥ १४६ ॥ उसी पिप्पलादका मैं वाग्वलिनामका शिष्य था जड़मति होकर मैंने उसके सिद्धांतोंका खूब समर्थन और प्रचार किया उसघोर पापके वशसे मरकर जहांपर अनंत वेदनाओंको सहन करना पड़ता है ऐसे नरकमें उत्पन्न हुआ ॥ १४७ ॥ बडी कठिनतासे नरकसे निकल मैं छहवार वकरा हुआ और जिस यज्ञका आविष्कार पर्वतने किया था उसी यज्ञमें यज्ञप्रेमियोंने छैओवार हवनकर मार डाला सातवीं वार भी भांति २ के दुःख देनेवाले अपने ही किये हुये पापोंके कारण मैं टंकणदेशमें फिर बकरा हुआ वहांपर मरते समय परमदयालु इस चारुदत्तने मुझे पवित्र जैनधर्मका उपदेश और पंच नमस्कार मंत्र दिया उसी जिनधर्मकी कृपासे सौधर्म स्वर्गमें मैं उत्तम देव हुआ हूं इसलिये चारुदत्त मेरा साक्षात् गुरु है और इसीलिये मुनिराजसे पहिले इसे मैंनें नमस्कार किया है ॥ १४८-१५१ ॥ इसप्रकार अपना समस्त वृत्तांत कह उस देवके चुप हो जानेपर दूसरे देवने कहा—

एक दुष्ट सन्यासीने मुझे रसायनका लोभ देकर रसकूपमें गिरा दिया था चारुदत्तको भी उसीतरह सन्यासीने कूपमें ला डालदिया भीतर कुएके हम दोनोंकी मुलाकात होगई मैं मरने ही वाला था कि-दयालु चारुदत्तने मुझे धर्मका उपदेश दिया उसी धर्मकी कृपासे मैं सौधर्म स्वर्गमें उत्तम देव हुआ हूं इसलिये चारुदत्त मेरा गुरु है और इसीलिये मैंने भी मुनिराजसे प्रथम इसे नमस्कार किया है ॥ १५३-१५४ ॥ पापरूपी कूपमें डूबे हुये जीवोंको जो मनुष्य धर्मरूपी हाथका सहारा देनेवाला है भला कहिये लोकमें उसके समान दूसरा कौन उपकारी है ? ॥ १५५ ॥ एक अक्षरको या आधेपदको अथवा एक पदको प्रदान करनेवाले भी मनुष्यको भूलजानेवाला मनुष्य जब पातकी कहलाता है तब कल्याणकारी धर्मके उपदेश देनेवालेको तो भूलजानेवाला परम पातकी समझना चाहिये ॥ १५६ ॥ विद्वानोंका मंतव्य है कि उपकार्य (जिसका उपकार किया

गया है) मनुष्य उसीसमय पुण्यवान समझा जाता है जब कि वह दुःखमें उपकार करनेवाले अपने उपकारीका भलेप्रकार प्रत्युपकार करै ॥ १५७ ॥ यदि उपकार करनेकी सामर्थ्य न हो तो वह भी पुरुष उत्तम और पुण्यवान समझा जाता है जो निरभिमान हो अपने उपकारीके साथ शुभभाव प्रकट करता है-स्वाभाविक हित जनाता है ॥ १५८ ॥ इसप्रकार दोनों देवोंने अपना वक्तव्य समाप्त कर मुनि और विद्याधरोंके समक्ष ही देव देवी विमान आदि अपनी विशाल ऋद्धि दिखलाई और जो अग्निमें नहिं जल सकते थे ऐसे नानाभांतिके वस्त्र, उत्तममालायें, उपटन, आभरण आदिसे मुझे भूषित किया एवं वड़े आदरसे इसप्रकार बोले—

कृपानाथ! जो काम आप करना चाहते हों उसेकरनेके लिये हमैं आज्ञा दीजिये हम आपके आज्ञाकारी सेवक हैं यदि आप चाहैं तो इसीसमय आपको विपुल धनके साथ चंपापुरी पहुंचा दिया जाय? ॥ १५९-१६१ ॥ मैंने कहा—

इससमय आप अपने २ स्थान चले जांय जिससमय मैं आपको स्मरण करूं आकर आप मेरी सहायता करना ॥ १६२ ॥ देवोंने 'जो आज्ञा' कहकर मुझे हाथ जोड़ नमस्कार किया एवं मुनिराजसे और मुझसे आज्ञा मांग वे अपने २ स्थान चले गये ॥ १६३ ॥ देवोंके जानेके वाद मैंने भी मुनिराजको नमस्कार किया और उन दोनों विद्याधरोंके साथ विमानमें बैठकर आकाश मार्गसे उनकी राजधानी शिवमंदिर नगर में जा पहुंचा ॥ १६४ ॥ शिवमंदिर अपनी मनोहर शोभासे स्वर्गकी तुलना करता था मैं उसमें आनंदसे रहनेलगा अनेक विद्याधर मेरी सेवा करनेलगे और नगरमें चौतर्फा 'यही नगरके स्वामीका जन्मदाता है' ऐसा मेरा ही मेरा यश श्रवणगोचर होने लगा। ॥ १६५ ॥ एक दिन वे दोनों विद्याधर अपनी माताके साथ मेरे पास आये और कुमारी गंधर्वसेनाको दिखाकर इसप्रकार बोले—

भाई चारुदत्त! एक दिन हमारे पिता अमितगतिने अवधिज्ञानी मुनिराजसे यह पूछा था कि "प्रभो! मेरी पुत्री गंधर्वसेनाका स्वामी कौन होगा?" उत्तरमें मुनिराजने कहा था-गंधर्वविद्याका पूर्ण विद्वान् एक यदुवंशी। वह सेठ चारुदत्तके नगरमें आवेगा और गंधर्वसेनाको वादमें जीतकर उसका पति होगा" ॥ १६६-१६८ ॥ मुनिराजके ये वचन सुन पिताने गंधर्वसेनाके विवाहका निश्चय आपके ही ऊपर स्थिर रक्खा परंतु पिता तो दीक्षा ले मुनि होगये हैं-इससमय हैं नहीं इसलिये उनके मंतव्यानुसार अब आपही मालिक हैं जैसा आप उचित समझें वैसा करैं" ॥ १६९ ॥ विद्याधर कुमारोंका ऐसा अभिप्राय सुन और यह बंधुका कार्य वडे भाग्यसे मिला है ऐसा पूर्ण विचारकर मैंने वैसा करना स्वीकार करलिया जिससेकि धाय आदि परिवारके साथ वह कन्या मुझे सौंप दीगई ॥ १७० ॥ नानाप्रकारके रत्न और सुवर्ण आदि संपत्ति लेकर सेनासे वेष्टित हो कन्याके दोनों भाई

चंपापुरी आनेकेलिये तयार हुये यह देख मित्रके कार्य करनेमें सदा उत्सुक उन दोनों देवोंका भी मैने स्मरण किया स्मरण करतेही वे दोनों हाथोंमें निधियां लेकर तत्काल मेरे पास आ प्रकट हुए ॥१७१-१७२॥ इसतरह वे सबके सब गंधर्वसेनाके साथ मुझै सुंदर हंसविमानमें विठा लोकको आश्चर्य करनेवाली विशाल विभूतिके साथ इस चंपापुरीमें ले आये यहां आकर उन्होंने मेरी पूर्ण व्यवस्थाकी अक्षय निधियां दीं और इसके बाद मुझै भक्तिपूर्वक नमस्कार कर वे दोनों देव और विद्याधर अपने अपने स्थान चलेगये ॥१७३-१७४॥ यहां आकर मैं मामा मा स्त्री और कुटंबियोंसे आदरपूर्वक मिला मेरे मिलनेसे सवोंको परम आनंद हुआ और मुझै भी बडा संतोष मिला ॥ १७५ ॥ वेश्या वसंतसेना अपनी माका घर परित्यागकर मेरे घर आगई थी और उसने आर्यिकाके पास जा श्रावकके व्रत धारणकर मेरी मा स्त्रीकी पूर्ण सेवाकी थी इसलिये मैं उससे भी मिला और सहर्ष उसै अपनाया ॥ १७६ ॥ दीन और अनाथोंको किमिच्छक (जिस २ वातकी उन्हें कामना थी उसीके अनुसार) दान दिया गया कुटुंवियोंको भी जिस जिस पदार्थकी आवश्यकता थी उसके अनुसार पदार्थ दिये गये ॥ १७७ ॥ प्रिय यादवशिरोमणि कुमार! इसप्रकार विद्याधर कुमारी गंधर्वसेना की और ऐश्वर्यकी प्राप्ति जिस जिसप्रकार मुझे हुई मैने विस्तार पूर्वक कह सुनाई ॥ १७८ ॥ विद्याधर कुमारी यह गंधर्वसेना धन्य है क्योंकि जिसकेलिये आजतक यह अविवाहित रक्खी गई थी उसीने इसै पाया एवं यादवकुमार! आप भी धन्य हो जिनने कि अपने शुभ आगमनसे मुझै कृतकृत्य वनाया ॥ १७९ ॥ अवधिज्ञानी मुनिराजोंसे इस बातका पता लगा है कि मेरी मोक्ष-प्राप्ति अतिशय समीप है और तपकरनेसे इस जन्मके बाद मुझै स्वर्ग (सर्वार्थसिद्धि) प्राप्ति होगी आजतक मैं इसी गंधर्वसेनाकी चिंतासे तप नहीं करसका था अब मैं आपकी कृपा से निश्चित हो तप आराधन करसकूंगा ॥ १८० ॥

इसप्रकार सेठि चारुदत्तके मुखसे अपनी प्यारी गंधर्वदत्ताका आदिसे अंततक वृत्तांत श्रवणकर और चारुदत्तके उत्साहका भलेप्रकार विचारकर कुमार वसुदेवको परम आनंद हुआ उन्होंने चारुदत्तकी इसप्रकार प्रशंसा कर कि—आप उत्तम पुरुष हैं आपकी चेष्टा धन्य है उदारता भी लोकोत्तर है अन्य पुरुषोंकेलिये सर्वथा दुर्लभ यह आपका पुण्यबल भी अचिंत्य है ॥ १८१-१८२ ॥ विना भाग्यके ऐसा पौरुष होना अति कठिन है ऐसे उत्तमोत्तम भोगोंको मनुष्योंकी तो क्या बात सामान्य देव विद्याधरभी प्राप्त नहिं करसकते कुमारी गंधर्वसेनाकी प्राप्ति पर्यंत अपना भी समस्त वृत्तांत उसै कह सुनाया ॥ १८३ ॥

इसप्रकार आपसमें एक दूसरेके वृत्तांतोंके जानकार सुंदर रूप और विज्ञानके समुद्र, धर्म अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थोंके अनुभव करनेसे परम संतुष्ट चारुदत्त आदि सब लोग परम आनंदसे रहने लगे ॥ १८५ ॥

यदि मनुष्य धर्मात्मा है तो चाहे वह निर्धनही क्यों न होगया हो समुद्र और कूएमें ही क्यों न गिरगया हो जिनका पार पाना कठिन है ऐसे पर्वत वन और द्वीपोंमें ही क्यों न चलागया हो उसै पापके नष्ट होजानेसे बातकी बातमें समस्तप्रकारकी लक्ष्मी प्राप्त होजाती है इसलिये जो मनुष्य लक्ष्मीके अभिलाषी हैं उन्हैं चाहिये कि वे भगवान जिनेंद्रद्वारा प्रतिपादित चिंतामणि रत्नके समान श्रेष्ठ इस धर्मकी आराधना करैं ॥१८६॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेन द्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें चारुदत्तका चरित्र वर्णन करनेवाला इक्कीसवां सर्ग समाप्त हुआ।

बाईसवां सर्ग।

कुमार वसुदेव रमणी गंधर्वसेनाके साथ चंपापुरीमें रह सानंद क्रीड़ा कररहे थे कि उसीसमय फाल्गुनका अष्टाह्निक (अठाई) पर्व आगया ॥ १ ॥ वंदनाके परमप्रेमी हृदयमें अतिशय आनंदित देव नंदीश्वर पर्वतको और विद्याधर सुमेरु आदि पर्वतोंको जिनभगवानकी वंदनार्थ जाने लगे ॥ २ ॥ भगवान वासुपूज्यके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण इन पांच कल्याणोंके होनेसे पूज्य, देदीप्यमान गृहोंसे शोभित चंपापुरीमें भी वंदनाकेलिये अपने २ स्त्री पुत्रोंसे मंडित अनेक भूमिगोचरी और विद्याधर आये ॥ ३-४ ॥ भगवान वासुपूज्यकी प्रतिमा नगरसे वाहिर किसी वनमें विराजमान थी इसलिये चंपाके रहनेवाले मनुष्य और राजा भी उसकी वंदनाके लिये नगरसे वाहिर निकले ॥५॥ उससमय कोई रथ कोई हाथी कोई घोड़े और कोई कोई पालकियोंमें सवार हो जारहे थे जिससे कि नाना प्रकारके आभरणोंसें मंडित नगरके नरनारियोंकी उससमय अजब ही शोभा जान पड़ती थी ॥ ६ ॥ कुमार वसुदेव भी प्रियतमा गंधर्वसेनाके साथ रथमें सवार हो सामिग्री (पूजाद्रव्य) लेकर भगवान की पूजाके लिये नगरीसे बाहर निकले ॥ ७ ॥ उससमय भगवान वासुपूज्यके मंदिरके आगे भीलकन्याका वेष धारण कर एक कन्या नृत्य कर रही थी ज्योंही अनेक वीरोंसे वेष्टित वसुदेव मंदिरके समीप आये कन्या उनके नजर पड़ी ॥ ८ ॥ वह कन्या नीलकमलके पत्तोंके समान श्याम थी गोल और उन्नत पयोधरों-स्तनोंसे शोभित थी विजलीके समान भड़कीले भूषणोंसे मंडित थी इसलिये काले २ पयोधर-मेघ और देदीप्यमान बिजलीसे युक्त प्रावृट् (वर्षा) ऋतुकी लक्ष्मीकी तुलना करती थी ॥ ९ ॥ उसके अधर (ओष्ठ) बंधूक पुष्पोंके समान लाल थे हस्त और पाद सुंदर कमल सरीखे थे नेत्र श्वेतकमलोंकी तुलना करते थे इसलिये वह साक्षात् मूर्तिमती शरद लक्ष्मी सरीखी जान पड़ती थी। अतिशय रूपवती वह श्री ही धृति बुद्धि लक्ष्मी और सरस्वतीके समान जिनेंद्रकी भक्तिमें लीन थी ॥ १०-११ ॥ उससमय नृत्यशाला बड़े ठाठ बाठसे सजी हुई थी गानेवाले अपनी २

आवश्यक सामिग्री लेकर जुदे २ बैठे थे मृदंग पणव दर्दर मंजीरा विपंची और वीन बजाने वाले (इनका पारिभाषिक नाम कुतुप भी है) अपनी विचित्र ही छटा दिखा रहे थे उससमय सभामें उत्तम मध्यम जघन्य सब प्रकारके मनुष्य बैठे थे और गाने बजाने नाचनेवाले इस खूबीसे गाना बजाना और नाचना कर रहे थे कि अलातचक्र[1](घड़ा आदि बनानेका कुम्हारका चाक)के समान गाने बजाने और नाचनेमें जरा भी भेद नहिं जान पड़ता था॥ १२-१४॥ इस तरह रस इंगित और भावोंको स्पष्टरूपसे बतलानेवाली उस नर्तकीकी और वल्लभा गंधर्वसेनाके साथ बैठे हुये कुमार वसुदेवकी ज्योंही चार आंखें हुई त्योंही उन दोनोंने अपने २ रूपपाश (जाल) से एक दूसरेको बांध लिया इसलिये उस-समय उन दोनोंमें प्रत्येकने बंधव्य (बंधनेवाला) बंधक (बांधनेवाला) रूप दोनों दशाओंका अनुभव किया॥ १५-१६॥ नृत्यकरनेवाली कन्यापर कुमारको इसप्रकार आसक्त जान मारे ईर्षाके गंधर्वसेनाको बडा क्रोध आया उससमय एकदम उसकी भ्रुकुटी चढ़ गई सो ठीक ही है शत्रुका सामना होनेसे भोंहोंका कुटिल होजाना स्वाभाविक है॥ १७॥ मनमें गंधर्व सेनाने यह विचार कर कि यहां अधिक ठहरना हानि कारक है तत्काल सारथिसे कहा—

"सारथे! इतनी देरतक यहां रथको खड़े करनेकी क्या आवश्यकता है जल्दी यहांसे रथ ले चलो शक्करको अधिक खानेसे दूसरा रस नहीं मिलता शक्करका ही रस मिलता है इस नृत्यको अधिक देखनेसे कोई विशेष लाभ न होगा।" गंधर्वसेनाके ऐसे वचन सुनते ही सारथिने रथ हांक दिया और मंदिरके पास ले जाकर खड़ा किया रथसे उतरकर कुमार और गंधर्वसेनाने जिनालयमें प्रवेशकर उसकी तीन प्रदक्षिणा दीं और दूध, ईखका रस, घी, दही और जलसे भगवानके प्रतिबिम्बका अभिषेक किया। ये दोनों ही पूजाविधिमें परम प्रवीण थे इसलिये इन्होंने अनेक देव और मनुष्योंसे पूजित भगवान वासुपूज्यके प्रतिबिम्बकी अतिशय सुगंधित चंदन, उत्तम शालियोंके अक्षत भांति भांतिके पुष्प, कालागुरु आदिकी धूप, देदीप्यमान शिखाके धारक दीपक, निर्मल नैवेद्य, एवं जल और फल इन अष्ट द्रव्योंसे पूजा की। पैरोंको बराबर कर भगवानके सामने खडे होगये हाथ जोड ऊंचे स्वरसे स्तोत्रोंका पाठ करने लगे। जमीनको शोधकर अष्टांग नमस्कार कर कायोत्सर्ग धारण किया पुनः जमीनको शोध कर नीचे पडगये फिर उठ खडे हुये पवित्र पंचनमस्कार मंत्रका पाठ करने लगे। अर्हंत सिद्ध साधु और जिन धर्म हमै शरण हैं यह कहा। ढाई द्वीपोंके एकसौ सत्तर आर्य क्षेत्रोंमें जितने जिनेंद्र होगये होंगे और हैं उनकेलिये नमस्कार किया। जबतक

[1] कुम्भकारका चाक वडी शीघ्रगतिसे चलता है उसका कुछ भी भाग नही दीख पडता उसीप्रकार गाना बजाना नाचना तीनों एकरूप थे जुदे २ नहिं जान पडते थे।

सामायिक करेंगे तबतक हमारे समस्त सावद्य योग और शरीरका त्याग है ऐसी दृढ प्रतिज्ञाकर शरीरसे सामायिकके अंततक ममत्व परिणाम हटा लिया। सामायिकके अंततक उन्होंने यह पूर्ण प्रतिज्ञा लेली कि शत्रु मित्र सुख दुःख जीवित मरण लाभ अलाभमें हमारे परिणाम समान हैं॥ १८-२९॥ एवं वे सात श्वासोच्छ्वास प्रमाण खडे होकर और हाथ जोड मस्तकोंपर रखकर चौबीसो भगवानके स्तोत्रोंका इसप्रकार उच्चारण करने लगे—

भगवान ऋषभनाथ अजितनाथ संभवनाथ अभिनंदन सुमतिनाथ सुपार्श्वनाथ चंद्रप्रभ पुष्पदंत शीतलनाथ! आपकेलिये नमस्कार हो आश्रितजीवोंको कल्याण प्रदान करनेवाले हे श्रेयांसनाथ आपको नमस्कार है जिनका चंपापुरीमें यह अचल परमोत्सव मनाया जा रहा है ऐसे तीन जगतके पूज्य प्रभुवर वासुपूज्य आपको प्रणाम है स्वामी विमलनाथ अनंतनाथ धर्मनाथ, शांतिकरनेवाले शांतिनाथ कुंथुनाथ अरनाथ, शल्योंको दूर करनेवाले मल्लिनाथ मुनिसुव्रतनाथ! हम आपको नमस्कार करते हैं। जिनका इससमय भरतक्षेत्रमें तीर्थ विराजमान है ऐसे तीनलोकके वंदनीक भगवान नमिनाथ आपको नमस्कार है। जो आगे धर्म तीर्थकी प्रवृत्ति करेंगे ऐसे हरिवंशरूपी आकाशकेलिये चंद्रमाके समान भगवान नेमिनाथ, तथा पार्श्वनाथ और महावीर आपके लिये हमारा सविनय नमस्कार है। चौवीसों तीर्थंकरोंके समस्त गणधरोंकेलिये नमस्कार है। त्रिभुवनवर्ती कृत्रिम और अकृत्रिम भगवानके चैत्यालय और प्रतिमाओंको नमस्कार है"। इसप्रकार भगवानका स्तवन करते २ कुमार और गंधर्वसेनाके शरीर भक्तिसे पुलकित होगये घोटूं नवा मस्तकको जमीनपर रखकर दोनोंने भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। पहिलेके समान कायोत्सर्गविधिसे उठकर त्रिकालवर्ती अर्हंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और समस्त मुनियोंको नमस्कार किया एवं पंचपरमेष्ठिके स्तवनके अनंतर दोनों दंपतीने भगवानके चैत्यालयकी प्रदक्षिणा दी और रथके पास आकर उसमें सवार हो चंपापुरी लौट आये॥ ३०-४४॥ कुमार-वसुदेवने जिससमय नृत्यकारिणीके देखनेसे प्रियतमा गंधर्वसेनाकी भौंहें कुटिल देखीं तो उसे प्रणामकर मनालिया जिससे कि गंधर्वसेनाका सब कोप किनारा करगया और वह उनके आधीन हो पूर्वके समानही प्रेम करने लगगई॥ ४५॥ सो ठीकही है सपत्नीके देखनेसे कुपित हुई स्त्रियां पतिके हाथ जोडकर प्रणाम करनेपर शीघ्रही प्रसन्न होजातीं हैं॥ ४६॥ कदाचित् कुमार वसुदेव महलके किसी एकांत स्थानमें बैठे थे उससमय नृत्य करनेवाली कन्याद्वारा भेजी हुई एक वृद्धा स्त्री आई यह वृद्धा त्रिपुंड्राकार तिलक लगाये थी कुमारके चित्तको आनंद प्रदान करनेवाली थी एवं मूर्तिमती विद्या सरीखी जान पड़ती थी उसने आतेही कुमारको आशीर्वाद दिया और सामनेके आसनपर बैठकर इसप्रकार कहनेलगी—

' वीरवर कुमार! जिसप्रकार निर्मल दर्पणमें संपूर्ण पदार्थ झलकते हैं उसीप्रकार यद्यपि आपके हृदयमें सविस्तर पुराणोंका रहस्य भरा हुआ है–आप सब कुछ जानते हैं तथापि मै एक विद्याधरसंबंधी कथा सुनाती हूं। इससे यह नहीं समझें कि मै परम विद्वान् हूं और यह वृद्धा अल्पबुद्धिकी धारक है मेरे सामने क्या कहेगी क्योंकि जिस औषधिका स्पर्श औषधिनाथ–चंद्रमा अपनी किरणोंसे करता है उसे जिसप्रकार अन्य लोग भी अपने हाथोंसे छू सकते हैं उसीप्रकार विद्वानोंके समीप अल्पबुद्धिवाले भी अपनी बुद्ध्यनुसार कुछ कहसकते हैं॥ ४७–५०॥ जिससमय समस्त जगतको आजीविकाका उपाय बतलानेवाले भगवान ऋषभदेवने युगकी आदिमें राजराजेश्वर भरतको राज्य प्रदानकर दिगंबर दीक्षा धारण करली थी उससमय उनके साथमें उग्रवंशीय भोजवंशीय आदि चारहजार बडे बडे क्षत्रिय राजा भी दीक्षित हुये थे भगवान ऋषभदेव तो छै मासका मौन धारणकर एक आसनसे विराजमान होगये और उनके साथी राजाओंको धर्मका पूर्णतया स्वरूप अवगत न था इसलिये परीषहोंके न सह सकनेके कारण वे विचारे तपोभ्रष्ट होगये थे॥ ५१–५२॥ उससमय कच्छ सुकच्छके पुत्र नमि विनमि भी भ्रष्ट होगये थे वे दोनों भाई राज्य पानेके परम अभिलाषी थे इसलिये भगवान ऋषभदेवके चरणोंमें बैठकर राज्यकी प्रार्थना करने लगे॥ ५३॥ भगवानकी सेवाके प्रभावसे परम जिनभक्त ऐश्वर्यशाली धरणेंद्रका आसन कंपित होगया वह तत्काल अपनी दिति और अदिति नामकी देवियोंके साथ भगवानके समीप आया उसने नमि और विनमिको आश्वासन दे उन्हें अपनी देवियोंसे विद्याकोश (विद्याका भंडार) प्रदान कराया॥ ५४–५५॥ धरणेंद्रकी दितिदेवीने गंधर्वसेन नामकी मनु मानव कौशिक गौरिक गांधार भूमितुंड मूलवीर्यक और शंकुक ये आठ विद्यायें प्रदानकीं एवं इन्हीं विद्याओंको आर्य आदित्य गंधर्व और व्योमचर भी कहते हैं। और अदितिदेवीने मातंग पांडुककाल स्वपाक पर्वत बंशालय पांशुमूल वृक्षमूल ये आठ विद्यायें दीं इन विद्याओंके दैत्य पन्नग और मातंग भी नाम हैं॥ ५६–५७–५८–५९–६०॥ ये सोलह विद्यायें समस्त विद्याओंमें प्रधान हैं और इन्ही विद्याओंके माहात्म्यसे और भी अनेक विद्यायें है और वे ये हैं–प्रज्ञप्ति रोहिणी अंगारिणी महागौरी गौरी सर्वविद्याप्रकर्षिणी महाश्वेता मायूरी हारी निर्वज्ञशाद्वला तिरस्करिणी छाया संक्रामिणी कूष्मांडगणमाता सर्वविद्याविराजिता आर्यकूष्मांडदेवी अच्युता आर्यवती गांधारी निर्वृति दंडाध्यक्षगणा दंडभूतसहस्रक भद्रकाली महाकाली काली कालमुखी एकपर्वा द्विपर्वा त्रिपर्वा दशपर्विका शतपर्वा सहस्रपर्वा लक्षपर्वा उत्पातिनी त्रिपातिनी धारिणी अंतर्विचारिणी जलगति अग्निगति सर्वार्थसिद्धा सिद्धार्था जयंती मंगला जया संक्रामिणी प्रहारिणी अशय्याराधिनी विशल्याकारिणी व्रणसंरोहणी सवर्णकारिणी और मृतसंजीविनी। इनमें अनेक

विद्यायें अनेक प्रकारकी शक्तियोंसे युक्त अनेक पर्वतोंमें उत्पन्न होनेवालीं औषधियोंको जाननेवालीं हैं। ये समस्त विद्यायें परमकल्याण करनेवालीं हैं मंत्रोंसे परिष्कृत हैं महावलवान और समस्त लोकका हित करनेवाली हैं। इसप्रकार ये समस्त सिद्ध विद्यायें और दिव्य औषधियां धरणेंद्रने नमि और विनमिको दीं ॥ ६१–७३ ॥ नमिको तो विजयार्धकी दक्षिण श्रेणिका राजा बनाया और विनमिको उत्तर श्रेणीका राज्य प्रदान किया जिससे कि मित्र और बंधुओंसे वेष्टित हो वे दोनों वीर अनेक नगरोंके स्वामीवन अपनी २ श्रेणीमें सुखसे रहने लगे ॥ ७४–७५ ॥ इन दोनोंने अपनी २ प्रजाको यथायोग्य विद्या और औषधियोंका वटवारा करदिया जिससे कि जो जो विद्याओंके नाम थे उन्हीं २ नामोंके धारक वे विद्याधर प्रसिद्ध हुये ॥ ७६ ॥ अर्थात् गौरिक विद्यासे गौरिक, मनुसे मनु, गांधारीसे गांधार, मानवीसे मानव, कौशिकीसे कौशिक, भूमितुंडक विद्यासे भूमितुंड, मूलवीर्यसे मूलवीर्य, शंकुकसे शंकुक, पांडुकीसे पांडुक, कालविद्यासे काल, स्वपाकसे स्वपाकज, मातंगीसे मातंग, पर्वत विद्यासे पार्वतेय, वंशालयसे वंशालय, पांडुकमूलक विद्यासे पांडुमूलक, और वृक्षमूलसे वार्क्षमूलक कहे जानेलगे ॥७७–८३ ॥ विजयार्धमें विद्याधरोंकी एकसौ दश नगरीं हैं उनमें उत्तर दिशामें–आदित्यनगर, गगनवल्लभ, चमरचंपा, गगनमंडल, विजय, वैजयंत, शत्रुंजय, अरिंजय, पद्माल, केतुमाल, रुद्राश्व, धनंजय, वस्वौक, सारनिवह, जयंत, अपराजित, वराह, हास्तिन, सिंह, सौकर, हस्तिनायक, पांडुक, कौशिक, वीर, गौरिक, मानव, मनु, चंपा, कांचन, ऐशान, मणिव्रज, जयावह, नैमिष, हास्तिविजय, खंडिका, मणिकांचन, अशोक, वेणु, आनंद, नंदन, श्रीनिकेतन, अग्निज्वाल, महाज्वाल, माल्य, पुरु, नंदिनी, विद्युत्प्रभ, महेंद्र, विमल, गंधमादन, महापुर, पुष्पमाल, मेघमाल, शशिप्रभ, चूड़ामणि, पुष्पचूड़, हंसगर्भ, वलाहक, वंशालय और सौमनस ये साठ नगरी हैं॥ ८४–९२ ॥ और दक्षिण श्रेणीमें रथनूपुर, आनंद, चक्रवाल, अरिंजय, मंडित, वहुकेतु, शकटामुख, गंधसमृद्ध, शिवमंदिर, वैजयंत, रथपुर, श्रीपुर, रत्नसंचय, आषाढ, मानस, सूर्यपूर, स्वर्णनाभ, शतह्रद, अंगावर्त, जलावर्त, आवर्तपुर, बृहद्गृह, शंखवज्र, नाभांत, मेघकूट, मणिप्रभ, कुंजरावर्त, असितपर्वत, सिंधुकक्ष, महाकक्ष, सुकक्ष, चंद्रपर्वत, श्रीकूट, गौरिकूट, लक्ष्मीकूट, धराधर, कालकेशपुर, रम्यपुर, हिमपुर, किन्नरोद्गीतनगर, नभस्तिलक, मगधसारनलक, पांशुमूल, दिव्यौषध, अर्कमूल, उदयपर्वत, अमृतधार, मातंगपुर, भुमिकुंडलकूट, और जंबूशंकूपुर ये पचास नगरी हैं ॥ ९३–१०० ॥ शोभामें स्वर्गके समान इन समस्त नगरोंमें भगवान ऋषभदेव धरणेंद्र और उसकी प्रियतमायें दिति अदिति की प्रतिमाओंसे युक्त अनेक स्तंभ हैं ॥ १०१ ॥ राजा विनमिके संजय अरंजय शत्रुंजय धनंजय मणिचूल हरिश्मश्रु मेघानीक प्रभंजन

चूड़ामणि शतानीक सहस्रानीक सर्वजय वज्रबाहु महाबाहु अरिंदम आदि अनेक पुत्र हुये, ये समस्त पुत्र परम विनयी नीतिवेत्ता थे अनेक विद्याओंके अधिपति थे और विजयार्धकी उत्तर श्रेणिके भूषणस्वरूप थे। तथा भद्रा और सुभद्रा नामकी दो कन्यायें भी हुई यही सुभद्रा भरत चक्रवर्तीके चौदह रत्नोंमें एक स्त्रीरत्न थी॥१०२-१०६॥ एवं राजा नमिके रवितनय सोम पुरुहूत अंशुमान हरि जय पुलस्त्य विजय मातंग वासव आदि परम तेजस्वी बहुत पुत्र हुये और कनकपुंजश्री और कनक मंजरी नामकी दो कन्यायें हुई ॥ १०७-१०८ ॥ नमि विनमि संसारकी स्थितिके भलेप्रकार जानकार थे कदाचित् उन्हें संसारसे वैराग्य होगया और विद्याधरोंका समस्त ऐश्वर्य पुत्रोंको सौंप आप जैन दीक्षासे दीक्षित होगये ॥ १०९ ॥ राजा विनमिके मातंग नामका जो पुत्र था उसके बहुतसे पुत्र पौत्र और प्रपौत्र आदि हुये वे सब अपने अपने परिणामानुसार तप आदिकर स्वर्ग मोक्ष गये ॥ ११० ॥ इस तरह बहुत दिनके बाद इक्कीसवें तीर्थकर भगवान नमिनाथके समयमें असितपर्वत नगरमें मातंगवंशमें एक प्रहसित नामका राजा हुआ। राजा प्रहसित बड़ा प्रतापी था मातंग वंशरूपी आकाशकेलिये देदीप्यमान सूर्य था और परम विद्वान था उसीकी मैं हिरण्यवती नामकी बुढ़िया स्त्री हूं ॥ १११-११२ ॥ मेरे पुत्रका नाम सिंहदंष्ट्र है उसकी स्त्री नीलांजना है उन दोनोंसे उत्पन्न एक नीलंयशा नामकी कन्या है जो रंगमें नील कमलके समान अतिशय मनोहर है ॥ ११३ ॥ कुमार! निर्मलकीर्तिसे शोभित, उत्तम कुलसे उत्पन्न, परमशीलवती, गुणवती, कन्या नीलंयशाके वंशका सविस्तर वर्णन मैंने आपको सुना दिया। वह कन्या अष्टाह्निक पर्वमें भगवान वासुपूज्यके उत्सवके समय इस चंपापुरीमें आई थी और जब वह मंदिरके पास नृत्य कर रही थी उससमय उसने आपको देखा था ॥ ११४-११५ ॥ उससमय जो आपका दर्शन उसै सुख देनेवाला बना था वही आज आपके विरहमें बुरीतरह दुख देरहा है ॥ ११६ ॥ न वह स्नान करती है न कुछ खाती है न बोलती है और न कुछ काम ही करती है। कामके बाणोंसे उसका समस्त शरीर जर्जरित होगया है इतने पर भी वह जीती है यही बड़ा आश्चर्य है ॥ ११७ ॥ उसकी ऐसी दुःखमयी अवस्था देख इससमय हमारा समस्त कुटुंब दुःखित है वह इससमय इतनी आपके विरहसे वेहोश है कि उसै यह भी विचार नहिं होता कि माता पिताके सामने मुझै किस ढंगसे रहना चाहिये ॥११८॥ जब हमने उसके हृदयका हाल जाननेके लिये अपनी कुलविद्यासे पूछा तो उसने यह कहा कि मत्त हाथीद्वारा नष्ट की हुई कमलिनीके समान किसी युवा पुरुषने इसके हृदयपर चोट की है ॥ ११९ ॥ इसलिये हमने अनेक तर्क वितर्कोंसे यह निश्चय कर लिया है कि उस कन्या (नीलंयशा) के हृदयव्यथाके कारण आप ही) कुमार वसु-

देव) हैं ॥ १२० ॥ कुमार ! मैं आपको लेने आई हूं नैमित्तिकने (ज्योतिषीने) भी यही कहा है कि नीलंयशाके पति कुमार वसुदेव ही हैं इसलिये आप चलें और उसै स्वीकार करें ॥ १२१ ॥ वृद्धा हिरण्यवतीसे अपने चित्तको चुरानेवाली रमणी नीलंयशाका यह वृत्तांत सुन कुमार चलनेकेलिये उत्कंठित होगये परंतु उस समय वहांसे जाना उचित न समझ यही उत्तर दिया कि—मा ! आप चलें और मेरे आगमनका समाचार सुनाकर उस (नीलंयशा) को आश्वासन दें ॥ १२२–१२३ ॥ कुमारके ऐसे वचन सुन वृद्धाने आशीर्वाद दिया एवं वह अपनेको कृतकृत्य समझ वहांसे चली गई और घर पहुंचकर नीलंयशाको कुमारके समाचारोंसे धैर्य बंधाया ॥ १२४ ॥

कदाचित् जलसे भरे हुये उत्तमोत्तम कलशोंसे स्नानकर कुमार गंधर्वसेनाके साथ सानंद शयन कर रहे थे इतनेहीमें भयंकर मूर्तिकी धारण करनेवाली एक वेतालकन्या आई उसने कुमारका हाथ पकड़ लिया जगजानेपर कड़ी रीतिसे मुट्ठी बांधकर ताड़ने लगी एवं क्रूर मनुष्यका रूप धारणकर जिकड़कर पकड़ रात ही रातमें गलीके रास्तेसे महापितृवन नामक वनमें ले आई ॥ १२५–१२७ ॥ वहां आकर कुमारने देखा कि अनेक मातंगियोंसे वेष्टित अपनी देहकी कांतिसे भ्रमरीकी तुलना करनेवाली नीलवर्णा कन्या नीलंयशा उपस्थित है उसे देख कुमार वसुदेवने कहा—

'आइये आपके लिये स्वागत है' वह नीलंयशा न थी वृद्धाने वैतालविद्याके प्रभावसे वैसा दृश्य दिखाया था इसलिये कुमारकी इस चेष्टापर वृद्धा बेहद हंसी और हंसते २ वेतालविद्यासे अंतर्हित हो अपना वास्तविक रूप प्रकटकर इसप्रकार कहनेलगी—

कुमार ! मुझे मातंगी मत समझो मैं हिरण्यवती हूं मैंने अपने कार्यकी सिद्धिकेलिये मातंगविद्याके प्रभावसे वैसा रूप धारण किया था ॥ १२८–१३० ॥ आप बालिका नीलंयशाके चित्तको चुरानेवाले हैं इसलिये देखो यह आपके विरहसे मुरझा गई है और अपने भुजपंजरसे आपको आलिंगन करना चाहती है ॥ १३१ ॥ कुमारसे इस प्रकार कह वृद्धाने पासमें बैठी हुई नीलंयशासे भी कहा—

"पुत्री ! ये ही तेरे स्वामी कुमार हैं इनसे आलिंगन कर और हाथसे हाथ मिला" ॥१३२॥ यह सुन कुमारी नीलंयशाने हाथ फैलाया और स्वीकारतापूर्वक अपने हाथसे कुमार का हाथ पकड़ लिया जिससे कि मारे आनंदके वे दोनों दंपती उससमय पसीनासे तलमतल हो गये ॥१३३॥ शरीरके स्पर्शसुखरूपी जलसे उन दोनोंका प्रेमरूपी वृक्ष सींचागया और उससे रोमांचोंके बहाने चित्र विचित्र अंकूरे छटकने लगे ॥१३४॥ वे दोनों कन्या और कुमार एक दूसरेपर परम आसक्त थे इसलिये उनका प्रथम पाणिग्रहण (विवाह) उसी समय होगया और व्यावहारिक विवाहका उत्सव पीछे मनाया गया ॥ १३५ ॥ कुमार वसुदेवको देखकर कन्या नीलंयशाकी सखियोंको परमानंद हुआ वे कुमार

वसुदेवको लेकर सबकी सब आकाशमार्गसे उत्तर दिशाकी ओर चल दीं ॥ १३६ ॥ भूषण और औषधियोंके प्रभावसे उससमय समस्त अंधकार नष्ट होचुका था इसलिये आकाशमार्गसे जाता हुआ विद्याधरियोंका वह समूह देदीप्यमान विजलीके समान जान पड़ता था ॥ १३७ ॥ जिसप्रकार कुमारने अपने हाथके स्पर्शसे कामिनी नीलंयशाके मुखको उज्ज्वल बना दिया था उसीप्रकार सूर्यनेभी उससमय अपनी किरणोंकी कांतिसे पूर्वदिशाको उज्ज्वल बनाना प्रारंभ करदिया ॥ १३८ ॥ उससमय पूर्वदिशामें अर्ध उदित एवं कुछ लालिमाको लिये हुये सूर्यका विंब ऐसा जान पड़ता था मानो दिवस रूपी युवा द्वारा दंशागया प्राची दिशाका अधर ही हो ॥ १३९ ॥ थोड़ी ही देर वाद सूर्यमंडल पूर्ण उदित होगया सो ऐसा जान पड़ने लगा मानो यह पूर्वदिशाका सुनहरी कर्णकुंडल है ॥ १४० ॥ कुमार वसुदेवके समान समस्त भुवनको प्रफुल्लित करनेवाले सूर्यसे उससमय पृथ्वी और आकाश स्पष्ट दिखाई देने लगे ॥१४१॥ जिससमय पूर्णरूपसे प्रकाश होगया उस समय वृद्धा हिरण्यवतीने कहा—

प्रियकुमार! नीचेकी ओर पृथ्वीपर महारण्यवनके वडे वडे वृक्षोंसे मंडित जिस विशाल पर्वतको आप देख रहे हैं इसका नाम ह्रीमंत है यह समस्तलोकमें अद्वितीय शोभासे शोभित जान पड़ता है। जो ह्री (देवी) का स्थान होगा वह श्री (देवी) का स्थान कैसे हो सकता है यहांपर इसविरोधकी शंका नहिं करनी चाहिये क्योंकि ह्रीमंत इस पर्वतका नाम है और अनेक लोग यहां आकर भांति भांतिकी तपरूपी लक्ष्मीकी आराधना करते हैं ॥ १४२–१४३ ॥ इसीपर्वतपर एक अंगारक नामका विद्याधर जिसकी समस्तविद्यायें राजा अशनिवेगकी पुत्री श्यामाने खंडित करदी हैं आकर विद्यासिद्धि कर रहा है। उसे आपके दर्शनसे अवश्य ही विद्यासिद्धि होगी इसलिये यदि आप उसपर उपकार और कृपा करना चाहैं तो अपने पवित्र दर्शन दे उसे कृतार्थ करैं ॥ १४४–१४५ ॥ वृद्धाके मुखसे यह समाचार सुन एवं मेरी प्रियतमा श्यामा सकुशल है इस वातका पूर्ण निश्चयकर कुमारको बड़ा आनंद हुआ और उन्होंने यह कहा—

"यह अंगारक हमारा शत्रु है इसे दर्शन देनेसे क्या लाभ? यहांपर व्यर्थ क्रीड़ाकर काल भी नष्ट करना ठीक नहीं यदि आपकी अभिलाषा हो तो आप यहां रहैं हमें तो अपने श्वसुरके नगरकी देखनेकी अभिलाषा है इसलिये हम तो जाते हैं।" कुमारके ऐसे वचन सुन वृद्धाने कुछ भी आनाकानी न की 'जो आप कहैंगे वही होगा' ऐसा कहकर बहुत जल्दीही उन्हैं असितपर्वतनगर ले आई। वहां आकर उसके किसी मनोहर बाह्य उद्यानमें कुमारको ठहराया। उनकी रक्षार्थ अनेक विद्याधर नियत करादिये। कुमारी नीलंयशाने भी प्रसन्नचित्त हो नगरमें प्रवेश किया एवं प्रतिसमय कुमारके समागमकी आकांक्षा और उनकी कथा करती हुई आनंदसे रहने लगी ॥१४६–१४९॥ कुमारका आगमन

सुन नीलयंशाका पिता सिंहदंष्ट्र उद्यानमें आया वहां कुमारको स्नान करा उत्तमोत्तम आभरण पहिनाये और बडी विभूतिके साथ रथमें सवार करा अनेक विद्याधरोंके साथ अपने नगर में लेगया वडे आदरसे समस्त प्रजाने और राजा सिंहदंष्ट्रके साथ २ अंतःपुरकी स्त्रियोंने कुमारको देखा कुमारका मनोज्ञ रूप देख उनके नेत्र तृप्त न होसके॥ १५०-१५१॥ किसी पवित्र दिन पूर्णरूपके भंडार परमपवित्र नीलंयशा और कुमारके विवाहका आनंद उत्सव मनाया गया जिससे कि कुमार जिसप्रकार कामदेव अपनी प्रियतमा रतिके साथ भोग विलास करता है उसीप्रकार कामिनी नीलंयशाके साथ मनमाने भोग भोगने लगे ॥ १५२-१५४ ॥ रमणी नीलंयशाने गुणोंमें समस्त स्त्रियोंको जीत लिया था इसलिये उससमय कोई भी स्त्री उसकी कीर्तिको काली नहिं कर सकी कुमार वसुदेव भी अतिशय पराक्रमी थे उनका यश भी कोई मलिन नहिं कर सका ग्रंथकार कहते हैं वे दोनों दंपती असितपर्वत नगरमें इसप्रकार सुखी और एक दूसरेको चाहनेवाले थे कि सिवाय श्रुतकेवलीके उनका वर्णन ही कोई नहिं कर सकता ॥ १५५ ॥

इसप्रकार भगवान आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें नीलंयशाकालाभ वर्णन करनेवाला वाईसवां सर्ग समाप्त हुआ।

तेईसवां सर्ग।

एक समय कुमार महलके ऊपर बैठे थे अचानकही उन्हें मनुष्योंका कोलाहल सुन-पड़ा पासमें एक प्रतिहारी बैठी थी कुमारने उससे पूछा—अरे ये समस्त लोग कोलाहल क्यों कर रहे हैं? प्रतिहारी समस्त वृत्तांतको भलेप्रकार जानती थी इसलिये उसने कहा—

देव! इसी विजयार्धमें एक शकटामुख नामका नगर है उसका स्वामी विद्याधरोंका अधिपति राजा नीलवान है ॥ १-२-३ ॥ राजा नीलवानके एक पुत्र और एक पुत्री दो संतान हैं और उनका नाम क्रमसे नील और नीलांजना है ॥ ४ ॥ एक दिन कुमार कुमारीकी यह शर्त आपसमें होगई थी कि यदि मेरे पुत्र और तुम्हारे पुत्री होगी तो गोत्रमें प्रीतिकी बढवारीकेलिये आपसमें उनका विवाह करदेना पड़ेगा इसमें किसी प्रकारकी आनाकानी न होगी ॥ ५ ॥ कन्या नीलांजनाका विवाह आपके श्वसुर सिंह-दंष्ट्रके साथ हुआ जिससे कि उसके यह नीलंयशा नामकी पुत्री हुई और नीलका विवाह किसी राजकन्या के साथ हुआ और उसके एक नीलकंठ नामका पुत्र उत्पन्न हुआ जबसे नीलकंठ समर्थ हुआ है तभीसे वह बराबर नीलंयशाको मांग रहा है परंतु हमारे महाराज (नीलंयशाके पिता) ने एक दिन बृहस्पति नामके मुनिराजसे यह पूछा था कि इस पुत्रीका पति कौन होगा? उत्तरमें मुनिराजने कहा था कि नववें नारायणका पिता वसुदेव इसका पति होगा इसलिये नीलकंठको कन्या न देकर वह आपको दी है

॥ ६–८ ॥ आज वे नील और नीलकंठ दोनों पिता पुत्र सभामें आये हैं और दुष्ट मार्गका आश्रयकर उन्होंने तुम्हारे श्वशुरसे विवाद ठान दिया है। विवादमें आपके श्वशुर-ने उन्हें न्याय मार्गसे जीतलिया है इसलिये यह विद्याधर लोगोंका कोलाहल सुनाई पड़रहा है ॥ ९–१० ॥ प्रतीहारीके ऐसे वचन सुन कुमार वसुदेव मुसकराये और नीलंयशाके साथ पूर्ववत् आनंदसे रहने लगे॥ ११ ॥ वहां रह कर कुमारने वर्षाऋतुका सुंदरवधूके समान अनुभव किया क्योंकि जिसप्रकार स्त्रीका (घनकृताश्लेषां) घन-कठिनरूपसे आलिंगन किया जाता है उसीप्रकार वर्षाभी घन–मेघोंसे व्याप्त थी स्त्री जैसी (विषयप्रियां) विषय कालमें प्रिय होती है वर्षा भी विषयकालमें प्रिय थी स्त्री जैसी (.शुक्लापांगस्वनैर्हृद्यां) श्वेत कटाक्ष और मधुर २ वचनोंसे प्रिय जानपड़ती है वर्षा भी मयूरोंके उन्नतशब्दोंसे अतिशय मनोहर थी ॥१२॥ उसके बाद शरद ऋतुके प्रारंभ होनेसे गुंजारशब्द करते हुये भ्रमररूपी ज्यासे शोभित बाणासन जातिके वृक्षरूपी धनुषको पाकर राजा कामदेव अतिशय अभिमानी होगये ॥ १३ ॥ और मनके वेगोंको वशकर विद्याधर लोग भांति २ की विद्या और औषधियोंके सिद्ध करनेके लिये तत्काल अपने २ नगरोंसे बाहिर निकलने लगे ॥ १४ ॥ कुमार वसुदेव और रमणी नीलंयशा भी अनेक विद्याओंसे मंडित हो काम भोग भोगनेकेलिये ह्रीमंत पर्वतकी ओर चलदिये वे दोनों महानुभाव विजली और मेघके जोड़ेके समान सुंदर जान पड़ते थे ॥ १५ ॥ उस पर्वत के मध्यभागमें जिसकी कोई सपत्नी नहीं ऐसी तपोलक्ष्मीके धारक अनेक मुनिराज विरा-जमान थे जिनसे वह ऐसा जान पड़ता था मानो उग्र असिधारा व्रतका ही आचरण कर रहा है ॥ १६ ॥ जगह जगह मधुके पीनेसे अतिशय प्रमत्त पक्षी और भौंरे जो वहां शब्द कर रहे थे उनसे वह ऐसा जान पड़ता था मानो कामियोंके हृदयको विदारण करने वाले कामदेवके बाणयुक्त ज्याके शब्दोंसे व्याप्त है॥ १७ ॥ कुमार और रमणी नीलंयशा उत्कट सुगंधिसे व्याप्त पर्वतके सप्तपर्ण वृक्षोंके वनमें गये वह वन अतिशय मनोहर था वहांके वृक्ष मंद मंद पवनसे हिल रहे थे इसलिये दोनों दंपती उसकी बड़ी प्रशंसा करने लगे ॥ १८ ॥ वहांकी शोभा निरखते हुये उनके मन तृप्त न हुये थे इसलिये बहुत काल तक उन्होंने रमणक्रीड़ा की ॥ १९ ॥ उन्होंने पुष्प और कोमल कोमल पल्लवोंसे निर्माण की हुई सेजपर रतिक्रीड़ा की थी इसलिये उन्हें संभोगजन्य खेद तनिक भी नहीं मालूम हुआ था ॥ २० ॥ बहुतकाल तक रतिक्रीड़ा करनेसे उनके शरीर मारे पसीनाके तल वतल होगये नेत्रोंमें कुछ सुरखाई आगई इसलिये वे दोनों दंपती केलाके मंडपसे बाहिर निकल आये ॥ २१ ॥ बाहिर आते ही उन्हें एक मयूर दीख पड़ा वह मयूर मनोहर वाणीका बोलनेवाला था चित्र विचित्र शरीरसे शोभित था और उसके मत्त नेत्र बड़ेही सुंदर जान पड़ते थे ॥ २२ ॥ वह मयूर सच्चा मयूर

न था राजा नीलका पुत्र नीलकंठ नीलंयशापर अतिशय मुग्ध था इसलिये उसीने नीलंयशाके हरनेके लिये मयूरका रूप धारण किया था। मयूरका सुंदररूप देख रमणी नीलंयशाका मन उसै पकड़नेका होगया वह उसके पीछे दौड़ने लगी कुमार वसुदेवकी निगाह वचतेही मयूरने नीलंयशाको अपने कंधेपर सवार करलिया और तत्काल आकाशमें लेकर उड़गया जिससेकि वसुदेवने बहुत कालतक नीलंयशाकी जहां तहां खोज की और जब उन्हैं वह कहीं न दीखी तो विह्वल हो इधर उधर वनमें भ्रमण करने लगे ॥ २३–२४ ॥ भ्रमण करते २ कुमार भूख प्याससे अतिशय व्याकुल होगये इसलिये वनमें जहां गोपोंके स्थान बने थे उनके पास गये गोपियोंने खाना पीना दे उनकी थकावट दूरकी और रातभर वहां रह सवेरा होतेही दक्षिण दिशाकी ओर चलदिये । ॥ २५ ॥ कुछ दूर चलकर उन्हैं एक गिरतट नगर दीख पड़ा वह नगर किले और परकोटोंसे मंडित होनेके कारण बड़ाही मनोहर जान पड़ता था कुमार ने उसके भीतर प्रवेश किया.। गिरितट नगरमें उससमय विशिष्ट २ मनुष्य आये थे वेदपाठका शब्द समस्त दिशाओंको शब्दायमान कररहा था यह अनोखी वात देख कुमारको बड़ा आश्चर्य हुआ इसलिये उन्होंने एक आदमीसे पूछा—

भाई ! विप्रोंकेलिये यह यज्ञमार्गसे महादान देना किसने स्वीकार किया है जिससे कि वेदके भलेप्रकार ज्ञाता ये सब जगहके विप्र इकट्ठे हुये हैं ? उस मनुष्यने उत्तर दिया—

कुमार ! यहांपर एक विश्वदेव नामका ब्राह्मण रहता है उसके एक सोमश्री नामकी कन्या है जो चंद्रमाके समान सुंदर और अनेक कला और वेदशास्त्रमें परम प्रवीण है ॥ २६–२९ ॥ ज्योतिषीने यह बात कही है कि जो महापुरुष इसे वेदोंमें जीतलेगा वही इसका पति होगा इसलिये यह वेदवेत्ताओंका मंडल एकत्रित हुआ है ॥३०॥ इस कन्याके जघन और स्तन अतिशय सुंदर और विशाल हैं मध्यभाग अतिशय कृश है सो न मालूम किस भाग्यशालीको यह प्राप्त होगी ॥३१॥ मनुष्यके ऐसे वचन सुन कन्याने कुमारके कर्णोंको तो उसीसमय हरण करलिया और हंसिनीको देखनेके लिये राजहंसके समान उसके देखनेके लिये उनका मन उत्कंठित होगया ॥३२॥ नगरमें एक ब्रह्मदत्त नामका वेदवेत्ता रहता था कुमार सीधे उसके पास गये और उससे अपना गोत्र निवेदन कर यह प्रार्थनाकी कि आप मुझे वेद पढ़ावें ॥ ३३ ॥ उत्तरमें ब्रह्मदत्तने कहा—

भाई ! वेद दो प्रकारके हैं एक आर्ष (ऋषिद्वारा कहे हुये) और दूसरे अनार्ष। इनमें तुम धर्मका वास्तविक स्वरूप प्रकट करनेवाले आर्षवेदोंको पढना चाहते हो अथवा अनार्षोंको । उपाध्यायके ये वचन सुनते ही कुमारको वड़ा अचंभा हुआ वे कहने लगे दो प्रकारके वेद कैसे ? हमने तो दो भेद वेदोंके नहिं सुने । कुमारकी यह वात सुन उपाध्याय बड़ा हंसा एवं प्रसन्नता पूर्वक वह इसप्रकार यथार्थ वात कहने लगा—

युगकी आदिमें जब समस्त कल्पवृक्षोंका क्षय होगया था उससमय तीनवर्णोंका विभाग कर तीन ज्ञानके धारक भगवान आदीश्वरने प्रजाको षट्कर्मका उपदेश दिया था। ॥ ३४–३६ ॥ तथा हिमवान और विंध्याचल पर्वतरूपी विशाल स्तनोंसे शोभित रूपाचलपर्वतरूपी मनोहर हार धारण करनेवाली समुद्ररूपी मेखला (कर्धनी) से मंडित इस पृथ्वीरूपी सुंदर वधूका चिरकालतक भोग किया था ॥३७॥ कदाचित भगवान आदीश्वर को संसारसे विरक्तता होगई भरतआदि अपने सौ पुत्रोंको राज्य प्रदान कर मोक्षप्राप्तिकी अभिलाषासे वनको चलदिये और चारहजार राजाओंके साथ दिगंबर दीक्षा धारण कर मुनि होगये ॥३८॥ दिगंबर होते ही उन्हैं चतुर्थज्ञानकी प्राप्ति होगई मति श्रुति अवधि और मनःपर्यय इन चार ज्ञानोंसे भूषित हो एक हजार वर्षपर्यंत घोर तप किया क्षुधा तृषा आदि प्रचंड परीषह जीते घातिया कर्मोंको मूलसे उखाड़कर केवलज्ञान प्राप्त किया केवलज्ञानसे समस्तपदार्थ उन्हैं दर्पणके समान प्रत्यक्ष दीखनेलगे जिससे कि जहांतहां विहारकर धर्मोपदेश दे धर्मतीर्थकी प्रवृत्तिकी और पृथ्वीको दुष्टजीवोंसे रहित किया ॥ ३९–४० ॥ भगवान आदीश्वरने गृहस्थाश्रम और मुनियोंका आश्रम इसप्रकार दो आश्रम बतलाये गृहस्थाश्रमसे स्वर्ग और मुनियोंके आश्रमसे मोक्ष प्राप्त होती है यह उपदेश दिया ॥ ४१ ॥ द्वादशांगरूपी वारह वेद बतलाये उनमें मुख्यतया मुनियोंके आचारका उपदेश दिया उन्हींके अंतर्गत श्रावकोंके भी आचार बतलाये अणुव्रत गुणव्रत शिक्षाव्रतोंके पालक श्रावकोंके लिये अनेक नियम प्रतिपादन किये इसलिये जिन वेदोंका वर्णन भगवान ऋषभदेवने किया है वे आर्षवेद हैं ॥ ४२–४३ ॥ युगकी आदिमें भरत चक्रवर्तीने इन्हीं आर्षवेदोंका अध्ययन कर ब्राह्मणवंशकी स्थापना की थी और वे ब्राह्मण इनही धर्मयज्ञोंको करते थे ॥४४॥ इसप्रकार आर्षवेदोंकी उत्पत्ति बतलाकर अब मैं अनार्षवेदोंकी उत्पत्ति कहता हूं यहांपर यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि अनार्षका अर्थ मनुष्य (गृहस्थ) है और मनुष्योंद्वारा जो वेद बनाया गया हो वह अनार्षवेद है इस अनार्षवेदमें इस युगमें होनेवाले मनुष्योंके मनगढंत तात्पर्योंका वर्णन है ॥ ४५ ॥

धारणयुग्म नगरमें एक सूर्यवंशी राजा रहता था वह शत्रुओंकी दृष्टिमें अयोधन (अजेय) था इसलिये उसको लोग अयोधन कहते थे राजा अयोधनकी स्त्रीका नाम दिति था यह दिति सोमवंशमें उत्पन्न राजा तृणविंदुकी लघुभगिनी थी ॥ ४६–४७ ॥ कदाचित् रानी दितिके स्त्रियोंके समस्त गुणोंसे मंडित एक सुलसा नामकी कन्या हुई जब वह पूर्ण युवति होगई तो उसके पिता अयोधनने उसके विवाहके लिये स्वयंवर किया ॥४८॥ जिससे परम यशस्वी स्वयंवरके अर्थि सगर आदि बड़े २ राजा आदरपूर्वक स्वयंवरमें आये ॥४९॥ एक दिन राजा सगरकी मंदोदरी नामकी प्रतीहारी रानी दितिके घर गई और उसने रानीको एकांतमें सुलसासे इसप्रकारकी बात करते हुये सुना–

"बेटी सुलसा ! तू मुझसे बहुत प्रेम करती है इसलिये मेरी बात सुन तू इस बातको पूर्णतया जानती है कि माताका प्रेम युवती लड़कीके अनुकूल ही होता है ॥५०-५१॥ मेरा बड़ा भाई तृणविंदु है उसकी स्त्रीका नाम सर्वयशोदेवी है और उन दोनोंके मधुपिंगल नामका पुत्र है जो अपनी अद्वितीय सुंदरतासे पृथ्वीमें सबसे अधिक चढ़ा बढ़ा है ॥ ५२ ॥ मैंने मधुपिंगलके देनेकेलिये तेरा प्रथमसे ही संकल्प करलिया है इसलिये तेरेलिये मेरा यही कहना है कि स्वयंवरमें दूसरे मनुष्यके गलेमें वरमाला न डाल उसी के गलेमें डालना और मेरे मनोरथको पूर्ण करना" ऐसा कहकर और अपने वचनोंकी रक्षाका उपाय कठिन जान वह रोने लगी । माताको इसप्रकार दुःखित और रोती हुई देख सुलसाने कहा-"मा ! तू रोवे मत और न किसी प्रकारका अपने मनमें दुःख ही मान । स्वयंवरमें राजाओंके सामने मैं तेरे ही वचनकी रक्षा करूंगी-मधुपिंगलके गलेमें ही वरमाला डालूंगी ।

मा और बेटीकी परस्परकी यह बात सुन मंदोदरी वहांसे चल कन्याके ग्रहण करनेमें परम उत्कंठित राजा सगरके पास आई और उससे वह सारा वृत्तांत कह सुनाया ॥५३-५६॥ राजा सगर बड़ा चालाक था उसके यहां सामुद्रिक शास्त्रका वेत्ता एक विश्वभूति नामका पुरोहित रहता था उसने उस पुरोहितके द्वारा मनुष्यके लक्षणोंको बतलानेवाला एक शास्त्र रचवाया और उसे पुराना बतलानेके लिये धूमसे भदमैला कर लोहेकी संदूकमें भरवा स्वयंवरकी जमीनमें गढ़वादिया धीरे २ स्वयंवरके दिन निकट आने लगे एक एककर राजाओंका भी जमाव होने लगा नियत दिन स्वयंवर मंडप राजा महाराजाओंसे खचाखच भर गया इतनेमें ही राजा सगरने अपनी चतुरतासे उस लोहेके संदूकको निकलवाकर समस्त राजाओंके सामने पेशकिया यह देख राजाओंको मनुष्योंके लक्षण जाननेकी बड़ी अभिलाषा हुई उन्होंने उस पुस्तकके बांचनेके लिये पुरोहितसे बड़ा आग्रह किया जिससे कि वह इसप्रकार बांचने लगा—

जिसके चरण मीन शंख और अंकुशके चिन्होंसे युक्त हों कमलके मध्यभागके समान सुरख हों सुंदर पार्ष्णियों (पसवाड़े) से शोभित हों सघन अंगुलियोंसे मंडित हों चिकने और ललोंए नखोंसे युक्त हों गूढ़ गुल्फों (टकूने) से अलंकृत और नसोंसे रहित हों कुछ उष्ण हों कछुवेके समान उन्नत और पसीना रहित हों उसे राजा समझना चाहिये ॥ ५७-६१ ॥ और जिसके पैर गोल नसोंसे व्याप्त, टेड़े, रूखे नखवाले शुष्क एवं वेगरी अंगुलियोंसे युक्त हों उसे पापी समझना चाहिये ॥ ६२ ॥ छिद्रसहित कषेले रंगके पैर वंश नष्ट करनेवाले मनुष्यके होते हैं जली हुई मिट्टीके समान और पीले महाक्रोधी हिंसकके होते हैं अल्परोमोंसे मंडित और गोल जंघा (तिलियां) शुभ हैं एवं गोल और विशाल जानु (जांघ) भी शुभ हैं किंतु जो जंघा और जानु शुष्क

हों वे अशुभ हैं ॥ ६३–६४ ॥ जिसके एक छेद (कूपक) में एक रोम वा एक बाल हो वह राजा होता है दो रोम या दो बालवाला विद्वान एवं तीन आदि रोम या बालोंवाला मूर्ख और निर्धन होता है ॥ ६५ ॥ जिसबालकका लिंग छोटा हो दक्षिणकी ओर टेढ़ा हो और जिसकी गांठ मोटी हो वह शुभ है एवं इससे विपरीत अशुभ है ॥ ६६ ॥ जिनके वृषण (पोते) छोटे २ होंगे वे वहुत थोड़ा जीयेंगे जिनका एक छोटा एक वड़ा वृषण होगा वे विषयी होंगे बराबर वृषणवाले राजा और लंबे वृषणवाले दीर्घजीवी होंगे ॥ ६७ ॥ पेशाव करनेमें जिनके शब्द होगा वे सुखी और जिनके शब्द न होगा वे दुःखी होंगे। जिसकी मूत्रकी धारा प्रदक्षिणावर्त हो वह उत्तम होता है और इससे विपरीत अनुत्तम होता है ॥ ६८ ॥ जिनके दोनों नितंब अतिशय स्थूल हों वे दरिद्री पुष्टनितंबवाले सुखी एवं मेढ़कके समान उद्धत नितंबवाले व्याघ्रसे मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ ६९ ॥ सिंहके समान कमरवाला राजा होता है बंदर और ऊंटकीसी कटिवाला धनवान बराबर पेटका धारक सुखी और जिसका पेट घड़ा और हांडीके समान हो वह दुःखी होता है ॥ ७० ॥ जिनकी पसड़ी पूर्ण हो वे धनी, नीची एवं टेडी पसलीवाले या नीची कोखवाले भोगरहित और सम कोखवाले भोगी होते हैं। ॥ ७१ ॥ जिनकी कोख उन्नत हों वे राजा, विषम कोखवाले निर्धनी, सर्पके समान पेटवाले दरिद्री और अधिक भोजन करनेवाले होते हैं ॥ ७२ ॥ जिनकी नाभि विशाल उन्नत गंभीर और गोल हो वे मनुष्य सुखी होते हैं और नीची छोटी एवं अदृश्य (दीख न पड़े) नाभिवाले दुःखी होते हैं ॥ ७३ ॥ जिनके मध्यकी त्रिवली विषम हो उन्हें शूलकी बाधा होती है और वही त्रिवली जिनके दाहिनी वा वाहिनी ओर आवर्तयुक्त हो वे बुद्धिमान होते हैं ॥७४॥ कमलकी कलीके समान नाभि राजापनेको सूचित करती है। एवं जिसकी नाभि ऊपर नीचे और पखवाड़ोंमें विशाल हो वह मनुष्य धनी अनेक गौओंवाला और दीर्घजीवी होता है ॥ ७५ ॥ जिसके एक वलि हो वह शास्त्रार्थी या स्त्रीप्रिय होता है दो वलिवाला आचार्य तीनवलिवाला बहुत संतानवाला और चार वलिवाला राजा होता है ॥ ७६ ॥ जिन मनुष्योंकी त्रिवलि सरल हो वे स्वदारसंतोषी होते हैं और जिनकी त्रिवलि कुटिल हो वे पापी अगम्यगामी व्यभिचारी होते हैं। जिनके पसवाड़े पुष्ट और दाहिनी ओर घूमते हुये रोमोंसे युक्त हों वे राजा होते हैं और इससे विपरीत पसवाड़ोंवाले आज्ञाकारी नौकर होते हैं ॥ ७७–७८ ॥ जिन मनुष्योंके स्तनोंके अग्रभाग प्रकट न हों और स्थूल हों वे सुंदर होते हैं और जिनके दीर्घ और विषम हों वे धनरहित होते हैं ॥ ७९ ॥ पुष्ट विशाल उन्नत और कंपरहित हृदयके धारण करनेवाले राजा गिने जाते हैं और इनसे विपरीत एवं कडे रोमोंसे युक्त हृदयके धारक पुण्यहीन निर्धनी होते हैं ॥ ८० ॥

जिनके वक्षःस्थल बराबर एवं पुष्टहों वे मनुष्य राजा या धनी होते हैं। और जिनके लघु और विषम हों वे निर्धनी या शस्त्रसे जीने मरनेवाले होते हैं ॥ ८१ ॥ जिसका जानु पुष्ट हो वह मालिक होता है उन्नत जानुवाला भोगी और जिसका नीचा और हाड़ोंसे आच्छन्न जानु हो वह निर्धनी और विषम जानुवाला विषम होता है ॥ ८२ ॥ जिनकी कांख (कक्ष) पसीनारहित पुष्ट उन्नत सुगंधित एवं समान रोमोंसे व्याप्त हों वे धनवान् होते हैं ॥ ८३ ॥ जिसकी ग्रीवा चिपटी शुष्क और नसोंसे ढकी हुई हो वह पुरुष निर्धनी होता है शंखके समान ग्रीवावाला राजा और महिषके समान ग्रीवावाला शूरवीर होता है ॥ ८४ ॥ जो पृष्ठभाग रोमरहित और सीधा हो वह शुभ होता है और जो रोमरहित झुका हुआ हो वह शुभ नहिं गिना जाता ॥ ८५ ॥ छोटे पतले टेडे एवं रोमवाले कंधे निर्धनके होते हैं विशाल एवं पुष्ट कंधे तेजस्वी या धनवानके होते हैं ॥ ८६ ॥ जिसके हाथ पुष्ट सम लंबे और हाथीकी सूंड़के समान हों वे राजा होते हैं और छोटे २ रोमवाले हाथोंके धारक निर्धनी होते हैं॥ ८७ ॥ जो मनुष्य दीर्घजीवी हैं उनके हाथोंकी अंगुलियां दीर्घ और कोमल होती हैं सुंदर मनुष्योंके हाथोंकी वलिरहित और विद्वानोंके हाथकी छोटी २ होती हैं ॥ ८८ ॥ स्थूल हाथवाले मनुष्य निर्धनी, चिपटे हाथवाले आज्ञाकारी भृत्य, बंदरके समान हाथवाले मालिक और वाघ के समान हाथवाले मनुष्य क्रूर निर्दयी होते हैं ॥ ८९ ॥ जिनके मणिबंधन (पोंचे) गूढ़ और कड़ी संधियोंसे युक्त हों वे राजा होते हैं और ढीलेढाले शब्द करते हुये मणिबंधनोंसे युक्त मनुष्य दरिद्री समझे जाते हैं ॥ ९० ॥ नीची हथेलीके धारक मनुष्य नपुंसक होते हैं और उन्हें माता पिताका धन नहिं मिलता गोल और कुछ नीची हथेलियोंके धारक धनी समझे जाते हैं और जिनकी हथेलियां उन्नतहों वे दानी होते हैं ॥ ९१ ॥ लाल हथेलियोंके धारण करनेवाले धनवान विषम हथेलियोंके धारण करनेवाले क्रूर दरिद्री होते हैं एवं जिनकी हथेलियां पीली और रूक्षहों वे व्यभिचारी और कुरूप समझे जाते हैं ॥ ९२ ॥ जिनके नख तुषके समान हों वे नपुंसक, फटे नखोंके धारण करनेवाले निर्धनी कुछ सुरखाईको लिये हुये नखोंके धारक सेनापति और कुटिल नखोंके धारक तर्कवितर्क करनेवाले होते हैं ॥ ९३ ॥ जिनके अंगूठेपर यवका चिन्ह हो वे मालिक होते हैं जिनके अंगूठेके मूलभागमें चिह्नहो वे बहुत पुत्रवाले एवं जिनके अंगूठेपर निम्न और अतिशय स्निग्ध रेखा हों वे धनी होते हैं एवं इनसे विपरीत लक्षणोंके धारक निर्धनी नोकर आदि होते हैं ॥ ९४ ॥ सघन अंगुलियोंके धारक स्वामी और वेगरी अंगुलियोंके धारक नौकर होते हैं एवं पोंचोंसे हाथतक जिसके तीन रेखा हों वह राजा होता है ॥ ९५ ॥ जिनकी प्रदे-शिनीमें रेखा हो वह दीर्घायु होता है और जिसके कटी रेखा वा थोड़ी रेखा हो

थोड़ी आयुवाला होता है ॥ ९६ ॥ जिसके हाथमें तलवार शक्ति गदा भाला चक्र और तोमरकी रेखा हों वह सेनापति होता है ॥ ९७ ॥ जिनकी टेढ़ी पतली और लंबी रेखा हो वे निर्धन होते हैं पुष्ट ठोड़ीवाले धनी होते हैं और बिंबाफलके समान ओठोंके धारक राजा होते हैं ॥ ९८ ॥ जिनकी डाढ़ें तीक्ष्ण सम और स्निग्ध होवें दांत निर्मल और सघन होवें जीभ सुरख लंबी और कोमल हो वे भोगी मनुष्य होते हैं ॥ ९९ ॥ जिनका मुख गोल सौम्य सम और कुटिलतारहित हो वे राजा होते हैं बडे (भारी) मुखवाले अभागे और कुल्हाड़ी के समान मुखवाले मूर्ख होते हैं ॥ १०० ॥ पुत्ररहित मनुष्यका मुख स्त्रीके समान और नीचा होता है लोभियों का छोटा और निर्धनियों का लंबा होता है ॥ १०१ ॥ शंकु (कीला) के समान कानवाले राजा होते हैं जिनके कानों-पर रोम होते हैं वे दीर्घजीवी होते हैं और जिनकी नाक सरल बराबर पुट (नकुये) वाली और लघु छिद्रयुक्त हो वे भोगी होते हैं ॥ १०२ ॥ जिनको एकवार छींक आवे वे धनवान दो वार तीनवार छींक लेनेवाले विद्वान एवं जिनको जल्दी अथवा देरीसे छींक आवे वे अधिक आयुवाले होते हैं ॥ १०३ ॥ जिनके नेत्र कमलके पत्तेके समान हों एवं कुछ सुरख हों वे लक्ष्मीवान होते हैं और जिनके हाथी एवं बैलके समान हों वे राजा होते हैं ॥ १०४ ॥ जो मनुष्य बिल्लीके समान पिलौंए नेत्रोंके धारक हैं वे महा अमंगलीक हैं पापी हैं दुर्जन हैं अभागे हैं और क्रूर हैं इसलिये उन्हें न कभी देखना चाहिये और न उनके साथ किसी प्रकार की बातचीत ही करनी चाहिये ॥ १०५-१०६ ॥ जिससमय समस्त लक्षणोंके गुण और दोषोंका विचार किया जाय उससमय नेत्रके लक्षणोंपर विशेष ध्यान रखना चाहिये क्योंकि फलकी सिद्धिमें प्रधान कारण नेत्रके ही लक्षण हैं ॥ १०७ ॥ इसतरह विद्वानको चाहिये कि वह मान उन्मान स्वर देहगति कुल उत्तमवर्ण और प्रकृतिको देखकर फलका प्रतिपादन करै" ॥ १०८ ॥

पुरोहित द्वारा इसप्रकार पुस्तकके वांचे जानेपर कुमार मधुपिंगलको बड़ा दुःख हुआ उसे इस बातका पूर्ण विश्वास होगया कि मेरे नेत्रोंमें दोष है—मैं ही दोषी हूं इस-लिये वह तत्काल सभासे उठकर चलागया ॥ १०९ ॥ यद्यपि मधुपिंगल युवा था तो भी उसने किसी बातकी चिंता न की वह सुलसाको सर्वथा त्यागकर दिगंबर होगय और मुनिकी चर्याको धारणकर जहां तहां देशोंमें विहार करनेलगा ॥ ११० ॥ कमलनयनी सुलसाका विवाह स्वयंवरकी रीतिसे राजा सगरके साथ होगया और वह उसके साथ मनमाने भोग भोगने लगा ॥ १११ ॥ सो ठीकही है कि अवसरपर कुछ अंडबंड रूप अधिक बोलनेसे लोग अपनी पंडिताई प्रकटकर कार्यसिद्धि कर लेते हैं परंतु आगामीकाल में बहुत जल्दी आनेवाली आपत्तिका उन्हें अवश्यही सामना करना पड़ता है ॥ ११२ ॥

कदाचित् मुनि मधुपिंगल किसी नगरीमें मध्याह्नके समय पारणार्थ गये और वहां

सामुद्रिक शास्त्रके वेत्ता किसी विद्वानकी दृष्टि उनपर पड़ी ज्योतिषीने पैरसे मस्तक पर्यंत मुनिराजके समस्त अववयोंकी परीक्षाकी उनके शुभलक्षण देख उसै बड़ा आश्चर्य हुआ और मस्तकको हिलाता हुआ वह इसप्रकार कहनेलगा—

"अहा ! इन मुनिका तिलवरावर भी शरीरका कोई अवयव ऐसा नहिं दीखता जो सामुद्रिक शास्त्रकी दृष्टिमें दूषित हो इनका अन्य सुलक्षणोंका समूह तो दूर रहो नेत्रोंकी एक पिलाई ही ऐसी है जो इनके राजत्वको सूचित करती है ऐसे लक्षणोंका धारक भी यह इस यौवन अवस्थामें तपस्वी हो इधर उधर भिक्षा मांगता फिरता है इसलिये ऐसे झूठे सामुद्रिक शास्त्रको धिकार है ॥ ११३–११७ ॥ यदि इसपर दैवका प्रकोप है और वह इसै दुःखही देना चाहता है तो इस निर्दोष गुणराशिसे युक्त इसका यह शरीर क्यों बनाया ॥ ११८ ॥ अथवा यह भी हो सकता है जो मनुष्य संसारकी भयंकर वेदनाओंसे भयभीत और दुःखित हैं वे परिपाक अवस्थामें दुःख देनेवाली विषलताके समान प्राप्तभी इस दुष्ट लक्ष्मीका स्पर्श तक नहिं करते ॥११९॥ यद्यपि यह मुनि शुभ लक्षणोंसे पूर्ण उत्तम वंशका भी है तथापि यह मोक्ष प्राप्त करना चाहता है इसलिये इसका दीक्षित होना युक्तही है" ॥ १२० ॥ ज्योतिषीके ऐसे वचनोंको सुन एक मनुष्यने उत्तर दिया—

"विद्वन् ! क्या समस्त पृथ्वीमें प्रसिद्ध इस मुनिके वृत्तांतको आप नहिं जानते ? कुमारी सुलसाका जो स्वयंवर हुआ था उसमें बहुतसे दुष्ट राजा भी आये थे उन्होंने इसे वीच सभामें नेत्रके लक्षणोंका दोषी ठहराया था ॥ १२१–१२२ ॥ उससमय यह वात खुलासारीतिसे कही गई थी कि जिसप्रकार पीठ पिछार चुगली करनेवाला और दूसरेकी निंदाकर अपनी प्रशंसा करनेवाला मनुष्य नीच तथा निंदित गिना जाता है उसीप्रकार पीले नेत्रोंका धारक भी मनुष्य सामुद्रिक दृष्टिसे नीच और निंदित होता है ॥ १२३ ॥ यह विचारा मधुपिंगल भोला भाला था दूसरोंकी वातपर इसे शीघ्र ही विश्वास आ जाता था इसलिये शुभ लक्षणोंका धारक होनेपर भी उनके वैसा कहनेसे यह अपने आपको अशुभलक्षणवाला मान बैठा इसे बडी लज्जा आई जिससे कि उसीसमय परिग्रहका परित्याग कर मुनि होगया ॥१२४॥ प्रमाद आलस और अभिमानके वशीभूत हो जो मनुष्य अपने आप अपना विचार नहिं करते वे चाहैं परोक्ष वात हो चाहैं अपरोक्ष वात हो उसमें नियमसे दुष्टोंद्वारा ठगे जाते हैं ॥१२५॥ इसतरह जब मधुपिंगल उससभासे उठ आया तो कन्याने राजा सगरके गलेमें वरमाला डाल दी जिससे कि इससमय अनेक क्षत्रियोंसे मंडित राजा सगर उसके साथ मनमाना भोग भोगता हुआ आनंदसे रहता है" ॥१२६॥ वस उसमनुष्यका इतना कहना ही हुआ था कि सुनते ही मुनि मधुपिंगलका सारा शरीर मारे क्रोधके भभक उठा आंखें लाल होगई और यहां तक कि उसी क्रोधके आवेशमें उसके प्राणपखेरू भी उड़गये जिससे कि मरकर व्यंतर

देवोंमें महाकाय (ल) नामका नीच देव हुआ ॥ १२७ ॥ सो ठीक ही है—क्योंकि जिसप्रकार कषेली दवा अपने विरोधी उत्तम मीठी दवाको दूषित करदेती है उसीप्रकार क्रोध आदि कषाय भी अपने विरोधी सम्यक्त्व गुणको मलिनकर देते हैं इसलिये कषाय बडे भयंकर हैं ॥१२८॥ मधुपिंगलके जीव महाकालको पूर्वभवका स्मरण होनेसे राजा सगरने जिसरीतिसे सुलसाका हरण कर उसका पराभव किया था सब साक्षात् दीखने लगा और क्रोधके वश हो हृदयमें भयंकरतासे जलने लगा ॥ १२९ ॥ महा-क्रोधी महाकालका हृदय स्त्रीके वैररूपी विषसे जाज्वल्यमान हो चुका था इसलिये क्षमारूपी जल उसकी जलनको जरा भी शांत न कर सका ॥ १३० ॥ उसने विचारा कि अब मुझे ऐसा उपाय करना चाहिये कि मेरा वैरी सगर बहुत काल तक इस संसारमें दुःख ही दुःख भोगता रहै तनिक भी शांति न पावे ॥ १३१ ॥ सो ठीक ही है मूर्ख मनुष्य जिन उपायोंसे दूसरेका प्रत्यपकार कर अपकारी बनना चाहता है—वैरीसे वैरका वदला लेना चाहता है वह पापी स्वयं नीचा गिरता है ॥ १३२ ॥ क्रोधसे अति दीप्त हो महाकाल सगरकी राजधानीकी ओर चलदिया मार्गमें उसे क्षीरकदंबका पुत्र पर्वत जिसको शास्त्रमर्यादासे नारदने वादमें जीत लिया था मिला पर्वतको देखते ही महाकालने शांडिल्यका रूप धारण करलिया और पर्वतको आश्वासन देता हुआ इस प्रकार कहने लगा—

"प्रियपर्वत! मुझे नारदने वादमें जीतलिया यह विचारकर तुम्हैं विरक्त न होना चाहिये ॥ १३३–१३४ ॥ क्योंकि तुम्हैं मालूम होगा—गुरुवर ध्रौव्यके मैं शांडिल्य, तुम्हारे पिता क्षीरकदंबक, वैन्य, उदंच और प्रावृत्त ये पांच शिष्य थे। तुम मेरे गुरु-भाई क्षीरकदंबकके पुत्रहो जो तुम्हारा पराभव हुआ है उसै मैं अपना ही पराभव समझता हूं इसलिये अब तुम मत घबड़ाओ मैं तुम्हारे पराभव रूप दोषके दूर करनेके लिये सर्वथा उद्यत हूं ॥ १३५–१३६ ॥ तुम मेरी सहायता पाकर निष्कंटक हो समस्त पृथ्वीपर अपने सिद्धांतका प्रसार करो देखो जिसप्रकार अग्नि एकतो स्वयं भयंकर है और दूसरे यदि इसको मित्रस्वरूप पवनकी सहायता मिलजाय तो और भी भयंकर होजाती है—बडेसे बडे वनोंको तत्काल भस्मकर सकती है उसीप्रकार पहिले तो तुमही अकेले बडेभारी विद्वान हो तर्क वितर्कद्वारा अपने सिद्धांतका खूब प्रसार कर सकते हो और फिर मैं तुम्हारा सहायक होगया हूं अब तो कहनाही क्या है! कठिन से कठिन काम करनेमें भी कोई दुःख न उठाना पड़ेगा" ॥ १३७ ॥ महाकाल एकतो स्वयं प्रकृतिका परम दुष्ट था और तिसपर उसने आश्वासन देकर पर्वतको अपने पक्षमें ले अगुआ बनालिया फिर क्या था उसने तत्काल इस भरतक्षेत्रमें राजा तथा प्रजाको सैकड़ों विमारियोंसे आकुलित कर दिया ॥१३८॥ और पर्वतको सिखला उस व्याधिके

दूर करनेकेलिये नाना शांतिकर्म—यज्ञ कराने प्रारंभ करदिये उसके उसप्रकारके यज्ञ करनेसे व्यंतरकृत वीमारियां कुछ २ शांत होनेलगीं इसलिये लोगोंका पर्वतपर वड़ा विश्वास जमगया वीमारीसे घवड़ाये हुये लोग एक २ कर उसकी शरण आने लगे ॥१३९॥ राजा सगरने भी यह वात सुनी वह भी अनेक क्षत्रियोंसे मंडित हो पर्वतके पास आया और उसका वड़ा आदर करने लगा सन्मानसे प्रसन्न हो पर्वतने होम और मंत्रोंके प्रभावसे सगरको वातकी वातमें नीरोग करदिया ॥ १४० ॥ दुष्ट महाकालने जिनमें पूर्णरूपसे हिंसाका वर्णन है अपनें बनाये हुये अनार्षवेद विप्रोंको पढ़ाये और उन्हें अपने वश कर लिया ॥१४१॥ पुत्र आदि नाना फलोंकी अभिलाषा करनेवाले क्षत्रिय आदि मनुष्योंको अश्वमेध अजमेध और गोमेध यज्ञ करने बतलाये और उनका दैवी मायासे ऐसा प्रत्यक्ष फल दिखलाया कि समस्त लोगोंका उसीसमय यज्ञोंपर विश्वास होगया ॥१४२॥ जब इसप्रकार धीरे २ लोगोंका विश्वास उन यज्ञोंमें होने लगा तो उसने राजाओंको नाश करनेवाला—जिसमें सैकडों हजारों राजा इकट्ठे होमे जाते हैं राजसूय यज्ञ चलाया ॥ ॥ १४३ ॥ यज्ञमार्गसे पशुओंको इसप्रकार नष्ट होते देख प्राग्दिवाकर देव नामक विद्याधरको बडी दया आई वह उसीसमय नारदको लेकर आया और इस पापकार्य में विघ्न करनेलगा परंतु देवके सामने विचारे विद्याधरकी चल ही क्या सकती थी महाकालने शीघ्र ही अपनी दैवीमायासे विद्याधरको मोहित करलिया ॥ १४४ ॥ क्योंकि वह देव अणिमा आदि ऋद्धियोंके प्रभावसे चाहैं जैसी माया फैला सकता था उसके सामने मनुष्य चाहैं वह कितने ही विद्यावलसे समृद्ध क्यों न हो क्या कर सकता था ॥ १४५ ॥ अपना और परका सर्वदा अनिष्ट करनेवाले उस देवने ब्राह्मणोंको अपने वशकर यज्ञमें अनेक जीवोंका संहार कराया अंतको उस दुष्टने राजा सगर तथा रानी सुलसाको भी होम दिया और इसप्रकार हिंसासे अपनेको परमसुखी मान निज स्थान चलागया ॥ १४६—१४७ ॥ इसप्रकार राक्षस महाकालने तो क्रोधवश वेदोंकी प्रवृत्तिकी और पर्वत आदिने उनका समस्त पृथ्वीपर प्रचार किया ॥ १४८ ॥ नारदके एक परमसम्यग्दृष्टि पुत्र था। विद्याधर प्राग्दिवाकरदेवने महाविद्याकेसाथ उसे अपनी परम कल्याणी नामकी पुत्री विवाहदी ॥ १४९ ॥ कुमार ! अब वही परमकल्याणी मरकर ब्राह्मणकुलमें क्षत्रियासे उत्पन्न विश्वदेव ब्राह्मणकी पुत्री हुई है और उसका नाम सोमश्री रक्खा गया है ॥१५०॥ एकदिन अवधिज्ञानी मुनिराज करालब्रह्मदत्तने पूछनेपर यह वात कही थी कि कन्या सोमश्रीका पति जो इसे वेदमें जीतेगा वह होगा ॥१५१॥

उपाध्यायके मुखसे इसप्रकार सोमश्रीका वृत्तांत और वेदोंकी उत्पत्तिको भलेप्रकार श्रवणकर कुमारने समस्तवेद पढ़े और वादमें कन्या सोमश्रीको जीत विधिपूर्वक उसका विवाह किया ॥१५२॥ जिसप्रकार वसुदेवमें नववधू सोमश्रीका दृढ़ प्रेम था उसीप्रकार

उसमें कुमार वसुदेवका भी प्रेम दृढ़ था इसलिये उन्हैं कितना सुख था यह अनुभव से जाना जा सकता है उस सुखके वर्णन करनेकी कोई आवश्यकता नहिं ॥ १५३ ॥ कुमारने एकांत स्थानमें रमणी सोमश्रीके पीनस्तनोंका मनमाना पीडन किया केशग्रहण पूर्वक चुंबन किया जंघा ताड़ी एवं नखक्षतपूर्वक अधरका दंशन किया परंतु सोमश्री उससमय कामसे अतिशय व्याकुल थी इसलिये उसके आनंदमें कुमारद्वारा की हुई पीड़ाओंका उसै भानतक भी न हुआ ॥ १५४ ॥ विद्याधरियोंके स्वामी सुंदर रूप और गुणोंसे समस्त विद्याधर लोगोंको जीतनेवाले, रति क्रियामें महा प्रवीण कुमार वसुदेवने गिरितट नगरमें जिनेंद्रकी परमभक्त रमणी सोमश्रीके साथ चिरकालतक मनमाना भोग विलास किया।

इसप्रकार आचार्य जिनसेन द्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें सोमश्रीका लाभ वर्णन करनेवाला तेईसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ २३ ॥

चौवीसवां सर्ग।

गिरितट नगरमें एक सोमशर्मा नामका ब्राह्मण रहता था उसके उपदेशसे एकदिन कुमार किसी उद्यानमें जाकर रातिको विद्या सिद्ध करनेलगे अचानकही उनपर कुछ धूर्तोंकी दृष्टि पड़गई वे उन्हैं पालकीमें विठला प्रातःकाल होते होतेही कहीं दूर लेजाकर छोड़ आये। जिससे कि कुमार वहांसे उठकर तिलवस्तुक नामक नगरकी ओर चल पडे ॥ १–२ ॥ तिलवस्तुकके वाह्य उद्यानमें एक चैत्यालय बना था चलते २ कुमार वहां पहुंचे और थकावटके कारण सोगये इतनेमेंही वहां मनुष्यके मांसका खानेवाला राक्षस स्वरूप एक पुरुष आया और वह कुमारको बड़े जोरसे यह कह जगाने लगा–"ऐ मनुष्य ! उठ उठ तू यहां कोन सो रहा है भूखसे व्याकुल वाघके समान मेरे मुखमें तू स्वयं आकर पड गया है" ॥ ३–४ ॥ राक्षस स्वरूप पुरुषका वैसा भयंकर नाद सुन कुमारकी आंख खुलगई वह भुजा पसार तत्काल कुमारके खानेकेलिये झपटा कुमार अतिशय शूरवीर थे इसलिये उसै अपनी भुजाओंमें जिकड़कर बुरी तरह मार मारनेलगे ॥५॥ उससमय समस्त भूतलको व्याकुल करनेवाला दृढ़ मुष्टियोंके प्रहारोंका घोर और भयंकर नाद होनेलगा वह मनुष्य बड़ाही पराक्रमी था ॥ ६ ॥ इसलिये कुमारने चिरकालतक युद्धकर अंतमें वड़ी कठिनतासे उसे पछाड़ पाया ॥ ७ ॥ कुमारके इस वृत्तांतको सुन प्रातः काल होते ही वहां मनुष्योंके झुंडके झुंड इकट्ठे होने लगे और मनुष्यमांस भक्षीके नाश करनेवाले इस कुमारको देख उसके पराक्रमकी वार वार प्रशंसा करने लगे ॥ ८ ॥ अंतमें उन्होंने रथमें विठा कुमारको नगरमें प्रवेश कराया और परमरूपवती लावण्यवती शीलवती एवं उत्तम कुलोंसे उत्पन्न पांचसौ कन्या-

ओंके साथ उनका विवाह करादिया जिससे कि कुमार वहां आनंदसे रहने लगे ॥ ९ ॥ एकदिन कुमारको नरमांसभक्षी मनुष्यके वृत्तांत जाननेका कौतूहल हुआ उन्होंने नगरके वृद्धोंसे पूछा कि " मनुष्योंके मांसको खानेवाला, अतिशय क्रूर, यह मनुष्य कैसे और कहांसे हुआ !" वृद्धोंने कहा—

कलिंग देशके कांचनपुर नामक नगरका स्वामी राजा जितशत्रु था इस राजाने समस्त शत्रुओंको जीतलिया था इसका कोई भी शत्रु न था इसलिये उसका यह नाम वास्तविक था ॥ १०–११ ॥ यह राजा अपने देशमें नीतिपूर्वक प्रजाको पालता था समस्त लोक इसकी आज्ञाका पूरा पूरा आदर करते थे उसकी इच्छा सदा जीवहिंसाकी निवृत्तिकी रहती थी, इसलिये सर्वत्र उसके राज्यमें अभयदानकी घोषणा जारी थी ॥ १२ ॥ उसके पुत्रका नाम सौदास था सौदास मांसखानेका बड़ा लालसी था इसलिये उसने अपने पितासे मयूरके मांसखानेकी आज्ञा ले रक्खी थी ॥ १३ ॥ प्रतिदिन रसोइया उसके लिये मयूरका मांस तयार कर देता और सौदास महलके भीतर उसे छिपकर खाया करता ॥ १४ ॥ एकदिन मांसपकाकर रसोइया कार्यवश चौकेसे वाहर निकल आया इतनेमें ही एक विल्ली आई और मांस लेकर वह चलती वनी रसोईयाने आकर जब मांस न देखा तो उसे वड़ा भय हुआ वह शीघ्र ही मांसकी खोजमें श्मशान भूमिकी तरफ रवाना हुआ श्मशानमें जा उसने एक मरा हुआ वालक देखा और एकांत पा उसे उठा घर ले आया जिससे वहां आकर उसने उसे खूब बढिया रीतिसे पकाकर तयार करदिया जब सौदास भोजनके लिये घर आया तो मांस खाते ही वह वड़ा प्रसन्न हुआ और मांसके रसमें गरक हो वह वार वार इसप्रकार पूछने लगा—

"भद्र ! आज मांस वड़ा स्वादिष्ट जान पड़ता है यह मांस किसका है ! आजतक मैंने वहुतसे मांस खाये हैं परंतु यह मांस इतना स्वादिष्ट है कि इसके सामने उनमांसोंकी तुलना सौवां भाग भी नहिं हो सकती ॥ १५–१७ ॥ तुम ठीक ठीक कह दो इसमें तुम्हारा ही भला होगा भय मत करो " कुमारका इसप्रकार विशेष आग्रह देख रसोईयाने जो वात की थी सब कह सुनाई ॥ १८ ॥ रसोईयाकी वात सुन सौदासको परम हर्ष हुआ वह वार २ रसोईयाकी तारीफ करने लगा और साथ ही उसे यह आज्ञा दी—"मैं तुमसे अतिशय प्रसन्न हूं इसीतरह मेरे लिये तुम हमेशा नरमांस ला लाकर वनाया करो " ॥ १९ ॥ कुछ दिनके वाद सौदासके पिता राजा जितशत्रुका शरीरांत होनेसे सौदास राजगद्दीपर वैठा उसकी आज्ञानुसार रसोईया प्रतिदिन किसी न किसी विधिसे वालकोंको वे धड़क मार २ कर लाने लगा और उनका मांस सौदासको खिलाने लगा ॥ २० ॥ नगरमें प्रतिदिन वालकोंकी हानि होने लगी हरएक मनुष्यको वालक कम दीखने लगे सवने इस वातकी जांच करनी प्रारंभ की अंतमें एक

दिन नगरके मनुष्योंको यह पता लग गया कि राजा ही बालकोंका मांस खाता है उसीके कारण बालक कम होते जाते हैं तो सबने मिलकर राजाको देशसे निकाल दिया ॥ २१ ॥ वह दुष्ट दिनभरतो वनमें रहता रातको अवसर पाकर बाघके समान नगरमें आ कूदता और किसी न किसी मनुष्यको लेजाकर मार खाता था सो ठीक ही है कु-व्यसनी क्या क्या अनर्थ नहिं कर सकता ॥ २२ ॥ कुमार ! यह समस्त लोकको दुःख देनेवाला था और इसका जीतना असाध्य था आज आपने उस दुष्टको कालके गालमें पहुंचा हमारा महान उपकार किया है आप अपार शक्तिके धारक हैं ॥२३॥ सौदासका इसप्रकार समस्त वृत्तांत सुना वृद्धोंने वस्त्र माला भूषण आदिसे कुमारकी पूजाकी ॥२४॥ इसके बाद कुमार वहांसे अचलग्रामकी ओर चलदिये उससमय अचलग्राममें समुद्रका व्यापारी सेठ रहता था उसके वनमाला नामकी एक पुत्री थी कुमारने उसके साथ विवाह किया ॥ २५ ॥ वनमालाको साथ ले कुमार वहांसे वेदसामपुर गये वेदसामपुरका स्वामी राजा कपिलश्रुति बड़ा उद्भट था कुमारने उसे युद्धमार्गसे जीतकर विधिपूर्वक उसकी कपिला नामकी कन्यासे विवाह किया। कपिलाके भाई अंशुमानसे कुमारकी परम प्रीति होगई जिससे कि वहांपर उनके कुछ दिन रहनेसे रमणी कपिलाके एक कपिल नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २६–२७ ॥ एक दिन कुमार वनमें हाथी पकड़ने गये कु-मारको देखते ही इनके वैरी नीलकंठने 'जो मयूरका रूप धारणकर नीलंयशाको हर लेगया था' गंधहस्तीका रूप धारण करलिया और कुमारको हरण कर आकाशमें ले उड़ा। ऊपर पहुंचते ही कुमारने उसमें बड़े जोरसे मुक्का मारा उसकी चोटसे नीलकंठने हाथीका रूप छोड़ अपना वास्तविक रूप बना वहींसे कुमारको पृथ्वीपर पटक दिया वे किसी जंगलके जलके भरे तालाबमें गिरपड़े और वहांसे निकलकर शालगुहा नामकी पुरीमें जा पहुंचे। उसपुरीमें एक पद्मावती नामकी राजकन्या रहती थी उसके यह दृढ़ प्रतिज्ञा थी कि जो धनुर्विद्यामें मुझे जीतेगा उसके साथ विवाह करूंगी यह जान कुमारने उसे धनुर्विद्यामें हराया और उसके साथ विवाह किया। वहांसे कुमार जयपुर गये और जयपुरके राजाको जीतकर उसीकी कन्याके साथ भी विवाह किया॥ २८–२९–३० ॥ जयपुरसे चलकर कपिलाके भाई अंशुमानके साथ भद्रिल नगर आये उससमय भद्रिल पुरमें पौंड्र नामका राजा राज्य करता था और उसके एक चारुहासिनी नामकी कन्या थी। कन्या चारुहासिनी दिव्यौषधिके प्रभावसे सदा पुरुषका वेष किये रहती थी कुमारको उसके समस्त वृत्तांतका पता लगा और उसके साथ अपना विवाह किया बहुत कालतक भोग विलास करनेसे चारुहासिनीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका नाम सपौंड्र रक्खा गया। एकदिन श्यामाके वैरी विद्याधर अंगारकको कुमारके वहां रहनेका पता लगा रात्रिको वह हंसका रूप धारणकर कुमारके पास आया और उन्हें हरणकर आकाशमें

उड़ा लेगया आकाशमें जा उस दुष्टने निर्दयी होकर कुमारको पूर्वकी भांति छोड़दिया जिससे कि कुमार बीच गंगामें जा गिरे। गंगाको तरकर वे पारपर आये और सवेरा होतेही इलावर्धन नामक एक नगरमें जा पहुंचे ॥ ३१–३४ ॥ नगरमें प्रवेशकर कुमार बाजारमें एक सेठकी दुकानपर गये और वहां सेठद्वारा दिये गये सुंदर आसनपर जा बैठ गये इनके पुण्यके प्रभावसे थोड़ीही देरमें उस वणिककी खूब बिक्री हुई जिससे कि उसकी तमाम दुकान मारे धनके खचाखच भरगई ॥ ३५ ॥ कुमारका यह अचिंत्य प्रभाव देख वणिकको परम आनंद हुआ वह तत्काल उन्हें अपने घर लेगया और आभरण आदिके साथ उनका बहुत सा सन्मानकर अपनी रत्नवती नामकी कन्या उन्हें प्रदानकी वणिकद्वारा दीगई रमणी रत्नवतीको पाकर कुमार अंतराय रहित मनमाने भोग भोगने लगे।

एकदिन कुमार महापुर नगरमें इंद्रध्वज विधान देखने गये। महापुरके बाहिर अनेक उत्तमोत्तम विशाल महल बने थे कुमारने उन्हें देख किसी मनुष्यसे पूछा "ये विशाल महल किसने किसलिये बनवाये हैं" मनुष्यने उत्तरदिया—

"यहांपर एक सोमदत्त नामका राजा राज्य करता है उसके सोमश्री नामकी एक कन्या है पुत्रीको विवाहके योग्य देखकर राजाने स्वयंवर कराया था और स्वयंवरमें आनेवाले राजाओंके ठहरनेके लिये बहुतसे उत्तमोत्तम चित्र विचित्र भी महल बनवाये थे ॥ ३६–३९ ॥ किसी कारणसे कन्या सोमश्रीको स्वयंवरसे विरक्ति होगई इसलिये जितनेभर राजा आये थे वे सबके सब वापिस चलेगये और ये मकान ज्योंके त्यों बने रहगये" ॥ ४० ॥ मनुष्यकी यह बात सुन कुमारको बड़ा आश्चर्य हुआ वे कन्याके मनके भावको विचार आनंदपूर्वक विधान देखनेलगे कुमार उसै देख एक स्थानपर बैठतेही जाते थे कि इतनेहीमें इंद्रध्वज देखनेके लिये राजा सोमदत्तकी स्त्रियां आई और उसे (इंद्रध्वज को) भक्तिपूर्वक नमस्कार कर वापिस चलीं गई ॥ ४१–४२ ॥ उसीसमय एक मत्त हाथी बंधनस्तंभको तोड़ साक्षात् कालके समान अनेक मनुष्योंका संहार करता हुआ जहां तहां घूमने लगा जिन मनुष्योंको उस हाथीने मारा वे उसकी पीड़ासे बड़ाही भयंकर आर्त्तनाद करने लगे और जिनकी ओर वह झपटने चला वे उसे देख हाहाकार मचाने लगे जिससे कि उससमय उनके कोलाहलसे दशो दिशायें शब्दायमान हो गूंज उठीं ॥ ४३–४४ ॥ वह मत्त हाथी जिन रथोंमें स्त्रियां बैठी थीं उनकी ओर भी झपटा यह देख उनमेंसे एक कन्या मारे भयके रथसे पृथ्वीपर गिरपड़ी और पड़तेही मूर्छित होगई। हाथीका यह क्रूर कृत्य देख कुमारसे न रहागया वे समस्त मनुष्योंके देखते देखतेही हाथीपर टूट पड़े उससमय उन्होंने उसमें ऐसी मुक्कोंकी मार मारी कि वह हाथी शीघ्रही निर्मद हो शांत होगया और उस कन्याकी ओर बिल्कुल भी न झपट पाया ॥ ४५ ॥ जब इस तरह वह हाथी बिल्कुल निर्मद और निपसेल होगया

तो कुमार उसै वहीं छोड़ कन्याके पास गये वह कन्या उससमय मारे भयके मूर्छित हो पड़ी थी उसै कुछ भी होश हवास न था यह देख कुमारने उसै आश्वासन दे प्रतिबुद्ध किया प्रतिबुद्ध होतेही उसने कुमार का जो मनोज्ञ रूप निरखा तो वह लंबे लंबे गरम श्वांस लेने लगी उसके दोनों नेत्र आंसुओंसे व्याकुल होगये हृदय भर आया उसने लज्जासे नम्रमुखी हो तत्काल कुमारका हाथ पकड़लिया जिससे कि उसका स्पर्श करतेही वह परम सुखका अनुभव करने लगी ।।४६–४८।। इसकेवाद कुमार तो वहांसे अपने स्थान चले गये और धाय एवं वृद्ध स्त्रियां कन्याको साथ ले वहांसे सानंद अंतःपुर पहुंच गई ।

वणिक कुवेरदत्तके महलमें एकदिन कुमार भूषण आदि पहिनकर वैठे थे कि राजा सोमदत्तकी आज्ञासे उसीसमय प्रतिहारी आई और विनम्र हो उनसे इसप्रकार निवेदन करने लगी—

" देव ! यह वात आपको पूर्णतया विदित है कि महापुर नगरका स्वामी राजा सोमदत्त है उसकी रानीका नाम पूर्णचंद्रा है और उन दोनोंके भूरिश्रवा नामका पुत्र और सोमश्री नामकी कन्या है । सोमश्रीको विवाहके योग्य जान राजा सोमदत्तने उसके स्वयंवरकेलिये देश देशांतरोंसे अनेक राजाओंको निमंत्रण देकर बुलाया था ।।४९–५२ ।। एकदिन रातिमें कन्या सोमश्री महलके ऊपर सोरही थी कि अचानकही आकाश मार्गसे जाते हुये देवोंको देखकर उसै जातिस्मरण होगया और वह अपने पूर्वभवके देव–पतिके प्रेममें डूबकर मूर्छित होगई ।। ५३ ।। शीतोपचार द्वारा जबसे वह होशमें आई है तबसे अपने पूर्वभवके देव–पतिका ही ध्यान कर रही है वह उस ध्यानमें इतनी लीन होगई है कि उसै खान पानकी भी चिंता नहीं रही है स्नान आदि नित्य क्रियायोंको छोड़ वैठी है और यहांतक कि वातचीत करना भी वंद कर दिया है । ।। ५४ ।। मैंने उसै एकांतमें ले जाकर पूछा तो बड़ी कठिनतासे उसने पूर्व जन्ममें देव-पतिके साथ किये हुये भोग विलासोंका समाचार कहा और साथही साथ यह भी कहा—कि जब मैं देवांगना थी तो मेरा पति मरगया मुझै उससे बहुत प्रेम था इस-लिये मै केवलीके पास गई और मैंने पूछा कि मेरे पतिने कहां जन्म धारण किया है? उत्तरमें मुनिराजने कहा था कि तेरा पति हरिवंशमें उत्पन्न हुआ है और वह कभी विद्याधर क्षेत्रमें आकर हाथीको निर्मद करैगा" । कुमार ! आपने हाथीको वश किया है आप-के दर्शन भी वह कर चुकी है आपही पूर्वभवमें उसके पति हैं मनुष्योंको भी इस वातका पूर्ण निश्चय होगया है इसलिये वह सोमश्री अब आपके पुनः शुभदर्शन करना चाहती है ।। ५५–५७ ।। मैंने आपका यह समस्त वृत्तांत राजासे भी कह दिया है राजाने सोमश्रीके ही कारण मुझै यहां भेजा है। प्रियकुमार ! वस मेरी यही प्रार्थना है कि आप सोमश्रीके साथ अपना विवाह करलें" ।।५८।। प्रतिहारीद्वारा इसप्रकार सोम-

श्रीका समाचार जान कुमार बड़े प्रसन्न हुये और वहांपर जा उसके साथ सानंद विवाह करलिया ॥ ५९ ॥ कुमार और सोमश्री दोनोंही परम सुंदर थे इसलिये आपसमें एक दूसरेका रसपान और आस्वादन करते हुये वे सुखसे वहां रहनेलगे ॥ ६० ॥

एक दिन रमणी सोमश्री कुमारके भुजपंजरमें सानंद सोरही थी उसीसमय उसका वैरी एक विद्याधर आया और उसे (सोमश्रीको) हरण कर लेगया ॥६१॥ कुछ समय वाद कुमारकी आंख खुली सोमश्रीको अपने पास न देख वे अतिशय व्याकुल हुये और हाय! सोमश्री तू कहां चलीगई जल्दी आ! जल्दी आ!! इसप्रकार उसै पुकारने लगे ॥ ६२ ॥ जिस विद्याधरने सोमश्रीका हरण किया था उसकी बहिनने कारणवश वसुदेवके पास आ सोमश्रीका रूप धारण कर लिया और उनका शब्द सुनते ही कहा– "मैं यह तो हूं" सोमश्रीका यह विचित्र दृश्य देख कुमारने पूछा—

"प्रिये! तुम वाहिर क्यों गई थी" विद्याधरीने उत्तर दिया–मुझै यहां गर्मी अधिक लग उठी थी इसलिये बाहिर चली गई थी ॥६३–६४॥ तात्पर्य यह था कि कुमारका रूप परम सुंदर था उससे मोहित हो विद्याधरीने अपना रूप बदलकर सोमश्रीका रूप धारण कर लिया और अपना कन्यापना छोड़ उनके साथ आनंदसे रमण क्रीड़ा करने लगी ॥ ६५ ॥ वह विद्याधरी बड़ी चालाक थी रतिक्रीड़ाकर जब कुमार सोजाते तब तो वह सोती और जब वे सोकर उठते तो उनसे पहिले ही उठकर उनके पैर आदि दाबने लग जाती जिससे कि कुमारको असली नकली सोमश्रीका बहुत कालतक पता नहिं लग पाया ॥ ६६ ॥ एक दिन ऐसा हुआ कि कुमार पहिले उठ बैठे और नकली सोमश्री सोतीही रह गई ज्योंही उसपर कुमारकी दृष्टि पड़ी उसै सोमश्रीके रूपसे रहित देख उन्हैं बड़ा आश्चर्य हुआ उसीसमय विद्याधरी भी उठ बैठी उसै उठते ही कुमारने पूछा–"अरी सोमश्रीके समान तू कौन है" विद्याधरीने नमस्कार कर उत्तर दिया– "नाथ! विजयार्ध गिरिकी दक्षिण श्रेणीमें एक स्वर्णाभ नामका नगर है उसका स्वामी चित्तवेग नामका विद्याधर था। राजा चित्तवेगकी स्त्रीका नाम अंगारवती है और उन दोनोंके मानसवेग नामका एक पुत्र और वेगवती नामकी मैं पुत्री हूं ॥६७–७० ॥ एक दिन मेरे पिताको संसारसे उदासीनता होगई वे मेरे भाई मानसवेगको राज्य सौंप पापोंके नाशार्थ तपोवनमें जाकर दिगंबर दीक्षासे दीक्षित होगये ॥ ७१ ॥ राज्य पानेसे मत्त, मेरा भाई मानसवेग किसीदिन रातमें यहां आ सोमश्रीको हरकर ले गया सोमश्री परम शीलवती है और स्वर्णाभपुरमें रहती है ॥७२॥ मेरे भाईने सोमश्रीके रिझानेके लिये मुझे कहा मैं उसके पास गई मैंने उसे राजी करनेके लिये वेहद उपाय किये परंतु वह शीलशिरोमणि थी उसने मेरी एक भी वात न मानी अंतमें हारकर मैं उसके सत्य शीलव्रतपर मुग्ध हो उसकी सखी होगई ॥ ७३ ॥ मैं उसने यहां अपना

वृत्तांत निवेदन करनेके लिये भेजी थी परंतु आपकी अद्वितीय रूप महिमा देख मैं आपपर मुग्ध होगई और आपकी अर्धांगिनी बन रहने लगी सो ठीक ही है चित्तकी वृत्ति विचित्र होती है" ॥ ७४ ॥

इसप्रकार रमणी वेगवती द्वारा क्रमपूर्वक मानसवेग द्वारा सोमश्री का हरण आदि वृत्तांत सुन कुमारको बडा खेद हुआ उन्होंने वेगवती द्वारा कहा गया समस्त वृत्तांत सोमश्रीके माता पिता आदिको भी सुनादिया जिससे कि सबको बडा ही खेद हुआ और इसके बाद वेगवतीने अपना वास्तविक स्वरूप धारण कर चिरकाल तक कुमारके साथ काम क्रीडाकी ॥ ७५-७६ ॥

रमणी वेगवतीके साथ सुखपूर्वक भोग भोगते कुछ समयके बाद वसंत ऋतुका आगमन हुआ जहांतहां नवीन मधु पीकर मत्त भौंरे गुन गुनाहट करने लगे। एकदिन रतिक्रीडासे खिन्न रमणी वेगवतीके साथ कुमार आनंदसे सो रहे थे कि उसीसमय फिर मानसवेग विद्याधर आया और कुमारको हरण कर लेगया। आकाशमें जाते हुये ज्योंही कुमारकी नींद खुली त्योंही उन्होंने उसकी मुक्कोंसे पूजा करना प्रारंभ की मारे मुक्कोंके विद्याधर घबडा उठा और भयसे उन्हैं गंगाजलमें छोड़ चलता बना। वहांपर एक विद्याधर विद्या सिद्ध कर रहा था कुमार आकाशसे उसके कंधेपर पडे जिससे कि उनके दर्शनमात्रसे ही उसे विद्या सिद्ध होगई ॥ ७७-८० ॥ कुमारके प्रभावसे विद्याको सिद्ध हुई समझ विद्याधरने उन्हैं भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और सहर्ष अपने घर चलागया। इसके बाद किसी विद्याधर कन्याने वहां कुमारको देखा और वह उन्हैं सुखसे विजयार्ध पर ले आई ॥८१॥ विजयार्धमें एक नभस्तल नामका नगर है ज्योंही कुमार वहां पहुचे देखते ही विद्याधरोंने इन्हैं प्रणाम किया पंचवर्णके पुष्पोंकी वर्षा की जिससे कि समस्त नगर पुष्पोंसे आच्छादित ही आच्छादित दीखने लगा इसके बाद उन लोगोंने सूर्यके समान देदीप्यमान कुमारको रथमें सवार किया और बड़े ठाठवाटसे नगरमें प्रवेश कराया उससमय दुंदुभी और शंख आदि वादित्रोंके शब्दोंसे समस्त दिशामंडल व्याप्त होगया था ॥ ८२-८३ ॥ कुमार कामदेवके समान कमनीय थे इसलिये उनके रूप और गुणोंपर मुग्ध होकर दधिमुख आदि विद्याधरोंने बड़े आनंदसे उन्हैं मदनवेगा नामकी कन्या प्रदानकी और कुमारने भी बड़े हर्षसे उसके साथ विवाह किया ॥ ८४ ॥ रमणी मदनवेगा पीन निविड़ स्तनोंसे शोभित थी उसे देखते ही कुमारके मदनका वेग न रुक सका इसलिये उसके साथ बहुतकाल तक मनमानी रमण क्रीडा करने लगे ॥ ८५ ॥

एकदिन जिनधर्मके प्रसादसे कुमार रमणी मदनवेगाके साथ कामजनित सुखका अनुभव कर रहे थे कि रतिकालमें रमणी मदनवेगाने उन्हैं अति आनंद दिया इसलिये

मदनवेगासे प्रसन्न हो कुमारने कहा—प्रिये ! हम तुमसे अति प्रसन्न हैं जिसवातका वर मागना हो मागों ? उत्तरमें मदनवेगाने निवेदन किया "नाथ ! मेरे पिता कैदमें पड़े हैं यही प्रार्थना है आप उन्हें कैदसे मुक्त करदेवें ॥ ८६ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें मदनवेगाका लाभ वर्णन करनेवाला चौवीसवां सर्ग समाप्त हुआ।

पच्चीसवां सर्ग।

एकदिन कुमार सानंद बैठे थे कि रमणी मदनवेगाका भाई दधिमुख अपने पिताको बंधनसे छुड़ानेकी अभिलाषासे उनके पास आया और जिसरीतिसे उसके पिता बंधनमें पड़े थे आद्योपांत समस्त वृत्तांत इसप्रकार कहनेलगा—

"राजा नमिके वंशमें बहुत राजाओंके पश्चात् अरिंजय पुरका स्वामी राजा मेघनाद हुआ उसके एक पद्मश्री नामकी कन्या थी जब नैमित्तिकोंसे यह पूछा गया कि इसका पति कोन होगा ? तो उत्तरमें उन्होंने यही कहा कि इसका पति चक्रवर्ती होगा और उसकी यह चौदह रत्नोंमें स्त्रीरत्न बनैगी ॥ १-३ ॥ उसीके समयमें नभस्तिलक पुरका स्वामी एक राजा वज्रपाणि भी हुआ। कन्या पद्मश्रीके सौंदर्यपर मुग्ध हो उसने अनेक वार उसै मागा जब उसै कन्याका लाभ न होसका तो उस दुष्टने रुष्टहो युद्धठान दिया मेघनाद प्रबलशक्तिका धारक था वज्रपाणि उसै युद्धमें न जीतसका इसलिये वह हारकर नभस्तिलकपुर लोट गया ॥ ४-५ ॥ उससमय किसी मुनिराजको केवल ज्ञान हुआ था, अनेक सुर असुर उनके दर्शनार्थ आये थे राजा मेघनाद भी उनके समवशरणमें गये और उन्होंने भक्तिपूर्वक पूजाकर यह पूछा—प्रभो ! इस भरतक्षेत्रमें मेरी पुत्रीका पति कौन होगा ? मेघनादका प्रश्न सुन मुनिराज कन्याके पति और उसके वर आदिका इसप्रकार वर्णन करनलगे—

" इसी पृथ्वीपर एक गजपुर नामका नगर है उसका स्वामी कौरव वंशसे उत्पन्न राजा कीर्त्तवीर्य था जो प्रचंड प्रतापी होनेसे वडा उद्धत था ॥ ६-८ ॥ उसके राज्यमें किसी जमदग्नि नामक ऋषिके पास एक कामधेनु गाय थी राजाने उसै वहुत मागा जब तपस्वीने उसे देनेसे इनकार करदिया तो उस पातकीने दीन तपस्वीको प्राण रहित करदिया और गायको छीन लिया। जमदग्निका एक पुत्र परशुराम था ज्योंही उसके कानमें राजा कार्त्तवीर्यकी इस दुष्टताका समाचार पडा उसका मगंज फिर गया क्रोधमें आ उसने समस्त क्षत्रियोंको दुष्ट समझ उनके संहार करनेकी मनमें ठानली सबसे पहिले उसने अपने पिताके मारनेवाले राजा कार्त्तवीर्यको ही देखते देखते परलोकका पथिक वनाया ॥ ९ ॥ और उसके वाद युद्धद्वारा सैकडों क्षत्रियोंका मय स्त्री पुत्रोंके संहार करना प्रारंभ किया ॥ १० ॥

राजा कार्त्तवीर्यकी स्त्री तारा उससमय गर्भवती थी परशुरामके भयसे एकदिन अवसर पाकर वह नगरसे निकल आई और बनमें जा ऋषि कौशिकके आश्रममें रहने लगी ॥११॥ वहां रहते रहते कुछ दिनबाद उसके पुत्र हुआ है जो समस्त क्षत्रियोंका त्रास दूर करनेवाला और अष्टम चक्रवर्ती है ॥ १२ ॥ वह बालक भूमिगृह (भोंरे) में हुआ था इसलिये उसका नाम सुभौम रक्खा गया है और ऋषि कौशिकके मनोहर आश्रममें रह प्रच्छन्न रूपसे दिनोंदिन बढ रहा है ॥१३॥ अब वह परशुरामका मारनेवाला प्रतापी चक्रवर्ती होगा और वही थोडे दिनोंके बाद तुम्हारी कन्याका पति बनैगा ॥१४॥ परशुराम यमराजके समान क्रूर है उसने सातवार क्षत्रियोंका संहार किया है और ब्राह्मणोंका हितकरनेके लिये सर्वदा विचार करता रहता है ॥ १५ ॥ इससमय वह एकातपत्र पृथ्वीका भोग कर रहा है और प्रतापरूपी जाज्वल्यमान अग्निसे समस्त दिशाओंको व्याप्त कर जला रहा है ॥ १६ ॥ जैसे जैसे बालक सुभौम ऋषि कौशिकके आश्रममें बढनेलगा राजा परशुरामके घर भी वैसे ही वैसे सैकडों उत्पात होने प्रारंभ हुये ॥ १७ ॥ उन्हें देख परशुरामके चित्तमें बडी आशंका हुई इसलिये एकदिन उसने नैमित्तिकसे पूछा "ये जो मेरे घरमें सैकडों उत्पात हो रहे हैं इनसे क्या अनिष्ट होगा ?" नैमित्तिकने कहा कहींपर आपका वैरी प्रच्छन्नरूपसे बढ रहा है" परशुरामने फिर पूछा उसकी जांच कैसे करनी चाहिये ? उत्तरमें नैमित्तिकने कहा आपने बहुतसे क्षत्रियोंका संहार किया है उनकी डाढोंको आप किसीपात्रमें भरवाकर रख दीजिये आपके यहां आकर जिसके भोजन करते ही वे डाढें पायस (खीर) होजावें समझ लीजिये वही आपका प्रचंड शत्रु है" ॥१८–२०॥ जबसे नैमित्तिकके ऐसे वचन सुने हैं तभीसे अपने शत्रु क्षत्रिय (शिरोमणि बालक सुभौम) के मारनेकी इच्छासे परशुरामने एक विशाल दानशाला खुलवा दी है एवं मृतक्षत्रियोंकी डाढें भरवाकर एक पात्रमें रखवा दी हैं और दानशालाके स्वामीको समस्त वृत्तांत समझा दिया है जिससे कि वह बड़े प्रयत्न से शत्रु (सुभौम) की खोज करनेमें लग रहा है" ॥ २१–२२ ॥ केवलीके मुखसे यह समाचार सुन राजा मेघनाद उन्हें नमस्कार कर घर आया और वहांसे कुमार सुभौमको देखनेके लिये हस्तिनापुर गया। कुमार सुभौम उससमय समस्त शास्त्र कलाओंमें पारंगत थे पूर्ण शोभासे मंडित थे एवं देदीप्यमान प्रतापसे मंडित ऊगे हुये सूर्यके समान जान पडते थे ॥ २३–२४ ॥ उन्हें देख किसी दिन अवसर पाकर राजा मेघनादने सारा वृत्तांत कह सुनाया उसके पिताके साथ जो परशुरामका वैर था वह भी सुझादिया और परशुरामके मारनेकेलिये उसे प्रेरित करदिया। राजा मेघनादके मुखसे वैसे वचन सुन कुमार मारे क्रोधके उबल उठा और परशुरामके नाश करनेकेलिये तत्काल सन्नद्ध होगया ॥२५॥ राजा मेघनादके साथ साथ वह तत्काल परशुरामके घरकी ओर चलदियाँ दानशाला

में आकर कुशके आसनपर बैठकर बुभुक्षित बन भोजन करने लगा ॥ २६ ॥ दानशालाके अध्यक्षने इसके सामने दंष्ट्रा भोजन परोसा और वह कुमारके प्रभावसे तत्काल खीररूप होगया ॥ २७ ॥ ज्योंही अध्यक्षोंने डाढोंको खीर होते हुये देखा वे वहांसे दौड़े और सारा वृत्तांत राजासे कह सुनाया। सुनते ही परशुरामने हाथमें फरसा ले लिया और वह शत्रुके मारनेके लिये तत्काल दानशालाकी ओर चल पड़ा ॥ २८ ॥ कुमार सुभौम उससमय थालीमें भोजन कर रहे थे ज्योंही परशुराम उनके पास पहुंचा थाली तत्काल सुदर्शनचक्र बन गई जिससे कि सुभौमने तत्काल मारकर परशुरामको परलोक पहुंचाया ॥ २९ ॥ इसके बाद राजा सुभौमके चक्रवर्तीकी लक्ष्मी प्रगट होगई चौदह रत्न नव निधियां आगई बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा सेवा करने लगे यह देख मेघनादने अपनी सोमश्री कन्या भी प्रदान करदी और वह चौदह रत्नोंमें स्त्री रत्न बनी। सोमश्रीके लाभसे संतुष्ट हो चक्रवर्तीने राजा मेघनादको समस्त विद्याधरोंका स्वामी बनाया जिससेकि उसने अपने वैरी वज्रपाणिको जानसे मारडाला ॥३०-३१॥ परशुरामने सातवार पृथ्वीको क्षत्रियरहित बनानेका प्रयत्न किया था इसलिये राजा सुभौमने इक्कीसवार ब्राह्मणोंका संहार किया सो ठीकही है—शठ शठके साथ प्रतिशठता अवश्य करता है ॥ ३२ ॥ राजा सुभौम साठ हजार वर्षतक पृथ्वीपर जीया अनेक उत्तमोत्तम भोग भोगे तथापि विषयोंसे उसका चित्त तृप्त न हुआ इसलिए पापके उदयसे मरकर उसे सातवें नरक जाना पड़ा ॥ ३३ ॥ सुभौमके श्वसुर राजा मेघनादके छठी पीढ़ीमें राजा वलि हुआ यह वलि तीन खंडका स्वामी (अर्धचक्री) प्रतिनारायण था और अनेक प्रकारकी विद्याओंमें प्रवीण था उसीसमय नंद और पुंडरीक नारायण और बलभद्र हुये ये दोनों महापुरुष बड़े बलवान थे नारायण नंदने प्रतिनारायण वलिको संग्राममें प्राणरहित किया और स्वयं अर्धचक्री बना ॥ ३४-३५ ॥ राजा वलिके वंशमें सहस्रग्रीव पंचशतग्रीव द्विशतग्रीव आदि बहुतसे राजा हुये और क्रमसे उसीवंशमें बहुत कालके बाद हमारा पिता और आपका श्वसुर राजा विद्युद्वेग हुआ ॥ ३६ ॥ कदाचित् राजा विद्युद्वेगने अवधिज्ञानी मुनिराजसे नमस्कार पूर्वक पूछा—"प्रभो! मेरी पुत्री मदनवेगाका पति कौन होगा ?" उत्तरमें मुनिराजने कहा—

तुम्हारा पुत्र चंडवेग किसी दिन गंगाके मध्यमें बैठकर रातमें विद्या सिद्ध करेगा उससमय जो उसके कंधेपर आकाशमार्गसे गिरेगा वही नियमसे तुम्हारी कन्याका पति होगा ॥ ३७-३९ ॥ मुनिराजके वचनोंपर पूर्ण विश्वासकर मेरे पिताने जिसका वेग महा प्रचंड है ऐसी गंगामें विद्या सिद्ध करनेकेलिये चंद्रवेगको आज्ञा देदी ॥ ४० ॥

इसके बाद नभस्तिलक पुरके स्वामी राजा त्रिशिखरने अपने पुत्र सूर्य(प)ककेलिये कईवार मेरे पितासे मदनवेगा मांगी परंतु उसने (मेरे पिताने) उसे देनेकेलिये

सर्वथा मनाई करदी जब उसै किसी उपायसे मदनवेगा न मिली तो उस दुष्टने मेरे पितासे अवसर पाकर युद्ध ठान दिया और चालाकीसे उनको पकड़ वैरसे अंधा हो कारागृह (कैदखाना) में पटक दिया ॥ ४१–४२ ॥ प्रिय कुमार ! हमैं शुभ भाग्यके उदयसे आपकी प्राप्ति हुई है बस आपसे यही प्रार्थना है कि आप अपने श्वसुरको किसी न किसी प्रकार कैदसे मुक्त करैं ॥ ४३ ॥ विद्याधर मेघनादके समयमें चक्रवर्ती राजा सुभौमने प्रसन्न हो अनेक विद्याशस्त्र दिये थे वे ये हैं शत्रुके नाश करनेके लिये आप इन्हें यथेष्ट ग्रहण कीजिये " ॥ ४४ ॥

विद्याधर दधिमुखसे प्रतापी कुमार वसुदेवने इसप्रकार अपने श्वसुरका वृत्तांत सुन उनके मुक्त करनेका पूर्ण निश्चय कर लिया ॥ ४५ ॥ यह देख चंडवेगने जिनकी अनेक देव सेवा करते थे ऐसे ब्रह्मशिर, लोकोत्सादन, आग्नेय, वारुण, माहेंद्र वैष्णव, यमदंड, ऐशान, स्तंभन, मोहन, वायव्य, जृंभण, बंधन, मोक्षण, विशल्यकरण, व्रणसंरोहण, सर्वास्त्राच्छादन, छेदन, हरण, आदि अनेक शस्त्र वसुदेवको दिये और उनके चलानेकी विधि भी बतलाई ॥ ४६–५० ॥

राजा त्रिशिखर बलका बड़ा घमंडी था युद्धकी इच्छासे उसने फिर राजा विद्युद्वेगके नगरपर चढाई कर दी और सेनासहित नगरके समीप आ पड़ाव डाल दिया । ॥ ५१ ॥ ज्योंही कुमार वसुदेवने यह समाचार सुना वे यह विचार कि जिस वध्य पर चढ़कर हम जानेवाले थे वह वध्य (शिकार) स्वयं हमारे यहां ही आगया बड़े प्रसन्न हुये और सेनासहित दधिमुख आदि अपने श्वशुरके पुत्रोंको साथ ले तत्काल युद्धके-लिये नगरसे चलदिये ॥ ५२ ॥ उससमय विद्याधरोंके मध्यमें कुमार वसुदेव देवोंके मध्यमें इंद्रकी शोभा धारण करते थे ॥ ५३ ॥ और राजा त्रिशिखर मातंगजातिके विद्याधरोंके मध्यमें क्रूर राक्षसोंके वीच चमरेंद्र सरीखा जान पडता था ॥ ५४ ॥ उस समय दोनों सेनाओंके बडे बडे विमानोंसे, मत्त हाथियोंसे और पवनके समान शीघ्र गामी घोडोंसे समस्त आकाश आच्छन्न हो गया था ॥ ५५ ॥ सेनाओंके शस्त्रोंकी चमक दमकने उससमय सूर्यका तेज ढक दिया था और भेरी आदिके उन्नत शब्दोंने दिशाओंको गुंजा दिया था ॥ ५६ ॥ जिससमय योधा लोग धनुषको कानतक खीचकर वाण मारते थे उससमय शत्रुओंके वाह्य हृदय ही भिदते थे अंतरंग नहीं–उनके अंतरंगमें जैसाका तैसा जोश भरा रहता था ॥ ५७ ॥ संग्राममें चक्रोंकी उग्रधारासे वीरोंके शिर कट जाते थे परंतु चंद्रमा और शंखके समान स्वच्छ उनके यश नष्ट नहिं होते थे उनकी कीर्ति संसारमें अजर अमर रही थी ॥ ५८ ॥ खड्गकी तीक्ष्ण धाराओंसे मूर्छित हो सुभट, संग्राम भूमिमें गिरने लग गये थे किंतु पहिले वहुतसे रणोंसे प्राप्त हुआ उनका प्रताप नष्ट न हुआ था ॥ ५९ ॥ उससमय समस्त योधाओंका चित्त

शत्रुओंसे विजय पानेके लिये उत्कंठित था इसलिये घोर मुद्गरोंकी चोटसे उनके नेत्र घूमने लगे थे परंतु मन चल विचल नहिं हुआ था ॥६०॥ संग्रामके अंदर शूर वीरतामें एकसे एक चढ़ा बढ़ा था इसलिये हाथी घोड़ा रथ और पदाति इन चारोप्रकारकी सेनाने यथायोग्य बड़े उत्साहसे युद्ध किया ॥ ६१ ॥ अधिक क्या कहें उससमय सामन्यसे सामान्य भी शस्त्र तलवार भाला आदि चलानेवाले योधाओंने बड़े उत्साह-के साथ खेद रहित चिरकालतक शत्रुकी सेना पर वार किया ॥ ६२ ॥ इसतरह घम-सान युद्ध होनेपर विद्युद्वेगके पुत्र चंडवेगने शत्रु पक्षके सूर्यक अंगार वैगारि और नी-लकंठ आदिको अपनी प्रबल शक्तिसे जीतलिया ॥ ६३ ॥ राजा त्रिशिखरसे यह बात न देखी गई वह तत्काल लडनेकेलिये कुमारके सामने आया। उससमय कुमार पवनके समान शीघ्रगामी घोड़ोंके रथमें सवार थे जिसका कि हांकनेवाला (सारथि) उनका साला दधिमुख था और अनेक प्रकारके शस्त्र अस्त्र धारण करनेसे भयंकर होरहे थे । कुमार और त्रिशिखरका बहुतकालतक तो सामान्य शस्त्रोंसे ही युद्ध होता रहा एवं उन दोनोंकी बाणवर्षासे आकाश आच्छन्न ही आच्छन्न होगया ॥ ६४—६५ ॥ इसके बाद दिव्य अस्त्रोंसे युद्ध होना प्रारंभ हुआ सबसे पहिले धनुर्धर कुमार वसुदेवने आग्नेय अस्त्र छोड़ा और उसकी कराल ज्वालासे त्रिशिखिरकी सेना व्याकुल हो भयंकरतासे जलने लगी ॥ ६६ ॥ यह देख राजा त्रिशिखिरने उसके निवारणार्थ वारुण अस्त्रका प्रयोग किया जिससे कि आग्नेय अस्त्रका बल रुकगया चारो ओरकी अग्नि शांत होगई। तथा उसके बाद एक मोहन अस्त्र भी छोड़ दिया जिससे कि कुमारकी समस्त सेना मोहित हो युद्ध करना भूल गई ॥ ६७ ॥ इसके विरोधमें कुमारने चित्तप्रसादन अस्त्र छोड़ा जिससे मोहन अस्त्रका बल नष्ट होगया और सेना जैसीकी तैसी होगई। विरोधी अस्त्र-से सेनाको प्रबुद्ध देख त्रिशिखिरने वारुण अस्त्र छोडा और कुमारने उसे वायव्य अस्त्रसे उडा दिया ॥ ६८ ॥ इसप्रकार उन दोनोंमें एक दूसरोंके अस्त्रोंके विरोधी अस्त्रों-के चलानेसे बहुत कालतक युद्ध होता रहा अंतमें त्रिशिखिरकी हार हुई वह शत्रुके विरुद्ध अस्त्र न चला सका यह देख शीघ्र ही कुमारने माहेंद्र अस्त्रका प्रयोगकर उसका शिर काटलिया ॥ ६९ ॥ त्रिशिखरकी सेनाके विद्याधरोंने जब अपने स्वामी त्रिशिखरको मरा हुआ देखा तो वे एक एककर दिशाओंको छोड़ विदिशाओंमें भागने लगे और जिसप्रकार सूर्यके चले जानेपर उसकी किरणें भी चली जाती हैं उसीप्रकार रणस्थलसे आंखोंकी ओझल होगये ॥ ७० ॥ इसके बाद कुमार अपने संबंधी समस्त विद्याधरोंको साथले त्रिशिखरके नगर गये वहां जा अपने श्वशुरको बंधनसे मुक्त किया और सबोंके साथ २ सानंद अपनें नगर लौट आये ॥ ७१ ॥

देखो ! प्रतापी कुमार वसुदेवने उत्तमधर्मके प्रसादसे अनेक विद्याधरोंसे अजेय

भी त्रिशिखिर शत्रुको जीतलिया और बहुतसे लोगोंके सेवनीय होगये सो ठीकही है धर्मका प्रभाव अचिंत्य है उसे कोई नहीं विचार सकता ॥ ७२ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेन द्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें मदनवेगाके लाभमें राजा त्रिशिखरका वधवर्णन करनेवाला पच्चीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥२५॥

छब्बीसवां सर्ग ।

कुमारके साथ चिरकाल भोग भोगनेसे रमणी मदनवेगाके एक पुत्र हुआ और उसका नाम अनावृष्टि रक्खा गया यह सुंदरतामें कामदेवकी तुलना करता था और परम नीतिवेत्ता था ॥ १ ॥ एक दिन समस्त विद्याधर अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ सिद्धकूट चैत्यालयकी वंदनार्थ गये कुमार भी प्रियतमा मदनवेगाके साथ चलदिये । ॥ २ ॥ सिद्धकूटपर जाकर चित्र विचित्र वेषोंके धारण करनेवाले विद्याधरोंने सानंद भगवानकी पूजा की चैत्यालयको नमस्कार किया एवं अपने अपने स्तंभोंका सहारा ले जुदे २ स्थानोंपर बैठ गये ॥ ३ ॥ कुमारके श्वसुर विद्युद्वेगने भी अपनी जातिके गौरिकनिकायके विद्याधरोंके साथ भलेप्रकार भगवानकी पूजा की और अपनी गौरी-विद्याओंके स्तंभका सहारा ले बैठि गये ॥ ४ ॥ कुमारको विद्याधरोंकी जातिके जानने की उत्कंठा हुई इसलिये उन्होंने उनके विषयमें प्रियतमा मदनवेगासे पूछा—और मदनवेगा यथायोग्य विद्याधरोंकी जातियोंका इसप्रकार वर्णन करने लगी—

नाथ ! हाथमें कमल लिये कमलोंकी माला पहिने जो गौरीविद्याओंके स्तंभोंके सहारे बैठे हैं वे गौरिक जातिके विद्याधर हैं ॥ ५–६ ॥ रक्तमाला रक्तकंबल और वस्त्रोंको धारण किये गांधार स्तंभके सहारे बैठनेवाले विद्याधर गांधार हैं ॥७॥ चित्र विचित्र वर्णोंसे शोभित, सुवर्णमयी पीतवस्त्रोंको धारण किये, मानव स्तंभके सहारे बैठे हुये ये मानव जातिके विद्याधर हैं ॥ ८ ॥ किंचित् लाल वस्त्रोंको धारण करनेवाले जगमगाते हुये मणिमयी भूषणोंसे भूषित मनुस्तंभके सहारे बैठे ये मनुजातिके विद्याधर हैं ॥ ९ ॥ जिनके हाथोंमें भांति भांतिकी औषधियां लगी हुई हैं जो चित्र विचित्र मालाओंको धारण किये हुये औषधिस्तंभके सहारे बैठे हैं वे मूलवीर्य जातिके विद्याधर हैं ॥ १० ॥ सर्वऋतुओंकी सुगंधिसे सुगंधित सुवर्णमयी आभरण और मालाओंको पहिने मुंडक स्तंभके सहारे ये अंतर्भूमिधर जातिके विद्याधर बैठे हैं ॥ ११ ॥ प्राणनाथ ! ये जो चित्र विचित्र कुंडल पहिने हुये सर्पके समान सुंदर बाजुओंसे भूषित शंकुस्तंभके आश्रय बैठे हैं सो शंकुक जातिके विद्याधर हैं ॥ १२ ॥ मनोहर मुकुट और मणिमयी कुंडलोंसे भूषित कौशिक स्तंभके सहारे बैठे हुये ये कौशिक जातिके विद्याधर हैं ॥ १३ ॥ प्रभो ! ये जितने विद्याधर हैं वे सब आर्य जातिके विद्याधर हैं

अब मैं मातंग जातिके विद्याधरोंको वतलाती हूं आप ध्यानपूर्वक सुनें—

नीलमेघके समान श्याम नीली माला धारण किये मातंग स्तंभके सहारे वैठे हुये ये मातंग जातिके विद्याधर हैं ॥ १४–१५ ॥ मुर्दोंकी हड्डियोंके भूषणोंसे भूपित भस्म (राख) की रेणुओंसे भद्मैले और श्मशानके सहारे वैठे हुये ये श्मशान जातिके विद्याधर हैं ॥ १६ ॥ वैडूर्यमणिके समान नीले नीले वस्त्रोंको धारण किये पांडुर स्तंभके सहारे वैठे हुये ये पांडुक जातिके विद्याधर हैं ॥ १७ ॥ काले काले मृगचर्मोंको ओढ़े काले चमड़ेके वस्त्र और मालाओंको धारे कालस्तंभका आश्रय ले वैठे हुये ये कालश्वपाकी जातिके विद्याधर हैं ॥ १८ ॥ पीले वर्णके केशोंसे भूपित तप्तसुवर्णके भूपणोंके धारक श्वपाक विद्याओंके स्तंभके सहारे वैठनेवाले ये श्वपाक जातिके विद्याधर हैं ॥ १९ ॥ वृक्षोंके पत्तोंके समान हरे वस्त्रोंको धारण करनेवाले, भांति भांतिके मुकुट और मालाओं के धारक, पर्वत स्तंभका सहारा लेकर वैठे हुये ये पार्वतेय जातिके विद्याधर हैं ॥२०॥ जिनके भूषण वांसके पत्तोंके बने हुये हैं जो सब ऋतुओंके फूलोंकी माला पहिने हुये हैं और वंशस्तंभके सहारे वैठे हुये हैं वे वंशालय जातिके विद्याधर हैं ॥ २१ ॥ महासर्पके चिन्होंसे युक्त उत्तमोत्तम भूषणोंको धारण करनेवाले वृक्षमूल नामक विशाल स्तंभके सहारे वैठे हुये ये वार्क्षमूलक जातिके विद्याधर हैं ॥ २२ ॥

इसप्रकार रमणी मदनवेगा-द्वारा अपने अपने वेष और चिह्नयुक्त भूषणोंसे विद्याधरोंका भेद जान कुमार अति प्रसन्न हुये और उसके साथ अपने स्थान वापिस चले आये एवं अन्य विद्याधर भी अपने अपने स्थान चले गये ॥ २३–२४ ॥

कुमार वसुदेव रमणी मदनवेगाके यहां सानंद रहते थे अचानक ही उन्हें एकदिन वेगवतीकी याद आगई विना ही विचारे वे मदनवेगाको "वेगवती! आओ आओ" कह कर बुलाने लगे ज्योंही मदनवेगाने वेगवतीका नाम सुना उसै सोत जान अतिशय रुष्ट होगई और विनाही कुछ उत्तर दिये भीतर घरमें चली गई। उसीसमय वहां आकर कुमारके वैरी राजा त्रिशिखरकी स्त्री शूर्पणखाने मदनवेगाका रूप धारण करलिया और छलसे कुमारको हरकर लेगई ॥ २५–२६ ॥ आकाशमें लेजाकर वह कुमारको नीचे पटकना ही चाहती थी कि अकस्मात् उसै नीचेकी ओर जाता हुआ विद्याधर मानसवेग दीख पड़ा उसै कुमारका वैरी जान कुमारको उसै सौंप दिया और उनके मारनेकी आज्ञा दे वह स्वयं अपने स्थान चली गई। मानसवेगको तो कुमारका मारना इष्ट ही था दुष्टने निर्दय वन वहींसे उनको धर पटका परंतु कुमार भाग्यवश नीचे तृणों के समूहपर आपड़े जिससे कि आहत (जख्मी) होनेसे वच गये ॥२७–२८॥ जिस स्थानपर कुमार आकाशसे पड़े थे वह स्थान राजगृह नगर था वहां चारो ओर राजा जरासंधकी कीर्तिका नगाड़ा वजता था ज्योंही कुमारने उसै राजगृह जाना वे बड़े

प्रसन्न हुये और तत्काल उस नगरको देखनेके लिये चल दिये ॥ २९ ॥ उस नगरमें पहुंचकर उन्होंने जूआ खेल एक करोड़ दीनार जीती और परमदानी—उदार होनेके कारण वे ज्यों की त्यों दीन दरिद्रोंको बांट दीं ॥ ३० ॥

राजा जरासंधको नैमित्तिकोंने यह बतला रक्खा था कि राजगृह नगरमें आकर जो पुरुष जूआ खेलकर जीता हुआ द्रव्य दरिद्रोंको बांट देगा नियमसे उसका पुत्र तुम्हारा मारनेवाला होगा इसलिये जरासंधने अपने वैरी की खोजकेलिये कड़ा प्रबंध कर रक्खा था ज्यों ही कुमारने जूआ खेलकर जीता हुआ द्रव्य दरिद्रोंको बांटा त्योंही जरासंधके सेवकोंने इन्हें आ पकड़ा और चामकी भस्त्रा (भाथड़ी) में बंद कर जल्दी मारनेकी अभिलाषासे किसी पर्वतके शिखरसे नीचे पटक दिया ॥ ३१—३३ ॥ पर्वतके समीप उससमय कुमारकी प्रियतमा वेगवती किसी कारण वश आई थी भस्त्राको नीचे गिरती देख उसने उसे बीचहीमें थाम लिया और किसी सुरक्षित स्थानपर लेगई। अपनी भस्त्राको किसी पक्षी द्वारा हरणकी जान कुमारको बड़ी चिंता हुई वे इस प्रकार विचार करने लगे—

"हाय! जिसप्रकार पहिले चारुदत्तको भयंकर भेरुंड पक्षी लेकर उड़गये थे उसी-प्रकार मुझेभी उन्होंने जिकड़कर पकड़ लिया है न मालूम अब क्या दुःख भोगना पड़ेगा ॥ ३४ ॥ यह बंधुओंका समागम, भोगसंपत्ति, सुंदर शरीर आदि सब दुःख दायक हैं महा निकृष्ट हैं तो भी यह मूढ जीव इनका कुछ भी विचार नहिं करता ॥ ३५ ॥ यह जीव अकेला ही पुण्य पापका कर्ता है अकेला ही सुख दुःखका भोक्ता है और अकेला ही मरता और अकेला ही जीता है फिर नहिं जान पड़ता कुटुंबियोंको यह क्यों इसतरह अपनाता है ॥ ३६ ॥ जिन महापुरुषोंने भयंकर भोगोंका संबंध छोड़ परम सुखदाई मोक्षका मार्ग ग्रहण करलिया है वे ही परम सुखी हैं वे ही धीर वीर हैं और वे ही अपना हित करने वाले हैं ॥३७॥ हमतो सुख दुःखके भंडार इस संसाररूपी समुद्रमें भोग तृष्णा रूपी तरंगोंसे टकरा रहे हैं कर्मोंके भारसे वजनदार बन रहे हैं इसलिये फिर फिरसे इसमेंही भ्रमण करते फिरते हैं" ॥ ३८ ॥ इसप्रकार संसारके स्वरूपको विचारने वाले कुमारको रमणी वेगवती पर्वतके तटपर लेगई और उन्हें भस्त्रासे खींचकर वाहिर निकाला ॥ ३९ ॥ ज्योंही वेगवतीने कुमारको देखा विरहसे पीडित हो वह रोने लगी कुमारको हृदयसे लगालिया जिससे कि एक दूसरेके स्पर्शसे वे दोनों परमसुख-का अनुभव करने लगे ॥ ४० ॥ कुमारने अचानक ही प्रियतमा वेगवतीको वहां देख उसके आनेका कारण पूछा वेगवती भी इसप्रकार आद्योपांत अपना वृत्तांत कहने लगी—

नाथ! जब विद्याधर मानसवेग मेरे यहांसे आपको हरकर लेगया आपके विर-हसे मुझे बड़ा दुःख हुआ, आपकी खोजमें मै वहांसे निकली विजयार्धकी दोनों श्रेणि-

यां ढूंढ मारीं अनेक वन और पर्वत देखे परंतु आपका कहीं भी पता न चला अंतको मैंने समस्त भरतक्षेत्रमें घूमनेकी ठान ली और इधर उधर वहुत घूम फिरनेके वाद एकदिन भाग्यवश आपका दर्शन मुझे मदनवेगाके यहां होगया मैंने आपके साथ मदनवेगाका वियोग अच्छा न समझा इसलिये आपको वहां अपना रूप न दिखलाया ॥ ४१–४३ ॥ इतनेमें आपके वैरी राजा त्रिशिखरकी स्त्री शूर्पणखाको आपका पता लगा वह मदनवेगाके यहां आई और उसका रूप धारणकर आपको हर कर ले गई। मारनेकी अभिलाषासे उसने आपको मानसवेगके सुपुर्द किया मानसवेगने आपको आकाशसे पटका सो आप नीचे राजगृहमें गिरे और राजगृहमें भी जूआके संबंधसे जरासंधके सेवकों द्वारा भस्त्रामें सींकर पर्वतसे डालेगये इतनेमें ही मैं आगई और उस आपकी भस्त्राको वीचहीसे थाम यहां ले आई। नाथ! इससमय आप ह्रीमंत पर्वतपर विराजमान हैं और इस पर्वतपर एक पंचनद नामका मनोहर तीर्थ है" ॥ ४४–४५ ॥ चंद्रमुखी वेगवतीके मुखसे यह वृत्तांत सुन कुमारको बड़ा आनंद हुआ और वहां रहकर उसके साथ नदियोंके गंभीर शब्दोंसे मनोहर तटोंमें नाना क्रीडा करने लगे ॥ ४६ ॥

एक दिन कुमार अपनी इच्छानुसार ह्रीमंत पर्वतपर घूम रहे थे अचानक ही उनकी दृष्टि एक नदीमें वहती हुई कन्यापर पडी वह कन्या जालसे जिकडी हुई जंगली हथिनीके समान नागपाशमें दृढ़रूपसे जिकडी हुई थी और कांतिमान मुखसे शोभित थी कन्याको देखते ही दयासे कुमारका हृदय पसीज गया वे तत्काल उसके पास पहुंचे और जिसप्रकार मुनिराज पापपाशसे जीवोंको छुड़ा देते हैं नागपाशसे उस कन्याको मुक्त करदिया ॥ ४७–४८ ॥ ज्योंही कन्या बंधनसे मुक्त हुई भक्तिपूर्वक उसने कुमारको प्रणाम किया और उन्हें निष्कारण बंधु समझ इसप्रकार कहने लगी—

"नाथ! आपके प्रसादसे मुझै विद्यासिद्ध होगई। विजयार्धकी दक्षिण श्रेणीमें एक गगनवल्लभ नामका नगर है वहांकी रहनेवाली मैं एक राज्य कन्या हूं मेरानाम वालचंद्रा है और मैं राजा विद्युदंष्ट्रके वंशमें उत्पन्न हुई हूं ॥ ४९–५० ॥ मैं नदीके किनारे महाविद्या सिद्धकर रही थी यह देख मेरा वैरी एक विद्याधर वहां आया और मुझै नागपाशसे बांधकर नदीमें डाल गया जिससे कि मैं परवश हो उसमें वही जारही थी परंतु उससे आपने मुझै बचालिया ॥५१॥ हमारे वंशमें पहिले भी एक केतुमती नामकी कन्याने विद्या सिद्धकी थी उसै भी किसीने नागपाशसे जिकड़ दिया था और जिसप्रकार आज आपने मुझै विना भरोसेके नागपाशसे मुक्त किया है उसीप्रकार उसै भी अर्धचक्री राजा पुंडरीकने मुक्त किया था और जिसप्रकार कन्या केतुमती पुंडरीककी प्रियतमा बनगई थी उसीप्रकार मैं भी अब आपकी पत्नी हो चुकी यह आप निश्चय रूपसे समझें ॥ ५२–५३ ॥ विद्याधर लोगोंको सर्वथा दुर्लभ यह विद्या आपके प्रसाद-

"से सिद्ध हुई है इसलिये आप इसे ग्रहण कीजिये" बालचंद्राके ये वचन सुन कुमार अति प्रसन्न हुये और वेगवतीको विद्या देनेकेलिये अपनी इच्छा प्रकट की ॥ ५४ ॥ कुमारकी आज्ञा पातेही बालचंद्राने वेगवतीको विद्या प्रदान कर दी और आकाशमार्गसे अपने नगरको चलीगई ॥ ५५ ॥

कुमारी बालचंद्राने कुमारकी आज्ञानुसार रमणी वेगवतीको विद्या प्रदानकर अपने मनोरथको पूर्ण समझा और शल्य रहित हो आनंदसे रहनेलगी सो ठीकही है जिन विद्याधरियोंके हृदयमें जैनधर्मकी भक्ति है वे अपने मनोरथको शीघ्र ही सिद्ध करलेती हैं ॥५६॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें बालचद्राका दर्शन वर्णन करनेवाला छव्वीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ २६ ॥

सत्ताईसवां सर्ग।

जब राजा श्रेणिकने राजा विद्युद्दंष्ट्रका नाम सुना तो उन्हें उसके भी चरित्र जानने की इच्छा हुई और इस प्रकार गणधर गौतमसे पूछा—

प्रभो! राजा विद्युद्दंष्ट्र कौन और कैसे थे? मुनिराजने कहा—राजन्! गगनवल्लभ नगरमें रहनेवाला, राजा नमिके वंशसे उत्पन्न, विजयार्धकी दोनों श्रेणियोंका प्रभु, अतिशय पराक्रमी राजा विद्युद्दंष्ट्र था ॥ १-२ ॥ एक दिन वह पश्चिमविदेहमें गया और वहांसे किसी संजयंत नामके योगीको अपने यहां ला उनपर घोर उपसर्ग करना प्रारंभ किया ॥ ३ ॥ उपसर्गका नाम सुन राजा श्रेणिकने फिर पूछा—"प्रभो! विना कारण राजा विद्युद्दंष्ट्रने मुनिराज संजयंतको क्यों दुःख दिया? यह सुन भगवान गौतमने पापनाशक राजा संजयंतका चरित्र इसप्रकार वर्णन किया—

विदेहक्षेत्रकी पश्चिमदिशामें एक गंधमालिनी नामका देश है और उसमें एक वीतशोका नामकी पुरी है किसी समय उस पुरीका स्वामी राजा वैजयंत था राजा वैजयंतकी प्रियतमाका नाम सर्वश्री था सर्वश्री साक्षात् मूर्तिमती लक्ष्मी सरीखी जान पड़ती थी। राजा वैजयंतके रानी सर्वश्रीसे उत्पन्न दो पुत्र थे और क्रमसे उनके नाम संजयंत और जयंत थे ॥ ४-६ ॥ एक दिन विहार करते करते तीर्थंकर स्वयंभू वहां आये भगवान स्वयंभूके मुखसे धर्मोपदेश सुन वैजयंत और उसके दोनों पुत्रोंको वैराग्य होगया जिससे कि वे उसीसमय दिगंवर दीक्षासे दीक्षित होगये ॥ ७ ॥ और मुनिराज पिहितास्रवके साथ जहां तहां विहार करनेलगे घोर तपके प्रभावसे मुनिराज वैजयंतको घातियां कर्मोंके नाश होजानेसे केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ चारो निकायके देव वैजयंत केवलीकी पूजार्थ आये उनमें धरणेंद्रका महान वैभवदेख मुनि जयंतने अग्रिमभवमें अपनेको धरणेंद्र होनेका निंदित निदान बांधा और निदानके अनुसार मरकर वे धरणेंद्र होगये।

जयंतके बड़ेभाई मुनिराज संजयंत किसीसमय महामनोहर पुरी वीतशोकाके भीमदर्शन-नामक श्मशानमें सात दिनका योग धारण कर प्रतिमा योगसे विराजमान थे ॥ ८-१० ॥ और राजा विद्युद्दंष्ट्र अपनी प्राण वल्लभाओंके साथ भद्रशालवनमें मनमानी क्रीड़ाकर अपने गगनवल्लभ नगरको लोट रहा था अचानक ही उसकी दृष्टि मुनिराज संजयंतपर पडगई पूर्वभवके वैरसे वह मारे क्रोधके उवल उठा और वहांसे उन्हें उठा भरतक्षेत्रके दक्षिण वैताढ्यके किसी वरुण नामक पर्वतपर ला धरा ॥ ११-१२ ॥ जिसस्थानपर हरिद्वती १ चंडवेगा २ गजवती ३ कुसुमवती ४ और सुवर्णवती ५ पांच नदियोंका संघट्ट हुआ है विद्युदंष्ट्रने सायंकालके समय मुनिराजको वहीं छोड़ दिया और अपने नगर चलागया एवं प्रातःकाल होतेही उसने मुनिराजके मारनेकेलिये इस-प्रकार ढोंग रचा—

" विद्याधरो! आज रात्रिको स्वप्नमें मैंने विस्तीर्ण शरीरका धारक एक राक्षस देखा है वह नियमसे हमारा क्षय करनेवाला है इसलिये उसके प्रति यही कर्तव्य है कि जबतक वह हमारा क्षयकरै उसके पहिले ही हम उसै यमराजकी गोदमें पहुंचा दें"। ॥१३-१४॥ विद्युद्दंष्ट्रके ऐसे वचन सुन विद्याधरोंको विश्वास होगया वे अपने अपने शस्त्र लेकर मुनि संजयंतके पास गये और उन्हें राक्षस जान मार गिराया उससमय अपने ऊपर घोर उपसर्ग जान मुनिराजने समाधि धारण करली थी इसलिये क्षणभरमें समस्त कर्मोंका नाशकर अंतकृत् केवली हो सीधे सिद्ध शिलापर जा विराजे। जिससमयमें यह भयंकर घटना हुई थी उससमय भगवान शीतलनाथका तीर्थ (समय) विराजमान था ॥१५-१६॥ मुनिराज संजयंतके शरीरकी पूजाकेलिये जयंतका जीव धरणेंद्र आया मुनिराजके मारनेका सारा कृत्य विद्याधरोंका जान क्रोधसे उबल उठा उसने विद्याधरोंकी समस्त विद्यायें हरलीं और वह उन्हें नागपाशमें जिकड़कर बांध प्राणरहित करनेकेलिये भी उद्यत होगया ॥१७॥ इतनेमें ही आदित्याभ नामका लांतव स्वर्गका इंद्र आ पहुंचा उसने विद्याधरोंकी रक्षार्थ धरणेंद्रसे कहा—

प्रिय धरणेंद्र! वृथा इन विद्याधरोंका संहार मत करो। तुम, मैं, विद्युद्दंष्ट्र और संजयंत आपसमें गहरी शत्रुताकर जिस रीतिसे इस संसारमें भ्रमे हैं वह सकल वृत्तांत मैं तुम्हैं सुनाता हूं तुम ध्यानपूर्वक सुनो—

इसी भरतक्षेत्रके शकटदेशमें एक सिंहपुर नामका नगर है किसी समय इस नगरका स्वामी राजा सिंहसेन था और उसकी अनेक कला और गुणोंमें अतिप्रवीणा रामदत्ता नामकी स्त्री थी। उसके यहां एक धात्री (धाय) रहा करती थी उसका नाम निपुणमती था और वह प्रत्येक काममें निपुण होनेके कारण 'जैसा नाम वैसे गुण' इस कहावतको चरितार्थ करने वाली थी ॥ १८-२१ ॥ राजा सिंहसेनका एक

श्रीभूति (सत्यघोष) नामका पुरोहित था यद्यपि वह महालोभी और असत्यवादी था तथापि चालाकीसे उसने सत्यवादी और निर्लोभीपनेकी अपनी खासी प्रसिद्धि कर रक्खी थी लोगोंका उसपर पूर्ण विश्वास था और उसकी पुरोहितानीका नाम श्रीदत्ता था ॥ २२ ॥ श्रीभूतिने नगरमें चारो तरफ भांडशालायें (बेंक) खोल रक्खीं थी जिससे कि वह वणिकोंका पूर्णविश्वास पात्र बनगया था ॥ २३ ॥

उससमय पद्मखंडनगरमें एक सुमित्रदत्तनामका वणिक रहता था पुरोहितको परम सज्जन और निर्लोभ समझ वह उसके पास आया और बहुमूल्य पांचरत्न धरोहर रख धनकी तृष्णासे प्रेरित हो जहाज लादकर देशांतर चलदिया ॥ २४ ॥ दैवयोगसे वीच समुद्रमें पहुंचते ही उसका जहाज टकराकर फट गया और समस्त धन समुद्रमें डूबकर नष्ट होगया जिससे कि वह दुःखित हो अपने नगर लौट आया और पुरोहितके पास आकर अपने पांचरत्न मांगने लगा। पुरोहित महा लोभी था रत्नोंके लोभमें आ वेईमान हो वह नामंजूर होगया उसने बनियेसे उसके रत्नोंकी साफ इनकार करदी हल्ला गुल्ला होनेपर राजसेवकोंतक यह बात पहुंची परंतु पुरोहितपर गाढ विश्वास होनेके कारण उन्होंने विचारे सुमित्रदत्तको ही झूंठा समझा। इसतरह जब सुमित्रदत्तको अपने रत्नोंके मिलनेकी कोई आशा न रही तो मारे दुःखके उसका हृदय जलने लगा राजमंदिरके पास आकर किसी ऊंचे वृक्षपर चढ प्रतिदिन प्रातःकालमें फूट फूटकर रोनेलगा गद्गद-स्वरसे-"हे महाराज सिंहसेन! दयालु मा रामदत्ता! और नगरके अन्यान्य सज्जनो! कृपाकर मेरी बात सुनिये ॥ २५-२७ ॥ मैंने अमुक मासके अमुकदिन पुरोहित श्री-दत्तके यहां उसका विश्वासकर उत्तमोत्तम पांच रत्न धरोहर रक्खे थे अब पुरोहित वेई-मान होगया है मेरे रत्नोंको वापिस देना नहिं चाहता।" इसप्रकार चिल्ला २ कर अ-पने घर चला जाने लगा ॥ २८-२९ ॥ जब वणिकको इसीप्रकार चिल्लाते चिल्लाते बहुत दिन वीतगये तो एक दिन रात्रिमें रानी रामदत्ताने राजा सिंहसेनसे कहा—

महाराज! संसारमें बलवान और दुर्बल दोनों प्रकारके मनुष्य रहते हैं उनमेंसे यदि बलवान अपने बलसे दुर्बलोंको सताने लगजाय तो यह बड़ा भारी अन्याय समझना चाहिये यही अन्याय आजकल आपके नगरमें हो रहा है। बलवानोंकी कृपासे दुर्बल अनेक क्लेश सह आनंदसे जीवन नही विता सकते ॥३०॥ देखो! इस दीन दुर्बल वणिकके रत्न बलवान् पुरोहितने ले लिये हैं वह उन्हें वापिस देना नहि चाहता यह विचारा प्रतिदिन प्रातःकालमें आकर यहां रोता है इसलिये यदि दुर्बलोंपर आपकी कृपा है-यदि उनकी रक्षा करना आप अपना धर्म समझते हैं तो आप उसके रत्न वापिस दिलवा दीजिये ॥ ३१ ॥ उत्तरमें राजाने कहा—

प्रिये! यह वणिक जहाज लादकर धन संचयके लिये देशांतर गया था वीच समुद्रमें

इसका जहाज फटजानेसे सब धन नष्ट होगया इसलिये धनके नाश होनेसे यह वावला होगया है और निर्लज्ज एवं दुःखित हो जहां तहां रोता चिल्लाता फिरता है" रानीने पुनः कहा—

"प्राणनाथ! वह धनके नष्ट होजानेसे पागल बन चिल्लाता हो यह बात नहीं क्योंकि पागल होनेसे आदमी कभी कुछ और कभी कुछ कह सकता है परंतु यह तो प्रतिदिन एक ही बात बोलता है मालूम होता है अवश्य इसके रत्न पुरोहितने लिये हैं आप इसकी नियमसे जांच करें।" ॥ ३२–३४ ॥ रानीके कथनानुसार राजाने प्रातः काल होते ही पुरोहितको बुलवाया और रत्नोंके देने लेनेके बारेमें पूछा परंतु पुरोहित सर्वथा नट गया राजाके समक्ष भी वह असत्य बोलनेसे न डरा सो ठीक ही है जो मनुष्य लोभी हैं–धनको ही सबकुछ मानते हैं भला वे सत्य कैसे बोल सकते हैं? जब राजासे न्याय न हुआ तो उसने न्यायका भार रानीको सोंप दिया रानीने प्रथम तो चालाकीसे पुरोहितके साथ ऐसी वात लगाई कि गत रात्रिके भोजन तककी वात पूछली पश्चात् उसने जूआ खेलनेके छलसे रत्नोंकी जांच करना प्रारंभ की ॥ ३५–३६ ॥ इस तरह जब रानीने पुरोहितके साथ जूआ खेलना शुरू कर दिया तो उसकी आज्ञानुसार धात्री निपुणमती पुरोहितके घर रवाना हो पुरोहितानीके पास पहुंची और उससे जूआ में पुरोहितकी हार एवं रातिके खानपानका सारा समाचार सुना रत्न मांगने लगी। भला पुरोहितानीजी निपुणमतीकी बातोंमें कब आने वालीं थीं पुरोहितने उन्हैं अच्छी तरह भर रक्खा था इसलिये रत्नोंके देनेकेलिये सर्वथा इन्कार कर दिया जिससे कि धात्री ज्यों की त्यों लोट आई। रानीने पुरोहितका यज्ञोपवीत जीतकर पुनः निपुणमतीको पुरोहितानीके पास भेजा और वहां जा निपुणमतीने इशारेके अनुसार पुरोहितका यज्ञोपवीत दिखा पुनः रत्न मांगे परंतु पुरोहितानी पर पुरोहितके उपदेशका पूरा पूरा प्रभाव पड़ा हुआ था उसने फिर रत्नोंकी मनाई करदी और धात्री लोट आई ॥३७–३८॥ अबकी रानीने पुरोहितके नामकी मुदरी जीत ली और उसै निपुणमतीको देकर पुरोहितके घर भेजा। निपुणमतीने पुरोहितके घर जाकर उसकी मुदरी दिखलाई और वे रत्न मांगे। अबके पुरोहितकी मुदरी देख पुरोहितानीको विश्वास होगया उसने तत्काल धरे हुये रत्न निकालकर देदिये जिससे कि धात्रीने उन्हैं लाकर रानीको सोंप दिया। रत्न पाते ही रानीकी आज्ञासे जूआ बंद कर दिया गया और रत्न राजाके हवाले किये गये ॥ ३९ ॥ राजाने वैसे ही अन्य रत्न मगाकर उनमें वे रत्न मिला दिये और वणिकको बुलाकर रत्न लेनेकी आज्ञा दी। रत्न देखते ही वणिकने अपने रत्न उठा– लिये उसकी ईमानदारीपर राजा वड़ा प्रसन्न हुआ और उसका पूर्ण सन्मान किया। ॥ ४० ॥ राजाने परधनके चुरानेवाले पुरोहितको भी बुलाया और उसका सब धन हरण कर गोवर खिलवा मल्लोंके मुक्कोंसे मरवा डाला ॥ ४१ ॥

पुरोहितको धन परम प्यारा था इसलिये उसके आर्त्तध्यानसे मर वह राजाके भंडारमें ही गंधननामका सर्प हुआ और राजाका द्रोही बन वहीं रहनेलगा ॥४२॥ पुरोहित श्रीभूति (सत्यघोष) के स्थानपर एक धम्मिल्ल नामका भंडारी रक्खा गया वह भी परम मिथ्यादृष्टि होनेके कारण सदा अनेक प्रकारके अनर्थ किया करता था ॥ ४३ ॥ सेठ सुमित्रदत्त रत्न ले अपने (पद्मखंडपुर) नगर चलागया और आगे 'मै रानी रामदत्ताका पुत्र होऊं' यह निदान बांध जैनधर्ममें भक्ति होनेके कारण मनमाना दान देने लगा। ॥ ४४ ॥ उस सेठ (सुमित्रदत्त) की भार्याका नाम सुमित्रदत्तिका था उनदोनोंका (सेठ सेठानीका) आपसमें कभी स्वभाव न मिलता था सुमित्रदत्तिका सदा अपने पतिसे (सेठ सुमित्रदत्तसे) विरोध रक्खा करती थी इसलिये पापके उदयसे मरकर वह व्याघ्री हुई। एकदिन सेठ सुमित्रदत्त पर्वतपर किसी मुनिराजकी वंदनाकेलिये जारहे थे कि मार्गमें उस वाघिनीकी इनपर दृष्टि पड़गई और पूर्वभवके वैरसे उस दुष्टिनीने सेठको देखते २ खा डाला ॥ ४५ ॥ निदानके अनुसार सेठ सुमित्रदत्त मरकर रानी रामदत्ताके पुत्र उत्पन्न हुआ यद्यपि वह अपने पुण्यबलसे मरकर इंद्र होसकता था परंतु निदानके कारण वह राजपुत्रही हुआ उसका नाम सिंहचंद्र रक्खा गया और रानी रामदत्ताको यह अतिशय प्यारा था ॥ ४६ ॥ कुमार सिंहचंद्रका छोटा भाई जो सुंदरतामें इंद्रके सौंदर्यकी तुलना करता था पूर्णचंद्र हुआ और ये दोनों भाई समस्त पृथ्वीमें सूर्य चंद्रमा सरीखे जान पड़ने लगे ॥४७॥ एकदिन राजा सिंहसेन कार्यवश भंडारेमें गये वहांपर उससमय गंधन सर्प बैठा था देखते ही उसने पूर्ववैरसे राजाको भख खाया ॥ ४८ ॥ नगरमें एक सपेड़ियोंका मुखिया गरुडदंड नामका सपेड़ी रहता था मंत्रके प्रतापसे उसने गंधन अगंधन समस्त सर्पोंको बुलाया और सबोंको संबोधनकर यह आज्ञा दी—

"तुममें जो अपराधी सर्प हो सो रहो शेष सब चलेजाओ" उनमें अकेला गंधन सर्प अपराधी था वह रहगया और शेष सर्प अपने अपने स्थान चलेगये ॥४९—५०॥ गंधनको देख सपेड़ीने क्रोधमें आकर कहा—"दुष्ट! राजाके शरीरमें तूने अपना विष उगला है—तूने काटा है इसलिये या तो जल्दी ही इस विषको खींचले यदि विष खींचनेकी इच्छा न हो तो इस जलती हुई अग्निमें प्रवेशकर।" सर्प गंधनको मारे क्रोधके राजाके शरीरसे विष खींचना स्वीकार न हुवा इसलिये जलती हुई अग्निमें प्रवेशकर मरगया और पापके उदयसे किसी वनमें चमरी मृगी आ उत्पन्न हुआ ॥ ५१—५२ ॥ विषसे मर राजा सिंहसेन सल्लकीवनमें हाथी हुआ और भंडारी धम्मिल्ल मरकर उसी वनमें वंदर हुआ सो ठीक ही है जो प्रकृतिके क्रूर और मिथ्यादृष्टि हैं उनकी दूसरी क्या गति हो सकती है? ॥ ५३ ॥ रानी रामदत्ताके दोनों पुत्र परम नीतिवेत्ता थे पि-

ताके मरजानेपर वे दोनों कुमार क्रमसे राजा और युवराज वने और समुद्रपर्यंत पृथ्वी का नीतिपूर्वक शासन करनेलगे ॥ ५४ ॥

पोदन नगरमें रानी रामदत्ताका मायका (मातृघर) था वहां उसके पिता पूर्णचंद्र और माता हिरण्यवती रहती थी ये दोनोंही–दंपती जिनशासनके परमभक्त थे कदाचित् इनदोनोंको संसारसे उदासीनता होगई पिताने मुनिराज राहुभद्रके पास जा दिगंबर दीक्षा धारण करली और तपकेप्रभावसे उन्हें अवधिज्ञानकी प्राप्ति होगई एवं माता हिरण्यवतीने भी दत्तवती आर्यिकाके पास आर्यिकाके व्रत धारण करलिये ॥ ५५–५६ ॥ एक दिन आर्यिका हिरण्यवती अपने पति पूर्णचंद्रसे यह समाचार सुन कि रानी रामदत्ता-के पति राजा सिंहसेन सर्प के काटनेसे मरकर हाथी हुए हैं और सेठ सुमित्रदत्तका जीव मरकर रानी रामदत्ताके यहां सिंहचंद्रनामका पुत्र हुआ है रानीका उसपर बड़ा प्रेम है वह उसके मोहसे दीक्षा लेना नहिं चाहती, तत्काल रामदत्ताके पास आई और उसे संसारका चरित्र सुझा दीक्षाके लिये बाध्य किया ॥ ५७ ॥ अपनी मा आर्यिकाके मुखसे संसारका वृत्तांत सुन रानी रामदत्ताको वैराग्य होगया जिससे कि उसने तत्काल आर्यिकाके व्रत धारणकरलिये और उसका पुत्र राजा पूर्णचंद्र भी मुनिराज राहुभद्रसे दिगंबर दीक्षा ले मुनि हो गया ॥ ५८ ॥ राजा सिंहचंद्रके दीक्षा ले जानेपर युवराज पूर्णचंद्र राजा बना और अपने प्रतापसे समस्त शत्रुओंको वश कर मिथ्यादृष्टि होने के कारण विषयोंमें आसक्त हो मनमाने भोग भोगने लगा॥५९॥ एक दिन अवधिज्ञानी चारण ऋद्धिके धारक मुनिराज सिंहचंद्रसे आर्यिका रामदत्ताने भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अपना अपनी माताका और अपने पुत्रोंका पूर्वभव जानने की इच्छा प्रगट की॥ ६० ॥ उत्तरमें मुनिराजने कहा—

भरतक्षेत्रमें कौशल देशके वर्धकि ग्राममें एक मृगायण नामका ब्राह्मण रहता था उसकी दो कन्यायें थी उनमें पहिलीका नाम मधुरा और दूसरीका वारुणी था ॥ ६१–६२ ॥ ब्राह्मण मृगायणका जीव तो साकेतपुर (अयोध्या) के स्वामी राजा अतिबलके रानी श्रीमतीसे उत्पन्न तुम्हारी मा हिरण्यवती हुआ है। मधुराका जीव तुम रामदत्ता, वारुणीका जीव तुम्हारा छोटा पुत्र पूर्णचंद्र और सेठ सुमित्रदत्तका जीव मैं तुम्हारे सिंहचंद्र नामका पुत्र उत्पन्न हुआ हूं ॥ ६३–६४ ॥ पुरोहित श्रीभूतिका जीव जो पहि-ले मरकर गंधन सर्प हुआ था उसके डसनेसे पिता मरकर सल्लकीवनमें हस्ती हुये और उन्होंने मेरे उपदेशसे श्रावकके व्रत लेलिये थे ॥ ६५ ॥ गंधन सर्प मरकर चमरी मृगी हुआ और वहांसे भी मरकर रूक्ष पंखोंका धारक कुक्कुट जातिका सर्प हुआ ॥ ६६ ॥ एक दिन उपवास व्रतसे श्रांत पिताका जीव हस्ती किसी नदीमें पानी पीने गया था वहां उस दुष्ट कुक्कुट सर्पने उसे भख खाया मरकर वह सहस्रारस्वर्गके श्रीप्रभ-

विमानमें परम ऋद्धिका धारक श्रीधर नामका देव हुआ है और इससमय महामनोहर देवांगनाओंके साथ सानंद भोग विलास करता हुआ सुखसे रहता है ॥ ६७–६८ ॥ जिससमय हस्तीको सर्पने काटा तो धम्मिल्ल भंडारीके जीव वंदरको बड़ा क्रोध आया और उसीसमय उसने कुक्कुट सर्पको मारडाला जिससे कि वह पापी मरकर पापके प्रभावसे तीसरे नरक गया है ॥ ६९ ॥ किसी भृगालदत्त नामके भीलने हाथीके दांत हड्डी और मोती धनमित्र सेठके हाथ वेचदिये धनमित्रने ला उन्हें राजा पूर्णचंद्रको दिखलाया उन्हें देख पूर्णचंद्रने संतुष्ट हो उससे उन्हें मोलले दांत और हड्डियोंका तो सिंहासन बनवाया है और मोतियोंका हार तयार कराया है आजकल राजा पूर्णचंद्र उसी सिंहासनपर बैठता है और हारको आनंदसे पहिनता है ॥ ७०–७१ ॥ देखो ! संसारकी यह कैसी विचित्रता है ? मोहसे मत्त संसारी जीवोंके पिताके अंग भी अन्य अंगोंके समान भोगके अंग होजाते हैं" ॥ ७२ ॥ मुनिराज सिंहचंद्रके मुखसे यह वृत्तांत सुन आर्यिका रामदत्ता शीघ्र ही पूर्णचंद्रके पास आई और जो पूर्णचंद्र मोहके उदयसे धार्मिक कार्योंमें प्रमादीवन नाना इंद्रियभोग भोग रहा था उसे उसके पूर्व जन्मका वृत्तांत सुना उपदेश दे संबोधा। रामदत्ताके उपदेशसे राजा पूर्णचंद्रने श्रावकके व्रत धारण करलिये और मरकर दान पूजा तप शील और सम्यक्त्वके भलेप्रकार पाल करनेसे सहस्रार स्वर्गके वैडूर्यप्रभ नामक विमानमें देव हुआ ॥ ७३–७४ ॥ इसके बाद रामदत्ताने घोर तप किया और वह सम्यक्त्वके प्रभावसे स्त्री लिंगका छेदकर सहस्रार स्वर्गके प्रभंकर विमानमें सूर्यप्रभ नामका प्रतापी देव हुई ॥ ७५ ॥ रामदत्ताके बड़े पुत्र मुनिराज सिंहचंद्र ने चार आराधनाओंका भलेप्रकार आराधन किया और मरकर ग्रैवेयकके प्रीतिंकर विमानमें अहंमिंद्र हुआ ॥ ७६ ॥

जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रके वैताढ्य पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक धरणीतिलक नामका नगर है किसीसमय उसका स्वामी राजा अतिबल था और उसकी सुलक्षणा नामकी पटरानी थी। रानी रामदत्ताका जीव स्वर्गसे चयकर सम्यग्दर्शनके नष्ट होजानेसे सुलक्षणाके श्रीधरा नामकी कन्या हुआ ॥ ७७–७८ ॥ कन्या श्रीधरा अलकापुरके स्वामी राजा सुदर्शनके साथ विवाही गई और उसके राजा पूर्णचंद्रका जीव वैडूर्यविमानसे चयकर यशोधरा नामकी पुत्री हुवा ॥ ७९ ॥ कन्या यशोधरा वैताढ्यकी उत्तरश्रेणीमें प्रभाकरपुरके स्वामी राजा सूर्यावर्तको दी गई और उसके रानी रामदत्ताका पति सिंहसेन श्रीधर नामक देवकी पर्याय समाप्त कर रश्मिवेग नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। एक दिन राजा सूर्यावर्तको संसारसे उदासीनता होगई उसने पुत्र रश्मिवेगको राज्यदे मुनिराज मुनिचंद्रके पास जाकर दीक्षा धारण करली और मोक्ष प्राप्तिकी अभिलाषासे वह उग्र तप तपने लगा ॥ ८०–८१ ॥ राजा रश्मिवेगकी मा यशोधरा और नानी श्रीधरा परमसम्यग्दृष्टि थीं दोनोंने गुणवती नामकी आर्यिकाके पास जा आर्यिकाके व्रतधारण

करलिये ॥८२॥ एकदिन राजा सिंहसेनका जीव राजा रश्मिवेग–चैत्यालयोंकी वंदनाके-लिये सिद्धकूट पर्वतपर गया वहां उसै मुनिराज हरिश्चंद्रके दर्शन होगये और उनके मुखसे धर्म श्रवणकर मुनि होगया ॥८३॥ किसी दिन मुनिराज रश्मिवेग पर्वतकी कांचन गुफामें विराजमान हो स्वाध्यायमें लीनचित्त थे कि वहां श्रीधरा और यशोधरा उनके दर्शनार्थ गई ॥ ८४ ॥ पुरोहित श्रीभूतिका जीव बालुकाप्रभानामक तीसरे नरकसे निकलकर अनेक योनियोंमें भ्रमण करता हुआ उसी गुफामें आकर विशाल उदरका धारक अजगर हुआ था उसे देखतेही मुनिराजने उपसर्ग आया समझ कायोत्सर्ग धारण कर लिया और दोनों आर्यिकाओंने भी शरीरसे ममता छोड़दी। वह दुष्ट अजगर उनके पास आया और देखते देखते ही तीनोंको निगल गया ॥८५–८६॥ उसके बाद मुनि रश्मिवेगका जीव कापिष्ठ स्वर्गमें विशाल ऋद्धिका धारक अर्कप्रभ नामका देव हुआ और दोनों आर्यिकायें रुचक विमानमें सामान्य देव हुई ॥८७॥ कुछ दिनके बाद परम रौद्रध्यानी महाशत्रु दुष्ट अजगर भी मरा और पापरूपी कीचड़में फंसकर पांचवे नरकगया ॥ ८८ ॥

इसी भरतक्षेत्रके चक्रपुर नगरमें एक अपराजित नामका राजा रहता था उसकी स्त्रीका नाम सुंदरी था रानी रामदत्ताका पुत्र सिंहचंद्र ग्रैवेयकके प्रीतिंकर विमानसे चय कर सुंदरीके चक्रायुध नामका पुत्र हुआ। चक्रायुधकी स्त्रीका नाम चित्रमाला था और उसके रामदत्ताके पति सिंहसेनका जीव स्वर्गसे चयकर वज्रायुध नामका पुत्र हुआ ॥८९–९०॥ पृथिवीतिलक पुरका स्वामी राजा प्रियंकर था उसकी स्त्रीका नाम अतिवेगा था रानी रामदत्ताका जीव स्वर्गसे चयकर उसके रत्नमाला नामकी कन्या हुआ ॥ ९१ ॥ कन्या रत्नमाला चक्रायुधके पुत्र वज्रायुधके साथ विवाही गई और उसके स्वर्गसे चयकर रामदत्ताके पुत्र पूर्णचंद्रका जीव रत्नायुध नामका पुत्र हुआ ॥ ९२ ॥ राजा चक्रायुधने वज्रायुधको राज्यदे पिहितास्रव मुनिराजके पादमूलमें दिगंबर दीक्षा धारण करली और तपसे कर्म नष्ट कर मोक्ष चला गया ॥९३॥ राजा वज्रायुधने भी रत्नायुधको राज्य देदिया और दिगंबर दीक्षा धारण करली। पूर्णचंद्रका जीव राजा रत्नायुध राज्य पाकर मत्त होगया और मिथ्यामार्गका आश्रय करनेलगा ॥९४॥ उसके एक मेघनिदान नामका पट्टहस्ती था एक दिन वह जल अवगाहनकेलिये किसी तालावमें गया मार्गमें मुनिराजका दर्शन होजानेसे उसै जातिस्मरण होगया इसलिये तालावमें जाकर उसने पानी न पीया ॥९५॥ राजा रत्नायुधको हाथीकी इस उदासीनताका पता न लगा इसलिये उसने मुनिराज वज्रदंतके पास जा उसका कारण पूछा–उत्तरमें मुनिराजने कहा–

चित्रकारपुरमें एक प्रीतिभद्र नामका राजा रहता था उसकी स्त्रीका नाम सुंदरी था और उन दोनोंके प्रीतिंकर नामका पुत्र था ॥९६–९७॥ राजा प्रीतिभद्रके मंत्रीका नाम चित्रभद्र था और उसके कमला नामकी स्त्रीसे एक विचित्रमति नामका पुत्र

उत्पन्न हुआ था जो परम नीतिवेत्ता था ॥ ९८ ॥ राजपुत्र प्रीतिंकरने और मंत्रिपुत्र विचित्रमतिने एकदिन श्रुतिसागर मुनिराजसे तपका फल सुना उन दोनोंको संसारसे उदासीनता होगई इसलिये युवा अवस्थामें ही उन्होंने मुनिराज श्रुतसागरसे दिगंबर दीक्षा लेली ॥ ९९ ॥ ये दोनों कुमार परम सुंदर थे नाना प्रकारके तप तपनेवाले थे एकदिन अनेक निर्वाण धाम-तीर्थोंको निहारते हुये वे साकेतपुरी अयोध्या आये। ॥ १०० ॥ अयोध्यामें उससमय एक बुद्धिसेना नामकी वेश्या रहती थी जो अतिशय रूपवती थी अचानक ही मंत्रिपुत्र विचित्रगतिकी उसपर दृष्टि पड़ गई वेश्याका सौंदर्य देख उसका मन चलित होगया जिससे कि पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मके उदयसे उसने निर्लज्ज हो परमपावन मुनिव्रतकेलिये तिलांजलि देदी ॥ १०१ ॥ उससमय उस नगरका स्वामी गंधमित्र नामका राजा था गंधमित्र मांसखानेका बड़ा लोलुपी था मुनिपदसे भ्रष्ट हो विचित्रमति जा उसका रसोईया होगया यह मांस बनाना अच्छा जानता था इसलिये राजाने संतुष्ट हो जब इसे वर मागनेके लिये बाध्य किया तो उसदुष्टने वह बुद्धिसेना वेश्या मांगली ॥ १०२ ॥ इसप्रकार राजाके प्रसादसे बुद्धिसेनाके मिलजाने पर यह उसके साथ मनमाने भोग भोगने लगा धर्मकी ओरसे इसकी चित्तवृत्ति सर्वथा हट गई यह बड़े आनंदसे मांस खाने लगा जिससे कि अंतमें मरकर पापके प्रबल उदयसे सातवें नरकमें नारकी हुआ ॥ १०३ ॥ जब इसकी सातवें नरककी स्थिति समाप्त हो चुकी तो वहांसे निकल अनेक जगह इस असार संसारमें भ्रमण करने लगा और अब किसी विशेष पापके उदयसे वह आपके यहां यह मत्त हाथी हुआ है॥ १०४ ॥ मुनिराजके दर्शनसे इसे जातिस्मरण होगया है हरएक कार्यमें इससमय इसकी रुचि मंद है, परिणाम शांत हैं। और यह अपने कर्मोंकी निंदा करता रहता है॥ १०५ ॥ इसप्रकार मुनिराजके मुखसे हाथीके पूर्वभवका वर्णन सुन राजा रत्नायुध और हाथी दोनोंने मिथ्यात्वको छोड़ श्रावकोंके व्रत धारण कर लिये ॥ १०६ ॥ पुरोहित श्रीभूतिका जीव अजगर पर्यायसे मरकर पंकप्रभा गया था वहांकी आयु समाप्त होनेसे निकल भील दारुणके भीलनी मंगीसे अतिदारुण नामका पुत्र हुआ जो स्वभावसे भी अतिशय दारुण (कठोर) था ॥ १०७ ॥ एक दिन राजा सिंहसेनके जीव मुनिराज वज्रायुध प्रियंगुवनमें योगधारण कर विराजमान थे दुष्ट अतिदारुणने उन्हें मारडाला जिससे कि वे अपने शुभ उदयसे सर्वार्थसिद्धि विमानमें जाकर अहमिंद्र हुये ॥ १०८ ॥ दुष्ट अतिदारुण भीलने परमपवित्र मुनिराजका वध किया था इसलिये प्रबल पापके उदयसे वह सातवें महातमप्रभा नरक गया और वहांपर भयंकर वेद ा भे.गीं ॥ १०९ ॥ रामदत्ताके जीव रानी रत्नमालाका रत्नायुधपर गाढ़ प्रेम था इसलिये वह उसके मोहसे आर्यिका न हो सकी घरमें रहकर श्रावकके ही व्रत पालती रही इसलिये आयुके अंतमें मरकर वह

सोलहवे स्वर्गमें देव हुई और रत्नायुध भी श्रावक धर्मके प्रसादसे उसी स्वर्गमें उत्तम देव हुआ ॥ ११० ॥ धातकीखंडद्वीपके पूर्वमेरुके पश्चिम विदेहमें एक गंधिलादेश है वहांपर एक अयोध्यापुरी है किसीसमय वहां राजा अर्हद्दास राज्य करता था और उसके सुव्रता और जिनदत्ता नामकी दो स्त्रियां थीं। रानी रामदत्ता और पूर्णचंद्रके जीव दोनों देव स्वर्गसे चयकर इन दोनों रानियोंके बलभद्र और नारायण पुत्र हुये। अर्थात् रानी रामदत्ताका जीव तो रानी सुव्रताके वीतभय नामका बलभद्र हुआ और पूर्णचंद्रका जीव रानी जिनदत्ताके विभीषण नामका नारायण हुआ ॥ १११-११२ ॥ नारायण विभीषण मरकर अपने परिणामके अनुसार प्रथम नरक गया और वीतभय बलभद्रने अनिवृत्ति मुनिराजके पादमूलमें दिगंबर दीक्षा धारण करली इसलिये तपके प्रभावसे लांतव स्वर्गमें आदित्याभ नामका इंद्र हुआ—सो वह मैं हूं। मैने एकदिन प्रथम नरकमें जाकर विभीषण नारायणके जीव नारकीको धर्मका बोध करादिया था जिससे कि वह सम्यग्दृष्टि होगया ॥ ११३-११४ ॥

जंबूद्वीपके विदेहक्षेत्रमें एक गंधमालिनी देश है और उसमें एक विजयार्ध पर्वत है। किसीसमय उसका स्वामी राजा श्रीधर्म था और उसकी स्त्री श्रीदत्ता थी। पूर्णचंद्रका जीव जो विभीषण पर्यायसे नरक गया था वहांकी आयु समाप्त कर उसी रानी श्रीदत्ताके श्रीदाम नामका पुत्र हुआ एक दिन वह मुझे मेरुपर्वतपर मिला मैंने उसे पुनः वहां धर्म बोध कराया ॥ ११५-११६ ॥ इसलिये एक दिन उसको संसारसे उदासीनता होगई और मुनिराज अनंतमतिका शिष्य हो वह मुनि होगया जिससे कि आयुके अंतमें मरकर ब्रह्मलोकके चंद्राभ विमानमें जाकर देव हुआ है ॥ ११७ ॥ श्रीभूति पुरोहितका जीव भील पर्यायसे सातवें नरक गया वहांसे निकल सर्प हुआ पुनः रत्नप्रभा नामक प्रथम नरकमें गया और उसने वहांकी आयु समाप्तकर तिर्यंचवन अनेक दुःख भोगे। उसके बाद कुछ शुभ उदयसे ऐरावती नदीके तटपर भूतरमणवनमें तपस्वी खमालीके, स्त्री कनककेशीसे उत्पन्न मृगके समान मृगशृंग नामका पुत्र हुआ और पंचाग्नि तप तपने लगा। एकदिन चंद्राभनामका विद्याधर आनंदसे आकाशमें चला जा रहा था तपस्विपुत्र मृगशृंगकी दृष्टि उसपर पड़गई और उसने वैसाही विद्याधर होनेका निदान बांधलिया सो अब वह श्रीभूतिका जीव मृगशृंगपर्यायका परित्यागकर राजा वज्रदंष्ट्रके रानी विद्युत्प्रभासे उत्पन्न अनेक विद्याओंका स्वामी विद्युद्दंष्ट्र पुत्र हुआ है ॥ ११८-१२१ ॥ राजा सिंहसेनका जीव वज्रायुधकी पर्यायसे सर्वार्थसिद्धि गया था सो वहांसे चयकर संजयंत हुआ और ब्रह्मलोकसे चयकर जयंतका जीव तू धरणेंद्र हुआ है ॥ १२२ ॥ देखो ! वैरकी महिमा ! राजा सिंहसेनने श्रीभूति पुरोहितके जीवका एक जन्ममें अपकार किया था उसी वैरसे श्रीभूतिके जीवने उन्हें कई जन्मोंमें मारा ॥ १२३ ॥ बतलाओ ! वैरकी प्रबलतासे जो इस विद्युद्दंष्ट्रने कईवार राजा सिंहसेनके जीवको मारा दुःखदिया सो इसने क्या लाभ उठाया

प्रत्युत अपनी आत्माको सुखसे और वंचित रक्खा—पापके उदयसे नरक आदि गति-योंमें अनेक यातनायें सहीं ॥ १२४ ॥ धरणेंद्र ! सिंहसेनका जीव तो हाथीके भवमें पवित्र जैनधर्मका आराधन कर वैररहित हो पांचवें भवमें संजयंत पर्यायसे मोक्ष भी चलागया और तू विरोधके कारण इस संसारमें भ्रमण करता फिरता है ॥ १२५ ॥ अब इस वैरबंधको घोर संसारका कारण जान सर्वथा छोड़ दे और मिथ्यात्वका भी सर्वथा त्यागकर सम्यक्त्व लाभ कर" ॥१२६॥ लांतवेंद्र आदित्याभके वचनोंसे प्रबुद्ध हो धरणेंद्रने वैरका सर्वथा त्यागकर दिया और संसारसे पार करनेवाले सम्यक्त्वको धारण करलिया।

धरणेंद्रने विद्याधरोंकी विद्या खंडित करदी तो वे पंखरहित पक्षियोंके समान हो गये प्रत्येक कार्य करनेमें उन्हें खेद मालूम होनेलगा इसलिये उन्होंने पुनः अपनी विद्याकी प्राप्तिकेलिये धरणेंद्रसे उपाय पूछा। उत्तरमें धरणेंद्रने कहा—"समस्त विद्याधर मिलकर इस पर्वतपर मुनिराज संजयंतकी पांचसौ धनुष ऊंची पवित्र प्रतिमा स्थापन करो। ॥ १२७–१२९ ॥ उस प्रतिमाके पादमूलमें बैठकर तुम्हें बड़े कष्टसे पुनः विद्याओंकी सिद्धि होगी और दूसरी तरह उनकी सिद्धिका कोई उपाय नहीं ॥ १३० ॥ आजसे राजा विद्युद्दंष्ट्रके वंशमें केवल स्त्रियोंको प्रज्ञप्ति रोहिणी और गौरी विद्यायें सिद्ध होसकेंगी पुरुषोंको नहीं" ॥ १३१ ॥ विद्याधरोंने धरणेंद्रके वचनोंको स्वीकार कर उसे विनय-पूर्वक नमस्कार किया और वे अपने २ स्थान चलेगये ॥ १३२ ॥ विद्याधरोंने ह्रीमंत पर्वतपर अनेक उपकरणोंसे शोभित रत्नमयी मुनिराज संजयंतकी प्रतिमा स्थापन की थी और विद्याओंके खंडित होजानेसे लज्जित हो नीचा मस्तककर वे उस पर्वतपर बैठे थे इसलिये उसका नाम ह्रीमंत पड़ा एसी प्रसिद्ध कहावत है ॥१३३–१३४॥ मथुरामें विशाल शोभासे मंडित राजा रत्नवीर्य रहता था उसकी स्त्रीका नाम मेघमाला था लांतवेंद्र आदि-त्याभका जीव स्वर्गसे चयकर उसके पुत्र हुआ और उसका नाम मेरु रक्खा गया ॥१३५॥ राजा रत्नवीर्यकी दूसरी स्त्रीका नाम अमितप्रभा था उसके धरणेंद्रका जीव आकर मंदर नामका पुत्र हुआ जो चंद्रमाके समान सुंदर था ॥१३६॥ दोनों भाइयोंने युवा अवस्थामें पदार्पणकर मनमाने भोग भोगे। एक दिन उन्हें संसारसे वैराग्य होगया जिससे कि वे श्रेयां-सनाथ जिनेंद्रके शिष्य बन मुनि होगये ॥१३७॥ मुनिराज मेरु मेरुपर्वतके समान निश्चल हो घोर तप तपने लगे और केवलविभूतिको पा मोक्ष सिधारे तथा मंदराचलके समान निश्चल छोटे भाई मंदर भगवान श्रेयांसके गणधर बनगये ॥१३८॥ ग्रंथकार कहते हैं—जो भव्यजीव जिनपदके अभिलाषी हैं कर्मोंका नाश करना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि तीनों लोकमें प्र-सिद्ध, परमपावन, मुनिराज संजयतके चरित्रका भक्तिभावसे श्रवण और स्मरण करें ॥१३९॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेन द्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें मुनिराज संजयंतका पवित्र चरित्र वर्णन करनेवाला सत्ताईसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ २७ ॥

अट्ठाईसवां सर्ग।

भगवान गौतमने कहा—राजन् श्रेणिक! अब मैं पुनः कुमार वसुदेवकी चेष्टाओंका वर्णन करता हूं तुम ध्यानपूर्वक सुनो—

कारणवश एक दिन कुमारका रमणी वेगवतीसेभी वियोग होगया जिससे कि उससमय उनके साथ सिवाय पुण्य और पराक्रमके कुछ भी न रहगया ॥ १ ॥ जहां तहां भ्रमण करते २ एक दिन उन्होंने किसी वनमें तपस्वियोंके आश्रममें प्रवेश किया और वहां अनेक प्रकारकी विकथाओंमें आसक्त अनेक तपस्वियोंको देखा ॥ २ ॥ तपस्वियोंके मुखसे विकथा सुन कुमारने कहा—

तपस्वियो! तप करनेवाले तपस्वी कहलाते हैं और मन वचन कायका वशकरना तप है आप लोग यह क्या तपस्वियोंके लिये सर्वथा अयोग्य राजकथा और युद्धकथा कर रहे हैं? ॥ ३ ॥ तपस्वी भले आदमी थे कुमारके वचन सुनते ही उन्होंने कहा—

"कुमार! हम नये ही साधु हुये हैं हमैं मौन धारण करनेका ज्ञान नहिं है ॥४॥ इसी श्रावस्ती नगरीमें जिसका यश समुद्र पर्यंत फैला हुआ है और जो अक्षय पराक्रमका धारक है राजा एणीपुत्र है॥ ५ ॥ और उसके समस्त लोकमें सुंदरी एक प्रियंगुसुंदरी नामकी कन्या है। विवाहके योग्य होजाने पर राजाने प्रियंगुसुंदरीका स्वयंवर किया था और उस स्वयंवरमें हम सब राजाओंको बुलाया था ॥ ६ ॥ न मालूम क्या कारण होगया कि जिसप्रकार वनकी हस्तिनी वनसे अतिरिक्त प्रदेशमें रहनेवाले हाथीको पसंद नहीं करती उसीप्रकार परम शोभासे मंडित प्रियंगुसुंदरीने हममेंसे किसीको न पसंद किया—न वरा ॥ ७ ॥ कन्याका यह वर्ताव देख स्वयंवर मंडपमें बैठे हुये समस्त राजाओंके मुख फीके पड़ गये और उन्होंने मिलकर कन्याकी प्राप्तिकी अभिलाषासे कन्याके पिता राजा एणीपुत्रसे युद्ध ठान दिया। राजा एणीपुत्र बड़ा पराक्रमी निकला और जिसप्रकार अकेला ही सूर्य हजारों मनुष्योंके नेत्रोंको चुंदिया देता है उसने हजारों राजाओंको क्षुब्ध और निस्तेज कर दिया ॥ ८-९ ॥ जो राजा अभिमानकी शिखरपर विराजमान थे—रणस्थलसे भागनेकी अपेक्षा वहांही प्राण दे देना अच्छा समझते थे वे तो उसके साथ युद्ध करने लगे और वहीं मर गये ॥१०॥ और जो डरपोंक थे ऐसा करना न चाहते थे वे जिसप्रकार सूर्यकी किरणोंसे भयभीत हो अंधकार गह्वर गुफाओंमें जा छिपता है उसीप्रकार उस राजाके प्रतापसे भय खा इस पर्वतकी कंदराओंमें आकर छिप गये और वे हम लोग ही हैं। कुमार! हम धर्मके तत्त्वोंसे सर्वथा अपरिचित हैं वचनभंगीसे आप हमैं तत्त्ववेत्ता जान पड़ते हैं कृपाकर हमैं धर्मोपदेश दीजिये" ॥ १२ ॥ तपस्वियों के ऐसे वचन सुन और उन्हैं निरभिमानी शांत देख कुमारने मुनि और श्रावक धर्मका उपदेश दिया जिससे कि यति और श्रावकोंका भेद जान

वे तत्काल मुनि बन गये ॥ १३ ॥ इधर कुमार वसुदेवका चित्त भी प्रियंगुसुंदरीके पानेके लिये लालायित होगया वे शीघ्रही परम प्रसिद्ध श्रावस्ती नगरीकी ओर चल दिये ॥ १४ ॥ श्रावस्तीके बाह्य उद्यानमें एक कामदेवका मंदिर बना था वहां पहुंच कर कुमारको उसके आगे तीन पैरका एक भैंसा जो कि सुवर्णका बना हुआ था दीख पड़ा ॥ १५ ॥ भैंसाको देख कुमारको बड़ा आश्चर्य हुआ वे उसके पासमें बैठे हुए एक ब्राह्मणसे इसप्रकार पूछनेलगे—

"भाई! यह रत्नोंसे जडित तीनपैरका भैंसा क्यों और कैसे बनाया गया? इसमें कुछ न कुछ कारण अवश्य होना चाहिये" ब्राह्मणने कहा—

आर्य! इसी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशसे उत्पन्न एक जितशत्रु नामका राजा राज्य करता था उसके एक पुत्र था जिसका कि नाम मृगध्वज था ॥१६-१७॥ और इसी नगरीमें एक कामदत्त नामका सेठ भी रहता था उसकी एक पशुशाला थी कदाचित् सेठ उस पशुशालाको देखने गया तो वहां एक अति दीन भैंसेका बच्चा उसे देखते ही उसके पैरोंमें आकर पड़ गया ॥ १८ ॥ भैंसेके बच्चेका यह आश्चर्यकारी कृत्य देख सेठको बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने उसीसमय पशुशालाके अध्यक्ष पैंडक गोपालको बुलाकर उसके बारेमें पूछ ताछकी। उत्तरमें गोपालने कहा—

जिसदिन यह महिषबालक उत्पन्न हुआ था यह मेरे भी पैरोंमें इसीतरह आकर पड़गया था उसी दिनसे इसपर मेरा बड़ा प्रेम होगया है। मैं एक दिन बनमें गया था वहां मुनिराजके दर्शन होते ही मैंने पूछा था—

"प्रभो! मेरी गोशालामें एक भैंसेका बच्चा है उसपर जन्मसे ही मेरी इतनी करुणा और प्रीति क्यों है? उत्तरमें मुनिराजने कहा था—

गोपाल! तुम्हारी पशुशालामें एक ही महिषीसे वह पांचवार भैंसा हुआ और पाचोंवार तुमने बालकपनमें ही उसे मार डाला अब वह छठीवार उसी महिषीके पैदा हुआ है तुम्हें देखते ही उसे जातिस्मरण होगया था इसलिये वह यह विचार कि बालक अवस्थामें यह मुझे फिर न मार डाले भयभीत हो तुम्हारे पैरोंमें पड़गया था" ॥१९-२३॥ मुनिके यह वचन सुन मैंने उसीदिनसे इसे पुत्रके समान पाला है और आज अपने जीवनकी अभिलाषासे यह आपके पैरोंमें भी पड़गया है ॥२४॥ गोपालके मुखसे महिषबालकके बारेमें यह समाचार सुन सेठ उसे अपने घर ले आया उसका नाम भद्रक रक्खा और राजलोकसे अभयदान दिला भलेप्रकार बढ़ाया ॥ २५ ॥ राजपुत्र मृगध्वजका महिषके साथ पूर्व जन्मका प्रबलवैर था इसलिये चक्रसे उसने महिषका एक पैर काट दिया ॥ २६ ॥ ज्योंही राजाने यह बात सुनी उसने क्रोधमें आ शीघ्र ही कुमारके मारनेके लिये मंत्रीको आज्ञा देदी। मंत्री विचार परिपूर्ण था छलसे कुमारको

वनमें ले आया और वहांपर उसे किसी मुनिसे मुनिव्रत दिलवा मुनि बना दिया ।।२७।। भैंसा भद्रक अठारहवें दिन शुभपरिणामोंसे मरगया और मुनि मृगध्वजको घातिया कर्मोंके नष्ट होनेसे बावीसवें दिन केवल ज्ञान होगया ।। २८ ।। केवली मृगध्वजकी पूजार्थ चारो निकायके देव और बड़े २ मनुष्य आये मृगध्वजके पिता राजा जितशत्रु भी गये वहां पहुंचकर उन्होंने भैंसा और मृगध्वजके विरोधके संबंधमें प्रश्न किया उत्तरमें मुनिराजने कहा—

किसीसमय अलकापुरीमें प्रथम नारायण त्रिपिष्टका प्रतिशत्रु (प्रतिनारायण) विद्याधरोंका अधिपति राजा अश्वग्रीव निवास करता था ।। २९–३१ ।। राजा अश्वग्रीवके मंत्रीका नाम हरिश्मश्रु था यह तर्क शास्त्रका परमवेत्ता था और हरि (इंद्र) की श्मश्रु (मूंछ) के समान कठिनतासे स्पर्श किया जाता था इसलिये वास्तविक नामका धारक था। वह केवल प्रत्यक्ष प्रमाणका माननेवाला एकांतवादी परम नास्तिक होनेसे जो वस्तु प्रत्यक्ष गोचर नहीं उसे वह सर्वथा स्वीकार नहिं करता था ।। ३२–३३ ।। उसका सिद्धांत था जिसप्रकार कोंदो आदि मदकी सामग्रीमें मदशक्ति व्यक्त होजाती है उसीप्रकार पृथ्वी जल तेज और वायु इन चार भूतोंके आपसमें मिलजानेपर एक प्रकारकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है उसीको चैतन्य शक्ति कहते हैं।। ३४ ।। संसारमें जो आत्मा आत्मा व्यवहार हो रहा है वह उसी भूतसमुदायसे उत्पन्न हुई शक्तिमें है क्योंकि "पृथ्वी जल आदिसे भिन्न कोई आत्मा है" न यह बात आज तक सुनी गई और न देखी गई पुण्य पापका कर्ता सुख दुःखका भोक्ता कोई पदार्थ संसारमें है यह बात सर्वथा मिथ्या है क्योंकि वैसा पदार्थ कोई प्रत्यक्ष गोचर होता नहीं और उसके अभावमें जो नरक स्वर्ग तिर्यंच आदि कल्पना कर रक्खे हैं वह मूर्खोंकी विडंबना मात्र है क्योंकि जब आत्मा ही नहीं तब उसके रहनेका स्थान परलोक कहांसे हो सकता है ।। ३५–३७ ।। ज्ञानका आश्रय कोई आत्मा है और उसकी मोक्ष होती है यह भी बात सर्वथा कपोल कल्पित है क्योंकि इसमें कोई प्रमाण नहीं ।।३८।। भूतोंके समूहसे ही तो इस आत्माकी उत्पत्ति है भूतोंके विखर जानेपर इसका अभाव है इसलिये जो आत्मा परम सुखी अवस्थाका त्याग कर संयम धारण करना चाहते हैं वे प्रत्यक्ष होनेवाले उत्तमोत्तम भोगोंको लात मारते हैं और उन्हें कुछ भी लाभ नहिं होता ।।३९।। इसप्रकारके विचारसे एकांतमार्गका अनुगामी वन मिथ्या तर्क वितर्क करनेवाला, आगमसिद्ध जीव आदि पदार्थोंका स्वीकार न करनेवाला, परलोककी कथा न कर सदा मूढ कथाओंमें लग्नचित्त, धर्मका दूषक, वह पापी मंत्री निर्भयतापूर्वक मनमाने भोग भोगता था ।। ४०–४१ ।। नास्तिक, परलोकके अपलाप करनेवाले, तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि महापुरुषोंकी कथाके द्वेषी, द्रव्यके परम अभिलापी मंत्री हरिश्मश्रुके संसर्गसे राजा अश्वग्रीव भी नास्तिक बनगया जिससे कि धर्मसे

पराङ्मुख हो उसका द्वेषीबन उन्मत्त हो रहने लगा ।। ४२–४३ ।। कदाचित नारायण त्रिपिष्ट और प्रतिनारायण अश्वग्रीवका आपसमें युद्ध ठनगया त्रिपिष्टने अश्वग्रीवको और बलभद्र विजयने मंत्री हरिश्मश्रुको युद्धमें मार गिराया जिससे कि मरकर वे दोनों पापी प्रबल पापसे नरक पहुंचे ।। ४४ ।।

राजन्! चिरकालतक अनेक जगह भ्रमणकर राजा अश्वग्रीवका जीव तो मैं मृगध्वज हुआ और हरिश्मश्रुका जीव अनेक योनियोंमें भ्रमणकर महिष हुआ ।। ४५ ।। पूर्वभवके क्रोधके कारण मैंने उस महिषको मारा और वह अकामनिर्जराकी कृपासे मरकर महान ऋद्धिका धारक लोहित नामक असुर हुआ है ।। ४६ ।। इससमय वह देव, वंदनार्थ यहांपर भी आया है और मित्रभावसे इस जगह बैठा है ।। ४७ ।। राजन्! यह क्रोध जीवोंको अंधा बनादेता है इसलिये जो मनुष्य मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि इस महावैरी क्रोधका नाश करें" ।। ४८ ।। केवली मृगध्वजके मुखसे वह वृत्तांत सुन जितशत्रु आदि राजाओंने दिगंबर दीक्षा धारण करली। लोहित असुर भी शांत होगया उसने माया मिथ्या निदान तीनों शल्योंका त्यागकर लोलुपता छोड़ दी और सम परिणामी बन गया ।। ४९ ।। इसके बाद अन्य देव असुर मनुष्य भी केवलीको नमस्कार कर अपने अपने स्थान चलेगये और केवली मुनिराज सिद्धशिला पर जा विराजे ।। ५० ।।

ग्रंथकार कहते हैं—जो भव्यजीव शुद्ध मनसे महिष और मुनिराज मृगध्वजके पवित्र चरित्रका श्रवण मनन करता है उसके सम्यग्दर्शनकी विशुद्धिपूर्वक जिनभाषित पदार्थोंका भलेप्रकार श्रद्धान होता है ।। ५१ ।।

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें मुनिराज मृगध्वज और महिषका चरित्र वर्णन करनेवाला अट्ठाईसवां सर्ग समाप्त हुआ ।।२८।।

उनतीसवां सर्ग।

सेठ कामदत्तने जहांसे लोगोंका नगरमें आवागमन था जिनालयके आगे केवली मृगध्वजकी प्रतिमा और महिष भद्रककी मूर्ति स्थापित की और इसी जिनालयमें समस्त मनुष्योंके कौतूहलकेलिये कामदेव और रतिकी मूर्ति भी पधराई। सबलोग कामदेव और रतिके देखनेके कौतूहलसे इस जिनालयमें आते हैं और यहां भद्रक महिषकी मूर्ति एवं भगवान मृगध्वजकी प्रतिमाको देख और उनके वृत्तांतका स्मरणकर वे जैनधर्मके गाढ़ श्रद्धानी होजाते हैं ।।१–४।। यह जैन मंदिर कामदेवमंदिरके नामसे प्रसिद्ध है और इसको देखनेके लिये कौतूहलसे आये हुये लोगोंको पवित्र जैनधर्मके श्रद्धान करानेमें कारण है ।। ५ ।। सेठ कामदत्तके मरजानेपर उनके वंशमें बहुतसे सेठ होचुके हैं और

आजकल भी उसी वंशमें एक कामदेव नामके सेठ मौजूद हैं ॥६॥ सेठ कामदेवके पूर्ण-रूपवती, युवति, पूर्णिमाके चंद्रसमान मनोहर मुखसे शोभित, एक बंधुमती नामकी कन्या है जो समस्त बंधुलोककी प्यारी है ॥७॥ एकदिन सेठ कामदेवने बंधुमतीका स्वामी कोन होगा ? इस वारेमें किसी नैमित्तिकसे पूछा था उत्तरमें नैमित्तिक ने कहा था–जो मनुष्य कामदेवमंदिरका दरवाजा उघाड़ कामदेवकी पूजा करैगा वही परम कांतिका धारक तुम्हारी कन्याका पति होगा" ॥ ८ ॥ ब्राह्मणके मुखसे ऐसा वृत्तांत सुन कुमार तत्काल कामदेवके मंदिरके द्वारपर गये और बत्तीस अर्गलाओंद्वारा मजबूतीसे बंद होने पर भी उसको तत्काल खोल भीतर प्रवेश करगये। वहां जा कुमारने भक्तिभावसे जिनेंद्र भगवान की पूजाकी और उसके बाद रति एवं कामदेवकी मूर्तियोंका भी सादर सत्कार किया। उसीसमय सेठ कामदेव भी भगवान जिनेंद्रकी पूजाकेलिये वहां आया कुमारको देख और नैमित्तके वचनोंको सर्वथा सच्चामान उसै बड़ा आनंद हुआ। इस-लिये बड़े आदरसे वह कुमारको अपने घर लेगया और परम सुंदरी अपनी कन्या बंधुमतीके साथ उनका विवाह करदिया ॥ ९–११ ॥ समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाला, कामदेवके समान कमनीय, सेठ कामदेवको भगवान कामदेवकी कृपासे कोई उत्तम जमाई मिला है यह बात सारी नगरीमें जहां तहां फैलगई एवं राजा रणवांस और पुरवासी लोग कुमारको देख प्रसन्न होने लगे किसीसमय राजपुत्री प्रियंगुसुंदरीकी भी कुमारपर दृष्टि पड़गई और वह उनमें इतनी अनुरक्त होगई कि खानपानसे भी उसै विरक्ति होनेलगी ॥ १२–१४ ॥ एकदिन कुमारी प्रियंगुसुंदरीने अपनी प्यारी सखी बंधुमतीको एकांतमें बुलाया और बड़े प्रेमसे इसप्रकार पूछा–"तुम तो अपनी पतिकी बड़ी प्यारी हो कहो उनकी हरएक विषयमें कैसी चतुरता है ? वे किस ढंगके आद-मी हैं ?" ॥ १५ ॥ बंधुमती विचारी भोली भाली थी कुमारके जो आचरण और चेष्टा उसने देखे थे सारे कह सुनाये बस फिर क्या था सुनते ही प्रियंगुसुंदरी विकल होगई और स्वसंवेद्य गाढ़सुखका अनुभव करने लगी ॥ १६ ॥

अंतको प्रियंगुसुंदरीसे न रहा गया उसने कुमारके प्रेमसे अंधी हो उनके पास एक द्वारपाल भेजा और उससे यह संदेशा कहलवाया "कुमार ! आपकी विरहाग्निसे प्रियंगुसुंदरी जली जा रही है इसलिये या तो उसे अपने समागमरूपी जलसे शांत कीजिये या नहीं तो फिर स्त्रीहत्या करनेका पाप स्वीकार कीजिये" द्वारपालके मुखसे राजपुत्रीका यह संदेशा सुन कुमार बड़ी कठिनाईमें पडे वे सोचने लगे कि "ऐसे समयमें क्या करना चाहिये ? यदि उस कन्याके साथ समागम किया जाता है तो यह धर्मविरुद्ध है क्योंकि वह अविवाहिता है और यदि उसकी इससमय उपेक्षाकी जाती है तो यह अपने प्राण छोड़ देनेको तयार है इसके मरजानेसे स्त्रीहत्याका पाप

लगेगा यह भी ठीक नहीं है" इसतरह बहुत समयतक सोच विचार करनेके वाद कुमारने "अभी मौका नहीं है कुछदिन और ठहर जाओ" कहकर द्वारपालको टाल दिया। द्वारपालके मुखसे कुमारके वचन सुन प्रियंगुसुंदरीको उनके समागम होनेकी आशा होगई वह इतनेमात्रसेही अपने मनोरथको परिपूर्ण हुआ जान कुमारके ध्यानमें रात दिन वितानेलगी। एकदिन कुमार अपनी प्रियतमा बंधुमतीके साथ गहरी नींदमें सोरहेथे कि अचानकही उन्हें दिव्य शोभासे शोभित एक ज्वलनप्रभा नामकी नागकन्याने आकर जगादिया ॥ १७–२० ॥ जगतेही भूषणोंकी कांतिसे समस्तदिशाओंको प्रकाशित करनेवाली सर्पके चिह्नसे युक्त उस स्त्रीको देख कुमार चोंकपडे और यह कौन है? इससमय क्यों आई है? ऐसी गहरी चिंतामें डूबगये॥ २१ ॥ इतनेमेंही नागकुमारीने प्रिय वचन कहकर कुमारको बुलाया और अशोकवाटिका (अशोकके पेडोंका वगीचा) में लेजाकर विनम्र हो इसप्रकार निवेदन किया—

प्रिय वीरकुमार! मेरे यहां आनेका कारण तुम ध्यानपूर्वक सुनो मेरे वृत्तांतरूपी अमृतरससे नियमसे आपके दोनों कान तृप्त होंगे ॥ २२–२३ ॥

इसी पृथ्वीपर एक चंदनवन नामका नगर है किसी समय उसका स्वामी राजा अमोघदर्शन था यह राजा प्रबल पराक्रमी होनेके कारण समस्त शत्रुमंडलको वश करनेवाला था ॥ २४ ॥ राजा अमोघदर्शनकी स्त्रीका नाम चारुमति था और उसके चारुचंद्र नामका पुत्र था यह पुत्र परम नीतिवेत्ता प्रबल पराक्रमी और नवीन यौवन लक्ष्मीसे मंडित था॥ २५ ॥ उसी नगरमें कला और गुणोंमें अतिशय पंडिता एक रंगसेना नामकी वेश्या रहती थी उसकी पुत्रीका नाम कामपताका था जो वास्तवमें अपने सौंदर्यसे कामकी पताका (ध्वजा) जान पडती थी॥ २६ ॥

धर्मके तत्त्वोंसे सर्वथा पराङ्मुख राजा अमोघदर्शनने एकदिन यज्ञ कराया और उसमें वडी वडी जटाओंके धारक कौशिक आदि तपस्वी बुलाये ॥२७॥ राजाकी आज्ञासे वेश्यापुत्री कामपताकाने नृत्य करना प्रारंभ किया एवं नृत्यके समय अपने सौंदर्य और हावभावोंसे मनुष्योंका हृदय भेदते हुए उसने वास्तवमें कामकी पताकाका काम किया ॥ २८ ॥ अन्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या थी कामपताकाके सौंदर्यने उससमय जो अनेक शास्त्रोंका पूर्ण ज्ञान रखता था कंदमूल पत्र पुष्पोंका खानेवाला था ऐसे तपस्वी कौशिकका भी हृदय चलायमान करदिया—वह भी पूर्णरूपसे उस वेश्यापर मुग्ध होगया ॥ २९ ॥ यज्ञकर्म समाप्त होजानेपर कामपताकाको राजपुत्र चारुचंद्रने स्वीकार करलिया इसके बाद उसीसमय कौशिक ऋषिके शिष्य कुछ तपस्वी वहां आये और राजाको भक्त जान कौशिकके लिये उस वेश्याकी याचना करने लगे उत्तरमें राजाने कहा—वेश्या तो कुमार चारुचंद्रने स्वीकार करली है वह अब नहीं मिल सकती। राजासे यह उत्तर पाकर

तपस्वी अपने आश्रमको लौट गये और सारा संदेशा कौशिकसे जा सुनाया ॥ ३०-३१ ॥ संदेशा सुनते ही मारे क्रोधके कौशिक भभक उठा वह तत्काल राजाके पास आया और उसे इसप्रकार आक्रोशके वचन सुनाकर कि-जा ! राजा ! मैं [illegible] सर्पवन डसूंगा तूने मेरे वचनोंपर कुछ भी विचार नहिं किया" आश्रम लौट गया ॥ ३२ ॥ कौशिकके ऐसे वचन सुन राजा अमोघदर्शनको वड़ा भय हुआ उसने शीघ्र ही अपने पुत्र चारुचंद्रका राज्याभिषेक करदिया और एक या दो महीनेका गर्भ होनेसे अव्यक्त गर्भवाली अपनी रानी चारुमतिके साथ तपस्वी होगया ॥ ३३ ॥ गर्भके दिन समाप्त होजानेपर तपस्विनी चारुमतीके परमसुंदरी, आश्रमकी भूषण स्वरूप एक कन्या हुई और उसका महामनोहर नाम ऋषिदत्ता रक्खा गया ॥ ३४ ॥ एकदिन कन्या ऋषिदत्ताने चारण ऋद्धिधारी मुनिराजके दर्शन होनेसे पंच अणुव्रत लेलिये और धीरे धीरे युवा पुरुषोंके मन और नेत्रोंके व्याकुल करनेवाले नवीन यौवनमें भी पैर फैलाना शुरूकिया ॥ ३५ ॥

उससमय श्रावस्तीनगरीमें राजा शांतायुधका पुत्र राजा शीलायुध राज्य करता था एकदिन जहां तहां घूमता घामता राजा शीलायुध उसी आश्रममें जा पहुंचा उसै देख अकेली ही तापस कन्या ऋषिदत्ता ने उत्तम आहार पानीसे उसका पूर्ण आदर सत्कार किया । कन्या ऋषिदत्ता एकतो स्वयं सुंदरी थी दूसरे वृक्षोंके वक्कलोंसे आवृत उसके स्तनोंकी शोभा उससमय उसै और भी अधिक सुंदरी बना रही थी ॥३६-३७॥ दोनों ही युवा युवती अनुकूल वयस्क और सुंदर थे एकांत पा आपसमें एकका दूसरेपर पूर्ण विश्वास होगया वे दोनों गाढ प्रेम बंधनमें बंधगये उनके उस प्रेम बंधनने यहां तक दोनों पर प्रभाव जमादिया कि न तो ऋषिदत्ताको अपनी तपस्विमर्यादाका ध्यान रहा और न राजा शीलायुधको ही अपनी वंशमर्यादा सोचनेका अवसर मिला ॥ ३८ ॥ एकदिन कन्या ऋषिदत्ता किसी निर्जनस्थानमें बैठी थी कामसे व्याकुल राजा शीलायुध निश्शंक हो उसके पास चलागया और जिसप्रकार कामपाशसे बंधा हुआ हस्ती हस्तिनीको रमाता है वह उसके साथ मनमानी रमण क्रीड़ा करनेलगा ॥ ३९ ॥ क्रीड़ा करते २ जब वे दोनों तृप्त होगये तो साध्वी ऋषिदत्ताको अपने अविचारित कामपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ मारे भयके उसका शरीर थर थर कांपनेलगा और विनयपूर्वक उसने इसप्रकार राजासे निवेदन किया—

"नाथ ! मैं ऋतुमती हूं यदि मेरे गर्भ रहगया तो मुझै बड़ा दुःख होगा बतलाइये ! उससमय मुझे क्या करना चाहिये ?" राजा शीलायुधने उत्तरदिया—"प्रिये ! तुम आकुलित मत होओ, सुनो—इक्ष्वाकुकुलसे उत्पन्न श्रावस्ती नगरीका स्वामी समस्त शत्रुओंका वश करनेवाला मैं राजा शीलायुध हूं जिससमय तुम्हारे पुत्र हो उसै लेकर सीधी तुम मेरे पास चली आना तुम्हैं कष्ट न उठाना पड़ैगा" ॥ ४०-४२ ॥ कन्या ऋषि-

दत्ताके विरहको न सहनेवाला राजा शीलायुध बार बार उसै धैर्य बंधा रहा था उसी समय उसकी सेना उसी आश्रममें आपहुंची सेनाको देखते ही राजाको बड़ा आनंद हुआ और उसके साथ तत्काल श्रावस्ती नगरी लौट आया ॥४३॥ कन्या ऋषिदत्ता लोकके वृत्तांतमें चतुर थी जिससमय राजा शीलायुध आश्रमसे चलागया तो उसने लज्जा छोड़ इसप्रकार अपना समस्त वृत्तांत अपने माता पितासे कह सुनाया कि मैं एकांतमें राजा शीलायुधकी पत्नी होचुकी हूं और मेरे गर्भ रहगया है"। नौ मासके व्यतीत होजानेपर कन्या ऋषिदत्ताके पुत्र हुआ जो प्रताप और सुंदरतामें सर्वथा राजा शीलायुधकी तुलना करता था। कन्या ऋषिदत्ताको प्रसूतिसमयमें बड़ा क्लेश हुआ जिससे कि प्रसूतिके अनंतर ही वह मरगई और सम्यक्त्वके प्रभावसे ज्वलनप्रभवल्लभा नामकी नागकुमारी जा उत्पन्न हुई सो वही मैं हूं। मेरे मरजानेपर पिता माताको बड़ा शोक हुआ अपने अवधिज्ञानसे समस्त वृत्तांत जान दया और स्नेहसे प्रेरित हो मैं उनके पास गई उन्हैं आश्वासन दिया और हिरणीका रूप धारणकर बालकको स्तनपान करा करा कर बढ़ाया ॥ ४४–४८ ॥ कौशिकका जीव निदानके कारण मरकर सर्प हुआ था सो उसने पूर्ववैरसे मेरे पिताको खालिया और अमोघमंत्रकी कृपासे उसै मैंने जीवित करदिया ॥ ४९ ॥ मेरा पिता जिसका छूटना कठिन था बलवान क्रोधसे दूषित था मैंने उसै धर्मका उपदेश दिया जिससे कि मर कर उसने उत्तमगति पाई ॥ ५० ॥ एकदिन मैं तपस्विनीका वेष धारणकर पुत्रको गोदमें लेकर परमनीतिज्ञ राजा शीलायुधके यहां गई उससमय राजा बड़े ठाटसे वैठा था देखतेही मैंने उससे इसप्रकार कहा—

"राजन्! राजलक्षणोंसे मंडित आपकी मृत स्त्रीसे छोड़ा गया एणीपुत्र नामका धारक यह आपका पुत्र है आप इसे ग्रहण करैं" मेरी यह बात सुन राजाको बड़ा अचंभा हुआ उसने कहा "तपस्विनी! मै तो निपुत्री हूं मेरे पुत्र कहां! तुम ठीक ठीक कहो यह बालक तुमने कहांसे पाया? राजाको इसप्रकार चकित देखकर मैंने सारा वृत्तांत उसे कह सुनाया और यह भी बतला दिया कि मैं मरकर नागकुमारी होगई हू। उसके बाद मेरी बातपर पूर्ण विश्वासकर राजाने तत्काल पुत्रको लेलिया ॥ ५१–५४ ॥ पुत्रपर मेरा गाढ़ प्रेम था इसलिये उसके मोहसे मैं वहीं रहने लगी जैसा जैसा बालक बढ़ता गया वैसे ही वैसे मै उसकी रक्षा करती गई। राजा जिस कामको करना चाहता था मेरी कृपासे वह काम बातकीबातमें सिद्ध होजाता था इसलिये मेरेद्वारा राजाके अभीष्टोंकी भी सिद्धि होने लगी ॥ ५५ ॥ मैने राजा शीलायुधको जैनधर्मका भी पूर्ण श्रद्धान करा दिया था इसलिये एकदिन उसे संसारसे उदासीनता होगई उसने एणीपुत्रको राज्य दे मुनिदीक्षा धारण करली और वह आयुके अंतमें मरकर स्वर्गलोकमें जा उत्पन्न हुआ ॥ ५६ ॥ राजा एणीपुत्रके अतिशय रूपवती प्रियंगुफलके

समान मनोहर कन्या प्रियंगुसुंदरी हुई। विवाहके सर्वथा योग्य होजानेपर राजा एणीपुत्रने उसका स्वयंवर किया परंतु कामभोगसें सर्वथा विरक्त उस कन्याने स्वयंवरमें आये हुये किसी भी राजकुमारको पसंद न किया ॥५७-५८॥ जिस दिनसे उसने राजमहलमें रमणी बंधुमतीके साथ आपको देखा है उसीदिनसे वह पूर्णरूपसे आपपर मुग्ध होगई है और तभीसे कामदेवके बाण भी उसके शरीरको बुरीतरह जर्जरित करने लगे हैं॥ ५९ ॥ कुमार! तुम्हारेलिये मेरा यह पूर्ण आग्रह है कि मेरे वचनसे तुम कन्या प्रियंगुसुंदरीको स्वीकार करो तुम इसबातका विचार मत करो कि यह अदत्ता है-किसीने हमैं दी नहीं है फिर हम इसका ग्रहण कैसे करैं ? क्योंकि इसे मैं आपके लिये दे चुकी ॥६०॥ इसके वंशमें जो काम होता है वह मेरी ही सम्मतिसे होता है इसलिये जब मैंने यह कन्या आपको प्रदान करदी तो इसके पिता बंधुओंने भी प्रदान करदी ऐसा नियमसे आप समझें ॥ ६१ ॥ इसलिये आप दोनोंका कल संकेत पूर्वक कामदेव के मंदिरमें समागम होना चाहिये ॥ ६२ ॥

कुमार! देवताओंका दर्शन निष्फल नहिं होता अतः जिस बातकी आपको अभिलाषा हो वर मांगिये" देवीके ऐसे वचन सुन कुमारने विनयपूर्वक कहा "देवि! जब मैं आपको स्मरण करूं तब आकर मेरा उपकार करैं यही मैं वर मांगता हूं" इसके बाद देवीने 'अच्छा' कह कुमारकी बातको स्वीकार किया और अंतर्हित हो अपने स्थान चली गई कुमार भी अशोकवाटिकासे आकर अपने महलमें सोगये ॥ ६३-६५ ॥

देवताके वचनानुसार कामदेवके मंदिरमें जाकर कुमार वसुदेवका कन्या प्रियंगुसुंदरीसे मिलाप होगया जिससे कि उन्होंने गंधर्व विवाहकर उसके साथ मनमानी रमण क्रीड़ा की और जिसप्रकार सूर्य अपने संसर्गसे कमलिनीको विकसित करदेता है उसीप्रकार रमणी प्रियंगुसुंदरीका मुख कमल अपने संसर्गसे प्रफुल्लित करदिया ॥ ६६-६७॥ एकांतमें इन दोनों युवा युवतीका गाढ़प्रेम बंधन हो चुका था इसलिये प्रियंगुसुंदरीके घर रहते २ कुमारको बहुत दिन बीत गये ॥ ६८ ॥ इन दोनोंको अनुरूप देख और यह जान कि इन दोनोंका आपसमें समागम देवीने कराया है राजा एणीपुत्रको बड़ा संतोष हुआ और अन्य लोगोंको जतलानेके लिये उन दोनोंका विवाहोत्सव बड़े ठाट बाटसे करदिया ॥ ६९ ॥ जब इन दोनोंका प्रकट रूपमें विवाह होगया तो कुमार वसुदेव खुलासा रीतिसे प्रियंगुसुंदरीके यहां रहने लगे और उसके साथ मनमानी रमण क्रीड़ा करने लगे ॥ ७० ॥

इस रीतिसे कुमार वसुदेवने एकांतस्थानमें रतिक्रीड़ाके सर्वथा योग्य राजकन्या प्रियंगुसुंदरी और श्रेष्ठिपुत्री बंधुमतीके साथ मनमाने सानंद भोग विलास किये और बहुतकाल तक सुखपूर्वक श्रावस्ती नगरीमें निवास किया ॥ ७१ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेन द्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें बंधुमती प्रियंगुसुंदरीका लाभ वर्णन करनेवाला उनतीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ २९ ॥

तीसवां सर्ग।

कार्तिककी पूर्णिमाके दिन चिरकालतक क्रीड़ा करनेसे अतिशय खिन्न, कुमार वसुदेव रमणी प्रियंगुसुंदरीके साथ आनंदसे सोरहे थे कि अचानक ही उनकी आंख खुलगई और सामने साक्षात् लक्ष्मीके समान अतिशय रूपवती एक कन्या दीख पड़ी। देखतेही कुमारने पूछा–" कमलनेत्रे! तुम कौनहो? और यहां कैसे आई हो? उत्तरमें कन्या ने कहा–"कुमार! थोड़ीही देरबाद आपको मेरा समस्त वृत्तांत मालूम होजायगा इससमय कृपाकर मेरे साथ २ चले आइये" एवं इसतरह बुलाकर घरसे वाहिर चली गई और किसी मनोहर महलके तले पर जा बैठी। कुमार भी इशारेके साथ ही उसके पीछे पीछे चलदिये और जहां जाकर वह बैठी थी वहीं पहुंचगये। कमारको सामने देख कन्याने कहा–

"कुमार! मनको एकाग्रकर आप मेरे वचन सुनिये क्योंकि मेरे वचन साधारण वचन नहीं दुर्लभ वस्तुकी प्राप्ति करानेवाले हैं ॥ १–५ ॥ विजयार्धकी दक्षिणश्रेणीके गांधारदेशमें एक गंधसमृद्ध नामका नगर है उसका स्वामी राजा गंधार है और उसकी स्त्रीका नाम पृथिवी है जो कि वास्तवमें राजाको पृथिवीके ही समान अतिशय प्रिय है मैं उन दोनोंकी साक्षात् लक्ष्मीके समान कांतिमती प्रभावती नामकी कन्या हूं ॥६–७॥ मैं एक दिन राजा मानसवेगके ,गर स्वर्णनाभ पुर गई थीं वहां मैंने मानसवेगकी माता अंगारवतीसे अपनी प्रियसखी वेगवतीकी कुशल पूछी ॥ ८ ॥ इसके बाद वेगवतीकी सखियोंसे मुझे इसबातका पता लगा कि उसका विवाह यदुवंशके चंद्र स्वरूप आपके साथ होगया है ॥ ९ ॥ तथा उसी जगह जो शुद्ध शीलरूपी भूषणसे भूपित है आपका नाम ग्रहण करना ही जिसका एक आहार है ऐसी रमणी सोमश्री भी मिली ॥ १० ॥ आपके वियोगसे सोमश्री महादुःखी है उसका कपोलमंडल सफेद पड़ गया है और मुझे दूती बना आपके पास यह उसने अपना रोते हुये संदेशा भेजा है—

"आर्यपुत्र! यद्यपि मैं शत्रुद्वारा सर्वथा अभेद्य शीलरूपी सुरक्षित किलेमें बैठी हूं तथापि इस वैरीके स्थानमें मुझे कबतक इसीप्रकार रहना होगा! ॥ ११–१२ ॥ प्राणनाथ! आजतक मेरी रक्षा शत्रु मानसवेगकी मा अंगारवतीने की है वह प्रतिदिन अपने पुत्र मानसवेगको उसके दुष्कृत्यके लिये डांट डपट देती रहती है इसलिये आप शीघ्र ही आइये और मुझे इस कैदसे छुड़ा लेजाइये ॥ १३ ॥ मैं प्रतिसमय यहां आपसे वियुक्त रहती हूं कहीं यहां मुझपर गहरी आपत्ति आकर न पड़जाय–आपसे मैं सर्वदाके लिये वियुक्त न हो जाऊं इसलिये हे वीर! कठोरचित्त बन आप इसबातमें उपेक्षा न करना। ॥ १४ ॥ प्रिय कुमार बस मैंने सोमश्रीका संदेशा आपको सुना दिया मैं कृतकृत्य होगई। आप उसके पति हैं इसके उत्तरमें जैसा उचित समझें वैसा करैं ॥ १५ ॥ आप इसबातका विचार न करैं कि मार्ग विषम है सोमश्रीके पास मैं कैसे पहुंच सक-

ता हूं क्योंकि यदि आपकी आज्ञा हो-आप जाना चाहते हों तो मैं अभी लहमे भरमें आपको लेजा सकती हूं ॥ १६ ॥

कुमारने कन्या प्रभावतीके वैसे वचन सुन कहा-" सुंदरी ! अच्छा मुझै तुम शीघ्र ही सोमश्रीके समीप ले चलो" बस फिर क्या था आज्ञा पाते ही प्रभावती कुमारके साथ २ विद्याके प्रभावसे विजलीके समान आकाशमें धर उड़ी जिससे कि एक दूसरेके अंगस्पर्शसे रोमांचित होते हुए वे दोनों उस विकट मार्गको तयकर बहुत जल्दी ही स्वर्णनाभपुर जा पहुचे। स्वर्णनाभपुर पहुंचते ही प्रभावतीने कुमारको सोमश्रीके घर गुप्तरीतिसे जा उतारा और कुमार शीघ्र ही सोमश्रीसे जाकर मिलगये ॥ १७-२० ॥ कुमारने रमणी सोमश्रीकी अपने वियोगसे बहुत बुरी हालत देखी उसके लंबे २ बाल चौतर्फा मुखपर विखरे थे, कपोल और मुख सफेद थे इसलिये उससमय वह काले काले भ्रमरोंके समूहसे मलिन कमलसे युक्त कमलिनीकी शोभा धारण करती थी ॥ २१ ॥ उसने अपनी वेणीमें गांठ देकर यह प्रतिज्ञा करली थी कि जबतक प्राणनाथका दर्शन न होगा मैं वेणी न खोलूंगी इसलिये वह तनुसेतुसे युक्त नदी सरीखी जान पड़ती थी ॥ २२ ॥ स्वामीके दर्शनपर्यंत उसने पान खाना तक छोड़ दिया था इसलिये कांतिरहित अधरको धारण करनेवाली म्लान हुई वह सोमश्री उससमय कुम्हलाई हुई लताके समान मालूम होती थी ॥ २३ ॥ ज्योंही सोमश्रीने कुमारको देखा वह एकदम उठ खड़ी हुई उससमय उसके स्तन पीन और शुभ्र थे इसलिये वह बडे २ शुभ्रमेघोंसे व्याप्त शरद लक्ष्मीकी तुलना करती थी। कुमार सोमश्रीको देखकर बडे प्रसन्न हुये। उन दोनोंने आपसमें दृढरूपसे आलिंगन किया आनंदके रोमांचोंसे उनके शरीर व्याप्त होगये और उससमय ऐसा जान पड़ता था कि पुनः विरह न होजाय इसलिये वे दोनों मिलकर एक होगये थे ॥ २४-२५ ॥ प्रभावतीने मेरा कामकर मुझै बड़ी सहायता दी है यह जान सोमश्री प्रभावतीसे भी बड़े प्रेमसे मिली उसै अपने प्राणोंके समान सखी माना एवं सराहनापूर्वक प्रिय आलाप कर उसै परम आनंदित किया ॥२६॥ इसके बाद कुमारका सुंदररूप तथा नाम अपने हृदयपर अंकित कर प्रभावती उन दोनोंसे अनुमति ले अपने स्थानपर चलीगई ॥ २७ ॥ और कुमार मानसवेगके महलमें अपना रूप वदल रमणी सोमश्रीके साथ दिन विताने लगे। एक दिन कुमार और सोमश्री एक साथ सोरहे थे कारणवश सोमश्रीकी आंख पहिले खुलगई कुमारका बदला हुआ रूप न देख उसै बड़ा दुःख हुआ और भयसे आगामी गहरी आपत्तिकी शंकाकर वह रोनेलगी ॥ २८-२९ ॥ थोडी देरबाद कुमारकी भी नींद खुलगई सोमश्रीको रोते हुये देख कुमारने पूंछा—

" प्रिये ! विना कारण तुम क्यों रोती हो ?" सोमश्रीने कहा-" नाथ ! सोतेमें

मैंने तुम्हारा स्वाभाविक रूप देखा नकली रूप नहिं दीखपड़ा इसलिये आगामी कोई विपत्ति न आजाय इस संदेहसे मुझै रोना आगया था" यह सुन कुमारने—कहा प्रिये! भय मतकरो विद्याओंका यह स्वभावही है कि सोते समय वे शरीरसे निकल जाती हैं और उद्बुद्ध होजानेपर पुनः ज्योंकी त्यों आजाती हैं' तथा ऐसा कहकर पहिलेके समान फिर अपनारूप धारण करलिया और पूर्ववत् वहां ही आनंदसे रहनेलगे ॥ ३०–३२ ॥

एक दिन विद्याधर मानसवेगकी दृष्टि कुमार वसुदेवपर पड़ गई वह उनके नाशकी चिंतासे अपनी पत्नीसहित वैजयंती नगरीके पति राजा बलसिंहसे जाकर मिला और सारा समाचार उसे कह सुनाया ॥ ३३ ॥ राजा बलसिंह बड़ा न्यायी था इसलिये उसने मानसवेगको इस काममें कुछ भी सहायता न दी इसपर मानसवेगको बड़ी लज्जा आई उस दुष्टने कुमारके साथ युद्ध ठान दिया ॥ ३४ ॥ यह देख न्यायमार्गके अनुगामी बहुतसे विद्याधर कुमारकी पक्षमें होगये जिससे कि कुमार और मानसवेगका भयंकर संग्राम होना प्रारंभ होगया ॥ ३५ ॥ वेगवतीकी मा अंगारवतीका कुमार पर अतिशय स्नेह था इसलिये उसने कुमारको दिव्य वाणोंसे भरें हुये दो शरधि (तरकस) के साथ एक धनुष दे दिया ॥ ३६ ॥ कुमारके साथ संग्रामकी बात सुन कन्या प्रभावती भी आई और उसने भी कुमारको प्रज्ञाप्ति नामकी विद्या दे दी जिससे कि कुमारने वैरी मानसवेगको वातकी वातमें बांध लिया ॥ ३७ ॥ यह देख मानसवेगकी मा अंगारवतीने पुत्रकी भिक्षा मांगी और कुमारने भी दया कर सोमश्रीके पास लेजा उसे बंधनसे मुक्त कर दिया ॥ ३८ ॥ अब तो विद्याधर मानसवेग कुमारका गहरा बंधु होगया और कुमार सहित सोमश्रीको उसके नगर तक पहुंचाने गया ॥ ३९ ॥ विद्याधर मानसवेगका सोमश्रीके पिता माता आदि बंधुओंसे भी मेल मिलाप हुआ और कुमारसे यह वायदा कर कि 'जब आप मुझै बुलावेंगे मैं आकर उपस्थित हूंगा' अपने नगर लोट आया ॥ ४० ॥ इसके बाद कुमार और सोमश्री दोंनो सुनी और अनुभव की हुई वातोंमें प्रश्न और उत्तर करते हुये काम रसका अनुभव कर आनंदसे समय विताने लगे ॥ ४१ ॥

एकदिन कुमारके शत्रु राजा त्रिशिखरके पुत्र सूर्पकको कुमारका पता लग गया वह तत्काल महापुर आया उसने अश्वका रूप धारणकर कुमारको हरलिया और ऊपर लेजा आकाशसे गंगामें पटक दिया ॥ ४२ ॥ कुमार गंगाको पारकर तपस्वियोंके किसी आश्रममें आये और वहां उन्हैं मनुष्यकी हड्डियोंका सेहरा बांधे हुये उन्मादिनी (वावली) एक युवती दीख पड़ी ॥ ४३ ॥ युवतीको देखते ही कुमारने एक तपस्वीसे पूछा—मत्त हस्तिनीके समान पागल हो जहां तहां घूमनेवाली यह सुंदरी युवति किसकी स्त्री है ? तपस्वीने कहा—

यह राजा जरासंधकी पुत्री है इसका नाम केतुमती है और राजा जितशत्रुको विवाही गई है ।। ४४–४५ ।। किसी मंत्रवादी तपस्वीने इसे अपने वश किया था उसके बाद वह मरगया इसलिये उसकी हड्डियोंकी माला बना उसे पहिनकर जहां तहां यह पृथ्वीपर घूमती फिरती है ।। ४६ ।। तपस्वीके ऐसे वचन सुन कुमार वसुदेवका अंतरंग दयासे पिघल गया उन्होंने शीघ्र ही महामंत्रके प्रभावसे केतुमतीके पिशाच और उसके चक्रको हटा दिया ।। ४७ ।। वहांपर कुमारकी खोजमें राजा जरासंधके नौकर तयार बैठे थे उन्होंने उपकारके वदलेमें तत्काल आकर कुमारको पकड़लिया और राजगृह नगरकी ओर ले चलदिये ।।४८।। जरासंधके सेवकोंका यह कृत्य देख कुमारको बड़ा आश्चर्य हुआ इसलिये कुमारने सेवकोंसे पूछा—अरे राजसेवको ! मेरा क्या अपराध है जो बड़े रोषसे तुम मुझे पकड़कर लिये जाते हो ?" उत्तरमें राजसेवकोंने कहा—

"नैमित्तिकोंने यह बतलाया था कि जो पुरुष पुत्री केतुमतीके पिशाचको दूरकरेगा वह राजा जरासंधके मारनेवाले शत्रुका पिता होगा तुमने पिशाच दूरकिया है इसलिये अब तुम छोड़े नहिं जा सकते" ऐसा कहकर उन दुष्टोंने कुमारको शूलीपर जा रक्खा उसीसमय वहां एक विद्याधर पहुंचा और कुमारको उठाकर आकाशमार्गसे चलता बना मार्गमें जाते हुये उसने अपना इसप्रकार परिचय भी दिया—प्रियकुमार ! आपके मनोरथोंका पूर्ण करनेवाला मैं कुमारी प्रभावतीका पितामह (वावा) हूं और मेरा नाम भगीरथ है । मैं अब आपको प्रभावतीके पास लिये जाता हूं" । इसके वाद वह कुमारको विजयार्धपर्वतपर ले आया और पर्वतके मस्तकपर एक गंधसमृद्ध नामका नगर था उसमें अनेक विद्याधरोंसे मंडित हो कुमारको वडे ठाठवाटसे प्रवेश कराया ।। ४९–५४ ।। उत्तम तिथि और नक्षत्रमें प्रभावतीके पिता और वंधुओंने उन दोनोंका विवाहोत्सव मनाया जिससे कि कुमार और प्रभावतीको परम आनंद मिला ।। ५५ ।। वे दोनों युवा युवती प्रथम ही कामदेवके आवेशसे एक दूसरेके आधीन होगये थे इसलिये विवाह होजानेके बाद वडे आनंदसे वे भोगरूपी समुद्रमें मनमाना अवगाहन करने लगे ।। ५६ ।।

ग्रंथकार कहते हैं—पापी पुरुष जिस पुण्यात्मा मनुष्यको प्रियजनोंसे वियुक्त कर देता है वह जैनधर्मके प्रसादसे पहिलेसे भी सैकडोंगुणे प्यारे मनुष्योंसे आकर मिल जाता है ।। ५७ ।।

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें प्रभावतीका लाभ वर्णन करनेवाला तीसवां सर्ग समाप्त हुआ ।। ३० ।।

इकतीसवां सर्ग।

एकदिन कुमार रमणी प्रभावतीके साथ सानंद किसी महलमें सोरहे थे उसीसमय उनका शत्रु विद्याधर सूर्पक आया और उन्हैं हरणकर आकाशमें लेगया थोड़ीदेर वाद कुमारकी निद्राखुली तो वे उसै अपना वैरी पहिचान मुक्कोंसे मारनेलगे। जब मारसे विद्याधर घबड़ा गया तो उस दुष्टने उन्हैं आकाशसे पटक दिया जिससे कि वे गोदावरी नदीके किसी तालावमें गिरगये ॥ १–२ ॥ वहांपर एक कुंडपुर नामका नगर था उसका स्वामी राजा पद्मरथ था और उसके अनेक कला और गुणोंमें अतिशय पंडिता एक कन्या थी। उस कन्याकी यह प्रतिज्ञा थी कि जो पुरुष मुझे माला गूथनेमें प्रवीणता दिखाकर जीतेगा उसीके साथ मैं विवाह करूंगी। कुमारने उसै मालाके कौशलसे हराया इसलिये उसके साथ विवाहकर आनंदसे वे वहीं रहनेलगे ॥३॥ एकदिन दुष्ट नीलकंठको कुमारके वहां रहनेका पता लगा वह आकर उन्हैं हरले गया और आकाशसे चंपासरोवरमें जाकर पटकदिया कुमार चंपा नगरीमें गये और वहांपर एक मंत्रीकी पुत्रीको विवाहा ॥ ४ ॥ एकदिन वे मंत्रीपुत्रीके साथ जल क्रीडा कररहे थे कि विद्याधर सूर्पककी उनपर दृष्टि पड़गई वह दुष्ट पुनः कुमारको हरलेगया और भागीरथी नदीमें लेजाकर पटकदिया ॥ ५ ॥ नदीको पारकर कुमार किसी वनमें पहुंचे वहांपर घूमते हुए उन्हैं किसी भीलोंके राजाने देखा उनके सौंदर्यपर मुग्ध हो वह बडे आदरसे उन्हैं अपने घर लेगया और उसने अपनी जरा नामकी कन्या प्रदानकी। जराके साथ आनंद क्रीड़ा करनेके कुछदिन वाद कुमारके जरत्कुमार नामका पुत्र हुआ यह जरत्कुमार परमनीति और पौरुषका भंडार था। कुमारने अवंतिसुंदरी और शूरसेनाके भी साथ विवाह किया ॥ ६–७ ॥ उसीसमय पतिकी खोजमें लगी हुई जीवद्यशा नामकी एक कन्या थी उसै भी बरा एवं उसके साथ और भी बहुतसी कन्यायोंको विवाहा। एकदिन वे अरिष्टपुर आये उससमय अरिष्टपुरका स्वामी संग्राम करनेमें प्रवीण राजा रोधन था उसकी महादेवी साक्षात् देवांगनाके तुल्य मित्रा थी ॥ ८–९ ॥ राजा रोधनके महाराणी मित्रासे उत्पन्न पुत्र हिरण्यनाभ था यह परमनीतिवेत्ता रणचतुर महापराक्रमी और शस्त्र शास्त्रोंमें पूर्णपंडित था ॥१०॥ युवराज हिरण्यनाभके अतिशय रूपवती युवति, अनेक कलाओंमें पाराकाष्ठाको पहुंची हुई रोहिणी (तारा) के समान परमसुंदरी कन्या रोहिणी थी ॥ ११ ॥ जब कुमारी रोहिणी विवाहके योग्य होगई तो उसके पिता आदिने उसका स्वयंवर किया स्वयंवरमें जरासंध समुद्रविजय आदि वड़े२ राजा इकट्ठे हुये ॥१२॥ नियत समय पर वे लोग राजाओंके बैठनेके लिये सर्वथा योग्य, चित्र विचित्र मणियोंसे जड़ेहुये, उत्तमोत्तम स्तंभोंसे शोभित, तख्तों पर अपनी अपनी योग्यतानुसार आ विराजे कुमार वसुदेव भी सभामें गये और जहांपर वीणावजानेवाले वैठे थे हाथमें वीणा ले बैठगये

कुमार जिसवेषमें बैठे थे उससे उनके भाई आदि उन्हें जरा भी नहीं पहिचान सकते थे। ॥ १३–१४ ॥ जब समस्तलोग स्वयंवरमें अपने अपने स्थानोंपर बैठगये तब सौभाग्यकी परमभूमि, रोहिणी–ताराके समान अतिशय कमनीय कन्या रोहिणीने स्वयंवरमें प्रवेश किया ॥ १५ ॥ कन्या रोहिणीकी भुवनमोहिनी मूर्ति देख आकुलित हो एक साथ सब राजा उसकी ओर देखनेलगे और उससमय ऐसा जान पड़ता था मानों नेत्ररूपी कमलोंसे सबलोग रोहिणीकी पूजा कर रहेहों ॥ १६ ॥ रोहिणीके नाम सुनने मात्रसे जिन-लोगोंको पहिले प्रीति होचुकी थी उनका प्रीतिप्रवाह उसके साक्षात् देखनेसे और भी बढ़गया ॥ १७ ॥ ठीक भी है श्रवणरूपी सूक्ष्म रुईमें जलनेवाली आगको यदि दर्शन-रूपी ईंधनकी सहायता मिलजाय तो उसै नियमसे अधिक बढ़नाही चाहिये ॥ १८ ॥ कन्या रोहिणीके साथ हित मित बोलनेवाली परम चतुर एक धाय थी जब कन्याके आगमनकी सूचना देनेवाले शंख तुरई आदि बाजे बजने बंद होगये तब राजाओंके समीप जाकर उस धायने इसप्रकार रोहिणीसे कहना प्रारंभ किया—

"प्रियपुत्री! जिसका चंद्रमंडलके समान सफेद छत्र तीनखंडके जय करनेसे प्राप्त मूर्तिधारी यश सरीखा जान पड़ता है और जिसके समस्त भूमिगोचरी और विद्याधर आज्ञाकारी हैं ऐसा समस्तपृथ्वीका स्वामी यह राजा जरासंध है जान पड़ता है रोहि-णी–ताराका साथ छोड़ तुम्हारे लाभसे लोभित हो यह पृथ्वीपर साक्षात् चंद्रमाही अव-तीर्ण हुआ है तू इसै वर। देख! यह परमशांत और सुंदर है॥ १९–२२ ॥ किंतु कन्या रोहिणीका अनुराग जरासंधमें न हुआ इसलिये धाय उसै आगे लेजाकर कहने लगी—देख ये राजा जरासंधके एकसे एक अद्वितीय पुत्र बैठे हैं तुझे जो रुचता हो उसके गलेमें बरमाला डालदे ॥ २३ ॥ कन्याने उनमेंसे भी किसीको पसंद न किया तो धाय आगे बढ़ी और कहने लगी देख–ये मथुरापुरीके स्वामी राजा उग्रसेन हैं यदि तुझे ये पसंद हों तो इनको वर ॥ २४ ॥ जब कन्याको उग्रसेन भी न अच्छे लगे तो धाय आगे बढी और कहनेलगी–देख सूर्यपुरके स्वामी ये राजा समुद्रविजय आदि हैं इनमें जो तुझे पसंद हो उसीके गलेमें वरमाला डाल। कन्याने उनमेंसे भी किसीको पसंद न किया प्रत्युत उनमें उसका गुरुका सा भाव होगया। धाय फिर आगे बढी और उसने क्रमसे पांडु, विदुर, दमघोष, यशोघोष, दंतविक्रम, शल्य, शत्रुंजय, चंद्राभ, मुख्य, काल-मुख, पौंड्र, मत्स्य, संजय, सोमदत्त, भाईयोंसे मंडित सोमदत्तका पुत्र, भूरिश्रवा, पुत्रोंसे-युक्त राजा अंशुमान, कपिल, पद्मरथ, सोमक, देवक, श्रीदेव, आदि राजाओंके गुण और वंश वर्णनकर कन्याको वरमाला डालनेके लिये बाध्य किया एवं और भी बहुतसे राजा दिखाये परंतु जब कन्याको किसीके गलेमें वरमाला डालते न देखा तो वह कहनेलगी—

"पुत्री! बस इतने ही प्रधान राजा हैं क्या ढीलकर रही हो जो इनमें तुम्हैं पसंद

हो उसीके गलेमें माला डाल दो ॥ २५–३२ ॥ देखो ये समस्त राजा तुम्हारे सौभाग्य और गुणोंपर मुग्ध हो यहां आये हैं इनमें जो तुम्हारे चित्तको हरण करनेवाला हो उसे अवश्य भाग्यवान बनाओ ॥ ३३॥ योग्य वरकी प्राप्तिके लिये सदा तुम्हारे माता पिता चिंतासें व्यथित रहते हैं रातमें उन्हें निद्रा तक नहि आती इन राजाओंमें जो तुम्हें अच्छा लगे पसंदकर उसीके गलेमें वरमाला डाल दो जिससे तुम्हारे माता पिताकी चिंता दूर हो और वे सुखी बनें" ॥ ३४ ॥ धायके ऐसे वचन सुन कन्याने कहा–

मा! तुम सब कुछ ठीक कहती हो परंतु अभीतक तुमने जितने राजा दिखाये हैं उनमेंसे मेरा मन किसीमें अनुराग नहिं करता ॥ ३५ ॥ देखनेके साथ ही जिसमें स्नेह हो निकले उसके वरनेके लिये जोर देकर कहना निरर्थक है और देखकर जिसमें स्नेह न हो उसके लिये भी बार बार जोर देकर कहना निरर्थक है ॥ ३६ ॥ इन राजाओंमें न मेरा राग है और न द्वेष और मोह ही है मै विवाह न करूं यह भी मेरी इच्छा नहीं परंतु आश्चर्य है न मालूम मेरी इनमें मुनिके समान क्यों उपेक्षाबुद्धि है ॥ ३७ ॥ मा! अब यदि कोई अन्य वर हो विधिनें यदि मेरे लिये उसे तलाश कररक्खा हो तो मुझे उसके पास ले चल। बस! समस्त जगतका गुरु विधि ही है जो वह करैगा सो ही भोगना पड़ेगा" ॥ ३८ ॥ धाय और कन्याकी बातें समाप्त ही हों पाई थी कि उतनेहीमें रोहिणीको जो कानोंको अतिशय प्रिय थी और चित्तको आकृष्ट करनेवाली थी वीणाकी ध्वनि सुन पड़ी ॥ ३९ ॥ ध्वनि सुनते ही चोंककर धाय कहने लगी–

राजपुत्री! यहां आ। देख! यह वीणा यह कह रही है कि तेरे मनको हरण करनेवाला राजहंस यह बैठा है ॥ ४० ॥ धायकी बात सुन कन्या रोहिणी वसुदेवकी ओर लौटी और समस्त राजलक्षणोंसें मंडित सुंदरतामें देवकी तुलना करनेवाले कुमारको निहारने लगी ॥ ४१ ॥ ज्यों ही उन दोनोंकी आखोंसे आंखे मिलीं त्योंही भगवान कामदेव अपने पैंने वाणों द्वारा उन दोनोंको जर्जरित करने लगे। सुंदरी रोहिणी तत्काल कुमारके पास आई और स्तनभारसे नम्र हो उनके कंठमें वरमाला पहिना समीपमें बैठ गई ॥ ४२–४३ ॥ जिससमय रोहिणी तख्तके ऊपर कुमारके साथ बैठ गई तो वह चंद्रमाके समीप विराजमान रोहिणी–ताराकी तुलना करने लगी ॥ ४४ ॥ और नवीन समागमसे उत्पन्न हुये भय एवं लज्जासे कांपते हुये अपने अंगके संगसे कुमारको सुखी बनाने लगी ॥ ४५ ॥ यह देख उससमय स्वयंवरमें जो न्यायमार्गके अनुयायी लोग बैठे थे वे तो कहने लगे–अहा! स्वयंवर बहुत ही अच्छा हुआ जैसी कन्या तैसा ही वर मिला इससमय इन दोनोंका रत्न और कांचनकासा संयोग हुआ है ॥ ४६ ॥ यद्यपि इस वरका कुल ज्ञात नहिं है तथापि इसके स्वरूपसे यह साफ मालूम पड़ता है कि यह श्रीमान् अवश्य कोई राजा महाराजा है प्रसिद्ध २ राजाओंके

रहते भी कन्याने जो इस अज्ञातकुलवाले पुरुषको वरा है इसमें इसने बड़ी चतुरता दिखलाई है" ॥ ४७ ॥ और जो परोत्कर्ष न सहनेवाले द्वेषी मनुष्य बैठे थे वे कहने लगे "कन्याने इस वीणा-बजानेवालेको वर कर बड़ा भारी अन्याय किया इससे स्वयंवरमें बैठे हुये राजाओंका बड़ा भारी अपमान हुआ है इससमय राजा लोगोंको चाहिये कि वे अपने अपमानकी उपेक्षा न करें इस अपराधीको पूरा पूरा दंड दें यदि इससमय उपेक्षा होगई तो समस्त पृथ्वीतलमें ऐसा अन्याय होने लग जायगा ॥ ४८-४९ ॥ इस समय यहांपर बड़े बड़े कुलीन राजा बैठे हैं इस अकुलीनको कन्या लेनेका क्या अधिकार है? यदि यह अपनेको कुलीन कहलाना चाहता है तो अपना कुल बतलावे ॥५०॥ यदि यह अपना कुल न बतलाये तो इसको अभी कूट डालना चाहिये और किसी रात्रपुत्रको यह कन्या छीनकर दे देनी चाहिये" ॥ ५१ ॥ राजाओंको इसप्रकार क्षुब्ध और कोलाहल करते देख धीर वीर कुमारने कहा—

ऐ मत्त क्षत्रियो! और सज्जनो! जरा मेरी बात भी सुनो ॥ ५२ ॥ स्वयंवरमें कन्या अपनी इच्छानुसार वर पसंद कर सकती है चाहैं वह कुलीन हो वा अकुलीन हो स्वयंवरमें इस बातका कोई नियम नहीं कि वर कुलीन ही हो ॥ ५३ ॥ इससमय कन्याके पिता भाईको अपनेको और स्वयंवर की रीति जाननेवाले सज्जनोंको अशांति करने की कोई आवश्यकता नहीं ॥ ५४ ॥ कोई कोई महाकुलीन होनेपर भी बदसूरत होता है और दूसरा अकुलीन होनेपर भी बड़ा सुंदर होता है इसलिये कुलीन और सौभाग्य की आपसमें कोई व्याप्ति नहीं अर्थात् जो कुलीन हो वह सुंदर ही हो और अकुलीन हो वह बदसूरत ही हो यह कोई नियम नहीं ॥ ५५ ॥ सर्वथा अज्ञात होनेपर भी मुझे यदि इस कन्याने सुंदर जानकर पसंद किया है तो आप लोगोंको इस विषयमें कुछ भी कहनेका अधिकार नहीं ॥ ५६ ॥ अथवा यदि कोई इसबातका घमंड करै कि मैं बड़ा पराक्रमी हूं और शांत होना न चाहै तो मैं कर्णपर्यंत छोड़े हुये अपने बाणोंसे उसे शीघ्रही शांत करूंगा" ॥ ५७ ॥ बस फिर क्या था! कुमारके वचन सुनते ही राजा जरासंध मारे क्रोधके उबल उठा उसने उसीसमय राजाओंको आज्ञा दी कि—

"राजाओ! इस उद्दंडको अभी पकड़ो यदि राजा रुधिर और स्वर्णनाभ इस विषयमें कुछ प्रतिबंध डालें तो इन्हें भी बांध लो" ॥ ५८ ॥ राजा तो पहिलेसे ही चिढ़ रहे थे अब तो अर्धचक्री जरासंधकी सहायतासे उनके साहसकी दूनी वृद्धि हो गई वे दुष्ट सन्नद्ध होकर तत्काल युद्धके लिये उद्यत होगये ॥ ५९ ॥ और जो क्षत्रियश्रेष्ठ सज्जनप्रकृतिके धारक राजा थे वे इस कर्मको पापकर्म समझ उससे बचनेकी इच्छासे अपनी २ सेना ले जुदे होगये ॥ ६० ॥ बहुतसे राजा शत्रुओंका यह अन्याय देख उनको दंड देनेकी अभिलाषासे राजा रुधिरकी ओर आगये एवं मारे क्रोधके

नेत्रोंको लाल लाल कर उन्होंने युद्ध करनेके लिये तयारी करदी॥ ६१॥ यह देख युवराज हिरण्यनाभने तो पुत्री रोहिणीको अपने रथमें सवार करलिया और समस्त बलसे रक्षित राजा रुधिरने कुमारको उठा लिया एवं अपनी सेनासे इसप्रकार प्रियवचनोंमें कहा—प्यारे महारथी योधाओ! आज तुम्हारा काम पड़ा है खूब डटके युद्ध करो—रणमें अपना कौशल दिखलाओ" ॥ ६२—६३ ॥ इसतरह दोनों पक्षका यह घमस्यान देख वीर कुमारसे भी न रहा गया उन्होंने नम्र वचनोंमें अपने श्वशुरसे कहा—

पूज्य! अनेक शस्त्र और अस्त्रोंसे पूरित आप मुझे एक रथ दे दीजिये मैं अभी इन समस्त क्षत्रियोंको इधर उधर भगाये देता हूं। मुझै सब लोगोंने अकुलीन ठहरा रक्खा है देखता हूं मेरे अकुलीनके वाण ये कुलीन किसरीतिसे सहते हैं" ॥ ६४—६५॥ कुमारके ऐसे वचन सुन राजा रुधिरको बड़ा संतोष हुआ उसने शीघ्र ही पासमें खड़े हुए पुरुषको रथ ला देनेकी आज्ञा दी और उसने अपने स्वामी की आज्ञा पा उसीसमय उत्तमोत्तम अस्त्रोंसे सज्जित यवन देशके (काबुली) बलिष्ठ अश्वोंसे वाहित रथ लाकर उन्हें देदिया॥६६॥ उसीसमय कुमारका साला विद्याधर दधिमुख भी दिव्य अस्त्रोंको धारण किये हुए उत्तम रथमें सवार हो आ पहुंचा और विनयसे नमस्कार कर कुमारसे कहने लगा—

"महाभाग! आप मेरे रथमें सवार होजाइये और इन समस्त शत्रुओंको संग्राममें निर्भयतासे पराजित कीजिये मैं आपका सारथी हूं" ॥ ६७—६८ ॥ अनेक प्रकारके वाणोंसे युक्त रथ और विद्याधर दधिमुखको देखकर कुमार बड़े प्रसन्न हुये और हाथमें धनुष ले कवच पहिन तत्काल दधिमुखके रथमें सवार होलिये ॥ ६९ ॥ उससमय राजा रुधिरकी दोहजार रथसेना छै हजार हाथी चौदह हजार घोड़े और एकलाख पदाति सेना कुमारके आधीन थी और उनसबका पूर्ण लक्ष्य शत्रुकी सेना को नाश करनेका था। ॥ ७०—७१ ॥ कुमार वसुदेव शत्रुसेनारूपी अपार समुद्रके मध्यमें बलवान चतुरंगसेनासे मंडित हो तत्काल उपस्थित हुये ॥ ७२ ॥ दोनों चतुरंगसेना आपसमें भिड़गई और उनमें शंख तूर्य आदि बाजोंके शब्द समुद्रके शब्दके समान भयंकरतासे होनेलगे ॥७३॥ हाथी घोड़ा रथ और पैदलसेना यथायोग्य हाथी घोड़ा रथ और पैदलसेनासे युद्ध करने लगी ॥ ७४॥ उसमय संग्राममें अविच्छिन्न रूपसे वाण छूटते थे इसलिये समस्त आकाश आच्छन्न होगया था अन्यकी तो बातही क्या थी प्रतापी सूर्य भी वहां नहीं दीखता था ॥ ७५ ॥ खड्ग चक्र और गदाओंके आघातोंसे निकलती हुई रक्तधारासे उससमय समस्त संग्रामभूमि अंधकारमय होगई थी इसलिये उसमें जानेका शूरवीरका भी हौंसला नहिं पड़ता था और देदीप्यमान सूर्यकी किरणें भी वहां नहिं फटकने पातीं थी॥ ७६॥ उससमय कटकटकर गिरनेवाले पर्वतके समान मत्तहाथी, मनुष्य घोडे और रथोंसे सब ओर भीषण ध्वनिही ध्वनि सुनाई पड़ती थी ॥ ७७॥ जब बहुत कालतक संग्राम करते करते

राजा रुधिरकी सेना खिन्न होगई तो कुमार और युवराज हिरण्यनाभने जोरसे युद्ध करना प्रारंभ किया ॥ ७८ ॥ ये दोनों शत्रुसेनाको मुष्टि और वाणोंके प्रयोगोंसे इस रीतिसे आच्छादित करनेलगे कि उसे इनदोनोंके रथका पता तक न लगता था ॥७९॥ उससमय संग्राममें न तो कोई ऐसा हाथी वचा और न कोई रथ घोड़ा और योधा वचा जो इनके तीक्ष्ण वाणोंसे जर्जरित न हुआ हो ॥८०॥ कुमार वसुदेव उससमय शत्रुओंके वाणोंको तो वायव्य अस्त्रसे तितर वितर कर देते और माहेंद्र वाणसे उनके धनुषोंके खंड खंड कर देते थे ॥८१॥ इसतरह उनने अपने तीक्ष्ण वाणोंके आघातसे यशके साथ २ शत्रुओंके चंद्र तुल्य श्वेत छत्र उड़ाये और उनके अति उन्नत मस्तकोंको भूमि पर गिराया ॥ ८२ ॥ इधर तो कुमार वसुदेव इसतरह भयानक युद्ध करनेमें लगे और उधर हिरण्यनाभने पौंड्र युवराजको सामने किया एवं सुदृढ़ रथोंमें बैठे हुये उन दोनों युवराजोंका सिंहके वच्चोंके समान भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ८३–८४ ॥ युवराज हिरण्यनाभने देखते देखते अपने तीक्ष्ण वाणोंसे शत्रुकी ध्वजा छत्र सारथि और रथके घोडोंको नीचे गिरा दिया ॥ ८५ ॥ यह देख कुमार पौंड्रको बड़ा क्रोध आया उसने भी वज्रदंडके समान कठोर अपने वाणोंसे हिरण्यनाभके भी छत्र ध्वजा सारथि और घोडोंको धराशायी बना दिया ॥ ८६ ॥ इस रीतिसे अनेक वार हिरण्यनाभने पौंड्रके और पौंड्रने हिरण्यनाभके रथ आदिको नाश किया ॥८७॥ अंतमें कुमार पौंड्र हिरण्यनाभको रथरहित कर उसके मारनेके लिये वाण छोड़ना ही चाहता था कि इतनेहीमें उसके सामने कुमार वसुदेवने आ विघ्न डाल दिया उन्होंने अपने अर्धचंद्रवाणसे पौंड्रके धनुषको छेद डाला युवराज हिरण्यनाभको अपने रथमें सवार कर लिया ॥ ८८–८९ ॥ और वे ऐसी वाण वर्षा करने लगे कि पौंड्र उससे शीघ्रही ढक गया। कुमारके वाणोंसे पौंड्रकी यह दशा देख शत्रुसेनासे न रहा गया वह कुमार वसुदेव को अकेले पौंड्रके द्वारा सर्वथा अजेय समझ मिलकर वाण वर्षा करनेलगी ॥९०॥ कुमार संग्राममें पूरा पूरा नैपुण्य रखते थे वे सेनाकेइस दुर्व्यवहारसे भला कव घवड़ानेवाले थे उन्होंने अपने तीक्ष्ण वाणको और भी तीक्ष्ण वनाया और उनसे शत्रुओंके वाणोंको छेद २ कर धरतीपर गिराने लगे। उससमय कुमारकी वीरता लोकोत्तर थी उसे देख शत्रुओंके मुंहसे भी पद पदपर साधु साधुकी आवाज निकलती थी–उनसे भी वाह २ किये विना नहिं रहा जाता था ॥९१॥ अकेले कुमारपर अनेक शत्रुओंको टूटा देख नीतिशाली सज्जन राजा कहने लगे–अहा! हमको एसा युद्ध नहिं देखना चाहिये यह अन्याय युद्ध है एक पर वहुतोंका टूटपड़ना महा अन्याय है" ॥ ९२ ॥ यह वात जरासंधने भी सुनी और धर्मयुद्ध देखनेकी इच्छासे उसने राजाओंको इसप्रकार आज्ञा दी—

"अरे तेजस्वी राजाओ! इसवीर योधासे एक २ कर लड़ो जो इसे जीतेगा उसीको यह

कन्या मिलेगी" ॥ ९३ ॥ जरासंधकी यह आज्ञा सुन सबसे प्रथम राजा शत्रुंजय कुमारके साथ युद्ध करने लगा और शेष राजा निर्वैर हो युद्धका दृश्य देखने लगे ॥९४॥ कुमारने राजा शत्रुंजयके बाणोंको दूरसे ही काट दिया और उसे रथ एवं कवचरहित कर तत्काल मूर्छित करदिया ॥ ९५ ॥ उसके अनंतर मदसे उद्धत राजा दत्तवक्त्र युद्ध करने लगा और परमपराक्रमी कुमारने उसे भी रथरहित कर भगा दिया ॥ ९६ ॥ रणमें कालकी तुलना करनेवाले राजा कालमुखके साथ कुमारका युद्ध हुआ और उसे भी उन्होंने प्राणशेष कर छोडदिया ॥ ९७ ॥ राजा शल्य बाणोंके चलानेमें बडा वीर था वह भी रथमें सवार हो कुमारके सामने आया और शीघ्र ही उनके महाभयंकर जृंभण अस्त्र द्वारा बंधकर निश्चेष्ट होगया॥९८॥जब कुमारको कोई राजा संग्राममें न हरा पाया तब राजा जरासंधने कुमारके बडे भाई राजा समुद्रविजयसे कहा—"तुम अस्त्रविद्यामें अच्छी निपुणता रखते हो संग्राममें जाकर तुम इसे निर्मद करो" । यद्यपि राजा समुद्रविजय परम नीतिज्ञ थे कुमारके साथ कन्यार्थ वे युद्ध करना अन्याय समझते थे तथापि चक्रवर्तीकी आज्ञासे उन्हें संग्रामके लिये तयार होना पड़ा क्योंकि नीतिज्ञोंको भी संग्राममें अपने स्वामी की आज्ञा अवश्य पालनी पड़ती है ॥९९–१००॥ राजा समुद्रविजयकी आज्ञासे सारथिने ध्वजा और छत्रसे शोभित रथ कुमार वसुदेव के रथकी ओर बढ़ाया ॥ १०१ ॥ ज्योंही कुमारने अपने बड़े भाईका रथ देखा शीघ्र ही उन्होंने अपने सारथि से कहा—

देखो ! ये मेरे बड़े भ्राता राजा समुद्रविजय हैं । इनके साथ युद्ध करनेमें तुम्हें रथ बहुत धीरे धीरे सावधानी से चलाना चाहिये मेरे युद्धसे इन्हैं कुछ कष्ट न हो इसलिये बड़ी बुद्धिमानीसे इनके साथ युद्ध करना पड़ेगा ॥ १०२–१०३ ॥ कुमारके वचन सुन सारथिने धीरे २ रथ बढ़ाना शुरू किया जिससे कि बड़े भाई के रथकी ओर वह मंद मंद रूप से गमन करने लगा ॥ १०४ ॥ कुमारको सामने देखते ही समुद्रविजयने अपने सारथिसे कहा—

भाई ! इस सुभटको देखकर मेरे मनमें स्नेहकी भावना हो रही है । मेरी दाहिनी आंख और भुजा भी फडकती है इन शकुनोंसे तो यही प्रतीत होता है कि किसी बंधुका समागम होना चाहिये परंतु शत्रु सामने अडा हुआ है बंधुका मिलाप कहांसे होगा? ॥ १०५–१०६ ॥ यह बात आजतक देखनेमें नहिं आई कि शकुन अच्छे हों और झगड़ा करना पड़े कदाचित् कहो कि कहींसे शुभ संवाद मिलेगा सो भी नहीं जंचता। क्योंकि इससमय देश काल उसके सर्वदा विरुद्ध है ॥ १०७ ॥ राजा समुद्रविजयके ऐसे वचन सुन सारथिने कहा—

स्वामिन् ! इससमय आप शत्रुके सामने उपस्थित हैं इसके जीतनेके बाद आपको नियमसे किसी बंधुका समागम होगा । राजन् ! दूसरोंसे सर्वथा अजेय इस शत्रुके जीतनेसे

राजराजेश्वर जरासंध नियमसे समस्त राजाओंके सामने आपकी सराहना करेंगे" ॥ १०८-१०९ ॥ समुद्रविजयने सारथिके वचनोंका अभिनंदन कर हाथमें धनुष लेलिया और तरकसंसे वाण निकाल उसपर चढ़ा इसप्रकार कुमारसे कहा—

प्रियसुभट! जिसप्रकार संग्राममें अन्य राजाओंके साथ तुमने अपनी धनुर्विद्याकी कुशलता दिखलाई है उसीप्रकार अब तुम मेरे सामने भी अपनी कुशलता दिखलाओ ॥ ११०-१११ ॥ शूर वीरताके पर्वत! तुम्हारा अतिशय उन्नत यह मानरूपी शिखर अभीतक किसीने आच्छादित नहिं किया है अब मै उसे अपने वाणरूपी मेघोंसे शीघ्रही आछन्न करूंगा जानते हो! मेरा नाम समुद्रविजय है" ॥ ११२ ॥ इसके उत्तरमें अपना स्वर वदल कर कुमारने कहा—

राजेंद्र! विशेष वोलनेकी क्या आवश्यकता है आप युद्ध करिये जो वीर होगा संग्राममें उसकी वीरता स्वयं प्रकट हो जायगी॥ ११३ ॥ आप इस वातका घमंड न करैं कि मैं समुद्रविजय हूं क्योंकि मेरा भी नाम संग्रामविजय है यदि आपको मेरी वातपर विश्वास न हो तो आप धनुषपर चढ़ाकर अपना वाण छोडिये" ॥ ११४ ॥ वस! कुमारके ऐसे कठोर वचन सुनते ही समुद्रविजयका माध्यस्थभाव और स्नेह एक ओर किनारा करगया मारे क्रोधके वे तत्काल वैशाखस्थानसे वैठिगये और वाणको खींचकर चलाने लगे ॥ ११५ ॥ कुमारभी उधर वैशाखस्थानसे वैठे थे ज्योंही उन्होंने राजा समुद्रविजयका वाण अपने पास आता देखा दूरसे ही उसे अपने वाणसे छेद दिया। ॥ ११६ ॥ जैसे २ राजा समुद्रविजयके वाण इनकी ओर आये उन्हें दूरसे ही अपने वाणोंसे खंड खंड कर वे जमीन पर पटकते गये ॥ ११७ ॥ जव राजा समुद्रविजयने यह समझा कि यह वीर सामान्य अस्त्रोंसे वश न होगा तो कुमारपर वायव्य वरुण आदि अस्त्रोंका प्रहार करना शुरू किया और कुमारने भी उन्हें अपने अस्त्रोंसे वातकीवातमें काट दिया। ये दोनों ही भाई संग्राममें पूरी निपुणता रखते थे इसलिये उससमय युद्ध देखनेवाले देव मनुष्य सव ही इनकी मुक्तकंठसे प्रशंसा करते थे॥ ११८ ॥ राजा समुद्रविजय योधा हाथी और घोडोंके मध्यमें जिन जिन वाणोंको छोड़ते थे उन्हें गरुड़ जिसप्रकार सर्पोंको खंड खंड करदेता है कुमार शीघ्र ही खंड खंड करदेते थे ॥११९॥ अंतको क्रोधमें भरकर समुद्रविजयने क्षुरप्र नामका वाण फेंका कुमारने मध्यमेंही अपने वाणसे उसके तीन टुकडे करदिये और उनही तीन टुकडोंसे समुद्रविजयके रथ सारथी और घोड़ा तीनोंको धराशायी वना दिया॥१२०॥ कुमारका यह अस्त्रकौशल देख राजाओंने उनकी वडी प्रशंसाकी-मस्तक हिलाते हुए वे उनका नाना तरहसे साधुवाद करने लगे ॥१२१॥ अवके राजा समुद्रविजयको वड़ा क्रोध आया वसुदेवको अपना भाई न पहिचान उन्होंने जिसमें हजार अस्त्र लगे हुये थे ऐसे रौद्रास्त्र वाणको धनुषपर चढ़ा कुमा-

रपर छोड़ा ॥ १२२ ॥ कुमारने भी समस्त अस्त्रोंको आच्छादन करनेवाला ब्रह्मशिर शस्त्र छोड़ा और उससे समुद्रविजयके रौद्रास्त्रके टुकडे २ करदिये ॥ १२३ ॥ उससमय कुमार वसुदेवका संग्रामके अंदर रणविद्याका कौशल परम प्रशंसनीय था । क्योंकि उन्होंने समुद्रविजयके समस्त अस्त्र काटदिये और तिसपर भी उन्हें सुरक्षित रक्खा॥१२४॥ इसप्रकार कुछ समयतक संग्राम करते करते कुमारका हृदय भ्रातृस्नेहसे भरगया उन्होंने शीघ्र ही अपने नामका वाण अपने भाईके पास भेजा ॥ १२५ ॥ वाण सीधा राजा समुद्रविजयके पास पहुंचा । उसमें जो वात लिखी थी उसे समुद्रविजय खोलकर इसप्रकार वांचनेलगे—" पूज्यपाद ! आपका छोटा भाई वसुदेव जो विना पूछे घरसे निकलगया था आज सौ वर्षके वाद आपके समीप आया है और आपके चरणोंमें प्रणाम करता है" ॥ १२६–१२७ ॥ बस ! इतना वांचना ही था कि छोटे भाईके गाढ़ स्नेहसे प्रेरित हो राजा समुद्रविजयने तत्काल हाथसे धनुष फैंकदिया और वे शीघ्रही रथसे उतरकर छोटे भाईकी ओर चलपडे ॥ १२८ ॥ कुमार वसुदेव भी उसीसमय रथसे उतरे और दूरसे ही भाईके चरणोंमें गिरगये कुमार वसुदेवको इसतरह नम्र देख राजा समुद्रविजयने उन्हें जेटमें भरलिया और वे दोनों भाई एक दूसरेका आलिंगनकर रोनेलगे । कुमारके अक्षुभ्य आदि भाइयोंने जब कुमार और समुद्रविजयको रोतेहुये देखा तो वे भी वहुत शीघ्र कुमारके पास आये और कुमारको छातीसे लगा करुणाजनक रोदन करनेलगे ॥ १२९–१३० ॥ कुमार वसुदेवके रणभूमिमें जितने श्वसुर साले और बांधव आये थे वे भी अश्रुपातपूर्वक कुमारसे मिले ॥ १३१ ॥ जरासंध आदि राजा कुमार और उनके भाइयोंका आपसमें मिलाप देख परमहर्षित हुये एवं कन्या रोहिणीकी कुमारके वरनेमें यह चतुरता देख उसकी वहुत कुछ प्रशंसा करनेलगे ॥ १३२ ॥ कुमारसे मिलते मिलाते सूर्यास्त होनेपर आगया था इसलिये सव राजा लोग अपने अपने डेरोंपर चलेगये और रात्रि दिन कुमार वसुदेवकी कथासेही व्यतीत करनेलगे ॥ १३३ ॥ इसकेवाद किसी प्रशस्त तिथि और नक्षत्रमें समुद्रविजयके छोटे भाई कुमार वसुदेवका रोहिणीके साथ विवाहोत्सव मनाया गया ॥ १३४ ॥ जिसे देख राजा लोगोंको लोकोत्तर संतोष हुआ और वे (राजा जरासंध और समुद्रविजय आदि) एकवर्षतक राजा रुधिरके ही यहां रहे ॥ १३५ ॥ विद्याधर दधिमुखने संग्राममें कुमार वसुदेवकी पूरी पूरी सहायता की थी इसलिये कुमारने उसकी वडी प्रशंसा की । कुमारके मुखसे प्रशंसा सुन विद्याधर दधिमुखको बड़ा संतोष हुआ और वह उनसे आज्ञा ले अपने स्थान चलागया ॥ १३६ ॥ कुमार वसुदेव कामके आधीन हो नवीन वधू रोहिणीके मुख कमलके भौंरे वनगये इसलिये उससमय उन्हें पूर्वभुक्तवधूरूपीलतओंका स्मरण तक न हुआ ॥ १३७ ॥

देखो! जिनोक्त तपका प्रभाव अचिंत्य है कुमार वसुदेवने पूर्वभवमें घोर तप तपा था उसीके प्रभावसे अतुलपराक्रमके धारक, कन्या रोहिणीके लोलुपी, अनेक राजा मिलकर संग्राम करनेपर भी उनका कुछ न विगाड़ सके—उलटा उन्होंने ही अपने भुजबलसे उनको वातकीवातमें परास्त कर दिया।

इसप्रकार आचार्य जिनसेन द्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें कन्या रोहिणीका स्वयंवर और कुमारका समुद्रविजय आदि बडेभाइयोंसे मिलाप वर्णन करनेवाला इकतीसवां सर्ग समाप्त हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवां सर्ग।

एकदिन रमणी रोहिणी अपने स्वामी कुमारके साथ किसी सेजपर सानंद शयन कररही थी अचानक ही जब रात्रिका कुछ भाग शेष रहगया तव उसे मंद मंद गर्जता हुआ चंद्रमाके समान शुभ्र हाथी, पर्वतके समान उन्नत तरंगोंसे शोभित गंभीर शब्द करता हुआ समुद्र, पूर्णचंद्रमंडल, एवं कुंद पुष्पके समान श्वेत मुखमें प्रवेश करता हुआ सिंह ये चार स्वप्न दीखपड़े॥ १–३॥ और आंख खुलनेपर प्रातःकाल होतेही फल जाननेकी अभिलाषासे उसने अपने समस्त स्वप्न कुमारसे निवेदन किये। स्वप्न सुन कुमार ने उनका इसप्रकार फल वतलाया—

"प्रिये! तुम्हारे वहुत जल्दी पुत्र उत्पन्न होनेवाला है जोकि—हस्तीके समान उन्नत, समुद्रके समान धीर और अलंध्य, चंद्रमाके समान अनेक कलाओंका धारक और सिंहके समान अद्वितीय पृथ्वीका स्वामी समस्त प्रजाका प्यारा होगा"॥ ४–५॥ पतिके मुखसे स्वप्नोंका यह शुभ फल सुन सुंदरी रोहिणीको वड़ा आनंद हुआ उसका मुखकमल खिल उठा और चंद्रमाकी तुलना करने लगा॥ ६॥ उससमय महासामानिक जातिका देव महाशुक्र स्वर्गसे चयकर आया और जिसप्रकार पृथ्वीके अंदर मनोहर मणि रहती है उसी प्रकार रमणी रोहिणीके उदरमें अवस्थित होगया॥ ७॥ क्रमसे नौ मासके समाप्त होजानेपर जिसके समस्त दोहले (गर्भसमयकी अभिलाषायें) पूर्ण किये गये थे ऐसी रोहिणीने चंद्रमाके समान मनोहर पुत्र जना॥ ८॥ वालकका जन्मोत्सव वड़े आनंदसे मनाया गया और उसे देख जरासंध आदि राजा संतुष्ट हो अपने अपने स्थान चलेगये॥ ९॥ वह वालक परम अभिराम–सुंदर था इसलिये उसका प्रसिद्धनाम राम रक्खा गया और जैसा २ वह वढ़ता गया उसके पिता माता और वंधुजनोंकी प्रीति भी उसमें दिनोंदिन वैसी ही वैसी वढ़ती चलीगई॥ १०॥

एकदिन कुमारके परमहितैषी समुद्रविजय आदि समस्त भाई राजा रुधिरके यहां किसी उत्तम मंडपमें विराजमान थे उसीसमय आकाशसे उतरकर एक दिव्य विद्याधरी

वहां आई और सबोंकी अभिवंदनाकर किसी आसनपर वैठ कुमारको लक्ष्यकर इस-प्रकार कहने लगी—

" देव! आपकी पत्नी वेगवती और मेरी पुत्री बालचंद्रा चरणोंमें पड़कर आपके प्रियदर्शन करना चाहती है॥११–१३॥ इससमय कुमारी बालचंद्राके प्राण सर्वथा आपके आधीन हैं कृपया वहां चलें और विवाहकर उसके चित्तको आनंदित करैं " ॥ १४॥ विद्याधरीके ऐसे वचन सुन कुमारने अपने बडेभाई समुद्रविजयकी ओर देखा अभिप्रायवेत्ता समुद्रविजय भी उनका भीतरी अभिप्राय समझ 'जल्दी आना' ऐसा कह-कर कुमारके जानेमें सम्मत होगये ॥ १५ ॥ कुमारको लेकर विद्याधरी तो गगनवल्ल-भपुरकी ओर चलदी और राजा समुंद्रविजय आदि सौर्यपुर चले आये ॥ १६ ॥ गगन वल्लभपुर आकर कुमार प्रियतमा वेगवतीसे मिले पूनमचंद्रके समान सुंदरमुखी कन्या बालचंद्राको विवाहा और उन दोनोंके साथ मनमानी क्रीड़ा करते हुये वहीं रहनेलगे ॥ १७–१८ ॥ कुछदिनके बाद कुमार वसुदेवको रमणी वेगवती और बालचंद्राके साथ सौर्यपुर लौटनेकी अभिलाषा हुई यह देख एणीपुत्रकी पूर्वभवकी मा देवी तत्काल वहां आई उसने कुमारको रत्नमयी एक विमान रचकर दिया ॥ १९ ॥ यह देख बालचंद्राके पिता राजा कांचनदंष्ट्रने और वेगवतीके बडेभाई मानसवेगने भी मयपरिवारके बालचंद्रा और वेगवती उन्हैं सोंपदी ॥ २० ॥ कुमार अपनी दोनों पत्नियोंको लेकर अरिंजयपुर आये वहां राजा विद्युद्वेगसे मिलकर प्रियतमा मदनवेगा और पुत्र अनावृष्णिको ले उसी विमानसे गंधसमृद्ध नगरकी ओर चलदिये। गंधसमृद्धनगर आकर राजा गंधारकी पुत्री प्रभावतीसे मिले और उसै परिवार सहित विमानमें विठा असितपर्वत नगर आये ॥ २१–२४ ॥ वहांपर राजा सिंहदंष्ट्रकी पुत्री नीलंयशासे मिले और उसै भी विमान-में विठा श्रावस्ती आये वहांसे प्रियंगुसुंदरी और वंधुमतीको साथले महापुर आये वहांसे सोमश्रीको ले इलावर्धन नगर गये वहांसे रत्नावतीको ग्रहणकर भद्रिल नगर आये और वहांसे प्रियतमा चारुहासिनी और पौंड्रको विमानमें विठा जयपुरकी ओर चलदिये ॥ २५–२९ ॥ जयपुरमें आकर रमणी अश्वसेना ली वहांसे चलकर शालगुहा नगर आकर पद्मावतीको साथ लिया और वेदसामपुरकी ओर चलदिये ॥ ३० ॥ वहां पर अपने पुत्र कपिलका राज्याभिषेक कर कपिलाको लेकर अचलग्राम आये। वहांसे मित्रश्रीको लेकर तिलवस्तुक नगर गये वहांसे पांचसौ विवाहिता स्त्रियोंको लेकर गिरि-तट, गिरितटसे रमणी सोमश्रीको लेकर चंपा, चंपासे गंधर्वसेना और मंत्रिपुत्री को लेकर विजयखेट, विजयखेटसे पुत्र अक्रूरदृष्टि और प्रियतमा विजयसेनाको ले कुलपुर, कुलपुरसे पद्मश्री, अवंतिसुंदरी, पुत्रसहित शूरसेना, जरा, जीवद्यशा और अन्य स्त्रियों को साथ ले बड़े हर्षके साथ उत्तमोत्तम नृत्य वादित्रोंसे मंडित हो विमानमें वैठ शीघ्र

ही सूर्यपुर नगरकी तरफ रवाना हुये ॥ ३१–३७ ॥ नगरके पास आ विमान किसी उद्यानमें ठहर गया इसके वाद उसकी संरक्षिका स्वयं वनवती देवी ज्वलनप्रभनागवल्लभाने कुमार वसुदेवके आनेका समाचार राजा समुद्रविजयको जा सुनाया ॥ ३८॥ कुमारका आगमन सुन समुद्रविजय वड़े आनंदित हुए उन्होंने शीघ्र ही पुरवासियोंको आज्ञा दे नगर सजवाया और वे बंधुओंको साथ ले कुमारके लेनेके लिये चलदिये ॥ ३९ ॥ समुद्रविजय आदिको देखते ही कुमार तत्काल विमानसे उतर पड़े उन्होंने पत्नियोंके साथ अपने वड़े भाई गुरु एवं बांधवोंको प्रणाम किया और अन्य पुरवासी मनुष्योंको वडे स्नेहसे उनके प्रणामका उत्तर दिया ॥ ४० ॥ कुमारको देखते ही महाराणी शिवा आदिके नेत्रोंसे आनंदके आसुओंकी झड़ी लग गई कुमारने अपनी समस्त स्त्रियोंके साथ उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया वे भी 'पुनः हमारा कुमारके साथ वियोग न हो इसबातकी हृदयमें कामना करती हुईं' कुमारको पुनः पुनः आशीर्वाद देने लगीं ॥ ४१ ॥ इसतरह परस्पर उपचार होनेकेबाद सब लोग कुमारको नगर ले आये भाई और प्रजा उनका पूर्ण सन्मान करने लगे जिससे कि बंधुरूपी समुद्रके परम हितकारी कुमार अपनी रमणियोंके साथ मनमाना भोग विलास करते हुये सुखसे रहने लगे ॥ ४२ ॥ समुद्रविजय एवं वसुदेवसे मिलकर वनवती देवी बहुत संतुष्ट हुई और उनसे अनुमति ले अपने स्थान चली गई ॥ ४३ ॥

उससमय परमपराक्रमी, अपने पराक्रमसे समस्त राजाओंके जीतनेवाले, उदार, सुंदरचरित्रसे शोभित, अनेक विद्याधरियोंके स्वामी, सौंदर्यसे देवोंकी तुलना करनेवाले, परम ऐश्वर्यसे समृद्ध, कुमार वसुदेवको देखकर समस्त शौर्यपुरकी प्रजाके मुखसे येही ये वचन निकलते थे कि कुमारका जो यह लोकोत्तर वैभव दीख पड़ता है उसमें पूर्वोपार्जित जैनधर्म हीं कारण है सिवाय जैनधर्मके प्रसादके इतना वैभव कदापि नहिं हो सकता ॥ ४४ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान् नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें कुमारका सकलबंधुओंके साथ समागम वतलानेवाला वत्तीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३२ ॥

तेतीसवां सर्ग।

इसके वाद कुमार सूर्यपुरमें सानंद रहने लगे और प्रार्थना करनेपर अनेक कुलीन राजपुत्रोंको शस्त्र विद्याका शिक्षण देने लगे ॥ १ ॥

किसी दिन कुमार धनुर्विद्यामें प्रवीण अपने कंस आदि अनेक शिष्योंको साथ ले राजा जरासंधसे मिलनेके लिये राजगृह नगर आये उससमय वहां पर और भी बहुतसे राजा मौजूद थे। उन्हें वहांकी प्रजासे राजा जरासंधकी यह घोषणा सुन पड़ी—

"सिंहपुरका निवासी राजा सिंहरथ बड़ा उद्धत है सच्चे सिंहोंके रथपर चढ़कर युद्ध करनेवाला और परमपराक्रमी है जो वीर पुरुष उसे जीता पकड़कर मेरे सामने लावेगा वह अतिशय शूरवीर समझा जायगा। अपने मानकी रक्षा करनेवाले, और शत्रुके मानमर्दन करनेवाले उस मनुष्यको परम शूरवीर समझना यह तो एक आनुषंगिक फल है परंतु उसे पुत्री जीवद्यशा भी प्रदान की जायगी जो कि अपने गुणोंसे समस्त स्त्रियोंकी शिरोभूषण स्वरूप है और परम सुंदरी है एवं यही नहीं उस कन्या (जीवद्यशा) के साथ २ उसे उसकी इच्छानुसार कोई देश भी दिया जायगा" ॥ २-७ ॥ राजा जरासंधकी यह घोषणा सुन धीरवीर कुमार वसुदेवने सिंहरथके बांधनेके लिये कंसको आज्ञा दी ॥८॥ गुरुकी आज्ञासे कुमार कंस मायामयी सिंहोंके रथपर सवार हो युद्ध करने चल दिया राजा सिंहरथका सामना होते ही कंसने वाणोंद्वारा सिंहोंकी वागडोरको तोड़ सिंहोंको भगा दिया और उछलकर सिंहरथको बांध लिया। कंसका शस्त्रविद्यामें यह परम कौशल देख कुमार उसपर मुग्ध होगये उन्होंने उसे वर मांगनेके लिये बाध्य किया परंतु कंसने 'आवश्यकता पड़नेपर वर लूंगा' ऐसा कहकर उन्हींके पास वह रहने दिया। इसके बाद वसुदेवने सिंहरथको जरासंधके सामने लाकर उपस्थित किया ॥ ९-११ ॥ सिंहरथको इसप्रकार बंधा हुआ देख राजा जरासंध बड़ा प्रसन्न हुआ उसने प्रतिज्ञानुसार अपनी कन्या विवाहनेके लिये वसुदेवसे कहा। परंतु कुमार वसुदेवने यह समस्त कृत्य कंसका है 'वहही इसका अधिकारी है' ऐसा कहकर उसे कन्या प्रदान करनेका निवेदन किया ॥ १२ ॥ यह सुन राजा जरासंधने कंससे उसकी जाति पूछी—विचारे कंसको अपनी जातिका क्या पता था वह कौशांवी नगरीकी कलारिनी (मद्य वेचनेवाली) मंदोदरीके यहां पला था इसलिये उसने उसीका नाम ले दिया ॥ १३ ॥ कंसका ऐसा वचन सुन राजा जरासंधको बड़ा आश्चर्य हुआ उसने यह सोचकर कि—यह बालक आकृतिसे तो कलारिनीका पुत्र नहिं जान पड़ता" शीघ्र ही कुछ पुरुषोंको मंदोदरीके लानेके लिये कौशांवी नगरी भेजा और वहभी राजा की आज्ञानुसार जिस संदूकमें कंस मिला था मयमुद्रिका (छाप) के उसे लेकर राज दरवारमें आ उपस्थित हुई ॥ १४-१५ ॥ मंदोदरीको देखते ही राजा जरासंधने कंस-का समस्त वृत्तांत पूछा- और वह इसप्रकार कहने लगी—

"कृपानाथ! मैंने यह बालक गंगाकी धारमें बहते हुए इस संदूकमें पाया है इसे देखते ही मुझे बडी दया आगई थी इसलिये पालपोषकर मैंने इसे इतना बढाया। जब यह कुछ बड़ा होगया तो जहां तहां यह लोगोंका विगाड़ करने लगा और इसके विषयमें सैकडों उलाहने मेरे यहां आने लगे ॥ १६-१७ ॥ यह पुण्यवान बालक स्वभावसे ही उग्र था समस्त बालकोंके लिये बड़ा क्रूर था जब यह मारता था तब उनकी

चांदमें ही मारता था। जो वेश्याओंकी लड़कियां मेरे घर शराब खरीदने आती थीं अपने हाथसे उनके जूड़ा पकड़कर खींचता और मूड़में टोला आदि मार उन्हें बड़ा दिक करता था॥ १८-१९॥ जब मैं लोगोंके सैकडों उलाहनोंसे घबडा गई तो मैंने इसे घरसे निकाल दिया और यह किसी शस्त्रविद्याके जानकारका शिष्य बन शस्त्रविद्या सीखने लगा॥ २०॥ महाराज! जिस संदूकमें मुझे कंस मिला था वह संदूक यह है मैं इसकी मा नहीं जो कुछ इसने गुण दोष किये हों मैं उनकी भी जिम्मेवार नहीं यह संदूक ही उनकी जिम्मेवार है॥२१॥ संदूकीमें कंसके नाम ठिकानेकी छाप रक्खी थी ज्योंही कलारिनीने संदूकी खोलकर राजाको दिखलाई राजाकी दृष्टि उस छापपर पडी और उसमें जो समाचार लिखे थे उन्हें खोलकर वह (राजा जरासंध) इसप्रकार बांचने लगा—

"यह राजा उग्रसेनका रानी पद्मावतीसे उत्पन्न पुत्र है जिससमय यह गर्भमें था उससमयमें भी बडा उग्र और माता पिताको क्लेश देनेवाला था आगामिकालमें इसके कारण कोई प्रबल दुःख उपस्थित न हो जाय इसलिये इसे गंगामें बहाया गया है अब यह अपने पूर्वोपार्जित कर्मोंसे जीवे हम इसका पालन नहिं कर सकते" ॥२२-२३॥ ज्योंही राजाने यह समाचार बांचा वह कंसको अपना भानेज जान बडा प्रसन्न हुआ और उसे शीघ्र ही जो अनेक गुणोंकी भंडार थी कन्या जीवद्यशा प्रदान कर दी॥ २४॥ अपने जीवनकी यह भयंकर घटना सुन कुमार कंस मारे क्रोधके भवक उठा उसने विचारा कि—मेरे पिताने मुझे उत्पन्न होते ही गंगामें वहा वड़ा अन्याय किया है उसको इसका फल अवश्य चखाना चाहिये' ऐसा विचार तत्काल कुछ सेना और रानी कलिंदसेनाकी पुत्री जीवद्यशाको साथ ले मथुराकी ओर चल पड़ा मथुरामें पहुंचते ही उसने राजा उग्रसेनके साथ युद्ध ठान दिया युद्धमें उन्हें जीत शीघ्र ही बांध लिया। एवं उनकी स्वतंत्रताको रोक उन्हें नगरके प्रधान दरवाजेमें कैदकर आनंद मनाने लगा ॥२५-२७॥ वसुदेवने जो कंसपर उपकार किया था उसका कंसपर पूरा २ असर पड़ा हुआ था कुमारको प्रत्युपकारमें क्या मनोज्ञ वस्तु देनी चाहिये इसतरह बहुत विचारने पर भी उसकी बुद्धिमें कुछ भी निर्णय नहिं हो पाता था॥ २८॥ अंतमें वह एक दिन प्रार्थनापूर्वक बडी भक्तिसे गुरु वसुदेवको मथुरा लाया और उनको गुरुदक्षिणामें अपनी वहिन देवकी प्रदानकी॥ २९॥ शिष्यका आग्रह देख कुमार वसुदेवने भी मधुर २ बोलनेवाली लावण्यवती रमणी देवकीके साथ विवाह करलिया और मनमानी क्रीड़ा करते हुये उसके साथ वहीं (मथुरामें ही) रहने लगे॥ ३०॥

जरासंधका परमप्रिय, शत्रुओंका मानमर्दनकरनेवाला राजा कंस राजधानी मथुरामें रह शूरसेन और महाराष्ट्रदेशका आनंदसे शासनकर रहा था कि एक दिन उसके बडेभाई मुनिराज अतिमुक्तक पारणाकेलिये उसके राजमंदिरमें पधारे उन्हें देख रानी

जीवद्यशा हंसती हुई उनके पासगई भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और देवकीके रजस्वला समयके वस्त्र ले मुनिराजके आगे वैठकर अपने चंचल स्वभावके कारण हंसी दिल्लगी उड़ाती हुई इसप्रकार कहनेलगी--

"देखो! ये तुम्हारी वहिन देवकीके आनंदवस्त्र हैं" मुनिराज समस्त संसारकी स्थितिके भलेप्रकार जानकार थे अमर्यादरूप बोलनेवाली ऐश्वर्यसे मत्त रानी जीवद्यशाके वचन सुन उन्होंने थोड़ीदेरके लिये अपनी वचन गुप्ति छोड़दी वे इसप्रकार बोले—

अरी चंचल! तेरा यह हंसी दिल्लगी उड़ाना अच्छा नहीं है खेद है कि तू शोककी जगह आनंद मान रही है। तू निश्चय समझ! इस देवकीके गर्भसे जो बालक होगा नियमसे वह तेरे पति और पिताका प्राणनाशक बनेगा यह बात ऐसीही होनी है इसका टलना असाध्य है" ॥ ३१-३६ ॥ मुनिराजके ऐसे हृदयविदारक वचन सुन रानी जीवद्यशाके होश उड़गये मारे भयके वह थरथर कांपनेलगी आनेवाली विपत्तिसे उसके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा वहचली वह तत्काल अपने पतिके पास गई और मुनिराजका वचन खाली नहिं जाता ऐसा उसै पूर्ण श्रद्धान कराकर सारा वृत्तांत कह सुनाया ॥ ३७ ॥ रानीके मुखसे अपना प्राणनाशक समाचार सुन राजा कंसको भी बड़ा संदेह होगया वह तत्काल कुमार वसुदेवके पास गया और चरणोंमें पड़कर उनसे वर मागनेकेलिये इसप्रकार प्रार्थना करनेलगा—

"स्वामिन्! मुझै वरदेनेकेलिये आपने वायदा किया था इससमय उसके मांगनेकी आवश्यकता पड़ी है कृपाकर मुझै वर प्रदान करैं और वह वर मैं यही मांगना चाहता हूं कि वहिन देवकी मेरेही राजमंदिरमें संतान जनाकरे" ॥ ३८-३९ ॥ कुमारको कंसकी कूटनीतिका जरा भी भान न था उन्होंने वेविचारे वर प्रदान करदिया और ठीक भी था भाईके घरमें वहिनका सर्वनाश हो इसपर लोगोंका कदापि विश्वास नहिं हो सकता ॥ ४० ॥ कुछदिन वाद कंसके गूढ़ रहस्यका पता कुमारको लगगया फिर क्या होता था उनके चित्तको पश्चात्ताप और दुःखने कड़ी रीतिसे दवालिया। स्वामीको इसप्रकार दुःखित देख देवकीको बड़ाही दुःख हुआ वह रोती हुई उनसे बोली 'स्वामिन् आपकी कृपासे अन्य रानियोंसे उत्पन्न बहुतसे पुत्र हैं वे सब मेरेही हैं मेरे एक न हुये तो क्या हर्ज है-मैं उनका क्या करूंगी" । इसके वाद एकदिन कुमारको इस बातका पता लगा कि सहकार नामक वनमें चारण ऋद्धिधारी मुनिराज अतिमुक्तक विराजमान हैं वे देवकीको साथ ले तत्काल मुनिराजके पासगये और भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उनके चरणोंके समीप बैठ अपने हृदयके प्रश्नको इसप्रकार पूछने लगे--

"प्रभो! कंसने किस जन्ममें ऐसा कर्म संचित किया था कि वह दुर्मति अपने पिताका ही वैरी हुआ? और मेरा पुत्र इसको मारनेवाला कैसे होगा? कृपाकर यह समस्त

वृत्तांत कहें मुझे इसके जाननेकी उत्कट अभिलाषा है" मुनिराज अतिमुक्तक देदीप्यमान अवधिज्ञानके धारक थे और अवधिज्ञान रूपी दिव्यचक्षुके धारकोंकी वाणी नियमसे संशय दूर करनेवाली होती है इसलिये कुमार वसुदेवके पूछनेपर मुनिराजने कहा—

अयि देव और समस्त मनुष्योंके प्रिय कुमार! जिस वृत्तांतको तुमने पूछा है मैं उसे सविस्तर कहता हूं तुम ध्यान देकर सुनो। इसी मथुरामें राजा उग्रसेनके राज्यमें इस कंसके पूर्वभवका जीव अनिष्ट पंचाग्नि तप तपनेवाला एक वसिष्ठ नामका तपस्वी था॥ ४१-४७॥ वह अज्ञ तपस्वी यमुनाके किनारे एक पैरसे स्थित होकर-भुजाओं को ऊपर उठा, वड़ी वड़ी जटाओंको धारण कर, सदा तप तपा करता था॥ ४८॥ किनारे पर लोगोंकी बहुतसी दासियां जल भरनेके लिये आया करती थीं एक दिन सेठ जिनदत्तकी प्रियंगुलतिका दासी भी पानी भरने आई और सबकी सब मूर्ख दासियोंने मिलकर उससे कहा-"प्रियंगुलतिके! तू इस तपस्वीको नमस्कार कर" उत्तरमें प्रियंगुलतिकाने कहा-"मेरी इस तपस्वीमें भक्ति तो जरा भी नही, मैं इसे नमस्कार करूं तो कैसे करूं" दासियोंने न माना हठसे पकडकर उसका मस्तक तपस्वीके पैरोमें नमा दिया इसपर प्रियंगुलतिकाको बडा क्रोध आया और सहसा उसके मुखसे ये शब्द निकल पडे "हाय! मुझै जवरन धीवरके पैरोंमें गिरा दिया"। बस फिर क्या था! तपस्वी तो हित अहित विचारसे सर्वथा शून्य था दासीके वचन सुनते ही मारे क्रोधके उसका शरीर जल पजलकर खाक होगया वह सीधा राजा उग्रसेनके पास गया और इसप्रकार बोला-"प्रभो! विना कारण मुझै सेठ जिनदत्तने गालियां सुनाई हैं" राजाने जिनदत्तको वुला उससे तपस्वीको गाली देनेका कारण पूछा। उत्तरमें जिनदत्तने कहा-

कृपानाथ! गाली देना तो दूर रहा मैंने इस तपस्वीको कभी देखा भी नहिं है न मेरी इससे कुछ जान ही पहिंचान है। तपस्वीने जिनदत्तको देखकर कहा-"नहीं! नहीं!! जिनदत्त नहीं!!! इसकी दासीने मुझै गालियां दी हैं मुझै मूर्ख धीवर वतलाया है" राजाने दासीको भी वुलाया और 'रे पापिनी! तू क्यों इस तपस्वीको नमस्कार नहिं करती थी तूने इसै क्यों गालियां दी हैं' ऐसा वडे क्रोधसे पूछा-उत्तरमें प्रियंगुलतिकाने कहा-कृपानाथ! इस तपस्वीकी जटा तो बडी वडी हैं परंतु शुद्ध नहीं यदि देखा जाय तो इनमें वहुतसी छोटी छोटी मछलियां और कीडे निकलेंगे जटाओंके उंछन करनेमें सैकडों जीवोंका विध्वंस होता होगा इसलिये इस हिंसकको नमस्कार करना मुझै पसंद नहीं।' दासीके ऐसे वचन सुन लोगोंने तपस्वीकी जटा देखनी प्रारंभ कीं उनमें वहुतसी मछलियां और जीव निकले लोगोंने साधुकी वडी हंसी की और लज्जित कर उसै असत्य वक्ता ठहराया॥ ४९-५६॥ जब राजाके सामने तपस्वीकी इसप्रकार परीक्षा हुई तो उसे वडा क्रोध आया लोगोंको अपनी अज्ञानताके जाहिर होजानेसे वह मथुरासे

चला आया और बनारस आकर गंगा किनारे किसी वाह्य प्रदेशमें तप तपने लगा। ॥ ५७-५८ ॥ एक दिन मुनिराज वीरभद्र उसी प्रदेशमें अपने पांचसौ शिष्यों सहित आये उनके साथ एक नवीन दीक्षित साधु था वसिष्ठको देखकर उसने उसके घोरतपकी वडी प्रशंसा की यह सुन मुनिराजने वशिष्ठके तपको अज्ञान तप वतला नवीन दीक्षित साधुको उसकी प्रशंसा करनेसे रोका ॥ ५९-६० ॥ पासमें वैठा तपस्वी वसिष्ठ भी मुनिराजके ये वचन सुन रहा था वह तत्काल मुनिराजके समीप खसक आया और 'मैं क्यों अज्ञानी हूं ?' ऐसा उनसे पूछने लगा-उत्तरमें मुनिराजने कहा—

भाई ! तुम पंचाग्नि तप तपकर पृथ्वीकायिक आदि छै निकायके जीवोंको दुःख पहुंचाते हो इसलिये तुम अज्ञानी हो ॥ ६१ ॥ पंचाग्नि तप तपनेमें अग्नि अवश्य ही चाहिये और उसमें नियमसे पृथ्वी जल तेज पवन और वनस्पतिकाय इन पांच प्रकारके एकेंद्रिय जीवोंका विध्वंस होता है ॥६२॥ जो अज्ञानी पृथ्वी जल तेज वायु और वनस्पति कायके जीवोंको दुःख देनेवाला है वह प्राणी संयम-अर्थात् अहिंसा धर्मको कदापि नहिं पाल सकता ॥६३॥ क्योंकि चाहैं कोई मनुष्य संसारसे विरक्त ही क्यों न होगया हो परंतु वह यदि मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्रका धारक है उसका इंद्रियसंयम (इंद्रियोंका वश करना) ज्ञानपूर्वक कदापि नहि माना जा सकता। ॥ ६४ ॥ जो मनुष्य अहंकारमें चूर होकर केवल कायक्लेश तप करनेवाला है वह सम्यक्संयमका (सम्यक्चारित्रका) धारक नहिं वन सकता और सम्यक्चारित्रके विना उसका तप मोक्षका कारण नहिं हो सकता ॥ ६५ ॥ केवल जैनमार्गमें ही सचा संयम तप दर्शन चारित्र और समस्त पदार्थोंको प्रकाश करनेवाला ज्ञान वतलाया गया है ॥ ६६ ॥ प्रिय तपस्वी ! तुम्हारा पिता मरकर सर्प हुआ है यदि तुमको इसवातपर विश्वास न हो तो ज्वाला और धूआंसे व्याप्त इस जलते हुये ईंधनमें तुम उसे देख लो" ॥ ६७ ॥ मुनिराजके वचन सुनतेही तपस्वीने उसीसमय कुठार से काष्ठ फाड़ा और उसमें जलते एवं छटपटाते हुये सर्पको देखा ॥ ६८ ॥ तपस्वी वशिष्ठके पिताका नाम ब्रह्म था और वह तपस्वी था इसलिये वसिष्ठ भी पिताके मार्गका भक्त था परंतु मुनिराज वीरभद्रके वचनोंसे वसिष्ठने सर्वथा अपने पिताके मार्गको तिलांजलि देदी और अपनी अज्ञानता स्वीकार कर ली ॥ ६९ ॥ उसने मुनिराज वीरभद्रकसे पवित्र जैनधर्मका स्वरूप समझा एवं सचा श्रद्धानी और ज्ञानी वन उन्हीं मुनिराजको गुरु बना दिगंवर दीक्षा धारण कर मुनि होगया ॥ ७० ॥ मुनि वशिष्ठ घोर तप तपते थे परंतु लाभांतराय कर्मका उनके प्रवल उदय था इसलिये उन्हें भिक्षाका लाभ कठिनतासे होता था ॥ ७१ ॥ जैन शास्त्रोंपर गाढभक्तिके कारण गुरुवर वीरभद्रकने वसिष्ठको शास्त्र अभ्यास करानेके लिये मुनि शिवगुप्तिको सोंपदिया छै मास शिवगुप्तिके पास रहकर फिर वे वीरदत्त मुनिके

पासगये उन्होंने मुनिराज सुमतिको सौंपदिया और उन्होंने छै मासतक मुनि वशिष्ठका पूर्णरूपसे पालन किया ॥ ७२–७३ ॥ जब मुनिराज वसिष्ठ यतिधर्मके पूर्णतया ज्ञाता होगये और घोरसे घोर परिषहोंको सहने लगे तो वे प्रसिद्धरूपसे पृथ्वीपर एकाकी हो विहार करने लगे ॥ ७४ ॥ एकदिन वे जहां तहां विहार करते २ मथुरा आये और उन्हें महातपस्वी जान राजा प्रजा सर्वोंने उनकी पूजा की ॥ ७५ ॥ कदाचित् आतापन योग धारणकर वे पर्वतके शिखरपर विराजमान थे कि उनके तपके प्रभावसे देवियां आईं और कुछ काम करनेकी आज्ञाकेलिये प्रार्थना करने लगीं । उत्तरमें मुनिराज वशिष्ठने कहा–मुझे किसी बातकी आवश्यकता नहिं तुम अपने २ स्थान जाओ जब मैं स्मरण करूं तब आना जिससे कि वे समस्त देवियां अपने २ स्थान चलींगईं । ॥ ७६–७७ ॥ एकमासके उपवासी, अहारकेलिये सर्वथा निरभिलाषी मुनि वसिष्ठको समस्त प्रजा पारणा कराना चाहती थी किंतु अकेले राजा उग्रसेनने उनकी पारणा करानी चाही इसलिये मथुरावासी समस्त प्रजाको उन्हें आहारदान देनेकेलिये रोकदिया ॥ ७८–७९ ॥ मुनिराज वसिष्ठ तीनबार राजमहलमें आहारकेलिये आये–प्रथम वार जब वे आहारके लिये आये थे उससमय राजा जरासंधका दूत आगया था इसलिये राजा उसकी गड़बड़में पड़गया और प्रमादीबन मुनिराजको आहार न देसका दूसरीवार मुनिराजके आनेके समय अग्नि लग गई इसलिये व्यग्रताके कारण मुनिराजको आहार देनेका फिर भी राजाको स्मरण न रहा तीसरीबार जब मुनिराज आये तो एक मत्त हस्तीने अपना बंधन स्तंभ तोड़ नगरमें उपद्रव करना आरंभ करदिया इसलिये फिर भी राजा मुनिराजको आहारदेना भूलगया ॥ ८० ॥ मुनिराज समस्त मथुरा नगरीमें आहारकेलिये घूमे जब उन्हें कहीं आहार न मिला तो वे श्रांत होगये और नगर के द्वारमें खड़े होकर कुछ विश्राम करनेलगे ॥ ८१ ॥ मुनिराजको इसप्रकार श्रांत देख एक नगर निवासीने कहा—

"हा ! राजा बड़ा अनर्थ करता है न तो स्वयं मुनिराजको आहार देता है और न दूसरेको देने देता है" ॥ ८२ ॥ नगर निवासी मनुष्यके ऐसे वचन सुनते ही मुनिवसिष्ठको क्रोध आगया उन्होंने शीघ्रही उपर्युक्त देवियोंका स्मरण किया । स्मरण करतेही आकर देवियां आज्ञा मांगने लगी और उन्हें देख मुनिराजने कहा कि–यदि अन्य जन्म में मुझे कुछ आवश्यकता पड़े तो तुम आकर मेरी सहायता करना इससमय जाओ" मुनिराजकी यह आज्ञा सुन देवियां वापिस लौटगईं और मुनिराज वन चले आये ॥ ८३ ॥ मुनिराज वसिष्ठने उसीसमय राजा उग्रसेनके अपमानार्थ यह निंदित निदान भी बांध लिया था कि "मैं राजा उग्रसेनका पुत्र बन उन्हें दुःख दूं" जिससे कि आयुके अंतमें मरकर उनका जीव राजा उग्रसेनकी पटरानी पद्मावतीके गर्भमें आकर अवतीर्ण होगया

॥ ८४ ॥ जिससमय वसिष्ठका जीव गर्भमें था उससमय रानीको भयंकर दोहला हुआ था इसलिये मारे चिंताके उसका शरीर दिनोंदिन फीका और कृश होता जाता था एकदिन राजा उग्रसेनको उसकी दुःखमयी अवस्थापर विचार हो आया और एकांतमें लेजाकर वे इसप्रकार रानीको पूछनेलगे—

प्रिये! तुझे ऐसा कौनसा भयंकर दोहला हुआ है जो तेरा शरीर दिन पर दिन सूखता चला जाता है? पद्मावतीने कहा—"प्राणनाथ मेरे दुष्ट गर्भ रहा है इसलिये आप दोहलेकी कुछ भी बात न पूछें वह सर्वथा अकव्य और अविचारणीय है।" राजाने कहा—नहीं! तुम्हें यह वात जरूर कहनी पड़ेगी तुम इसे छिपा नहीं सकतीं। राजाका जब ऐसा प्रबल आग्रह देखा तो रानीको बड़ा दुःख हुआ वह दुःखसे गद्गद कंठहो, लज्जाको एक ओर रख कहने लगी—

"प्राणनाथ! मुझे यह अभिलाषा हुई है कि मैं आपका वक्षस्थल फाड़ रुधिर पीऊं।" रानीके ऐसे वचन सुन राजाके चित्तमें कुछ भय हुवा परंतु मंत्रियोंके साथ पूर्णतया सोच विचारकर उसने रानीकी अभिलाषा पूर्ण करदी। रानी पद्मावतीके गर्भके दिनोंके समाप्त होजानेपर पुत्र उत्पन्न हुआ जो होतेही कुटिल भौंगें और लाल मुखका धारक था। वह बालक गर्भमें आया था तभीसे महारौद्र था इसलिये रानी पद्मावतीको उससे बड़ा भय हुआ। उसने शीघ्र ही एक कांसेकी संदूक मंगवाई और उसमें उसे वंदकर किसीकी निगाह न पड़े इसरीतिसे धीरेसे यमुनाके प्रवाहमें वहादिया। वहती वहती संदूक कौशांवी नगरी पहुंची कलारिनी मंदोदरीने उसे पकडलिया उसमें बालकको निकालकर दयासे गद्गद हो पाला पोषा बढाया और उसका नाम कंस रक्खा। कुमार वसुदेव! अब आगे सब वृत्तांत तुम भी जानते हो इसलिये उसकी कहनेकी आवश्यकता नहीं। इस दुष्ट कंसने पिताके निग्रह करनेका निंदित निदान बांधा था इसलिये इसने अपने पिता उग्रसेनको बंधनमें डाला है तुम्हारा पुत्र बड़ा प्रतापी होगा वह कसको मारेगा और उसके पिता राजा उग्रसेनको भी बधनसे मुक्त करेगा ॥ ८५-९१ ॥ राजन्! कंसने अपने पिताको कैसे बंधनमें डाला यह वृत्तांत सविस्तर सुनादिया अब मै तुम्हारे पुत्रोंके पूर्वभवका वृत्तांत सुनाता हूं—

शंख चक्र गदा और असिका धारण करनेवाला, रानी देवकीका सातवां पुत्र कृष्ण, कंस और जरासंधको प्राणरहित करैगा और समस्त पृथ्वीका भोक्ता बनेगा ॥९२-९३॥ शेष छै पुत्र चरमशरीरी, और महामनोहर देहके धारक होंगे उनका अकालमें मरण न होगा इसलिये तुमको किसी भी प्रकारकी चिंता न करनी चाहिये ॥ ९४ ॥ अब मैं रोहिणीके पुत्र बलभद्रके साथ उन सब कुमारोंका पूर्वभव वर्णन करता हूं रानी देवकीके साथ तुम ध्यानपूर्वक सुनो—

इसी मथुरापुरीमें राजा शूरसेनके राज्यकालमें एक भानुदत्त नामका सेठ रहता था जो बारह करोड़ सुवर्ण मुद्राओंका अधिपति था। उसकी स्त्रीका नाम यमुना था और उससे सुभानु, भानुकीर्ति, भानुषेण, शूर, शूरदेव, शूरदत्त, और शूरसेन ये सात पुत्र उत्पन्न थे। ये सातो भाई परमसुंदर और एक दूसरेके अनुयायी भक्त थे। ॥ ९५-९८ ॥ इन सातो पुत्रोंको कालिंदी, तिलका, कांता, श्रीकांता, सुंदरी, द्युति, और चंद्रकांता ये सात कन्यायें क्रमसे विवाही गई थीं जो कि कुलीन घरानोंकी वालिकायें थीं ॥ ९९ ॥ कदाचित सेठ भानु और यमुनाको संसारसे उदासीनता होगई इसलिये मुनिराज अभयनंदीके समीप तो भानुने दिगंबर दीक्षा धारण करली और यमुना आर्यिका जिनदत्ताके पास आर्यिका होगई ॥ १०० ॥ सेठ भानुके मुनि होजाने पर समस्त द्रव्यके अधिकारी उसके पुत्र हुये और उन्होंने जूआ एवं वेश्याके फंदमें पड़कर पिताका समस्त धन स्वाहा कर दिया। जब इनके पास सर्वथा धनकी इतिश्री होगई तो इन्होंने चोरी करना शुरू किया। एक दिन ये सबके सब उज्जयिनी नगरीकी ओर चोरी करनेके लिये गये ॥१०१॥ उज्जयिनी नगरीके बाहिर एक महाकाल नामका मरघट था उसमें पहुंचकर समस्त भाईयोंने छोटे भाई शूरसेनसे कहा कि-भाई! तू यहीं रह। यदि हम मारदिये जांय तो तू भाग जाना और कुल संतानकी रक्षा करना यदि धन लायें तो बराबरका हिस्सा तुझे भी देंगे।" भाईयोंके ये वचन सुन शूरसेन वहीं रहनेके लिये सम्मत होगया और शेष छै भाई निश्शंक हो चोरीके लिये नगरीमें प्रवेश कर गये ॥१०२-१०३॥ उससमय उज्जयिनीका राजा वृषभध्वज था और उसकी स्त्रीका नाम कमला था। राजा वृषभध्वजके यहां एक दृढमुष्टि नामका महायोधा रहता था उसकी स्त्रीका नाम वप्रश्री और उससे उत्पन्न पुत्रका नाम वज्रमुष्टि था। युवा होजानेपर कुमार वज्रमुष्टिका रानी विमलासे उत्पन्न राजा विमलचंद्रकी पुत्री मंगीके साथ विवाह होगया। रमणी मंगी अपने पति वज्रमुष्टिकी बड़ी प्यारी थी वह सर्वदा लताके समान उसीके साथ रहा करती थी इसलिये न तो वह अपनी सासुकी सेवा ही करती थी और न उसकी आज्ञा ही पालती थी ॥ १०४-१०५ ॥ मंगीके इसप्रकारके व्यवहारसे-उसकी सासु वप्रश्री सदा उससे नाराज रहा करती और उसका अनिष्ट ही चीता करती थी सर्वदा उसका इसी ओर ध्यान बना रहता था कि किसीप्रकार मंगी और वज्रमुष्टिका आपसमें वियोग होजाय ॥ १०६ ॥ एकदिन कुमार वज्रमुष्टि तो राजाके साथ वसंतके उत्सवमें बड़े उत्साहसे वनमें क्रीड़ा करने चला गया और उसके पीछे वप्रश्रीने एक घड़ेमें काला सर्प रखवा फूलमालाके बहाने वहूको उसे अपने पास उठा लानेकेलिये कहा। सासुकी आज्ञासे ज्योंही मंगीने माला लेनेके लिये घड़ेमें हाथ डाला बस वहां क्या था चट भुजंगने भक खाया जिससे कि तत्काल वह विषम विषसे मूर्छित होगई

वहूकी यह दशा देख उस दुष्टा निर्दया सासुने जो कालके लिये भी महाभयानक था महाकाल मरघटमें उसे अपने नौकरोंसे फिकवा दिया ॥ १०७–१०९ ॥ कुमार वज्रमुष्टि जब रातको वनसे लोट कर घर आया तो अपनी प्राणप्यारी मंगीका यह वृत्तांत सुन उसे अपार दुःख हुआ और मारे प्रेमके वह तत्काल मंगीको तलाश करनेके लिये महाकाल मरघटकी ओर चलपड़ा। उससमय उस श्मशान भूमिमें एक परम धर्मात्मा वर-धर्मनामके मुनिराज प्रतिमा योगसे विराजमान थे वहां पहुंच वज्रमुष्टिने उन्हें चमचमाते हुये खड्गके प्रकाशसे देख लिया वह तत्काल उनके पास गया और तीन प्रदक्षिणा दे प्रणाम पूर्वक यह प्रार्थना कर "प्रभो! यदि मुझे मेरी प्यारी मंगी मिल जायगी तो मैं हजार कमलोंसे आपकी पूजन करूंगा" इधर उधर मंगीको खोजने लगा। भाग्यवश उसे मंगी मिलगई वह उससमय मूर्छित पड़ी थी वज्रमुष्टि ज्योंकी त्यों उसे मुनिराजके चरणोंके समीप ले आया और उनके चरणोंके प्रसादसे वह देखते देखते ही निर्विष हो सचेत होगई ॥ ११०–११३ ॥ मंगीको निर्विष देख वज्रमुष्टिको बड़ा आनंद हुआ वह मंगीसे यह कहकर कि 'जबतक मैं वापिस न आऊं तू यहीं मुनिराजके चरणोंमें बैठना' कमल लेनेके लिये सुदर्शन सरोवरकी ओर चला गया ॥ ११४ ॥ श्रेष्ठिपुत्र शूरसेन छिपकर यह सारा हाल देख रहा था और वज्रमुष्टिके व्यवहारसे उसे यह पूर्णतया अनुभव होगया था कि वज्रमुष्टिका मंगीपर असाधारण स्नेह है इसलिये वज्रमुष्टिके चले जानेपर मंगीके मनकी परीक्षा करनेकेलिये वह उससे मिला एवं अपने अभिप्रायको प्रकट न करता हुआ मंद मंद मीठी मीठी बात चीत करने लगा। श्रेष्ठिपुत्र होनेसे शूर-सेन परमरूपवान था इसलिये उसे देखतें ही मंगीका मन चलित होगया वह कामसे व्याकुल होगई ॥ ११५–११६ ॥ इसलिये वह धीरेसे शूरसेनके पास खसक आई और उससे नम्र हो इसप्रकार कहने लगी "देव! कृपाकर आप मुझे ग्रहण करें।" उत्तरमें शूरसेनने कहा—

"सुंदरी! तुम्हारा पति महासुभट है मुझे उसका बड़ा भय है। उसके जीते जी मैं तुम्हें ग्रहण नहीं कर सकता" यह सुन कामव्याकुला मंगी बोली—

"नाथ! मेरे पतिका आप तनिक भी भय न करें मैं इस खड्गसे उसके टुकड़े टुकडे कर डालूंगी आप मुझे निर्भयतासे ग्रहण करें" शूरसेनने कहा यदि तुम ऐसा करोगी तो मुझे तुम्हारी बात स्वीकार है।" ये दोनों आपसमें इसप्रकार बातचीत कर ही रहे थे कि इतनेमें ही वज्रमुष्टि भी कमल लेकर आगया शूरसेन तो उनदोनोंका कृत्य देखनेकेलिये एक ओर छिपगया और वज्रमुष्टि कमलोंसे मुनिराजकी पूजा करने लगा पूजाके अंतमें ज्योंही वज्रमुष्टि नमस्कारकेलिये मस्तक नमानेलगा त्योंही मंगीने उसके मस्तकपर वार करनेकेलिये खड्ग उठाया यहदेख शूरसेनसे न रहागया उसने

शीघ्र ही उसका हाथ पकड़लिया और उसके इस दुष्कृत्यसे विरक्त हो पुनः ज्योंका त्यों छिपगया। मंगी शूरसेनके हाथके स्पर्शसे एकदम चकित होगई वह अपने दोषके छिपानेकेलिये ये तत्काल जमीनपर गिरपडी उसकी सहसा यह दशा देख वज्रमुष्टिको बड़ा दुःख हुआ और "प्रिये! तुझै किसने डरादिया? यहां तो तुझै डरानेवाला कोई नजर नहिं पड़ता इत्यादि वचनोंसे उसै भलेप्रकार समझानेलगा एवं उसके सचेत होजानेपर मुनिराजको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर वह अपने घर चला आया ॥ ११७–१२३ ॥ जो छै भाई चोर बनकर उज्जयिनी चोरी करने गये थे वे वहांसे बहुत सा धन लाये और धनके बराबर सात हिस्साकर सातवां हिस्सा शूरसेनको देनेलगे। कुमार शूरसेन पहिलेसे ही संसारसे विरक्त होचुका था उसने धनलेनेकेलिये सर्वथा मनाई करदी और कारण पूछनेपर हाय! ये संसारी जीव स्त्रियोंके वशहो अनर्थसे अनर्थ काम कर पाड़ते हैं इत्यादि वैराग्यपूर्वक मंगी और वज्रमुष्टिका जो दृश्य देखा था वह सब कह सुनाया। शूरसेनके मुखसे वैसी दुर्घटना सुन शेष भाइयोंको भी वैराग्य होगया छोटे भाइयोंने तो तत्काल मुनिराज वरधर्मके चरणोंमें दीक्षा धारण करली और बड़ाभाई सुभानु धन लेकर स्त्रियोंके पास मथुरा चला गया ॥ १२४–१२६ ॥ स्त्रियोंने जब अपने देवर जेठोंका वैराग्य और मंगी एवं वज्रमुष्टिका समाचार सुना तो उन्हैं भी वैराग्य होगया उन्होंने भी अपनी सासु आर्यिका जिनदत्ताके पास आर्यिकाके व्रत लेलिये। इसके बाद वडा भाई सुभानु भी उन्हीं वरधर्म मुनिराजके पास मुनि होगया ॥१२७॥ बहुतदिनके बाद अपने गुरु वरधर्मके साथ ये सातो मुनिराज जहां तहां विहार करते करते पुनः एकदिन उज्जयिनी नगरी आये मुनियोंका आगमन सुन सुभट वज्रमुष्टि भी इनकी वंदनार्थ आया और उन्हैं भक्तिपूर्वक नमस्कार कर आचार्य वरधर्मसे इन सातो मुनिराजोंकी दीक्षाका कारण पूछनेलगा—उत्तरमें आचार्य महाराजने मुनियोंकी दीक्षाका कारण मंगी और वज्रमुष्टिका सारा वृत्तांत कह सुनाया जिसे सुन वज्रमुष्टिको बडा खेद हुआ और वह मुनिराज वरधर्मसे ही तत्काल दिगंवर दीक्षा धारणकर मुनि होगया ॥ १२८ ॥ विहार करतीं करतीं आर्यिका जिनदत्ता के साथ वे सातो आर्यिका भी किसीदिन उज्जयिनी आई मंगीनें उनसे अपने दुष्कर्मका वृत्तांत सुना इसलिये वह भी आर्यिका जिनदत्ताके समीप दीक्षाले आर्यिका होगई और पापोंके शमनार्थ व्रतोंको दृढ़तासे पालने लगी ॥ १२९ ॥ सातों मुनिराजोंने घोर तप तपा था इसलिये वे अंतमें भलेप्रकार आराधनाओंका आराधन कर सौधर्म स्वर्गमें विपुल ऋद्धिके धारक त्रायस्त्रिंशत् जातिके देव हुये ॥ १३० ॥

धातकी खंडकी पूर्वदिशाके भरतक्षेत्रके रूपाचलकी दक्षिण श्रेणीमें एक नित्यालोक नामका नगर है किसी समय उसका स्वामी राजा चित्रचूल था और उसकी

स्त्री मनोहरी थी। आयुके अंतमें बड़े भाई सुभानुका जीव स्वर्गसे चयकर उन दोनोंके सबसे बड़ा चित्रांगद नामका पुत्र हुआ और शेष छै भाई उन्हीं राजा रानीके यहां युगलियां रूपमें उत्पन्न हुये जिनके कि गरुड़कांत, गरुड़सेन, गरुड़ध्वज, गरुड़वाहन, मणिचूल और हेमचूल ये नाम रक्खे गये। ये समस्त पुत्र आकाशमें आनंदसे विचरण करते थे परम सुंदर और विद्वान थे एवं समस्त मनुष्योंमें उत्तम चूड़ामणिके समान गिने थे॥ १३१-१३४॥ उसीसमय मेघपुरमें एक धनंजय नामका राजा राज्य करता था उसकी स्त्रीका नाम सर्वश्री और उससे उत्पन्न कन्याका नाम धनश्री था॥ १३५॥ कन्या धनश्रीका किसी समय स्वयंवर किया गया स्वयंवरमें बहुतसे विद्याधर पुत्र आये किंतु कन्याने किसीको पसंद न कर अपने मामाके लड़के हरिवाहनको पसंद किया और उसके गलेमें वरमाला डाली॥ १३६॥ कन्याका यह वर्ताव देख अन्य विद्याधर कुमार बहुतही रुष्ट होगये और उन्होंने यह कहकर कि—"यदि राजा धनंजयको अपने नातेदार हरिवाहनको ही कन्या देनी थी तो इसने मायाचारी कर हमें क्यों बुलाया वृथा हमारा क्यों अपमान किया" युद्ध भी ठान दिया। युद्धमें कन्याके लिये अनेक क्षत्रिय राजा मरने लगे। राजा चित्रचूलके पुत्र चित्रांगद आदि भी स्वयंवरमें आये थे वे इस महापापको देख महाविषम इंद्रियोंके विषयोंमें विरक्त होगये और भूतानंद जिनराजके समीप जाकर दिगंबर दीक्षा धारण कर मुनि होगये॥ १३७-१३९॥ मुनिलिंग धारणकर सातोंने घोर तप करना प्रारंभ किया जिससे कि उसके प्रभावसे मरकर चौथे माहेंद्र स्वर्गमें सात सागर प्रमाण आयुके भोक्ता सामानिक जातिके देव जा उत्पन्न हुए और परमोत्तम सुख भोगने लगे॥ १४०॥ आयुके अंतमें बड़े भाई सुभानुका जीव स्वर्गसे चया और भरतक्षेत्रके हस्तिनागपुरमें सेठानी बंधुमतीसे उत्पन्न किसी सेठका पुत्र हुआ और शेष छै भाई उसी नगरके स्वामी राजा गंगदेवके रानी नंदयशासे उत्पन्न पुत्र हुये। ये छैओ कुमार यहां भी युगल रूपमें पैदा हुये और इनके गंग, गंगदत्त, गंगरक्षक, नंद, सुनंद, और नंदिषेण ये नाम रक्खे गये॥ १४१-१४३॥ रानी नंदयशाके सातवां पुत्र जो गर्भमें आया उसके गर्भमें आते ही उसके माता पिताको बड़ा कष्ट हुआ इसलिये होते ही रानी नंदयशाने उसे फैंक दिया यह देख धाय-रेवतीने पाल पोषकर उसै बड़ा किया और उसका नाम निर्नामिक रक्खा। श्रेष्ठिपुत्र शंखका जीव बलभद्र और निर्नामिकका जीव नारायण होनेवाला था इसलिये इन दोनोंमें बड़ा स्नेह था एक दिन शंख निर्नामिकको अपने साथ ले किसी मनोहर बागमें गया। उससमय वहां बहुतसे पुरवासी लोग और राजपुत्र भी आये थे। राजा गंग-देवके पुत्र छैओ राजकुमार एक स्थानपर बैठे सानंद भोजन कर रहे थे कि—श्रेष्ठिपुत्र शंख उनके पास गया और इसप्रकार कहने लगा—

"राजपुत्रो! निर्नामिक भी तो तुम्हारा छोटा भाई है इसे बुलाकर तुम क्यों नहि भोजनमें शामिल करते?" यह सुन राजपुत्रोंने निर्नामिकको अपने पास बुलालिया और वह भी उनके साथ बैठकर आनंदसे भोजन करने लगा। इतनेमें राजमाता नंदयशाकी इसपर दृष्टि पडी और उसने तत्काल पास आ कुपित हो निर्नामिकमें बड़े जोरसे लात जमा दी ॥ १४४-१४७ ॥ यह देख श्रेष्ठिपुत्र शंखके हृदयपर बड़ा आघात पहुंचा। 'हाय! मेरे कारण निर्नामिकको यह अपार दुःख भोगना पड़ा' यह विचारकर वह वार वार अपनेको धिक्कारने लगा और निर्नामिकको साथ ले राजा आदिके साथ वनकी तरफ चलपड़ा ॥ १४८ ॥ वनमें पहुंचते ही उसे वहां अवधिज्ञानके धारक एक द्रुमषेण नामके ऋषिराज दीख पड़े। शंखने पास जा उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और निर्नामिकके पूर्वभव पूछनेकी लालसा प्रकटकी, मुनिराजभी इसप्रकार उसके पूर्वभवोंका वर्णन करने लगे—

इसी पृथ्वीपर एक गिरिनगर नामका नगर है किसीसमय उसका स्वामी राजा चित्ररथ था और उसकी रानी कनकमालिनी थी ॥ १४९-१५० ॥ निकृष्ट मनुष्योंकी संगतिके कारण राजा मांसखानेका बड़ा ही व्यसनी था उसके एक अमृत रसायन नामका रसोईया था उसे मांस पकाना बहुत अच्छा आता था इसलिये राजाने उसपर प्रसन्न हो पुरस्कार (इनाम) में दश ग्राम प्रदान करदिये ॥ १५१ ॥ एकदिन राजा चित्ररथकी मुनिराज सुधर्मसे भेट होगई। उनसे मांसका दोष सुन उसे वैराग्य होगया जिससे कि अपने मेघरथपुत्रका राज्याभिषेक कर आप तीनसौ राजाओंके साथ दिगंबर दीक्षासे दीक्षित हो मुनि होगया ॥ १५२ ॥ नवीन राजा मेघरथने भी श्रावकके व्रत धारण करलिये। पिताको मांसखानेकी आदत डालनेवाले रसोईया अमृतरसायनपर उसे बडा क्रोध आया उसने उसके आधीन सिर्फ एक गांव रख शेष नौऊ गांव छीनलिये ॥१५३॥ राजाद्वारा अपने ग्राम छिने देख रसोईया अमृत रसायनको भी बडा क्रोध आया वह दुष्ट यह विचार कि—मुनिराज सुधर्मने ही मांसका निषेधकर मेरा वड़ा अपकार किया है सहसा क्रुद्ध होगया उसने एकदिन विषस्वरूप कडवी तूमडीका मुनिराजको आहार दे उनके प्राण हरलिये ॥ १५४ ॥ मुनिराज परमध्यानी थे गिरनार पर्वतपर उनका शरीरांत हुआ और अपराजित विमानमें वत्तीस सागर प्रमाण आयुके भोक्ता अहमिंद्र जा उत्पन्न हुये ॥ १५५ ॥ दुष्ट रसोइया परिणामोंकी निकृष्टतासे मरकर तीसरे नरक गया और तीन सागरप्रमाण आयुको भोगता हुआ वहां भयंकर वेदना सहने लगा ॥ १५६ ॥ नरककी आयु समाप्तकर वहांसे निकला और वहुत कालतक तिर्यंचगतिरूपी महावनमें भ्रमण करने लगा ॥ १५७ ॥ मलयदेशमें एक पलाशग्राम नामका नगर है उसमें एक यक्षदत्त नामका कुटुंबी रहता

था और उसकी स्त्रीका नाम यक्षिला था रसोइयाका जीव जहां तहां भ्रमण करता हुआ इन दोनोंके पुत्र हुआ और उसका नाम यक्षलिक रक्खा गया इसका एक बडा भाई और था और उसका नाम यक्षस्थ था ॥१५८॥ एक दिन यक्षलिक गाडीमें वैठा जा रहा था सामने मार्गमें एक सार्पिणी पडी थी वडे भाईके वार वार रोकनेपर भी यक्षलिकने उसपर गाडी चलादी ॥ १५९ ॥ जिससे उस विचारी सर्पिणीका फणा कटगया मारे दुःखके वह छटपटाने लगी और अकामनिर्जराके योगसे उसने मनुष्य गतिका वंध बांध लिया॥१६०॥

प्रियशंख ! सर्पिणीका जीव तो श्वेतांबिकापुरीके स्वामी राजा वासवके महाराणी वसुंदरीसे उत्पन्न यह नंदयशा नामकी पुत्री हुई है और रसोईयाका जीव मुनिके मारने से घोर अपराधके कारण यह निर्नामिक पुत्र हुआ है सर्पिणीके भवमें इसने नंदयशाके जीवके साथ निर्दयी पनेका वर्ताव किया था इसलिये इसकी मा नंदयशाका भी इस-पर गहरा द्वेष है ॥१६१-१६२॥ मुनिराज द्रुमेषणके मुखसे यह वृत्तांत सुनकर राजा गंगदेव संसारसे भयभीत होगया उसने तत्काल अपने पुत्र देवनंदका राज्याभिषेक किया और दोसौ क्षत्रिय राजाओंके साथ मुनिदीक्षा धारण करली ॥ १६३ ॥ गंग आदि छै राजकुमार निर्नामिक और श्रेष्ठिपुत्र शंखको भी संसारसे उदासीनता होगई वे भी दिगंवर दीक्षासे दीक्षित होगये और संसाररूपी चक्रके छेदनेकेलिये घोर निर्मल तप तपनेलगे ॥ १६४ ॥ रानी नंदयशाको भी संसारसे उदासीनता होगई । अपनी रेवती धाय और सेठानीके साथ उसने भी आर्यिका सुव्रताके समीप आर्यिकाके व्रत धारण करलिये और भलेप्रकार व्रतोंकी आराधना करनेलगी ॥ १६५ ॥ कुमार निर्नामिकने सिंहनिष्क्रीडित नामक घोर तप तपा एवं अन्य जन्ममें नारायण होनेका निदान बांधा ॥ १६६ ॥ और रानी नंदयशाने उन्हीं पुत्रोंकी माता होनेका तथा रेवती धायने उनकी धाय होनेका निदान बांधा । सो ठीकही है-पुत्रोंका स्नेह छो-डना वडाही कठिन है । इसकेवाद वे सवलोग समीचीन तपके प्रभावसे महाशुक्र स्वर्गमें सोलह सागर आयुके भोक्ता देव हुये । वहांसे आयुके अंतमें चयकर शंखका जीव रोहिणीसे उत्पन्न बलभद्र हुआ है। रानी नंदयशा श्रेष्ठ इस दशार्ण नगरमें देवसे-नकी धन्या नामक स्त्रीसे यह देवकी उत्पन्न हुई है और धाय भद्रिलसानगरमें सुदृष्टि नामक सेठकी अलका नामकी स्त्री हुई है ॥ १६७ ॥ गंग आदि छै पुत्रोंके जीव इस देवकीके युगलिया रूपसें परम प्रतापी पुत्र होंगे धाय के जीव अलकाके भी युगलियां पुत्र होंगे किंतु वे होतेही मरजावेंगे उन मरेहुये युगलिया बालकोंको इंद्रकी आज्ञासे देव रानी देवकीके यहां लावेगा और इसके युगलियोंको वहां पहुंचावेगा इसतरह देवकीके पुत्र धायद्वारा पाले जाकर युवा होंगे । देवकीके पुत्रोंके नृपदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल, शत्रुघ्न और जितशत्रु ६ ये नाम

होंगे ये समस्त कुमार उत्तम समान रूपके धारक होंगे और हरिवंशके चंद्रमा तीन जगतके गुरु भगवान नेमिनाथके शिष्यबन मोक्षलक्ष्मीके स्वामी बनेंगे ॥१६८–१७२॥ सातवींवार कुमार निर्नामिकका जीव रानी देवकीके गर्भमें आवेगा और वह इस भरत-क्षेत्रका नौवां नारायण होगा ॥ १७३ ॥

जिनमतरूपी लक्ष्मीके प्रशंसा करनेवाले, भक्त, कुमार वसुदेवने कंसके पूर्वभव और पुण्यके उदयसे उसके ऐश्वर्यको सुना, अपने आठ पुत्र और देवकीके पूर्वभवका वृत्तांत जाना इसलिये वे परम आनंदित हुए यद्यपि कंसकी क्रूरतासे उनके हृदयमें भयंकर शत्रुता होनी चाहिये थी तथापि होनहार वैसीही होनेवाली जान कुमारने सर्वथा उसकी उपेक्षा करदी और सुखसे मथुरामें ही रहने लगे ॥ १७४ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेन द्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें कंस बलदेव वासुदेव देवकी और उसके पुत्रोंका पूर्वभव वर्णन करनेवाला तेतीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३३ ॥

चौतीसवां सर्ग।

अपने वंशमें भगवान नेमिनाथकी उत्पत्ति सुन कुमार वसुदेवको बड़ा आनंद हुआ और उन्होंने शीघ्र ही मुनिराज अतिमुक्तकको नमस्कार कर इसप्रकार कहा—भगवन् ! हरिवंशके तिलकस्वरूप होनेवाले भगवान नेमिनाथका मैं चरित्र सुनना चाहता हूं। उत्तरमें मुनिराज इसप्रकार वर्णन करने लगे—

इसी जंबूद्वीपके सुपद्मानामक विदेहक्षेत्रकी शीतोदा नदीके दक्षिण तटपर एक सिंहपुर नामका नगर है किसीसमय उसका स्वामी राजा अर्हद्दास था जो सबकी दृष्टि में परम आदरणीय था। अर्हद्दासकी रानीका नाम जिनदत्ता था और यह भगवान जिनेंद्रकी पूजाकी बड़ी भक्ता थी। कदाचित् वह आनंदसे अपनी सेजपर सो रही थी अचानक ही जब रात्रिका कुछ भाग शेष रह गया तो उसे लक्ष्मी १ हस्ती २ सिंह ३ सूर्य ४ और चंद्रमा ५ ये पांच स्वप्न दीख पड़े इसकेबाद किसी शुभ नक्षत्रमें उसके अपराजित नामका एक पुत्र हुआ जो कि शत्रुओंको सर्वथा अजेय और समस्त पृथ्वीमें प्रसिद्ध था ॥ १–५ ॥ जब कुमार सर्वथा विवाहके योग्य युवा होगया तो चक्रवर्तीकी पुत्री कन्या प्रीतिमतीके साथ उसका विवाह होगया जो पवित्र गुणोंसे मंडित थी और परम युवती थी। एवं अन्य भी दो हजार कन्याओंके साथ विवाह हुआ जो एक दूसरीसे रूपमें चढ़ी बढ़ी थीं उत्तम और धन्य थीं एवं गुणोंकी भंडार थीं॥ ६–७ ॥ एक दिन राजा अर्हद्दास मनोहर नामक वनमें देवोंसे वंदनीय भगवान विमलवाहनकी वंदनाकेलिये अपने पुत्रसहित गया। वहां भगवानके उपदेशसे उसे संसारसे उदासीनता होगई। वह

शीघ्र ही पांचसौ राजाओंके साथ भगवान विमलवाहनके चरणोंमें दिगंबर दीक्षासे दीक्षित होगया और परम सम्यग्दृष्टि वह युवराज राजा बन प्रजाका पालन करने लगा ॥८-९॥

एक दिन राजा अपराजितने यह सुना कि गंधमादन पर्वतसे भगवान विमलवाहन और मुनिराज अर्हद्दास मोक्ष चले गये हैं उसने उनका निर्वाण उत्सव मनाया एवं जिनेंद्र और जिनचैत्यालयोंकी पूजाकर मंदिरमें बैठकर अपनी स्त्रीको धर्मोपदेश देने लगा। उसीसमय चारण ऋद्धिके धारक दो मुनिराज वहां आये। अपराजितने भक्तिपूर्वक उन्हैं नमस्कार किया एवं जब वे दोनों मुनिराज सानंद पृथ्वीपर विराजमान होगये तो इसप्रकार विनयसे पूछने लगा—

प्रभो! वैसे तो जैन मुनियोंको देखकर स्वभावसे ही मेरा हृदय मारे आनंदके उमड़ आता है परंतु न मालूम आपको देखकर मुझे विशेष क्यों आज अपूर्व और अकृत्रिम आनंद हो रहा है? उत्तरमें बड़े मुनिराजने कहा—"राजन्! हममें जो आपका विशेष स्नेह है इसमें पूर्वभवका संबंध कारण है उसे हम सुनाते हैं आप ध्यानपूर्वक सुनैं"

पश्चिम पुष्करार्द्धके पश्चिम विदेह क्षेत्रमें रूपाचल (विजयार्ध) की उत्तरश्रेणीमें एक गण्यपुर नामका पुर है ॥ १०-१५ ॥ इसका स्वामी सूर्यके समान देदीप्यमान राजा सूर्याभ था उसकी स्त्री धारिणी थी जो कि दूसरी पृथ्वीके समान जान पड़ती थी और आर्य एवं परमसुंदरी थी ॥ १६ ॥ इन दोनोंके चिंतागति १ मनोगति २ और चपलगति ३ ये तीन पुत्र थे जो महाप्रतापी महास्नेही और परम पराक्रमी थे ॥१७॥ उसी समय अरिंजयपुरमें एक अरिंजय नामका राजा था उसकी स्त्रीका नाम अजितसेना था और उससे प्रीतिमती नामकी पुत्री उत्पन्न थी जोकि अनेक विद्याओंका भंडार और स्त्रियोंकी निंदा करनेवाली थी—विवाह करना नहिं चाहती थी। एकदिन अवसर पाकर वह अपने पिताके पास गई और इष्ट वर मांगनेके लिये प्रार्थना करने लगी। पिताका उस पर गाढ स्नेह था वह उसकी वृत्ति उदासीन समझ उसके मनका भाव समझ गया। इसलिये वह इसप्रकार कहने लगा—

"प्रियपुत्रि! मैं तुझे तपकेलिये आज्ञा नहिं दे सकता इसके सिवाय और जो इष्ट वर चाहती हो वह मांग। मैं देनेके लिये तयार हूं।" पिताके ऐसे वचन सुन प्रीतिमतीने कहा—

पूज्यपिता! मेरी इच्छा तप करने की थी यदि आप मुझे तपकी आज्ञा देना नहिं चाहते तो आप यह वर दें—जो मुझे दौड़में जीतले वही मेरा पति बने। अरिंजयने कन्याकी बात स्वीकार करली और उसके स्वयंवर करनेकी इच्छासे गतियुद्ध जाननेवाले समस्त विद्याधरोंको निमंत्रण दे एकत्र किया ॥१८-२२॥ जब समस्त विद्याधर स्वयंवरमें आ गये तो उन्हें लक्ष्यकर राजा अरिंजयने कहा—

जो मेरी कन्याको दौड़में जीतेगा उसीको यह प्रदान की जायगी। कन्या और

विद्याधर कुमार एक साथ जांय दोनोंमें सबसे पहिले जो मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा और वहांके चैत्यालयोंकी वंदना कर यहां आजायगा उसीकी जीत समझी जायगी ॥ २३-२४ ॥ शीघ्रगामी जो महाभाग गतियुद्धमें इस कन्याको जीतेगा वही वीर इसका पति होगा और वही मेरे मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला बनेगा" ॥ २५ ॥ समस्त विद्याधरोंको इसबातका पूर्ण विश्वास था कि यह कन्या परम विद्यावती है इसलिये राजा अरिंजयके वचन सुन किसीने कुछ न कहा सब चुपकी साधकर बैठे रहे परंतु रानी धारिणीके चिंतागति आदि पुत्रोंने अपनेको परम विद्यावान समझ उसके साथ गतियुद्ध करना स्वीकार करलिया ॥ २६ ॥ जिससमय मनको एकाग्र कर तीनों राजकुमार और कन्या सज धजकर तयार होगये तो मध्यस्थ लोगोंने हाथका इशारा दिया और वे तत्काल मेरुपर्वतकी ओर धर दौड़े ॥ २७ ॥ इस दौड़में 'आगे मैं जाऊँ आगे मैं जाऊं' ऐसी उत्कट आशासे व्याप्त अपने वेगसे पवनके वेगको भी जीतनेवाले ये चारो महानुभाव आधी दूरतक तो साथ २ रहे परंतु उससे आगे कन्याने अपने प्रवलवेगसे इन्हैं पीछे छोड़दिया। वह तत्काल मेरुपर्वतपर पहुंच गई वहां भद्रशालवनमें जिनप्रतिमाओंका पूजन कर सबसे पहिले लौट आई और पिताके पास आकर नमस्कार किया एवं पिताने भी कन्याके विजयसे संतुष्ट हो शुभाशीर्वाद दिया ॥२८-३०॥ जब कन्याने युद्धमें विजय पालिया तो पिताने उसै तपके लिये आज्ञा देदी कन्या भी समस्त सांसारिक अभिलाषाओंका परित्याग कर आर्यिका निर्वृत्तिके पास जाकर आर्यिका होगई और भलेप्रकार व्रत पालने लगी ॥ ३१ ॥ गतियुद्धमें कन्यासे पराजित होजानेसे चिंतागति आदि भाइयोंको भी वैराग्य होगया वे भी मुनिराज दमवरके पास जा दिगंबर दीक्षाले दीक्षित होगये ॥ ३२ ॥ और आयुके अंतमें मरकर तीनों भाई चौथे स्वर्गमें सात सागरकी आयुके भोक्ता सामानिक जातिके देव जा उत्पन्न हुये ॥ ३३ ॥

पुष्कलावती देशकी उत्तरदिशामें एक गगन वल्लभ नामका नगर है उसका स्वामी राजा गगनचंद्र है और उसकी स्त्रीका नाम गगनसुंदरी है छोटे भाई मनोगति और चपलगतिके जीव रानी गगनसुंदरीके गर्भसे हम अमितवेग और अमिततेज नामके पुत्र हुये हैं हमैं एक दिन संसारसे वैराग्य होगया और पुंडरीकिणी नगरीमें स्वयंप्रभ जिनेंद्रके पास जाकर हमने दिगंबर दीक्षा धारण करली। उनसे हमने अपना पूर्वभव सुना था आप हमारे पूर्वभवके चिंतागतिके जीव बड़े भाई हैं माहेंद्रस्वर्गसे चयकर यहां आप अपराजित नामके राजा हुये हैं इसलिये हम आपको देखने यहां आये हैं ॥३४-३७ ॥ इस भवसे पांचवें भवमें आप हरिवंशमें उत्पन्न हो जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें अरिष्ट नेमिनाथ नामके धारक तीर्थंकर होंगे अब आपका एक मासमात्र आयु बाकी रहगया है इसलिये आप अपने आत्मकल्याणका कुछ उपाय अवश्य करें। चारण ऋद्धिधारक

मुनिराज राजाको इसप्रकार संबोधनकर अपने स्थान चले गये। मुनिराजके परमपावन वचन सुन राजा अपराजितको बड़ा आनंद हुआ और ऐसा विचारकर कि-हाय मेरा तपका समय व्यर्थ चला गया मैंने कुछ न करपाया गहरी चिंतामें डूब गया॥ ३८-४०॥ उसने आठ दिनतक पूर्णतया भगवानकी पूजाकी युवराज प्रीतिंकरका राज्याभिषेक कर शरीरसे सर्वथा ममता छोड़ दी और वावीस दिनतक प्रायोपगमन संन्यास धारणकर आराधना आराधी जिससे कि आयुके अंतमें मरकर वह वावीस सागरकी आयुका भोक्ता अच्युत स्वर्गमें जाकर इंद्र उत्पन्न हुआ॥ ४१-४२॥ वहांसे चयकर नागपुरके स्वामी जिनेंद्रमतके भक्त राजा श्रीचंद्रके रानी श्रीमतीसे सुप्रतिष्ठ नामका पुत्र हुआ। ॥ ४३॥ कदाचित् राजा श्रीचंद्रको संसारसे उदासीनता होगई वे राज्यभार युवराज सुप्रतिष्ठको सोंप मुनिराज सुमंदिरके चरणोंमें दिगंबर दीक्षासे दीक्षित हो मोक्ष चलेगये ॥ ४४॥ एकदिन एक मासके उपवासी मुनिराज यशोधर नगरमें आहारार्थ आये श्रीचंद्रके पुत्र राजा सुप्रतिष्ठने उन्हैं आहार दान दिया और उससमय मुनिराजके तपके प्रभावसे देवोंने रत्न आदिकी वर्षाकर पंचाश्चर्य किये॥ ४५॥

कदाचित् राजा सुप्रतिष्ठ अपनी आठसौ प्राणवल्लभाओंसे वेष्टित सानंद बैठे थे अचानक ही उन्हैं आकाशसे गिरती हुई विजली दीखपड़ी उसे देख समस्तलक्ष्मी विजलीके समान चंचल उन्हें जान पड़ने लगी। वे रानी सुनंदाके पुत्र सुदृष्टिको राज्य दे आप मुनिराज सुमंदिर गुरुके पास दिगंबर दीक्षासे दीक्षित होगये॥ ४६-४७॥ राजा सुप्रतिष्ठके साथ चार हजार राजा जो सूर्यके समान प्रतापी थे वे भी मुनि हुये॥ ४८॥ मुनिराज सुप्रतिष्ठने ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, और वीर्यकी वढ़वारीके साथ ग्यारह अंग चौदह पूर्वका निरालस हो अभ्यास किया। एवं सर्वतोभद्र तपको आदि लेकर सिंहनिष्क्रीड़ित पर्यंत तपोंसे भलेप्रकार अपने शरीरको भूषित किया॥ ४९-५०॥ प्रिय वसुदेव! उपवास महाविधियोंका सुनना भी समस्त पापोंका नाश करनेवाला है इसलिये मैं अब तुम्हैं उनका भी स्वरूप कहता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो—

सर्वतोभद्र—चौकोण एक पांच भंगका प्रस्तार वनावे और एकसे पांच तक अंक लेकर उसमें इस रीतिसे भरे कि सबओरसे गिननेपर पंद्रह पंद्रह उपवासोंकी संख्या निकल आवे फिर पंद्रहका पांचसे गुणा करदे वा पांचो भंगोंके उपवासोंका आपसमें जोड़ देले तो जितनी संख्यावाले उपवास सिद्ध हों उतने तो सर्वतोभद्र उपवासविधिमें उपवास समझने चाहिये और हर एक भंगमें उपवासोंके वाद एक एक पारणा वतलाई गई है सो प्रतिभंगमें पांच २ पारणा समझनी चाहिये। इसप्रकार इस सर्वतोभद्रमें पांचो भंगोंके मिलकर उपवास पचहत्तर और पारणा पचीस होती हैं इस सर्वतोभद्रके करनेकी विधि यह है कि एक उपवास एक पारणा दो उपवास एक पारणा तीन उप-

सर्वतोभद्रका यंत्र।

पा०	१	१	१	१	१
उ०	१	२	३	४	५
पा०	१	१	१	१	१
उ०	४	५	१	२	३
पा०	१	१	१	१	१
उ०	२	३	४	५	१
पा०	१	१	१	१	१
उ०	५	१	२	३	४
पा०	१	१	१	१	१
उ०	३	४	५	१	२

वास एक पारणा चार उपवास एक पारणा पांच उपवास एक पारणा करे इसीप्रकार आगेके भंगोंमें भी समझ लेना चाहिये। यह सर्वतोभद्र सौ दिनमें समाप्त होता है और इसका फल संसारके समस्त कल्याणोंकी प्राप्ति एवं मोक्षप्राप्ति है ॥ ५१–५५ ॥

वसंतभद्र–एक सीधा प्रस्तार बनावे और उसमें पांचसे लेकर नौ तक अक्षर भरे। उन अक्षरोंका आपसमें जोड़ लगाने पर जितने उपवासोंकी संख्या आवे उतने तो इस वसंतभद्रमें उपवास समझने चाहिये और जितने स्थान हों उतनी पारणा समझनी चाहिये इसप्रकार इस वसंतभद्रमें पैंतीस उपवास और पांच पारणा करनी पड़ती हैं इसकी विधि पूर्वोक्त प्रकारसे पांच उपवास एक पारणा छै उपवास एक पारणा सात उपवास एक पारणा इत्यादि क्रमसे समझनी चाहिये इसतरह यह वसंतभद्र चालीस दिनमें समाप्त होता है ॥ ५६ ॥

वसंतभद्र यंत्र।

१	१	१	१	१
५	६	७	८	९

महासर्वतोभद्र–एक चौकोण सात भंगका प्रस्तार बनावे और उसमें एकसे लेकर सातपर्यंत इस रीतिसे अक्षर भरे कि चारो ओरसे गिननेपर अट्ठाईस २ उपवासोंकी संख्या सिद्ध हो फिर अट्ठाईसका सातसे गुणा करे वा सातो भंगोंकी संख्याको एक साथ जोड़दे तो जितनी संख्या सिद्ध हो उतने तो इस महासर्वतोभद्रमें उपवास और जितने भंगोंके स्थान हों उतनी पारणा समझनी चाहिये अर्थात् हरएक भंगमें सात २ पारणा होनेसे सातो भंगोंके पारणा जोड़नेपर उनचास पारणा और सातो भंगों के अट्ठाईस २ उपवास मिलकर एकसौ छ्यानवे उपवास होते हैं। इस सर्वतोभद्रके करनेकी विधि एक उपवास एक पारणा दो उपवास एक पारणा तीन उपवास एक पारणा चार उपवास एक पारणा पांच उपवास एक पारणा छै उपवास एक पारणा सात उपवास एक पारणा है इसीप्रकार आगेके शेष छै भंगोंमें भी यंत्रमें लिखे अनुसार समझ लेना चाहिये। यह महासर्वतोभद्र दोसौ पैंतालिस दिनमें समाप्त होता है और इसका फल सर्वतः कल्याण करना है ॥ ५७–५८ ॥

महासर्वतोभद्र यंत्र।

१	१	१	१	१	१	१
१	२	३	४	५	६	७
१	१	१	१	१	१	१
३	४	५	६	७	१	२
१	१	१	१	१	१	१
५	६	७	१	२	३	४
१	१	१	१	१	१	१
७	१	२	३	४	५	६
१	१	१	१	१	१	१
२	३	४	५	६	७	१
१	१	१	१	१	१	१
४	५	६	७	१	२	३
१	१	१	१	१	१	१
६	७	१	२	३	४	५

त्रिलोकसारविधि—मनुष्यके आकारका एक प्रस्तार बनाना चाहिये उसमें नीचेसे पांच से लेकर एक पर्यंत, दोसे लेकर चार पर्यंत तीनसे लेकर एक पर्यंत विंदु रखनी चाहिये जितनी वे विंदु हों उतनी तो इस त्रिलोकसारमें उपवास संख्या और जितने स्थान हों उतनी पारणा समझनी चाहिये इसप्रकार इस त्रिलोकसार विधिमें तीस उपवास और ग्यारह पारणा हैं इसके आचरण करने की विधि-पांच उपवास एक पारणा चार उपवास एक पारणा तीन उपवास एक पारणा दो उपवास एक पारणा एक उपवास एक पारणा आदि रीतिसे समझ लेना चाहिये जो मनुष्य इस त्रिलोकसार विधिका आराधन करता है उसै कोष्ठ वीज आदि ऋद्धियोंकी प्राप्ति होती है अंतमें वह तीन लोकमें सारभूत तीन लोकके शिखरपर विराजमान हो मोक्षसुखका लाभ करता है तथा यह व्रत इकतालीस दिनमें समाप्त होता है ॥ ५९–६१ ॥

त्रिलोकसार यंत्र।

```
     o
    o o
 o o o o
o o o o o
 o o o o
    o o
     o
    o o
  o o o
 o o o o
o o o o o
```

वज्रमध्य उपवासविधि—आदि और अंतमें पांच पांच विंदु हों और घटती घटती मध्यमें एक रहजाय ऐसा वज्रके आकारका प्रस्तार बनावे इस प्रस्तारमें जितनी विंदु- हों उतने तो इस वज्रमध्य उपवासविधिमें उपवास जानने चा- हिये और जितने स्थान हों उतनीं पारणा समझनी चाहिये इस- प्रकार इस उपवास विधिमें उनतीस उपवास और नौ पारणा हैं इसके करनेकी विधि पांच उपवास एक पारणा चार उपवास एक पारणा तीन उपवास एक पारणा दो उपवास एक पारणा एक उपवास एक पारणा है इसीप्रकार आगे भी समझलेना चाहिये इसतरह यह व्रत अड़तीस दिनमें समाप्त होता है इसव्रतके आचरण करनेवाले मनुष्योंको इंद्र चक्रवर्ती और गणधर देवोंका पद प्राप्त होता है मनःपर्ययज्ञान तथा अवधिज्ञानकी प्राप्ति होती है प्रज्ञा और श्रमण नामकी ऋद्धियां मिलती हैं और अंतमें मोक्ष सुख भी प्राप्त होता है ॥६२–६३॥

वज्रमध्यविधिका यंत्र।

```
o o o o o
 o o o o
  o o o
   o o
    o
   o o
  o o o
 o o o o
o o o o o
```

मृदंगमध्य उपवास विधि—दो से लेकर पांच तक और चारसे लेकर दो तक विंदु- देकर एक मृदंगके आकारका प्रस्तार बनाना चाहिये जितनी उसमें विंदु हों उतने तो इस मृदंगमध्यविधिमें उपवास और जितने स्थान हों उतनी पारणा समझनी चाहिये। इसप्रकार इस मृदंगमध्यविधिमें तेवीस उपवास और सात पारणा हैं इसकी विधि दो उपवास एक पारणा तीन उपवास एक पारणा चार उपवास एक पारणा पांच उपवास एक पारणा इत्यादि रीतिसे समझ लेना चाहिये। तथा यह व्रत तीस दिनमें समाप्त होता है जो मनुष्य इस मृदंगमध्यविधिका आराधन करता है

मृदंगमध्यविधि यंत्र।

```
   o o
  o o o
 o o o o
o o o o o
 o o o o
  o o o
   o o
```

उसे क्षीरश्रावित्व अक्षीणमहानस आदि ऋद्धियां प्राप्त होती हैं और अवधिज्ञानके साथ अंतमें मोक्षसुख भी मिलता है ॥ ६४-६५ ॥

मुरजमध्यतपविधि-पांच विंदुसे लेकर दो तक और दोसे पांचतक विंदुका एक मुरजके आकारका प्रस्तार बनावे जितनी इस प्रस्तारमें विंदु हों उतने तो मुरजमध्यविधि

मुरजमध्यविधि यंत्र।

ο ο ο ο ο
ο ο ο ο
ο ο ο
ο ο
ο ο
ο ο ο
ο ο ο ο
ο ο ο ο ο

में उपवास और जितने स्थान हों उतनी पारणा समझ लेनी चाहिये इसप्रकार इस मुरजमध्यतपविधिमें उपवास अट्ठाईस और पारणा आठ हैं जो फल मृदंगमध्यतप विधिका बतलाया है वही इसका समझ लेना चाहिये यह उपवास छत्तीस दिनमें समाप्त होता है ॥ ६६ ॥

एकावली उपवास-एक ऐसा प्रस्तार बनावे जिसमें चौवीसवार एकके अंक हों तथा उन अंकोंको आपसमें जोड़ले इसतरह जोड़नेपर जितनी उन अंकोंकी संख्या सिद्ध हो उतने तो इस व्रतमें उपवास समझने चाहिये और जितने स्थान हों उतनी पारणा जान लेनी चाहिये इसप्रकार इस एकावली उपवासमें चौवीस उपवास और चौवीस पारणा हैं। इसव्रतके आचरण करनेकी रीति एक उपवास एक पारणा पुनः एक उपवास एक पारणा इत्यादि क्रमसे है। यह व्रत अड़तालीस दिनमें समाप्त होता है और इसके आचरण करनेवालेको अद्वितीय सुख मिलता है ॥ ६७ ॥

एकावली यंत्र।

१ १
१ १

द्विकावली उपवास-यहांपर जिसमें अडतालीसवार दोके अंक आजांय ऐसा प्रस्तार वनाना चाहिये और उन दोके अकोंका आपसमें जोड़देदेना चाहिये इसरीतिसे जितने वे दोके अंक हो उतनी इस व्रतमें वेला समझनी चाहिये और जितने स्थान हों उतनी परणा जान लेनी चाहिये इसप्रकार इस द्विकावली उपवासमें अड़तालीस तो वेला (छयानवे उपवास) हैं और स्थान अड़तालीस हैं इसलिये पारणा भी अड़तालीस हैं इसके आचरण करनेकी विधि एक वेला एक पारणा पुनः एक वेला एक पारणा इस रीतिसे है यह उपवासविधि एकसौ चवालीस दिनमें समाप्त होती है और जो पुरुष इसव्रतका आचरण करता है उसै दोनोलोकमें अचिंत्य सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ६८ ॥

द्विकावली यंत्र।

१ १
२ २
१ १
२ २

मुक्तावली उपवास-एकसे पांच विंदुपर्यंत और चारसे लेकर एक विंदुपर्यंत एक मुक्तावली (मोतियोंकी माला) नामका प्रस्तार वनाना चाहिये और उन विंदुओंको

मुक्तावलीप्रस्तार। आपसमें जोड़ लेना चाहिये इसरीतिसे जितनी इस प्रस्तारमें विंदुये हों

○
○ ○
○ ○ ○
○ ○ ○ ○
○ ○ ○ ○ ○
○ ○ ○ ○
○ ○ ○
○ ○
○

उतनेतो इस व्रतमें उपवास समझने चाहिये और जितने स्थान हों उतनी पारणा जानलेनी चाहिये इस रीतिसे इस मुक्तावली उपवासमें पचीस उपवास और नौ पारणा होती हैं जो मनुष्य इस विधिका आराधन करता है वह इसके करनेके बाद ही समस्त लोकका भूषण स्वरूप बन जाता है उसै मोक्ष सुखकी प्राप्ति होती है और वहां वह निरावाध सुखका आस्वादन करता है यह विधि चौतीस दिनमें जाकर समाप्त होती है ॥६९-७०॥

रत्नावली—एकसे लेकर पांच विंदुपर्यंत और पांचसे लेकर एक पर्यंत एक रत्नावली (रत्नोंकी माला) के आकारका प्रस्तार वनाना चाहिये

रत्नावली प्रस्तार । जितनी प्रस्तारमें विंदु होती हैं उतने तो रत्नावली विधिमें उपवास

○
○ ○
○ ○ ○
○ ○ ○ ○
○ ○ ○ ○ ○
○ ○ ○ ○ ○
○ ○ ○ ○
○ ○ ○
○ ○
○

होते हैं और जितने स्थान हों उतनी पारणा मानी गई हैं इस रीतिसे रत्नावली नामक उपवास विधिमें तीस उपवास और दश पारणा होती हैं जो मनुष्य इस रत्नावली व्रतका आचरण करते हैं उन्हें रत्नोंके समान उत्तमोत्तम गुणोंकी प्राप्ति होती है एवं इस (रत्नावली व्रत) केआचरण करनेमें चालीस दिनका काल लगता है ॥ ७१ ॥

रत्नमुक्तावली—एकसे दशतक और ग्यारहसे सोलहतक एक प्रस्तार बनावे और दूसरे अंकसे लेकर अंतके तीसरे अंकतक एकएक अंकका अंतर देता जाय तो जितनी संख्या जोडनेपर सिद्ध हो उतने तो इस रत्नमुक्तावलीमें उपवास समझने चाहिये और सब स्थानोंको गिनकर जितनी संख्या हो उतनी पारणा समझ लेनी चाहिये इसप्रकार इस रत्नमुक्तावलीमें दोसौ चौरासी उपवास और उनसठ पारणा होती हैं इस उपवास विधिके आचरण करनेका काल तीनसौ तेतालीस दिन हैं इसके आचरण करनेकी विधि एक उपवास एक पारणा दो उपवास एक पारणा इत्यादि रीतिसे है और जो मनुष्य इस उपवास विधिका आचरण करता है उसे सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयकी प्राप्ति होती है ॥ ७२-७३ ॥

रत्नमुक्तावली यंत्र ।

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	२	१	३	१	४	१	५	२	६	१	७	१	८	१	९
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	१०	१	११	१	१२	१	१३	१	१४	१	१५	१	१६		
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१			
१	१५	१	१४	१	१३	१	१२	१	११	२	१०	१			
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
९	१	८	१	७	१	६	१	५	१	४	१	३	१	२	१

कनकावली—एक ऐसा प्रस्तार वनावे जिसमें एकका अंक, दोका अंक, नौवार तीनका अंक, एकसे लेकर सोलह तक अंक, पुनः चौंतीसवार तीनके अंक, सोलहसे

लेकर एकतक अंक, पुनः नौवार तीनका अंक, और दोका एवं एकका अंक भरे जोड़ने पर जितनी इन अंकोंकी संख्या बैठे उतने तो इस कनकावली उपवास विधिमें उपवास समझने चाहिये और जितने स्थान हों उतनी पारणा जाननी चाहिये इसप्रकार सब मिलकर इसमें चारसौ चौतीस उपवास हैं और अठासी पारणा हैं इसलिये यह व्रत पांचसौ बत्तीस

कनकावली यंत्र।

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	२	३	३	३	३	३	३	३	३	३	१	२	३	४
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	३	३	३
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
३	३	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९	८	७	६	५	
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
४	३	२	१	३	३	३	३	३	३	३	३	३	२	१

दिनमें समाप्त होता है जो मनुष्य इस व्रतका आराधन करते हैं उन्हें मोक्षसुखकी प्राप्ति होती है॥ ७४॥ ग्रंथकारने इसविधिके समझानेका प्रकार इसरीतिसे भी वतलाया है कि एकसे सोलहतक दो बार संख्या लिखे और उसे आपसमें जोड़ दे तथा उसीमें एकसौ वासठ (चौअनके तिगने) और मिलादे तो जोड़ देने पर जितनी संख्या सिद्ध हो उतने तो उपवास समझना चाहिये और जितने स्थान हों उतनी पारणा जाननी चाहिये अर्थात्–दो बार एकसे सोलह तक संख्याका जोड़ देनेसे दोसौ वहत्तर संख्या वैठती है और उसमें एक सौ वासठ जोड़देनेसे चारसौ चौतीस होते हैं इसरीतिसे इतने तो इस कनकावलीमें उपवास समझने चाहिये और अठासी स्थान होते हैं इसलिये उतनी ही पारणा जाननी चाहिये। यह कनकावली विधि एक वर्ष पांच मास और वारह दिन (पांचसौ वावीस दिन) में समाप्त होती है॥ ७५–७६॥

दूसरे प्रकारकी रत्नावली–एक ऐसा प्रस्तार वनावे जो रत्नोंके हारके आकारका हो उसकी एक ओरतो वेलाओंके दो दो विंदु रक्खे और उनके नीचे क्रमसे एकसे सोलह तकके एकसौ छत्तीस उपवासोंके एकसौ छत्तीस विंदु रक्खे पश्चात् नीचेकी ओर तीस वेलाओंके दो दो विंदु रक्खे और उनके नीचे फूलके स्थानपर चार वेलाओंके आठ विंदु लटकादे उसके वाद जो तीस वेला वतलाई हैं उनके ऊपर सोलह पंद्रह चौदह इसरीतिसे एक तक (एकसौ छत्तीस) विंदु रक्खे उनके ऊपर छै वेलाओंके वारह वूंद रक्खे पश्चात् तीन वेलाओंके छै विंदु दो वेलाओंके चारविंदु और एक वेलाके दो विंदु रक्खे इसरीतिसे इसप्रस्तारमें जितनी वूंद हो उतने उपवास समझने चाहिये और जितने स्थान हों उतनींही पारणा जाननी चाहिये इसप्रकार इस द्वितीय रत्नावली प्रस्तारमें तीनसौ चौरासी उपवास होते हैं और स्थान अठासी हैं इसलिये पारणा अठासी होती हैं इस व्रतके आचरण करनेकी विधि–पहिली वेला पहिली पारणा दूसरी वेला दूसरी पारणा तीसरी वेला तीसरी पारणा

चौथी वेला चौथी पारणा पांचवी वेला पांचवी पारणा छठी वेला छठी पारणा सातवीं वेला सातवीं पारणा आठवीं वेला आठवीं पारणा नवमी वेला नवमी पारणा दशवीं वेला दशवीं पारणा, एक उपवास एक पारणा दो उपवास एक पारणा तीन उपवास एक पारणा चार उपवास एक पारणा पांच उपवास एक पारणा छै उपवास एक पारणा सात उपवास एक पारणा इत्यादि क्रमसे है यह उपवासविधि एक वर्ष तीन मास और वावीस दिन अर्थात् चारसौ वहत्तर दिनमें समाप्त होती है जो मनुष्य इस व्रतका आराधन करता है उस पुण्यात्मा पुरुषको महादेदीप्यमान परमपवित्र सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र रूपी रत्नत्रयकी प्राप्ति होती है।

रत्नावलीव्रतका प्रस्तार।
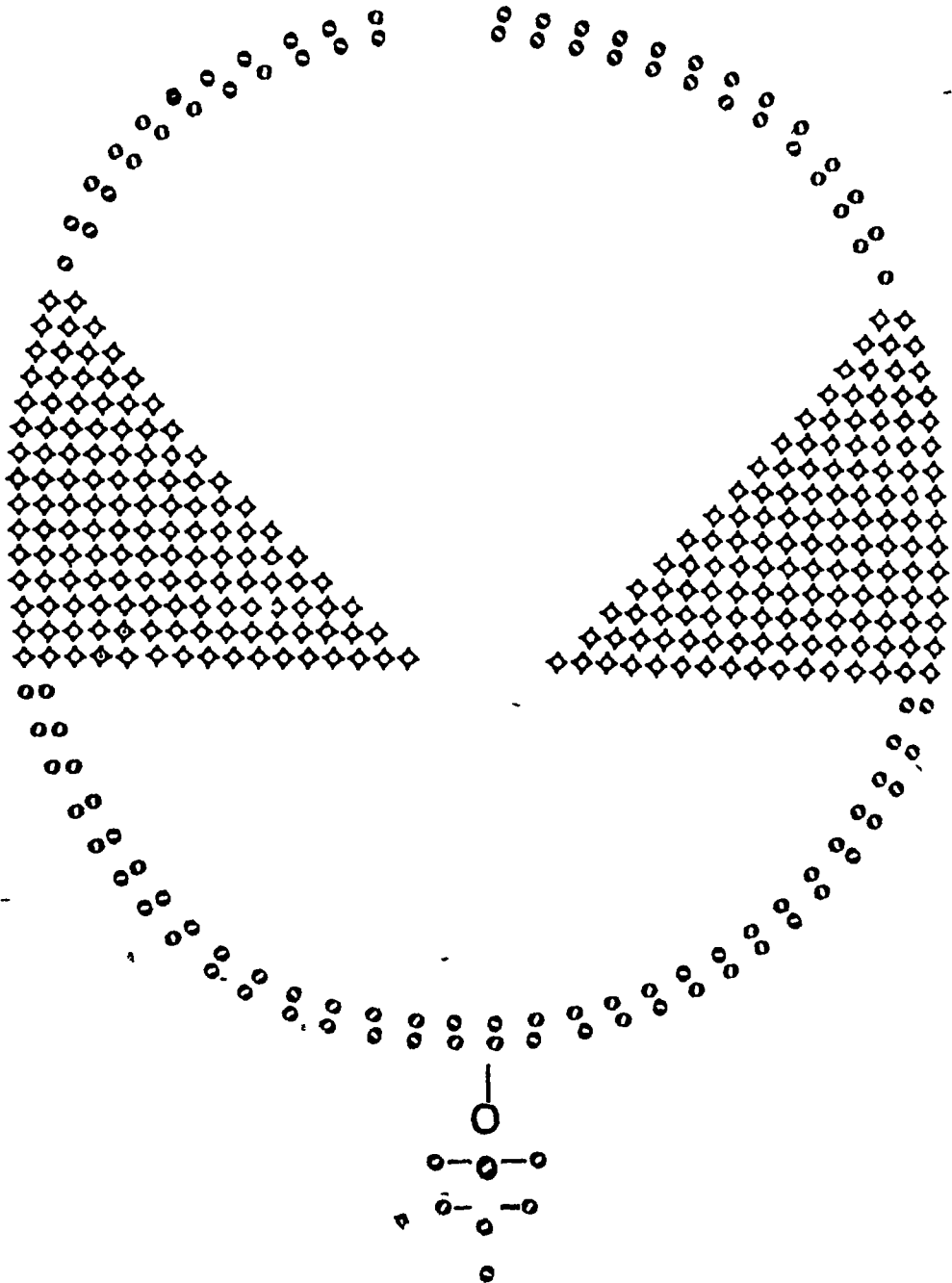
सिंहनिष्क्रीडित व्रत जघन्य मध्यम और उत्कृष्टके भेदसे तीन प्रकारका है उनमें जघन्य सिंहनिष्क्रीड़ित इसप्रकार है एक ऐसा प्रस्तार बनावे कि अंतमें (मध्यमें) उसमें पांचका अंक आजाय और पहिलेके अंकोंमें दो दो अंकोंकी सहायतासे एक एक अंक बढ़ता जाय और घटता जाय इस रीतिसे जितने इस जघन्य सिंहनिष्क्रीडितमें अंकोंके जोड़नेपर संख्या सिद्ध हो उतने तो उपवास समझना चाहिये और जितने स्थान हों उतनी पारणा जाननी चाहिये अर्थात् इस प्रस्तार का

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
१	२	१	३	२	४	३	५	४	५	५	४	५	३	४	२	३	१	२	१

यह आकार है यहांपर पहिले एक उपवास एक पारणा और दो उपवास एक पारणा करनी चाहिये पश्चात् दोमेंसे एक उपवासका अंक घटजानेसे एक उपवास एक पारणा दोमें एक उपवासका अंक बढ़जानेसे तीन उपवास एक पारणा तीनमेंसे एक उपवासका अंक घटजानेसे दो उपवास एक पारणा तीनमें एक उपवासका अंक बढ़जानेसे चार उपवास एक पारणा चारमेंसे एक उपवासका अंक घटजानेसे तीन उपवास एक पारणा चारमें एक उपवासका अंक बढ़जानेसे पांच उपवास एक पारणा पांचमेंसे एक उपवासका अंक कमादेनेपर चार उपवास एक पारणा चारमें एक उपवासका अंक बढ़ादेनेपर पांच उपवास एक पारणा होती है यहांपर अंतमें पांचका अंक-आजानेसे पूर्वार्ध समाप्त हुआ आगे उलटी संख्यासे पहिले पांच उपवास एक पारणा करनी चाहिये पश्चाद् पांचमेंसे एक उपवासका अंक कमादेनेपर चार उपवास एक पारणा चारमें एक उपवासका अंक बढ़ादेनेपर पांच उपवास एक पारणा चारमेंसे एक उपवासका अंक घटादेनेपर तीन उपवास एक पारणा तीनमें एक उपवासका अंक बढ़ादेनेपर चार उपवास एक पारणा तीनमेंसे एक उपवासका अंक घटादेनेपर दो उपवास एक पारणा दोमें एक उपवासका अंक बढ़ादेनेसे तीन उपवास एक पारणा दोमेंसे एक उपवासका अंक कमादेनेपर एक उपवास एक पारणा पश्चात् दो उपवास एक पारणा एक उपवास एक पारणा करनी चाहिये। इस जघन्य सिंहनिष्क्रीडितमें अंकों की संख्या साठ है इसलिये साठ उपवास होते हैं और स्थान वीस हैं इसलिये पारणा वीस होती हैं तथा यह विधि अस्सी दिनमें जाकर समाप्त होती है।

मध्य सिंहनिष्क्रीडित—एक से आठ अंकतकका प्रस्तार बनाना चाहिये उसके शिखरपर अंतमें (मध्यमें) नोका अंक आजाना चाहिये और जघन्य निष्क्रीडितके समान यहां भी दो दो अक्षरकी अपेक्षासे एक एक उपवासका अंक घटाना बढाना चाहिये इसरीतिसे इस मध्य सिंहनिष्क्रीडितमें जितनी अंकोंकी संख्या हो उतने तो उपवास समझने चाहिये और जितने स्थान हों उतनी पारणा जाननी चाहिये अर्थात्—

१	२	१	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	८	९
८		७	८	६	७	५	६	४	५	३	४	२	३	१	२	१

इसके प्रस्तारका आकार इसप्रकार है यहांपर भी पहिले एक उपवास एक पारणा और दो उपवास एक पारणा करनी चाहिये पश्चात् दोमेंसे एक उपवासका अंक घटादेनेपर एक उपवास एक पारणा, दोमें एक उपवासका अंक जोड़देनेपर तीन उपवास एक पारणा तीनमेंसे एकका अंक कमादेनेपर दो उपवास एक पारणा तीनमें एक उपवासका अंक बढादेनेपर चार उपवास एक पारणा होती है इसी प्रकार जघन्य सिंहनिष्क्रीडितके समान आगे भी समझलेना चाहिये। इसमें अंकोंकी संख्या एकसौ त्रेपन है इसलिये एकसौ त्रेपन तो उपवास होते हैं और स्थान तेतीस हैं इसलिये तेतीस पारणा होती हैं इसलिये यह मध्य सिंहनिष्क्रीडित व्रत एकसौ छचासी दिनमें समाप्त होता है।

उत्तम सिंहनिष्क्रीडित—एक से पंद्रह अंकतकका प्रस्तार बनाना चाहिये उसके शिखरपर अंतमें (मध्यमें) सोलहका अंक आजाना चाहिये और उपर्युक्त सिंहनिष्क्रीडितोंके समान यहांपर भी दो दो अक्षरोंकी अपेक्षासे एक एक उपवासका अंक घटा बढा लेना चाहिये इसरीतिसे जोडनेपर जितनी इसमें अंकोंकी संख्या सिद्ध हो उतने तो उपवास समझने चाहिये और जितने स्थान हों उतनी पारणा जाननी चाहिये अर्थात् इसके प्रस्तारका आकार

१ २ १ ३ २ ४ ३ ५ ४ ६ ५ ७ ६ ८ ७ ९ ८ १० ९ ११ १० १२ ११
१३ १२ १४ १३ १५ १४ १५ १६ १५ १४ १५ १३ १४ १२ १३
११ १२ १० ११ ९ १० ८ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ५ ३ ४ २ ३ १ २ १

इसप्रकार है यहांपर भी पहिले एक उपवास एक पारणा और दो उपवास एक पारणा करनी चाहिये पश्चात् दोमेंसे एक उपवासका अंक कमादेने पर एक उपवास एक पारणा दोमें एक उपवास का अंक बढ़ादेने पर तीन उपवास एक पारणा तीनमेंसे एक उपवासका अंक घटादेनेसे दो उपवास एक पारणा तीनमें एक उपवासका अंक मिलादेनेसे चार उपवास एक पारणा चारमेंसे एक उपवासका अंक घटादेनेपर तीन उपवास एक पारणा चारमें एक उपवासका अंक बढ़ादेनेसे पांच उपवास एक पारणा पांचमेंसे एक उपवासका अंक कमादेनेसे चार उपवास एक पारणा पांचमें एक उपवासका अंक जोड़देनेसे छै उपवास एक पारणा छैमेंसे एक उपवासका अंक घटादेनेपर पांच उपवास एक पारणा छैमें एक उपवासका अंक बढ़ादेनेसे सात उपवास एक पारणा सातमेंसे एक उपवासका अंक कमादेनेपर छै उपवास एक पारणा सातमें एक उपवासका अंक मिलादेनेसे आठ उपवास एक पारणा आठमेंसे एक उपवास का अंक कमादेनेपर सात उपवास एक पारणा आठमें एक उपवासका अंक मिलादेनेसे नौ उपवास एक पारणा

नौमेंसे एक उपवास का अंक कमादेनेपर आठ उपवास एक पारणा नौमें एक उपवासका अंक जोड़देनेपर दश उपवास एक पारणा दशमेंसे एक उपवासका अंक कमादेनेपर नौ उपवास एक पारणा दशमें एक उपवासका अंक बढ़ादेनेपर ग्यारह उपवास एक पारणा ग्यारहमेंसे एक उपवासका अंक घटादेनेपर दश उपवास एक पारणा ग्यारहमें एक उपवासका अंक बढ़ादेनेसे बारह उपवास एक पारणा बारहमेंसे एक उपवासका अंक घटादेनेपर ग्यारह उपवास एक पारणा बारहमें एक उपवासका अंक मिलादेनेपर तेरह उपवास एक पारणा तेरहमेंसे एक उपवासका अंक कमादेनेपर बारह उपवास एक पारणा तेरहमें एक उपवासका अंक बढ़ादेनेपर चौदह उपवास एक पारणा चौदहमेंसे एक उपवासका अंक कमादेनेपर तेरह उपवास एक पारणा चौदहमें एक उपवासका अंक बढ़ादेनेपर पंद्रह उपवास एक पारणा पंद्रहमेंसे एक उपवासका अंक घटा देनेपर चौदह उपवास एक पारणा पुनः पंद्रह उपवास एक पारणा और सोलह उपवास एक पारणा सोलहमेंसे एक उपवासका अंक कमादेनेसे पंद्रह उपवास एक पारणा पंद्रहमेंसे एक उपवासका अंक कमादेनेपर चौदह उपवास एक पारणा चौदहमें एक उपवासका अंक बढ़ादेनेपर पंद्रह उपवास एक पारणा चौदहमेंसे एक उपवासका अंक कमादेनेसे तेरह उपवास एक पारणा इत्यादि रीतिसे आगे भी समझना चाहिये। इसरीतिसे इस उत्तम सिंहनिष्क्रीडितव्रतमें अंकोंकी मिलकर संख्या चारसौ छ्यानवे है इसलिये इतने तो इसमें उपवास होते हैं और स्थान इकसठ हैं इसलिये इकसठ पारणा होती हैं। यह व्रत पांचसौ सत्तावन दिनमें समाप्त होता है।

ग्रंथकारने तीनों प्रकारके सिंहनिष्क्रीडित व्रतोंकी संख्या और पारणा गिनकर बतलानेकी यह भी सरल रीति बतलाई है—जघन्यसिंहनिष्क्रीडित व्रतमें साठ उपवास और पारणा बतलाई हैं एवं उसका प्रस्तार पांच अंक तकका कहा है वहांपर एकसे लेकर पांच अंक तक रखकर उनका आपसमें जोड़ दे और जोड़ने पर जो संख्या आवे उसका चारसे गुणा कर दे इसरीतिसे जितनी गुणाकरनेपर संख्या सिद्ध हो उतने तो उपवास और जितने स्थान हों उतनी पारणा समझनी चाहिये अर्थात् इस जघन्यसिंहनिष्क्रीडित व्रतमें एकसे पांच तककी संख्या जोड़नेपर पंद्रह होते हैं और पंद्रहका चारसे गुणा करनेपर साठ होते हैं इसलिये इतने तो उपवास हैं और स्थान वीस होते हैं इसलिये पारणा वीस हैं। मध्य सिंहनिष्क्रीडितमें एकसौ त्रेपन उपवास और तेतीस पारणा बतला आये हैं और नौके अंकको शिखरपर रखकर आठ अंक तकका प्रस्तार बतला आये हैं वहांपर एकसे लेकर आठ तक संख्या रखकर आपसमें जोड़ दे जोड़ने पर जितनी संख्या आवे उसका चारसे गुणा करे गुणितसंख्यामें जो नौका अंक शिखरपर बतला आये हैं उसे जोड़दे इसरीतिसे जितनी संख्या सिद्ध हो उतने तो

इस मध्य सिंहनिष्क्रीडितमें उपवास हैं और जितने स्थान हैं उतनी पारणा हैं अर्थात् एकसे आठ तककी संख्याका जोड़ देनेपर छत्तीस होते हैं छत्तीसका चारसे गुणा करने पर एकसो चवालीस होते हैं और उनमें नौ जोड़ देनेपर एकसौ त्रेपन हो जाते हैं इसलिये इस व्रतमें एकसौ त्रेपन तो उपवास होते हैं और स्थान तेतीस हैं इसलिये तेतीस पारणा होती हैं। उत्तम सिंहनिष्क्रीडितमें चारसौ छ्यानवे उपवास और पारणा इकसठ कही हैं इसका प्रस्तार सोलहके अंकको अधिक रखकर पंद्रह तक बतला आये हैं वहां पर भी एकसे लेकर पंद्रहतककी संख्याका आपसमें जोड़ देनेपर जितनी संख्या आवे उसका चारसे गुणा करे और गुणित संख्यामें जो सोलहका अंक अधिक बतला आये हैं उसै जोड़दे और जोड़ गुणा करनेपर जितनी संख्या निकले उतने तो इस व्रतमें उपवास समझने चाहिये और जितने स्थान हों उतनी पारणा जाननी चाहिये अर्थात् एकसे पंद्रह तक जोड़नेपर एकसौ वीस होते हैं एकसौ वीसका चारसे गुणा करनेपर चारसौ अस्सी होते हैं और इनमें जो सोलह अधिक वतला आये हैं उन्हें मिलादेनेसे चार सौ छ्यानवे होजाते हैं सो चारसौ छ्यानवे तो इस व्रतमें उपवास होते हैं और स्थान इकसठ हैं इसलिये इकसठ पारणा होती हैं इसरीतिसे क्रमसे जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट सिंहनिष्क्रीड़ितकी उपवास और पारणाओंकी संख्या जाननी चाहिये। जो मनुष्य इस परमपावन सिंहनिष्क्रीड़ित व्रतका आराधन करता है उसे वज्रवृषभनाराचसंहननकी प्राप्ति होती है अनंतपराक्रमका धारक हो सिंहके समान वह निर्भय होजाता है और शीघ्र ही उसे अणिमा महिमा आदि ऋद्धियोंकी भी प्राप्ति होजाती है ॥ ७७-८३ ॥

नंदीश्वरविधि—हरएक दिशामें चार चार दधिमुख आठ आठ रतिकर और एक २ अंजनगिरि होनेसे सोलह दधिमुख वत्तीस रतिकर और चार अंजनगिरि हैं यहांपर प्रति दधिमुखको लेकर एक एक उपवास इसरीतिसे प्रत्येक दिशाके दधिमुखोंकी अपेक्षा तो चार चार उपवास समझने चाहिये प्रति रतिकरको लेकर एक २ उपवास इसरीतिसे हरएक दिशाके रतिकरोंकी अपेक्षा आठ आठ उपवास जानने चाहिये इसप्रकार प्रत्येक दिशाके वारह वारह उपवास होनेसे मिलकर चारो दिशाओंके अड़तालीस होजाते हैं और चार अंजन गिरियोंकी अपेक्षा चार बेला हैं इसरीतिसे इस नंदीश्वरविधिमें उपवास और बेला मिलाकर वावन होते हैं और स्थान वावन हैं इसलिये पारणा भी बावन होती हैं। इस व्रतके आचरण करनेकी विधि इसप्रकार है पूर्वदिशाके दधिमुखोंके उपवासोंमें एक उपवास एक पारणा इसरीतिसे चार उपवास चार पारणा होती हैं। पूर्वदिशाके रतिकरोंके उपवासोंमें एक उपवास एक पारणा इसप्रकार आठ उपवास आठ पारणा होती हैं और इन बारह उपवासोंके वाद एक वेला एक पारणा होती है इसी रीतिसे चारोदिशाओंमें समझना चाहिये। इसलिये यह व्रत एकसौ आठ दिनमें जाकर

समाप्त होता है जो मनुष्य इसव्रतका आचरण करता है उसै जिनेंद्र और चक्रवर्ती पदकी प्राप्ति होती है ॥ ८४ ॥

मेरुपंक्तिव्रत विधि—सुमेरु पांच माने हैं प्रत्येक मेरुकेक्रमसे चारोदिशाओंमें नंदन सौमनस पांडुक और भद्रसाल ये चार २ वन हैं और हरएक वनमें चार चार चैत्यालय हैं इसप्रकार कुल सोलह चैत्यालय हैं। यहांपर पांचो मेरुओंके प्रत्येक वनके चैत्यालयोंकी अपेक्षा मिलकर अस्सी उपवास हो जाते हैं तथा प्रत्येक मेरुके प्रत्येक वनकी अपेक्षा एक एक वेला होनेसे पांचोमेरुके वीसवनोंकी अपेक्षा वीस वेला होजाती हैं इसप्रकार पांचों मेरुके मिलाकर उपवास अस्सी और वेला वीस हैं इसतरह वेला और उपवास मिलाकर सौ होते हैं जब वेला और उपवासोंके स्थान सौ सिद्ध हुये तो पारणा भी सौ हो जाती हैं इसरीतिसे इस मेरुपंक्तिविधिमें सौ उपवास और वेला एवं सौ ही पारणा समझनी चाहिये इस व्रतके आचरण करनेकी विधि इसप्रकार है—पहिले मेरुके पहिले वनके चार चैत्यालयोंकी अपेक्षा जो चार उपवास वतला आये हैं उनमें पहिला एक उपवास पहिली एक पारणा दूसरा एक उपवास दूसरी एक पारणा तीसरा एक उपवास तीसरी एक पारणा चौथा एक उपवास चौथी एक पारणा इसरीतिसे चार उपवास चार पारणा समझनी चाहिये और इन चार उपवासोंके वाद एक वेला एक पारणा होती है इसीप्रकार उपवास पारणा वेला और पारणाका नियम आगेके मेरुओंके वनोंमें भी समझलेना चाहिये। यह व्रत दोसौ वीस दिनमें समाप्त होता है जो महानुभाव इस व्रतका आराधन करता है उसका मेरुपर्वतपर अभिषेक होता है अर्थात् वह तीर्थंकर होजाता है ॥ ८५ ॥

विमानपंक्ति—विमान तीन प्रकारके हैं इंद्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक। उनमें ऋजु आदि इंद्रक विमानोंकी संख्या कुल त्रेसठ हैं ये विमान सब विमानोंके मध्यमें हैं और इनके आस पास चारो दिशाओंमें श्रेणीवद्ध विमान हैं। यहांपर इंद्रककी चारो दिशाओंमें प्रत्येक दिशाकी अपेक्षा एक २ उपवास इसतरह चार २ उपवास लिये गये हैं और इंद्रक विमानोंमें प्रत्येकका एक एक वेला लिया गया है इसप्रकार प्रत्येक इंद्रककी दिशाओंकी अपेक्षा

१
उप
वास
१ उपवास इंद्रककी वेला १ उपवास
१
उप
वास

चार २ उपवास हो जानेसे त्रेसठके चौगुने दो सौ बावन उपवास होजाते हैं। हरएक इंद्रककी अपेक्षा एक एक वेला करनेसे त्रेसठ वेला और सबके अंतमें एकतेला करना होता इसरीतिसे इस विमानपंक्तिव्रतमें सब उपवास वेला तेला मिलकर तीनसौ सोलह होते हैं यहां पर स्थान तीनसौ सोलह हैं इसलिये पारणा भी तीनसौ सोलह होती हैं इसव्रतके आचरण करनेकी विधि—पहिली दिशाका एक उपवास एक पारणा दूसरी दिशाका एक उपवास एक पारणा तीसरी दिशाका एक उपवास एक पारणा चौथी दिशाका एक

उपवास एक पारणा इसप्रकार चार उपवास चार पारणा और पश्चात् एक वेला (दो उपवास) करना चाहिये इसीरीतिसे आगे भी प्रत्येक इंद्रककी अपेक्षा समझना चाहिये जब सब उपवास और वेला समाप्त हो जाय तब एक तेला (तीन उपवास) करना चाहिये। यह व्रत छैसौ सतानवे दिनमें समाप्त होता है। जो पुरुष इस व्रतका आचरण करता है वह समस्त विमानपंक्तियोंका ईश्वर बन जाता है ॥ ८७ ॥

शातकुंभ विधि—यह शांतकुंभ विधि जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट भेदसे तीन प्रकारकी है उनमें जघन्य शातकुंभविधि इसप्रकार है एक प्रस्तार बनावे जिसमें कि एकसे लेकर पांच पर्यंत अक्षर पांच चार तीन आदि क्रमसे रक्खे और आदिके एक अक्षरको छोड़कर पुनः तीनवार उन अक्षरोंको लिखे इसतरह जोड़नेपर जितनी संख्या सिद्ध हो उतने तो इस शातकुंभविधिमें उपवास करने चाहिये जितने स्थान हों उतनी पारणा जाननी चाहिये—अर्थात् इसका प्रस्तार

(१ १ १ १ १, १ १ १ १, १ १ १ १, १ १ १ १)
(५ ४ ३ २ १, ४ ३ २ १, ४ ३ २ १, ४ ३ २ १)

इसप्रकार है यहां जोड़ देनेपर पैंतालीस संख्या सिद्ध होती है इसलिये इसव्रतमें पैंतालीस तो उपवास हैं और सत्रह स्थान हैं इसलिये पारणा सत्रह हैं। इस उपवासके आचरण करनेकी विधि—पांच उपवास एक पारणा तीन उपवास एक पारणा दो उपवास एक पारणा एक उपवास एक पारणा इसीप्रकार आगे भी समझना चाहिये इसतरह यह व्रत बासठ दिनमें समाप्त होता है।

मध्यशातकुंभ विधि—एक ऐसा प्रस्तार बनावे जिसमें एकसे लेकर नौ पर्यंत अंक नौ आठ सात इस क्रमसे लिखे और आदिके एक अक्षरको छोड़कर शेष अक्षरोंको पुनः तीनवार लिखे इसतरह उन अंकोंके जोड़नेपर जितनी संख्या सिद्ध हो उतने तो उपवास समझने चाहिये और जितने स्थान हों उतनी पारणा जान लेनी चाहिये। अर्थात् इसका प्रस्तार

१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १
९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ ८ ७ ६

१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १
५ ४ ३ २ १ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ इसप्रकार है यहांपर जोड़ देनेपर एकसौ सत्रह संख्या होती है इसलिये इस मध्य शातकुम्भविधिमें एकसौ त्रेपन तो उपवास हैं और स्थान तेतीस हैं इसलिये पारणा तेतीस होतीं हैं। इस उपवासके आचरण करनेकी विधि नौ उपवास एक पारणा आठ उपवास एक पारणा सात उपवास एक पारणा छै उपवास एक पारणा पांच उपवास एक पारणा चार उपवास एक पारणा तीन उपवास एक पारणा दो उपवास एक पारणा एक उपवास एक पारणा इत्यादि रीतिसे है और यह व्रत एकसौ छयासी दिनमें समाप्त होता है।

उत्कृष्ट शातकुंभविधि-एकके अंकसे लेकर सोलहके अंकतकका एक प्रस्तार बनावे और उसमें एकबार सोलहसे लेकर एकतक अंक और तीनवार पंद्रहसे लेकर एक तक

अंक रक्खे इसप्रकार जोड़नेपर उन अंकोंकी जितनी संख्या सिद्ध हो उतने तो उपवास समझने चाहिये और जितने स्थान हों उतनी पारणा जान लेनी चाहिये। अर्थात्

१६ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ १५ १४ १३ १२
११ १० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९ ८ ७
६ ५ ४ ३ २ १ १५ १४ १३ १२ ११ १० ९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १

इसके प्रस्तारका आकार इसप्रकार है यहांपर सब संख्याका जोड़देनेपर चारसौ छ्यानवे होते हैं और स्थान इकसठ हैं इसलिये पारणायें इकसठ होती हैं इस व्रतके आचरण करनेकी विधि सोलह उपवास एक पारणा पंद्रह उपवास एक पारणा चौदह उपवास एक पारणा तेरह उपवास एक पारणा वारह उपवास एक पारणा ग्यारह उपवास एक पारणा दश उपवास एक पारणा नौ उपवास एक पारणा इत्यादि क्रमसे है। यह विधि पांचसौ सत्तावन दिनमें समाप्त होती है। जो महानुभाव इस विधिका आचरण करताहै उसका सुवर्णमयी कलशोंसे अभिषेक होता है ॥८८-८९॥ इसप्रकार इन विधियोंका स्वरूप बतला दिया गया जो अल्प शक्तिके धारक हैं इन विधियोंका आचरण नहिं कर सकते और अपनी आत्मा का हित करना अवश्य चाहते हैं उन्हैं चाहिये कि वे अपनी सामर्थ्यके अनुसार एक उपवास दो उपवास वा तीन उपवास (वेला वा तेला) ही करें ॥ ९० ॥

चांद्रायण व्रत—जिसप्रकार चंद्रमाकी कला शुक्लपक्षकी प्रतिपदसे लेकर पूर्णमासी तक वढ़ती जाती हैं और कृष्णपक्षमें घटती जाती हैं उसीप्रकार जो मनुष्य चांद्रायण व्रत आचारण करना चाहता है उसे चाहिये कि वह चंद्रमाकी मनोहर गतिके समान अमावस (१५) को उपवास करै पश्चात् सुदी प्रतिपद (एकम) को एक कवल (ग्रास, कौर) दोजको दो कवल तीजको तीन कवल चौथको चार कवल पांचेको पांच कवल छठको छै कवल सातेंको सात कवल इसरीतिसे चौदश तक चौदह कवल तक ग्रहण करै पुनः पूर्णिमा (३०) को उपवास करै कृष्ण प्रतिपदको फिर चौदह कवल ले दोजको तेरह तीजको बारह चौथको ग्यारह इसप्रकार घटाते २ वदी चौदशको एक कवल ग्रहण करै और अमावस्याको उपवास करै। इसप्रकार यह व्रत एक मासमें समाप्त होता है और यशका भंडार है इसलिये इसके आचरण करनेवालेको भी यशः प्राप्ति होती है ॥९१॥

सप्तसप्तमतपोविधि—इस विधिके आचरण करनेवाला पहिले तो उपवास करै पश्चात् (उपवासके वाद) प्रथम दिन एक कवल दूसरे दिन दो कवल तीसरे दिन तीन-कवल इसरीतिसे एक एक कवल वढ़ाकर सातवे दिन सात कवल ग्रहण करै पीछे एक उपवास करै पुनः उपवासके वाद पहिले दिन एक कवल दूसरे दिन दो कवल तीसरे दिन तीनकवल इस रीतिसे एक एक कवल वढ़ाकर सातवें दिन सात कवल आहार करै इसी क्रमसे ऐसा सातवार करता चलाजाय जिससमय सातोवार निर्दोष रूपसे

समाप्त होजाय उससमय उसै सप्तसप्तमतपोविधि कहते हैं और यह विधि सत्तावन दिनमें जाकर समाप्त होती है। अथवा जघन्य सप्तसप्तमविधिका यह भी प्रकार बतलाया है कि उपवास न कर पहिले दिन एक कवल भोजन ले दूसरे दिन दो कवल तीसरे दिन तीनकवल इत्यादि रीतिसे एक एक कवल बढ़ाकर सातवें दिन सात कवल आहार ले जब इस तरह सातवार समाप्त होजांय तब वह भी सप्तसप्तमतपोविधि कहलाती है। उत्तम सप्तसप्तमतपोविधिके समान अष्टअष्टमतपोविधि नवनवमतपोविधि दशदशम तपोविधि एकादशएकादशतपोविधि आदि द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशत् तपोविधि तक विधि होती हैं। यहांपर जिससमय अष्टअष्टम तपोविधि प्रारंभ हो उससमय पहिले एक उपवास करना चाहिये पश्चात्–उपवासके बाद पहिले दिन एक कवल दूसरे दिन दो कवल तीसरे दिन तीनकवल चौथे दिन चारकवल पांचवे दिन पांच कवल इसरीतिसे एक एक कवल बढ़ाकर आठवें दिन आठकवल आहार करे पश्चात् एक उपवास कर पुनः उसीप्रकार पहिले दिनसे आठदिनतक एक २ कवल बढ़ाकर आठवें दिन आठ कवल आहार ले इसरीतिसे आठवार करे जब आठोवार करचुके तब यह अष्टअष्टम नामक तपोविधि समाप्त होती है इसीप्रकार नवनवम दशदशम एकादशएकादश को आदिलेकर द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशत्तपोविधियोंमें भी समझलेना चाहिये ॥९२–९५॥

सौवीरभुक्ति[1]–पहिले उपवास करे पश्चात् एकसे लेकर दशपर्यंत क्रम क्रमसे बढ़ाता हुआ इमली भात खाय पुनः दशवें दिनसे एक पर्यंत घटा घटाकर इमली भात खाय इसको सौवीरभुक्ति कहते हैं तथा आम्ल भोजनसे बढ़ाई हुई इन विधियोंमें यह नियम है कि प्रारंभमें उपवासके पहिले आधेदिनतक तो कुछ न खाय पश्चात्–बारहवजेके उपरांत एक स्थान पर बैठकर भोजन करे और जिससमय सौवीरभुक्ति समाप्त हो उससमय भी बारहवजेके उपरांतही भोजन करै (?) ॥ ९६–९७ ॥

श्रुतिविधि—मतिज्ञानके अट्ठाईस उपवास, ग्यारह अंगोंके ग्यारह उपवास, परिकर्म विधिके दो उपवास, सूत्रके अठासी उपवास, प्रथमानुयोगका एक, केवलज्ञानका एक, चौदह पूर्वोंके चौदह, अवधिज्ञानके छै, चूलिकाओंके पांच, और मनःपर्ययज्ञानके दो इसप्रकार एकसो अट्ठावन उपवास श्रुतिविधिमें हैं इन उपवासोंके स्थान एकसौ अट्ठावन हैं इसलिये पारणा भी एकसो अट्ठावन होती हैं इसप्रकार इस श्रुतिविधिमें उपवास और पारणा मिलकर तीनसौ सोलह हैं और वह व्रत तीनसौ सोलह दिनोंमें समाप्त होता है। इस व्रतके करनेकी विधि एक उपवास एक पारणा दूसरा उपवास दूसरी पारणा तीसरा उपवास तीसरी पारणा इत्यादि क्रमसे है ॥ ९८ ॥

१–आचाम्लवर्द्धमाने भवति सौवीरभुक्तयस्त्वेकाद्या. । सोपोषिता दशांता दशाद्यश्चापि रूपाता ॥ ९६ ॥ निर्विकृतिं पूर्वार्द्धे सैकस्थानस्तु पश्चिमार्द्धेश्च । आचाम्लवर्द्धमानः क्रमेण विधयो विधेयास्ते ॥ ९७ ॥

दर्शनशुद्धिव्रत—सम्यग्दर्शनके तीन भेद हैं औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक। और इनमें प्रत्येकके निश्शंकित, निष्कांक्षित, निर्विचिकित्सित अमूढ़दृष्टि उपगूहन स्थितिकरण वात्सल्य और प्रभावना इसप्रकार ये आठ आठ अंग हैं यहांपर प्रत्येक सम्यग्दर्शनके आठ २ अंगोंकी अपेक्षा आठ २ उपवास लेना चाहिये इसप्रकार जोड़ने पर तीनोंके चौवीस उपवास होते हैं तथा स्थान चौवीस हैं इसलिये पारणा भी चौवीस होती हैं इसरीतिसे इसव्रतमें उपवास और पारणा मिलकर अड़तालीस होती हैं इसके करने की विधि-औपशमिक सम्यग्दर्शनके आठ अंगोंकी अपेक्षा पहिला उपवास पहिली पारणा दूसरा उपवास दूसरी पारणा तीसरा उपवास तीसरी पारणा इत्यादि क्रमसे है तथा यह व्रत अड़तालीस दिनमें समाप्त होता है ॥ ९९ ॥

तपःशुद्धिविधि—तपके दो भेद हैं वाह्य और अभ्यंतर। वाह्यतप-अनशन अवमोदर्य (ऊनोदर) वृत्तिपरिसंख्यान रसपरित्याग विविक्तशय्यासन और कायक्लेशके भेदसे छै प्रकारका है तथा प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग और ध्यान ये छै भेद अभ्यंतर तपके हैं यहांपर वाह्यतपके भेदोंमें प्रथम भेदकी अपेक्षा दो उपवास, दूसरेकी अपेक्षा एक, तीसरेकी अपेक्षा भी एक, चौथेकी अपेक्षा पांच, पांचवेकी अपेक्षा एक और छठेकी अपेक्षा एक इसप्रकार वाह्य तपकी अपेक्षा ग्यारह उपवास समझने चाहिये तथा अंतरंगतपके भेदोंमें प्रथम भेदकी अपेक्षा उन्नीस, दूसरेकी अपेक्षा तीस, तीसरेकी अपेक्षा दश, चौथेकी अपेक्षा पांच, पांचवेकी अपेक्षा दो और छठेकी अपेक्षा एक इसरीतिसे कुल अंतरंग तपकी अपेक्षा सड़सठ उपवास समझने चाहिये। इन वाह्य अभ्यंतर दोनों तपोंके उपवासोंके मिलानेपर अठहत्तर होते हैं इसलिये इस तपःशुद्धि विधिमें अठहत्तर तो उपवास समझने चाहिये और स्थान वारह होनेसे पारणा वारह हैं इसरीतिसे उपवास और पारणा मिलकर इस व्रतमें कुल नव्वे हैं । इसव्रतकी आचरण करनेकी विधि इसप्रकार है-पहिले वाह्य तपके प्रथम भेदकी अपेक्षा ग्रहण किये दो उपवासोंका आचरण करना चाहिये पश्चात् एक पारणा पुनः दूसरे भेदकी अपेक्षा लिया गया एक उपवास करना चाहिये पश्चात् पारणा इत्यादि क्रमसे आगे समझलेना चाहिये तथा यही क्रम अंतरंग तप में भी जानलेना चाहिये । यह व्रत नव्वे दिनमें समाप्त होता है ॥ १०० ॥

चारित्रशुद्धिविधि—चारित्र तेरह प्रकारका माना गया है उसमें सबसे पहिले अहिंसाव्रतके उपवास बतलाते हैं-वादर एकेंद्रिय १ सूक्ष्म एकेंद्रिय २ दो इंद्रिय ३ तेइंद्रिय ४ चौइंद्रिय ५ सैनी पंचेंद्रिय ६ और असैनी पंचेंद्रिय ७ ये सात पर्याप्त जीव और अपर्याप्त जीव इसप्रकार चौदह जीवस्थान हैं इन चौदहो का-मनसे हिंसा न करना, दूसरेसे मनसे न कराना और करतेहुयेकी मनसे अनुमोदना न करना, वचनसे कहकर

न करना, वचनसे कहकर न कराना और करतेहुयेकी वचनसे अनुमोदना (वाह वहुत अच्छा कररहे हो इसप्रकार) न करना, तथा कायसे न करना, दूसरेसे कायसे न कराना और कायसे करतेहुयेकी अनुमोदना न करना इन नव कोटियोंसे गुणा करनेपर अहिंसा व्रतके एकसौ छव्वीस भेद होनेसे एकसौ छव्वीस उपवास होते हैं और एकसौ छव्वीस स्थान हैं इसलिये एकसौ छव्वीस ही पारणा होती हैं इसरीतिसे अहिंसाव्रतमें मिलकर उपवास और पारणा दोसो वावन होती हैं ॥ १०१ ॥

सत्यव्रतके उपवास—सत्यव्रतमें भय ईर्षा स्वपक्ष (अपने पक्षका समर्थन) पिशुनता क्रोध लोभ आत्मप्रशंसा (मान) और परनिंदा (माया) इन आठ बातोंका मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदना इन नौ कोटियोंसे त्याग करना होता है और इन आठ बातोंका मन वचन आदि नौ कोटियोंसे गुणा करनेपर वहत्तर भेद होते हैं इसलिये इसव्रतमें वहत्तर उपवास समझने चाहिये और स्थान वहत्तर हैं इसलिये पारणा भी वहत्तर जाननी चाहिये इसप्रकार इस व्रतविधिमें उपवास और पारणा कुल एकसौ चवालीस हैं ॥ १०२ ॥

अचौर्यव्रतके उपवास—अचौर्यव्रतमें ग्राम अरण्य खल एकांत अन्य ४ उपधि अमुक्तक और पृष्ठग्रहण इस आठप्रकारकी चौरीका मन वचन काय आदि नौ प्रकारसे त्याग किया जाता है और आठका नौसे गुणा करनेपर बहत्तर भेद होते हैं इसलिये इस अचौर्यव्रतमें बहत्तर तो उपवास हैं और बहत्तर ही स्थान हैं अतः बहत्तर ही पारणा समझनी चाहिये इसप्रकार उपवास और पारणा मिलाकर इसव्रतमें कुल एकसो चवालीस हैं ॥१०३॥

ब्रह्मचर्यव्रतके उपवास—ब्रह्मचर्यव्रतमें मनुष्यस्त्री, देवांगना, अचेतनस्त्री, और तिर्यंचनी इन चार प्रकारकी स्त्रियोंका स्पर्शन रसन आदि पांचों इंद्रियोंसे अर्थात् न इन स्त्रियोंका स्पर्श करना चाहिये न देखना चाहिये इत्यादि रीतिसे मन वचन काय आदि नौ कोटियोंद्वारा त्याग किया जाता है इसप्रकार चारका पांचसे गुणा करनेपर वीस होते हैं और वीसका मन वचन आदि नौसे गुणा करनेपर एकसो अस्सी होते हैं इसलिये इस ब्रह्मचर्यव्रतमें एकसो अस्सी तो उपवास हैं और स्थान एकसो अस्सी हैं इसलिये पारणा भी एकसो अस्सी समझनी चाहिये इसरीतिसे उपवास और पारणा कुल मिलकर इसमें तीनसौ साठ हैं ॥ १०४ ॥

परिग्रहपरिमाणव्रतके उपवास—अंतरंग और वाह्य दोनों प्रकारके परिग्रहके—क्रोध आदि चार कषाय हास्य आदि नौ नोकषाय, मिथ्यात्व, दुपाये (दासी दास) चौपाये क्षेत्र धान्य कुप्य भांड धन यान (सवारी) शयन और आसन ये चौवीस भेद हैं परिग्रहपरिमाण व्रतमें इन चौवीसोंका मन वचन आदिसे त्याग करना पड़ता है इसलिये इन चौवीसोंका मन वचन आदि नौ कोटियोंसे गुणा करनेपर दोसौ सोलह होते हैं

इसरीतिसे इस परिग्रह परिमाणव्रतके दोसौ सोलह उपवास जानने चाहिये और यहांपर स्थान दोसौ सोलह हैं इसलिये पारणा भी दोसौ सोलह समझनी चाहिये इसप्रकार इस व्रतमें उपवास और पारणा कुल मिलकर चारसौ वत्तीस हैं ॥ १०५ ॥

रात्रिभुक्तित्याग व्रतके उपवास—यद्यपि यह रात्रिभुक्ति त्याग तेरहप्रकारके चारित्रमें परिगणित नहीं है तथापि गृहस्थके संबंधसे मुनियोंपर भी रात्रिभुक्तिका असर पहुंच सकता है अर्थात् रात्रिमें गृहस्थद्वारा वनाई गई चीज जान बूझकर मुनि ग्रहण करैं तो उसै रात्रिभुक्तिका दोष लग सकता है इसलिये रात्रिभुक्तिका मनवचन आदि नौ कोटियोंसे त्याग करदेना चाहिये तथा अनिच्छासे-(इच्छा न रहनेपर भी भोजनकर लेनेसे) भी न करना चाहिये इसरीतिसे रात्रिभुक्तित्यागमें नौ कोटिके नौ उपवास और अनिच्छासे त्याग करनेका एक इसप्रकार दश उपवास होते हैं और स्थान दश हैं इसलिये पारणा भी दश हैं इसप्रकार इस व्रतमें उपवास और पारणा मिलकर कुल वीस होती हैं।

तीन गुप्तियोंके उपवास—गुप्तियोंके भेद तीन हैं मनोगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्ति। मन वचन काय कृत कारित अनुमोदन रूप नो प्रकारसे मनकी रक्षा करना मनोगुप्ति है। इन्हीं नौ प्रकारसे वचनकी रक्षा करना वचनगुप्ति और उन्हीं नौ प्रकारसे कायकी रक्षा करना कायगुप्ति है इसप्रकार मन वचन आदि नौ कोटियोंकी अपेक्षा मनोगुप्तिके नो भेद और नौ भेदोंकी अपेक्षा नौ उपवास, मन वचन आदि नौ कोटियोंकी अपेक्षा वचनगुप्तिके भी नौ भेद और नौ भेदोंकी अपेक्षा नौ उपवास तथा इन्हीं मन वचन आदि नौ कोटियोंकी अपेक्षा कायगुप्तिके नौ भेद और नौ भेदोंकी अपेक्षा नौ उपवास लिये गये हैं। इसरीतिसे तीनों गुप्तियोंके मिलकर उपवास सत्ताईस होते हैं स्थान भी सत्ताईस हैं इसलिये पारणा भी सत्ताईस समझनी चाहिये तथा उपवास और पारणा इसव्रतमें मिलाकर कुल चौवन हैं।

समितियोंके उपवास-ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेपण और आलोकितपान-भोजनके भेदसे समिति पांचप्रकारकी हैं यहांपर ईर्या, आदाननिक्षेपण और आलोकित-पानभोजन इन तीनोंमें प्रत्येक समिति, मन वचन आदि नौ २ कोटियोंकी अपेक्षा नौ २ प्रकारकी है और नौ २ भेदोंकी अपेक्षा इनके नौ २ उपवास लिये हैं इसलिये तीनोंके मिलकर कुल उपवास सत्ताईस हैं यहां स्थान भी सत्ताईस हैं इसलिये पारणा भी सत्ताईस समझनी चाहिये इसप्रकार इन तीन समितियोंके उपवास और पारणा कुल मिलकर चौवन होते हैं। भाषासमितिमें भावसत्य, उपमासत्य, व्यवहारसत्य, प्रतीति-सत्य, संभावनासत्य, जनपदसत्य, संवृतिसत्य, नामसत्य, स्थापनासत्य, और रूपसत्य इन दश प्रकारके सत्योंका मन वचन आदि नौ प्रकारसे रक्षण करना पड़ता है इसरीतिसे दशका नौसे गुणा करनेपर नव्वे भेद होते हैं अतः इतने ही इस भाषा समितिमें उपवास

होते हैं यहां स्थान नव्वे हैं इसलिये पारणा नव्वे समझनी चाहिये इसप्रकार इस भाषासमितिके उपवास और पारणा एकसौ अस्सी हैं। एषणा समितिमें उद्गम आदि छयालीस दोषोंका मन वचन आदि नौ कोटियोंसे त्याग करना पडता है इसलिये छयालीसका नौसे गुणा करनेपर चारसौ चौदह भेद होजाते हैं और इतने ही इस ऐषणा समितिमें उपवास हैं स्थान भी चारसौ चौदह हैं इसलिये पारणा भी चारसौ चौदह हैं इसरीतिसे इसमें उपवास और पारणा मिलकर कुल आठसौ अट्ठाईस होते हैं। इसप्रकार तेरह प्रकारके चारित्रकी शुद्धिके लिये इस चारित्रशुद्धिविधिमें उपवास बतलाये हैं। चारित्रशुद्धिके सब मिलकर उपवास एक हजार दो सौ चौंतीस हैं और स्थान एक हजार दोसौ चौंतीस होनेसे पारणा भी एक हजार दो सौ चौंतीस होती हैं इसप्रकार इस विधिमें उपवास और पारणा सब मिलकर दो हजार चारसौ अडसठ हैं। इसके आचरण करनेकी विधि पहिला उपवास पहिली पारणा दूसरा उपवास दूसरी पारणा तीसरा उपवास तीसरी पारणा चौथा उपवास चौथी पारणा पांचवां उपवास पांचवी पारणा इत्यादि क्रमसे समझ लेनी चाहिये। यह व्रत छै वर्ष दश महिना आठ दिनमें समाप्त होता है जो महानुभाव इस विशाल पवित्र व्रतका आराधन करता है उसका तेरह प्रकारका चारित्र निर्मल हो जाता है ॥ १०६-११० ॥

कल्याणक विधि—कल्याणक पांच हैं—गर्भ जन्म तप ज्ञान और निर्वाण। इनमें प्रत्येक कल्याणककी अपेक्षा प्रातः कालसे वारह बजे तक कुछ भी भोजन न कर बारह वजेके बाद एक स्थानपर बैठकर भोजन करै दूसरे दिन उपवास करै और तीसरे दिन इमली भात खाय इसीप्रकार पांचो कल्याणकोंमें घटावे इसतरह पांचो कल्याणोंमें पांच एकस्थान पांच उपवास और पांच आचाम्लभुक्त मिलकर कुल पंद्रह होते हैं तथा तीर्थंकर चौवीस हैं और हर एक तीर्थंकरके पांच पांच कल्याण होते हैं इसरीतिसे इस विधिमें चौवीसोंके मिलकर एकस्थान उपवास और आचाम्लभुक्त तीनसौ साठ होते हैं(१) १११-११२॥

शीलकल्याणकविधि—ब्रह्मचर्य व्रतमें एकसौ अस्सी उपवास और एकसौ अस्सी पारणा बतला आये हैं उतने ही उपवास और पारणा यहां समझना चाहिये इसप्रकार इस शीलकल्याणक विधिमें उपवास और पारणा मिलकर तीनसौ साठ हैं यह व्रत भी तीनसौ साठ दिनमें समाप्त होता है और इसके आचरण करनेकी विधि पहिला उपवास पहिली पारणा दूसरा उपवास दूसरी पारणा तीसरा उपवास तीसरी पारणा चौथा उपवास चौथी पारणा पांचवां उपवास पांचवी पारणा इत्यादि क्रमसे ब्रह्मचर्य व्रतके उपवास पारणाओंके समान समझनी चाहिये।

१—निर्विकृतिपश्चिमार्द्धारेकस्थानं तथोपवासश्च । आचाम्लभुक्तमेक तपोविधिरेवेककल्याणः ॥ १११ ॥ पंचकृत्व कृतावश्यांपंचकल्याण उच्यते । चतुर्विंशतिसंख्यान् सा कार्या तीर्थंकरान् प्रति ॥ ११२ ॥

भावनाविधि—हरएक व्रतकी पांच पांच भावना होनेसे पचीस भावना हैं तथा हर एक भावनाकी अपेक्षा एक एक उपवास लिया गया है इसतरह यहां पचीस उपवास लिये गये हैं। स्थान पचीस हैं इसलिये पारणा भी पचीस लीं गई हैं इसरीतिसे इस भावना विधिमें उपवास और पारणा कुल पचास हैं। यहांपर भी पहिला उपवास पहिली पारणा दूसरा उपवास दूसरी पारणा इत्यादि क्रमसे इसव्रतके आचरण करनेकी रीति है और यह विधि पचास दिनमें समाप्त होती है॥ ११३॥

पंचविंशतिकल्याणभावना विधि—भावना विधिमें उपवास पचीस बतलाये हैं इसलिये उतने ही उपवास और पारणा हैं यह विधि भी पचीस दिनमें समाप्त होती है और इसके आचरण करनेकी विधि पहिला उपवास पहिली पारणा दूसरा उपवास दूसरी पारणा तीसरा उपवास तीसरी पारणा इत्यादि क्रमसे है। तथा सम्यक्त्व भावना, विनय भावना, ज्ञान भावना, शील भावना, श्रुतभक्ति भावना, समितियोंकी पांच भावना, तीन गुप्तियोंकी भावना, धर्म्य भावना, शुक्लभावना, संक्लेश और इच्छा निरोधरूप संवरकी पांच भावना, प्रशस्तयोग संवेगभावना, उद्वेगभावना, भोग संसार निर्वेद 'मुक्ति' वैराग्यरूप मोक्षभावना, मैत्रीभावना, कल्याणभावना और प्रमोदभावना इस प्रकार ये कल्याणभावना हैं (१)॥ ११४–११७॥

दुःखहरणविधि—इसविधिमें चारोगतियोंके आधारसे उपवास करने पड़ते हैं नरककी भूमि सात बतलाई हैं वहां प्रत्येक नरककी जघन्य और उत्कृष्ट आयु लेकर दो दो उपवास लेनेसे सातो नरकोंके चौदह उपवास लिये हैं तिर्यग्गतिमें पर्याप्त अपर्याप्त दोनों प्रकारके तिर्यंचोंके चार, मनुष्यगतिमें पर्याप्त अपर्याप्त दोनों प्रकारके मनुष्योंके चार और देवगतिमें सौधर्म ऐशान इन दो स्वर्गोंके दो सनत्कुमार स्वर्गसे अच्युत स्वर्गपर्यंत स्वर्गोंके बाईस नौ ग्रैवेयकोंके अठारह नव अनुदिशोंके दो और पांच अनुत्तरोंके दो उपवास लिये गये हैं इसप्रकार सब उपवास इस दुःखहरणविधिमें अड़सठ स्वीकार किये हैं और स्थान चौंतीस होने से पारणा चौंतीस मानी हैं इस विधिके आचरण करनेकी विधि दो उपवास एक पारणा पुनः दो उपवास एक पारणा इत्यादि क्रमसे है यह विधि एकसौ दो दिनमें समाप्त होती है और इसके आचरण करनेवालेके समस्त दुःख दूर होजाते हैं॥ ११९–१२०॥

कर्मक्षयविधि—नामकर्मकी मूलप्रकृति ब्यालीस न लेकर त्रानवे प्रकृति लीं हैं और सब कर्मोंकी एकसौ अड़तालीस प्रकृति मानी हैं इसलिये पारणा भी एकसौ

१–सम्यत्वविनयज्ञानशीलसत्वा श्रुतश्रिता.। समित्येकातगुप्तीनां भावना धर्मशुक्लगा॥ ११५॥ संक्लेशेच्छानिरोधस्य संवरस्य च भावनाः। प्रशस्तयोगसंवेगकारणोद्वेगभावनाः॥ ११६॥ भोगसंसारनिर्वेदमुक्तिवैराग्यमोक्षजाः। मैत्र्युपेक्षाप्रमोदाता ख्याताः कल्याणभावनाः॥ ११७॥

अड़तालीस हैं इसप्रकार उपवास और पारणा मिलकर कुल इसमें दोसौ छयानवे हैं इस विधिका भी आचरण करनेका प्रकार एक उपवास एक पारणा इत्यादि क्रमसे है। यह विधि दोसौ छयानवे दिनमें समाप्त होती है और इसके आचरण करनेवाले जीवके समस्त कर्मोंका नाश होजाता है ॥ १२१ ॥

जिनगुणसंपत्तिविधि—इस विधिमें गुणशब्दसे पांच कल्याण चौंतीस अतिशय आदि लिये हैं यहां गर्भ आदि पांचो कल्याणोंकी अपेक्षा पांच उपवास चौंतीस अतिशयोंकी अपेक्षा चौंतीस, आठ प्रातिहार्यों की अपेक्षा आठ, और सोलह कारणोंकी अपेक्षा सोलह उपवास लिये हैं इसप्रकार सब मिलकर इस विधिमें त्रेसठ उपवास हैं यहांपर स्थान भी त्रेसठ हैं इसलिये पारणा भी त्रेसठ समझलेनी चाहिये इसरीतिसे उपवास और पारणा कुल इसमें एकसौ छब्वीस हैं इसके आचरण करनेकी विधि एक उपवास एक पारणा पुनः एक उपवास एक पारणा इत्यादि क्रमसे है यह व्रत एकसौ छब्वीस दिनमें समाप्त होता है और इसके आचरण करनेवालेको पांच कल्याण आदिकी प्राप्ति होती है अर्थात् वह तीर्थंकर होजाता है ॥ १२२ ॥

दिव्यलक्षणपंक्ति विधि—लक्षणसे यहांपर वत्तीस व्यंजन, चौसठकला और एकसोआठ लक्षण इसप्रकार दोसो चार लक्षणोंका ग्रहण किया है इसलिये इसव्रत विधिमें दोसौ चार तो उपवास हैं स्थान दोसौ चार हैं इसलिये पारणा भी दोसौ चार समझलेनी चाहिये इसव्रतके आचरणकी विधि एक उपवास एक पारणा पुनः एक उपवास एक पारणा इत्यादि प्रकारसे है। चारसौ आठ दिनमें यह व्रत समाप्त होता है और इसके आचरण-करनेवालेको दिव्य महान और उत्कृष्ट लक्षणोंकी प्राप्ति होती है ॥ १२३ ॥

धर्मचक्रविधि—धर्मचक्रमें हजार अरायें होतीं हैं उनमें प्रत्येक अराकी अपेक्षा एक एक उपवास लिया गया है इसलिये इसव्रतमें हजार उपवास हैं स्थान भी हजार हैं इसलिये पारणा भी हजार समझनी चाहिये इसतरह उपवास और पारणा इसमें कुल दो हजार हैं। एक उपवास एक पारणा पुनः एक उपवास एक पारणा इसी क्रमसे इसव्रतका आचरण करना चाहिये इसव्रतके आदि और अंतमें एक एक वेला करना आवश्यक है यह व्रत दो हजार चार दिनमें समाप्त होता है और इससे धर्मचक्रकी प्राप्ति होती है ॥१२४॥

परस्परकल्याण विधि—पांच कल्याणके पांच उपवास आठ प्रातिहार्योंके आठ और चौंतीस अतिशयोंके चौंतीस इसप्रकार ये सैंतालीस उपवास हैं इन सैंतालीसको चौवीस वार गिननेपर जितनी संख्या सिद्ध हो उतने तो इस विधिमें उपवास समझने चाहिये और जितने स्थान हों उतनी पारणा जान लेनी चाहिये सैंतालीसको चौवीस वार गिननेसे ग्यारह सौ अट्ठाईस होते हैं इसलिये इतने तो इसमें उपवास समझने चाहिये और स्थान भी ग्यारह सौ अट्ठाईस हैं इसलिये इतनी ही पारणा जान लेनी

चाहिये इसप्रकार उपवास और पारणा कुल इसव्रतमें दो हजार दोसौं छप्पन हैं। इसके आचरण करनेकी विधि एक उपवास एक पारणा पुनः एक उपवास एक पारणा इसप्रकार है। यह व्रत दो हजार दोसौ छप्पन दिनमें समाप्त होता है और आचरण करनेवालेका कल्याण करनेवाला है ॥ १२५ ॥ जितनी विधियां ऊपर वतलाई गई हैं उन सबमें पहिले एक वेला और अंतमें तेला अवश्य करना चाहिये ॥ १२६ ॥ उपवासविधिमें चतुर्थक शब्दसे उपवास, षष्ठ शब्दसे वेला, और अष्टम शब्दसे तेला लिया गया है तथा इसीप्रकार आगे दशम शब्दसे चौला आदि छै मास पर्यंत उपवास समझने चाहिये ॥ १२७ ॥ प्रतिपदसे लेकर पंचदशी पर्यंत उपवास करने चाहिये जैन शासनमें उसके बहुतसे भेद बतलाये हैं और वे आचरण करनेवालोंको अनेक प्रकारके सुख प्रदान करनेवाले हैं ॥ १२८ ॥ भादों सुदी सातेंके दिन उपवास करना परिनिर्वाण विधि कही जाती है इसके आचरण करनेसे अनंत सुखरूप फलकी प्राप्ति होती है और प्रतिवर्ष इसविधिका आचरण करना ही चाहिये ॥ १२९ ॥ भादों वदी छठके दिन उपवास करना सूर्यप्रभ नामकी विधि है और भादों वदी त्रयोदशीके दिन उपवास करना चंद्रप्रभ नामकी विधि कहलाती है ॥ १३० ॥ अश्विन सुदी एकादशीके दिन उपवास करनेसे कुमारसंभव नामकी विधि होती है और द्वादशीको उपवास करनेसे सुकुमार नामकी विधि कहीजाती है एवं ये दोनों विधि हजारों फलोंकी देनेवालीं और प्रसिद्ध हैं ॥ १३१ ॥ तथा आश्विनवदी द्वादशीके दिन उपवास करनेसे नंदीश्वर विधि होती है और कातिक सुदी तीजके दिन उपवास करनेपर सर्वार्थ नामकी विधि संपन्न होती है ॥१३२॥ सुदीकी आठ एकादशियोंमें लड़ीवद्ध आठ उपवास करनेसे आठ प्रातिहार्योंकी प्राप्ति होती है और वदीकी छचासी एकादशियोंमें छचासी उपवास करनेपर अनंत फलकी प्राप्ति होती है। अगहन सुदी तृतीयाके दिन उपवास करनेसे भी अनंत फलकी प्राप्ति होती है और जो मनुष्य पहिले एक वेलाकर अगहन सुदी चौथके दिन उपवास करता है उसे विमानोंका राज्य मिलता है ॥ १३३–१३४ ॥

जीवोंको शक्तिके अनुकूल इन विधियोंका आराधन करना चाहिये क्योंकि ये विधि साक्षात् और परंपरासे स्वर्ग और मोक्ष सुख प्रदान करनेवाली हैं ॥ १३५ ॥ इसप्रकार इन विधियोंके आचरण करनेवाले मुनि सुप्रतिष्ठने शुद्ध षोडश कारण भावना भानेसे तीर्थंकर प्रकृतिका बंध बांधा ॥ १३६ ॥ भगवान जिनेंद्रद्वारा प्रतिपादित मोक्षमार्गमें निःशंकित आदि आठ अंगों सहित श्रद्धा रखना दर्शनविशुद्धि है और यह तीर्थंकर प्रकृतिके बंधमें प्रथम कारण है ॥ १३७ ॥ ज्ञान दर्शन आदि गुणोंमें और उनके धारण करनेवालोंमें कषायोंकी निवृत्तिपूर्वक जो आदर करना है वह तीर्थंकर प्रकृतिकी कारणभूत विनयसंपन्नता नामक दूसरी भावना है ॥ १३८ ॥ निर्दोष मन वचन

कायकी प्रवृत्तिपूर्वक शील और व्रतोंकी रक्षाकरना–व्रतोंमें किसी प्रकारका अतिचार न आनेदेना शीलव्रतेष्वनतिचार नामकी तीसरी भावना है ॥ १३९ ॥ अज्ञान-निवृत्तिरूपी फलके धारक प्रत्यक्ष परोक्षरूप ज्ञानमें सदा उपयुक्त रहना–स्वाध्याय आदि करना ज्ञानोपयोग भावना है ॥ १४० ॥ जन्म जरा मरण रोग आदि मानसिक और शारीरिक दुःखरूप संसारसे सदा भयभीत रहना संवेग भावना है ॥ १४१ ॥ आहारदान अभयदान औषधिदान और ज्ञानदान देना त्याग भावना है ॥ १४२ ॥ शक्तिको न छिपाकर महा अपवित्र क्षणभरमें विनाशीक मिट्टीके समान शरीरको उत्तम कार्य तप आदिमें लगाना तप भावना है॥ १४३ ॥ भंडारमें लगी हुई अग्निके उपशमके समान साधुओंके संयममें आये हुये विघ्नको शांतकर उनके संयमकी रक्षा करना साधुसमाधि भावना है ॥ १४४ ॥ गुणवान साधुओंके क्षुधा तृषा व्याधि आदिसे उत्पन्न हुये दुःखको शुद्ध प्रासुक द्रव्यसे दूर करना वैयावृत्य भावना है ॥ १४५ ॥ भगवान अर्हंतके गुणोंमें अनुराग करना अर्हद्भक्ति है। आचार्यके गुणोंमें अनुराग करना आचार्यभक्ति, उपाध्यायोंके गुणोंमें अनुराग करना उपाध्याय (बहुश्रुत) भक्ति और प्रवचन (शास्त्र) में भक्ति करना प्रवचनभक्ति भावना है ॥ १४६ ॥ सामायिक स्तवन वंदना प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग इन छै प्रकारके आवश्यकोंको यथा–काल करना आवश्यकापरिहाणि भावना है ॥ १४७ ॥ समस्त सावद्य योगोंका त्याग करदेना एकाग्र चित्त रखना सामायिक नामका आवश्यक है चौवीसों तीर्थंकरोंके गुणोंका स्तवन कीर्तन करना स्तवन आवश्यक है पर्यंकासन और पद्मासन इन दो प्रकारके आसनोंसे शुद्ध बारह प्रकारके आवर्त्तोंसे भूषित देव शास्त्र गुरुको वारवार नमस्कार करना सो वंदना आवश्यक है॥१४८–१४९॥ द्रव्य क्षेत्र काल भावोंद्वारा किये गये प्रमादका मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक परिहार करना प्रतिक्रमण है ॥ १५० ॥ होनेवाले दोषोंका त्यागकरना प्रत्याख्यान है और कुछ कालकी मर्यादा कर शरीरसे ममता छोड़देना कायोत्सर्ग आवश्यक है ॥ १५१ ॥ परसिद्धांतोंके निराकरण करनेमें समर्थ ज्ञान तप जिनपूजन आदि द्वारा जो मोक्षमार्गका प्रकाश करना है वह मार्ग-प्रभावना भावना है ॥१५२॥ और वच्छेमें गायके समान सहधर्मी भाईयोंमें प्रेमरखना प्रवचनवत्सलत्व भावना है ॥ १५३ ॥ ये सोलह कारण चाहैं इनमें एक भाया गया हो चाहैं सब भाये गये हों तीर्थंकर प्रकृतिके बंधके कारण हैं ॥१५४॥ इसप्रकार तीनलोकके आसनोंको कंपायमान करनेवाले महापुण्यस्वरूप–तीर्थंकर प्रकृतिसे भूषित मुनिराज सुप्रतिष्ठने एक मासका आहार त्याग दिया निर्मल बुद्धिसे भलेप्रकार आराधना आराधी और आयुके अंतमें मरकर जहांपर तेतीस सागरकी आयु है ऐसे जयंत विमानमें अहमिंद्र होकर वहांके दिव्य सुखका भोग करने लगे ॥ १५५ ॥ अब मुनिराज सुप्रतिष्ठका

जीव संसारमें सारभूत अनुपम अहमिंद्रके सुखका त्यागकर और वहांसे चयकर राजा समुद्रविजयके रानी शिवादेवीके गर्भमें मति आदि तीनों ज्ञानरूपी नेत्रोंसे तीनोंलोककी स्थिति जाननेवाला हरिवंशका तिलक नेमिनाथ नामका बावीसवां तीर्थंकर होगा ॥१५६॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथके चरित्रवर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें महोपवासविधि वर्णन करनेवाला चौतीसवा सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३४ ॥

पैंतीसवां सर्ग।

इसप्रकार मुनिराज अतिमुक्तकसे भगवान नेमिनाथके पूर्वभवोंको सुन राजा वसुदेव परम आनंदित हुये और मुनिराजको नमस्कार कर रानी देवकीके साथ अपने स्थान चले आये ॥ १ ॥ राजा वसुदेव और देवकी पहिले जिसप्रकार निर्द्वंद्व हो मथुरापुरीमें सानंद क्रीड़ा किया करते थे उसीतरह फिर भी करने लगे और अपनी मृत्युसे सदा शंकित राजा कंस पूर्णतया इनकी सेवा शुश्रूषा करने लगा ॥ २ ॥ कुछ दिनकेबाद कंसके भयका कारण प्रथम ही प्रथम देवकीने युगल रूप बालकोंका गर्भ धारण किया— उसकेगर्भमें नृपदत्त और देवपाल कुमारोंके जीव आये। यद्यपि कंस, बालकोंका नाश करना चाहता था इसलिये राजा वसुदेवको उससे पूरा पूरा भय करना था परंतु बालकोंकी रक्षामें उनके देव सहायी थे इसलिये उन्होंने उसका तनिक भी भय न किया ॥३॥ जिससमय रानी देवकीके युगलिया पुत्र उत्पन्न हुये तत्काल इंद्रकी आज्ञासे वहां सुनैगम नामा देव आया और उन बालकोंको उठाकर सुभद्रिल नगरके सेठ सुदृष्टिकी स्त्री अलका (पूर्वभवकी रेवती धायका जीव) के यहां पहुंचा दिया। उस-समय अलकाके भी युगलिया पुत्र हुये थे और वे मरे हुये थे इसलिये देवने उन्हैं देव-कीके यहां प्रसूतिघरमें ला रक्खा और अपने स्थान चला गया॥ ४–५ ॥ देवकीके उत्पन्न हुये पुत्रोंकी खबर राजा कंसको भी हुई जिससे कि वह तत्काल देवकीके पास प्रसूति-घरमें चला आया। यद्यपि वे दोनों बालक मरे हुये थे तो भी उसने अपने मरणके भयसे उन्हैं उठालिया और चांडालके समान कठोर परिणामी हो पैरोंको पकड़ उनको किसी शिलापर पछाड़ मारा ॥ ६ ॥ देवकीके फिर भी अनीकदत्त अनीकपाल और शत्रुघ्न जितशत्रु चारो कुमारोंके जीव क्रमसे दो समय युगलिया रूपमें उत्पन्न हुये देवने उसीप्रकार उन्हैं भी पुत्रोंकी अतिशय अभिलाषिणी सेठानी अलकाके यहां पहुंचा दिया और दुष्ट कंसने मरे हुये ही अलकाके बालकोंको पहिलेके समान शिलापर पछाड़ २ कर मन समझाया ॥ ७ ॥ राजा वसुदेवके पुत्र सुभद्रिलपुरमें सेठानी अलकाके यहां विघ्नरहित, अपने पूर्वपुण्यसे सुरक्षित हो भलेप्रकार पोषित होनेसे दिनोंदिन बढ़ने लगे और उनके नृपदत्त देवपाल आदि नाम जो पहिले कह आये हैं रक्खे गये ॥ ८ ॥ क्यों

ज्यों ये बालक बड़े होते गये त्यों त्यों इनके पुण्यसे सेठ सुदृष्टिके यहां विभूति भी दिनोंदिन बढ़ती चली गई–उसे उत्तमोत्तम अपूर्व अपूर्व पदार्थोंका लाभ होनेलगा–उससमय सेठ सुदृष्टिकी विभूतिके सामने राजाकी विभूति भी तुच्छ मालूम होने लगी ॥ ९ ॥ उत्पन्न होते ही उत्तम संतानका वियोग सबको दुःखदायक होता है इसलिये जन्मकालमें ही अपने पुत्रोंका वियोग देख रानी देवकीको बड़ा दुःख हुआ परंतु राजा वसुदेवने यथार्थ वृत्तांतका स्मरण करा उसका दुःख दूर करदिया इस कारण फिर भी उसके शरीरकी कांति द्वितीयाके चंद्रमाकी कलाके समान दिनोंदिन बढ़ने लगी ॥१०॥

एकदिन रानी देवकी अपने महलमें चंद्रमाके समान शुभ्र उत्तम सेजपर सानंद सो रही थी अचानक ही जब रात्रिका अंतिम भाग शेष रह गया तो उसे–देदीप्यमान अंधकारका नाशकरनेवाला ऊगता हुआ सूर्य, गोल मनोहर पूर्ण चंद्रमा, दिग्गजोंसे अभिषिक्त लक्ष्मी, आकाशसे पृथ्वीपर उतरता हुआ विमान, जलती हुई अग्नि, देवोंकी ध्वजा, और रत्नोंकी राशि ये सात स्वप्न दीख पड़े एवं इन स्वप्नोंके देखनेकेबाद उसे उदरमें प्रवेश करता हुआ एक पराक्रमी सिंह भी मालूम हुआ जिससे कि मारे भयके कांपती हुई वह शीघ्र ही उठकर बैठ गई ॥ ११–१३ ॥ अपूर्व स्वप्नोंके देखनेसे देवकीको बड़ा आश्चर्य हुआ मारे आनंदके उसका समस्त शरीर पुलकित होगया। प्रातःकालकी नित्यक्रियाकर और भूषण वसन पहिन वह तत्काल अपने पति राजा वसुदेवके पास गई और उनसे स्वप्नोंका सारा समाचार कह फल पूछने लगी। स्वप्नोंका फल उत्तम समझ, राजा वसुदेवको परम आनंद हुआ और वे इसप्रकार कहने लगे–

प्रिये! तुम्हारें–अपने प्रतापसे शत्रुओंका मान मर्दन करनेवाला, समस्तलोकको प्रिय, परमसौभाग्यवान, राज्याभिषेकके योग्य, परम कांतिका धारक निर्भीक, समस्तपृथ्वीका स्वामी, स्वर्गसे चयकर पुत्र उत्पन्न होगा और वह बहुत जल्द होगा ॥१४–१५ ॥ पतिके मुखसे ऐसे संतोषजनक वचन सुन रानी देवकीको परमानंद हुआ और जिसप्रकार आकाशरूपी स्त्री मेघको धारण करती है उसीप्रकार समस्त जीवोंको हितकारी संतापके शांत करनेवाले बालकको गर्भमें धारण किया ॥ १६ ॥ गर्भस्थ बालक जैसा जैसा बड़ा होता गया पृथ्वीपर समस्त मनुष्योंका आनंद भी वैसा ही वैसा बढ़ता गया रानी देवकीके शरीर एवं चित्तको भी उत्तरोत्तर परमसुख होता गया ॥ १७ ॥ परंतु उसके गर्भसे राजा कंसका मन दिनोंदिन क्षुब्ध होनेलगा वह पापी बालकके अनेक उत्तमोत्तम गुणोंकी गणना न कर गुप्तरूपसे रक्षाके साथ २ दिनोंदिन बालककी उत्पत्तिके दिन और मास संभालने लगा। दुष्ट कंसको तो यह ख्याल था कि कृष्ण अन्य लोगोंके समान नौमासके बाद जाकर उत्पन्न होगा परंतु वह उत्तम श्रमण नक्षत्रमें भादोंसुदी द्वादशीके दिन सातवें महिनामें ही

गुप्तरूपसे उत्पन्न होगया ॥ १९ ॥ बालक कृष्ण, शंख चक्र आदि सुलक्षणोंसे मंडित और देदीप्यमान नीलमणिके समान चमकीला था इसलिये उत्पन्न होते ही उसने अपने शरीरकी दीप्तिसे देवकीका प्रसूतिगृह जगमगा दिया ॥ २० ॥ नरोत्तम कृष्णके उत्पत्तिकालमें उसके स्नेही बांधवोंके घरोंमें स्वाभाविक शुभ निमित्त होने लगे और उसके विरोधियोंके यहां अशुभ निमित्त होनेलगे ॥ २१ ॥ उनदिनों बराबर सात दिनसे मेघकी झड़ी लगी हुई थी इसलिये उत्पन्न होते ही बलभद्रने तो बालकको गोदमें लिया और वसुदेवने उसके ऊपर छत्रताना एवं दोनों महानुभाव तत्काल घरसे बाहिर चलदिये ॥ २२ ॥ वह समय रात्रिका था सारा नगर उससमय निद्रामें निद्रित था कंसके रक्षक सुभट भी उससमय नींदके जोशमें खुर्राटे भररहे थे इसलिये विना किसीके देखे सुने वे बालकको नगरके प्रधान दरवाजेतक ले आये। यद्यपि नियमानुसार वह (दरवाजा) उससमय बंद था परंतु बालकके चरणोंके प्रसादसे शीघ्रही खुलगया ॥२३॥ दरवाजेपर आतेही बालकके नाकमें मेहकी बूंद चलीगई इसलिये उसै छींक आ गई। दरवाजेके ऊपर कंसके पिता राजा उग्रसेन कैद थे बालककी छींकका मेघके समान गंभीर नाद सुन वे चौंक पडे और सहसा "संसारमें तू चिरकाल तक निर्विघ्नरूपसे जीवो" ये वचन बोल उठे। परमहितैषी राजा उग्रसेनके मुखसे ऐसा प्रिय आशीर्वाद सुनकर राजा वसुदेवको बड़ा संतोष हुआ और वे इसप्रकार निवेदन करनेलगे—

'पूज्य! इस रहस्यका किसीको भी पता न लगेइस देवकीकेपुत्रसे नियमसे आप बंधनसे मुक्त होंगे' उत्तरमें उग्रसेनने कहा—

अहा! यह मेरे भाई देवसेनकी पुत्री देवकीका पुत्र है मैं इसकी बात किसीको नहिं कह सकता मेरी अंतरंग कामना है कि यह दिनोंदिन बढे और वैरीको इसका पता तक भी न लगे। कुमार बलभद्रके साथ राजा वसुदेवने उग्रसेनके वचनोंकी हृदयसे अभिनंदना-सराहना की और बालकको ले तत्काल नगरीसे बाहर निकल गये ॥ २४-२६ ॥ मार्गमें जाते समय बालक कृष्णके प्रतापसे नगरीके देवने बैलका रूप धारणकर अपने सींगोंपर दीपक रख मार्ग दिखाया और मार्गमें जो बड़े प्रवाहसे यमुना नदी वह रही थी उसका प्रवाह विलकुल सूक्ष्म होगया-उसमें रास्ता होगई ॥ २७ ॥ नदीको पार-कर वे लोग वृंदावन पहुंचे उससमय वृंदावनमें सुनंद नामका गोपाल रहता था उसकी विशाल गोशाला थी रातिमें वसुदेव आदिको जाते हुये देख वह तत्काल अपनी स्त्री यशोदाके साथ इनके पास आया और इनके चरणोंमें गिरगया गोपालको देखते ही वसुदेवके हृदयमें सहसा स्नेह फडकने लगा उन्होंने उसीसमय बालकको गोपाल सुनंदके हाथ सोंप दिया और इसप्रकार कहा—

देखो भाई! यह बालक विशाल नेत्रका धारक है नेत्रोंको कांतिमय अमृतका

वर्षानेवाला है इसे तुम अपना निजका पुत्र समझ बढ़ाना और इसके गुप्त रहस्यका किसीको भी पता न चलने देना ॥ २८-२९ ॥ उससमय ग्वालिनी यशोदाके भी एक पुत्री हुई थी शत्रुको विश्वास दिलानेकेलिये वसुदेव उस पुत्रीको ले आये और आकर रानी देवकीको सौंप कुमार बलभद्रके साथ गुप्तरूपसे अपने स्थानपर चले गये ॥ ३० ॥ प्रातःकाल होते ही राजा कंसको भी देवकीके प्रसवका पता लगा। और सुनते ही वह निर्दयी तत्काल उसके प्रसूतिगृहमें घुस आया उससमय वहांपर एक निर्दोष कन्या पड़ी थी उसे देख यद्यपि कंसको क्रोध तो न आया परंतु शायद इसका पति न मेरा बैरी हो' इस शंकाने उसै उथल पुथल बनादिया उसने तत्काल कन्याको हाथसे उठाया और मिसलकर उसकी नाक चिपटी करदी ॥ ३१-३२ ॥ इसप्रकार पुत्रोंके मारनेसे देवकीके मनको अति संताप देनेवाला, और पुत्रोंकी मृत्युसे अपनेको कृतकृत्य माननेवाला, वह राजा कंस अंतरंगमें क्रूरता धारण किये हुये मथुरामें सुखसे रहने लगा। और उधर देवकीके पुत्रका गोकुलमें जातकर्म किया गया और शुभनाम कृष्ण रक्खा गया कुमार कृष्ण सुनंद और यशोदाको अपूर्व (कभी अनुभवमें न आई ऐसी) प्रीति बढ़ाता हुआ दिनोंदिन बढ़नेलगा ॥ ३३-३४ ॥ बालकके हाथ और पैर गदा खड्ग चक्र अंकुश शंख पद्म आदि उत्तमोत्तम रेखाओंसे मंडित और ललोंये थे इसलिये सुंदरतासे समस्त गोप गोपियोंके मनोंको हरणकरता था उसका रूप नीलकमलके मानिंद महाकमनीय था उसे वार वार देखनेसे भी गोपियोंके नेत्र तृप्त नहिं होते थे। अतिशय दुग्धको धारण करनेवाले स्तनोंसे मंडित वे दूध पिलानेके वहानेसे बालककी ओर टकटकी लगाकर देखतीं रहतीं थी ॥ ३५-३६ ॥

एकदिन वरुणनामका ज्योतिषी जो कंसका बड़ाही हितैषी था आया और आशीर्वाद दे राजासे कहनेलगा—राजन् ! कहीं नगर अथवा वनमें तुम्हारा वैरी प्रकट हो बढ़रहा है श्रीमान्‌को उसे जल्दी ही खोजना चाहिये ॥३७॥ ज्योतिषीके ये वचन सुन राजा कंसको बड़ा भय हुआ और आठ दिनका उपवास धारण कर वैरीके नाशकी अभिलाषा करने लगा। पूर्वभवमें राजा कंसको उग्र तपके प्रभावसे देवियां वश होगई थीं और उसने उनसे यह वायदा करालिया था कि यदि आगेके भवमें मुझै काम पड़े तो मेरी सहायता करना इसलिये स्मरण करते ही अपने वायदाके अनुकूल वे पुनः प्रकट हुई और उसके अभिमतकी सिद्धिकेलिये कहने लगीं—

"पूर्वभवमें तुमने तपके प्रभावसे हमैं वश किया था अब हम हाजिर हैं कहिये क्या काम है ? बलभद्र और नारायणको छोड़कर तुम्हारा जो वैरी होगा उसे हम एक लहमेमें मार सकती हैं ?" ॥ ३८-३९ ॥ उत्तरमें कंसने कहा—

कोई गुप्तरूपसे कहींपर मेरा वैरी बढ़ रहा है तुम उसे अभी तलाशकरो और

निर्दय हो तत्काल उसे मृत्युके मुखमें पहुंचा दो" ॥ ४० ॥ कंसकी यह आज्ञा सुन वे देवियां उसके शत्रुकी खोज लगाने लगीं और खोज लगते ही कृष्णके मारनेके लिये प्रयत्न करने लगीं उनमेंसे एकने चट पक्षीका रूप धारण करलिया और बालकके संमुख जा उसे लुभाने लगी। बालक प्रचंड पराक्रमी था उसने बड़े जोरसे उसकी चूंच धर दबाई जिससे कि चिल्लाती हुई वह एक ओर भाग गई ॥४१॥ दूसरी देवी भयंकर मूर्तिकी धारक कुपूतना बन गई और स्तनोंके अग्रभागमें विष लगाकर कृष्णको दूध पिलाने लगी परंतु कृष्णकी रक्षामें बड़े बड़े देव सहायी थे कृष्णके मुखमें देवोंने ऐसा अतिशय कर दिया कि स्तनके अग्रभागको उससे कुतरकर दर्दके मारे पूतनाको रुला दिया ॥४२॥ इसप्रकार सोता हुआ, बैठता हुआ, छातीकेभर जमीनपर रिंगता हुआ, भूमिपर पंगे पंगे पैर धरता हुआ, दौड़ता हुआ, मधुर २ तोतली बोली बोलता हुआ, मक्खन दही आदि खाता हुआ वह बालक सुखसे रात दिन व्यतीत करने लगा ॥ ४३ ॥ एक दिन तीसरी देवी पिशाचिनीका रूप धारणकर अंजनगिरिके समान नील भाग्यशाली, कृष्णके पास उनके मारनेके लिये आई यद्यपि कृष्ण उससमय बालक थे तो भी पिशाचिनीको देख मारे क्रोधके वे उबल उठे और लात मार उसे दूर भगा दिया ॥ ४४ ॥ एक दिन दो देवियोंने मिलकर जमल और अर्जुन दो वृक्षोंका रूप धारण किया और कृष्णको दबाकर मारना चाहा उसदिन कृष्ण अधिक उपद्रव करते थे इसलिये यशोदाने उनको विलोडनेकी डोरीसे उलूखलमें पैर देकर बांधदिया था। महाप्रतापी कृष्ण डोरी तोड़कर और उलूखलको फैंककर घरसे निकल भागा और दाहीं वाहीं ओर खड़े हुवे जमला और अर्जुन वृक्षोंको उखाड़कर दूर फैंक दिया ॥ ४५ ॥ बालकालमें ही कृष्णका यह पराक्रम देख सुनंद और यशोदा बड़ा आश्चर्य करने लगे और बड़े आनंदसे पालपोषकर उसे गोकुलमें बढाने लगे ॥ ४६ ॥ एक दिन कृष्णके मारनेके लिये छठी देवीने जो चारो ओर भयंकर शब्द करता फिरता था और अपने शब्दसे गंभीर ध्वनि करनेवाले समुद्रके शब्दकी तुलना करता था ऐसे बैलका रूप धारण किया परंतु सुंदर कंठसे भूषित कृष्णने उसको कंठ पकड़ दूर भगा दिया ॥ ४७ ॥ सातवीं देवीने कृष्णके मारनेके लिये भयंकर पत्थरोंकी वर्षा करनी प्रारंभ करदी पत्थरोंकी मारसे गोप गोपियां और गौयें तमाम व्याकुल हो उठे यह देख प्रतापी कृष्णने अपनी विशाल भुजाओंसे गोवर्धन पर्वतको उठाया और उसको अपने मस्तकपर छत्रीके समान तानकर सबको बचा लिया ॥ ४८ ॥ बालकके इस अमानुषिक कृत्यका पता कुमार बलभद्रको लगा और उन्होंने जा माता देवकीको कह सुनाया जिससे कि वह आनंदित हो उपवासके बहाने पुत्रको देखनेके लिये गोकुलकी तरफ चलदी ॥ ४९ ॥ जिससमय वह गोवर्धन पर्वतके पास गोकुलमें

पहुंची तो जो वहां गोपालोंके बालक अपने कोमल २ कंठोसे मधुर २ गान गारहे थे और गौओंके उन्नत घंटाओंके शब्द हो रहे थे वे उसै सुन पडे ॥ ५० ॥ उससमय उसको कहीं तो बालक कृष्णके वर्णके समान गहरे नील वर्णसे व्याप्त गायें दीखीं और कहीं बलभद्रके वर्णके समान सफेद गायें दीखीं इसलिये गोकुलको देख उसे परम आनंद हुआ सो ठीक ही है संतानकी तुलना करनेवाली भी वस्तु आनंद देनेवाली होती है ॥ ५१ ॥ केवल तृण और जलसे पेट भरनेवाली, स्तनोंको पीते हुये वछडोंसे शोभित, गोपालोंसे दोही गई, घडोंके समान उन्नत स्तनोंसे मंडित, गौओंको गोशालामें देखकर मारे आनंदके रानी देवकीका शरीर पुलकित होगया ॥ ५२ ॥ उससमय अतिशय गंभीर वछड़ोंके साथ २ कियेगये गौओंके शब्दोंने और गोपियोंद्वारा मथेगये दधिके शब्दोंने कृष्णकी माता देवकीके मनको सर्वथा हरलिया बड़े प्रेमसे वह उन्हें सुननेलगी सो ठीक भी है धीर गंभीर शब्द किसके मनको हरण नहिं करते ॥ ५३ ॥ हृदयमें अतिशय आनंदित गोपाल सुनंदने परमपवित्र यशको धारण करनेवाली अतिशय चतुर स्वामिनी देवकीको अपनी स्त्री यशोदा तथा अन्य गोपालोंके साथ २ भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ॥ ५४ ॥ और उसीसमय ग्वालिनी यशोदाने यशस्वी दयावान् कृष्णको भी अपने पास बुला उन्हें प्रणाम कराया उससमय बालक कृष्ण दो पीत वस्त्र (धोती दुपट्टा) पहिने थे मयूरोंकी वहौं (डढ़ीरों) का मुकुट बांधे थे अखंड नीलकमलोंकी माला डालें थे सुंदर कंठीसे भूषित कंठसे शोभित थे उनके कान सुवर्णमयी आभरणोंसे जगमगाते थे मस्तकपर लालरंगके पुष्पोंका सेहरा था कलाईयोंमें सुवर्णमयी कड़े पड़े थे अनेक गोपालोंके बालकोंसे भूषित हो वंशी बजाते थे इसलिये परम रमणीय जान पड़ते थे। बालक कृष्णको गोपवेषसे भूषित देख माता देवकीको परम आनंद हुआ वह वार वार उसके शरीरपर हाथ फेरने लगी मारे आनंदके उससमय उससे चुप न रहागया वह यशोदासे कहने लगी--

प्रिय यशोदे! ऐसी सुंदर संतान पाकर तुम्हारा इस गहनवनमें भी रहना परम प्रसंशनीय है संसारमें राज्यका भी लाभ होजाय परंतु यदि कोई संतान न हो तो वह किसी कामका नहीं उससे तो यह सुंदर संतानके साथ वनका निवास सौगुना अच्छा है॥५५-५८॥ यह सुन यशोदाने कहा—

स्वामिनी! आपने कहा है वह विलकुल ठीक है मेरे मनको परम संतोष देनेवाला यह आपका दास आपकी पवित्र आशीर्वादसे चिरंजीव रहै यही प्रार्थना है" ॥ ५९ ॥ पुत्रके देखनेसे रानी देवकीके स्तन दुग्धसे परिपूर्ण होगये उनसे क्षरतेहुये दूधको वह जरा भी न रोक सकी सो ठीक ही है चित्तमें भेद पड़जानेपर फिर वातका छिपा रहना कठिन है अर्थात् जब तक रानी देवकीके मनमें यह विचार न आया कि यह

मेरा पुत्र है तब तक तो उसे कुछ भी न हुआ किंतु ज्योंही आनंदमें मग्न हो उसने यह विचारा कि यह मेरा पुत्र है और मैं इसकी मा हूं तत्काल उसके स्तनोंसे दूध निकलने लगा जिससे कि ऐसा जान पड़ा मानो उसने कृष्णको यह अपना भीतरी भाव प्रकट किया कि—बेटा ! मैंने तुझे किसी द्वेपसे जुदा नहिं किया है किंतु वैरीके भयसे जुदा किया है ॥६०—६१॥ माता देवकीकी यह दशा देख और 'यह वृत्तांत वैरीके कानतक न पहुंच जावे' यह विचारकर कुमार बलभद्रको बड़ा भय हुआ उसबातके छिपानेके लिये तत्काल उन्होंने दूधके घड़ोंसे अपने हाथसे माताका अभिषेक किया सो ठीक ही है बुद्धिमान पुरुष समयपर कभी नहिं चूकते ॥ ६२ ॥ इसप्रकार वहांका सब काम समाप्त कर कृष्णके देखनेसे अतिशय आनंदित माताको कुमार बलभद्र मथुरा ले आये और उसका सारा समाचार अपने पिताको भी निवेदन कर सुना दिया ॥ ६३ ॥ कुमार बलभद्र प्रतिदिन गुप्तरूपसे गोकुल जाते और बालक कृष्णको शस्त्रविद्या सिखाया करते थे। कृष्ण भी बुद्धिके पुतले थे इसलिये बहुत जल्दी शस्त्र विद्यामें निपुण हो गये। सो ठीक ही है—यदि शिष्य नम्रीभूत हो और उसको एकाग्र एवं निष्कपट चित्तसे उपदेश दिया जाय तो उसके शिक्षणमें अधिक कालकी आवश्यकता नहिं पड़ती—विनय और निष्कपटतासे शिष्यको बहुत जल्दी विद्याका लाभ होजाता है ॥ ६४ ॥ कुमार कृष्णका हृदय परम कोमल और पवित्र था जिससमय वे बाल्य अवस्थाका परित्याग कर कुमार (यौवन) अवस्थामें आये तो परमयुवती प्रस्फुट स्तनोंसे शोभित अनेक गोप कन्याओंके साथ रासक्रीड़ा करने लगे अपने हाथ और अंगुलियोंके स्पर्शसे गोपियों को सुखानुभव कराने लगे परंतु कामजनित विकारोंसे उनका मन जरा भी चपल न हुआ—जिसप्रकार सोनेकी मुदरीमें मणि निर्विकार रूपसे रहता है कुमार कृष्ण भी गोपियोंके मध्यमें निर्विकार रूपसे रहने लगे ॥ ६५—६६ ॥ कुमार कृष्णके मिलने पर मनुष्योंका जैसा उनमें अधिक अनुराग हो जाता था उसीप्रकार उनके विरहकालमें उन्हैं विरहदुःख भी बुरी तरह सताता था ॥ ६७ ॥ कृष्णका लोकोत्तर पराक्रम सुन एकदिन कंसको इनमें संदेह होगया और वह इन्हें वैरी जान इनकी तलाशमें गोकुल आया। माता यशोदाको इसबातका पता लग गया कंसके आनेके पहिले ही कृष्णको वह किसी प्रयत्नसे वनमें लेगई ॥ ६८ ॥ वनमें एक भयंकर पिशाचिनी—जो कि रूक्षनेत्रोंसे युक्त और जोरसे हंस रही थी बैठी थी कृष्णको देखते ही उसने खानेके लिये शरीर बढ़ाया परंतु कृष्णने अपने पराक्रमसे उसे देखते देखते ही मार भगादिया ॥ ६९ ॥ वहांपर एक शाल्मली वृक्षकी लकड़ीका मंडप तयार हो रहा था और ऐसे ऐसे विशाल खंभे पड़े थे जो दूसरे मनुष्य उन्हैं चिगातक नहि सकते थे पराक्रमी कु-मार कृष्णने अकेले ही उन्हैं मंडपपर चढ़ा दिया। माता यशोदाको उसकी इस वीरता

पर बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ ही इसबातका दृढ़ विश्वास होजानेसे कि 'यह असाधारण पुरुष है इसे कोई मार नहि सकता' वह अपने घर लौट आई ॥७०॥ दुष्टात्मा स्वार्थी कंसको जब कृष्ण गोकुलमें न पाये तो वह मथुरा लौट आया उससमय उसके यहां सिंहोंसे वाहित नागशय्या, धनुष, और पांचजन्य शंख ये तीन वस्तुयें प्रकट हुई थी इसलिये ज्योतिषीके वचनानुसार उसने अपने शत्रुकी तलाशीकेलिये सारे नगरमें यह कपट घोषणा फिरवादी कि—

"जो महापुरुष नाग शय्यापर सवार हो धनुष चढ़ा कर पांचजन्य शंख बजायगा वह पुरुषोंमें उत्तम और अनन्य पराक्रमी समझा जायगा मैं हर्षित हो उसै अभीष्ट पदार्थ दूंगा और इसके सिवाय दूसरेकेलिये सर्वथा अलभ्य अपनी कन्या भी प्रदान करूंगा" ॥७१–७२॥ कंसकी उसप्रकारकी घोषणा सुन बहुतसे राजकुमार मथुरा आये किंतु उनमें किसीको इस बातका साहस न हुआ कि नाग शय्यापर चढ़कर धनुष चढ़ा शंख बजाये इसलिये सबके सब पराजित और लज्जित हो अपने अपने स्थान चलेगये ॥७३-७४॥

एकदिन राजा जरासंधका पुत्र—कंसकी स्त्री जीवद्यशाका सगा भाई कुमार भानु गोकुलमें गया भाग्यवश वहां कुमार कृष्णसे उसकी भेंट होगई कृष्णको अतिशय पराक्रमी जान उसै बड़ाही संतोष हुआ और अपने साथ उसै मथुरापुरी ले आया ॥७५॥ मथुरामें आकर कृष्ण नागशय्या पर—जो लहलहाते हुये भुजंगोंसे महाभयंकर थी अपने सोनेकी सेजके समान देखते देखते बैठगये ॥ ७६ ॥ और बड़ी वीरतासे धनुष चढ़ा सर्पोंके श्वास प्रश्वाससे भदमेले पांचजन्य शंखको इसरीतिसे बजानेलगे कि समस्त दिशायें शब्दायमान हो उठीं ॥ ७७ ॥ और ज्योंही नगरके लोगोंने शंखका शब्द सुना सहसा उनके मुखसे वाह वाहके शब्दोंके साथ २ येही ये शब्द निकलने लगे–" कि अहा! यह कोई महापुरुष है इसने मथन करते समय समुद्रके शब्दके समान शंखका शब्द किया है" ॥७८॥ कृष्णका यह अनन्यसाध्य पराक्रम देख कुमार बलभद्रको कंससे बड़ा भय हुआ उन्होंने उसीसमय कुछ उपाय सोच विनीत कृष्णको गोकुलकी ओर रवाना किया सो ठीकही है—दूसरोंको अपने समान समझनेसे और उनपर अतिशय अनुराग करनेसे ही लोग बड़े होते हैं ॥ ७९ ॥

ग्रंथकार कहते हैं कि—जिस मनुष्यने पूर्वभवमें जैनधर्मका आराधन किया है उसका प्रबल भी शत्रु–'चाहें उसने गर्भके पहिलेसे ही शत्रुता करनी शुरू करदी हो अथवा उत्पन्न हुये बाद की हो–कुछ भी नहीं विगाड़ सकता। कृष्णने पूर्वभवमें पवित्र धर्मका आराधन किया था इसलिये विचारा कंस उनका क्या करसकता था? ॥ ८० ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें नारायण कृष्णका बालक्रीडा वर्णन करनेवाला पैंतीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३५ ॥

छत्तीसवां सर्ग।

इसके बाद भ्रमररूपी प्रत्यंचासे युक्त, वाणासन जातिके वृक्षरूपी धनुषसे शोभित पक्षियोंके कलकलशब्दरूपी शंखके शब्दोंसे शब्दायमान, हंसिनीरूपी सेजसे भूषित, वैरीरूपी मयूरोंके मद और पक्षको निर्मूल करनेवाली शरद ऋतुका प्रादुर्भाव हुआ सो ऐसा जान पड़ने लगा मानो वह नवीन यौवनश्रीसे मंडित कुमारकृष्णकी नागशय्या पर सवार हो धनुष धारण कर शंख बजानेरूप क्रीड़ाका अनुकरण ही करती हो। ॥ १ ॥ उससमय मेघ सर्वथा लापता होगये थे इसलिये आकाश चंद्रमाकी किरणोंके समान शुभ्र जान पड़ने लगा पृथ्वी सर्वथा कर्दमरहित होगई—उसपर जरा भी कीचड़ न रही इस कारण कांसके फूलोंके समान वह स्वच्छ दीख पड़ने लगी और उससे यह भान होने लगा कि—मानो कुमार कृष्ण अपने प्रबल शत्रु कंसको थोड़े ही दिनोंमें परलोकवासी बनावेंगे इसलिये उनका प्रताप अभीसे प्रकट होगया है ॥ २ ॥ उस समय नदियां निर्मल होगई थीं विशालपुलोंकी टक्करोंसे उत्पन्न हुये फेनसे व्याप्त थीं श्वेत कमलोंसे युक्त सरोवर निर्मल होगये थे और पर्वत वृक्षोंके श्वेतपुष्पोंसे मंडित थे इसलिये ऐसा जान पड़ता था मानो—फेन, सफेदकमल और सफेदपुष्पोंके बहानेसे इन्होंने कुमार कृष्णका शुभ्र यश ही धारण किया है ॥ ३ ॥ फलरूपी रत्नोंके भारसे नम्रीभूत धान्योंसे चौतर्फा मंडित, फूले हुये कांसके वृक्षरूपी कंचुकीसे भूषित पृथ्वीरूपी रमणी नवीन २ ऊगे हुये अंकुररूपी रोमोंसे रोमांचित होगई थी इसलिये ऐसी जान पड़ती थी मानो वह नवयुवक कुमार कृष्णके कंठसे आलिंगन करनेकेलिये ही उत्सुक हो पुलकित होगई हो ॥ ४ ॥ उससमय नवीन २ अंकुररूपी विभूतिसे विभूषित पृथ्वीके कोमल २ तृणोंके खानेवाले बैल जहां तहां मनको अतिशय संतोषदायक उन्नत शब्द करते हुये कृष्णके शत्रुओंके नाशकी घोषणा करते हुयेके समान जान पड़ते थे ॥ ५ ॥ यद्यपि कंसको अतिशय वीरता प्रकट करनेवालीं कृष्णकी सब चेष्टाओंका पता लग गया था—उसके मनमें कृष्ण असाधारण वीर जंच गया था तथापि उस पापीके हृदयकी डाह न बुझी थी इसलिये एक दिन उसने कृष्णके मारनेके लिये समस्त गोपालोंको यमुनाके किसी सरोवरसे—जो मनुष्योंको अत्यंत भयावह था और लहलहाते हुये भयंकर सर्पोंसे व्याप्त था—कमल लानेकी आज्ञा दी ॥ ६ ॥ कुमार कृष्ण महाबली थे उन्हें अपनी भुजाओंका पूरा २ भरोसा था इसलिये वे तत्काल सरोवरमें उतर गये और बड़े जोरसे सरोवरको खलबलाने लगे उससमय वहांपर एक कालिया नाग—जो महा भयंकर था और अपने फनमें लगी हुई मणिकिरणोंसे अग्निके फुलिंगोंको उगलता था सो रहा था—कृष्ण द्वारा सरोवरकी खलबलाहट सुनकर वह जग पड़ा और क्रोधसे

कृष्णपर धर रूरा परंतु बली पुण्यात्मा कृष्णके सामने उसकी एक न चलसकी और देखते देखते कृष्णने उसै यमके मुखमें पहुंचादिया ॥ ७॥ उससमय तालाबके किनारेके वृक्षोंपर अनेक गोपाल और कुमार बलभद्र बैठे थे कृष्णकी यह लोकोत्तर वीरता देख हर्षसे सबके सब जय जयका गंभीर शब्द करने लगे। उनके शब्द सुन कुमार कृष्णको अतिशय आनंद हुआ अपनी भुजाओंसे कालियानागको मारकर उन्होंने कमल तोड़े और पवनके समान शीघ्रगामी बन तत्काल सरोवरकी पारपर आविराजे ॥ ८ ॥ महा-मनोहर, देदीप्यमान पीतांबरसे मंडित, अतिशय आनंदित, श्यामसलोने कुमार कृष्ण जिससमय कालिया नागपर रूरे थे और उसै अपनी भुजाओंसे वेष्टित किया था उससमय वे कालीशिलापर वर्षते हुये विजलीयुक्त मेघकी तुलना करते थे ॥ ९ ॥ गोपालोंने कमल, वैरी कंसके सामने लेजाकर उपस्थित किये। कंस दूसरोंके सद्गुणोंको जराभी नहिं सहसकता था गोपालोंका यह पराक्रम देख उसकी ईर्षा अग्नि और भी धधक निकली वह गरम गरम श्वांस खींचनेलगा और गोपालोंको यह आज्ञा दे कि—" नंदगोपके पुत्र आदि समस्त गोपाल मल्ल युद्धके लिये तयार होजांय उन्हैं मेरे सामने मल्लयुद्ध करना होगा" विदा किया ॥ १० ॥

इसके बाद चक्र और करौंत (आरा) के समान तीक्ष्ण चित्तका धारक कृष्णके मार-नेका अभीलाषी दुष्टात्मा कंस मल्लयुद्धके लिये नगरके बालक युवा वृद्ध सब प्रकारके मल्लोंको सूचना दे दे कर अपने पास बुलानेलगा॥ ११ ॥ कंसके इस गूढ़ वर्त्तावका पता कुमार वसुदेवको भी लग गया जिससे कि उन्होंने तत्काल अपने पुत्र अनावृष्टिके साथ पूर्वापर विचार कर कंसका वह समस्त भाव अपने बड़े भाई समुद्रविजय आदिके पास कहला भेजा ॥ १२ ॥ दुष्ट कंसका यह गूढ़ वृत्तांत जान शत्रुके हृदयको विदीर्ण करनेका पूरा पूरा साहस रखने वाले वसुदेवके समुद्रविजय आदि नौऊ भाई तत्काल मथुराके लिये तयार हो चलपड़े और रथ तुरंग पदाति एवं हाथी रूपी चतु-रंगसेनासे पृथ्वीको महा मनोहर करते हुये वे मथुरा आगये॥ १३ ॥ वहां आकर अपने हृदयका असलीभाव प्रकट न कर उन्होंने यही कहा कि—छोटा भाई वसुदेव बहुतदि-नोंसे नहिं देखा था अब हम उसै देखनेके लिये आये हैं इसलिये शंकासे भयभीत हो कंसने कुमार वसुदेवके साथ उनकी अगवानी की बड़ा जान भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और सभीको मथुरामें भीतर प्रवेश कराया ॥ १४ ॥ उससमय मथुरापुरीकी रचना वड़ी अपूर्व थी मथुराके महलोंकी शोभा देख यादवोंके नेत्र तृप्त हो गये कंसने उनके रहनेके लिये उत्तमोत्तम महल दिये और योग्य पदार्थोंके दानसे मानसे और प्रणामोंसे उनका सत्कार किया। यद्यपि यादव अपना भीतरी भाव प्रकट न होजाय इसलिये कंसके साथ स्नेहसे वर्ताव करते थे परंतु उसकी क्रूरतासे अंतरंगमें हमेशा जलते रहते थे ॥ १५ ॥

कंसकी आज्ञानुसार गोपालोंके मल्लयुद्धका दिन आगया यह देख परम बुद्धिमान कुमार बलभद्र दुष्ट कंसको मारने की अभिलाषासे गोकुलमें कृष्णके पास आये और उसके सामने ही यशोदासे कुछ कटुक वचनोंमें इसप्रकार कहने लगे—

"यशोदे! क्या देरी कररही है क्यों नहिं तू जल्दी स्नान करती तुझै अपनी देहका कुछ भी होश हवास नहीं है वार वार कहेजानेपर भी तू अपने स्वभावको नहीं छोड़ती" ॥१६–१७॥ यद्यपि यशोदाका कुमार बलभद्रके साथ चिरकालसे परिचय था परंतु पहिले कभी भी ऐसे कठोर वचन बलभद्रने यशोदाकेलिये नहीं कहे थे इसलिये उसदिन बलभद्रके वचनोंसे वह चकित और भयभीत होगई आंखोंसे आंसू वहाने लगी बलभद्रको कुछ भी उत्तर न दे उसने स्नान किया और तत्काल भोजन बनानेकेलिये प्रवृत्त होगई इसके बाद बलभद्र और कृष्ण दोनों भाई भी नदीपर स्नान करने चलदिये ॥ १८ ॥ यद्यपि कृष्ण बलभद्रको अपना हितैषी गुरु मानते थे उनके कटुक वचन भी कृष्ण सहलेते थे परंतु उसदिन बलभद्रने जो उनकी मा यशोदासे कठोर वचन कहे वे उन्हैं वहुतही बुरे लगगये माताके अपमानजनित दुःखसे उनका चित्त कुम्हला गया बलभद्रने जब उनकी वैसी उदासीनता देखी तो उनको भी क्लेश हुआ और एकांतमें कृष्णको ले जाकर वे इसप्रकार पूछनेलगे—

"प्रिय कृष्ण! आज तुम लंबे २ श्वांस ले रहे हो नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा चलरही है वर्फसे कुम्हलाये हुये कमलके समान यह तुम्हारा मुख मलीन होगया है इन कारणोंसे जान पड़ता है तुम्हारे अंतरंगमें किसी वलवान संतापने आ डेराडाला है शीघ्र कहो तुम क्यों दुःखित हो" ॥ १९ ॥ जब बडे प्रेमसे प्रसन्नमुख हो बलभद्रने इसप्रकार पूछा तो कृष्णने कहा—

"आर्य! आपने मेरे मुखके विकारसे मेरा भीतरी दुःख जानलिया है अव मैं अपना भीतरी भाव प्रकट करता हूं आप सुनिये आप मेरे विद्यागुरु हैं विद्वान हैं लोकको रीतिके भलेप्रकार जानकार हैं और सव लोगोंको उत्तम मार्गका उपदेश देनेवाले हैं आपही कहैं मेरी पूज्य मा यशोदाका कठोर वचनोंसे इसप्रकार तिरस्कार करना क्या आपको उचित था?" ॥ २० ॥ कृष्णके मुखसे यह उलाहना सुन मारे आनंदके कुमार बलभद्रका शरीर रोमांचित होगया उन्होंने बडे प्रेमसे कृष्णको छातीसे लगा लिया और निकलती हुई अविरल अश्रुधारासे अपने अंतरंगका उत्तम भाव प्रकट करते हुये वे समस्त वृत्तांत इसप्रकार कहने लगे—

भाई! तुम्हारे पिता वसुदेव और माता देवकी हैं एक दिन कंसके राजमंदिरमें मुनिराज अतिमुक्तक आहारार्थ आये थे उनको कंसकी पटरानी राजा जरासंधकी पुत्री जीवद्यशाने देवकीके रजोवस्त्रोंको दिखा दिल्लगी की रानीके इस वर्तावसे

मुनिराजके मुखसे सहसा यह बात निकल गई कि यह दिल्लगी करनेकी बात नहीं है इसी देवकीका पुत्र किसी दिन तुझे रुलायगा तेरे पति और पिता दोनोंका मारनेवाला होगा यह बात कंसके कानमें भी पडी वह तुम्हारे पितासे यह वर मांगकर कि देवकी मेरे ही मंदिरमें पुत्र पुत्री जने उसके गर्भकी कडी रीतिसे देख रेख करने लगा देवकीके तीनवार युगलिया पुत्र हुये देवोंने वे तो भद्रिलपुरके सेठ सुदृष्टिकी स्त्री अलकाके यहां पहुंचाये और उसके मृत पुत्रोंको लाकर देवकीके यहां रक्खा और दुष्ट कंसने उन मरे हुये वालकोंको भी अपने क्रोधकी शांतिकेलिये शिलापर पछाड़ २ कर संतोष माना जब तुम उत्पन्न हुये तो तुम्हैं गुप्तरूपसे गोकुल पहुंचाया गया वाल्य अवस्थामें ही कंसने तुम्हैं मारना चाहा था परंतु उसका दाव न लगा। अब उसने तुम्हारे मारनेके लिये भयंकर मल्लयुद्ध करानेकी युक्ति निकाली है।" ज्योंही कुमार कृष्णने वड़े भाई बलभद्रसे अपना वंश हरिवंश जाना और अपने पिता गुरु बंधु और भाईयोंका हाल सुना मारे आनंदके उनका मुख कमल विकसित हो उठा और बड़े भाई रूपी विशाल पर्वतसे सुरक्षित वे केहरी सरीखे जान पड़ने लगे ॥ २१–२५ ॥ जन्मांतरके स्नेहसे दोनों भाई आपसमें परम स्नेही बन गये उन्होंने यमुनामें भलेप्रकार विहरणकर स्नान किया और अनेक गोपोंसे मंडित हो अपने घरकी ओर प्रस्थान किया ॥२६॥ घरपर माता यशोदाने मणिजड़ित सुवर्णके थालोंमें अतिशय सुगंधित हालका तपाया हुआ मक्खन, मसालेदार दाल, दूध, दही, और कोमल मिष्ट शालि चावलोंके भातको परोसा एवं दोनों भाईयोंने आनंदसे उसे जीमा कोमल सुगंधित चंदन आदि द्रव्योंके चूर्णसे कुल्ला कर हाथोंपर उसी (चूर्ण) का अनुलेपन किया हरी सुपारीके दोरे (टुकडे) और इलायची खाई उत्तम तांबूल चबाये जिससे कि उनके मुख रक्त होगये और अधर ओठ दमक निकले ॥२७–२८॥ अनेक प्रकारसे मल्लविद्यामें प्रवीण उन दोनों भाईयोंने चलनेकेलिये क्रमसे नीलांबर पीतांबर धारण किये वक्षःस्थलमें सिंदूरकी रज लगाई और मालती आदिके ताजे ताजे पुष्पोंसे शोभित मुकुट बांधा ॥२९॥ इसप्रकार मल्लके उग्रवेषको धारणकरने वाले वे दोनों भाई अपने मनमें कंसके वधका पूर्ण निश्चय कर गोपमंडलको साथ ले मथुराकी ओर पृथ्वीको क्षुण्ण करतेहुये चलदिये ॥३०॥ मार्गमें कंसके भक्त असुरने नागका रूप रक्खा दूसरेने गधाका और तीसरेने दुष्ट घोडेका रूप धारण किया और सबके सब मुख फाड़ २ कर दोनों भाईयोंपर खानेकेलिये रूरे पर कृष्णने उन सबको मार भगाया ॥ ३१ ॥ जिससमय इन दोनों भाईयोंने मथुरानगरीके द्वारमें प्रवेश किया तो कंसकी आज्ञासे इनपर चंपक और पादाभार नामके दो हाथी हूल दिये गये जो कि महाभयंकर थे और प्रतिसमय गंडस्थलसे झरतेहुये मदसे मत्त थे। हाथियोंको अपने ऊपर टूटा देख मल्लयुद्धमें प्रवीण इन दोनों कुमारोंसे भी न रहागया ॥३२॥

उनमेंसे कुमार बलभद्र तो चंपक हाथीके सामने अड़गये और कृष्ण पादाभारके आगे डटे एवं चारोंका घोर युद्ध होनेलगा। उससमय हाथी और कुमारोंके मल्लयुद्ध देखनेवाले लोगोंने समस्त जिंदगीमें ऐसे वीरता भरे युद्ध देखनेका पहिलेही पहिले अवसर पाया था इसलिये कुमारोंकी वीरतापर उन्हैं बडा आश्चर्य होनेलगा वे साधु २ शब्द करनेलगे ॥३३॥ यद्यपि हाथियोंने कुटिल सूंढोंसे अपने दांत दवा रक्खे थे तथापि कुमारोंने उनपर ऐसी जोरसे लात जमाई कि वे देखते देखते नीचे गिरगये। उससमय विशाल भुजाओंसे उखाडे हुये सूंडोंसे मंडित दांत, अजगरोंसे वेष्टित उखाडे हुये वांसके अंकुरोंकी तुलना करते थे। ॥ ३४ ॥ जिससमय कुमारोंने निर्दयी हो हाथियोंके दांत मूलसे उखाडे उससमय वडा उन्नत शब्द हुआ विचारे हाथी भयंकर वेदनासे चिल्ला उठे। हाथियोंकी यह दशा देख कुमारोंने गोपालोंके आनंद भरे शब्दोंके साथ २ भीतर नगरमें प्रवेश किया ॥ ३५ ॥ राजा कंसने एक विशाल अखाड़ा तयार करा रक्खा था उसके तोरण दरवाजे कमलोंकी कोंपलोंके वने हुये थे एवं राजा और नगर निवासी दर्शक मनुष्योंके बैठनेके लिये वहां जगह जगह स्थान निर्मित थे। ये दोनों वीर कुमार अपने कंधोंसे वड़े २ मल्लोंको ठोकरें लगाते हुये अखाड़ेके पास जा पहुंचे और देखते देखते उसमें प्रवेश कर गये ॥३६॥ उससमय अखाड़ेमें कृष्ण और बलभद्रकी गर्जना और टाल आदि ठोंकना रूप क्रीडा, चरण और भुजाओंके संकोच और फैलावसे नाना प्रकारकी चेष्टाओंसे और निश्चलदृष्टिसे महामनोहर जान पड़ती थी एवं पवनसे उड़ते हुये वस्त्रके प्रांत (छोर) के समान चंचल मालूम होती थी ॥ ३७ ॥ अखाडेमें पहुंचते ही वलभद्रने इशारेसे—यह कंस है, ये जरासंधके लोग हैं, ये समुद्रविजय आदि दश महानुभाव हमारे पूज्य हैं, ये इनके पुत्र हैं, इसप्रकार समस्त मनुष्योंका कृष्णको परिचय करादिया और दोनों कुमारोंका अद्वितीय पराक्रम देख वे भी इनकी ओर टकटकी लगाकर देखने लगे ॥३८॥ जहांपर बडे वडे राजा महाराजा और नगर निवासी मल्लयुद्ध देखने आये थे जो समस्त मल्लोंकी गर्जना और टाल आदिकी तर्जनासे क्षुब्ध होरहा था ऐसे अखाडेमें राजा कंसकी आज्ञासे लड़नेके लिये मल्ल छूटे और जंगली भैंसोंके समान मदोन्मत्त हो युद्ध करने लगे ॥ ३९ ॥ सामान्य मल्लोंके युद्धके वाद दुष्ट कंसने कुमार कृष्णसे लडनेकेलिये चाणूरमल्लको आज्ञादी जो कि पर्वतकी भींतिके समान विशाल वक्षःस्थलका धारक था और उत्पीलन यंत्र (कोल्हू) के समान भुजायंत्रोंसे युक्त था एवं पश्चात् अपनी कुटिल भौंहोंसे मुष्टिक मल्लको भी उनपर टूट पडनेका इशारा करदिया ॥ ४० ॥ वस फिर क्या था ! तीक्ष्ण नखोंसे युक्त मुट्ठियें वांधकर सिंहके समान स्वरूप धारण कर चरणोंको स्थिर रख कृष्ण और चाणूर दोनों मल्ल आपसमें अविराम रूपसे मुट्ठियोंकी मारा मारी करने लगे ॥ ४१ ॥ वज्रके समान मुष्टिका धारक मुष्टिक मल्ल पीछेसे कृष्णपर मुष्टिका प्रहार करना ही चाहता था इतने ही में कुमार बलभद्रने वडी शी-

ग्रतासे उसके सामने उपस्थित हो—'वस वस! ठहर ठहर!! ऐसा कहते हुवे उसके शिरमें एक मुक्का जमाया जिससे कि वह तत्काल प्राणरहित होगया ॥ ४२ ॥ सिंहके समान पराक्रमी कुमार कृष्णने भी मल्ल चाणूरको जो उनसे शरीरमें दूना था और अपने विशाल वक्षःस्थलका पूरा पूरा अहंकार रखता था अपने भुजपंजरसे धर दवाया जिससे कि उसके रक्त धारा वह निकली और देखते देखते प्राणरहित होगया ॥ ४३ ॥ कृष्ण और बलभद्रमें एक हजार सिंह और हाथियोंका बल था जब उन्होंने अपने इस बलसे कंसके दोनों मल्लोंको पछाड मारा तो मारे क्रोधके कंस उवल उठा उसने शीघ्र ही हाथमें खड्ग लेलिया और कृष्णपर धर झपटा जिससमय वह कृष्णके मारनेको उनके पास आया तो तमाम अखाडेमें खलवली मचगई और समुद्रके शब्दके समान भयंकर कोलाहल हो उठा। ॥४४॥ कंसको अपने ऊपर टूटा देख कृष्णने धीरेसे उसके हाथसे तलवार छीनली और कडीरीतिसे केश पकडकर उसे जमीनपर पटक दिया अपने हाथोंसे उसके पैर पकडलिये, ऊंचे को उछालकर शिलापर पछाड मारा, ओर यह कहकर कि 'इसी वीरतापर फुंदकता फिरता था' हसने लगे ॥ ४५ ॥

कंसको इसप्रकार प्राणरहित देख उसकी सेना खलबला उठी और सहसा दोनों कुमारोंपर टूटपड़ी सेनाका यह क्रूर वर्ताव देख कुमार वलभद्रकी भृकुटी चढगई उन्होंने शीघ्र ही मंडपसे एक खंभ उखाड़ लिया एवं कोपसे गर्विष्ठ हो वज्रके समान तीक्ष्ण आघातोंसे देखते २ उस सेनाको तितर वितर करदिया ॥ ४६ ॥ मथुरामें कंसके आधीन बहुतसी राजा जरासंधकी सेना भी रहती थी कंसकी यह दशा देख वह भी क्षुब्ध होगई परंतु समस्त यादव उद्धत हो अपनी सेनाके साथ ललकार कर उसके सामने अडगये और क्षणभरमें उसै मार भगाया ॥ ४७ ॥ मल्लके वेषसे शोभित चार घोडोंसे वाहित रथमें सवार हो दोनो भाई कुमार अनावृष्टिके साथ अपने पिताके घर (जहां समुद्रविजय आदि रहते थे) गये ॥ ४८ ॥ दोनो कुमारोंने क्रमसे समुद्रविजय आदि गुरुजनोंको प्रणाम किया उन्होंने स्नेहसे गद्गद हो आशीर्वाद दिया और कुमारों के मिलापरूप जलधारासे चिरकालके विरहसे उत्पन्न हुये अपने हृदय संतापको शांत किया ॥ ४९ ॥ राजा वसुदेव और रानी देवकीने शत्रुरूपी अग्निको शांत करनेवाले कुमार कृष्णका मुख अवलोकन कर परम सुख माना कन्या भी जिसकी नाक कंसने चिपटी करदी थी कृष्णको देख परम आनंदित हुई सो ठीकही है उत्तम पुत्रादि बंधुओंका मिलाप संसारमें सभीको सुखदेनेवाला होता है ॥ ५० ॥ राजा उग्रसेनकी वेडियां काट दी गईं यादवोंकी आज्ञासे कृष्णने उन्हैं मथुराका पुनः अधिपति बनाया जिससे कि वे भी कंससे निश्शंक हो चिरकालके वियोगसे कृश राज्यलक्ष्मीरूपी स्त्रीका आनंद लेने लगे ॥ ५१ ॥ कंसके मारेजानेपर उसके कुटुंबीजन और स्त्रियोंमें हाहाकार मचगया बहुत शीघ्र

ही कंसकी अंतःक्रिया की गई कंसकी पटरानी जीवद्यशा यदुवंशियोंसे बहुतही क्रुद्ध होगई वह तत्काल अपने पिता जरासंधके पास पहुंची और आंसू वहाती हुई गद्गद कंठहो हिचक हिचक कर रुदनकरने लगी ॥ ५२ ॥

पिताके घर जीवद्यशाके चलेजानेपर एकदिन मथुरावासी समस्त लोगोंको विद्याधर सुकेतुका दूत—जोकि आकाशरूपी समुद्रमें कभी नीचा कभी ऊंचा हो मीनकीसी क्रीड़ा करता आता था और भांति भांतिके मणीमयी भूषणोंसे भूषित था—दीखपड़ा। ॥ ५३ ॥ दूतका समस्त शरीर चंदनसे लिप्त था और श्वेतवस्त्र पहिने था इसलिये वह मानस सरोवरमें रहनेवाले हंसकी शोभा धारण करता था। वह शीघ्रही जहां तहां विराजमान राजारूपी हंसोंसे गंगाकी तुलना करनेवाली मथुरा नगरीकी गलीमें उतरा और राजमहलके दरवाजेपर आकर खड़ा होगया ॥ ५४ ॥ यादवोंकी आज्ञानुसार द्वारपालने उसै उनके पास पहुंचाया सभामें आकर दूतने सवोंको नम्रहो नमस्कार किया और अवसर पाकर समस्त यादवोंके सामने कंसके जीतनेवाले कुमार कृष्णको लक्ष्यकर इसप्रकार कहा कि—

"आप मेरी विज्ञप्ति सुनिये—विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक रथनूपुर नामका नगर है उसका स्वामी विद्याधर नमि और विनमिके वंशकी उत्तम ध्वजास्वरूप परम नीतिमान राजा सुकेतु है ॥५५॥ उसै इसवातका पता लगा है कि आपने नाग शय्या पर सवार हो धनुष चढ़ाकर शंख बजाया है इसलिये उसने बड़े प्रेमसे मुझै आपके पास भेज कर कहा है कि—प्रियकुमार! आप मेरी पुत्री सत्यभामाका स्वामी होना स्वीकार कर विद्याधर लोककेलिये परम कल्याण और गौरवकी वात करैं।" ॥ ५६ ॥ समस्त यादवोंके मनको संतोष देनेवाली दूतकी यह बात सुन कुमार कृष्ण परम आनंदित हुये और उत्तरमें इसप्रकार कहनेलगे—

"राजा सुकेतुरूपी कुवेरद्वारा वर्षाई गई सत्यभामारूपी रत्नोंकी धाराका रत्नाचलरूप मुझपर संपात हो—मुझै सत्यभामाके साथ विवाह करना स्वीकार है" ॥५७॥ वस-फिर क्या था! कृष्णके स्वीकारताके वचन सुनते ही दूतको परम आनंद हुआ यादवोंको विनयसे नमस्कार कर वह तत्काल राजा सुकेतुके यहां पहुंचा उसे भक्तिपूर्वक नमस्कार कर कृष्णके गुणोंके वर्णनके साथ 'सब बात ठीक है' यह निवेदन किया जिससे कि राजा सुकेतु और उसकी रानीको परम संतोष हुआ ॥ ५८ ॥ दूतके मुखसे वलदेव और कृष्णको अद्वितीय तेजरूप कांतिके भंडार जान राजा सुकेतु और रतिमाल दोनोंभाई रेवती और सत्यभामा नामकी अपनी पुत्रियोंको लेकर तत्काल मथुरा आये। ॥ ५९ ॥ उनमेंसे रतिमालकी पुत्री रेवती जो सुंदरतामें रतिकी तुलना करती थी कुमार वलदेवको समर्पण कीगई और राजा सुकेतुकी स्वयंप्रभा रानीसे उत्पन्न पुत्री सत्यभामाका

कुमार कृष्णके साथ विवाह हुआ ॥६०॥ इस विवाहमंगलमें विद्याधर और भूचर राजाओंकी रानियोंने सुंदर २ वेष धारणकर आनंद नृत्य किया था जिससे कि वे पीन विशाल स्तनोंके भारसे खिन्न होगई थीं और उनके अधोवस्त्र करधनी केशपाश उत्तरीयवस्त्र नीचे खसक गये थे ॥ ६१ ॥ उससमय नवीन बधुओंसे मंडित नीलांबर और पीतांबर पहिने हुये भांति भांतिके मणिमयी भूषणोंसे भूषित, अनेक यदुवंशी राजाओंसे वेष्टित, कुमार बलभद्र और कृष्णको देखकर पटरानी रोहिणी और देवकीके आनंदका पारावार न रहा वे आनद सागरमें डूबगई ॥ ६२ ॥ रमणी सत्यभामा और रेवती अनेक कला और गुणोंमें परम पंडिता थीं इसलिये पहिलेही समागममें सत्यभामाने कृष्णका मन और रेवतीने बलभद्रका मन सर्वथा हरण करलिया सो ठीकही है प्रगल्भ मनुष्य समयपर उचित कार्य करना नहीं चूकते ॥ ६३ ॥

जिसप्रकार समुद्रकी तरंगें उसे खलबला देतीं हैं कंसकी स्त्री जीवद्यशाने पिताके घर पहुंच यादवोंके दूषण दिखा २ जरासंधका मन क्षुब्ध करदिया और उसके सामने फूट २ कर रोतीहुई इसप्रकार कहने लगी—

"पूज्य पिता! आप समस्त पृथ्वीपर शासन करनेवाले चक्रवर्ती हैं क्या यह उचित है कि आपके जीते जी मैं अपने प्राणपतिसे वियुक्त हो विधवापनेका दुःख भोगूं ? अस्तु, इसे भी मैं सह सकती हूं जब कि मदसे मत्त यदुवंशियोंके मस्तकरूपी कमलोंसे और रक्तरूपी जलसे मैं अपने पतिको जलांजलि दूं" ॥ ६४-६५ ॥ पुत्री जीवद्यशाका इसप्रकार करुणाजनक रोदन सुन राजा जरासंधको भी बड़ा दुःख हुआ और वह इस प्रकार अपनी पुत्रीको समझाने लगा—

"प्रियपुत्री! शोक करना वृथा है भाग्यवश जैसा होना होता है वह नियमसे होता है इसमें प्रधान कारण अपार शक्तिका धारक शुभ अशुभ कर्म ही है अन्य किसीका दोष नहीं ॥ ६६ ॥ पशु भी जब किसी खेतमें चरनेकेलिये घुसता है तो उसके पहिले यह विचारकर कि—"कोई आकर मुझमें मार न मारे" उससे निकलनेका मार्ग खोज लेता है ये मत्त यादव पशुओंसे भी गये बीते हैं इन्होंने तेरे पतिको तो मार डाला परंतु अपने बचनेका उपाय नहिं सोचा! जरा भी मेरा भय न किया! जान पड़ता है मृत्यु इनके शिरपर मँड़रा रही है—नियमसे अब ये मरना चाहते हैं ॥ ६७॥ वत्से! आज तक इन्हैं तेरे ही चरणोंकी शरण थी परंतु अब ये तेरे ही परमशत्रु होचुके यद्यपि आज कल ये बल और कुलमें चढ़े बढ़े हैं परंतु तू निश्चय समझ! मेरे क्रोधरूपी भयंकर वनाग्निकी विकराल ज्वालासे ये वहुत जल्दी ही राख होने वाले हैं इनका नाम ही नाम संसारमें शेष रह जायगा" ॥ ६८ ॥ राजा जरासंधने इसप्रकार प्रिय वचनोंमें समझा बुझाकर पुत्री जीवद्यशाकी क्रोधरूपी अग्नि तो शांत करदी परंतु मारे

क्रोधके उसका हृदय बुरीतरह छटपटाने लगा उसने शीघ्र ही अपना पुत्र-जो यमराज के समान भयंकर था-कालयवनको बुलाया और यादवोंके वंशको समूल नाश करने केलिये उसे आज्ञा दी ॥ ६९ ॥ पितासे आज्ञा पाकर कालयवन हाथी घोड़ा रथ प्यादे चारो प्रकारकी सेनाको साथ ले यादवोंसे युद्ध करनेके लिये चल दिया जिससे कि दर्शकोंको समुद्रके समान जान पड़ने लगा वह सत्रहवार यदुवंशियोंसे लड़ा परंतु उनसे फतह न पासका और मालावर्त पर्वतपर संग्राममें निश्शेष होगया ॥ ७० ॥ कालयवनका मरण सुनकर राजा जरासंधने अपने भाई अपराजितको संग्रामकेलिये भेजा जो कि अनेक शत्रुओंका जीतनेवाला था राजा जरासंधको अतिशय प्यारा था प्रलयकालकी प्रचंड अग्निकी ज्वालाके समान समस्त जगतको भस्म करनेवाला था सेनारूपी प्रबल पवनसे प्रेरित था और समस्त शत्रुओंको जल्दीही निगलना चाहता था ॥ ७१ ॥ वीर अपराजितने तीनसो छैयालीस वार यादवोंसे युद्ध किया किंतु विजयलाभ न कर सका और अंतमें कृष्णके तीक्ष्णवाणोंके आघातसे अपने जीवनसे हाथ धोबैठा जिस समय वीर और यशस्वी अपराजित वाणसे धराशायी हुआ था उससमय ऐसा जान पड़ता था मानो बहुत युद्ध करते करते वह थक गया है और थकावट दूर करनेकेलिये वीरशय्यामें सानंद शयन कर रहा है ॥ ७२ ॥ इसप्रकार कृष्ण और बलभद्रके अखंड प्रतापसे शत्रुओंकी शंकासे रहित, अतिशय आनंदित, कंसकी पुरी-मथुराके रहने वाले लोग और यदुवंशी मनमाने भोग भोगते हुये सुखसे रहने लगे ॥ ७३ ॥

ग्रंथकार कहते हैं कि-यह जिनेंद्रमतरूपी मेघके जलकी धार पृथ्वीमें अनेकप्रकार के फल उत्पन्न करने वाली है लक्ष्मी और कीर्ति बढ़ानेवाली है शत्रुरूपी प्रचंड दावानल-को बुझानेवाली है और समस्त जीवोंको बंधुओंके समान हर्षायमान करने वाली है ॥ ७४ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेन द्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें कंसका पराजय और वध वर्णन करनेवाला छत्तीसवा सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३६ ॥

सैंतीसवां सर्ग।

गणधर गौतमने कहा—राजा श्रेणिक! दशार्होंमें मुख्य सूर्यपुर निवासी राजा समुद्रविजयके यहां जो लोकको हर्षित करनेवाला आश्चर्य उत्पन्न हुआ उसका अब मैं वर्णन करता हूं तुम ध्यान देकर सुनो—

रानी शिवाके गर्भमें भगवान नेमिनाथके स्वर्गसे आनेके छै मास पहिले इंद्रकी आज्ञासे देवोंने राजा समुद्रविजयके आंगनमें धनवर्षा करनी प्रारंभ करदी। यह धन-वर्षा प्रतिदिन साडे तीन करोड़ प्रमाण होती थी और छोटे बड़े किसी भी याचककेलिये उसे लेनेकी रोक टोक न की जाती थी सबलोग खुशीसे इसे उठा ले जाते थे सो

ठीकही है–जो मेघके समान धन वर्षानेवाले उदार हैं वे छोटे बड़े किसी भी याचक का विचार नहिं करते॥ १–३ ॥ उससमय माता शिवा देवीकी परिचर्याकेलिये पूर्व आदि दिशाओंसे दिक्कुमारियां आईं और माताकी सेवा करने लगीं जिससे कि बाल्यकाल्यमेंही भगवान नेमिनाथका तीनों जगतका विजयीपना स्पष्ट प्रतिभासित होनेलगा॥ ४ ॥ राजा समुद्रविजयद्वारा वर्णन किये गये नाना अतिशयोंके सुननेसे परम आनंदित होनेवाली रानी शिवा एक दिन सानद किसी सेजपर सोरही थी कि जब रात्रिका कुछ भाग शेष रहगया तो उसे प्रशंसाके योग्य अति उत्तम नीचे लिखे सोलह स्वप्न दीखपड़े—

पहिलीवार–उसने चंद्रमाके समान श्वेत हाथी देखा जो चौतर्फा झरते हुये मद-रूपी जलके झरनोंसे शोभित था अपने चीत्कारकी प्रतिध्वनिसे दिशाओंको गुंजा रहा था तमालवृक्षके समान काले २ भुनभुनाहट करतेहुये भोरोंसे अलंकृत था और कैलाश पर्वतकेसमान उन्नत एवं अचल–स्थिर था॥५–६॥ दूसरीवार–अपने खुरोंसे पृथ्वीको खोदता हुआ शुभ्र एक बैल देखा जो कि ऊंचे उठेहुये ककुत् (पीठपर उठा हुआ मांसका पिंड) से युक्त था अपनी गंभीर गर्जनासे मेघकी गर्जनाको पाजी बनाताथा वार २ पूंछको हिला रहा था लंबी सास्ना (गलकंबल) से शोभित था और देखते ही नेत्रोंको प्यारा लगता था॥ ७ ॥ तीसरीवार–जो बड़े २ पर्वतोंको लांघनेवाला था पर्वतकी शिखरपर स्थित था चंद्रमाकी किरणोंके समान शुभ्र विशाल दंष्ट्राओंसे शोभित था अपनी दुदकारसे समस्त दिशाओंको व्याप्त कररहा था और शरदकालके मेघके समान शुभ्र था ऐसा वीर केसरी देखा॥ ८ ॥ चौथीवार– लक्ष्मी देखी जोकि हाथीके कुंभस्थलके समान मनोहर स्तनोंसे मंडित थी शुभ्र हाथियोंद्वारा सुगंधित जलके घड़ोंसे अभिषिक्त थी और हाथमें सुंदर कमल लिये हुये विकसित कमलपर विराजमान थी॥ ९ ॥ पांचवींवार–निर्मल आकाशमें अतिशय लंबायमान, परागधूलिसे मदमेले भ्रमरोंसे शोभित, दो मालायें दीखपड़ीं जोकि पुष्पोंसे भी अतिकोमल माता शिवाकी दोनों भुजाओंके समान जान पड़ती थी॥ १० ॥ छठीवार–चंद्रमा दीखपड़ा जो कि अपनी तीक्ष्ण किरणोंसे गाढ़ भी रात्रिके अंधकारको नष्ट कररहा था और मेघरहित आकाशमें रात्रिरूपी कमनीय रमणीका अट्टहास सरीखा जान पड़ता था॥ ११ ॥ सातवींवार–देदीप्यमान सूर्य देखा जो कि दर्शनीय मुखवाला था प्रातःसंध्यारूपी सिंदूरसे रक्तवर्ण था स्थिर और नेत्रोंको प्यारा था एवं पूर्वदिशारूपी स्त्रीका पुत्र सरीखा जान पड़ता था॥ १२ ॥ आठवींवार–विजलीके समान चंचल सरसीरूपी रमणीके चपल नेत्रोंकी तुलना करनेवालीं आपसमें परमस्नेही और द्वेषरहित दो मीन (मछली) देखीं॥ १३ ॥ नवींवार–कमलनेत्रा रानी शिवाने दो सुवर्णमयी कलश देखे जो कि सुरभित उत्तम जलसे भरेहुये थे चौतर्फा कमलोंसे मंडित थे देदीप्यमान थे और सुंदर

रमणीके दो स्तनोंके समान जान पड़ते थे ॥ १४ ॥ दशवीं वार—स्वच्छ जलसे भरा हुआ, कमलोंसे अलंकृत, राजहंस आदि मनोहर पक्षियोंसे व्याप्त, एक महान सरोवर देखा जोकि माताको अपने चित्तके समान निर्मल जान पड़ता था ॥ १५ ॥ ग्यारहवीं वार—एक विशाल समुद्र देखनेमें आया जो कि जहां तहां लहलहाती हुई उन्नत तरंगोंसे व्याप्त था मूंगा मोती और मणियोंसे कमनीय था शुभ्र फेनसे युक्त था और उसमें जहां तहां भयंकर मगर मच्छ आदि जलजंतु किलोलें करते फिरते थे ॥ १६ ॥ बारहवीं वार—लक्ष्मीका सिंहासन देखा जो कि तीक्ष्ण नख डाढ़ तीखी दृष्टि और सटाओंसे शोभित सिंहोंसे वाहित था और अपनी देदीप्यमान मणियोंकी चमक दमकसे दिशारूपी स्त्रियोंके मुख उज्ज्वल कर रहा था ॥१७॥ तेरहवींवार—आकाशमें उडता हुआ विमान देखा जो कि ध्वजा दंडोंके अग्रभागमें लगी हुई रंग विरंगी फैरानेवाली पताकारूपी भुजाओंसे नृत्यकर रहा था और चौतर्फा लटकती हुई मोतियोंकी मालाओंसे देदीप्यमान था ॥१८॥ चौदहवीं वार—जो अपनी फणामणियोंसे समस्त पृथ्वी के अंधकार को नाश करनेवाले नागोंकी सुकुमार बालिकाओंके मधुर २ गीतोंसे व्याप्त था मणियोंसे देदीप्यमान और पृथ्वी फोड़कर निकला हुआ सरीखा जान पड़ता था ऐसा विशाल नागेंद्रका भवन देखा ॥१९॥ पंद्रहवीं वार रत्नोंकी राशि देखी जो कि पद्मराग हीरा माणिक आदि देदीप्यमान रत्नोंसे दीप्त थी अपनी ऊंचाईसे आकाशको स्पर्श करती थी और रंग विरंगी कांतिसे इंद्रधनुषकी तुलना करती थी ॥ २० ॥ और सोलहवीं वार—माताने अग्नि देखी जो कराल ज्वालासे व्याप्त थी अपनी शुभ्र कांतिसे समस्त दिशाओंके मुखोंको प्रकाशमान करनेवाली थी और सौम्य शरीरको धारणकर रही थी ॥२१॥ इसप्रकार स्वप्नदर्शनके बाद भगवान नेमिनाथने कातिक सुदी छठके दिन स्वर्गसे चयकर माता शिवाके मुखमें शुभ्र हस्तीके रूपमें प्रवेश किया और उनके गर्भमें आते ही देवोंके आसन चल विचल हो उठे ॥ २२ ॥ माताको कुछ जग जगकर एक एक स्वप्नके बाद दूसरा स्वप्न आता था जब वह समस्त स्वप्न देख चुकी तो प्रातःकालमें वंदीगणोंके जय जय शब्द और गीतमंगलोंके श्रवणसे उसकी नींद खुल गई जिससे कि निरालस हो वह शीघ्र ही सेजसे उठ बैठी ॥ २३ ॥ प्रातःकाल की नित्यक्रिया कर भूषण वसन पहिने और बड़े आनंदसे पतिके समीप जाकर भक्ति पूर्वक प्रणाम कर स्वप्न निवेदन करने लगी। स्वप्नोंको सुनकर राजा समुद्रविजय भी उनका फल वर्णन करते हुये इसप्रकार कहने लगे—

प्रिये! जिसकी उत्पत्तिको यह प्रतिदिन उत्पन्न होनेवाली धनवर्षा बतला रही है और जिसके प्रभावसे ये दिक्कुमारियां तुम्हारी रातिदिन सेवा करती रहती हैं उसी तीर्थंकरने तुम्हारे उदरको आ सुशोभित किया है ॥२४-२५॥ सुंदरि! तुम तीर्थंकरकी जननी हो तुम्हारे सामने स्वप्नोंका क्या फल बतलाना चाहिये? वह तीनों लोकका

परमगुरु तुम्हारे उत्पन्न होगा। सुनो! मै स्वप्नोंसे उसके कुछ गुण वर्णन करता हूं—

स्वप्नमें हाथीका देखना इसबातको सूचित करता है कि तुम्हारा पुत्र समस्त पृथ्वीका एक स्वामी और अनेक जीवोंकी रक्षा करनेवाला होगा॥ २६–२७॥ बैलके देखनेसे वह निर्मल ज्ञानका धारक, तीनोंलोक और अपने वंशको शोभित करनेवाला, अपने उत्तमोत्तम गुणोंसे तीनों जगतका गुरु, विशाल नेत्र और स्कंधका धारक होगा॥ २८॥ सिंहका देखना यह प्रगट करता है कि वह मदसे मत्त मिथ्यादृष्टिरूपी हाथियोंको सिंहके समान निर्मद करेगा और अनंतशक्तिका धारक, अद्वितीय धीर वीर तपोवनका ईश्वर बनैगा॥ २९॥ जो तुमने स्वप्नमें स्नान करती हुई लक्ष्मी देखी है उसका फल यह है कि जन्मकालमें ही अनेक देव और इंद्र मिलकर उसै मेरु पर्वतपर ले जांयगे और क्षीरसमुद्रके जलसे उसका अभिषेक करैंगे॥ ३०॥ सुगंधित मालाओंके देखनेसे उसका निर्मल यश समस्त जगतमें फैलेगा और वह अपने दिव्यज्ञानरूपी नेत्रसे लोकाकाश और अलोकाकाश के स्वरूपका समझानेवाला होगा॥ ३१॥ चंद्रिकासे मंडित चंद्रमाका फल यह है कि वह जिनेंद्रचंद्र समस्त जगतके अज्ञानको निर्मूल करेगा और सब जीवोंको आनंद देनेवाला होगा॥ ३२॥ सूर्यका दर्शन इस बातको बतलाता है कि तुम्हारा पुत्र अपने उत्कट तेजसे समस्त तेजस्वियोंके तेजको तिरोहित करेगा और समस्त जगतका अज्ञान अंधकार हटाकर उसै उद्बुद्ध करेगा। ॥ ३३॥ तुमने जो जलमें किलोल करती हुई दो मीने देखी हैं उनका फल यह है कि तुम्हारा पुत्र पहिले अद्वितीय निर्विघ्न विषय सुखका भोग करेगा और अंतमें सिद्ध शिलापर विराजमान हो अनंत अचिंत्य अव्याबाध सुखका आस्वादन करेगा॥ ३४॥ जलके भरेहुये सुवर्णमयी कलशोंके देखनेसे यह बात प्रतीत होती है कि समस्त जगतके मनोरथोंको सानंद पूरण करनेवाले तुम्हारे पुत्रके प्रभावसे समस्त राजमंदिर निधियोंसे परिपूर्ण हो जायगा॥ ३५॥ कमलोंसे परिपूर्ण सरोवरके देखनेका यह फल है कि तुम्हारा पुत्र अनेक उत्तमोत्तम लक्षणोंका भंडार होगा और जो मनुष्य धन आदिकी तृष्णासे त्रस्त हैं उनकी समस्त तृष्णा शांतकर उन्है परमधाम मोक्षमें पहुंचायगा॥ ३६॥ कांते! तुमने जो अमृतस्वरूप जलसे परिपूर्ण समुद्र देखा है वह इस बातको प्रकट करता है कि तुम्हारा पुत्र समुद्रके समान धीर गंभीर बुद्धिका धारक होगा अनेक नीतिरूपी नदियोंसे परिपूर्ण शास्त्रका समुद्र होगा और उत्तममार्गका उपदेश दे संसारी जीवोंको संसारसे पार करैगा॥ ३७॥ रत्नमयी सिंहासन देखनेका यह फल है कि तुम्हारा पुत्र समस्त जगतपर आज्ञा चलायगा और हाथ जोड़नेवाले अनेक देवोंसे मंडित सिंहासनपर विराजमान होगा॥ ३८॥ विमान देखना इसबातको प्रकटकरता है कि तुम्हारा पुत्र निरहंकारी वीतराग मनुष्योंका स्वामी होगा अनेक इंद्र उसके चरणोंकी

पूजा करैंगे उसका मन आधि व्याधिसे सर्वथा रहित होगा परमभाग्यशाली होगा और स्वर्गके मुख्य (जयंत) विमानसे चयकर तुम्हारे उदरमें अवतीर्ण होगा ॥३९॥ तुमने जो पृथ्वीको भेदकर निकला हुआ नागेंद्रका भवन देखा है वह यह बतलाता है कि तुम्हारा पुत्र संसाररूपी पींजराका खंड खंड करनेवाला होगा और मति श्रुति अवधिरूप तीन ज्ञाननेत्रोंका धारक उत्पन्न होगा ॥ ४० ॥ अनेकप्रकारके रत्नोंकी राशि देखनेका यह फल है कि वह पुत्र अनेक गुणरूपी रत्नोंकी राशि होगा और शरणमें आये हुये जीवोंका आश्रय दाता बनेगा ॥ ४१ ॥ एवं पिछले स्वप्नमें जो तुमने अपनी शिखासे आकाशको स्पर्श करनेवाली प्रदक्षिणा देती हुई निधूर्म वह्नि देखी है वह इसबातको जाहिर करती है कि तुम्हारा पुत्र ध्यानरूपी जाज्वल्यमान अग्निके बलसे कर्मरूपी ईंधनको भस्म करैगा ॥ ४२ ॥ देवि ! इस पुत्रके प्रसादसे मुकुट और कुडलोंसे भूषित देव सामान्य राजाओंके समान आज्ञाकारी सेवक बन मेरी आज्ञाका पालन करैंगे ॥ ४३ ॥ और इसीपुत्रके प्रभावसे अनेक देवियां जो कि घूंघरवाले केशोंसे सुंदर, मनोहर सुगंधित मालाओंसे अलंकृत, और करधनी पायजेव आदि भूषणोंकी झनझनाहटसे परम रमणीक हैं तुम्हारी सेवामें लगीहुई हैं ॥ ४४ ॥ प्रिये ! तुम निश्चय समझो ! परम पवित्र यह जिनेंद्ररूपी सूर्य अपनी उत्पत्तिसे अपने वंशको, आपको, मुझै, तुझै और समस्त जगतको शीघ्रही पवित्र बनायगा" ॥ ४५ ॥

अपने प्राणपति राजा समुद्रविजयसे स्वप्नोंका यह पवित्र और उत्तम फल सुन माता शिवाको परम आनंद हुआ वह भगवान जिनेंद्ररूप पुत्रको गर्भस्थहोने पर भी अपनी गोदीमें स्थित जाननेलगी और समस्त जनोंके मनको हरण करनेवालीं जिनेंद्रकी पूजा आदि क्रियाओंमें प्रवृत्त होगई ॥ ४६ ॥

ग्रंथकार कहते हैं—जो महापुरुष प्रतिदिन सांझ सवेरे भगवान नेमिनाथकी उत्पत्तिके कारण, स्वप्न और उनके फलोंको वर्णन करनेवाले इस सुंदर स्तोत्रका अभ्यास स्मरण और श्रवण करैगा नियमसे उसै जिनेंद्रकी परमपावन विभूति मिलैगी ॥ ४७ ॥

इसप्रकार आचार्यप्रवर श्रीजिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें भगवान नेमिनाथकी उत्पत्तिके कारण स्वप्न और उनका फल वर्णन करनेवाला सैंतीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३७ ॥

अडतीसवां सर्ग ।

इंद्रकी आज्ञा और अपनी भक्तिसे कुबेर सूर्यपुर आया जिनेंद्रके माता पिताको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उसने अनेक पवित्र तीर्थ जलोंसे उनका अभिषेक किया और अतिशय सुगंधित, दूसरोंकेलिये सर्वथा दुर्लभ पारिजात कल्पवृक्षके उत्तमोत्तम कमलोंसे

पूजाकी ॥ १ ॥ माता शिवाका गर्भाशय प्रथमसे ही दिक्कुमारियोंने शुद्ध कररक्खा था इसलिये आकाशरूपी स्त्री जिसप्रकार निर्मल चंद्रमाको धारण करती है उसीप्रकार माताने अपने निर्मल गर्भमें देदीप्यमान प्रभाके धारक, अपने बंधुरूपी समुद्रको आनंद देनेवाले, संतापके नाशक, समस्त जगतके कल्याण स्वरूप, भगवान जिनेंद्रको धारण किया ॥ २ ॥ भगवानके गर्भमें आनेपर माताके उदरकी वृद्धि न होनेसे त्रिवलिका भंग नहिं हुआ गरम गरम श्वासोंसे अधरपल्लव भी न कुम्हला पाया आलसभी किसीप्रकारका प्रतीत नहिं हुआ। अधिक क्या कहें ? उत्तम फलरूप भगवानने स्तनरूपी गुच्छोंके भारसे नम्रीभूत सूक्ष्म कटिभागसे भूषित माता शिवारूपी लताको किसी भी प्रकारकी बाधा न दी ॥३॥ माताका गर्भ गूढ़ था, उसके शरीरसे किसीको उसके गर्भका पता नहिं लग सकता था इसलिये गर्भके वतलानेकेलिये ही मानों उसके स्तन क्षीरसे परिपूर्ण होगये और उसकी जो जघन कटिभूषणसे मंडित और विस्तीर्ण होगई थी उनसे यह जान पड़ने लगा कि मानो वे पीन और विशाल स्तनोंके भार सहनेकेलिये ही ऐसी होगई हैं ॥४॥ उस समय भगवान जिनेंद्रके प्रभावसे माता शिवाका चित्त प्राणियोंकी रक्षा और तत्त्वोंके विचारमें लीन होगया। वचन हितकारी उपदेश देनेवाले और संशयके दूर करनेवाले होगये एवं शरीर व्रतोंके आचरण और विनयपूर्वक दूसरोंके पोषण करनेमें प्रवृत्त होगया ॥५॥ माता शिवा देवांगनाओंसे संपादित अनंतगुणी कांति और बलको बढानेवाला अमृतमयी आहार करती थी इसलिये सुवर्णमयी प्रभाको धारण करनेवाला उसका कृशभी शरीर समस्त दिशाओंको देदीप्यमान करनेसे विद्युत सरीखा जान पड़ता था ॥ ६ ॥ वडे बडे हाथीरूपी मगर मच्छोंसे शोभित, तुरंगरूपी मीनोंसे वेष्टित रथरूपी जहाजोंसे मंडित, सेनारूपी विशाल नदियोंसे सेवित जहां तहां प्रवेश करते हुये राजा और देवरूपी तरंगोंसे संयुक्त राजा समुद्रविजय उससमय एक विशाल समुद्रकी तुलना कर अपना नाम सार्थक करतेहुये मालूम पड़ते थे ॥ ७ ॥ इसप्रकार समस्त जगतसे पूजित, प्रतिदिन बढ़ते हुये हर्षसे हर्षायमान, इंद्रकी आज्ञासे अनेक देव देवियों द्वारा किये गये उत्तमोत्तम विभवोंसे मंडित, राजा समुद्रविजय और रानी शिवाने सानंद नव मास व्यतीत किये ॥ ८ ॥ नौ मासके बीत जानेपर वैशाख शुद्ध त्रयोदशीको रात्रिके समय जब कि चंद्रमाका चित्रा नक्षत्रके साथ शुभ योग था और समस्त ग्रह शुभ थे माता शिवाने अपने गुणोंसे समस्त जगतको वश करनेवाले, परमप्रिय भगवान नेमिनाथको जना ॥ ९ ॥ उत्पत्तिकालमें भगवान नेमिनाथ तीन ज्ञानके धारक एक हजार आठ लक्षणोंसे मंडित और निर्मल नीलमणिके समान चमकीले शरीरसे शोभित थे एवं अपने ज्वलंत तेजसे प्रसूतिघरके मणि और दीपकोंकी प्रभाको अनेक गुणी चमकीली बनाते थे ॥ १० ॥ जिनेंद्र रूपी चंद्रमा के उदय होजानेपर समस्तलोकका

हर्षरूपी समुद्र–शुभ्र मेघरूपी स्तनोंसे मंडित, पूर्ण चंद्रमारूपी मुखसे शोभित, रात्रिके समय देदीप्यमान ताराररूपी भूषणोंको धारण करनेवाली दिशारूपी रमणीको तरंगरूपी भुजाओंसे आलिंगन कर इच्छानुसार चूमने लगा ॥ ११ ॥ उससमय मेरुरूपी गंभीर नाभिसे अलंकृत, कुलपर्वतरूपी कंठ और स्तनोंको धारण करनेवाली, बहतीहुई नदी रूपी हारोंसे मंडित, समुद्रके तटरूपी वस्त्रसे विभूषित, वेदीरूपी करधनीसे शोभित, जंबूद्वीपकी पृथ्वी चल विचल होउठी सो उससे ऐसा जान पड़ने लगा कि मानो वह भगवानकी उत्पत्तिसे आनंदित हो नृत्य ही कर रही हो ॥ १२ ॥ पांच अनुत्तर विमानरूपी मुखका धारण करनेवाला, मोक्षरूपी मस्तकसे मंडित, नव अनुदिशरूपी हनु (ठोडी) से भूषित, नव ग्रैवेयकरूपी ग्रीवाका धारक, स्वर्गरूपी शरीरसे अलंकृत, मध्यलोकरूपी कटि और अधोलोकरूपी जंघासे युक्त, तीनलोकरूपी पुरुष उससमय चलविचल होनेके वहानेसे नृत्यकरता हुआ सरीखा जान पड़ने लगा ॥ १३ ॥ उससमय भगवान जिनेंद्रके प्रभावसे भवनवासियोंके घर शंख, व्यंतरोंके घर पटह, ज्योतिषियोंके घर सिंहनाद और वैमानिकोंके घर घंटा स्वयं वजने लगे ॥ १४ ॥ भगवान नेमिनाथके उत्पन्न होते ही समस्त सुर असुरोंके सिंहासन और मुकुट चल विचल होगये उन्हें अवधिज्ञानके बलसे भगवानके जन्मका निश्चय होगया ॥ १५ ॥ हाथ जोड़ते समय मुकुट और कर कंकणके घिसनेसे निकली हुई रत्नकी कांतियोंसे समस्त दिशाओंमें प्रकाश करनेवाले परमसम्यग्दृष्टि ग्रैवेयक आदि विमानवासी देवोंको भी भगवान नेमिनाथके जन्मका पता लगा वे एकदम सिंहासनसे उठ वैठे और सात पैंड चलकर भगवानको परोक्ष नमस्कार करने लगे ॥ १६ ॥ इसके बाद अपनी कांतिसे समस्त दिशाओंको प्रकाशमान करनेवाले असुरकुमार, नागकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, द्वीपकुमार, सुपर्णकुमार, उदधिकुमार, स्तनितकुमार, विद्युत्कुमार, दिक्कुमार, ये दशप्रकारके भवनवासी, मनोहर गीत और नृत्य करनेवाली देवांगनाओंसे मंडित किंपुरुष, किंनर, महोरग, राक्षस, पिशाच, भूत, यक्ष, गंधर्व ये आठ प्रकारके व्यंतर, परमकांतिके धारक एवं अपने देदीप्यमान विमानों से पृथ्वीपर दूसरे ज्योतिर्लोकका भ्रम करानेवाले ग्रह, नक्षत्र, चंद्रमा, सूर्य और प्रकीर्णक ये पांच प्रकारके ज्योतिषी और सात सात प्रकारकी सेनासे मंडित हो देवोंके साथ साथ सोलहो सर्गोंके इंद्र भगवानका जन्मोत्सव मनानेके लिये सूर्यपुरकी ओर चल दिये ॥ १७–२० ॥ उनमें सौधर्म स्वर्गका इंद्र अपनी इंद्राणी और देवियोंके साथ २ अनेक मुखोंसे संयुत, कमलोंके पत्रोंसे भूषित, परमसुंदरी देवांगनाओंके मनोहर नृत्यसे शोभायमान, जंगम हिमाद्रिपर्वतके समान उन्नत ऐरावत हाथी पर सवार था और उसके चारोतरफ सातो प्रकारकी सेना चल रही थी उसमें सबसे प्रथम पदाति सेना थी जो कि सात कक्षाओंमें विभक्त, सेनापतिसे संयुक्त, परमपराक्रमी गोलाकार

अपने वज्र आदि शस्त्रोंसे समस्त आकाशको व्याप्त करनेवाली होनेके कारण अतिशय मनोहर जान पड़ती थी॥२१–२२॥ दूसरी सेना तुरंगोंकी थी जो कि अपने प्रचंडवेगसे पवनके भी वेगको जीतती थी हींसनेके शब्दसे समस्त भुवनको शब्दायमान करती थी और आकाशरूपी समुद्रमें चंचल तरंगसरीखी जान पड़ती थी ॥ २३ ॥ तीसरी वृषभसेना थी जो कि सुंदरमुख, नीलकमलके समान नेत्र, मनोहर ककुद, पूंछ, कान, सास्ना, सुवर्णमयी खुर और सींगोंसे शोभायमान, विपुलकांतिकी धारक, चंद्रमाके समान शुभ्र थी ॥ २४ ॥ चौथी रथसेना थी जो कि स्वयं सात प्रकारसे भिन्न होने पर भी बड़े २ पर्वतोंसे अभेद्य थी आकाशरूपी समुद्रमें विमान सरीखी जान पड़ती थी तेजसे सूर्यके रथको जीतती थी और महामनोहर वर्त्तुलाकार–गोल थी ॥ २५ ॥ मेघके समान मदकणोंको वर्षानेवाली, शुंडादंडको ऊपर किये हुये, उन्मत्त गर्जना करनेवाली, देवोंसे अधिष्ठित पांचवीं गजसेना थी जो कि वर्षाऋतुके मेघोंकी तुलना करती थी ॥ २६ ॥ छठी सेनाका नाम गंधर्वसेना था और यह मधुर मूर्छनासे युक्त कोमल सातप्रकारके स्वरोंका उच्चारण कर २ गाती जाती थी वीन वांसुरी पखावज आदि नाना वाजोंको बजाती थी समस्त भुवनको व्याप्त करनेवाली और देवांगनाओंको महा आनंद देनेवाली थी ॥ २७ ॥ सातवीं सेना नृत्यकरनेवाली देवांगनाओंकी थी जो कि समस्त रसोंको पुष्ट करनेवालीं शरीरकी चेष्टाओंसे देवरूपी कल्पवृक्षोंके मनरूपी पुष्पोंको चुनती जाती थी और विशाल नितंबोंके भारसे मंद मंद गमन करनेवाली थी ॥ २८ ॥ यह प्रत्येक सेना सात सात प्रकारकी थी प्रथम प्रकार (कक्षा) में चौरासी चौरासी हजार घोड़े वैल आदि थे दूसरे प्रकारमें पहिलेसे दूने और तीसरेमें दूसरेसे दूनेथे इसीप्रकार आगे भी दूने दूने समझ लेना चाहिये ॥ २९ ॥

जबतक अपनी अपनी सेनासे मंडित हो समस्त इंद्र भगवानके जन्म कल्याणके उत्सव मनानेकेलिये सूर्यपूर आये उससे पहिलेही दिक्कुमारियां उन (भगवान) के जातकर्म करनेमें संलग्न होगई ॥ ३० ॥ देवियों में निर्मल हार और मणिमयी कुंडलोंसे भूषित विजया, वैजयंती, अपराजिता, जयंती, नंदा, आनंदा, नंदिवर्धना, नंदोत्तरा नामकी देवियां अपने स्तनोंके समान स्थूल, अंगसे छटकते हुये शृंगार रसके समान मिष्ट और स्वच्छ जलसे परिपूर्ण मनोहर झाडियोंको हाथमें लिये माता शिवाकी सेवामें लीन थीं ॥ ३१–३२ ॥ यशोधरा, सुप्रबुद्धा, सुकीर्ति सुस्थिता (स्वस्तिका) लक्ष्मीमती, सुप्रणाधि, चित्रा, वसुंधरा, नामकी देवियां हाथमें मणिमयी दर्पण लेकर खडी थीं जिससे कि चंद्रमाको धारण करनेवाली भगवानकी सेवाकेलिये आई हुई आठों दिशाऐं सरीखी जान पड़ती थीं ॥ ३३ ॥ इला, नवमिका, सुरा, सीता, पद्मावती, पृथिवी, कांचना, भ(चं)द्रिका नामकी देवियां माताके शिरपर छत्र लगायें

खडी थीं और देदीप्यमान भांति भांतिके आभूषण रूपी ताराओंसे चांदनी रात्रिके समान मालूम होती थीं ॥ ३४ ॥ श्री, धृति, आशा, वारुणी, पुंडरीकिणी अलंबुसा मिश्रकेशी और ही देवियां मातापर चमर ढोल रहीं थी और कुलाचलोंसे निकली हुई सफेद झागोंकी तरंगोंसे युक्त नदी सरीखी जान पडतीं थीं ॥ ३५ ॥ कनकचित्रा, चित्रा, त्रिशिरा, सूत्रामणि नामकी विद्युद् देवियां अनेक प्रकारके उपकरण लिये खडीं थी और अपने शरीरकी चमचमाहटसे जिनेंद्ररूपी मेघके समीप अंधकारको नाश करनेवाली चमचमाती हुई विजलीकी उपमा धारण करती थीं ॥ ३६ ॥ और समस्त विद्युत् कुमारियोंमें प्रधान रुचकाभा, रुचकप्रभा, रुचका और रुचिकोज्वला नामकी देवियां एवं दिक्कुमारियोंमें प्रधान विजया वैजयंती, जयंती और अपराजिता नामकी देवियां उससमय विधिपूर्वक भगवानका जात कर्म कररहीं थी ॥ ३७ ॥

भगवानके जन्मोत्सवसे पहिले ही कुबेरने सूर्यपुरका विचित्र वैभव बना रक्खा था उसके प्रभावसे जगह जगह महलोंपर ध्वजायें फहरा रहीं थी अपनी चमक दमकसे इंद्रपुरीका विजय करतेहुयेके समान वह मालूम होरहा था चारो निकायोंके देव और इंद्र सूर्यपुर आये और भक्तिपूर्वक तीन प्रदक्षिणा दे उसकी अद्वितीय शोभा निरखने लगे ॥ ३८ ॥ इंद्र समस्त लौकिक व्यवहारोंका भलेप्रकार जानकार था इसलिये नगरमें प्रविष्ट हो माता शिवाके मंदिरके पास जाकर वह ठहर गया और अपनी इंद्राणीको बालक भगवानके लानेकेलिये आज्ञा दी। प्राणपतिकी आज्ञासे इंद्राणीने माताके प्रसूतिघरमें प्रवेश-कर माताको अपनी मायासे निद्रित बना दिया और एक मायामयी बालक रचकर उसकी गोदमें सुलादिया उसके बाद वह माताको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अपने कोमल करोंसे भगवानको उठालाई और आकर अपने पति इंद्रको उन्हें सोंपदिया इंद्रने मस्तक नमाकर भगवानको नमस्कार किया और अपने हाथमें लेलिया ॥ ३९-४० ॥ उससमय ललोंए हाथ और चरणोंसे युक्त भगवानका मुख नील कमलके समान सुंदर नेत्रोंसे भूषित था—अपनी नील कांतिसे नील कमलोंके वनकी शोभाको जीतता था इसलिये उसै देख इंद्र दो नेत्रोंकी जगह हजार नेत्रोंका धारक होगया परंतु तवभी तृप्ति न पासका भगवानके रूप देखनेकी इच्छा उसै ज्योंकी त्यों बनी रही ॥ ४१ ॥ इंद्रनीलमणिके समान नीले भगवान जिनेंद्रको इंद्रने ऐरावत गजेंद्ररूपी स्फटिकमयी पर्वतपर विराजमान किया उससमय उनके ऊपर संतापके दूर करनेकेलिये चमर ढुलते जाते थे इसलिये ऐसा जान पडता था मानो चंचल तरंगोंसे व्याप्त फेनसे सहित समुद्रही गमन कररहा हो ॥ ४२ ॥ गजेंद्र ऐरावतके वत्तीस मुख थे प्रतिमुखमें आठ आठ दांत हरएक दांतपर सरोवर, प्रतिसरोवरमें कमलिनी, प्रतिकमलिनीमें वत्तीस २ पत्र और हरएक पत्रपर परमसुंदरी देवांगनायें नृत्य करती चली जाती थीं ॥ ४३ ॥ इसप्रकार

विशाल विभूतिके साथ इंद्र आदि समस्त देव मेरुपर्वतपर आये भक्तिपूर्वक उसकी प्रदक्षिणा दी वहांपर पांडुक वनमें पांडुकशिलापर एक सिंहासन है–जो कि पांचसौ धनुष ऊंचा है उसपर भगवान जिनेंद्रको विराजमान किया ॥ ४४ ॥ नवीन उत्सवके आनंदसे आनंदित देवांगनायें पूजाकी सामग्री लेकर चारो ओर खड़ी होगई नृत्यकरने-वाले नृत्य करनेलगे और हाव भाव विलासोंमें सर्वथा मस्त होगये ॥ ४५ ॥ कानोंको अतिशय प्यारे, मेरुपर्वतकी विशाल गुफाओंकी प्रतिध्वनिसे अतिशय उन्नत, पटह शंख सिंहनाद और नगाडोंके शब्दोंने उससमय समस्त लोकको व्याप्त कर दिया जिससे कि समस्त लोकको व्या करनेवाले भगवानके गुण सरीखे वे जान पड़नेलगे ॥४६॥ उत्तम धूप और पुष्पोंकी सुगंधिसे समस्त आकाश व्याप्त होगया पांडुकवनकी पवन महा मनोहर सुगंधित होगई इसलिये जहां तहां फैलकर उसने समस्त दिशाओंको सुगंधित बनादिया ॥ ४७ ॥ अनेक शरीर धारणकर उत्तमोत्तम भूषण वसन पहिन इंद्रने देवोंद्वारा मणि और सुवर्णके घड़ोंसे लाये गये उत्तम सुगंधित क्षीरोदधिके जलसे भगवानका अभिषेक करना प्रारंभ करदिया ॥ ४८ ॥ उससमय मेरुपर्वतसे क्षीरसमुद्र पर्यंत खड़ी हुई, अतिशय आनंदित, हाथमें मणियोंकी प्रभासे देदीप्यमान कलशलिये देवोंकी पंक्तिने आकाश व्याप्त कर रक्खा था इसलिये ऐसा जान पड़ता था मानों पांचवां क्षीरसमुद्र मेरुसे अतिशय दूर है उसै देव शीघ्रगामी कलशेरूप रज्जुओंसे बांधकर मेरुपर्वत पर लाना चाहते हैं ॥ ४९ ॥ उससमय वहां 'कलश लो, जल्दी दो, लाओ, पकड़ो, मुझे दो' इत्यादि महामनोहर देवोंके शब्द सुन पड़ते थे और देवोंके एक हाथसे दूसरे हाथमें दी गई शुभ्र कलशोंकी श्रेणीसे यह जान पड़ता था मानों पांडुकवनमें जहां तहां हंसही घूम रहे हों ॥ ५० ॥ आकाशमें देवोंके हाथमें विराजमान सुवर्ण और मणि-योंके पीले और सफेद कलशोंका समूह सूर्य चंद्रमाका समूह सरीखा जान पड़ता था अथवा अपने पक्षोंकी कांतिसे समस्त दिशाओंको प्रकाशमान करनेवाला अनेक पीले गरुड और सफेद हंसोंका समूह सरीखा मालूम पड़ता था ॥ ५१ ॥ इसतरह शब्द करते हुये मेघोंके समान, उत्तम जलसे भरे हुये हजार कलशोंसे इंद्रने भगवानका अभिषेक किया जिससे कि समस्त मेरुपर्वत शुभ्र होगया सो ठीक ही है–स्वच्छपदार्थके आश्रयसे अशुभ्र भी शुभ्र हो जाते हैं–पीत भी मेरुपर्वत परमपवित्र भगवानके अभिषेक जलसे श्वेत होगया इसमें कोई आश्चर्य नहीं ॥ ५२ ॥ सौधर्म इंद्रसे अतिरिक्त अन्य देव और इंद्रोंने भी जिनका संसार बहुत जल्दी छूटनेवाला था निर्मल जलसे भगवान जिनेंद्रका यथेष्ट अभिषेक किया। मारे आनंदके उनके शरीर रोमांचित होगये जिससे कि जिन शासनमें उनका अतिशय अनुराग प्रकट होता था ॥ ५३ ॥ देवोंके अभिषेक करनेके बाद इंद्राणी आदि देवियां भगवानके समीप आई अतिशय सुगंधित पदार्थोंसे उनका उपटन

करने लगीं और उत्तम जलसे भरे हुये घड़ोंसे सानंद अभिषेक करने लगीं ॥५४॥

इसप्रकार वस्त्र मणिमयी भूषण माला और उपटनोंसे अतिशय देदीप्यमान भगवानका इंद्रने शुभ नाम अरिष्टनेमि रक्खा और देवोंके साथ २ भक्ति भावसे प्रदक्षिणा दे वह उनकी स्तुति करने लगा ॥ ५५ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान अरिष्टनेमिका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें भगवान नेमिनाथका जन्माभिषेक वर्णन करनेवाला अडतीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३८ ॥

उनचालीसवां सर्ग।

इंद्र जिनेंद्र-नेमिनाथकी इसप्रकार स्तुति करने लगा—

प्रभो! आप समस्त श्रुतज्ञान मतिज्ञान और अवधिज्ञानसे मंडित है निर्मल चेष्टाके धारक हैं, निद्रारहित हैं अपनी निर्मलज्ञानरूपी दृष्टिसे समस्त चराचर लोकको साक्षात् देखनेवाले हैं, सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूपी निर्दोष रत्नत्रयसे विभूषित हैं। आपने पूर्वभवमें घोरतपकेसाथ सोलहभावना भानेसे तीर्थंकर प्रकृतिका उपार्जन किया था इसलिये उसीके प्रभावसे अतिशय अद्भुत पुण्यरूपी प्रचंडपवनने समस्त देवरूपी कुलपर्वतोंको चल विचल बना दिया है-सबके सब मिलकर आपके चरणोंकी सेवा कर रहे हैं। इस युगमें आप महापुरुष हैं आपके मुखकमलके देखनेसे तृप्त न होते हुये ये देवगण अपने उत्तमोत्तम स्तोत्रोंकी ध्वनि और उन्नत दुन्दुभिके शब्दोंसे आपका शुद्ध यश प्रकट कर रहे हैं। नाथ! जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रको आपने अपने अतिशय निर्मल यशसे स्वच्छ और जन्मसे पवित्र बनाया है। प्रभो! आप हरिवंशरूपी विशाल पर्वतके शिखामणिस्वरूप, अपनी उग्रदीप्तिसे सूर्यकी प्रभाको भी जीतनेवाले अद्वितीय बालसूर्य हैं। आपने अतिशय कांतिके धारक अपने शरीरकी कांतिसे चंद्रमाकी कांति फीकी बना दी है इंद्रनीलमणिके समान अपनी महामनोहर द्युतिसे समस्त दिशायें जगमगा दी हैं इसलिये हे पूज्यजिनेंद्र! आपके लिये हमारा बार २ मस्तक नमाकर नमस्कार है। हे समस्तलोकके हितकरने वाले परमेश्वर! आपने इस जन्मसे पूर्वके तीसरे जन्ममें अनुपम मुनिव्रत धारण कर विधिपूर्वक परमपावन मोक्षमार्गका स्वरूप प्रकट किया था अनेक प्रकारके घोर तप तपे थे महाविषम कर्ममलको निर्मूल किया था इसलिये यह भव्यसमूह आपके प्रति नम्रीभूत है। कृपानाथ! अब आप जन्म जरा मरण और भयसे महाभयंकर इस अपार संसाररूपी समुद्रको पारकर तीनोंलोकके शिखरपर जा विराजमान होंगे अनेकगुणोंसे मडित सिद्ध हो उस परमेष्ठिपदका लाभ करेंगे कि जिसपदको बड़े बड़े मुनि परम अद्वितीय, अविनाशी, आत्महितकारी, महामहनीय, आत्मीक, सदा प्रकाशमान और अनंत बतलाते हैं जहांके कि सुखको प्रतापी

पराक्रमी मनुष्य ही भोग सकते हैं अन्य अभव्य नहीं जो कि समस्त जगतकी प्रभुता बतलानेवाला है और जिसके कि सामने देवेंद्र नरेंद्रादि बड़े बड़े अभ्युदयोंका कुछ भी मूल्य नहि है। भगवन्! आपका शासन उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनों पर्यायोंसे युक्त पदार्थोंका निरूपण करनेवाला है आपके शासनकी सेवासे ही मनुष्य मोक्षसुख भोग सकते हैं अन्य शासनकी सेवासे नहीं। प्रभो! जो जीव आपके सिद्धांतपर पूरा २ विश्वासकर आपकी भक्ति स्तुति करते हैं वे कृतकृत्य होजाते हैं। आपके वचन समस्तजीवोंको हितकारी और प्रिय हैं आप संसारके नाश करने वाले हैं अपने शरीरकी सुगंधिसे समस्त दिशायें सुगंधित करनेवाले हैं छिद्ररहित वज्रवृषभनाराच संहनके धारक और समचतुरस्रसंस्थानसे मंडित हैं दुग्धके समान रुधिरके धारक, रस और भावोंके वेत्ता, मलमूत्र और पसेव रहित शरीरसे शोभित, अतुलबलसे बली हैं। प्रभो! आप अपने आत्मीक बोधसे कामदेवके जीतने वाले हैं समस्त पृथ्वीमें पूज्य हैं पृथ्वीको अपनी ऋतुमें होनेवाले फलफूलोंसे व्याप्त करनेवाले हैं और अनंतगुणोंके भंडार हैं इसलिये आपके इन गुणोंकी प्राप्तिके लिये हम आपको वार २ नमस्कार करते हैं। नाथ! पृथ्वीसे निन्यानवे हजार ऊंचा यह अचलनाथ मेरु भी आपके स्नानका आसन होगया बतलाइये सिवाय आपके किसमें इतनी सामर्थ्य है! कृपासिन्धु! यह आपका ऐश्वर्य अपरिमित है परम अभिमानी बड़े बड़े देव और मनुष्य भी आपके ऐश्वर्यका संमान करते हैं यद्यपि समस्त संसारमें स्वर्ग अतिशय माननीय और अद्वितीय स्थान है परंतु वहांके निवासी देवोंको भी ऐसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति नहीं होती बाल्यकालमें ही आप संसारमें अद्वितीय पराक्रमी हैं प्राणियोंका हित करनेवाले हैं तीनोंलोकमें स्तुतिके योग्य हैं भक्तिके भारसे अतिशय नम्र हुये लोंगोंको शारीरिक और मानसिक आधि व्याधियोंके नाश करनेवाले हैं। प्रभो! आप कामरूपी हस्तीको दमनकरनेके लिये प्रतापी सिंह हैं क्रोधरूपी भयंकर सर्पके लिये वि-राज—गरुड़ हैं मानरूपी विशालपर्वतको चकनाचूर करनेवाले वज्र हैं लोभरूपी महावनके जलानेमें जाज्वल्यमान अग्नि हैं ऐश्वर्यके धारणकरनेमें परम धीर वीर हैं अपने गुणों से समस्तलोकको व्याप्त करनेवाले विष्णु हैं अचिंत्य आर्हत्य विभूतिके भोक्ता हैं और ब्रह्मपदके कारण हैं इसलिये हे प्रभो! आपकेलिये भक्तिपूर्वक नमस्कार है।"

इसप्रकार देवोंके साथ २ इंद्रने अपने उत्तमोत्तम वचनोंसे भक्तिपूर्वक भगवानकी स्तुतिकी और भयंकर संसार समुद्रसे पार होनेकेलिये सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्ररूपी जहाजको प्राप्त करनेकी इच्छा प्रगटकी।

भगवानके अभिषेकके समय जगह जगह मेरुपर्वत पर क्षीरसागरका जल विखरा हुआ पड़ा था सो उससे ऐसा जान पड़ता था मानों देवोंद्वारा मथित अमृतमयी क्षीरसमुद्रके जलरूपी अमृतको मेरु अधिक पीगया है और उसै वह पचा नहिं सका है इसलिये चारो

ओर इसने वमन करदिया है। उससमय खेदरहित परम आनंदित विशालबुद्धिके धारक देवोंने सर्वत्र आकाशमें भेरी मृदंग वीणा आदि बाजे बजाये सो उनके उन्नत और गंभीर शब्दोंसे ऐसा जान पड़नेलगा मानों जिनेंद्रके जन्माभिषेककी घोषणाकेलिये ही इन्होंने समस्त दिशायें व्याप्त कर रक्खी हैं। शृंगार हास्य आदि अद्भुत रसोंके वेत्ता सुंदर अंगके धारक उत्तमोत्तम दिव्य अभिनय बतलानेवाले अनेक देव देवांगना उससमय सानंद नृत्यमें लीन थे।

इसप्रकार मेरुपर्वतके ऊपरकी समस्त शुभ क्रियाओंके समाप्त होजानेके बाद सौधर्म इंद्रने परम धीर वीर, श्वेत छत्रोंसे शोभित, ऊपर ढुलते हुए अनेक चमरोंसे अलंकृत, देव देवांगनाओंद्वारा स्तुत, भगवान जिनेंद्रको अतिशय शोभनीक ऐरावत हाथीपर विराजमान किया और वहांसे अनेक देवोंके साथ आकाशको व्याप्त करते हुए मृगेंद्रोंके समान अनेक यादवेंद्रोंसे शोभित सूर्यपुरकी ओर प्रस्थान करदिया। उससमय मार्गमें जाते हुए अनेक देवगण परम आनंदित हो भगवानकी बड़े आनंदसे नुति स्तुति और कीर्ति करते चलते थे चरण कमलोंकी सेवामें देवेंद्र आदि तीनोंलोकोंके इंद्र लीन थे और 'समस्त लोकको अतिक्रांत करनेवाले अनुपम और आश्चर्यकारी ऐश्वर्यसे मंडित ये माता शिवाके पुत्र आनंदित हों बढ़ें जीवें' इसप्रकार पवित्र स्तुति करते जाते थे उससमय कुलाचलोंसे निर्गत निर्मल जलको धारण करनेवालीं नदियोंकी तरंगोंके संबंधसे अतिशय शीतल, भोगभूमिके कल्पवृक्षोंकी महामनोहर सुगंधिसे सुगंधित, शरीरके अनुकूल बहनेवाली, भगवानके खेद को दूर करनेकेलिये दूरसे उत्थित, मित्रकेसमान, सुखस्पर्श पवन, कोमलांग जिनेंद्र नेमिनाथका शरीर पूर्णरूपसे आलिंगन करती थी भगवान बाल अवस्थाके अनुकूल सुंदर वसन भूषण और मालाओंसे परम उज्वल मालूम होते थे अपनी मनोहर शोभासे बाल कल्पवृक्षकी शोभाको अतिक्रांत करते थे। स्वयं मेघके समान श्याममूर्तिके धारण करनेवाले और श्वेत सुगंधित चंदनसे सर्वांगमें लिप्त थे इसलिये वे उससमय श्वेत चांदनीसे युक्त विशाल नीलाचलकी उपमा धारण करते थे। इसतरह भांति भांतिकी उपमाओं को धारण करने वाले देवसेनासे वेष्टित भगवान शीघ्र ही उत्तर दिशाका त्याग कर अपने जन्मस्थान सूर्यपुरके पास आगये जो कि अनेक प्रकारकी ध्वजायें और भांति भांतिके बाजोंके गंभीर शब्दोंसे समस्त आकाशको व्याप्त करनेवाला था जगह जगह सुगंधित जलकी वर्षा और आकाशसे गिरती हुई पुष्पावलीसे मनोहर था और अपने परम मंगलीक खजानेसे लक्ष्मीके खजानेकी तुलना करता था। इंद्रने ऐरावतसे उतार भगवानको माता शिवाकी गोदमें विराजमान किया और विक्रिया शक्तिसे देदीप्यमान कंधोंसे भूपित हजार भुजायें बना उनके ऊपर परमसुंदरी हजारों देवांगनाओं को नचाया। इंद्रका यह सब दृश्य टकटकी लगाकर समस्त यादव देख रहे थे और

समस्त पृथ्वीके राज्यसे भगवान नेमिनाथके इस जन्मोत्सवको कई गुणा अधिक आनंददायक समझते थे नृत्यकलामें परम प्रवीण इंद्रने क्षणभरमें अतिशय रमणीय प्रयोगोंसे शोभित तांडवनृत्यके साथ महाआनंददायक नृत्य करना प्रारंभ किया और जिस गायनको उठा गाने लगा उसके स्वरूपका विस्तार अनेक प्रकारके अभिनयके साथ बड़े चमत्कारसे वर्णन करनेलगा जिससे कि रस और भाव जुदे २ रूपमें प्रकट मालूम पड़नेलगे। नृत्यके समाप्त होजानेपर इंद्रने भगवान और उनके माता पिताका भक्तिपूर्वक नमस्कारकर दूसरोंकेलिये सर्वथा अलभ्य अमूल्य भूषणोंसे पूजन किया भगवानके भोजनार्थ उनके दहिने हाथके अंगूठेमें परम पवित्र अमृतमयी आहार स्थापन किया समान उम्रके देवकुमारोंको उनके साथ क्रीड़ा करनेकी और कुवेरको वय कालके अनुकूल भगवानको भूषण बसन पहिनानेकी आज्ञा दी एवं स्वयं भगवानके माता पिताकी अनुमतिसे जिन चार निकायके देवोंके साथ २ आया था उन्हींकेसाथ सानंद अपने स्थान लौट गया। इसकेवाद दिक्कुमारियां भी अपना कार्य समाप्त होजानेसे आर्यपुत्री माता शिवाको प्रणामकर उसकी आज्ञा ले अपनी दीप्तिसे समस्त दिशाओंको जगमगाती हुई अपने २ स्थान चली गई। अपने अतिशय निर्मल गुणरूपी किरण समुदायसे समस्त जगतको आनंदित करनेवाले बालक होनेपरभी वृद्धों सरीखी बुद्धिसे युक्त उत्तमोत्तम चेष्टाओंसे मंडित, वंधु और देवोंसे पोषित भगवान नेमिरूपी चंद्र दिनोंदिन वढनेलगे और समस्त जगतको हर्षायमान करनेलगे ॥

ग्रंथकार कहते हैं कि—तीनों लोकमें प्रतापी, पापनाशक, पुण्यके कारणभूत इसी भवसे मोक्षगामी, भव्यजीवोंको प्रमोदके कर्ता, प्रमादके हर्ता, धर्मके बढानेवाले, भगवान नेमीश्वरके जन्माभिषेकका यह स्तवन है इसके कथन पठन श्रवण और भजन करनेवालेको सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूपी संपत्तिका लाभ होता है सौख्य शांति पुष्टि और संतोष मिलता है इस भव और परभवमें साक्षात् कल्याणकी प्राप्ति होती है हजारों पापास्रवोंका नाश होजाता है और अंतमें भयंकर कर्मोंके विध्वंससे मोक्ष भी मिलती है इसलिये भव्यजीवोंको चाहिये कि स्नेह मोह आदिसे संचय किये पापोंको नाश करनेवाले भगवान जिनेंद्रका भक्तिपूर्वक स्तवन करैं ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें भगवान नेमिनाथका जन्माभिषेक वर्णन करनेवाला उनचालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ३९ ॥

चालीसवां सर्ग।

संग्राममें भाई अपराजितका मरण सुन राजा जरासंध शोक सागरमें डूबगया परंतु क्रोधरूपी जहाजका आश्रय ले किसीतरह पारपर आ पाया अर्थात् भाईके मरनेसे

जरासंधको इतना दुःख हुआ कि यदि यादवोंसे बदला लेनेकेलिये उसकी आत्मा क्रोध-मय न होगई होती तो वह अवश्यही मरजाता ॥ १ ॥ उसने समस्त यादववंशके निर्मूल करनेकेलिये अपने मनमें कडी प्रतिज्ञा करली और निर्भीक हो शत्रुओंका सामना करनेके लिये अपने मित्र राजाओंको अपने यहां आनेकी घोषणा भी देदी ॥ २ ॥ राजा जरासंध उससमय राजराजेश्वर था—सब राजाओंका स्वामी था इसलिये आज्ञा सुनते ही उसके हितैषी अनेक देशोंके राजा चतुरंग सेनासे मंडित हो उसकी सेवामें आ उपस्थित हो गये और अनंतसेनासे वेष्टित जरासंधके साथ २ शीघ्रही सूर्यपुरकी ओर चल दिये। यादवोंके भी चतुर दूत जहां तहां घूमते फिरते थे उनसे युद्धकेलिये जरासंधके आनेका समाचार सुन अंधकवृष्णि भोजकवृष्णि दोनों कुलोंके वयोवृद्ध विद्वान यादव एकजगह बैठे और इसप्रकार आपसमें विचार करने लगे—

"यह अजेय जरासंध तीनखंडपर अखंडरूपसे आज्ञा चलानेवाला है महा उग्र है शासन भी इसका उग्र है चक्र खड्ग गदा दंडरत्न आदि घोर शस्त्रोंके बलसे उद्धत है अपने उपकारीका उपकार और अपकारीका अपकार करनेवाला है इसका अपराधकर जो पुरुष इसका आज्ञाकारी होजाता है उसे यह क्षमा भी कर देता है जब हम निरप-राधी थे—इसका हमने कोई अपराध नहिं किया था तब हमारे ऊपर भी इसने बहुतसे उपकार किये हैं अब हमने इसके जमाई और भाईका प्राणघात किया है इससे इसने अपना बड़ा भारी पराभव माना है उसी पराभव रूपी मैलके धोनेकेलिये यह हमपर कुपित हो चढ़कर आरहा है ॥ ३–८ ॥ यद्यपि हमारे समस्तलोकको आश्चर्य करनेवालीं दैवी और मानवी दोनों प्रकारकी शक्तियां प्रकट होचुकी हैं—इससमय बड़े २ देव और पुरुष हमारे सहायी हैं तथापि यह जरासंध क्रोधांध होनेके कारण उन्हें जानता हुआ भी नहीं जानता है—वह इस बातपर ध्यान ही नहिं देता है ॥ ९ ॥ बालकालसे ही कुमार कृष्णकी पुण्यमयी सामर्थ्य और बलदेवकी प्रखर शारीरिक शक्ति प्रकट होती आरही है समस्त देवेंद्रोंके आसन कंपायमान करनेवाले त्रिलोकके स्वामी भगवान नेमिनाथ भी हमारे ही यहां उत्पन्न हुये हैं ॥ १०–११ ॥ अहा ! जिस तीर्थंकरके पालन पोषण करनेमें लोकपाल देव सरीखे व्यग्र रहते हैं उसके कुलको कोई मनुष्य निर्मूल कर सके यह बात सर्वथा असंभव है ॥ १२ ॥ जिसप्रकार मूर्ख भी मनुष्य जलजानेका भयकर हाथसे विकराल ज्वालावाली अग्निका स्पर्श करना नहिं चाहता उसीप्रकार तीर्थंकर बलभद्र और नारायणके सामने भी कोई विजयलाभकी कामना नहीं कर सकता ॥ १३ ॥ इसमें कोई संदेह नहीं कि यह राजा जरासंध प्रतिनारायण है और हमारे वंशमें इसके मारनेवाले ये बलभद्र और नारायण प्रकट हुये हैं ॥ १४ ॥ तथापि हमारी यह राय है कि जबतक पक्षसहित जरासंधरूपी पतंग कृष्णरूपी जाज्व-

ल्यमान अग्निमें गिरकर भस्म न हो उसके पहिले ही हम शूरवीर कृष्णके साथ यहांसे हट जांय और पश्चिम दिशामें जाकर वहांसे उसै लड़ाईकेलिये आज्ञा दें। क्योंकि कृष्ण अभी बालक है जरासंध सरीखे राजराजेश्वरकी शक्तिका सामना करना इससमय उसकी शक्तिके बाहिर है स्थानके बदल देनेपर तो हमारा कार्य निर्विघ्नरूपसे सिद्ध होजायगा॥ १५–१६॥ यदि वहां भी जरासंध हमारे ऊपर चढ़कर आवेगा तो यह कृष्ण भी रणप्रिय है हम अवश्य वहां रण ठान देंगे" ॥ १७॥ इसप्रकार आपसमें भलेप्रकार मंत्रकर यादवोंने अपने कटकमें अपने विचारकी घोषणा करदी और आनंद सूचक भेरीके उन्नत शब्दोंसे सबोंको चलनेकेलिये आज्ञा देदी ॥ १८–१९ ॥ भेरीका शब्द सुनते ही यादव राजाओंकी चतुरंग सेना तत्काल चलनेकेलिये तयार होगई स्वामी पर परम अनुराग करनेवाली मथुरा सूर्यपुर और वीर्यपुरकी प्रजाने भी स्वयमेव प्रस्थान कर दिया ब्राह्मण क्षत्रिय आदि चारो वर्णकी धर्मात्मा प्रजाने क्रीड़ाकेलिये क्रीड़ावनके समान विदेश जानेकी तयारी करदी ॥ २०–२२ ॥ उससमय यदुवंशी राजाओंके परमप्रेमी अपरिमित धनके भंडारी अठारह करोड़ मनुष्य उनके अनुगामी थे प्रशस्त तिथि, नक्षत्र योग और दिनमें यदुतिलक महीपाल पश्चिमदिशाकी तरफ गमन करथोड़े ही पडावोंके बाद अनेक देशोंको उल्लंघते हुये विंध्याचलकी अटवीमें जापहुंचे ॥ २३–२५ ॥ विंध्याचल पर्वत बड़ाही सुहावना था जगह जगह उसके वनोंमें हाथी सिंह शार्दूल निर्द्वंद्वतासे विचरते फिरते थे और अपनी ऊंचाईसे आकाशका स्पर्श करता था इसलिये उसने अपनी मनोहरतासे समस्त राजाओंके चित्त अपनी ओर झुका लिये थे। ॥ २६ ॥ मार्गमें पड़जानेसे उससमय विंध्याचलकी तलहटीमें राजा जरासंध भी अपनी अगणित सेनाके साथ टिका हुआ था उसका पता पाते ही यादवलोग भी बड़े उत्साहके साथ युद्ध करनेकेलिये तयार होगये ॥ २७॥ दोनों सेनाओंका आपसमें भिड़नेकेलिये थोड़ा ही अंतर रहगया था कि इतने हीमें भरतार्द्ध निवासिनी देवी प्रकट होगई उन्होंने अपनी विक्रिया ऋद्धिकी सामर्थ्यसे भयंकर ज्वालाओंसे व्याप्त चिता रच दीं और उन्हें राजा जरासंधको दिखादिया ॥ २८–२९ ॥ ज्योंही राजा जरासंधने चतुरंगसेनाका शरीर चारो ओर कराल अग्निकी ज्वालासे व्याप्त और जलता हुआ देखा तो उसै बड़ा आश्चर्य हुआ वह मार्ग बंद होजानेके कारण अपनी सेनाको वहीं ठहरनेकी आज्ञा दे करुणाजनक स्वरसे रोती हुई बुढ़ियाके वेषको धारण करनेवाली एक देवीके पास गया और इसप्रकार पूछने लगा—

"वृद्धे! यह किसका विशाल कटक व्याकुल हो जल रहा है? और तू क्यों यहां दुःखित हो रो रही है? सब ठीक ठीक बतला" वृद्धाके उससमय नेत्र आसुओंकी धारासे तल बतल थे शोक और दुःखसे उसका कंठ रुद्ध हो रहा था इसलिये बड़े

कष्टसे शोक और दुःखको थाम अपने गद्गदकंठसे वह इसप्रकार कहने लगी—

"राजन्! जो कुछ मैंनें अपनी आंखसे देखा या जाना है उसे मैं कहती हूं क्योंकि यह एक साधारण नियम है कि जो मनुष्य किसी महापुरुषके सामने अपना प्रबल भी कष्ट निवेदन करदेता है तो उसका वह कष्ट बातकी बातमें दूर हो जाता है ॥३०-३४॥ राजगृह नगरमें एक परमप्रतापी जरासंध नामका राजा है जो परम नीतिवेत्ता सत्यप्रतिज्ञ और समुद्रपर्यंत पृथ्वीका भोक्ता है ॥ ३५ ॥ अन्य जगहकी तो क्या बात? अगाध जलसे पूर्ण समुद्रमें भी वडवानलके व्याजसे शत्रुओंके नाशार्थ उसके प्रतापरूपी वह्निकी ज्वाला सर्वदा जाज्वल्यमान रहती है ॥ ३६ ॥ उसी जरासंधका यादवोंसे कुछ अपराध बनगया जिससे कि उन्हें परम दुःख हुआ और जरासंधके कोपसे त्रस्त हो वे अपने जीवनकी आशासे नगरसे निकल भागे अनेक जगह उन्होंने पृथ्वीपर भ्रमण किया परंतु जब उन्हैं कहीं शरण न मिली तो वे एक मरणको ही शरण समझ इस प्रचंड पावकमें प्रवेश कर गये और जलकर खाक होगये ॥ ३७-३८ ॥ वंश परंपरासे आई हुई मैं उनकी दासी हूं मुझै अपना जीवन बहुत ही प्यारा है इसलिये अग्निमें न जलकर स्वामियोंकी दुर्मतिके दुःखसे पीडित हो यहां बैठी २ रो रही हूं। ॥ ३९ ॥ जरासंधके अनुयायी कुरुवंशी भोजवंशी समस्त यादव अपनी प्रजा और सेना आदिके साथ २ इस अग्निमें प्रविष्ट हो नष्ट होगये हैं इसलिये यह मेरा शरीर उनकी मृत्युके दुःखसे अतिशय दुःखित है और उनके वियोगसे पिशाचसे झपेटी हुईके समान पीडित मैं किसीप्रकार श्वांस ले रही हूं।" वृद्धाके ऐसे वचन सुन राजा जरासंधको बड़ा आश्चर्य हुआ और दासीके वचनोंसे अंधकवृष्णि और भोजकवृष्णिके वंशके नाशका पूर्ण विश्वास कर वह तत्काल अपने नगर लोट आया एवं अपने बंधुओंके साथ कृतकृत्य हो सानंद रहने लगा ॥ ४०-४३ ॥ यादव भी पश्चिमसमुद्रके किनारे—जहां इलायचीके वनकी लताओंके संबंधसे शीतल सुगंधित मंद मंद पवन बह रही थी—आये और दूर देशसे आनेके कारण थकावट दूर करनेके लिये मय अपनी सेना एवं प्रजा आदिके यथायोग्य स्थानोंपर ठहर गये ॥ ४४ ॥

यद्यपि निर्दयी और अतिशय कुपित राजा जरासंधने यादवोंका पीछा किया उनके मारने और अपने मरनेकेलिये भी पूरा पूरा निश्चय करलिया परंतु वह विक्रिया शक्तिके प्रभावसे देवोंद्वारा दिखाई गई अग्निज्वाला देख आगे न जा सका और वहींसे लोट गया ग्रंथकार कहते हैं कि—उससमय यादव और जरासंध दोनोंका जैनधर्मकी क्रियाओंसे कमाया हुआ पुण्य अचिंत्य और स्तुतिके योग्य था ॥ ४५ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेन द्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें यादवोंका विदेशगमन वर्णन करनेवाला चालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४० ॥

इकतालीसवां सर्ग।

उससमय समुद्र क्षुब्ध हो रहा था यादवोंको उसके देखनेका कुतूहल हो गया जिससे कि समुद्रविजय आदि दश भाई भोजकवृष्णिके पुत्र, कृष्ण, और नेमिनाथ आदि उसे देखनेकेलिये चलदिये ॥ १ ॥ उससमय पवनके प्रचंडवेगसे जलके कण जहां तहां छटक रहे थे इसलिये वह समुद्र मदयुक्त दिग्गज सरीखा जान पड़ता था और मीनोंके समान चंचल तरंगोंसे कभी उठता और कभी बैठता नजर आता था। ॥ २ ॥ उसकी तरंगरूपी चंचल भुजायें सब ओर ऊपरको उठ रहीं थीं इसलिये ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशके महत्त्वकी ईर्षासे उसे व्याप्त करना चाहता है ॥ ३ ॥ वह अपनी तरंगोंकी चल विचलतासे घूमता हुआ जान पड़ता था और जगह जगह उसमें मगर मच्छ आदि जलचर जीव दीख पड़ते थे ॥ ४ ॥ उससमय वह समुद्र जैन-शास्त्र सरीखा जान पड़ता था क्योंकि शास्त्र जिसप्रकार अपार है प्रयत्न करने पर भी विद्वान उसका पार नहिं पा सकते उसीप्रकार समुद्रका भी कोई पार नहीं पा सकता था शास्त्र जैसा गंभीर होनेसे अलंघ्य है और अपनी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करनेवाला है समुद्र भी अतिशय अगाध था और अपनी मर्यादाका कभी उल्लंघ नहीं करता था शास्त्र जैसा अनेक भंगोंसे व्याप्त ग्यारह अंग चौदह पूर्वमय है समुद्रभी भंगोंके समान अनेक तरंगरूपी शरीरका धारक था शास्त्र जिसप्रकार गहन सिद्धांतमें प्रवेश करनेकेलिये पुराणरूपी मार्गसे युक्त है समुद्र भी उसीप्रकार जिनमार्गोंसे अनेक नदियें आकर मिली थीं ऐसे मार्गोंसे मनोहर था शास्त्र जिसप्रकार सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र आदि आत्मगुणरूपी रत्नोंका वर्णन करनेवाला है उसीप्रकार समुद्र भी अमूल्य रत्नोंका भंडार था। शास्त्र जिसप्रकार अनादि है समुद्र भी उसीप्रकार अनादि था शास्त्र जैसा आकाशके समान विशाल और निर्दोष है समुद्र भी विशाल और निर्मल था शास्त्र जिसप्रकार अनंत जीवोंकी रक्षाके उद्देशसे पूर्ण है समुद्र भी उसीप्रकार अपने मध्यवर्ती जीवोंकी रक्षा करनेवाला था जिसप्रकार जैन शास्त्रके पद (वचन) विजयके अभिलाषी वादियोंसे सर्वथा अलंघनीय हैं उसीप्रकार समुद्रके पद (स्थान) भी सर्वथा अलंघनीय थे मनन करना तो दूर रहा शास्त्रका स्पर्शही जिसप्रकार संसार संतापका दूर करनेवाला है उसीप्रकार समुद्रमें अवगाहन न करनेपरभी उसका स्पर्श भी संतापको दूरकरनेवाला था ॥५–१०॥ उससमय तरंगोंके आघातसे समुद्रमें शंखोंके शब्द होरहे थे उसकी तरंगरूपी भुजा चल विचल थीं इसलिये ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान नेमिनाथके आगमनसे उसै बड़ा हर्ष हुआ है जिससेकि आनंदमें रत हो वह नृत्य कर रहा है ॥ ११ ॥ तरंगोंसे टकराकर अनेक मूंगे मोती उसकी पार पर आ २ कर पड़े थे सो उनसे ऐसा जान पड़ता

था मानो वह मूंगा मोतीका अर्घ बनाकर अपने तरंगरूपी हाथोंसे कृष्णका स्वागत कर रहा हो ॥ १२ ॥ तरंगोंके हलन चलनसे कभी कभी समुद्रका जल वहुतही ऊंचा उठ जाता था और मछलियां स्पष्ट दीख पड़ने लगती थीं सो उससे ऐसा जान पड़ता था मानो मछलियांरूपीनेत्रोंसे युगमें मुख्य प्रतापी वलभद्रको देख उनके सन्मान करनेके लियेही यह उठखड़ा हुआ है ॥ १३ ॥ उससमय चारो ओर समुद्रमें फेन दीख पड़ते थे सो उससे ऐसा प्रतीत होता था मानो वह राजा समुद्रविजय अक्षोभ्य भोजकवृष्णि आदिके आनेसे उत्पन्न हुये अपने हर्षको ही प्रगट कर रहा है ॥ १४ ॥ कुमार कृष्णने अपने कुटुंबियोंके और अपने रहनेके योग्य स्थानकी प्राप्तिकी अभिलाषासे प्रशस्त तिथिमें मंगलपूर्वक कुमार वलभद्रके साथ अष्टमभक्त (चौला) धारण किया और समुद्रके तटपर नियमपूर्वक वे दर्भशय्यापर स्थित हो पंचपरमेष्ठीकी स्तुति करने लगे ॥१५–१६ ॥ उसीसमय सौधर्म इंद्रकी आज्ञासे गौतम नामका देव आया और जहां चिरकालसे समुद्र था वहांसे उसको हटा चला गया ॥ १७ ॥ उसके वाद कुमार कृष्णके तीव्र पुण्यसे और भगवान नेमिनाथमें विशिष्ट भक्ति होनेसे कुवेरने आकर उस स्थानपर तिशय मनोहर द्वारिकापुरीका निर्माण कर दिया ॥ १८ ॥ यह पुरी बारह योजन विस्तीर्ण वज्रमयी परकोटसे वेष्टित और चारो ओर समुद्ररूपी खाईसे अलंकृत थी। इसमें जगह जगह अतिशय विस्तीर्ण ऊंचाईसे आकाशको स्पर्श करनेवाले रत्नमयी विशाल २ महल बने थे इसलिये अपनी शोभासे पृथ्वीपर अवतीर्ण इंद्रपुरी अलका सरीखी जान पड़ती थी ॥ १९–२० ॥ उसकी छोटी बड़ी वावडियें एवं सरोवर उत्तम मिष्ट जलसे भरे थे और कमलोंसे आच्छन्न थे ॥ २१ ॥ जगह जगह वह देदीप्यमान कल्प–लता वृक्षोंके समान लता और वृक्षोंसे मंडित पान लोंग सुपारी आदिके वृक्षोंसे शोभायमान, वनोंसे भूषित थी ॥ २२ ॥ उसके महलोंके आंगन प्राकार और दरवाजे भांति भांतिकी मणियोंसे जडे हुये सुवर्णमयी थे और अनेक प्रकारके सुख प्रदान करनेवाले थे ॥ २३ ॥ उसकी उत्तमोत्तम गलियोंमें प्याऊ और कूवे बने हुये थे इसलिये प्रजा और राजाओंके रहने लिये वह सर्वथा योग्य थी ॥ २४ ॥ उत्तमोत्तम उपवनोंसे मंडित, प्राकार और तोरणोंसें अलंकृत, रत्नमयी उन्नत जिनालय उसकी अजव ही शोभा वढा रहे थे ॥ २५ ॥ इसमें आग्नेय आदि विदिशा और पूर्व आदि दिशाओंमें समुद्रविजय आदि दशो भाइयोंके क्रमसे महल बने थे ॥ २६ ॥ उनहीके मध्यमें कुमार कृष्णका सर्वतोभद्र नामका महल बना था जो कि कल्पवृक्षोंकी लताओंसे मंडित और अठारह खनोंका था ॥ २७ ॥ राजलोक और अन्य राजकुमारोंके महल जो अतिशय सुंदर और योग्य थे कुमार कृष्णके महलके इर्द गिर्द बने थे ॥२८॥ कुमार वलदेवका महल रनवांसके महलोंकी श्रेणीसे मंडित, वावडी और कूपोंसे भू-

षित, अतिशय रमणीय जान पड़ता था ॥ २९ ॥ बलदेवके महलके सामने अपनी शोभासे इंद्रके सभामंडपकी समानता करनेवाला एक अतिशय रमणीय सभामंडप बना हुआ था और वह अपने देदीप्यमान तेजसे प्रतापी सूर्यके तेजको भी फीका बनाता था ॥ ३० ॥ उग्रसेन आदि राजाओंके भी अनेक उत्तमोत्तम महल आठ २ खने के बने थे और अतिशय रमणीय जान पड़ते थे ॥ ३१ ॥ जिसका वर्णन करना सर्वथा दुर्लभ था और जिसमें आनेजानेके वहुतसे द्वार थे ऐसी इस द्वारिका पुरीका जब कुबेर निर्माण कर चुका तो वह यादवोंके पास गया और उनसे सारा समाचार निवेदन किया एवं उसी समय उसने अन्य लोगोंको सर्वथा दुर्लभ, मुकुट हार कौस्तुभमणि पीतवस्त्र नक्षत्रमाला आदि भूषण, कुमुद्वती नामकी गदा, शक्ति, नंदक नामका खड्ग शार्ङ्ग धनुष, दो तरकस, वज्रमयी वाण, गरुड़के चिह्नकी ध्वजासे भूषित समस्त आयुधोंसे परिपूर्ण दिव्य रथ, चमर और छत्र कृष्णकी सेवामें अर्पण किये ॥ ३२–३५ ॥ दो नीले वस्त्र, रत्नमाला, मुकुट, गदा, हल, मूसल, धनुष, वाण, दो तरकस, तालपत्रके समान उन्नत उत्तम ध्वजाओंसे शोभायमान समस्त आयुधोंसे परिपूर्ण दिव्य रथ और चमर छत्र आदि पदार्थ कुमार बलदेवको दिये ॥ ३६–३७ ॥ समुद्रविजय आदि दश भाईयोंका और राजा भोजकवृष्णि आदिका अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम भूषण और आभरण प्रदान करने से भले प्रकार आदर सत्कार किया ॥ ३८ ॥ एवं भगवान नेमिनाथको भी वयके योग्य अनेक उत्तमोत्तम भूषण वस्त्र प्रदान किये और उनकी पूजनकी ॥ ३९ ॥ जब कुबेर सबका यथा योग्य सन्मान कर चुका तब सब यादवेंद्रोंसे पुरीमें प्रवेश करनेकी और वहां रहनेकी प्रार्थनाकी एवं उनकी व्यवस्थाका भार पूर्णभद्र देवको सोंपकर आप अंतर्हित होगया ॥ ४० ॥ यह विचित्र चमत्कार देख यादवोंको बड़ा आनंद हुआ उन्होंने परम पुण्यवान कुमार कृष्ण एवं बलभद्रका समुद्रके तटपर अभिषेक किया और वड़ी विभूतिके साथ चतुरंग वल और प्रजासे मंडित हो स्वर्गके समान द्वारिका पुरीमें प्रवेश किया ॥ ४१–४२ ॥ देव पूर्णभद्रके कथनानुसार मथुरा सूर्यपुर और वीर्यपुर निवासी समस्त जनोंने अपने २ स्थानोंपर सुखपूर्वक निवास किया और उनका मथुरा, सूर्यपुर वीर्यपुर नाम रख आनंद माना ॥ ४३–४४ ॥ कुबेरकी आज्ञानुसार यक्षोंने साडे तीन दिन तक अटूट धनकी वर्षा की ॥ ४५ ॥ कुमार कृष्णके द्वारिकापुरीमें रहने पर पश्चिम दिशाके समस्त राजा उनके वश हो उनकी आज्ञा मानने लगे ॥ ४६ ॥ और द्वारिका पुरीके स्वामी कुमार कृष्ण अनेक राजाओंकी कन्याओंके साथ विवाह कर उनके साथ सानंद रमण क्रीडा करने लगे ॥ ४७ ॥

अनेक कला और गुणोंके स्थानस्वरूप कुमार नेमिनाथ भी नवीन चंद्रमाके समान दिनों दिन वढ़ने लगे ॥ ४८ ॥ और जिसप्रकार सूर्य समस्त कमलोंको प्रफुल्लित

कर अंधकारका नाश कर देता है उसीप्रकार समुद्रविजय आदिके मुखरूपी कमलोंको प्रफुल्लित कर अपनी ज्वलंत दीप्तिसे समस्त अंधकारका नाश करने लगे ॥ ४९ ॥ पुरवासियोंके नेत्रोंको अतिशय मनोहर कुमार नेमिनाथ वाल्य अवस्थामें अपनी उत्तम क्रीड़ासे बलभद्र और कृष्णको अपार आनंद वढ़ाते थे समस्त यादवोंकी स्त्रियां उन्हें (भगवान नेमिनाथको) उससमय हाथों हाथ खिलाती रमाती थीं। इसतरह बालकाल समाप्त कर भगवानने यौवन अवस्थामें पदार्पण किया ॥ ५०-५१ ॥ नीलकमलके समान सुंदर कांतिके धारक भगवान नेमिनाथ जब युवा होगये और उनके यौवनके लक्षण प्रकट होने लगे उससमय समस्त स्त्रियां टक टकी लगाकर उनकी ओर देखने लगीं और दूसरी ओर दृष्टि लगानेको सर्वथा असमर्थ होगई ॥ ५२ ॥ भगवानने अपने मनोज्ञरूपरूपी तीक्ष्ण वाणसे समस्त मनुष्योंके हृदयोंको भेद दिया परंतु उनके चित्तको किसीके रूपने न भेद (मोहित कर) पाया ॥ ५३ ॥ संसारमें भगवानके समान सुंदर कोई पदार्थ न था जिसकी कि उन्हें उपमा दी जाती अथवा उनकी उपमा उसे दी जाती इसलिये भगवानके सौदर्यकी तुलना करते समय इंद्र बडा हैरान हुआ ॥५४॥ भगवान नेमिनाथको अनेक प्रकारकी क्रीडा करते देख जब जब उनके कुटुंबी उनके विवाहकी चर्चा चलाते थे भगवान मंद मंद हसते हुये लज्जित हो नीचेकीओर दृष्टि करलेते थे ॥५५॥ नेमिनाथ भगवान तीन ज्ञानके धारक थे समस्त संसारके रहस्यके पूर्णरूपसे जानकार थे इसलिये उनके मोहनीय कलंकके धुलजानेसे अंतरंग अतिशय शुद्ध होगया था और संसारकी विभूति रूपी धूलि उसै भदमैला नहिं वना सकती थी ॥५६॥

चंद्रमाकी किरणोंसे जिसप्रकार समुद्रकी वेला वृद्धिको प्राप्त होती है उसीप्रकार अनेक द्वारोंसे शोभित पुरी द्वारिका भगवान नेमिनाथ, भोजकवृष्णिके पुत्र, कृष्ण और बलभद्रके चंद्रमाकी किरणोंके समान स्वच्छ उत्तमोत्तम गुणोंसे अतिशय शोभित होने लगी ॥ ५७ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें द्वारिकापुरीका वर्णन करनेवाला इकतालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४१ ॥

ब्यालीसवां सर्ग।

पुरी द्वारिकामें यादवोंकी सभा लगरही थी बड़े २ सभ्य बैठे हुये थे उसीसमय मुनि नारद जो आकाश मार्गसे गमन करनेवाले थे सभामें आये ॥ १ ॥ उनकी जटा पीलीं थी डाढी विशाल थी चंद्रमाके समान कांतिके धारक थे इसलिये उससमय वे विजुलीसे मंडित शरदऋतुके मेघ सरीखे जान पड़ते थे ॥ २ ॥ उनके पास रंग विरंगा विशाल एक योगपट्ट विद्यमान था इसलिये उससे युक्त वे परिवेषसे भूषित (मंडलमें

बैठेहुये) चंद्रमाकी उपमा धारण करते थे ॥ ३ ॥ लहलहाते हुये वस्त्र कौपीन और दुपट्टेसे मंडित होनेके कारण ऐसे जान पड़ते थे मानों समस्त जगतकी भलाई करनेके लिये आकाशसे अवतीर्ण कल्पवृक्ष हैं ॥ ४ ॥ उनके कंठमें तीनलरका अतिशय निर्मल यज्ञोपवीत लटक रहा था जो कि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रस्वरूप रत्नत्रय सरीखा जान पडता था ॥ ५ ॥ वे अद्वितीयरूपके धारक महागौरवयुक्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी और अद्वितीय विद्वान थे ॥ ६ ॥ उनकी प्रकृति शुद्ध थी–स्वभाव कोमल था काम क्रोध लोभ माया मोह मत्सर रूप अंतरंग शत्रुओंके विजयी थे और चक्रवर्ती राजाके समान समस्त राजाओंसे पूजित थे ॥ ७ ॥ द्वारिकापुरीके लोकोत्तर ठाट बाटसे अतिशय चकित और आकाशसे उतरते हुये नारदको देखते ही समस्त राजा एकदम खडे होगये उन्हैं नमस्कार किया और बैठनेकेलिये आसन दे सबजगह अपने सन्मान ही (आदर सत्कार) को चाहनेवाले उननारदकी भक्तिभावसे पूजाकी ॥८–९॥ भगवान नेमिनाथ कृष्ण और बलभद्रके प्रेमभाषणरूपी अमृतके पानसे तृप्त न होनेवाले नारदने कुछ समयके बाद सभामें स्थित समस्त सभ्योंको पूर्व पश्चिम विदेहोंके तीर्थंकरोंकी कथा सुनाई और मेरुपर्वतका समस्त वृत्तांत कहा जिससे कि समस्त जनोंको बड़ाही हर्षहुआ ॥१०॥

नारदका नाम सुनतेही राजा श्रेणिकको उनके वृत्तांत जाननेकी बड़ी अभिलाषा हुई इसलिये वे भगवान गौतमसे इसप्रकार पूछनेलगे—

प्रभो! मुनि नारद कौन हैं? उनकी उत्पत्ति कहां और कैसे हुई? कृपाकर कहिये। उत्तरमें भगवान गौतमने कहा–राजन्! मैं नारदकी उत्पत्ति और स्थितिका वर्णन करता हूं तुम ध्यानसे सुनो—

सौर्यपुरके पास दक्षिण दिशामें एक तपस्वियोंका आश्रम था वहांपर अनेक तपस्वी रहते थे और कंदमूल फल भक्षणकर अपना गुजारा करते थे॥११–१४॥उन्हींमें एक सुमित्र नामका तपस्वी भी रहता था उसकी स्त्रीका नाम सोमयशा था और वह उंछवृत्तिसे (धान्यके कटजानेपर खेतमें पड़े हुये दानोंसे वा बाजार बंदहोजानेपर वणिकोंकी दूकानके आगे सड़कपर पडे हुये अन्नके कणोंसे) अपना पेट भरता था ॥ १५ ॥ कदाचित् तपस्वी सुमित्रके तपस्विनी सोमयशासे चंद्रमाके समान कांतिमान एक पुत्र उत्पन्न हुआ एकदिन वे दोनों बालकको किसी वृक्षके नीचे लिटाकर भूख और प्याससे व्याकुल होनेके कारण उंछवृत्तिके लिये नगरमें चले आये ॥१६॥ बालक वृक्षके नीचे पड़ा २ खेल रहा था कि इतनेमें ही दैवयोगसे उसी समय एक जृंभक नामका देव वहां आया और बालकको देखते ही पूर्वभवके स्नेहके कारण उसै उठाकर वैताढ्यपर्वकी मणिकांचन नामकी गुफामें लेगया एवं वहां कल्पवृक्षके दिव्य आहारोंसे भलेप्रकार उसका पालन पोषण करने लगा ॥ १७–१८ ॥ जब वह बालक आठ वर्षका होगया तो देवोंने उसे जिन

आगमका रहस्य वतलाया। आकाशगामिनी विद्या प्रदानकी और उसका नाम नारद रक्खा ॥ १९ ॥ जब नारद पूर्ण विद्वान् और अनेक शास्त्रोंमें प्रवीण होगया तो वह किसी दिगंबर मुनिके पास गया और उनकी पूर्ण सेवा कर संयमासंयम (श्रावकके व्रत) व्रतका धारक वनगया ॥ २० ॥ कंदर्पके समान रूप होनेपर भी ब्रह्मचारी नारद बालकालसे ही कामविकारसे रहित था। कामी राजाओंका परमप्रिय, परमकुतूहली, हंसी करनेमें आनंद माननेवाला, लोभरहित, चरमशरीरी, स्वाभाविक कषायरहित, संग्राम देखनेका महाप्रेमी और अधिक बोलनेवाला था एवं ढाई द्वीपके भीतर जहां जहां जिनेंद्रोंके जन्माभिषेक आदि अतिशय होते थे वहां वहां सर्वत्र घूमनेवाला था। राजन्! नारदका यह संक्षिप्त वर्णन है। अब आगे सुनिये—

बहुत समय तक नारदने यादवोंको जहां तहांकी बातें सुनाईं पश्चात् यादवोंसे पूछकर वह कृष्णके रनवास देखनेकेलिये चलदिया ॥२१-२४॥ उससमय वहां कृष्णकी पटरानी सत्यभामा जो कृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी थी। श्रृंगारकर हाथमें मणिमयी दर्पण ले अपना रूप देख रही थी। नारदने दूरसे ही सत्यभामाको देखा और उसै वह सुंदरतामें रतिके समान जान पड़ने लगी ॥ २५-२६ ॥ सत्यभामा उस समय अपने रूप देखनेमें इतनी लीन थी कि वह नारदको न देख सकी। बस फिर क्या था! नारदको अपमान और अनादर ही तो सबसे दुःखदायी होता है वह मारे क्रोधके उवल उठा। शीघ्र ही लंबी लंबी डग धर वहांसे लोट आया और मनमें यह कहने लगा—"अहा! इस लोकमें समस्त विद्याधर और भूमिगोचरी मुझै उठकर नमस्कार करते हैं राजाओंके रनवासकी स्त्रियां भी मेरी भक्तिभावसे पूजा अभिवंदना करती हैं। यह विद्याधरपुत्री सत्यभामा ऐसी ढीठ और अपने रूपका गुमान करनेवाली है जो इसने मेरी ओर निहारा तक भी नहीं। इसलिये मुझै धिक्कार है! जबतक मैं इसकी सौत—कोई दूसरी परमरूपवती युवति स्त्रीरूपी वज्र लाकर इसके रूप और सौभाग्यके गुमानरूपी पर्वतको चूर चूर न कर डालूंगा तबतक शांतिलाभ नहिं कर सकता। ॥ २७-२९ ॥ इस पृथ्वीका नाम वसुंधरा है इसमें अनंते रत्न विद्यमान हैं रूप और सौभाग्यमें सत्यभामाको अतिक्रांत करनेवाला अवश्य ही कोई कन्यारत्न मिलेगा ॥३०॥ उसै श्रीकृष्णकेलिये लाकर इस सत्यभामाका मुख अवश्य काला करूंगा और इसे दुःखके गहरे श्वांस लिवाऊंगा। अरे! मेरा नाम तो नारद है मेरे कुपित होजानेपर संसारमें कोंनसा ऐसा अनर्थ है जो वच जायगा? क्रोध आनेपर मैं सब कुछ कर सकता हूं ॥ ३१-३२ ॥ इसप्रकार अपने मनमें दृढ़ संकल्प विकल्प कर नारद वहांसे चला और आकाशमार्गसे गमनकर कुंडिन नगर आया।

कुंडिन नगरमें उससमय एक भीष्म नामका राजा—जो कि शत्रुओंकेलिये अतिशय

भयंकर था—राज्य करता था। उसके नीति और पौरुषका भंडार एक रुक्मीनामका पुत्र था और रुक्मिणी नामकी पुत्री थी। जो कि अतिशय सुंदरी थी कला और गुणोंमें प्रवीण थी॥३३—३४॥ नारद वे रोक टोक राजाके रणवासमें चला गया और वहां उसे अनुराग (लालिमा) वाली संध्यासे युक्त सूर्यकी उदयकालीन शोभाके समान अनुराग (प्रेम) वाली फूआसे संयुक्त, पवित्र अंतरंगसे शोभित, कन्या रुक्मिणी दीख पड़ी॥ ३५॥ उससमय वह कन्या ऐसी जान पड़ती थी मानो कृष्णके अतिशय पुण्यसे ही तीनो लोकके उत्तमोत्तम लक्षण, सुंदर रूप और सौभाग्यको संचयकर वह विधिने बनाई हो। ॥ ३६ ॥ उसके हाथ, पैर, मुख, जंघा, जघन, रोमराजि, भुजा, नाभि, स्तन, कटि, भ्रुकुटि, केश, मस्तक, कंठ, नाक, अधर, अनुपम थे जिससे कि उससमय उसकी तुलना करनेवाली संसारमें कोई दूसरी स्त्री न थी। कन्याका रूप देखकर नारद चकित होगया। वह विचारने लगा—'संसारमें इसके समान दूसरी कन्या न होगी। यह कन्या सुंदररूपकी अंतिम सीमापर पहुंची हुई है। बस! यही कन्या कृष्णके योग्य है। इसका कृष्णके साथ संबंध कराकर सत्यभामाके रूप और सौभाग्यके निंदित अहंकारको मैं नियमसे चकना चूर कर सकूंगा!॥ ३७—४०॥ रुक्मिणी स्वभावसे ही अतिशय विनम्र थी ज्योंही उपर्युक्त विचारोंमें लीन नारदको उसने देखा वह तत्काल उठकर खड़ी होगई और भूषणोंके शब्द करती हुई पास जा भक्तिभावसे नमस्कार कर अपनी भक्ति प्रकट करने लगी। रुक्मिणीको इसप्रकार विनम्र हो प्रणाम करते देख नारदने—"कन्ये तू द्वारिकाधीश कृष्णकी वल्लभा हो" यह आशीर्वाद दिया। द्वारिका और उसके पति का नाम सुन रुक्मिणी चकित होगई उसने उसीसमय पूछा—

"प्रभो! द्वारिका पुरी कहां है? और उसका कौन पति है?" उत्तरमें नारदने द्वारिकापुरी और कृष्णका सविस्तर वर्णन किया जिससे कि कन्या रुक्मिणी कृष्णपर अतिशय मुग्ध होगई॥ ४१—४३॥ इस तरह राजा भीष्मकी पुत्री कुमारी रुक्मिणीके चित्त रूपीपटपर अपनी वाणीरूपी तूलिकासे वर्ण रूप और अवस्थाके साथ कृष्णका चित्र खींच मुनि नारद अंतःपुरसे वाहिर निकल आये और वैसे ही रुक्मिणीके चित्रको एक वस्त्रपर अंकितकर द्वारिका लोट आये। द्वारिकामें आकर नारदने उस चित्रको कृष्णके सामने लाकर रक्खा ज्योंही कृष्णने चित्तके लुभानेवाली श्यामा स्त्रीके लक्षणोंसे संयुक्त कन्या रुक्मिणीका चित्र देखा त्योंही उनका मन हाथसे निकल गया। वे मुनि नारदका दूना सत्कार कर इसप्रकार पूछने लगे—

"भगवन्! यह किसकी कन्याका चित्र आपने इस चित्रपटपर लिखा है ऐसा रूप न मानवी स्त्रीका हो सकता है और न देव कन्याका।" कृष्णका ऐसा प्रश्न सुन नारदने सच्चा सच्चा वृत्तांत जो कुछ था सब कह सुनाया। जिसे सुनकर रुक्मिणी-

की प्राप्तिके लिये कृष्णका मन उथल पुथल होने लगा ॥ ४४-४८ ॥

रुक्मिणीकी फूआका रुक्मिणीपर अतिशय स्नेह था। वह सब रहस्यकी भलेप्रकार जानकार थी इसलिये किसी दिन एकांतमें बुलाकर उसने रुक्मिणीको इसप्रकार कहा—

"पुत्री! मेरी बात सुन! एक दिन यहां अवधिज्ञानके धारक मुनिराज अतिमुक्तक आहारकेलिये पधारे थे। उन्होंने तुझे देख यह बात कही थी—यह कन्या स्त्रियोंके उत्तमोत्तम लक्षणोंसे भूषित है, यह नियमसे लक्ष्मीके समान वसुदेवके पुत्र श्रीकृष्णके वक्षःस्थलका आश्रय करेगी। कृष्णके अनेक गुणोंकी भंडार सोलह हजार रानियां होंगी उन सबमें यह मुख्य पटरानी बनेगी ॥ ४९-५२ ॥ मुनिराज तो यह कहकर बनको चले गये और तबसे आजतक श्रीकृष्णका किसीने स्मरण तक भी न किया। पुत्री! उसदिन मुनि नारद यहां आये थे और दूसरे जन्मकी कथाके समान उन्होंने श्रीकृष्णकी कथा सुनाई थी। यदि नारदकी बात सत्य है तो मुनिराज अतिमुक्तकके वचन सर्वथा विश्वासके योग्य हैं। परंतु इस विषयमें मैं इतनी अड़चन देखती हूं कि तेरे भाईका राजा शिशुपालपर बड़ा हित है। उसने तेरी सगाई उसीके (राजा शिशुपालके) साथ करनी स्वीकारकी है। विवाहके दिन भी अतिशय समीप हैं जिससे कि शिशुपाल आजकलमें तुझे यहां लेनेके लिये आवेगा।" फूआके ऐसे वचन सुन रुक्मिणीने कहा—

"मुनिराजके वाक्य अन्यथा नहिं हो सकते—मेरा इस जन्ममें सिवाय वासुदेवके दूसरा कोई पति नहीं हो सकता। किसी रीतिसे तू मेरा अभिप्राय शीघ्र ही कृष्णके पास भेजदे वे ही मेरे परम प्रिय हैं" पुत्रीके ऐसे वचन सुन और उसके मनका पूर्णतया तात्पर्य समझ उसकी फूआने शीघ्र ही किसी विश्वासी नौकरको बुलाया और गुप्त रूपसे नीचे लिखे पत्रको श्रीकृष्णके पास ले जानेकी आज्ञा दी। पत्रमें यह बात लिखी थी कि—

"प्रिय कृष्ण! यह कन्या रुक्मिणी तुम्हारे नामग्रहणरूपी आहारसे संतुष्ट हो जी रही है और यह चाहती है कि कृष्ण मुझे हरण कर ले जांय। माघ सुदी अष्टमीके दिन इसके विवाहका निश्चय हो चुका है। यदि उसदिन आकर आप रुक्मिणीको हरण कर ले जायेंगे तो निस्संशय वह आपकी हो जायगी। अन्यथा इसे इसके भाईने राजा शिशुपालको प्रदान करनेका वचन देदिया है इसलिये उसके साथ विवाह हो जायगा। परंतु इसमें कोई संदेह नहीं यदि इसे तुम्हारी प्राप्ति न हुई और शिशुपालके साथ इसका विवाह होगया तो इसका अन्य कोई शरण न होकर मरण ही शरण होगा। कुंडिनपुरके बाह्य उद्यानमें एक नागदेवका मंदिर है। अष्टमीके दिन मैं रुक्मिणीको नागपूजनके छलसे वहां ले आऊंगी और आपको मिलूंगी। आप वहां कृपाकर अवश्य आवें और इस कन्याको स्वीकार करें" ॥ ५३-६२ ॥ ज्योंही कृष्णने दूतके हाथसे ले ऊपर लिखा पत्र पढा उन्होंने सारा हाल ठीक ठीक जान लिया और रुक्मिणीके

हरण करनेकी अपने मनमें प्रतिज्ञा करली॥ ६३॥

राजा शिशुपाल कन्यादानके लिये सर्वथा उद्यत, विदर्भदेशके स्वामी, राजा भीष्मके वचनानुसार बड़े सन्मानसे अपनी विशाल चतुरंग सेना ले कुंडिनपुर आया और नगरकी चारों दिशायें सेनासे व्याप्तकर ठहर गया। यह देख देशकालकी हवाको भले प्रकार पहिचाननेवाले मुनि नारदसे न रह गया। उन्होंने जा शीघ्र ही कृष्णको कुंडिनपुर चलनेकेलिये उसकाया जिससे कि वे अपने बड़े भाई बलभद्रके साथ शीघ्रही कुंडिनपुरके बाह्य उद्यानमें जा पहुंचे॥ ६४-६६॥ कन्या रुक्मिणी पत्रके अनुसार उस समय अपनी फूआ आदिके साथ नागदेवकी पूजनकर वनमें मौजूद थी जिससे कि कृष्णने उसे देख लिया। आज तक उन दोनोंकी अनुरागरूपी अग्नि आपसमें एक दूसरेके श्रवणसे कुछ कुछ जल पाई थी किंतु ज्योंही उन दोनोंकी चार आखें हुई वह एकदम ज्वालारूपमें दहकने लगी—उन दोनोंका आपसमें गहरा अनुराग होगया। कृष्ण तत्काल रुक्मिणीके पास पहुंचे और जहां तहांकी कुछ बात चीत कर इसप्रकार कहने लगे—

"भद्रे! हम तेरे लिये यहां पर आये हुये हैं तेरे मनमें जिस व्यक्तिने स्थान पाया है वह मैं ही हूं। मेरे मनोरथको पूर्ण करनेवाली सुंदरि! यदि तेरा मुझमें सच्चा प्रेम है—तू मुझे हृदयसे चाहती है तो आ! और इस रथमें सवार हो" कृष्णकी यह बात सुन पासमें खडी हुई रुक्मिणीकी फूआ भी उससे इसप्रकार कहने लगी—

"पुत्री! मुनिराज अतिमुक्तकने जिसकी तुझे पटरानी होना बतलाया था वही यह महापुरुष तेरे पुण्यकी महिमासे यहां विराजमान है। तू जल्दी इसे अपना। यदि कदाचित् तेरे मनमें यह विचार हो कि कन्याके प्रदान करनेका अधिकार माता पिताको है वे यहां पर मौजूद नहीं है फिर मैं कैसे किसी पुरुषको स्वीकार करूं? सो भी ठीक नहीं। क्योंकि माता पिता भी पूर्वोपार्जित कर्मानुसार ही कन्याको प्रदान करते हैं। कर्म (भाग्य) के विना वे भी कुछ नहिं कर सकते। इसलिये कर्मको ही प्रधान गुरु मान—तू कृष्णको स्वीकार कर। बस फिर क्या था! फूआके ऐसे वचन सुन पहिलेसे ही कृष्णपर पूर्णरूपसे अनुरक्त होनेके कारण रुक्मिणीने लज्जासे नीचे मुंह कर लिया और अपनी वचनसे सम्मति न देकर मुखसे सलाह दे दी। जिससे कि उसे कृष्णने जेटमें भरकर आखें मींच अपने रथमें बिठा लिया॥ ६७-७३॥ उससमय उन दोनोंका जो आपसमें शरीरस्पर्श हुआ था उससे वे दोनों कामसे अत्यंत व्याकुल हो आपसमें अनुपम सुखका अनुभव करने लगे थे॥ ७४॥ उन दोनोंके मुखका निश्वास इतना अधिक सुगंधित था कि उससमय यह भी पता लगाना कठिन था कि "कौन वास्य (सुगंधित किया गया) है और कौन वासक (सुगंधित करनेवाला) है इसलिये उसने उन पर उससमय वशीकरण मंत्रका काम किया था॥ ७५॥ कुमारी रुक्मिणीने जो कृष्णके

सहवासका सौभाग्य प्राप्त किया था उसमें विधिकी महिमा वडी अपार जान पडती थी क्योंकि सर्वथा रुक्मिणीके निमित्त आनेवाले राजा शिशुपालको तो उसने उससे विमुख रक्खा और कृष्णके साथ उसका संयोग करा दिया ॥ ७६ ॥ इसप्रकार जब रुक्मिणी रथमें वैठ गयी तो कृष्णने रुक्मिणीके हरणका वृत्तांत युवराज रुक्मी, राजा भीष्म, और राजा शिशुपालके पास भेजा और अपना रथ आगे वढ़ाया ॥ ७७ ॥ चलते समय कृष्णने बडे जोरसे पांचजन्य नामका शंख और बलभद्रने सुघोष नामका शंख फूंका जिससे कि समस्त दिशायें गूंज ऊठीं और शत्रुओंका सैन्य क्षुब्ध होगया। ज्योंही रुक्मी और शिशुपालके कानमें शंखकी भनक पडी त्योंही वे एकदम चौंक पडे और युद्धके लिये सेनाके साथ २ अपने अपने रथोंमें सवार हो चलदिये। उससमय रुक्मी और शिशुपालकी सेनामें साठ हजार रथ, दश हजार हाथी, तीस हजार वायुके समान चंचल घोडे, और कई लाख पदाति थे जो कि हाथोंमें तलवार चक्र और धनुषोंको लिये हुये थे। इसप्रकार सेनासे समस्त दिशाओंको आच्छन्न करते हुये वे दोनों शीघ्र ही कृष्ण और बलभद्रके समीप पहुंचे ॥ ७८-८१ ॥ उससमय राजा भीष्मकी पुत्री रुक्मिणी कृष्णके साथ रथमें वाहीं ओर आधे सिंहासन पर बैठी थी और कृष्ण उसे गांव, खानि, तलाब और नदियें दिखाते हुये धीरे धीरे चले जारहे थे ॥ ८२ ॥ ज्योंही मृगनयनी रमणी रुक्मिणीने चौतर्फ विस्तृत भयंकर सेना देखी वह एक दम डर गयी और उस विशाल सेनासे कृष्णके नाशकी शंकाकर वह इसप्रकार उनसे निवेदन करने लगी—

"प्राणनाथ! अतिशय कुपित हो महारथी योद्धा यह मेरा भाई विशाल सेनाके साथ युद्धके लिये चला आ रहाहै। उसके साथमें राजा शिशुपाल भी है। मुझै विश्वास होता है अब मेरे अभीष्ट की सिद्धि होनी कठिन है ॥ ८३-८४ ॥ आप दोनों भाई अकेले हैं। यदि आप के साथ इन दोनोंकी अगणित सेना का युद्ध हुआ तो मुझै भय है कि न जाने विजयका झंडा किसके हाथ आये! हाय! मै बड़ी मंदभाग्य हूं" रुक्मिणी को इसप्रकार सचिंत और भयभीत देख कृष्णने कहा—

"प्रिये! तुम किसी वात का भय मत करो यदि मैं महापराक्रमी यहां मौजूद हूं तो यह बहुतसी भी सेना क्या कर सकती है।" रुक्मिणीने फिर कहा—

"प्रभो! अतिमुक्तक मुनिराजने यह बात बतलाई थी कि जो एकही बाणसे एक साथ सात ताल वृक्षोंको छेदेगा वही महापुरुष नारायण होगा अन्य नहीं!"

कृष्ण तो स्वभावसे ही शस्त्र विद्यामें वड़े प्रवीण थे ज्योंहीं उन्होंने रुक्मिणीके ऐसे वचन सुने शीघ्र ही क्षुरप्रनामका वाण चलाया और विना परिश्रमके ही सामने स्थित ताल वृक्षों को देखते देखते छेद डाला। इसके बाद उसे अपनी शक्ति बतलानेकेलिये उन्होंने अंगूठीके हीरेको भी चूर चूर कर दिया जिससे कि रुक्मिणीको उनके विषयमें

जो कुछ संदेह था वह दूर होगया ॥ ८५–९० ॥ जब रुक्मिणीने कृष्णके सामर्थ्यका पूरा पूरा पता पालिया तो उसे अपने भाईके नाशकी चिंताने सताया और वह फिर इसप्रकार हाथ जोड़ कृष्णसे निवेदन करने लगी—

"प्राणनाथ! मेरा भाई आपसे युद्ध करैगा परंतु आप बड़े यत्नसे उसके साथ युद्ध करैं। संग्राममें उसै सुरक्षित रक्खें मार न डालें।" कृष्णने रुक्मिणीके वचनोंको स्वीकार कर उसै भलेप्रकार समझा बुझाकर शांत कर दिया और बलभद्रके साथ शत्रुओंके सामने रथ लेजाकर अड़ादिया ॥ ९१–९२ ॥ इन दोनों भाईयोंको शत्रुओं पर बड़ा क्रोध आया। मारे मारे तीक्ष्णवाणोंके इन्होंने शत्रुओं की सेनाको तितर वितर करदिया और उसके दर्पको चूर २ कर यमलोकका रास्ता बतलाया ॥ ९३ ॥ जब सेना इधर उधर भाग गई तब कृष्णने राजा शिशुपाल से और बलभद्रने रुक्मीसे मुटभेड की। कृष्णने अपने तीक्ष्णवाणसे देखते देखते राजा शिशुपाल का शिर काट डाला और उसके यशपर कालोंच लगादी। बलभद्रने भी राजा रुक्मी को रथ के साथ २ अपने वाणोंके आघातोंसे जर्जरित करदिया और जीता पकड़लिया एवं उसै कृष्णके साथ लेकर गिरनार पर्वतपर आगये ॥ ९४–९६ ॥

गिरनारपर आकर कृष्णने रुक्मिणीके साथ विवाह कर बड़ी विभूतिसे अपने बड़े भाई बलभद्रके साथ द्वारिकापुरीमें प्रवेश किया ॥ ९७ ॥ नगरीमें आकर अपनी प्राणप्यारी रेवतीके देखनेके लिये अत्यंत उत्कंठित कुमार बलभद्रने तो अपने महलोंमें प्रवेश किया और नवीन वधू रुक्मिणीके साथ कृष्ण अपने महलोंमें चले गये ॥ ९८ ॥

कृष्णके द्वारा राजा शिशुपालके वधके समय अनेक रथोंके समूह चूर्ण किये गये थे। बड़े बड़े विजयाभिलाषी तेजस्वियोंके तेज भी हरे गये थे। सो यह सारा चरित्र सूर्यने साक्षात् देखा था इसलिये उसको बड़ा भय हुआ। वह यह विचार कि 'यह कृष्ण बड़ा प्रतापी है अन्य तेजस्वियोंका तेज नहिं सह सकता' कहीं मुझे भी न पकड़ले शीघ्र ही अपनी किरणोंका संकोच कर हजार किरणोंका धारक प्रतापी होनेपर भी अस्ताचलकी गुफामें जाकर छिपगया—संध्या होगई ॥ ९९ ॥ प्रतापी सूर्यने प्रातः संध्यामें अनुरक्त (लाल, प्रेमी) हो उसके साथ अपना अनुराग (प्रेम, ललोई) प्रकटकर उसे अनुरक्त (लाल) बनाया था इसलिये सूर्यके चले जानेपर भी उसकी आज्ञाकारिणी संध्या ज्योंकी त्यों कुसुंभके पुष्पके समान अनुरक्त बनी रही अर्थात् स्वामीकी प्रत्यक्षता और परोक्षतामें सती स्त्रीके समान उसने अपने पतिस्वरूप सूर्यमें एकसा अनुराग दिखाया ॥ १०० ॥ राजाके समान सूर्यके चले जानेपर अंजन सरीखा काला, समस्त जगतको मोह उत्पन्न करानेवाला, प्रचंड पवनके समान भयंकर, अंधकार प्रकट होगया और उसने खलके समान समस्त जगतको व्याप्त करलिया ॥ १०१ ॥ इसके कुछ समय बाद अपनी

किरणोंसे रात्रिके अंधकारको नाश करनेवाला, बडी उत्कंठाके साथ मनुष्योंद्वारा देखा गया, समस्त जगतको कामका उद्दीपन करनेवाला, सूर्यके संतापको मिटा शांतिका स्थापक दुःखी सुखी समस्त मनुष्योंका परम मित्र चंद्रमा उदित होगया ॥ १०२ ॥ उसके उदय होनेसे जिसप्रकार परदेशमें रहनेवाले पतिके दर्शन पाकर सती स्त्री प्रफुल्लित होजाती है उसीप्रकार कुमुदिनी प्रफुल्लित होगई। परंतु विचारी कमलिनी और चकवा चकवीकी दशा और भी दुःखदायिनी होगई। उससमय उन्हें तनिक भी आनंद न हुआ। सो ठीक ही है—सुखके कारण पदार्थ सुखियोंको ही सुखी बना सकते हैं अभागे दुःखियोंका दुःख दूर नहिं कर सकते ॥ १०३ ॥ जो मानिनी स्त्रियां दिनमें अपने पतियोंपर मान करती थीं। चंद्रमाके उदयसे उनका मान गलित होगया और सबके सब स्त्री पुरुष कामक्रीड़ा करनेकेलिये प्रवृत्त होगये। उससमय चूनेके समान श्वेत चांदनीसे शुभ्र अपने महलोंकी छतपर जा यादव भी अपनी परमसुंदरी रमणियोंके साथ सानंद कामक्रीडा करने लगे ॥ १०४ ॥ सुंदर आकारके धारक श्रीकृष्ण भी रुक्मिणीके अतिशय सुगंधित कोमल शरीररूपी लताके भौंरा बन गये। बहुत काल तक उसके साथ मनमानी क्रीड़ा की। अतिशय कोमल उत्तम सेजपर सो रमणी रुक्मिणीका गाढ़ आलिंगन कर पीन स्तन भुजा और मुखके स्पर्शसे गहरा सुख लाभ करते हुये सुखनिद्रामें निमग्न होगये ॥ १०५ ॥ जब रात्रिका कुछ भाग शेष रह गया तब उत्तम पंखोंसे शोभित, रात्रिके समस्त प्रहरोंके जानकार, रात्रिका अंत बतलानेवाले मुर्गे चिल्ला २ कर कभी ऊंची कभी नीची बांग देने लगे सो उससे ऐसा जान पड़ने लगा मानो "आनंदमें सोई हुई यदुकामिनी जग न जांय" इस भयसे ही ये एकसाथ न चिल्लाकर क्रम २ से चिल्लाते थे ॥ १०६ ॥ प्रातःकालमें प्रातःसंध्याके समान रमणी रुक्मिणी उठकर बैठ गई और करकमलोंसे अपने प्राणपति श्रीकृष्णका शरीर दबाने लगी। रुक्मिणीके कोमल हाथके स्पर्शसे श्रीकृष्णकी भी आंख खुलगई और उन्होंने लज्जासे नम्रीभूत, रतिक्रीड़ा करनेसे अतिशय सुगंधित शरीरसे शोभित, साक्षात् लक्ष्मीके समान सामने बैठी हुई रुक्मिणीको देखा जिससे कि उसकी पतिभक्ति पर वे अति प्रसन्न हुये ॥ १०७ ॥ उससमय पुरी द्वारिका प्रातः कालमें पटह और मधुररीतिसे बजनेवाले शंखोंके शब्दोंसे गर्जते हुये समुद्रके समान शब्दायमान होगई। घर २ समस्त राजा प्रजा निद्रारहित होगये और अपने २ प्रातः कालके नित्य कृत्योंमें प्रवृत्त होगये ॥ १०८ ॥

इसकेबाद चंद्रमाकी तेज स्वरूप चांदनीको हटाता हुआ और जिस अंधकारको चंद्रमा नहिं नाशकर सका था उसे जड़मूलसे उखाड़ता हुआ प्रतापी सूर्य भी उदित होगया। जिससे कि भगवान जिनेंद्रके सदुपदेशसे जिसप्रकार समस्त पदार्थ प्रकट

रूपसे भास निकलते हैं उसीप्रकार समस्त लोकोंके नेत्रोंको समस्त पदार्थ स्वच्छ रीतिसे भासित होने लगे ॥ १०९ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें रुक्मिणीका हरण वर्णन करनेवाला व्यालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४२ ॥

तेतालीसवां सर्ग।

श्रीकृष्णने रानी सत्यभामाके महलके पास एक महल—जो कि अनेक प्रकारकी संपत्तिसे व्याप्त था रमणी रुक्मिणीको प्रदान किया। महत्तरिका द्वारपालिनी आदि सेवक परिवार, रथ घोड़े आदि सवारी दिये और उसे पटरानीके पदसे भूषित किया जिससे कि रुक्मिणीको परम संतोष हुआ ॥ १-२ ॥ इसके बाद सत्यभामाको भी यह पता लगा कि रूप और सौभाग्यमें मुझे भी अतिक्रांत करनेवाली कोई स्त्री आगई है और वह श्रीकृष्णको अतिशय प्यारी है इसलिये वह अधिक डाह करने लगी और अपना अंतरंगका भाव प्रकट न कर कृष्णके साथ मनमानी क्रीड़ा करने लगी ॥ ३ ॥ कृष्ण बड़े ही हंसोरा थे। एक दिन उन्होंने रुक्मिणीके पानका उगलन लिया और उसे वस्त्रके छोरमें बांधकर सत्यभामाके घर ले गये। वह उगलन रुक्मिणीके स्वाभाविक मुखकी सुगंधिसे अतिशय सुगंधित था। भौंरे उसपर भुनभुनाहट कर रहे थे। ज्योंही सत्यभामा ने उसे देखा त्योंही उसने उसे कोई उत्तम सुगंधित पदार्थ जान झपटकर ले लिया और पीसकर अपने अंगमें लगा लिया। सत्यभामाकी इस चेष्टापर कृष्णको हंसी आगई जिससे कि वह मनमें आगवबूला होगई ॥ ४-६ ॥ जब सत्यभामाने कृष्णकी अनेक चेष्टाओंसे रुक्मिणीका सौभाग्य अधिक समझा तो उसके मनमें रुक्मिणी के देखनेकी गहरी उत्कंठा होगई और अवसर पाकर उसने श्रीकृष्णसे इसप्रकार कहा—

"प्राणनाथ! मुझे रुक्मिणी दिखाइये। मैने कानोंसे तो उसे जान सुन रक्खा है परंतु आखोंसे अभी नहिं देखा है" ॥ ७-८ ॥ कृष्णने सत्यभामाकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। वे अपने अंतरंगका भाव गुप्त रख सत्यभामाको मणिवापी तटपर ले गये और वहां उससे यह कहकर कि मैं रुक्मिणीको लाता हूं रुक्मिणीके महलमें आ उसे भी लिवा ले गये। जब कृष्ण मणिवापीके बगीचेमें पहुंचे तो रुक्मिणीको तो यह कह दिया कि तू आगे चल मैं आता हूं और आप वृक्षोंमें छिपगये ॥ ९-१० ॥ उससमय रुक्मिणी नानाप्रकारके आभरण पहिने थी। ज्योंही वह मणिवापीके पास पहुंची आम्रवृक्षकी डालीको हाथमें पकड़कर पैरके पंजोंके भर खडी होगई। उससमय उसके जो, चमकीले केश ललर रहे थे उन्हें वह अपने वायें हाथसे थामे थी। स्तनोंके भारसे नम्रीभूत थी और अपनी दृष्टिको ऊपर आम्र फलोंपर लगाये थी। ज्योंही सत्यभामाने

रुक्मिणीको देखा तो वह एकदम दंग रह गई। उसने यह जान कि यह कोई वनदेवी है शीघ्र ही उसके पास आ ऊपर पुष्प वर्षा कर पैरोंमें पड़ नमस्कार किया और मनमें अतिशय डाह कर वह सौतके दुर्भाग्य और अपने सौभाग्यकी उससे याचना करने लगी ॥११-१४॥ उसी अवसरमें कृष्ण भी आगये और मुसकराते हुये इसप्रकार सत्यभामा से कहने लगे—

"क्यों दोनों वहिनोंका मिलाप तो अद्वितीय और नीतिपूर्वक अच्छी तरह हुआ न ?" श्रीकृष्णके ऐसे वचन सुन सत्यभामाने उस स्त्रीको अपनी सौत रुक्मिणी जाना जिससे कि मारे ईर्षाके जलकर खाक हो बोली–"क्यों नहीं ? आपसे इसतरह नीतिपूर्वक कराया गया हम दोनोंका मिलाप सुसंपन्न होगा ?" ॥ १५-१६ ॥ कृष्ण और भामा के ऐसे प्रश्नोत्तरसे जब रुक्मिणीने यह जाना कि यह सत्यभामा है तो तत्काल उसने उसे भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। सो ठीक ही है–जो उन्नत कुलमें उत्पन्न हुये हैं वे स्वभावसे ही विनम्र होते हैं ॥ १७ ॥ इसके बाद श्रीकृष्ण चिरकालतक अनेक लतामंडपोंसे मंडित उस उद्यानमें सत्यभामा और रुक्मिणीके साथ मनमाना विहार कर महलोंमें लोट आये और उन दोनों पटरानियोंके साथ ऐसे सुख समुद्रमें डूबे कि उन्हें वीतते हुये अनेक दिन भी एक दिनके वरावर जान पड़े ॥ १८-१९ ॥

एक दिन हस्तिनापुरके स्वामी राजा दुर्योधनने किसी दूतको बड़े स्नेह के साथ कृष्णके पास भेजा और उसके मुखसे यह समाचार कहलवाया कि–"आपकी रुक्मिणी और सत्यभामा दोनों स्त्रियोंमेंसे जिसका पुत्र पहिले होगा वही मेरी कन्या का वर बनेगा। दूतके मुखसे ऐसे समाचार सुन राजा कृष्णको परम आनंद हुआ। उन्होंने दुर्योधनके वचन स्वीकार कर दूतको आदर सत्कारके साथ विदा कर दिया जिससे कि–अपने कार्यकी सिद्धि उसने अपने स्वामीसे जाकर निवेदन कर दी ॥ २०-२२ ॥ ज्योंहीं यह समाचार सत्यभामाने सुना उसने शीघ्र ही कुछ दासियां रुक्मिणीके पास भेजीं और वे उसे भक्तिपूर्वक नमस्कार कर इसप्रकार निवेदन करने लगीं—

"स्वामिनी ! हमारी स्वामिनीने आपके लिये कुछ वचन कहे हैं उन्हें आप कर्णभूषणके समान अपने कानोंमें धारण करें–कृपाकर सुनें—

हम दोनोंमें जिसका पुत्र प्रथम होगा उसका विवाह हस्तिनापुरके स्वामी राजा दुर्योधनकी आगे होनेवाली पुत्रीके साथ होगा यह बात निश्चित होचुकी है। परंतु इसके साथ एक बातकी और शर्त करनी चाहिये। वह यह है कि–जिसके पुत्र पीछे होगा अथवा होगा ही नहीं। विवाहके समय उसके शिरके केश कपट लिये जांयगे और दूल्हा दुलहिन जमीनपर डाल कर उनपर पैर रक्खेंगे। बहिन ! यह कार्य बड़ा उत्तम है इसके करनेसे संसारमें यश होगा यदि तुझे यह कार्य पसंद है तो तू अपनी स्वीकारता

दे" ॥ २३–२७ ॥ दासियोंके मुखसे सत्यभामाके ऐसे वचन सुन रमणी रुक्मिणीको भी बड़ा हर्ष हुआ। उसने 'तथास्तु' कहकर उसीसमय स्वीकारता दे उन दासियोंको अपने स्थान लौटा दिया जिससे कि उन्होंने जा अपनी स्वामिनीसे सारा वृत्तांत निवेदन कर सुनादिया ॥ २८ ॥

एकदिन रुक्मिणी चतुर्थदिन स्नानकर अपनी कोमल सेजपर सानंद सो रही थी। जब रात्रिका कुछ भाग शेष रहगया तो अचानक ही उसे यह स्वप्न हुआ कि–मैं हंसके विमानमें बैठकर आकाशमें विहार कर रही हूं। प्रातःकाल उठकर उसने अपना नित्य कृत्य किया और पतिके पास जाकर स्वप्नका फल पूछा। स्वप्न सुनकर और उसका फल विचारकर कृष्णको भी परम आनद हुआ। उत्तरमें उन्होंने कहा कि–प्रिये! तेरे आकाशमें विहार करनेवाला कोई महान प्रतापी पुत्र होगा। स्वप्नका यह फल सुन रुक्मिणीको अति हर्ष हुआ और सूर्यके उदयसे जिसप्रकार कमलिनी खिल जाती है उसीप्रकार रुक्मिणीका भी रोम रोम खिल गया ॥ २९–३२ ॥ अच्युत स्वर्गका इंद्र अपने स्थानसे चयकर रुक्मिणीके गर्भमें आया और उसीसमयसे - कृष्ण और समस्त प्रजाको परम आनंद होने लगा ॥ ३३ ॥ उसी रात्रिको सत्यभामा भी चतुर्थदिनका स्नानकर अपनी सेजपर सो रही थी उसे भी एक उत्तम स्वप्न आया और उसके गर्भमें भी स्वर्गसे चयकर एक देवने जन्म धारण किया ॥ ३४ ॥ यशके साथ २ दिनों दिन ये दोनों गर्भ बढ़ने लगे और पिता माताओंको दिन दूना रात चौगुना आनंद देने लगे ॥ ३४ ॥ नौमासके वीत जानेपर रुक्मिणीके पहिले उत्तमोत्तम लक्षणोंसे भूषित और सत्यभामाके कुछ देर बाद एक २ उत्तम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३५ ॥ और उन दोनों रानियोंके पुत्रोंकी वधाई देनेके लिये दोनोंके भृत्य राजा श्रीकृष्णके पास एक साथ पहुंचे। उससमय श्रीकृष्ण अपने भवनमें सो रहे थे इसलिये सेवकोंमें जो सेवक सत्यभामाके थे वे तो कृष्णके सिरहाने जाकर खडे होगये और रुक्मिणीके सेवक उनके पैरोंकी ओर जा खडे हुये ॥ ३६ ॥ कुछ समयके बाद जब श्रीकृष्णकी आंख खुली तो सामने खडे हुवे रुक्मिणीके सेवकोंसे उसके पुत्रका जन्म सुन उन्हें परम आनंद हुआ इसलिये उससमय जो भूषण वे शरीर पर पहिने थे सारे उतारकर सेवकोंको दे दिये। वादको पीछे मुड़कर देखा तो उन्हें सत्यभामाके पुत्र की उत्पत्तिका समाचार भी उसीसमय मिला। उससे भी श्रीकृष्णको परम हर्ष हुआ और सेवकोंको द्रव्यसे संतुष्टकर विदा किया ॥ ३७–३८ ॥

उसीसमय अग्निके समान जाज्वल्यमान एक धूमकेतु नामका राक्षस आकाशसे जाता हुआ रुक्मिणीके महलके उपरसे निकला। रुक्मिणीके पुत्रके प्रतापसे उसका विमान रुक गया जिससे कि उसे वड़ा आश्चर्य हुआ। ज्योंही उसने नीचेकी ओर

देखा तो उसे रुक्मिणीका पुत्र दीख पड़ा और विभंग अवधिज्ञानके बलसे उसे अपना परम वैरी समझा। बस फिर क्या था! बालकके दर्शनरूपी ईंधनसे उसके पूर्वभवकी वैररूपी अग्नि भयंकरतासे दहकने लगी। उससमय रुक्मिणी परिवारके मनुष्योंसे कडी रीतिसे सुरक्षित थी। उसके पास कोई पैर तक नहिं मार सकता था। इसलिये बालकको मारनेके अभिलाषी उस दुष्ट असुरने शीघ्र ही अपनी विद्यासे रुक्मिणी और उसके पहिरेदार परिवारको सुलादिया जिससे कि निर्भयतापूर्वक राजमहलमें घुसकर पुण्यके प्रभावसे पर्वतके समान भारी भी बालकको देखते देखते उठा चल दिया और आकाशमें जाते हुये इसप्रकार विचारने लगा—

अहा! इसने पूर्वभवमें मेरा वड़ा अपकार किया है। सो क्या अब इसे हाथसे मिसल डारूं, अथवा नखोंसे फाडकर पक्षियोंके लिये इसकी वलि प्रदान करूं, किं वा इस क्षुद्र वैरीको नाके और मगरोंसे परिपूर्ण इस समुद्रमें गिरा दूं, अथवा उपर्युक्त रीतिसे इसके मारनेकी कोई अवश्यकता नहीं, यह वैसे ही कोमल मांसका पिंड है। यदि इसका कोई रक्षा करनेवाला न होगा तो अपने आप यह मर जायगा॥ ३९–४६॥ इसतरह कुछ समय तक तर्क वितर्क करनेके वाद समीपमें ही उसे एक खदिर वृक्षोंका वन दीख पडा। वह शीघ्रही उसमें उतरा और एक विशाल तक्षशिलाके नीचे बालकको दवा तत्काल अदृश्य होगया॥ ४७–४८॥

उसीसमय भौमविहार नामक विमानसे सर्वत्र आकाशमें विहार करता हुआ, मेघपुरका स्वामी राजा कालसंवर अपनी पटरानी कनकमालाके साथ वहां होकर जाने लगा परंतु बालकके पुण्य प्रभावसे उसका विमान वहीं रुकगया॥ ४९–५०॥ यहदेख राजा कालसंवरको वड़ा आश्चर्य हुआ और वह यह विचारकर कि—यह क्या बात है? क्यों मेरा विमान रुकगया? शीघ्रही पृथ्वीपर उतरा। वह बालक जिस शिलाके नीचे दवा हुआ था वह उसके श्वास प्रश्वाससे हल रही थी। उसे देख राजाने विद्यावलसे शिलाको सरकाया जिससे कि उसके नीचे सुवर्णके समान देदीप्यमान शिलाके आघातसे रहित हालका बालक दीख पड़ा॥ ५१–५२॥ बालकी यह दशा देख राजा कालसंवरका हृदय दयासे पसीज गया। शीघ्रही हाथ वढ़ाकर उसने बालकको उठालिया और अपनी स्त्रीसे यह कहकर कि—प्रिये! तुम्हारे कोई संतान नहि हैं लो! इस बालकको ग्रहण करो इसैही अपना पुत्र मानो—देने लगा॥ ५३॥ रानी कनकमाला बड़ी चतुर और दूरकी सोचनेवाली स्त्री थी। ज्योंही उसनें राजाको बालक देते हुये देखा। पहिले तो उसने भूलसे उसके लेनेकेलिये हाथ पसार दिये परंतु फिर उसीसमय उन्हैं पीछे संकोचलिया और इसरीतिसे निश्चल खड़ी होगई मानो उस बालकको सर्वथा चाहती हीं न हो॥ ५४॥ रानी कनकमालाकी इस चेष्टापर राजा

कालसंवरको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने उसीसमय रानीसे बालक न लेनेका कारण पूछा। उत्तरमें रानीने कहा—

"प्राणनाथ! आपके इससमय पांचसौ पुत्र विद्यमान हैं जो कि महान कुलसे उत्पन्न हैं। इस पुत्रके कुल आदिका किसीको पता नहीं है। शायद वे पुत्र इसै अकुलीन जान इसका तिरस्कार करें इसै अकुलीन कहकर अपने समान कुलीन न मानें तो मुझै इस बातका बड़ा दुःख होगा। इसलिये इस दुःखके वदले मैं निपूती रहना ही अच्छा समझती हूं" ॥ ५५–५६ ॥ रानीके इसप्रकार कहनेपर राजा कालसंवरने उसीसमय उसे सांत्वना दी और उसके कानके कर्णपत्रसे बालकका तिलककर उसै युवराज बना दिया। ॥ ५७ ॥ राजाका यह कृत्य देख रानी कनकमाला प्रसन्न होगई। उसने शीघ्र ही बालक अपनी गोदमें ले लिया और वे दोनों पुत्रको लेकर शीघ्रही मेघकूटपुर आगये। नगरमें आतेही राजा कालसंवरने सारे नगरमें यह समाचार फैलादिया कि—रानी कनकमालाके गूढ़ गर्भ था। रास्तेमें उसके पुत्र हुआ है। जिससे कि भांति भांतिके भूषणोंसे भूषित हो विद्याधरियोंने राजाके महलमें आकर पुण्यात्मा उस बालकका बड़े ठाट बाटके साथ जन्मोत्सव मनाया ॥ ५८–६० ॥ बालकके शरीरकी प्रभा सुवर्णके समान देदीप्यमान थी इसलिये उसका नाम प्रद्युम्न (सुवर्ण) रक्खा गया और वहां वह सैकड़ों विद्याधर बालकोंके साथ आनंद किलोल करता हुआ निर्विघ्नतासे बढ़नेलगा ॥ ६१ ॥

इधर द्वारिकापुरीमें जब रानी रुक्मिणीकी आंख खुली तो उसने अपनी गोदीसे पुत्रको लापता पाया। उसने शीघ्र ही वृद्ध धायोंको जहां तहां पुत्रके अन्वेषण करनेके लिये कहा। परंतु सब प्रयत्न निष्फल हुआ—कहीं भी पुत्रका पता न लगा। अंतमें रुक्मिणीको बड़ा संताप हुआ और दुःखसे गद्गद कंठ हो वह इसप्रकार करुणाजनक विलाप करने लगी—

"हाय प्राणाधार पुत्र! तुझै किस वैरीने हरलिया। अरे! इस क्रूर विधिने क्यों तो मेरे नेत्रोंको पुत्ररूपी सुंदर निधि दिखाई और फिर क्यों हरण करली। हाय! परभवमें अवश्य मैंने किसी स्त्रीको उसके पुत्रसे जुदा किया होगा। उसी प्रबल पापके उदयसे मुझै इस भवमें अपने प्राणप्यारे पुत्रसे वियुक्त होना पड़ा है। क्योंकि विना कारणके कार्य कदापि नहिं हो सकता" ॥ ६२–६४ ॥ रानी रुक्मिणीके इसप्रकार करुणाजनक विलाप करनेपर समस्त परिवारमें हाहाकार मच गया। पुत्रके हरणका समाचार श्रीकृष्णके पासभी पहुंचा। वे अपने बंधुबांधवोंके साथ शीघ्रही रुक्मिणीके मंदिरमें आये। स्त्रियोंका विलाप सुन उन्हैं बड़ा खेद हुआ वे बार बार अपने भुजाओंके पौरुषको और आलस्यको धिक्कारने लगे एवं समस्त परिवारके सामने इसप्रकार कहने लगे—

"दैव और पौरुषमें दैव ही बलवान है। दैवके सामने इस पराक्रमकी कुछ भी नहिं

चल सकती इसलिये इस पौरुषके लिये सर्वथा धिक्कार है। अरे! यदि पौरुष वलवान होता तो क्या म्यानसे निकले हुये खड्गसे सदा देदीप्यमान रहनेवाले इस वासुदेवका पुत्र हरा जाता?" ॥ ६५-६९ ॥ इस रीतिसे कुछ समय तक पश्चात्ताप कर अंतमें उन्होंने रुक्मिणीसे कहा—

प्रिये! शोक छोड़ धैर्य धारण कर। जिस पुत्रकी माता तुझ सरीखी है और पिता मुझ सरीखा है वह पुत्र अल्पायु और साधारण नहिं हो सकता-बड़ा प्रतापी होगा। परंतु किया क्या जाय भवितव्य ऐसा ही था। विधिकी इच्छा इसीप्रकारकी थी। जिसप्रकार सूक्ष्मदृष्टि पुरुष आकाशमें सर्वत्र द्वितीयाके चंद्रमाको खोजता है उसीप्रकार तू निश्चय समझ समस्त लोकमें नेत्रोंको आनंददेनेवाले तेरे पुत्रको मैं अवश्य ढूंढूंगा" ॥ ७०-७२ ॥ इसप्रकार कृष्ण, विलाप करती हुई रानी रुक्मिणीको भलेप्रकार समझा बुझाकर वहांसे चलेआये और पुत्रके अन्वेषण करनेके लिये उपाय करने लगे ॥ ७३ ॥

एक दिन कृष्ण पुत्रकी चिंतामें वैठे थे कि इतने ही में परम उद्योगी ऋषि नारदभी आ पहुंचे और रुक्मिणीके पुत्रके हरणका समाचार सुन शोकसे कुछ देरके लिये निश्चल होगये। उससमय समस्त यादवोंके मुख हिमसे दग्धकिये हुये कमलोंके समान कांतिरहित थे इसलिये नारदने उनकी ओर देख अपना शोक तो एक ओर रक्खा और बड़ी धीरतासे वे कृष्णसे इसप्रकार कहने लगे—

शूरवीर कृष्ण! तुम शोक छोड़ो। मै तुम्हारे पुत्रकी खोज करूंगा। जब इस क्षेत्रमें मुनिराज अतिमुक्तक अवधिज्ञानी थे तब तो उनसे ही सब वातें मालूम हो जाती थीं। परंतु अब वे तो केवलज्ञानरूपी विभूतिको पाकर मोक्ष चले गये। उनके सिवाय तीर्थंकर नेमिनाथ भी तीन ज्ञानके धारक हैं। इन्हैं भी अवधिज्ञान है। परंतु न मालूम जानते हुये भी ये क्यों कुछ नहिं कहते। अस्तु! अब मैं विदेहक्षेत्रमें जिनराज सीमंधरके समीप जाता हूं। उनसे तुम्हारे पुत्रके विषयमें पूछूंगा और सारा समाचार यहां आकर कहूंगा। यादवोंको इसतरह सांत्वना दे नारद वहांसे उठे और रानी रुक्मिणीके मंदिरमें गये ॥ ७४-७९ ॥ उससमय रानी रुक्मिणीका मुखकमल शोकरूपी हिमसे दग्ध था। उसकी वैसी दशा देख नारदको अंतरंगमें वड़ा शोक हुआ। परंतु वाहिरसे वे संभल गये-उन्होंने धैर्य धारण करलिया। ऋषि नारदको देखकर रुक्मिणी उठी और उसने उन्हें योग्य आदर सत्कार कर ऊंचे आसनपर वैठाया ॥ ८०-८१ ॥ रुक्मिणी, ऋषि नारदको अपने पिताके समान पूज्य मानती थी। ज्योंही वह नारदसे मिली मारे दुःखके उसका गला भर आया और करुणाजनक विलाप करने लगी। ॥ ८२ ॥ यह देख नारद उसके अगाध शोक समुद्रको निर्मूल करते हुये इसप्रकार वचन कहने लगे—

" पुत्री रुक्मिणी ! तू अपने शोकको छोड़। तेरा पुत्र इस पृथ्वीपर अवश्य कहीं न कहीं जीवित है। किसी पूर्वभवके वैरीने कहीं उसे लेजाकर रखदिया है॥८३-८४॥ वह पुत्र बड़ा प्रतापी है। पवित्र आत्माका धारक है। उसकी मा तुझ सरीखी और पिता वासुदेव सरीखा है इसलिये उसके विषयमें यह कदापि विश्वास नहिं होसकता कि वह मरगया होगा। वह चिरंजीवी अवश्य संसारमें विद्यमान है ॥ ८५ ॥ प्रियपुत्री ! इसवातको तू भी भलेप्रकार जानती है कि संयोग और वियोग प्रत्येक जीवके साथ २ लगा हुआ है। इसीसे सदा अनेक सुख और दुःख भोगनेमें आते हैं ॥ ८६ ॥ परंतु जिस प्रकार प्रतापी भी शत्रु यादवोंका कुछ नहिं करसकते उसीप्रकार जो महानुभाव कर्मों-की वास्तविक दशाके जानकार हैं-ज्ञानरूपी दृष्टिके धारक हैं। उन्है संयोग वियोग कुछ भी नहिं सता सकते ॥ ८७ ॥ तू भलेप्रकार जैनशास्त्रके रहस्यकी जानकार है। संसार की स्थितिका भी अच्छी तरह तुझै ज्ञान है इसलिये तू पुत्रकेलिये शोक मतकर। मै शीघ्रही उसके समाचार तुझै लाकर दूंगा "॥ ८८ ॥ इसप्रकार नारदने अपने शांतिमय वचनोंसे रानी रुक्मिणीके चित्तको शांत किया और आकाशमार्गसे सीमंधर स्वामीके समीप चलदिया ॥ ८९ ॥

विदेहक्षेत्रके पुष्कलावती देशमें एक पुंडरीकिनी नामकी नगरी है। नारद चलते २ वहां पहुंचे और भगवान सीमंधरको-जो अनेक देव मनुष्य और विद्याधरोंसे पूजित थे-देख संतुष्ट हुये॥९०॥ नारदने भगवानको देखकर दूरसेही हाथ जोड़े। विनयपूर्वक नमस्कार कर पवित्र स्तोत्रोंसे स्तुति की एवं जिस कोठेमें राजा लोग बैठे थे वहां जाकर बैठगये। ॥ ९१ ॥ उससमय भगवान सीमंधरके समवसरणमें पद्मरथ चक्रवर्ती-जिसके शरीरकी ऊंचाई पांचसौ धनुषकी थी-मोजूद था। ज्योंही उसने दशधनुष ऊंचे शरीरके धारक, नरोंमें उत्तम मुनि नारदको देखा उसै बड़ा कुतूहल हुआ और नारदको उठा हथेलीपर रख भगवान सीमंधरसे इसप्रकार पूछनेलगा-

" प्रभो ! मनुष्यके आकारका यह कौन कीड़ा है ? और इसका क्या नाम है ? " उत्तरमें भगवानने कहा—

" यह क्रीड़ा नहीं, जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रका परम ब्रह्मचारी ऋषि नारद है और वहां के नवमें वासुदेवका परम हितकारी है। " चक्रवर्तीने फिर पूछा—

भगवन् ! यह ऋषि यहांपर किसलिये आया है ? उत्तरमें धर्मचक्री भगवान सीमं-धरने पहिलेका सारा समाचार कहा और यह भी सुनाया कि-"कुमार प्रद्युम्न सोलहवीं वर्षमें सोलह प्रकारकी विद्याओंको प्राप्तकर अपने माता पितासे आकर मिलेगा। उस पराक्रमीको रोहिणी और प्रज्ञप्ति विद्याओंका भी लाभ होगा जिससे कि देव भी उसै न जीत सकेंगे। " ॥ ९२-९७ ॥ चक्रवर्तीने पुनः पूछा—

प्रभो! प्रद्युम्नके पूर्वभवका चरित्र क्या है? और किस कारणसे उसको वैरीने हरा है। कृपाकर सब वृत्तांत कहिये। भगवान इसके उत्तरमें इसप्रकार कहने लगे—

भरतक्षेत्रके मगधदेशमें एक शालिग्राम नामका गांव था। किसी समय उसमें अग्निला नामक अपनी स्त्रीके साथ एक सोमदेव नामका ब्राह्मण रहता था और जिसप्रकार अग्निको स्वाहा (घृतकी आहुति) प्रिय है उसीप्रकार उसे वह अग्निला प्यारी थी। इन दोनोंके अग्निभूत और वायुभूत नामके दो पुत्र थे जो कि वेद वेदांगमें पूर्ण विद्वान् थे। अपनी विद्वत्ताके घमंडसे अन्य वेदवेत्ता ब्राह्मणोंका तिरस्कार करते थे और ब्राह्मणरूपी नक्षत्रोंके मध्यमें विद्वत्तामें शुक्राचार्य और वृहस्पतिकी तुलना करते थे। ॥ ९८-१०१ ॥ ये वेद का अर्थ विधि और नियोग न मान कर भावना मानते थे। अपनी जातिके गर्वमें बड़ेही गर्वित थे ॥ १०२ ॥ सोलह २ वर्षकी स्त्रियोंके साथ भोग विलास करनेकोही स्वर्ग समझते थे इसलिये इनके सिद्धांतानुसार स्वर्ग मोक्ष कोई अन्य पदार्थ न था—सदा ये परलोकका खंडन करते रहते थे ॥ १०३ ॥

एकदिन शास्त्ररूपी समुद्रके पारगामी कोई नंदिवर्धन नामके दिगंबर आचार्य एक विशाल संघके साथ शालिग्रामके वाह्य उद्यानमें आ विराजे। मुनिराजोंका आगमन सुनते ही ब्राह्मण क्षत्रिय आदि वर्णोंके छोटे बडे पुरुष उनके दर्शनोंके लिये वनमें जाने लगे। यह दृश्य देख अग्निभूति और वायुभूतिने वडे आश्चर्यके साथ पार्श्ववर्ती किसी ब्राह्मणसे उनके इस गमनका कारण पूछा। उत्तरमें उस ब्राह्मणने कहा कि—"वनमें दिगंबर मुनियोंका एक विशाल संघ आया है। उसकी वंदनाके लिये ये समस्त नगरनिवासी स्त्री पुरुष जा रहे हैं" ॥ १०३-१०६ ॥ दोनों ब्राह्मण पुत्र बडे ही घमंडी थे। वे अपने मनमें इसवातका पूर्ण अहंकार कर—कि 'क्या हमसे भी अधिक कोई वंदनाके योग्य है? चलें अपन भी उसका माहात्म्य देखें' वनकी ओर चल दिये ॥ १०७ ॥ उससमय आचार्य नंदिवर्धन सभाके मध्यमें बैठकर धर्मोपदेश दे रहे थे। ये दोनों ब्राह्मण उनके पास पहुंच कर उनकी ओर देखने लगे। वहांपर धर्मश्रवणके परमप्रेमी अवधिज्ञानके धारक एक सात्यकि नामके मुनिराज भी विराजमान थे। उन्होंने शीघ्रही इन ब्राह्मण कुमारोंके अंतरंगका भाव समझ लिया। मनमें यह विचारकर कि ये दोनों जंगली भैसोंके समान उद्धत हैं, इनके द्वारा इससमय सभामें किसी प्रकारका क्षोभ न हो, धर्मके उपदेशमें किसीप्रकारकी वाधा न आपडे 'कुमारो! यहां आओ' कह कर उन्हें शीघ्र ही अपने पास बुला लिया जिससे कि वे सीधे उनके पास चले गये ॥ १०८-११० ॥ शालिग्रामनिवासी मनुष्य इन ब्राह्मण कुमारोंको भले प्रकार जानते थे। ये अपनी विद्याका कितना घमंड रखते थे यह भी उन्हें अच्छीतरह मालूम था। इसलिये ज्योंही ये मुनिराजके पास पहुंचे त्योंही वर्षाकालमें जिसप्रकार

विशाल सरोवरमें जलका समूह आ आकर जमा हो जाता है उसीप्रकार मनुष्योंके झुंडके झुंड मुनिराज सात्यकिके पास आ आकर एकत्र होगये ॥ १११ ॥ मुनिराज सात्यकिने ब्राह्मण कुमारोंसे पूछा—

पंडितो! आप कहांसे आरहे हैं? उत्तरमें ब्राह्मणोंने कहा—क्या तुम नहिं जानते? इसी शालिग्रामसे तो आरहे हैं। मुनिराजने फिर कहा—हां! यह तो तुम ठीक कहते हो कि इससमय तुम शालिग्रामसे आरहे हो। परंतु यह वतलाओ कि—अनादिकालसे इस संसारमें भ्रमण करनेवाले तुम दोनों इस मनुष्य गतिमें किस गतिसे आये हो? मुनिराजके ऐसे वचन सुन उन्होंने कहा कि—वाह! हम ही अकेले क्या? यह तो कोई भी नहीं वता सकता। यह सुन मुनिराजने कहा—नहीं! यह वात नहीं है! लो! हम तुम्हारे पूर्वभवका वृत्तांत सुनाते हैं। तुम ध्यानपूर्वक सुनो—

तुम दोनों भाई इस जन्मसे पूर्व जन्ममें इसी शालिग्रामके निकटके जंगलमें अपने कर्मानुसार दो शृगाल थे और उससमय भी तुम दोनोंका आपसमें परम स्नेह था। ॥ ११२–११५ ॥ इसी ग्राममें एक प्रवरक नामका किसान भी रहता था। एकदिन वह ज्योंही अपने खेतको जोतकर चुका कि त्योंही वड़े जोरकी वर्षा होनी शुरू होगई। प्रचंड पवन वहनेलगी। विचारे किसानके पास कुछ कपडे लत्ते थे नहीं। इसलिये मारे शीतके उसका शरीर कपनेलगा। वह उसी खेतमें एक वटके वृक्षके नीचे अपने चर्मके उपकरण (पुर, आदि) छोड़कर गांवमें चला आया। संयोगवश वर्षा सातरोज तक वरावर होती रही। जलके प्रवाहसे मनुष्योंका आवागमन सर्वथा वंद होगया। इसलिये किसान भी अपने खेतपर न जानेपाया। विचारे स्याल भी क्षुधासे पीडित थे इसलिये उन्होंने उन गीले चामके उपकरणोंकोही खाकर अपनी क्षुधाकी शांति की। परंतु थोडेही देरवाद उससे उन्हैं तीव्रवेदना होनेलगी। वे उसे न सहसके। इसलिये अकाम निर्जराके योगसे प्रशस्त आयु वांध मरकर वे ब्राह्मण सोमदेवके जातिका अतिशय घमड करनेवाले, अग्निभूत और वायुभूत नामके तुम पुत्र हुये हो। प्रिय ब्राह्मण कुमारो! संसारमें जीवोंको पापके उदयसे दुर्गतिकी प्राप्ति होती है और पुण्यके उदयसे उत्तम गति मिलती है। इसलिये जातिका घमंड करना व्यर्थ है ॥ ११६–१२१ ॥ जव वर्षा वंद होगई तो वह प्रवरक उसी वट वृक्षके नीचे आया और उनदोनों शृगालोंको मरा देख उन्हैं उठा ले गया। घर जा उसने उनके चर्मकी (दृति) मुसक वनवाई जो अव भी उसके घर मौजूद हैं ॥ १२२ ॥ कुछ कालके वाद प्रवरक भी मरगया और वह अपने पुत्रके पुत्र हुआ। उसै पूर्वभवका स्मरण होगया है। इसलिये मारे लज्जाके वह मूंक वनगया है—कुछ वोलता चालता नहीं है। और देखो! वह अपने वंधुओंके मध्यमें वैठा मेरी ओर टकटकी लगाकर देख रहा है। तथा ऐसा कहकर सत्यवक्ता मुनिराज सात्यकिने उसै भी अपने

पास बुला लिया और इसप्रकार उपदेश दिया कि—

पूर्वभवका तू ब्राह्मण प्रव(म)रक इस जन्ममें अपने पुत्रके पुत्र हुआ है। अब तू शोक और अपने गूंगेपनको छोड़। खुलकर बातचीत कर। अरे भाई! इसका नाम संसार (जिसनें हमेशा घूमना पड़े) है। नट जिसप्रकार कभी राजा और कभी रंकका रूप धारण करता है उसीप्रकार यह जीव इस संसारमें कभी स्वामीका सेवक होजाता है और कभी सेवकका स्वामी, पिताका पुत्र होजाता है और पुत्रका पिता, एवं माताकी स्त्री और स्त्रीकी मा होजाती है। यह कुटिल संसार घटी यंत्रके समान है। क्योंकि जिसप्रकार घटीयंत्रमें घड़े घूमते रहते हैं उसीप्रकार इस संसारमें भी ये जीव सदा भ्रमण करते रहते हैं और कभी नीच और कभी ऊंच होजाते हैं ॥ १२३-१२७ ॥ इसलिये प्रिय वत्स! बस! अब तेरेलिये यही उपदेश है कि तू इस घोर संसाररूपी समुद्रको निस्सार समझ, और दयाके प्रधान कारण, सर्व पदार्थोंमें सारभूत व्रतोंका शरण ले"। ॥ १२८ ॥ बस! फिर क्या था? ज्योंही विप्रपुत्रने मुनिराजसे ठीक ठीक समाचार सुना। शीघ्रही उसने मुनिराजकी तीन प्रदक्षिणा कीं, पैरोंमें गिरगया, उसकी आंखोंसे आनंदाश्रुओंकी लड़ी बंधगई, वह बडे आश्चर्यके साथ खड़ा हो हाथजोड़ गद्गद कंठसे इसप्रकार निवेदन करने लगा—

"भगवन्! आप सर्वज्ञके समान हैं। ईश्वर हैं। यहां बैठेही समस्त लोकके पदार्थोंके जानकार हैं। प्रभो! मेरे मनरूपी नेत्रपर अज्ञानका बलवान पर्दा पड़ा था। आज आपने अपने ज्ञानरूपी अंजन की सलाईसे उसै उघाड़ दिया। यह संसाररूपी वन मोहरूपी गाढ़ अंधकारसे व्याप्त है। मैं अनादिकालसे इसमें घूम रहा हूं। परंतु आज आपने मुझै सच्चा मार्ग दिखा ठिकाने लगाया है इसलिये आप मेरे परमहितैषी बंधु हैं। कृपानाथ! आप मुझपर प्रसन्न हों और दिगंबर दीक्षा प्रदान करैं" विप्रकी यह प्रार्थना सुन मुनिराजने उसे परमपवित्र दिगंबर दीक्षासे दीक्षित किया ॥ १२९-१३४ ॥ विप्रका ऐसा चमत्कारी चरित्र सुन सभामें बैठेहुये बहुतसे मनुष्य तो मुनि होगये और बहुतोंने श्रावकके व्रत ले लिये ॥१३५॥ मुनिराजके मुखसे अपने पूर्वभवका वृत्तांत सुन अग्निभूत और वायुभूत बडे लज्जित हुये। सभामें बैठेहुये लोगोंने उनकी बड़ी निंदाकी, इसलिये वे चुपचाप अपने घर चले आये। उनके दुष्कृत्यसे क्रुद्ध हो उनके पिता माताने भी उन्हैं बुरी भली सुनाई। महा अभिमानी ब्राह्मणपुत्रोंको यह बात बड़ी बुरी लगी। मुनिके मारनेकेलिये उन्होंने अपने मनमें पूरा २ निश्चय करलिया इसलिये रात्रिमें जब कि मुनिराज कायोत्सर्ग मुद्रासे विराजमान थे वे खड्ग हाथमें लेकर गुप्तरूपसे शीघ्रही उनके पास पहुंचे और मुनिको मारने लगे। वनके स्वामी यक्षने जब उनका यह कृत्य देखा तो उसने शीघ्र ही उन्हें कील दिया। जिससे कि वे किंकर्तव्य विमूढ़ हो

निश्चलरूपसे खडे रहगये। प्रातःकाल होते ही मुनिवंदनार्थ बहुतसे मनुष्य वहां आने जाने लगे। मुनिराज सात्यकिके समीप दुष्ट अग्निभूत और वायुभूतको उस दशामें देख सब लोग उनकी और उनके कृत्यकी बड़ी निंदा करनेलगे ॥ १३६–१३८ ॥ अपनी ऐसी दुःखमयी अवस्था देख ब्राह्मण पुत्र भी इसप्रकार अपने मनमें विचार करनेलगे–

"मुनिराजका प्रताप अचिंत्य और महान् है। इनके ही प्रतापसे हमारी यह दशा हुई है कि हम कुछ भी नहिं करसकते। यह जैनधर्म बड़ा पवित्र धर्म है। इसकी सामर्थ्य हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। यदि किसी रीतिसे इस बंधनसे मुक्त होजांयगे तो नियमसे हम जैनधर्म धारण करेंगे" ॥ १३९–१४० ॥ अग्निभूत और वायुभूतके माता पिताओंको भी उनके कीले जानेका पता लगा। वे शीघ्रही दौड़ते दौडते मुनिराजके पास आये और पैरोंमें पड़कर पुत्रोंको बंधनसे मुक्त करनेलिये उनसे प्रार्थना करनेलगे ॥ १४१ ॥ मुनिराज परम दयालु थे। विप्रपुत्रोंके माता पिताकी प्रार्थनासे उनका हृदय पिघल गया जिससे कि अपने ध्यानको संकोच उन्होंने विप्रपुत्रोंके कीलनेवाले क्षेत्रपालको बुलाकर कहा कि—

"प्रिययक्ष! तुम दयाकर अब इनके इस अपराधको क्षमाकरो। अशुभकर्मकी प्रेरणासे इनदोनोंने यह कुकृत्य किया है।" क्षेत्रपालने राजाकी आज्ञाके समान मुनिराजकी आज्ञा मान ब्राह्मण पुत्रोंको बंधनसे मुक्त करदिया॥ १४२–१४४॥ अग्निभूत और मरुभूत दोनों कुमारोंने अपनी यह अवस्था देख उसीसमय मुनिराजको नमस्कार किया और मुनि एवं श्रावकके धर्मको श्रवणकर श्रावकके पांच अणुव्रतोंको धारणकर लिया। वे पक्के श्रावक बनगये। उन्होंने सम्यग्दृष्टि हो चिरकालपर्यंत पवित्र जैनधर्म पाला और आयुके अंतमें मरकर वे धर्मके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमें जाकर देव हुये ॥१४५–१४६॥ विप्रपुत्रोंके पिता माताको जैनधर्मका श्रद्धान न हुआ इसलिये मिथ्यात्वके प्रबल उदयसे वे मरकर कुगतिमें गये ॥ १४७ ॥

उससमय अयोध्यापुरीमें एक सुभद्रदत्त नामका सेठ रहता था और उसकी सेठानीका नाम धारिणी था। विप्रपुत्रोंके जीवोंने मनमाना स्वर्गसुख भोग आयुके अंतमें वहांसे चयकर उन सेठ सेठानीके यहां जन्म धारण किया और क्रमसे उनका नाम पूर्णभद्र और मणिभद्र रक्खा गया। ये दोनों कुमार सम्यग्दृष्टि थे और जैनशास्त्रोंपर पूरा पूरा विश्वास रखते थे ॥ १४८–१४९ ॥ कदाचित् सेठ सुभद्रदत्त मुनिराज महेंद्रसेनसे धर्मोपदेश सुन संसारसे विरक्त होगया और उसने तत्काल मुनिव्रत धारण करलिया। उससमय अयोध्यापुरीके राजा एवं अन्यान्य भव्यजीवोंने भी दिगंबर दीक्षा धारण करली थी॥ १५० ॥ एकदिन श्रेष्ठिपुत्र पूर्णभद्र और मणिभद्र, मुनिवंदनाके लिये जा रहे थे। मार्गमें उन्हें एक चांडाल और कुत्ती मिली जिन्हें देख दोनों कुमारोंका हृदय

स्नेहसे गद्गद होगया ॥ १५१ ॥ मुनिराजके पास पहुंच कर कुमारोंने उनकी भक्तिपूर्वक वंदना की और विस्मित हो उनसे इसप्रकार पूछा—

"भगवन्! हम दोनोंका चांडाल और शुनी (कुतिया) में इतना अधिक प्रेम क्योंकर हुआ?" उत्तरमें अवधिज्ञानी मुनिराजने कहा—

"विप्रके जन्ममें वे तुम्हारे माता पिता थे इसलिये तुम्हैं उनपर अधिक स्नेह हुआ" ॥ १५२–१५३ ॥ मुनिराजके मुखसे ऐसा पक्का समाचार पाकर दोनों कुमार चांडाल और शुनीके पास पहुंचे, पूर्वभवकी कथा सुना उन्हैं धर्मोपदेश दिया जिससे कि उन्हैं अधिक शांति मिली। चांडालको संसारसे वैराग्य होगया। दीनताके साथ उसने एक मासपर्यंत चारो प्रकारके आहारका त्याग करदिया और आयुके अंतमें मरकर नंदीश्वर द्वीपका अधिष्ठाता देव हुआ॥ १५४–१५५॥ एवं शुनी भी मरकर अयोध्यापुरीके राजाकी पुत्री होगई। जब वह युवती हुई तो उसके विवाहकेलिये उसके पिताने स्वयंवर किया। उसीसमय वह नंदीश्वर द्वीपका अधिष्ठाता देव भी वहां जापहुंचा। उसने कन्याको नरक आदि कुगतियोंका ज्ञान कराकर संबोधा जिससे कि वह संसारको असार जान शीघ्र ही विरक्त होगई और नवीन युवती होनेपर भी केवल एक श्वेतवस्त्र धारणकर आर्यिका बन गई ॥ १५६–१५७ ॥ दोनों श्रेष्ठिपुत्रोंने भी चिरकालतक पवित्र श्रावक व्रतपाले और आयुके अंतमें सौधर्म स्वर्गमें जाकर उत्तम ऋद्धिके धारक देव होगये। उससमय अयोध्यापुरीमें कोई हेमनाभ नामका राजा राज्य करता था। उसकी पटरानीका नाम धरावती था। वे दोनों देव, आयुके अंतमें स्वर्गसे चये और रानी धरावतीके मधु और कैटभ नामके पुत्र हुये ॥ १५८–१५९ ॥ एकदिन राजा हेमनाभको संसारसे उदासीनता होगई। उसने कुमार मधुको राजा और कैटभको युवराज बनाया और आप दिगंबर दीक्षासे दीक्षित होगया ॥ १६० ॥ मधु और कैटभ दोनों महानुभाव अद्वितीय वीर थे। अद्भुत पराक्रमके धारक और सूर्य चंद्रमाके समान प्रतापी थे। ॥ १६१ ॥ उससमय राजा मधु बहुतसे राजाओंका अधिपति था। अनेक राजा उसकी आज्ञा मानते थे। किंतु एक भीषण नामका राजा जो मधुको तनिक भी नहिं गिनता था उसका आज्ञाकारी न था। यद्यपि उसके पास बहुत थोड़ीसी सेना थी और एकमात्र पर्वतका किला था तथापि वह पराक्रमी अधिक था ॥१६२॥ एकदिन ये दोनों भाई अपनी विशाल सेनाके साथ उसै वश करनेकेलिये चलदिये। मार्गमें एक वटपुर नामका नगर पड़ता था और उससमय उसका स्वामी राजा वीरसेन था जो कि मधुका परम आज्ञाकारी था ॥ १६३ ॥ अपने नगरके पास इन दोनों भाईयोंके आगमनका समाचार सुन राजा वीरसेन परम आनंदित हुआ। वह शीघ्र ही उनकी अगवानीकेलिये आया और अपने राजमंदिरमें उन्हैं लेजाकर पूर्ण आदर सत्कारसे ठहराया ॥ १६४ ॥ राजा वीर-

सेनकी स्त्रीका नाम चंद्राभा था जो कि चंद्रमाके समान अतिशय मनोहर रूपवती और मधुर २ बोलनेवाली थी। उसने देखते ही राजा मधुके मनको हरण करलिया ॥१६५॥ यद्यपि राजा मधुकी बुद्धि शस्त्र और शास्त्र विद्याके बलसे कठोर (दृढ़) थी तथापि जिसप्रकार कठिन भी चंद्रकांत शिला चंद्रमाकी कांतिसे पिघल जाती है उसीप्रकार उस चंद्राभाके देखनेसे उसकी वह बुद्धि पिघल गई ॥ १६६ ॥ वह अपने मनमें इसप्रकार विचार करने लगा—

रूप सौभाग्यकी खानि यदि यह चंद्राभा मुझै किसीप्रकार प्राप्त होजाय तो मैं अपने राज्यको सुखदायी राज्य समझूं अन्यथा इसके विना वह विषतुल्य है-परम दुःखदायी है। यद्यपि मैं अनेक राजाओंका स्वामी राजा हूं। परस्त्री चंद्राभाका ग्रहण करना मेरे लिये अधिक कलंककी वात है। तथापि जिसप्रकार कलंकी भी पूर्ण चंद्रमा चांदनीसे मंडित अति रमणीय जान पड़ता है उसीप्रकार इस चंद्राभाके साथ मैं भी अधिक शोभित हूंगा ॥१६७-१६८॥ और यह भी बात है कि जिसप्रकार चांदनीसे मंडित चंद्रमा द्वारा प्रफुल्लित कुमुदिनीके वनकी सुगंधिको कीचड़की दुर्गंध कदापि नष्ट नहिं कर सकती उसीप्रकार चंद्राभाके ग्रहण करनेसे मेरे यशमें भी किसीप्रकारका धब्बा नहिं लग सकता " ॥ १६९ ॥ इसप्रकार चिरकालतक राजा मधुने चंद्राभाकेलिये सोच विचार किया। यद्यपि वह बुद्धिमान और महामानी था तथापि रागमें अंधा हो उसने चंद्राभाके हरण करनेकेलिये पूर्ण निश्चय कर लिया ॥ १७० ॥ वह अपने भाई और सैन्यके साथ राजा भीषणके नगर गया। अपने प्रबल प्रतापसे उसे वश-कर अयोध्या लोट आया और चंद्राभाके ग्रहण करनेका विचार करने लगा ॥१७१॥ एक दिन उसने छलसे वसंतका उत्सव मनाया। भिन्न भिन्न नगरोंके अनेक राजा-ओंको मय रणवासोंके सहित वड़े आदरसें बुलाया। उनका यथायोग्य सत्कार किया और अंतमें भांति भांतिके भूषण प्रदान कर उन्हैं विदा किया जिससे कि उन्हैं वड़ा आनंद हुआ। वटपुरका स्वामी राजा वीरसेन भी अपनी स्त्री चंद्राभाके साथ आया था। राजा मधुने उसका और चंद्राभाका वड़ा सन्मान किया एवं यह वहाना वना-कर कि चंद्राभाके लिये अभी योग्य भूषण वसन तयार नहिं हुये हैं होते ही उसे भेज दिया जायगा उसे रोक लिया और राजा वीरसेनको प्रीतिपूर्वक वटपुरको विदा कर दिया। वीरसेन विचारा स्वामिभक्त था। वह विना कुछ सोच विचार किये ही अपने स्थान चला गया। इसके वाद राजा मधुने चंद्राभाको समस्त रानियोंकी प्रधान-पट-रानी वनाया जिससे कि उसके साथ सानंद विषय भोग भोगने लगा ॥१७२-१७६॥ ज्योंही वीरसेन को यह पता लगा कि राजा मधुने चंद्राभाको अपना लिया है वह वड़ा दुःखित हुआ। चंद्राभाकी वियोग ज्वाला उसे बुरी तरह जलानेलगी और यहां तक कि

उससे वह पागल हो जहां तहां पृथ्वीपर घूमने लगा॥ १७७॥ एक दिन महाराणी चंद्राभा अपने महल के अग्रभागपर बैठी थी कि उसीसमय चंद्राभाके लिये आलाप विलाप करता हुआ मार्गकी धूलिसे भदमेला वीरसेन भी वहां से निकला। ज्योंही चंद्राभाने वीरसेनकी वैसी दुर्दशा देखी, दयासे उसका हृदय पसीज गया। वह राजा मधुसे बोली कि—"कृपानाथ! देखिये वह मेरा पति मेरे प्रेममें मत्त हुआ किसतरह घूम रहा है!" उसी अवसरमें कुछ राजसेवक किसी परस्त्री लंपटीको न्यायकर्ता राजाके पास लाये और इसप्रकार निवेदन करने लगे—

देव! इसने पर स्त्रीके साथ व्यभिचार किया है इसलिये कृपाकर कहैं! इसे क्या दंड मिलना चाहिये? उत्तरमें मधुराजने कहा—परस्त्रीको ग्रहण करना महापाप है इसलिये इसके हाथ पैर काट कर शिर छेद डालना चाहिये। उसीसमय महाराणी चंद्राभाने कहा—

"प्रभो! इस दोषके भागी तो आप भी हैं। जो इसे दंड हो उससे पहिले आपको होना चाहिये।" रानी चंद्राभाके ऐसे वचन सुन राजा मधु हिमसे दग्ध कमल सरीखा मुरझा गया और मनमें इसप्रकार विचारने लगा—

"यह चंद्राभा मेरी बडी हितकारिणी है। मेरे हितकी अभिलाषासे इससमय इसने सर्वथा ठीक कहा है। अहा! यह परस्त्रीहरण नियमसे दुर्गतिका कारण और महा दुःखदायी है।" जब इसतरह राजा मधुको विरक्त देखा तो रानी चंद्राभा भी विरक्त हो इसप्रकार कहने लगी—

"प्रभो! ये परस्त्रीसंबंधी भोग किंपाकफलके समान आदिमें मीठे और अंतमें महादुःख देनेवाले हैं इसलिये ये सर्वथा निस्सार हैं। सज्जन विद्वान् साधुओंने भोग उन्हींको कहा है जो स्व और परको किसीप्रकारका संताप प्रदान करनेवाले न हों। विषय स्वरूप भोगोंको भोग नहिं कहा है क्योंकि ये स्व और पर दोनोंको महासंतापके देनेवाले हैं" ॥ १७८–१८६ ॥ जब रानी चंद्राभाने मधुराजको इसप्रकार प्रियवचनोंसे प्रबोधा तो उसने महादृढ़ भी मोहरूपी मदिराके मदको शीघ्र ही छोड़ दिया और मनमें अतिशय प्रसन्न होकर बड़े सन्मानके साथ चंद्राभासे कहने लगा—

"अयि साध्वि! इससमय जो तूने कहा है वह सर्वथा उत्तम और हितकारी है। जो पुरुष बड़े हैं, सज्जन हैं, उन्हैं कदापि ऐसा निंद्य काम न करना चाहिये क्योंकि यह विषयभोग महादुःखदायी है, इस जन्म और परजन्ममें भी पापोंका संचय करानेवाला है॥ १८७–१८९॥ जब कि मेरे समान अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता, सबोंके अग्रणी मनुष्य भी ऐसे निंदित कामको कर बैठते हैं तब जो मनुष्य साधारण और मूढ़ हैं उनका तो फिर कहना ही क्या है—वे तो अवश्य इस दुष्कर्ममें प्रवृत्त होहींगें॥१९०॥

अरे! जब अपनी स्त्रीमें किया हुआ भी तीव्र राग बलवान कर्मबंधका कारण होता है तब परस्त्रीका राग तो और भी कर्म बंधका कारण होगा ॥ १९१ ॥ विचारे विद्वान भी इसमें क्या करें—मनरूपी मत्त हाथीको ज्ञानरूपी अंकुशसे वे तो बहुत कुछ रोकना चाहते हैं—उत्तम मार्गपर लाना चाहते हैं। परंतु वह इतना प्रबल है कि जबरन कुमार्गकी ओर चला जाता है। संसारमें वे शूर वीर विरले ही हैं जो कि इस निरंकुश मनरूपी मत्त हाथीको तीक्ष्ण दंडों (व्रतों) से वशकर उत्तम मार्गपर चलाते हैं ॥ १९२–१९४ ॥ कामकी तीव्र वासनासे वासित यह मनरूपी मत्त हाथी जब तक मारे दंडोंके पूर्णतया वश नहीं किया जाता तबतक इसका मद कदापि नष्ट नही होता ॥ १९५ ॥ उलटा यह अपने ऊपर चढनेवाले (स्वामी) को महाभयावह और अशांति उत्पन्न करनेवाला हो जाता है ॥ १९६ ॥ और जब उत्तम मुनिरूपी पीलवानके द्वारा यह निर्मद हो जाता है तब तपरूपी संग्रामभूमिमें आ पापरूपी सेनाको देखते देखते विध्वंस कर डालता है ॥ १९७ ॥ ये मेरे इद्रियरूपी मृग मनरूपी पवनसे प्रेरित हो शब्द रूप रस गंध स्पर्शरूपी धान्योंका मनमना स्वाद ले रहे हैं। अब मैं इन्हें दृढ धैर्यरूपी पाशमें बाधूंगा और तपका आचरण कर चिर संचित पापोंका क्षय करूंगा" ॥ १९८–१९९ ॥

उससमय हजार मुनियोंके मंडलसे मंडित एक विमलवाहन नामके मुनिराज अयोध्यामें विहार करते २ आये और सहस्राम्र वनमें विराजमान होगये ॥ २०० ॥ मुनिराजके आगमनका समाचार राजा मधुने भी सुना। वह शीघ्र ही अपने भाई और रानियोंके साथ उनकी वंदनाकेलिये चलदिया। समीप जाकर उसने विधिपूर्वक पूजन की और धर्मका श्रवण किया जिससे कि उसे भोग, संसार, शरीर एवं नगरसे शीघ्र ही वैराग्य होगया और अपने भाई तथा अनेक क्षत्रिय राजाओंके साथ शीघ्रही दिगंबर दीक्षासे दीक्षित हो मुनि होगया ॥ २०१–२०२ ॥ उसीसमय उत्तमोत्तम कुलोंसे उत्पन्न व्रत और शीलकी भंडारस्वरूप चंद्राभा आदि सैकड़ों हजारों रानियां भी आर्यिका होगई ॥ २०३ ॥ राजा मधुके मुनिव्रत धारण करनेपर उसके पुत्रने राज्यभार संभाला जिससे कि वह अपने वंशकी वृद्धिके साथ २ उचितरीतिसे राज्यकी रक्षा करने लगा और अपने शरीर पराक्रम और विजयको दिनोंदिन बढ़ानेलगा ॥२०४॥ राजा मधु और कैटभने घोर तप तपा। व्रत समिति गुप्तियोंका भलेप्रकार पालन किया। उससमय उनके पास अंग उपांगके परिग्रह (स्वीकारता) के सिवाय कोई दूसरा परिग्रह न था अर्थात् वास्तवमें उनके अंगोपांग परिग्रह भी न था क्योंकि वाह्य अभ्यंतर किसी रूपसे उनकी उनमें आसक्ति न थी ॥२०५॥ वे दोनों मुनि कभी छै दिन, कभी आठ दिन, कभी पंद्रह दिन और कभी एकमास कभी दोमास आदि छै मास पर्यंतके उपवास करते

थे जिससेकि बराबर उनके कर्मोंकी निर्जरा होती जाती थी ॥२०६॥ ग्रीष्मसमयमें ये दोनों मुनिराज विशाल पर्वतकी शिखरपर आतापन योगसे विराजमान होते और उससमय जो इनके शरीरसे टपकती हुई स्वेदकी विंदु नीचे गिरतीं उनसे ऐसा जान पड़ता मानो पिघलकर कर्मही नष्ट हो २ गिर रहे हैं ॥ २०७ ॥ जिसप्रकार संग्राममें कवचसे मंडित शरीरको तीक्ष्ण भी वाणोंके आघात घायल नहिं बना सकते उसीप्रकार जब ये दोनों मुनिराज वर्षाकालमें जीवोंकी रक्षाकेलिये वृक्षोंके नीचे योग धारण करते थे उससमय तीक्ष्ण भी मेघधारा इनके शरीरको तनिक भी चल विचल नहिं करसकती थी। ॥ २०८ ॥ शीतकालकी रात्रियोंमें जब कि शरीररूपी कमलिनीको मुरझा देनेवाली अतिशीतल पवन वहती थी उससमय ये दोनों विद्वान मुनिराज प्रतिमायोगसे स्थित हो उसे सानंद सहते थे ॥ २०९ ॥ ये दोनों वीर बारह भावना दश धर्म तेरह प्रकारके चरित्रके पालनेसे और परिषहोंके विजयसे बराबर कर्मोंका निरोध करते रहते थे॥२१०॥ ये महास्वाध्यायी और ध्यानी थे, सदा वैयावृत्य करनेमें उद्यत रहते थे और रत्नत्रयसे पवित्र अंतरंगोंके धारक थे इसलिये सब मुनियोंमें उससमय ये दृष्टांत स्वरूप गिने जाते थे अर्थात् जब २ स्वाध्याय और ध्यान आदिको करनेवाले महानुभावोंका उल्लेख किया जाता था उससमय सबलोग इन दोनों मुनिराजोंका ही दृष्टांत देते थे ॥ २११ ॥ इसप्रकार मुनिराज मधु और कैटभने शल्यरहित हो हजारों वर्षतक तप किया ॥ २१२ ॥ और अंतसमयमें सम्मेदशिखर पर्वतपर जा एक मासपर्यंत प्रायोपगमन संन्यास धारणकर आराधनाओंके साथ शरीर छोड़ा । मधु तो आरण नामके स्वर्गमें इंद्र और कैटभ अच्युत नामके सोलहवें स्वर्गमें सामानिक जातिका देव हुआ, एवं इन दोनों देवोंने बावीस सागर प्रमाण स्वर्गकी आयुका सुखपूर्वक भोग किया। आयुके अंतमें मधुका जीव वहांसे चया और भरतक्षेत्रके नववें नारायण श्रीकृष्णके रानी रुक्मिणीकी कुक्षिरूपी रत्नोंकी खानिसे पुत्ररत्न हुआ और उसका नाम प्रद्युम्न रक्खा गया है ॥ २१३–२१७ ॥ कैटभका जीव भी राजा श्रीकृष्णके रानी जांबवतीसे उत्पन्न शंब नामका पुत्र–प्रद्युम्नका छोटा भाई होगा और वह अपनी कांतिसे कृष्णकी तुलना करैगा ॥ २१८ ॥ प्रद्युम्न और शंब दोनों कुमार जन्मांतरकी प्रीतिसे आपसमें परम स्नेही होंगे, महामनोहर और धीर वीर होंगे एवं इसी शरीरसे मोक्ष चले जायगें॥२१९॥

वटपुरके स्वामी राजा वीरसेनको जब चंद्राभाकी प्राप्ति न हुई तो उसके विरहसे उसे बड़ा आर्त ध्यान रहा और आर्तध्यानके प्रभावसे वह चिरकालतक संसाररूपी भयंकर वनमें घूमता रहा। कदाचित् उसे पुनः मनुष्य जन्म मिला और मिथ्यादृष्टि तपस्वी होकर अज्ञान तप करने लगा एवं मिथ्यातपके प्रभावसे अग्निके समान भयंकर धूमकेतु नामका असुर होगया॥ २२०–२२१ ॥ एक दिन धूमकेतु असुर रानी रुक्मिणी

के महलके ऊपरसे जा रहा था कि प्रद्युम्नके प्रभावसे उसका विमान रुक गया। विभंग अवधिज्ञानके बलसे उसने प्रद्युम्नको स्त्रीका चुरानेवाला पूर्वभवका वैरी जान लिया और उस दीन बालकको उसकी मातासे तत्काल जुदा कर दिया, इसलिये पापोंके संचय करानेवाले इस वैरके लिये धिक्कार है ॥ २२२॥ यद्यपि असुरने प्रद्युम्नके मारनेका पूरा पूरा विचार कर लिया था प्रयत्न भी मारनेके पूरे पूरे कर चुका था परंतु वह प्रद्युम्न अपने पूर्वोपार्जित पुण्योंके प्रसादसे बच गया सो यह पुण्योंकी ही सामर्थ्य है कि भयंकर नाशसे भी रक्षा हो जाती है ॥ २२३ ॥ इसप्रकार भगवान सीमंधरसे प्रद्युम्नके पूर्वभवका वृत्तांत सुन चक्रवर्ती पद्मरथको बड़ा आनंद हुआ और उसने उन्हें शीघ्र ही प्रणाम किया ॥ २२४ ॥ नारदने भी विनयपूर्वक भगवान सीमंधरको नमस्कार किया एवं आनंदसे गद्गद हो आकाश मार्गसे शीघ्र ही मेघकूटपुरकी ओर प्रस्थान किया। ॥ २२५ ॥ वहां पहुंच कर मुनि नारदने पुत्रप्राप्तिके उत्सवसे राजा कालसंवरको अतिशय आनंदित किया और पुत्रवती रानी कनकमालाकी भी बहुत कुछ प्रशंसा की ॥२२६॥ रानी रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नको सैकडों विद्याधर कुमारोंके साथ खेलता हुआ देख उन्हें अंतरंगमें बड़ा आनंद हुआ और उनका शरीर पुलकित हो गया॥ २२७ ॥ कुछ देर ठहरकर वहांसे नारद राजा कालसंवर आदिके प्रणाम करनेपर उन्हें आशिर्वाद दे आकाश मार्गसे चल कर शीघ्र ही द्वारिकापुरी आये ॥ २२८ ॥ वहां नारदने जो कुछ प्रद्युम्नके बारेमें जाना देखा सुना था सारा समाचार यादवोंसे कह सुनाया जिससे कि यादवोंको बड़ा हर्ष हुआ ॥ २२९ ॥ इसके बाद अतिशय आनंदित हो नारद रुक्मिणीके मंदिरमें भी गये और भगवान सीमंधरने जो बात कही थी सारी उसे सुनाकर इसप्रकार कहने लगे—

"पुत्री रुक्मिणी! विद्याधर कालसंवरके यहां मैं तेरे पुत्रको—जो कि देवकुमारोंके समान रूपवान है खेलता हुआ देख आया हूं ॥ २३०–२३१ ॥ वह वहांपर सोलह प्रकारकी विद्याओंका लाभ करेगा। रोहिणी प्रज्ञप्ति आदि विद्यायें भी उसे प्राप्त होंगी और सोलहवीं वर्षमें निर्विघ्नतासे वह तुझे मिलेगा। प्रिय पुत्री! जिससमय वह पुत्र यहां आवेगा उससमय तेरे महलके बागमें असमयमें भी इष्टकी सूंचना देनेवाला मोर शब्द करेगा ॥ २३२–२३३ ॥ उसमें जो मणिवापिका जलरहित—सूखी है वह निर्मल जलसे लपालप भर जायगी और उसमें कमल खिल जांयगे ॥ २३४ ॥ तेरे पुत्रके आगमन कालमें तेरे शोकके दूर करनेकेलिये अशोक वृक्ष अंकूर और पत्तोंसे व्याप्त हो जायगा और तुझे इस बातकी सूचना देगा कि अब तेरा शोक नष्ट हो चुका ॥२३५॥ जो लोग मूक हैं, बोलना चालना नहिं जानते, वे तभीतक मूक रहेंगे जबतक प्रद्युम्न यहां न आयगा। उसके यहां आते ही गूंगापन छोड़ देंगे—स्पष्टरीतिसे मधुर मधुर बोलने

लग जायंगे ॥ २३६ ॥ जब ये लक्षण तेरे महलमें हो निकलें तब तू निश्चय समझना कि तेरा पुत्र आगया। भगवान सीमंधरके वचन तुझे असत्य नहिं समझना चाहिये" ॥ २३७ ॥ नारदके ऐसे हितकारी वचन सुन रानी रुक्मिणीके स्तनोंसे दूध झरने लगा और उनके वचनोंपर पूरा २ श्रद्धान कर वह इसप्रकार कहने लगी—

"भगवन्! आपका चित्त उत्तम वात्सल्यसे भींगा हुआ है। आप मेरे अकारण बंधु हैं। दूसरोंकेलिये सर्वथा असाध्य आज यह बड़ा भारी कार्य मेरा आपने किया है। कृपानाथ! पुत्रकी शोकरूपी अग्निसे मैं दग्ध हो चुकी थी। मेरा इससमय कोई अवलंबन न था। आपने अपने हस्तका अवलंबन दे मुझे बचालिया। सर्वज्ञ सीमंधरने जो कहा है वह वैसाही है—उसमें सरसों भरभी हेर फेर नहिं हो सकता। पुत्रकी प्राप्तिके सहारेसे मै जीती रहूंगी और विश्वास है मुझे पुत्रका दर्शन अवश्य होगा। अब जहां आपकी इच्छा हो चले जाइये परंतु दर्शन फिर अवश्य दीजिये" ॥ २३८—२४२ ॥ नारदसे इसप्रकार निवेदनकर रुक्मिणीने उन्हैं प्रणाम किया। और नारद भी आशीर्वाद देकर चले गये। इसतरह रुक्मिणीका सारा शोक दूर होगया और कृष्णकी अभिलाषाओंको पूर्ण करती हुई वह सानंद रहने लगी ॥ २४३ ॥

इस सर्गमें कुमार प्रद्युम्न और शंबका मनुष्यसे देव देवसे मनुष्य, मनुष्यसे देव, देवसे मनुष्य, पुनः मनुष्यसे देव और देवसे मनुष्य तकका पूर्वभवके चरित्रका वर्णन किया गया है तथा यह भी बात बतलाई गई है कि ये दोनों महानुभाव प्रद्युम्न और शंबकुमार पर्यायसे निर्वाण पधारेंगे इसलिये जिनशासनपर भक्ति रखनेवाले भव्योंको चाहिये कि वे इस चरित्रको ध्यानपूर्वक पढ़ें सुनें ॥ २४४ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें शंब और प्रद्युम्नके पूर्वभवका वर्णन करनेवाला तेतालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४३ ॥

चवालीसवां सर्ग।

रानी सत्यभामाके जो पुत्र हुआ था वह महारूपवान् और सूर्यके समान देदीप्यमान था इसलिये उसका नाम भानु रक्खा गया। कुमार भानु ज्यों ज्यों प्रातः कालके सूर्यकी किरणोंके समान बढता गया त्यों त्यों रानी सत्यभामाका अहंकार रूपी पर्वत भी दिनोंदिन वृद्धिंगत होता गया ॥ १—२ ॥

एकदिन मुनि नारद फिर राजा श्रीकृष्णकी सभामें आये और यथायोग्य आदर सत्कार करनेके बाद कृष्ण उनसे इसप्रकार पूछने लगे—

भगवन्! कहांसे आना हो रहा है? आपके मुखकी चेष्टासे तो इससमय ऐसा मालूम होता है कि कोई बडी ही खुशीकी बात लाये हैं। उत्तरमें नारदने कहा—

विजयार्धकी दक्षिणश्रेणीमें एक जंबूपुर नामका नगर है। इससमय उसका स्वामी राजा जांबव है और उसकी पटरानीका नाम शिवचंद्रा है। उन दोनोंके परम यशस्वी एक विश्वक्सेन नामका पुत्र है और जांववती नामकी कन्या है जो कि ऐसी जान पड़ती है मानो साक्षात् लक्ष्मी ही आकर उत्पन्न हुई है ॥३–५॥ उत्तमोत्तम ताराओंसे मंडित चंद्रमाकी चांदनीके समान सखियोंसे मंडित हो वह कन्या स्नान करनेके लिये प्रतिदिन गंगामें जाया करती है और जिससमय उन्नत गोल स्तनोंसे शोभित वह उसके द्वारमें खड़ी होती है उससमय ऐसी जान पड़ती है मानों जांववरूपी हिमालयसे निकली हुई उत्तम जलसे परिपूर्ण दूसरी गंगा नदी ही है। प्रिय कृष्ण! उस कन्याको सिवाय तुम्हारे दूसरा ग्रहण नहिं कर सकता इसलिये इससमय तुम जाकर उसे हरण कर लाओ" ॥६–७॥ ज्योंही राजा कृष्णने इसप्रकार मुनि नारदकी स्नेहमयी वाणी सुनी, शीघ्र ही घीकी आहुतिसे अग्निकी ज्वालाके समान उनकी कामाग्नि प्रज्वलित हो उठी ॥८॥ वे एक दम उठे और अपने बड़े भाई अनावृष्णिको सेनासहित लेकर जंबूपुरकी तरफ रवाना होगये और वहां पहुंचकर उन्होंने गंगामें स्नान करती हुई कन्या जांबवतीको देखा। कन्या जांववतीकी भी दृष्टि अचानक नील कमलके समान कांतिके धारक राजा श्रीकृष्णके ऊपर पड़ी और ज्योंही इन दोनोंकी चार आंखें हुई कामदेवके पांचों वाण इन्हैं बुरी रीतिसे वेधने लगे ॥ ९–१० ॥ कृष्ण शीघ्र ही लज्जासे नम्रीभूत हुई कन्या जांववती-के पास पहुंचे और सुखानुभवसे नेत्रोंको कुछ २ बंद करते हुये गाढ़रीतिसे अपनी भुजाओं द्वारा उसे पकड़ उठा लाये ॥ ११ ॥ ज्यों ही कृष्णने जांववतीको उठाया उसके साथकी सखियां बड़े जोरसे चिल्ला उठीं। जांबवतीका हरण समाचार सुन राजा जांबवको बड़ा क्रोध आया और वह शीघ्र ही हाथमें ढाल तलवार ले आकाशमार्गसे आ उनके सामने अड़गया ॥ १२–१३ ॥ कुमार अनावृष्णि भी तयार बैठा था। ज्यों ही विद्याधर जांववको सामने देखा उसने युद्ध ठान दिया। कुछ समय तक दोनोंका आका-शमें युद्ध होता रहा पश्चात् अनावृष्णिने जांववको बांधलिया और कृष्णके पास लाकर पटक दिया। इस अपमानसे जांबवको वैराग्य होगया जिससेकि वह अपने पुत्र विश्वक्सेन-को राजा कृष्णके सुपुर्द कर आप तपोवन चला गया ॥१४–१५॥ जांबवतीके साथ विवाह होनेसे कृष्णको परम आनंद मिला। वे विश्वक्सेनको साथले शीघ्र ही द्वारिका लोट आये ॥१६॥ कृष्णने बड़ी प्रसन्नतासे रानी रुक्मिणीके महलके पास रमणी जांबवतीको भी दिव्य महल दिया। उसके भाई विश्वक्सेनका पूर्ण आदर सत्कार कर उसे अपनी राजधानीको विदा करादिया और रमणी जांववतीके साथ अन्य मनुष्योंको सर्वथा दुर्लभ भोग भोगने लगे ॥१७–१८॥ रानी रुक्मिणी और जांबवतीका महल पास पास होनेसे उनकी आपसमें एक दूसरीके घर आवाजाई वनी रहती थी इसलिये उन दोनोंमें अखंड प्रेम था ॥१९॥

उससमय सिंहलद्वीपमें परमबुद्धिमान एक श्लक्ष्णरोम नामका राजा राज्य करता था। एकदिन कृष्णने उसके वश करनेकेलिये दूत भेजा। दूतने वापिस आकर श्लक्ष्णरोमकी प्रतिकूलताके समाचार श्रीकृष्णसे कहे और यह भी निवेदन किया कि महाराज! उसके उत्तमलक्षणोंसे मंडित एक लक्ष्मणा नामकी कन्या भी है। जिससे कि कृष्ण शीघ्र ही अपने भाई बलभद्रको साथ ले सिंहल द्वीपकी ओर चलदिये। कन्या लक्ष्मणा उससमय समुद्र स्नानके लिये आई थी, कृष्णने उसे वहां देखा तो वे उसपर मोहित हो गये। राजा श्लक्ष्णरोमका द्रुमसेन नामका महापराक्रमी एक प्रसिद्ध सेनापति था। कृष्ण, संग्राममें उसे प्राणरहित कर रूपवती लक्ष्मणाको हर ले आये। द्वारिकामें आकर विधिपूर्वक उसके साथ विवाह किया और रानी जांबवतीके पास एक उत्तम महल दे सानंद क्रीड़ा करने लगे॥ २०-२४॥ पश्चात् उसका भाई महासेन नम्रीभूत हो कृष्णके पास आया। कृष्णने उसका बड़ा सन्मान किया एवं कृष्णसे स्नेहपूर्वक विदा होकर वह सिंहल द्वीप चला गया॥ २५॥

राष्ट्रवर्धनदेशमें एक अजाखुरी नामकी नगरी है उससमय उसका स्वामी राजा सुराष्ट्र और उसकी पटरानी विनया थी जोकि समस्तस्त्रियोंमें उत्तम थी॥ २६॥ इन दोनोंके नीति और पराक्रमका भंडार एक नमुचि नामका पुत्र था और पुत्री सुसीमा थी जो संसारमें परमसुंदरी थी। युवराज नमुचि महा अभिमानी था। बड़े २ प्रतापी राजाओंके घमंडको देखते देखते चकना चूरकर देता था जिससे कि उसका पराक्रम समस्त संसारमें प्रसिद्ध हो चुका था॥ २७॥ एकदिन कुमार नमुचि और कन्या सुसीमा समुद्र स्नानकेलिये आये, नारदने उन्हें देखा और कृष्णसे जाकर सारा समाचार कह सुनाया॥ २८॥ कृष्ण, शीघ्र ही अपनी सेनाको तयारकर अजाखुरीकी ओर चलदिये। उन्होंने प्रभास तीर्थके पास जाकर अपनी सेना ठहराई और नमुचिको संग्राममें परास्त कर सुसीमाको हरकर द्वारिका ले आये॥ २९॥ रानी लक्ष्मणाके महलके पास उसे महल प्रदान किया और उसके साथ मनमानी रमण क्रीड़ा करनेलगे॥ ३०-३१॥ पश्चात् राष्ट्रवर्धनने अपनी पुत्रीकेलिये बहुतसे भूषण वसन और कृष्णकेलिये रथ हाथी घोड़ा आदि बहुतसे पदार्थ भेंटमें भेजे॥ ३२॥

उसीसमय सिंधदेशके वीतभयपुरमें इक्ष्वाकुवंशसे उत्पन्न एक मेरु नामका राजा राज्य करता था। उसकी स्त्रीका नाम चद्रवती था और उससे एक गौरी नामकी कन्या उत्पन्न थी जोकि गौर वर्णकी थी। रूपमें महादेवकी स्त्री गौरी (पार्वती) की तुलना करती थी एवं ईति भीति आदि दोषोंसे रहित पृथ्वी सरीखी जान पड़ती थी॥ ३३-३४॥ राजा मेरुको ज्योतिषीके वचनसे यह बात मालूम होगई थी कि इसके पति नववें नारायण कृष्ण होंगे इसलिये कृष्णके दूत पहुंचनेके पहिलेही उसने अपनी कन्याको

कृष्णकी सेवामें भेजदिया। कृष्णने भी मनको चुरानेवाली रमणी गौरीके साथ सानंद विवाह किया और रानी सुसीमाके महलके पास महल देकर उसके साथ मनमाने भोग भोगनेलगे ॥ ३५-३६ ॥

कुमार बलभद्रका मामा अरिष्टपुरका स्वामी राजा हिरण्यनाभ था। उसकी स्त्रीका नाम श्रीकांता और उससे उत्पन्न कन्याका नाम पद्मावती था। जब कन्या विवाहके योग्य हुई तो उसका स्वयंवर किया गया और उसमें अनावृष्टि आदिके साथ कृष्ण और बलभद्र दोनों भाई भी गये ॥ ३७-३८ ॥ ज्योंही राजा हिरण्यनाभने इन्हें देखा प्रीतिपूर्वक इनका सन्मान किया और उससे अपना गौरव समझा ॥ ३९ ॥ जिससमय हिरण्यनाभके पिताने मुनिव्रत धारण किया था उससमय युवा रहनेपर भी हिरण्यनाभका वड़ा भाई रेवत मुनि होगया था। उसके रेवती, बंधुमती, सीता और राजीवनेत्रा ये चार कन्यायें थी और वे कुमार बलभद्रकेलिये पहिलेहीसे प्रदान की जा चुकी थीं। कृष्ण रणकलामें पूर्ण पंडित थे इसलिये उन्होंने बड़े २ पराक्रमी भी राजाओंको स्वयंवरमें तहस नहस करडाला और बलसे पद्ममावतीको हरण कर विधिपूर्वक उसके साथ विवाह करलिया। इसतरह दोनों भाई अपनी २ स्त्रियोंको लेकर अपने भाईयोंके साथ द्वारिका आये और देवोंके समान रमणक्रीड़ा करने लगे। कृष्णने रमणी पद्मावती को रानी गौरीके पास एक उत्तम महल प्रदान किया जिससे कि उसै परम आनंद हुआ॥ ४०-४४ ॥

गांधार देशमें एक पुष्कलावती नामकी नगरी है। उससमय उसका स्वामी राजा इंद्रगिरि था और रानी मेरुसती थी। इन दोनोंके हिमगिरिके समान अचल एक हिमगिरि नामका पुत्र था और गांधारी नामकी कन्या थी जोकि अतिशय मनोहर और गंधर्व आदि कलाओंमें पूर्ण पंडिता थी। कन्या गांधारीका वाग्दान कुमार हिमगिरिने हयपुरीके स्वामी राजा सुमुखके साथ करदिया था। नारदको इसवातका पता लगा। वे शीघ्र ही श्रीकृष्णके पास आये और सारा समाचार सुना चले गये। नारदके वचनसे श्रीकृष्णने गांधारीके हरणका मनमें पूरा निश्चय करलिया, वे शीघ्रही पुष्कलावतीकी ओर चलदिये। कुमार हिमगिरि कन्या गांधारीका विवाह कृष्णके साथ नहिं करना चाहता था इसलिये कृष्णने उसै संग्राममें परास्त किया और कन्या गांधारीको हर कर उसके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। द्वारिकामें आकर रानी पद्मावतीके महलकेपास उसे भी महल दिया एवं नाना प्रकारके भोग विलासोंसे प्रसन्न होतेहुये रहनेलगे ॥ ४५-४९ ॥ इसप्रकार वशकी हुई आठ दिशाओंके समान अतिसुंदरी सत्यभामा आदि आठ पटरानियोंसे भलेप्रकार उपासित, परमपराक्रमी, पुण्यरूपी वृक्षसे उत्पन्न हुये भोगरूपी मधुर फलोंका इच्छानुसार आस्वादन करनेवाले राजा श्रीकृष्ण समस्त जनताको आनंद प्रदान करतेहुये दिनोंदिन उन्नत होते गये ॥ ५०-५१ ॥

ग्रंथकार कहते हैं कि—जो भव्यजीव जैनधर्मके आराधक हैं—धर्मात्मा हैं। वे सामने अड़े हुये प्रतापी भी शत्रुको तृणके समान वातकी वातमें विध्वस्त करदेते हैं और उत्तमोत्तम सुंदर स्त्रीरूपी रत्नोंको शीघ्रही प्राप्त करलेते हैं ॥ ५२ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें कृष्णको जांववती आदि पटरानियोंका लाभ वर्णन करनेवाला चवालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥४४॥

पैंतालीसवां सर्ग।

एकदिन समुद्रविजय आदि दशो भाइयोंके भानजे, महापराक्रमी, राजा पांडुके पुत्र, युधिष्ठिर अर्जुन भीम नकुल और सहदेव पांचो पांडव द्वारिका आये ॥ १–२ ॥ पांडु और पांडवोंका नाम सुनते ही राजा श्रेणिकको उनके वंश आदिके जाननेकी वड़ी अभिलाषा हुई। उन्होंने गणधर गौतमको नमस्कार कर पूछा—

भगवन्! राजा पांडु और पांडव किस वंशमें हुये थे? कृपाकर कहिये। उत्तरमें भगवान् गौतमने कहा—

राजा पांडु और पांडव कुरुवंशमें हुये थे। इसी वंशमें शांति कुंथु और अरनाथ ये तीन तीर्थंकर भी होगये हैं एवं धर्म अर्थ काम और मोक्ष चारो पुरुषार्थोंके सेवन करनेवाले अनेक राजा भी हो चुके हैं। राजन्! अब मैं कुरुवंशी कुछ राजाओंके नाम आदिका वर्णन करता हूं। तुम ध्यान पूर्वक सुनो—

शोभामें देवकुरुकी तुलना करनेवाले कुरुजांगल देशमें एक हस्तिनापुर नामका नगर है। भगवान ऋषभदेवके समयमें उसके स्वामी, सबसे प्रथम दान धर्मके कर्ता, पृथ्वीके भूपणस्वरूप, राजा श्रेयान् और सोमप्रभ थे। राजा सोमप्रभके पुत्रका नाम जयकुमार था जो कि भरत चक्रवर्तीके चौदह रत्नोंमें सेनापति रत्न था और जिसका कि दूसरा नाम उसके स्वामी चक्रवर्तीने मेघेश्वर भी रख रक्खा था। राजा जयकुमारके कुरुपुत्र हुआ। कुरुके कुरुचंद्र, कुरुचंद्रके शुभंकर और उसके धृतिकर पुत्र हुआ। ॥ ३–९ ॥ अनेक करोड़ सागरप्रमाण कालके वीत जानेपर उसी वंशमें करोड़ों राजाओंके वाद धृतिदेव, धृतिकर, गंगदेव, धृतिमित्र, धृतिक्षेम, सुव्रत, व्रातमंदिर श्रीचंद्र और सुप्रतिष्ठ आदि सैकड़ों राजा हुये। इनके वाद धृतिपद्म, धृतेंद्र, धृतिवीर्य, आदि राजा हुये और इनके अनंतर उसी कुरुवंशमें धृतिकर और प्रीतिकर आदि हुये। इनके वाद भ्रमरघोप, हरिघोप, हरिध्वज, सूर्यघोष, सुतेज, पृथु, इभवाहन, विजय, महाराज, जयराज आदि हुये इनके पश्चात् उसीवंशमें चतुर्थ चक्रवर्ती राजा सनत्कुमार हुआ यह राजा वड़ा रूपवान था। इसके रूपके देखनेके लिये देवतक आये थे और उनके ही संवोधनसे इसने मुनिव्रत धारण किया था। इसके वाद सुकुमार वरकुमार विश्व वैश्वानर

विश्वकेतु बृहद्ध्वज राजा हुये। इनके वाद उसीवंशमें राजा विश्वसेन हुआ इसकी रानी जो प्राणोंसे भी अधिक प्यारी थी एरा थी और उसके गर्भमें सोलहवें तीर्थंकर पांचवे चक्रवर्ती भगवान शांतिनाथने जन्म धारण किया था ॥ १०–१८ ॥ भगवान शांतिनाथके पश्चात् नारायण नरहरि प्रशांत शांतिवर्धन शांतिचंद्र शशांकांक और कुरु राजा हुये। बहुतकालके बाद उसीवंशमें राजा सूर्य हुये, उनकी स्त्रीका नाम श्रीमती था और उसके सत्रहवे तीर्थंकर और छठे चक्रवर्ती भगवान कुंथुनाथने जन्म लिया। भगवान् कुंथुनाथके पश्चात् वहुतसे राजाओंके वाद राजा सुदर्शन हुये। उनकी पटरानी मित्रा थीऔर उससे अठारहवे तीर्थंकर सातवें चक्रवर्ती भगवान अरनाथ हुये ॥ १९–२२॥ भगवान अरनाथके पश्चात् सुचारु चारु चारुरूप चारुपद्म पद्ममाल सुभौम पद्मरथ महापद्म चक्रवर्ती, इसके पुत्र विष्णु और पद्म सुपद्म पद्मदेव कुलकीर्ति कीर्ति सुकीर्ति वसुकीर्ति वासुकि वासव वसु सुवसु श्रीवसु वसुधर वसुरथ इंद्रवीर्य चित्र विचित्र वीर्य विचित्रवीर्य चित्ररथ महारथ वृतरथ वृषानंत वृषध्वज श्रीवृत व्रतधर्म वृत धारण महाशर प्रतिशर पराशर शरद्वीप द्वीप द्वीपायन सुशांति शांतिभद्र शांतिषेण 'राजपुत्री योजनगंधाके पति राजा' शंतनु शांतन धृत (व्यास) धृतधर्मा धृतोदय धृततेज धृतियश धृतिमान धृत और धृतिराज हुये। राजा धृतिराजके अंबिका अंबालिका और अंबा ये तीन पटरानियां थी एव अंबिकासे धृतराष्ट्र अंबालिकासे पांडु और अबासे विदुर ये तीन पुत्र उत्पन्न हुये॥ २३–३४॥ राजा धृतिराजके एक रुक्मण भाई थे उनकी स्त्रीका नाम गंगा था जो राजपुत्री और पवित्रबुद्धिकी धारक थी एवं उससे भीष्म नामका पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ ३५ ॥ राजा धृतराष्ट्रके रानी गांधारीसे दुर्योधन आदि सौ पुत्र हुये जो नीति और पौरुषके भंडार और एक दूसरेके हितमें सदा उद्यत थे। राजा पांडुकी स्त्रीका नाम कुंती था। जिससमय राजा पांडुने गंधर्व विवाहकर कन्या अवस्थामें कुंतीके साथ संभोग किया था उससमय उसके कर्ण नामका पुत्र हुआ और विवाह करनेके वाद युधिष्ठिर अर्जुन और भीम ये तीन पुत्र हुये तथा उन्हीं राजा पांडुके रानी मद्रीसे नकुल और सहदेव पुत्र हुये। ये पांचोंही कुमार पर्वतके समान निश्चल और पांडुके पुत्र होनेसे पांडव कहेजाते थे ॥ ३६–३८ ॥ जब राजा पांडु और रानी मद्रीका स्वर्गवास होगया तो युधिष्ठिर आदि पांडवोंमें और दुर्योधन आदि धार्तराष्ट्रों में राज्यके लिये टंटा उठ खड़ा हुआ ॥ ३९ ॥ भीष्म विदुर द्रोण मंत्री शकुनी एवं दुर्योधनके इष्ट शशरोम आदिने मध्यस्थ वनकर समभावसे राज्यके दोभाग कर दिये और एक भागके स्वामी युधिष्ठिर आदि पांच पांडव हुये और दूसरा भाग दुर्योधन आदि सौ पुत्रोंकी ओर आया ॥ ४०–४१ ॥ राजा दुर्योधनकी जरासंध और कर्णके साथ परम मित्रता होगई और एकदिन तीनोंने मिलकर एकांतमें कोई गुप्त विचार भी

किया ॥ ४२ ॥ धनुर्विद्याके आचार्य भार्गवके वंशमें धनुर्विद्याके भलेप्रकार जानकार द्रोणाचार्य थे और वे युधिष्ठिर आदि पांडवोंको एवं दुर्योधन आदि धृतराष्ट्रके पुत्रोंको समान रीतिसे धनुर्विद्या सिखाते थे ॥ ४३ ॥ राजा श्रेणिक ! द्रोणाचार्यकी शिष्य और आचार्य परंपरा तो प्रसिद्ध है । तुम भी जानते हो। किंतु भार्गवाचार्यका वंश एवं उनकी शिष्य और आचार्यपरंपरा मालूम न होगी इसलिये उसे भी मे यहां कहे देता हूं—

भार्गवका सबसे प्रथम शिष्य आत्रेय था। उसका पुत्र कौथुमि कौथुमिका अमरावर्त, उसका शित, शितका वामदेव वामदेवका कापिष्ठल, कापिष्ठलका जगत्स्थामा, जगत्स्थामाका सरवर, सरवरका शरासन उसका रावण, रावणका विद्रावण और विद्रावणका पुत्र द्रोणाचार्य था जिसका कि समस्त भार्गववशी अति आदर सत्कार करते थे । द्रोणकी स्त्रीका नाम अश्विनी था और उससे धनुर्विद्याका भलेप्रकार जानकार अश्वत्थामा उत्पन्न हुआ। यह अश्वत्थामा धनुर्विद्यामें इतना प्रवीण था कि सिवाय अर्जुनके उससमय उसका मान गलित करनेवाला दूसरा धनुर्धारी न था-धनुर्विद्यामें यह अर्जुन से ही झेंपता था ॥ ४४–४८ ॥ कौरव और पांडवोंमें सबसे बलिष्ठ और प्रतापी अर्जुन था। इसलिये दुर्योधन आदि इससे कट्टर द्वेष रखनेलगे एवं राज्यके विषयमें जो पहिले संधि हो चुकी थी उसमें वे इसप्रकार दूषण निकालने लगे—

"अहा ! यह बड़ा भारी अन्याय है कि आधे राज्यके स्वामी पांच पांडव रहैं और आधेमें हम सौ, हम कदापि इस संधिको स्वीकार नहिं कर सकते" ॥४९–५०॥ कौरवोंका यह विचार पांडवोंने भी सुना। उनमें धर्मराज युधिष्ठिर तो शांतिप्रिय थे-कौरवोंकी वात पर उन्होंने तनिक भी ध्यान न दिया। परंतु अर्जुन आदि चार पांडवोंको बड़ा बुरा लगा। जिसप्रकार गंभीर और शांत भी समुद्र प्रचंड पवनके वेगसे एक दम खलवला उठता है उसीप्रकार वे चारो भाई कौरवोंके कठोर वचनोंसे अपने क्रोध का वेग न रोक सके ॥ ५१ ॥ क्रोधसे आग वबूला हो अर्जुन सहसा बोल बैठा कि- यह कौरव शत्रुरूपी पर्वत दिनों दिन उन्नत होता चला जाता है मैं अभी तीक्ष्ण वाणोंकी धाराओंसे इसे आच्छन्न करता हूं। किंतु युधिष्ठिरने यह वात उचित न समझी इसलिये जिसप्रकार पवनका वेग मेघोंके समूहको शांत कर देता है उसीप्रकार उन (युधिष्ठिर) ने अर्जुनको शांत कर दिया ॥ ५२ ॥ भीम भी क्रोधके आवेशमें आकर इसप्रकार कहने लगा—

इन दुष्ट कौरवोंको मैं अभी अपनी नजरसे भस्म किये देता हूं, परंतु युधिष्ठिर इस वातमें भी आड़े पड़ गये एवं सपेडी जिसप्रकार मंत्रके वलसे भयंकर सर्पको भी देखते देखते वश कर लेता है उसीप्रकार युधिष्ठिरने अपने प्रिय वचनोंसे उसे भी शांत कर दिया ॥ नकुल (नौला) के समान कुमार नकुल भी कौरवरूपी सर्पोंके नाश

करनेके लिये उद्यत हो गया परंतु युधिष्ठिरने उसे जेटमें भर लिया और उसके क्रोध-के वेगको शांत कर दिया ॥ ५४ ॥ सबसे कनिष्ठ कुमार सहदेवको भी कौरवोंके अन्यायसे बडा क्रोध आया और वह भी–मैं अभी कौरव दलको विध्वस्त किये देता हूं ऐसा कहने लगा। परंतु मेघके समान राजा युधिष्ठिरने सहदेवरूपी वनाग्निको भी शांत कर दिया ॥ ५५ ॥ इसप्रकार पांडवोंने कौरवोंके अहितके लिये कुछ भी उद्योग न किया और कुछ दिनतक वे शांतिसे रहने लगे। दुष्ट कौरवोंको यह बात सह्य न हुई एक दिन रात्रिमें जब विचारे पांडव सो रहे थे तब वे दुष्ट इनके यहां आये और इनके महलमें आग लगा चलते बने। शुभ भाग्यके उदयसे उसीसमय पांडवोंकी आंख खुल गई और वे पांचों भाई मय अपनी माता कुंतीके सुरंगके मार्गसे कहींको चलदिये ॥५६–५७॥ पांडवोंके महलमें आग लगानेसे राजा दुर्योधनका अपयश समस्त संसारमें फैल गया और सब लोग पांडवोंके शांत स्वभावकी प्रशंसा करने लगे। सो ठीक ही है क्योंकि यदि दुर्जन यह चाहैं कि सज्जनोंकी किसीप्रकारसे निंदा हो सो नहिं हो सकती उल्टी दुर्जनोंकी ही लोग निंदा करते हैं॥ ५८ ॥ पांडवोंके कुटुंबियोंको सर्वथा यह विश्वास हो गया कि पांडव अग्निमें जलकर भस्म हो गये इसलिये उन्होंने उनकी अंत्यक्रिया की और पूर्ववत् रहने लगे ॥ ५९ ॥ ये पांचो भाई परमविद्वान थे, नगरसे वाहर निकलकर इन्होंने अपने वेष वदल लिये और गंगा नदीको पारकर दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये ॥ ६० ॥ यदि ये पांचो भाई चाहते तो वहुत जल्दी चल सकते थे परंतु साथमें इनके मा कुंती थी और वह जल्दी चल नहिं सकती थी इसलिये पांडव, मा कुंतीकी गतिके अनुसार धीरे धीरे गमन करते थे और इसीप्रकार गमन करते करते वे कुछ दिन वाद कौशिकापुरी जा पहुंचे—

कौशिकापुरीमें उससमय राजा क(व)र्ण राज्य करता था। उसकी स्त्रीका नाम प्रभावती था और उससे उत्पन्न एक कुसुमकोमला नामकी कन्या थी ॥ ६१–६२ ॥ पांडव बड़े न्यायी थे। प्रजा उनपर पूर्ण अनुरक्त थी इसलिये कन्या कुसुमकोमला इनकी भलेप्रकार प्रशंसा सुन चुकी थी इसलिये ज्योंही कन्याने कुमार युधिष्ठिरको देखा वह उनपर पूर्ण अनुरक्त होगई एवं चंद्रमाके उदयसे जिसप्रकार कुमुदिनी खिलजाती है कुमार युधि-ष्ठिरके देखनेसे उसका (कुसुमकोमलाका) रोम रोम खिलउठा ॥६३॥ वह कुमारके देखतेही ऐसा विचार करनेलगी–यदि इस जन्ममें मेरा पति हो तो यही हो। युधिष्ठिरको भी उसके मानसिकभावका पता लग गया वे भी उसपर मुग्ध हो गये एवं उसे यह वचन देकर कि हम अवश्य तेरे साथ विवाह करेंगे आगे चलदिये॥ ६४–६५॥ कुसुमकोम-लाको युधिष्ठिरके वचनोंपर पूरा विश्वास होगया और उनके साथ समागमकी प्रतीक्षा करती हुई अपनी हमजोली कन्याओंके साथ विनोदपूर्वक काल व्यतीत करने लगी।

॥ ६६ ॥ ये पांचों पांडव स्वभावसे ही परम सुंदर और मनुष्योंके मन हरण करनेवाले थे। कौशिकापुरीसे निकलते ही इन्होंने विप्रका वेष रक्खा और आगे चलने लगे ॥६७॥ ये महा पुण्याधिकारी थे इसलिये उत्तमोत्तम आसन शयन भोजन, विना चिंताके इन्हैं सुखपूर्वक मिलता चला जाता था—भोजन आदिके लिये इन्हैं किसीप्रकारकी चिंता और दुःख न उठाना पड़ता था ॥ ६८ ॥ कुछ दिनके बाद ये श्लेष्मांतकवनमें आये। वहांपर एक तपस्वियोंका आश्रम था। ये भी तपस्वियोंका वेष धारणकर उसमें विश्राम करनेके लिये ठहर गये और अन्य तपस्वी इनकी भलेप्रकार सेवा शुश्रूषा करने लगे ॥ ६९ ॥

उससमय वसुंधरपुरमें एक विंध्यसेन नामका राजा राज्य करता था। उसकी स्त्रीका नाम नर्मदा और कन्याका नाम वसंतसुंदरी था ॥७०॥ उसका वाग्दान प्रथमसे ही उसके माता पिता आदिने कुमार युधिष्ठिरके साथ कर रक्खा था। किंतु ज्योंही कन्याने पांडवोंके अग्निमें जलजानेका समाचार सुना वह अपने पूर्वोपार्जित कर्मकी वड़ी निंदा करनेलगी। वह एकदम संसारसे विरक्त होगई एवं मनमें यह निंदित निदान बांध कि यदि परभवमें मेरे पति हों तो राजा युधिष्ठिरही हों, उसी आश्रममें आकर तप तपने लगी ॥ ७१–७२ ॥ वह कन्या रूप और लावण्यकी खानि थी, उत्तम वस्त्रकी साडी पहिने थी, शिरपर जटापुंज ललर रहा था, मनोहर कांतिसे अलंकृत थी इसलिये वट वृक्षकी शाखाके समान सुंदर जान पड़ती थी ॥ ७३ ॥ उसके नेत्र कानोंतक विशाल थे, अधर भाग परम सुंदर था, मुख चंद्रमाके समान कमनीय था, जघन और स्तन पीन एवं मनोहर थे इसलिये वह तापसी स्वभावसे ही मनुष्योंके चित्त हरती थी। ॥ ७४ ॥ समस्त तपस्वी लोग उसै पूज्य मानते थे और वह संदरी निर्मल चंद्रमाकी किरणके समान तपोवनको पवित्र करती थी ॥ ७५ ॥ आश्र में पहुंचते ही तपस्वियोंके उचित वर्तावसे तपस्विनी वसंतसुंदरीने पांडवोंका आदर सत्कार किया। इनके साथ मधुर २ भाषण किया और उचित सामग्री प्रदान कर इनकी भूख प्यास और मार्गकी थकावटको दूर किया ॥ ७६ ॥ कमलके समान कोमल तपस्विनी वसंतसुंदरीका यह वेष देख माता कुंतीको उसके वास्तविक हाल जाननेकी वड़ी इच्छा हुई और वह इसप्रकार पूछनेलगी—

"बाले! तेरी अवस्था इससमय विलकुल नवी है। ऐसा क्या कारण हुआ? जो तुझे इस नवीन उम्रमें वैराग्य लेना पड़ा!" कुंतीके ऐसे वचन सुन अपनी मधुरवाणीसे उसका मन हरण करती हुई तपस्विनी वसंतसुंदरी बोली—

पूज्ये! आपने ठीक पूछा—सुनिये! मैं अपने वैराग्यका कारण बतलाती हूं। मुझे विश्वास है कि—आप सरीखे सज्जनोंसे दुःख निवेदनकर अवश्यही उससे मेरा निवटेरा होगा। मेरी मंगनी स्वभावसे ही उदार चेष्टाके धारक, महारानी कुंतीके ज्येष्ठ पुत्र, कुरुराज

युधिष्ठिरके साथ हो चुकी थी किंतु अपने पापके प्रबल उदयसे भाई और माताके साथ उनकी ऐसी मैंने निकृष्ट बात सुनी है कि कहना तो दूर रहो उसका स्मरण भी महासंताप देनेवाला है ॥ ७७–८१ ॥ उचित तो यह था कि जिससमय अपने प्राणपतिको मैंने अग्निमें जलकर मरा सुना था उसीसमय मैं भी उनके पीछे मरजाती परंतु शक्तिके अभावसे मैं वैसा न कर सकी इसलिये इस आश्रममें आकर तापसी होगई हूं" ॥ ८२ ॥ वसंतसुदरीके ऐसे वचन सुन और उसे आगे होनेवाली पुत्रवधू जान कुंतीने कहा—

"भद्रे! तुमने बहुत अच्छा किया जो तुम जीती रहीं। संसारमें यह बात बहुतायतसे देखनेमें आती है कि–मनुष्य अपने इष्टकेलिये विचार तो कुछ और करता है और हो कुछ और ही जाती है इसलिये दीर्घदर्शीपना–सोच विचारकर काम करना अतिउत्तम है ॥ ८३–८४ ॥ प्रियकल्याणि! तापसी वेषमें भी तुझे अपने प्राण अवश्य रक्षित रखना चाहिये। तू निश्चय समझ! तेरे ये रक्षितप्राण अवश्य तेरा कल्याण करेंगे और इसी जन्ममें तेरे अभीष्टकी सिद्धि होगी" ॥ ८५ ॥ राजा युधिष्ठिर सबमें बड़े थे। वे हरएकसे बात चीत करते थे। तपस्विनी और माताकी ऐसी बात चीत सुन वे दोनोंके पास आगये एवं पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रत इसप्रकार श्रावकके धर्मका उपदेश देने लगे। ज्यों ही तपस्विनी और युधिष्ठिरका आपसमें वार्तालाप हुआ। अचानक ही तपस्विनीके मनमें इसप्रकारकी उमंग उठबैठी—

"यह सुंदराकार पुरुष समस्त राजलक्षणोंसे मंडित है। क्या यही युधिष्ठिर है? दयासे आर्द्र हो यह महापुरुष बराबर अपनी माके साथ मुझे उपदेश दे रहा है। बस! मेरी यही प्रार्थना है कि मेरे साथ मधुर मधुर बात चीत करनेवाला सत्यवक्ता, पराक्रमी यह मेरा प्यारा मेरे पुण्य और इस उत्तम तपके प्रसादसे सदा इसलोकमें जयवंत रहो।" ॥ ८६–८९ ॥ युधिष्ठिर आदि उससमय आगे जानेकेलिये उत्सुक थे इसलिये कन्याको मधुर वचनोंके साथ यह कहकर कि 'तुम्हारा दर्शन फिर हो' आगे चलदिये जिससे कि वह कन्या भी युधिष्ठिरके लाभकी आशासे उसी आश्रममें पूर्ववत् रहने लगी ॥ ९० ॥

राजा समुद्रविजयको जब यह पता लगा–कि मेरी बहिन कुंती और युधिष्ठिर आदि भानजे दुर्योधन आदिने जलाकर मारदिये हैं तो वे एक दम क्रुद्ध होगये और कौरवोंके मारनेकेलिये चलदिये। राजराजेश्वर जरासंधने भी यह बात सुनी। वह भी शीघ्र ही आया और यादव एवं कौरवोंकी आपसमें संधि कराकर अपने स्थान लोट गया ॥ ९१–९२ ॥

आश्रमसे निकलते ही पांचो भाइयोंने तपस्वीका वेष बदलकर पुनः ब्राह्मणका वेष बनाया और माता कुंतीके साथ ईहापुर आ पहुंचे ॥ ९३ ॥ ईहापुरमें उससमय महाभयंकर भौंरेके समान काला, मनुष्योंका भक्षण करनेवाला, सदा मनुष्योंको त्रास

रूप, एक भृंग नामका राक्षस रहता था। भीमसेनने उसे वहांसे मारकर भगा दिया और वहांकी प्रजाको भयरहित कर दिया इसलिये प्रजाने मिलकर बड़े हर्षके साथ कुंती और पांडवोंका महासत्कार किया। इसके बाद वहांसे चलकर वे अपनी इच्छानुसार गमन करते करते त्रिशृंग नगर पहुंचे ॥ ९४ ॥

त्रिशृंग नगरमें उससमय शत्रुओंकेलिये महाभयंकर एक प्रचंडवाहन नामका राजा राज्य करता था और उसकी स्त्रीका नाम विमलप्रभा था ॥९५॥ राजा प्रचंडवाहनके रानी विमलप्रभासे गुणप्रभा, सुप्रभा, ह्री, श्री, रति, पद्मा, इंदीवरा, विश्वा, श्चर्या और अशोका ये दश कन्यायें थी। ये समस्त कन्यायें परमरूपवती चंद्रमुखी एवं गुण और कलाओंकी भंडार थीं और प्रथमसे ही धर्मराज युधिष्ठिरकेलिये प्रदान की जा चुकीं थी। किंतु युधिष्ठिरका मरण समाचार सुन वे हताश होगई थी और श्राविकाके व्रत धारण कर रहती थीं ॥ ९६–९८ ॥ उसी त्रिशृंगपुरमें उससमय एक प्रियमित्र नामका महा धनवान सेठ भी रहता था और उसकी प्रतिष्ठा उससमय पांडवोंके समान ही थी। प्रियमित्रकी स्त्रीका नाम सोमिनी था और उससे सौंदर्य और रूपसे नेत्रोंको आनंद प्रदान करनेवाली एक नयनसुंदरी नामकी कन्या उत्पन्न थी ॥ ९९–१०० ॥ कन्या नयनसुंदरीका भी वाग्दान राजा युधिष्ठिरकेलिये होगया था इसलिये वह भी उनके मरणके समाचारसे राजपुत्रियोंके समान उदासीन श्राविका बन गई थी ॥ १०१ ॥ राजा चंडवाहन और सेठ सेठानी भलेप्रकार महापुरुषोंकी परीक्षा करना जानते थे इसलिये उन्होंने ब्राह्मण वेषधारी युधिष्ठिरको बड़ा पुरुष जान अपनी कन्यायें प्रदान करनी चाहीं ॥ १०२ ॥ परंतु उन कन्याओंने अपने मनमें यह कड़ी प्रतिज्ञा कर– कि 'यद्यपि युधिष्ठिर इससमय परलोकवासी होचुके हैं तथापि हमारे पति वे ही हैं' ब्राह्मणके वेषमें छिपे हुये युधिष्ठिरको अन्यपुरुष समझ उनके साथ विवाह करना सर्वथा अस्वीकार कर दिया ॥ १०३ ॥ मेरुपर्वतके समान निश्चल पांडव त्रिशृंगपुरसे भी चलदिये और कर्णकी राजधानी चंपापुरीमें जापहुंचे। चंपापुरीमें उससमय एक महा उद्धत मत्त हाथी लोगोंको दुःख देता फिरता था और उसे कोई वश न कर सकता था। इसलिये कर्णके चित्तको दहलानेवाले प्रतापी भीमसेनने उसे लीलामात्रसे वशकर छोड़ दिया ॥ १०४–१०५ ॥ वहांसे भी चलकर पांडव महामनोहर वैदिश नगरमें पहुंचे उससमय-उस पुरका स्वामी राजा वृषध्वज था। उसके पुत्रका नाम दृढ़ायुध, स्त्रीका नाम दिशावली और पुत्रीका नाम दिशानंदा था ॥१०६–१०७॥ कुमार भीम राजाके मंदिरमें भिक्षा मांगनेकेलिये गये और अपने गंभीर स्वरसे भिक्षा मांगने लगे। ये महामनोहर और रूपवान तो थे ही। ज्योंही राजा वृषध्वजने इन्हें देखा वह शीघ्र ही अपनी कन्याको साथले मय रानियोंके भीमसेनके आगे आकर

खड़ा होगया और मधुर वचनोंसे इसप्रकार कहने लगा—

"प्रिय महापुरुष! यह कन्या सर्वथा तुम्हारे योग्य है। भिक्षामें इसे लीजिये और इसके साथ विवाह करनेकेलिये अपना हाथ पसारिये।" उत्तरमें "राजन्! यह भिक्षा अपूर्व और महत्त्वकी है। मुझे इसे लेनेका अधिकार नहीं" ऐसा कहकर भीमसेन अपने स्थान लोट आये और सारा समाचार अपने मा एवं भाइयोंसे कह सुनाया ॥ १०८–१११ ॥ मा और भाइयोंके आज्ञानुसार कुमार भीमका कन्या दिशानंदाके साथ विवाह होगया जिससे कि डेढ़ मास पर्यंत वे सब के सब वहां रहे और पश्चात् वहांसे चलकर नदी नर्मदाको पार करते हुये विंध्याचलकी अटवीमें जा पहुंचे ॥ ११२ ॥

संध्याकार नामक अंतरद्वीपमें एक संध्याकार नामका नगर है उससमय उसका स्वामी हिडिंबवंशी राजा सिंहघोष था। राजा सिंहघोषकी स्त्रीका नाम सुदर्शना और पुत्रीका नाम हृदयमंजरी था। त्रिकूटाचलके स्वामी राजा मेघवेगने कन्या हृदयमंजरीकी बहुत कुछ याचनाकी परंतु सिंहघोषने वह कन्या उसे न दी। क्योंकि किसी ज्योतिषीसे उसे यह वात मालूम होगई थी कि-विंध्यपर्वतके वृक्षकी खोलारमें वैठकर कोई विद्याधर गदा विद्या सिद्ध कररहा है जो महापुरुष उसे मारेगा वही उस गदा और हृदयमंजरीका स्वामी बनैगा। विंध्याचल पर आतेही कुमार भीमको भी यह पता लगा। वे शीघ्रही विद्याधरके पास पहुंचे और उसे मार गदा विद्या प्राप्त करली जिससे कि बडे उत्सवके साथ उनका हृदयमंजरीके साथ विवाह होगया ॥ ११३–११७ ॥

इसप्रकार पांडवोंने बहुतसे दक्षिणके देशोंमें विहार किया। पश्चात् वे अपनी राजधानी हस्तिनापुरकी तरफ लोटे ॥ ११८ ॥ मार्गमें एक माकंदी नगर पड़ा। उसमें रहनेवाली प्रजाका सब ठाट वाट देवों-सरीखा था इसलिये वह दूसरा स्वर्गस्थान जान पड़ता था। उससमय माकंदी नगरीका स्वामी राजा द्रुपद था। उसकी स्त्रीका नाम भोगवती था और उससे उत्पन्न धृष्टद्युम्न आदि पुत्र थे जो कि महाशक्तिमान थे। तथा राजा द्रुपदकी पुत्री जो लावण्य सौभाग्य और अनेक कलाओंसे शोभित थी कन्या द्रौपदी थी। पुत्री द्रौपदीपर अनेक राजकुमार मुग्ध थे और वे अनेक प्रकारकी भेंटे ला २ कर 'ग्रहण आदि खोटे ग्रहोंमें भिखमंगे भड्डरियोंके समान' राजा द्रुपदसे उसकी याचना करते थे ॥ ११९–१२२ ॥ द्रौपदीकेलिये अनेक राजकुमारोंको लालायित देख राजा द्रुपदका जी बड़ा हैरान हुआ। उसने मनमें यह विचार कि 'मैं किस किसकी अभ्यर्थना व्यर्थ करूं' द्रौपदीका स्वयंवर किया और सब राजाओंके पास यह समाचार भेज कि जो महापुरुष चंद्रवेधको वेधेगा वही द्रौपदीका स्वामी वनेगा आनेके लिये निमंत्रण दे दिया ॥ १२३ ॥ वस वहां कितनी देर थी! द्रौपदीरूपी ग्रहके वश तो सवही राजकुमार होचुके थे। ज्योंही राजा द्रुपदका आमंत्रण पत्र उनके पास पहुंचा

शीघ्र ही कर्ण दुर्योधन आदि राजा माकंदीमें आकर इकट्ठे होगये ॥ १२४ ॥ उसी समय एक सुरेंद्रवर्धन नामका विद्याधर भी वहां आया। वह भी अपनी पुत्रीकेलिये वरकी खोजमें था। उसने वहां आकर गांडीव धनुष स्थापन किया और यह घोषणा कर दी जो महापुरुष इस गांडीव धनुषको चढ़ावेगा और राधा बेधको बेधेगा वही द्रौपदीका पति समझा जायगा ॥ १२५-१२६ ॥ विद्याधर सुरेंद्रवर्धनकी यह घोषणा सुनते ही द्रोण और कर्ण आदि राजा तयार हुये और सबके सब मिलकर धनुषके सब ओर खड़े होगये। उस धनुषके रक्षक बड़े बड़े देव थे जिसप्रकार सती साध्वी स्त्रीका स्पर्श करना, खींचना तो दूर रहा कोई उसे देख तक भी नहिं सकता उसीप्रकार उस चापयष्टिको राजा लोग मारे भयके देख भी न सके फिर छूना और खींचना तो उनके लिये सर्वथा असाध्य था। अंतमें अर्जुन वृक्षके समान निर्मल, द्रौपदीके आगे स्वामी होनेवाले, कुमार, अर्जुन धनुषके पास गये। सती स्त्रीके समान वह इनके वश होगया कुमार अर्जुनने उसे देखा, स्पर्शकिया और चढ़ाया एवं उसकी प्रत्यंचाका ऐसा भयंकर शब्द किया कि समस्त पृथ्वी चल विचल होउठी और कर्ण आदिके कान वहिरे होगये ॥ १२७-३० ॥ धनुषका ऐसा घोर शब्द सुनकर और अर्जुनको देखकर सब राजा लोग इसप्रकार विचार करने लगे—

"स्वभावसे ही परम पराक्रमी यह अर्जुन मरकर क्या यहां फिर उत्पन्न हुआ है? सामान्य धनुषधारीसे तो यह काम हो ही नहिं सकता। धनुषका देखना स्पर्श करना और उसका चढ़ाना इस पुरुषका बड़ा ही आश्चर्यकारी है" ॥ १३१-१३२ ॥ वेध विद्यामें अतिप्रवीण कुमार अर्जुन घूमते हुये चक्रमें सवार होगया और उसने इसरीतिसे वाण छोड़ा कि उससे समस्त राजाओंके सामने देखते देखते चंद्रक वेधको छेद डाला। ॥ १३३-१३४ ॥ यह देख कन्या द्रौपदी शीघ्र ही अर्जुनके पास आई और उसके गलेमें वर वनानेकी इच्छासे माला डालने लगी परंतु उससमय पवन बड़े वेगसे चल रहा था और युधिष्ठिर आदि पांचो भाई एक स्थानपर बैठे हुये थे। दैवयोगसे मालाका तार टूटा और पांचो भाइयोंपर उसके पुष्प विखरकर पड़गये ॥ १३५-१३६ ॥ उससमय स्वयंवर मंडपमें बहुतसे अज्ञानी और चंचल भी लोग बैठे थे। उन्होंने मालाके पुष्पोंको इसप्रकार विखरा देख यह कोलाहल करदिया कि माला पांचोंके गलोंमें डाली है—द्रौपदीने पांचोंहीको वरा है ॥ १३७ ॥ अर्जुन उससमय परम सुगंधित पुष्प और फलोंसे शोभित अति उन्नत अर्जुन वृक्षके समान सुंदर जान पड़ता था और उसके पास प्रसन्नतासे बैठी हुई द्रौपदी पुष्पोंसे युक्त लता सरीखी जान पड़ती थी। ॥ १३८ ॥ परम नीतिवेत्ता गांडीव धनुषका स्वामी कुमार अर्जुन समस्त राजाओंके सामने द्रौपदीको अपनी मा कुंतीके पास लेगया। अर्जुनको इसप्रकार द्रौपदीके साथ

जाता देख राजा लोगोंको बड़ा बुरा लगा। परमनीतिवेत्ता राजा द्रुपदके द्वारा रोके जानेपर भी वे तत्काल युद्धके लिये तयार होगये ॥ १३९–१४० ॥ अर्जुन भीम और द्रौपदीका भाई धृष्टद्युम्न तीनों ही धनुर्विद्यामें विशारद थे। मध्यमें ही उन्होंने राजाओंको रोक दिया, और एक पैर भी आगे न बढ़ने दिया ॥ १४१ ॥ उसीसमय युवराज धृष्टद्युम्नके रथमें बैठे हुये कुमार अर्जुनने समस्त संबंधको सूचित करनेवाला अपने नामका वाण छोड़ा और वह द्रोणकी गोदमें जाकर पड़ा जिससे कि द्रोण अश्वत्थामा भीष्म और विदुरको अर्जुनके पत्रसे सर्व संबंध जान परम आनंद हुआ ॥ १४२–१४३ ॥ जब यह वात राजा द्रुपद आदिको मालूम हुई तो वे भी परम आनंदित हुये और उनके मिलनेके उत्सवमें शंख आदि वाजोंके मनोहर शब्द कराने लगे ॥ १४३ ॥ परम आनंद देनेवाले भाइयोंका आपसमें मिलाप होजानेपर पांचों पांडव और दुर्योधन आदि कौरवोंको बड़ा आनंद हुआ ॥ १४४ ॥ जब कन्या द्रौपदीका विवाह कुमार अर्जुनके साथ होगया तो वह स्नेहसे (तेलसे) परिपूर्ण दीपिकाके समान जगमगाने लगी ॥ १४५ ॥ अर्जुन और द्रौपदीके विवाहका उत्सव देख समस्त राजा अपने २ स्थान चले गये। दुर्योधन भी पांडवोंके साथ २ हस्तिनापुर लोट आया ॥ १४६ ॥ इसतरह अपने २ आधे राज्यका भोग करते हुये वे लोग पूर्वके समान सुखसे रहने लगे ॥ १४७ ॥ जिन कन्याओंकी मंगनी पहिले कुमार युधिष्ठिरके साथ हो चुकी थी, हस्तिनापुर आते ही कुमार युधिष्ठिरने उन्हें बुला लिया और उनके साथ विवाह कर उन्हें सुखी बनाया ॥ १४८ ॥ भीमसेन भी अपनी स्त्रियोंको बुलाकर उनके साथ आनंद सुख भोगने लगा ॥ १४९ ॥ युधिष्ठिर और भीम, कुमार अर्जुनसे बड़े थे इसलिये वे अर्जुनकी स्त्री रमणी द्रौपदीको पुत्रबधूके समान मानते थे और नकुल एवं सहदेव अर्जुनसे छोटे थे इसलिये वे द्रौपदीको माताके समान समझते थे ॥ १५० ॥ सती द्रौपदी भी युधिष्ठिर और भीमको राजा पांडुके समान श्वसुर और कुमार नकुल एवं सहदेवको पुत्र के समान समझती थी ॥ १५१ ॥ इसप्रकार शुद्ध शीलव्रतके धारक भी पांडव और द्रौपदीके विषयमें जो मनुष्य अन्यथा विचार करनेवाले हैं– द्रौपदीको पांचो पांडवोंकी स्त्री मानते हैं हम नहिं कह सकते इस निंदित विचारसे उत्पन्न हुये उनके पापकी कैसे निवृत्ति होगी ? ॥ १५२ ॥ अरे ! जब विद्यमान भी दूसरेके दोषोंका कथन करना पाप है तब अविद्यमान दोषोंका कहना तो घोरपाप समझना चाहिये ॥१५३॥ जब साधारण मनुष्य भी अपने मानको धन समझता है–उसके सामने यदि किसीप्रकारके उसके दोषोंका वर्णन किया जाय तो उसै बुरा लग जाता है तब जो प्रसिद्ध पुरुष हैं और निष्कलंक हैं उनके चरित्रमें किसीप्रकारका जबरन दूषण लगाया जारहा है तो उन्हें क्यों महादु ख न होगा ? ॥ १५४ ॥ आह ! महापुरुषोंके

अग्रणी मनुष्योंके भी जो दुष्ट दूषण कथन करते हैं उनके जीभोंके क्यों नहीं सैकड़ों टूक होजाते? ॥ १५५ ॥ दोषोंके कहने और सुननेवालोंको इस जन्ममें चाहें अपने पापोंका भलेही फल न मिले पर परजन्ममें अवश्य ही उसके घोर दुख रूप फलोंकाभोग करना पड़ता है ॥ १५६ ॥ क्योंकि जिसप्रकार पवित्र कथा,—वक्ता और श्रोता दोनोंका कल्याण करनेवाली होती है उसीप्रकार पापकथासे भी विपरीत फल नरक आदिके दुःख भोगने पड़ते हैं ॥ १५७ ॥ इसलिये भव्यजीवोंको चाहिये कि वे असत्य वचनों का त्याग करें और अपने यशके समान निर्मल गुणोंसे भूषित, सर्वज्ञ द्वारा कहे हुये, विजयी, निर्दोष, सत्यवचन बोलें ॥ १५८ ॥

ग्रंथकार कहते हैं कि-इस संसारमें विपत्ति और तिरस्कारके समय पाला हुआ उत्तम चारित्र ही रक्षा करता है और उसीसे नीति और पराक्रमकी प्राप्तिपूर्वक वैरीके क्रोधका नाश होता है ॥ १५९ ॥ कुसिद्धांतरूपी जाज्वल्यमान अग्निके संतापको शांति करनेकेलिये यह जिन आगम मेघके समान है, अनेक प्रकारके लाभोंको दान करनेवाला है इसलिये जो भव्यजीव सच्चे शास्त्रके प्रेमी हैं उन्हें चाहिये कि वे भलेप्रकार इसका पालन करें ॥ १६० ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंश-पुराणमें कुरुवंशकी उत्पत्ति पांडव कौरवोंका मिलाप और द्रौपदीका लाभ वर्णन करनेवाला पैंतालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४५ ॥

छ्यालीसवां सर्ग।

पर्वतके समान निश्चल, बंधु बांधवोंद्वारा भलेप्रकार सत्कृत, भांति भांतिके भोग भोगनेवाले पांचों पांडव हस्तिनापुरमें रहकर सानंद काल व्यतीत कर रहे थे ॥ १ ॥ कि इतनेहीमें इन पांचोंकी दिनों दिन बढ़नेवाली विभूतिसे दुर्योधन आदि कौरवोंको बड़ा बुरा लगा और पहिले जो संधि स्वीकार होचुकी थी पुनः उससे वे विचलित हो गये ॥ २ ॥ मंत्री शकुनिके उपदेशसे पांडव और कौरवोंमें जूआ डटा जिसमें कि कौरवोंने पांडवोंको जीत कर यह आज्ञा सुनाई कि—

"युधिष्ठिर! तुम सत्य प्रतिज्ञ हो इसलिये तुम्हें अब यहांसे अपने भाईयोंके साथ २ ऐसी गुप्त जगह जाना चाहिये जहांसे तुम्हारा नाम भी सुननेमें न आवे" ॥ ३–४ ॥ दुर्योधनकी यह आज्ञा सुन राजा युधिष्ठरने अपने साज बाजको हस्तिनापुरही छोड़दिया और बारहवर्षके लिये भाइयोंके साथ घरसे निकल दिये ॥५॥ जब अर्जुन वनको चला तो सती द्रौपदी भी अपनी कीर्तिको निर्मल करती हुई चंद्रमाके पीछे चांदनीके समान बड़े प्रेम और हर्षसे उसके पीछे पीछे चलने लगी ॥ ६ ॥ महाधीर वीर अतिशय पराक्रमी

नरश्रेष्ठ वे पांचो भाई क्रमसे चलते चलते कालांजल नामकी अटवीमें पहुंचे ॥ ७ ॥ उस अटवीमें उससमय विद्याधर प्रकीर्णक और विद्याधरी आसुरीका पुत्र सुतार असुरोद्गीतपुरसे आकर रहता था और भील विद्याके प्रभावसे अपनी कुसुमावली स्त्रीके साथ भील और भिलिनीका भेष बनाकर सानंद भोगविलास करता था। वह भील भी धनुर्विद्यामें बड़ा प्रवीण था। अर्जुन भी धनुर्विद्यामें विशारद था। अचानकही दोनोंकी आपसमें देख भाल हुई और बाणोंसे समस्त दिशाओंको आच्छन्न करनेवाला युद्ध ठनगया ॥८-११॥ जब धनुर्विद्यामें एकको दूसरेकी हार न मालूम हुई तो उन दोनोंका मल्लयुद्ध हुआ और मारे मारे कठिन मुक्कोंके आघातसे बली भी विद्याधरको प्रतापी अर्जुनने देखते देखते भूमिपर गिरा दिया ॥ १२ ॥ विद्याधरकी स्त्री घबड़ाकर शीघ्र ही अर्जुनके पास आई और पतिभिक्षाकी याचना करनेलगी। दयाकर अर्जुनने उसे छोड़ दिया आर वह अर्जुनको नमस्कार कर विजयार्धकी दक्षिणश्रेणीमें अपने स्थान चला गया। ॥ १३ ॥ पांडव भी वहांसे आगे बढे और मेघदलपुरमें जाकर पहुंचे। मेघदल नगरका स्वामी उससमय राजा सिंह था। उसकी स्त्रीका नाम कनकमेखला और उससे उत्पन्न पुत्रीका नाम कनका था जो कि परम सुंदरी थी। उसी नगरमें एक मेघ नामका सेठ भी रहता था उसकी स्त्रीका नाम अलका और पुत्रीका नाम लक्ष्मीकांता था ॥ १४-१५ ॥ उन्हें निमित्तज्ञानीसे यह बात मालूम होगई थी कि ये दोनों कन्यायें कुमार भीमकी प्राण वल्लभा बनेंगी। पांडव भीम भी दैवयोगसे वहां आ भिक्षा केलिये राज मंदिरमें गये और वहांसे उन्होंने दोनों कन्याओंका लाभ किया। सो ठीक ही है पुण्यके प्रसादसे क्या क्या बात नहिं हो सकती? ॥ १६ ॥ कुछदिन पांडवोंने मेघदलपुरमें ही विश्राम किया। पश्चात् वे वहांसे भी चलदिये और कोशल देशमें जा पहुंचे ॥ १७ ॥ वहां भी कुछ मास विश्राम लिया और वहांसे जिस रामगिरिमें पहिले राम लक्ष्मण रहते थे वहां पहुंचे। रामगिरिमें चंद्र और सूर्यके समान देदीप्यमान, राजा रामचंद्रद्वारा बनाये गये, अनेक भगवानके चैत्यालय विद्यमान थे और प्रतिदिन नाना देशोंसे आ २ कर उनकी अनेक भव्यजीव पूजा वंदना करते थे। पांडव भी जिनमंदिरोंमें गये और उनमें विद्यमान प्रतिमाओंको भक्तिभावसे नमस्कार कर आनंदित हुये ॥ १८-२० ॥ रामगिरिके लताग्रहोंमें पहिले रामचंद्रने जिसप्रकार अपनी प्राणवल्लभा सीताके साथ रमणक्रीड़ा की थी उसीप्रकार अर्जुनने भी द्रौपदीके साथ मनमानी क्रीड़ा की ॥ २१ ॥ इसप्रकार अपनी इच्छानुसार जहां तहां पृथ्वीपर विहार करनेवाले, उत्तम चेष्टाके धारक, पांडवोंके ग्यारहवर्ष सुखपूर्वक गुप्तरीतिसे कटगये पश्चात् वे विराट नगर आये। विराटपुरमें उससमय राजा विराट राज्य करता था और उसकी स्त्रीका नाम सुदर्शना था। पांडव वहां गुप्त रूपसे रहने लगे। चतुर

द्रौपदीने भी अपना किसी प्रकारका भेद न खोला। इसप्रकार राजा विराटद्वारा पूर्ण सत्कृत होते हुये ये पांचों पांडव वहां सानंद क्रीड़ा करने लगे जिससे कि इनका समय सुखपूर्वक व्यतीत होनेलगा ॥ २२-२४-२५ ॥

इसी पृथ्वीपर एक चूलिका नामकी नगरी है। किसी समय उसका स्वामी राजा चूलिक था। उसकी स्त्रीका नाम विकचा था जो कि प्रफुल्लित कमलके समान मुखसे शोभित और सौ पुत्रोंसे मंडित थी ॥ २६ ॥ राजा चूलिकके प्रतापी पुत्रोंमें सबसे बड़ा पुत्र कीचक था और उसै अपने रूप यौवन विज्ञान शूरवीरता और धनका बड़ा घमंड था ॥ २७ ॥ एकदिन कीचक अपनी बहिनसे मिलनेकेलिये विराट नगर आया और वहां उसने अपने मुखकी सुगंधिसे समस्त दिशाओंको सुगंधित करनेवाली, रूप लावण्य और सौभाग्यकी खानि, भांति भांतिके गुणोंसे मंडित शरीरसे शोभित, सती द्रौपदीको देखा ॥२८-२९॥ यद्यपि कीचक बड़ा अभिमानी था--किसीसे कुछ चीजकी याचना करना उसकेलिये अति अपमानकी बात थी, तथापि द्रौपदीको देख उसका अभिमान दूर भग गया-उसके मनमें दीनताका संचार होगया और दूसरी जगह चलेजानेपर भी उसका मन द्रौपदीमें ही तन्मय रहा ॥ ३० ॥ कीचकने द्रौपदीके राजी करनेकेलिये बहुतसे उपाय किये, स्वयं और दासियोंद्वारा बहुतसे लोभ दिखाये! तोभी सती द्रौपदीने दुष्ट कीचकको अपने हृदयमें स्थान न दिया ॥ ३१ ॥ यद्यपि सती द्रौपदी धृष्ट कीचकको तृणके समान समझती थी उसने कीचकसे सर्वथा इन्कार भी कर दी थी तथापि उसै दंड देनेकेलिये वह किसी स्थानका संकेत कर आई और वह सारा समाचार कुमार भीमसे आकर कह सुनाया ॥ ३२ ॥ कीचकका यह अत्याचार सुन भीम मारे क्रोधके भवक उठा और द्रौपदीका वेष धारणकर ठीक समय संकेतके स्थानपर जा पहुंचा। बंधनमें पड़नेके लिये आये हुये स्पर्शसे अंध गंधहस्तीके समान कामी कीचक भी उस स्थानपर आया और स्पर्शसे निमीलिताक्ष हो भीमको द्रौपदी जान उसके गलेमें हाथ डालने लगा ॥३३-३४॥ वीर भीमसेन एकदम उठ बैठा और कामी कीचकको भूमिपर पछाड़ छातीपर पैर रख वज्रके समान मुष्टियोंके आघातसे पीसनेलगा जिससे कि उसने कीचककी परस्त्री विषयक लालसाको पूरा करदिया और दयासे आर्द्रहो "रे पापी अब तू यहांसे जला जा।" ऐसा कह उसै छोड़दिया।

भीमसेनसे इसप्रकार अपमानित हो कीचकको विषयोंसे वैराग्य होगया। उसने रतिवर्धन मुनींद्रके पास जाकर दिगंबर दीक्षा धारण करली ॥ ३५-३७ ॥ भावोंकी शुद्धिसे कीचकने बारह प्रकारकी भावना भाई एवं शुद्ध रत्नत्रयके आराधनकेलिये उनका स्वरूप समझा ॥ ३८ ॥ कीचकके शेष भाई अपने बड़े भाईको न देख विह्वल होगये, और वह सारा कृत्य द्रौपदीका समझ उसै चितामें जलानेकेलिये उद्यत होगये।

महावली, पापी, कीचकके भाई द्रौपदीको अग्निमें डालना ही चाहते थे कि भीमसेनको उस वातका पता लगा और उसने उन्हींको अग्निमें डाल दिया जिससे कि वे जलकर खाक होगये ॥ ३९-४० ॥ यद्यपि भीम अकेला था और महामत्त वे अनेक थे तथापि सिंह जिसप्रकार अनेक हाथियोंको मार गिराता है उसीप्रकार भीमसेनने उन्हैं मार गिराया ॥ ४१ ॥

एकदिन मुनि कीचक एकांत स्थानमें किसी वनके अंदर पर्यक आसन माढ़ विराजे थे। उन्हैं देख किसी यक्षके चित्तमें उनके चित्तकी परीक्षा करनेकेलिये कौतुक हुआ उसने द्रौपदीका वेष बनाया और रात्रिमें मदनसे विह्वल अपना रूप दिखाया ॥ ४२-४३ ॥ मुनिराज कीचक उसके मधुर मधुर भाषण सुननेमें तो बहिरे बनगये और मनोहर रूप और हावभाव देखनेमें अंधे होगये ॥ ४४ ॥ उससमय उन्होंने अपनी इंद्रियोंपर पूरा पूरा अधिकार कर दिखाया। भलेप्रकार मनकी शुद्धि प्राप्त करली इसलिये उन्हैं अवधिज्ञानकी प्राप्ति होगई ॥ ४५ ॥ इसके वाद मुनिराजने अपना ध्यान संकोचा तो "प्रभो ! क्षमा कीजिये" इसप्रकार अपने अपराधोंको क्षमा कराते हुये यक्षने उन्हैं प्रणाम किया एवं विनम्र हो इसप्रकार पूछा—

"स्वामिन् ! सती द्रौपदीपर जो आपका इतना प्रबल मोह हुआ वह क्यों हुआ ? विना कारण ऐसे प्रवल मोहका होना सर्वथा असंभव था।" अवधिज्ञानके वलसे मुनिराज कीचकने अपने और द्रौपदीके कुछ भवोंको जान लिया इसलिये वे इसप्रकार कहनेलगे—

भाई ! जहांपर वेगवती नदीका मिलाप हुआ है ऐसी तरंगिणी नदीके किनारे महाभयंकर, छोटे छोटे जीवोंका परमवैरी मैं एक क्षुद्र नामका म्लेच्छ था। एकदिन मुझै मुनिराजके दर्शन होगये जिससे कि हिंसा करना छोड़ मैं शांत होगया। उसी शांतिके प्रभावसे पिता धनदेव और माता सुकुमारिकाके कुमारदेव नामका उत्तम मनुष्य हुआ ॥४६-५०॥ एकदिन अनेकप्रकारके व्रतोंसे भूपित मेरे घर आहारार्थ मुनिराज आये और मेरी माने उन्हैं विषमिश्रित आहार दे मार दिया। वह पापिनी नरक गई और साधुके वधसे उत्पन्न घोर दुखोंका वहां अनुभव करने लगी। आयुके अंतमें नरकसे निकलकर उसने वहुत कालतक तिर्यंच और नरकोंमें भ्रमण कर अनेक दुःख भोगे ॥ ५१-५२ ॥ मैंने भी किसी प्रकारका व्रत आचरण न किया था इसलिये जिसप्रकार पवनसे प्रेरित हो भूतरा (वात्या) जहां तहां घूमता फिरता है उसीप्रकार मैं भी घोर संसारमें अनेक जगह घूमा ॥५३॥ अंतमें मैं तपस्वियोंके आश्रममें तपस्वी सित और तपस्विनी मृगशृंगिणीके मधुसंज्ञक नामका पुत्र हुआ ॥ ५४ ॥ एकदिन मुनिराज विनयदत्त आहार लेरहे थे। उनके दानका माहात्म्य देखकर मैंने दिगंवर दीक्षा लेली और स्वर्गमें जाकर देवसुख भोग कर वहांसे चय कीचक हुआ ॥५५॥ सुकुमारिका भी वदसूरत महादुःखी अनुमतिका

नामकी स्त्री हुई और उसने निदानपूर्वक आर्यिकाके व्रत धारण कर द्रौपदीका जन्म लिया इसीलिये कभी माता कभी बहिन कभी पुत्री और कभी स्त्री होनेसे द्रौपदी पर मेरा विशेष मोह हुआ ॥ ५६ ॥ प्रिय देव! यह संसार, चक्रके समान है। इसमें भ्रमण करनेवाले मा बहिन और पुत्री तो स्त्री होजाती हैं और स्त्री, मा बहिन और पुत्री बन जाती हैं इसमें एकका दूसरेके साथ संयोग वियोग सदा लगा ही रहता है ॥५७॥ इसलिये संसारकी यह विचित्र दशा देख भव्य जीवोंको चाहिये कि वे विशाल भी सुखका भलेप्रकार परित्यागकर वैराग्य धारण करैं। संसारके कारणोंसे अपनी बुद्धिको हटावें। सम्यक् चारित्रके पालक बनें और उग्रतपकर मोक्ष सुखका अनुभव करैं ॥५८॥ अपनी देवांगनाओंके साथ मुनिराज कीचकके ऐसे वचन श्रवणकर देवने सम्यग्दर्शन रूपी रत्नमयी भूषणसे अपनी आत्माको भूषित बनाया और मुनिराजको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर बड़ी धीरतासे उसीवनमें अंतर्हित होगया ॥ ६० ॥

सुर असुर मनुष्योंसे पूजित, महाधीर वीर, मुनिराज कीचकने वाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारका तप तपा, लोकमें निर्दोष जैन मार्गका प्रकाश किया और अंतमें समस्त कर्मोंको मूलसे उखाड़कर परम धाम मोक्ष पाया ॥ ६१ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें मुनिराज कीचकके निर्वाण गमनका वर्णन करनेवाला छ्यालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥४६॥

सैंतालीसवां सर्ग।

भीम और अर्जुनरूपी अग्निसे जिसमें अनेक शत्रुरूपी वन भस्म होचुके थे ऐसे कीचकके छोटे भाइयोंका ज्योंही वृत्तांत राजा दुर्योधनने सुना उसे पांडवोंके विराट-पुरमें रहनेका निश्चय होगया। वह यह जान कि गौ आदि दीन पशुओंपर अत्याचार होनेसे पांडव जरूर प्रकट होजांयगे—पांडव गौओंका संकट अवश्य निवारेंगे, अपने भाइ-योंके साथ तत्काल विराट नगर आया और विराटपुरकी समस्त गौओंको जवरन छीन लिया ॥१–२॥ अपनी मर्यादाको नष्ट न करनेवाले, निंदित शासनसे सदा दूरवर्ती पांड-वोंको भी गौओंके ग्रहणका पता लगा और वे साक्षात् नीतिके समान शीघ्र ही युद्ध करनेकेलिये तयार होगये ॥ ३ ॥ उससमय उनके वारह वर्षकी अवधि पूरी हो चुकी थी इसलिये जिसप्रकार मुनि कर्मोंका विजय करनेके लिये जाते हैं उसीप्रकार पांडव कौरवोंके जीतनेकेलिये चलदिये ॥ ४ ॥ वर्षाकालमें सबका हितकारी जल बर्षानेवाला मेघ जिसप्रकार समस्त दिशाओंको आच्छन्न करलेता है उसीप्रकार बाणोंकी वर्षासे उससमय समस्त युद्धस्थल व्याप्त होगया ॥ ५ ॥ पांडवोंकी वीरतासे कौरवोंको कुछ आनंद हुआ परंतु जिसप्रकार हिलने चलनेवाला जल बहुत कालतक स्वच्छ नहिं रह

सकता उसीप्रकार दुर्योधन आदि कौरवोंके चित्त फिर क्षुब्ध होगये और वे पहिलेके समान संधिमें दूषण निकालने लगे। पांडव यदि उससमय चाहते तो लड़कर अपना और कौरवोंका राज्य ले सकते थे परंतु प्रतापी परमदयावान निर्मल अंतरंगके धारक राजा युधिष्ठिरने कौरवोंका कैसा भी अहित न विचारा। भाई जान पहिलेके ही समान उन्हें क्षमा कर दिया। अपनी मा और भाइयोंको लेकर वे दक्षिण दिशाकी ओर चलदिये और कुछ दिन चलकर विंध्याचलकी अटवीमें जा पहुंचे। विंध्याचलकी तलहटीमें उससमय मुनिराज विदुर तप कर रहे थे। युधिष्ठिरने उन्हें देख अपने भाईयोंके साथ उनके तपकी प्रशंसाकी और नमस्कार कर उनकी वे इसप्रकार स्तुति करने लगे—

पूज्य! समस्त संपदाका त्यागकर संसारसे भयभीत हो महातपस्वी बन आपने जिनेंद्रद्वारा प्रतिपादित मोक्षमार्गका सहारा लिया है इसलिये आपका जन्म कृतार्थ है। ॥ ६–९ ॥ इसी जिनप्रतिपादित मोक्षमार्गमें तत्त्वार्थोंका श्रद्धान करना रूप लक्षणका धारक सम्यग्दर्शन, भलेप्रकार तत्त्वार्थोंका जाननेवाला सम्यग्ज्ञान और निर्दोष चारित्र रूप रत्नत्रयकी प्राप्ति होती है। व्रत समिति गुप्ति इंद्रिय और कषायोंका विजय एवं संयमका लाभ होता है। भगवन्! आपके समान महात्मा इस मार्गका अनुसरणकर मोक्षपदको प्राप्त होते हैं" ॥ १०–११ ॥ इत्यादि रीतिसे बहुत कालतक जैनमोक्षमार्गकी प्रशंसाके बादमें युधिष्ठिरने मुनिराजको नमस्कार किया और अपने भाइयोंके साथ द्वारिकापुरीमें प्रवेश किया ॥ १२ ॥ राजा समुद्रविजय आदिने बहुतकालसे पांडव और कुंतीको नहिं देखा था इसलिये उनसे मिलनेसे उन्हें बड़ा आनंद हुआ। ॥ १३ ॥ पांडवोंको देखकर भगवान नेमिनाथ, कृष्ण, बलभद्र, आदि कुमारों, रनवासकी स्त्रियों और प्रजाने भी परम संतोष माना और उनके दर्शनसे समुद्रविजयके कुटुम्बीजनोंको भी परम सुख मिला ॥ १४–१५ ॥ जिससमय यादव और पांडव दोनों आपसमें मिले उससमय उन्हें इतना आनंद हुआ कि वे वज्र भी कौरवोंके अपकारको बिल्कुल भूल गये और बदलेमें उनके उस अपकारको उपकार ही समझने लगे ॥ १६ ॥ कृष्णने उन्हें समस्त प्रकारके आनंद प्रदान करनेवाले उत्तमोत्तम पांच महल दिये और वे पांचो भाई भी उनमें सुखसे रहने लगे ॥ १७ ॥ यादवोंने पांचों पांडवोंको पांच कन्यायें प्रदान कीं। युधिष्ठिरने कन्या लक्ष्मीमतीके साथ विवाह किया, भीमने शेषवती, अर्जुनने सुभद्रा, नकुलने विजया और सहदेवने रतिको स्वीकार किया। एवं ये पांचोभाई देवोंके समान इन सुंदरी स्त्रियोंको पाकर सानंद सुख भोगने लगे ॥ १८–१९ ॥ इसप्रकार कौरवोंका वर्णन कर गणधर गोतमने कहा—राजन् श्रेणिक! मैंने यह संक्षेपसे तुम्हें कौरव पांडवोंका परिचय देदिया अब मैं पुनः कुमार प्रद्युम्नकी कथा सुनाता हूं तुम ध्यानपूर्वक सुनो—

जिसप्रकार चंद्रमा समुद्रको बढ़ाता है उसीप्रकार विजयार्धगिरिमें रहकर कुमार प्रद्युम्न अपने कला और गुणोंसे दिनोंदिन अपने बंधु बांधवोंके हर्षरूपी समुद्रको वढ़ाने लगा ॥ २१ ॥ प्रतापी प्रद्युम्न उससमय विद्याधर पुत्र कहाजाता था इसलिये उसने बालकालमेंही आकाशमें गमन करना आदि विद्याधरोंकी उचित विद्यायें सीखली थीं ॥ २२ ॥ लावण्य रूप सौभाग्य और पौरुषकी खानि वह कुमार स्त्री न होकर भी शत्रु मित्र स्त्रीपुरुषोंका मन हरण करता था ॥ २३ ॥ समस्त कलाओंमें पारगामी कुमारने यौवन अवस्थामें पैर रक्खा और समस्त नर नारियोंके मनको घायल (हरण) करता हुआ भी वह सबको प्रिय लगने लगा ॥ २४ ॥ अनुगत अर्थको प्रतिपादन करनेवाले इसके मन्मथ मदन काम कामदेव और मनोभू नाम पड़े एवं सुंदर अंगसे भूषित होनेपर भी लोग उसै अनंगनामसे पुकारने लगे ॥ २५ ॥ उससमय कोई सिंहरथ नामका राजा महाराज कालसंवरकी आज्ञा नहिं मानता था। कालसंवरने उसै वश करनेकेलिये अपने पांचसौ पुत्रोंको भेजा। परंतु वे जब उसे वश न करसके तब कुमार प्रद्युम्न गया और उसने शीघ्र ही सिंहरथको जीतकर राजा कालसंवरके चरणोंमें डाल दिया ॥ २६ ॥ प्रद्युम्नका ऐसा पराक्रम देख राजा कालसंवरको बड़ा संतोष हुआ और उससमय वह बलशाली भी विजयार्धकी दोनों श्रेणीयोंको अपने वश समझने लगा इसलिये महाराज्यरूपी फलका पुष्पस्वरूप युवराजपद उसने उसे शास्त्रानुसार प्रदान करदिया ॥२७-२८॥ राजा कालसंवरके अन्य पांचसौ पुत्रोंको यह बात बहुत बुरी लगी और वे प्रद्युम्नके मारनेकेलिये उपाय सोचने लगे ॥२९॥ कुमार प्रद्युम्नको भी भाईयोंकी इस कूटनीतिका पता लग गया इसलिये ये आसन शयन वस्त्र तांबूल भोजन और पानमें कुमारको न ठग सके उनमें उसका कुछभी अपकार न कर सके। एक दिन सबके सब कुमार प्रद्युम्नके साथ अनुकूल वर्तीव कर उसे सिद्धकूटचैत्यालय लेगये और यह कह कर कि 'जो सबसे आगे वेगसे इस चैत्यलयके दरवाजेमें घुसेगा वह इस द्वारके स्वामी देवसे भांति २ की विद्यायें और मुकुट प्राप्त करेगा' कुमारको उसमें जानेकेलिये लालायित करदिया। कुमार तो निर्भय था वह अपने भाइयोंकी चालाकीपर कुछभी ध्यान न दे दरवाजेमें घुस गया और वहांसे भाइयोंके कथनानुसार वस्तुओंकी प्राप्तिकर लोट आया ॥ ३०-३२ ॥ द्वारसे कुमारको जीवित निकला देख उसके भाईयोंने उसै महाकाल गुफामें भेजा वहां भी उसै ढाल तलवार छत्र चमर मिले ॥ ३३ ॥ वहांसे निकलकर नागगुफामें गया और वहांके स्वामी देवसे सिंहासन नागशय्या आसन, वीणा और प्रसन्नता करनेवाली विद्या प्राप्त की ॥ ३४॥ नागगुफासे आकर किसी विशाल वापीमें गया। युद्धकर वहांके देवको जीता और उससे मगरके चिह्नकी उन्नत ध्वजा पाई। वहांसे अग्निकुंडमें गया वहां अग्निसे शुद्ध किये दो वस्त्र प्राप्त किये ॥ ३५ ॥ वहांसे निकलकर

मेषाकृति पर्वतमें घुसा और वहां दो कर्णकुंडल पाये। उसके बाद मर्कटदेवसे मुकुट, सुंदर माला और खड़ामूं पाये ॥ ३६ ॥ कपित्थ वनमें जाकर वहांके देवसे विद्यामयी हस्ती और वल्मीकवनके निवासी देवसे छोटी २ घंटियें, कवच, मुदरी आदि पदार्थ पाये ॥ ३७ ॥ शराब नामक पर्वतमें जाकर वहांके देवसे करधनी, हार, कड़े, केयूर और कंठाभरण पदार्थ प्राप्त किये ॥ ३८ ॥ किसी सूकर देवसे शंख और दिव्य धनुष पाया और वहां मनोवेग नामका जो विद्याधर कीला हुआ पड़ा था उसे छुड़ाया और उससे मोतियोंका हार और इन्द्रजाल प्राप्त किया ॥ ३९ ॥ मनोवेगका वैरी विद्याधर वसंत था कुमारने उन दोनोंकी आपसमें मित्रता करादी और उससे एक कन्या और नरेंद्रजालकी प्राप्तिकी ॥ ४० ॥ प्रद्युम्नने भवनाधिपदेवसे एक कुसुमधनुष और उन्मादकर मोहकर संतापकर मदकर एवं शोककर ये पांच वाण पाये ॥४१॥ दूसरी नाग गुफामें घुसकर कुमारने चंदन और अगरुकी माला पाई और वहांके स्वामीसे पुष्पोंका छत्र और पुष्पशय्या प्राप्तकी ॥ ४२ ॥ वहांसे जयंतगिरिके दुर्जयवनमें गया और उस जगह जयंतगिरिमें रहनेवाले विद्याधर वायुकी रानी सरस्वतीसे उत्पन्न रतिनामकी कन्याके साथ विवाह किया ॥ ४३ ॥ इसप्रकार सोलह स्थानोंमें जाकर कुमारने अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम पदार्थ पायेऔर सानंद अपने भाइयोंके पास लोट आया। राजपुत्र संवर आदि कुमारोंने प्रद्युम्नको इसप्रकार सकुशल आया देख बड़ा आश्चर्य किया और यह सव पुण्यका महात्म्य समझा एवं प्रद्युम्नको साथ ले वे अपने स्थानको लोटे। धनुष पांचवाण छत्र और ध्वजाओंसे शोभित, दिव्य भूषणोंसे भूषित, शुभ्र वैलोंके रथमें स्थित, सैकड़ों भाइयोंसे मंडित, अपने पांचवाणोंसे स्त्री और मनुष्योंका चित्त हरण करनेवाले, कुमार प्रद्युम्नने मेघकूट नगरमें प्रवेश किया ॥ ४४-४७ ॥ प्रद्युम्नने कालसंवरको देख भक्तिभावसे प्रणाम किया और वादको मय रथके माता कनकमालाके महलमें प्रवेश किया ॥ ४८ ॥ कुमार प्रद्युम्न उससमय महामनोहर वस्त्र पहिने था ज्यों ही कनकमालाने उसे देखा त्यों ही परम आनंदके साथ २ उसके कुछ विचित्र ही भाव होगये ॥४९॥ रथसे उतरकर कुमारने कनकमालाको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। उत्तरमें कनकमालाने छातीसे लगाकर मस्तक चूमा। पासमें विठालिया और उसके शरीरपर अपना कोमल २ हाथ फेरने लगी ॥ ५० ॥ मोहके तीव्र उदयसे कुमारके शरीरके स्पर्शसे कनकमालाका मन अतिविचलित होगया। कामके वश हो वह अपने हृदयमें भांति भांतिके निंदित मनोरथ बांधने लगी और यह विचार करने लगी—

"जो स्त्री सेजपर एकबार भी अपने शरीरसे इस कुमारके शरीरका स्पर्श करेगी वही स्त्री संसारमें धन्य एवं अद्वितीय है और सिवाय उसके अन्य स्त्रियां स्त्रियां नहीं स्त्रियोंके आकार मात्र हैं ॥ ५१-५२ ॥ यदि मुझे इस प्रद्युम्नके साथ आलिंगन करनेका सौभाग्य

मिला तो ये मेरे रूप लावण्य सौभाग्य और चतुरता ये गुण यथार्थ हैं अन्यथा- उसके साथ आलिंगनके अभावमें—सब तृणके समान हैं" ॥ ५३ ॥ इसतरह यद्यपि कनकमालाका मन इन निंदित मनोरथोंसे परिपूर्ण होगया था परंतु उससमय कुमार उसके मनका भाव तनिक भी न समझ सका। उसने अपने पवित्र मनसे माताको नमस्कार किया और उससे आशीर्वाद लाभ कर अपने महलमें चला आया ॥ ५४ ॥ प्रद्युम्नके चले जानेपर विद्याधरी कनकमालाको बड़ा संताप हुआ। वह प्रद्युम्नके साथ आलिंगनजन्य सुखलाभका मनोरथ बांध सारे काम भूल गई ॥५५॥ उसकी अस्वस्थताका समाचार सुन प्रद्युम्न उसे देखने आया और व्यथासे छटपटाती हुई उसे कमलपत्रपर लेटे हुये देखा। कुमारने पास बैठ कर उसके शरीरके संतापका कारण पूछा। कनकमालाने भी शरीरके कर्वट आदि इशारोंसे और वचनोंसे अपने मनका भाव प्रकट कर दिया ॥५६–५७॥ कुमारको जब संतापका कारण अनुचित और विपरीत जानपड़ा तो उसे बड़ा दुःख हुआ। कर्मोंकी चेष्टाकी वह वार वार निंदा करने लगा और अपने मा, बेटाके संबंधको जतलाकर उसे समझाने लगा, पर रानी कनकमालाने उसे "उसका वनमें पाना, पालपोषकर वढ़ाना, विद्याओंका लाभ कराना आदि" सब सच्चे वृत्तांतको आद्योपांत सुना अपनी तरफ झुकाया। ॥५८–५९॥ कनकमालाके मुंहसे ऐसा अपना संबंध सुन कुमारके चित्तमें संदेह होगया। वह चैत्यालयमें आये हुये किसी सागरचंद्र मुनिराजके पास गया और उनसे भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उसने अपने पूर्वभवोंके विषयमें पूछ ताछ की जिससे कि कनकमालाको मधुके भवमें अपनी रक्षिता चंद्राभा स्त्री समझा और यह भी मालूम किया कि कनकमालासे गौरी और प्रज्ञप्ति विद्याओंका भी लाभ होगा। कुमार परम सम्यग्दृष्टि था शीलका भंडार था—पराई स्त्रियोंको मा बहिन पुत्री समझता था। वह एकदिन पुनः मुनिराजके वचनानुसार कनकमालाके मंदिर गया और प्रज्ञप्तिविद्याके लोभसे उसीकी प्रकृतिके अनुकूल मीठी मीठी बातें मिलाने लगा ॥६०–६२॥ कुमारको देखकर पापिनी कनकमालाको भी यह विश्वास होगया कि अब कुमार अवश्य मेरी मनचीती कर देगा। वह बड़ी प्रसन्न हुई और इसप्रकार कुमारसे कहने लगी—

"प्रिय कामदेव! मै कहूं सो सुनो! यदि तुम गौरी और प्रज्ञप्ति विद्या चाहते हो तो लो! परंतु मेरे ऊपर प्रसन्न हो—मेरी अभिलाषा पूर्ण करो।" कनकमालाकी यह बात सुन कुमारने छलसे अपनी स्वीकारता देदी और विद्याधरोंको दुर्लभ विधिपूर्वक दोनों विद्यायें हाथ पसारकर लेलीं ॥६३–६४॥ जब कुमारका काम निकल गया तो वह "तू मुझे प्राण और विद्यायें देनेवाली है इसलिये मेरी गुरु है" ऐसा निवेदन कर तीन प्रदक्षिणा दे प्रणामकर आगे बैठ गया एवं यह कहकर कि 'जो आज्ञा पुत्रके लायक हो सो कहो' अपने महल चला आया ॥ ६५–६६ ॥ प्रद्युम्नके इसप्रकार चले जानेपर मारे क्रोधके

कनकमाला खाक होगई। 'हाय! प्रद्युम्न मुझे बातोंमें फुसलाकर ठग लेगया' यह विचार उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ उसने शीघ्र ही अपने कुक्षि वक्षस्थल स्तनोंपर नखक्षत करलिये–दोड़कर अपने पति कालसंवरके पास पहुंची और अंग दिखाकर सारी चेष्टायें प्रद्युम्नकी वतलाने लगी। यद्यपि राजा कालसंवर प्रद्युम्नको विनयी और पवित्र पुत्र समझता था तथापि रानी कनकमलाके कहनेसे वह उसकी दृष्टिमें वज्र अपराधी बनगया ॥६७–६८॥ क्रुद्ध हो एकदिन कालसंवरने एकांतमें अपने पांचसोही पुत्र बुलाये एवं गुप्तरूपसे उन्हें प्रद्युम्नके मारनेकी आज्ञा देदी॥ ६९ ॥ वे कुमार तो प्रद्युम्नपर रुष्ट थे ही–उसके मारनेकेलिये वे पहिले भी अनेक उपाय कर चुके थे। ज्योंही उन्होंने अपने पिताकी आज्ञा सुनी उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। एवं दूसरे दिन बड़े आदरसे वे कुमारको कालायु नामकी वापीपर लेगये ॥७०॥ कालसंवरके पुत्रोंकी यह घनिष्ट इच्छा थी कि प्रद्युम्न वापीमें कूदे और हम सब इसके ऊपर गिरकर इसे मारदें इसलिये उन सबने वावड़ीमें जलक्रीड़ा करनेकेलिये पूरा २ मसोदा वांधलिया ॥ ७१ ॥ प्रज्ञप्तिविद्याने प्रद्युम्नके मारनेका समाचार उसके कानमें आकर कहदिया जिससे कि प्रद्युम्नको बड़ा क्रोध आया किंतु उससमय उसने क्रोध छिपालिया ॥ ७२ ॥ उसने शीघ्रही एक मायामयी प्रद्युम्न बनाकर तालाबमें कूदादिया जिससे कि उसके मारनेकेलिये वे भी उसपर कूदपडे ॥७३॥ वस फिर क्या था? उसने चारसो निन्यानवे भाइयोंको ऊपर पैरकर लटका दिया वे भाग न जांय इसभयसे उनके ऊपर एक शिला लगादी और एक पंचचूड नामक भाईको पिताके पास समाचार कहनेकेलिये भेजदिया ॥ ७४ ॥ पुत्रोंका इसप्रकार भयंकर समाचार सुन राजा कालसंवर दूना क्रुद्ध होगया वह समस्त सेनाके साथ तैयार हो शीघ्र ही युद्धकेलिये आया ॥ ७५ ॥ यह देख प्रद्युम्नने भी मायामयी सेना बनाली और उससे कालसंवरकी सेनाको तितर वितर कर दिया। जब कालसंवरकी कुछ भी न चली तो वह दोड़ता दोड़ता रानी कनकमालाके पास आया और उससे प्रज्ञप्तिविद्या मांगने लगा। विचारी कनकमालाके पास वह विद्या कहां थी वह उन्मादिनी हो पहिलेही उसे लुटा चुकी थी इसलिये बहाना बनाकर उत्तरमें उसने यही कहा—

"अरे! मैंने तो वालकालमें ही उसै स्तनपानके साथ विद्या देदी थी अब वह मेरे पास कहां है।" कनकमालासे यह उत्तर सुन राजा कालसंवरको बड़ा दुःख हुआ। यद्यपि कनकमालाके वचनोंसे उसै यह सर्वथा मालूम होगया था कि यह सारा चरित्र इसी दुष्टिनी (कनकमाला) का है तथापि वह अपने मानकी रक्षार्थ पुनः प्रद्युम्नसे युद्ध करनेकेलिये चला आया। वहां आकर उसने वहुतकालतक युद्ध किया। अंतमें प्रद्युम्नने उसै वांधकर एक शिलापर डालदिया ॥ ७६–७८ ॥ इतने हीमें मुनि नारद वहां आ पहुंचे उन्हैं देख प्रद्युम्नने भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और उनके मुखसे अपना सारा संबंध

जाना कुमार प्रद्युम्नने कालसंवरको छोड़दिया और विनयसे नमस्कार कर यह निवेदन किया—

"पूर्वकर्मकी कृपासे ऐसी बात होगई—मुझपर उसका चित्त चलित होगया। अब आप मेरी माको क्षमा करें" ॥ ७९–८० ॥ कुमारने निरुपाय अपने पांचसौ भाइयोंको भी छोड़ दिया और भ्रातृस्नेहसे गद्गद हो उनसे वार वार क्षमा मांगने लगा ॥८१॥ कुमार प्रद्युम्नकी लालसा अपने पिता कृष्ण और माता रुक्मिणीके देखनेकी होगई। उसने अपने पिता कालसंवरसे जानेकी आज्ञा मांगी और उसने भी बड़ी प्रसन्नतासे कुमारको जानेकेलिये आज्ञा देदी ॥ ८२ ॥ कुमारने भक्तिपूर्वक पिताको नमस्कार किया और नारदके साथ विमानमें बैठकर द्वारिकाको चल दिया ॥ ८३ ॥ नारद और कुमार अनेक २ प्रकारकी कथा वार्ता करते हुये आकाशमार्गसे चलने लगे। ज्योंही उन्होंने हस्तिनापुरको उलंघा मार्गमें एक विशाल सेना देख पड़ी ॥ ८४ ॥ चंचल कुमारने सेनाको देखते ही पूछा—

पूज्यवर ! नीचे इस अटवीमें होकर पश्चिम दिशाकी ओर बड़ी शीघ्रतासे यह किसकी सेना कहां और किसलिये जारही है ? उत्तरमें नारदने कहा—

प्रियकुमार ! मैं इस सेनाका कुछ परिचय देता हूं तुम सुनो—हस्तिनापुरका स्वामी कुरुवंशका भूषण राजा दुर्योधन है। वह युद्धमें शत्रुओं द्वारा अजेय है इसलिये उसका दुर्योधन नाम सार्थक है ॥ ८५–८७ ॥ पूर्वभवके स्नेहसे उसने कृष्णसे यह वायदा करलिया था कि रुक्मिणी और सत्यभामामें जिसका पुत्र प्रथम होगा उसे मैं अपनी पुत्री प्रदान करूंगा ॥ ८८ ॥ प्रथम पुत्र तू हुआ और भृत्योंने पहिले तेरी उत्पत्तिका समाचार कृष्णसे जाकर निवेदन किया। तेरे पैदा होनेके कुछ ही समय बाद सत्यभामाके भानु नामका पुत्र हुआ और उसकी उत्पत्तिका भी समाचार कृष्णको निवेदन किया गया ॥ ८९ ॥ उसीसमय एक धूमकेतु नामका असुर आया और पूर्व वैरसे अचानक ही तुझे हर लेगया। तेरे हरेजानेपर तेरी मा रुक्मिणीको बड़ा दुःख हुआ और सत्यभामाने बड़ा ही संतोष माना ॥ ९० ॥ जब यशस्वी दुर्योधनको तेरा पता न लगा तो उसने अपनी उदधिनामकी कन्याको कुमार भानुके देनेकेलिये ही विचार कर लिया सो वही कन्या इससमय विशाल सेनासे सुरक्षित हो कुमार भानुके विवाहकेलिये द्वारिका जा रही है ॥ ९१–९२ ॥ नारदके मुखसे यह बात सुन कुमारको बड़ा कौतूहल हुआ। नारदको आकाशमें ही छोड़कर वह नीचे उतरा और भीलका वेष धारणकर सेनानायकोंसे इसप्रकार कहने लगा—

"राजा श्रीकृष्णने यहां मुझे महसूल चुकानेकेलिये नियुक्त किया है आप लोग पहिले मेरा महसूल चुका जांय तब आगेको पैर रक्खें।" भीलकी यह बात सुनकर बहुत लोगोंने कहा—

"अच्छा! भाई! मांग तू क्या मांगता है?" भीलने कहा—"जो इस सेनामें सबसे सारपदार्थ हो वही मुझै चाहिये" उसकी यह बात सुन सेनानायकोंको बड़ा क्रोध आया। वे कहने लगे—"सेनामें तो सारपदार्थ कन्या है! क्या यही लेना चाहता है?" कौतूहली कुमारने धीरेसे कहा—'यदि सबमें उत्तम वस्तु कन्या है तो वही मुझै देदो।' सेनाके लोगोंने पुनः कहा—'यह पुत्री तो कृष्णके पुत्रकेलिये जारही है सो क्या तुम कृष्णके बेटे हो?' इसके उत्तरमें भीलने कहा—'हां! नहिं तो क्या? मैं कृष्णका तो बेटा हूंही' ॥ ९३–९६ ॥ भीलकी यह बात सुन सबकै सब उसै 'उन्मत्त' और 'धृष्ट' कहकर भयभीत करनेकी इच्छासे धनुष तानते हुये आगे बढ़ने लगे ॥ ९७–९८ ॥ यह देख कुमारने भी अपनी भीलसेना तयार कर ली और देखते देखते राजा दुर्योधनकी समस्त सेनाको तितर वितर कर दिया जिससे कि निःशंक हो वह कन्याको उठाकर आकाशमें चला आया ॥ ९९ ॥ जिससमय कुमार कन्याको उठाकर ऊपर लाया तो उससमय उसका भयंकर रूप देख कन्या अतिशय भयभीत होगई। परंतु जब कुमारने अपना स्वाभाविक दिव्यरूप प्रकट कर लिया तो उसका वह सब भय एकओर किनारा कर गया और नारदके वचनोंसे यह विश्वास कर कि 'यह श्रीकृष्णका पुत्र प्रद्युम्न है' बड़ा आनंद हुआ। वहांसे चलकर कुमार, मुनि नारद और कन्याके साथ २ विमानमें सवार हो उत्तमोत्तम द्वारोंसे शोभित द्वारिकापुरीके पास आया ॥ १०० ॥ और चारो ओर सागरकी विशाल खाईसे व्याप्त प्राकार पुरद्वार और अटालियोंसे शोभित उसकी (द्वारिकापुरीकी) दूरसे ही शोभा देखने लगा ॥ १०१ ॥ उसीसमय कुमार भानु नगरके वाह्य प्रदेशमें अश्वक्रीड़ाकेलिये आया था। विमानमें बैठे ही कुमारने उसै देखा और कौतूहलसे वृद्धका रूप धारणकर एक घोड़ा साथमें ले उसके (भानुकुमारके) पास गया। घोड़ेकी सुंदरता देख भानुकुमार अतिप्रसन्न हुआ और उसपर चढ़लिया। चढ़ते समय उस घोड़ेने अपनी कुछ भी चंचलता न दिखाई परंतु उसके बाद भानुकुमारके अनेक प्रयत्न करनेपर भी वह एक क़दम भी आगे न बढ़ा। इसतरह जब अपनी कूद फांदसे उसे बहुत दिक कर लिया तो अंतमें अपनी इच्छाके अनुसार वह (घोड़ा) वृद्धरूपधारी कुमार प्रद्युम्नके पास भाग आया ॥१०२–१०४॥ जब घोड़ा भानुकुमारके अनुकूल न चला तो वह लज्जित हो उससे उतर पड़ा। यह देख 'वाह! घोड़े चढ़नेमें कैसा वढ़िया कौशल है!' यह कहकर कुमार प्रद्युम्न ताली वजा खिलखिलाकर हंस पड़ा और इसप्रकार कहने लगा—

"मैं यद्यपि वृद्ध हो चुका हू तथापि यदि मुझे कोई इस घोड़ेपर विठादे तो मैं अपना कौशल दिखाऊं।" वस वहां क्या था! प्रद्युम्नकी बात सुनते ही भानुकुमारके मनुष्य कुमारके पास आये और कुमारको घोड़ेपर विठाने लगे। कुमारने विद्यावलसे अपना शरीर हाथीके समान नितांत भारी वना लिया और भानुकुमारके लोगोंको बहुत

कालतक हैरान किया। अंतमें जब कुमार उनसे न उठ सका तो वह अपने आप घोड़े पर सवार होगया और अनेक प्रकारका घुड़सवारीका कौशल दिखाकर आकाशमें उड़-गया ॥ १०५-१०६ ॥ कुमारने मायामयी बंदरका रूप धारणकर सत्यभामाकी मनोहर वाटिका उजाड़ दी अपनी विद्याके प्रभावसे महलकी समस्त वावड़िये सुखा दीं और मधुमक्खी डांस मच्छर प्रकट करदिये। एक मायामयी रथ बनाया और रथ में सवार हो बहुत कालतक नगरके द्वारपर क्रीडा की ॥ १०७-१०८ ॥ इसप्रकार अनेक प्रकारकी क्रीड़ाकर प्रद्युम्नने समस्त नगरको मोहित करलिया पश्चात् मेषयुद्धसे उसने अपने बाबा कृष्णके पिता वसुदेवके साथ भी क्रीड़ा की ॥ १०९ ॥ विवाहके उत्सवमें उससमय सत्यभामाके घर ब्राह्मणभोज था। कुमार भी ब्राह्मणका रूप धारण कर सत्यभामाके यहां भोजनके लिये गया और वहां जा उसने अपनी मायासे ब्राह्मणोंको आपसमें भिडा सत्यभामाके मंदिरका सब पकवान खा डाला। जब कुछ भी सामान न रहा तो सत्यभामाको कृपण बतलाकर वमन करदिया और स्वयं बाहर चला आया ॥ ११० ॥ इसकेबाद क्षुल्लकका स्वरूप धारणकर कुमार अपनी मा रुक्मिणीके मंदिरमें गया और वहां ऐसी माया फैलाई कि उसके घरमें कुछ भी आहार न रहा। क्षुल्लकने जब रुक्मिणीसे आहारकी प्रार्थना की तो उसे घर टटोलने परभी उसके लायक कुछ न मिला इसलिये अंतमें लज्जित हो कृष्णके खानेके कुछ लाडू रक्खे थे जिनको कि सिवाय कृष्णके अन्य पचा नहिं सकता था-उनमेंसे एक लाडू उठा लाई और डरते डरते उसे कुमारको दिया। कुमार पाते ही उसे चट खागया और पुनः मांगने लगा। माताने फिर एक लाडू डरते डरते दिया, कुमारने वह भी खालिया इसीतरह उसने सब लाडू हजम करलिये और फिर भी खानेके लिये मांगता ही रहा। उसीसमय पहिले वायदेके अनुसार रुक्मिणीके केश कपटनेके लिये सत्यभामाकी कुछ दासियां आई। कुमारने अपनी मायासे उनके नाक कान काट उन्हें ही खूब छका सत्यभामाके पास भेजदिया ॥ १११ ॥ यह देख सत्यभामाने रुक्मिणीको धूर्त जान उसकी बलदेवसे शिकायत की जिससे कि बलदेवको बड़ा क्रोध आया और रुक्मिणीको तिरस्कृत करनेकेलिये स्वयं उसके घर आये। कुमारकी नजर भी बलदेवपर पड़ी। वह शीघ्र ही ब्राह्मणका स्वरूप धारण कर मार्गरोक घरकी पौरी (देहली) में लेट-गया। बलदेवने बहुत कुछ हटनेके लिये कहा परंतु वह 'अरे भाई! आज सत्यभामाके घर बहुत सा आहार कर आया हूं। मुझसे चिगातक नहिं जाता' ऐसा बहाना बना तनिक भी टससे मस न हुआ। ब्राह्मणकी इस धृष्टतापर बलदेवको बड़ा क्रोध आया उन्होंने उसे टांग पकड़ एक ओर करना चाहा परंतु विद्याबलसे उसने ऐसी अपनी टांग बढ़ाई कि दूरतक खींचे जानेपर भी उसकी टांग बढ़ती ही चली गई। इनके सिवाय

कुमारने अन्य भी वहुतसे कौतूहल किये जिससे कि द्वारिकानिवासी समस्त लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ११२ ॥ प्रद्युम्नके आगमन कालके चिन्ह जो नारदने कहे थे उससमय सब प्रकट होगये। सबसे प्रधान चिंह्न जो रुक्मिणीके स्तनोंसे दूध झरना था वह भी होनेलगा ॥ ११३ ॥ स्तनोंसे झरते हुये दूधको देख माता रुक्मिणी बड़ा आश्चर्य करने लगी और सहसा " सोलहवीं वर्षमें अपना रूप पलटकर यह मेरा पुत्र प्रद्युम्न तो नहिं आगया है ?" ऐसा बार २ विचार करने लगी। माताको इसप्रकार आश्चर्य सागरमें गोता मारते देख कुमार प्रद्युम्नने भी अपना वास्तविक रूप धारण करलिया और पुत्रकी प्राप्तिके लिये अतिउत्सुक माता रुक्मिणीको विनयसे नमस्कार किया। ॥ ११४–११५ ॥ वस फिर क्या था ! अपने प्यारे पुत्र प्रद्युम्नको पाकर माताके आनंदकी सीमा न रही। प्रद्युम्नके बार बार देखनेके लिये उसके नेत्र आकुलित हो गये। उसने तत्काल कुमारको अपनी छातीसे चिपटा लिया और पुत्रवियोगके दुःख के साथ २ आनंदाश्रु छोडने लगी ॥११६॥ कुमारके देखनेसे माताका शरीर पुलकित होगया सो उससे ऐसा जान पड़ने लगा मानो पुत्रदर्शनरूपी मेघसे सींचे जानेके कारण रोमकूपोंसे सुतस्नेहरूपी अंकुर उदित हो रहे हैं ॥ ११७ ॥ बहुत कालतक माता और पुत्रके आपसमें अनेक प्रश्नोत्तर होते रहे। अंतमें स्नेहसे गद्गद हो माता रुक्मिणी चित्तको सुखी बनानेवाले अपने प्यारे पुत्रसे बोली कि—

"प्यारे बेटा ! वह रानी कनकमाला धन्य है जिसने तेरी बाल्य अवस्थामें मनोहर बालक्रीड़ा देख वास्तविक पुत्रफलका लाभ किया" ॥११८–११९॥ माता रुक्मिणी के ऐसे वचन सुन विनयपूर्वक कुमारने "ले मा ! मै तुझे अपनी बाल्य अवस्था की क्रीड़ा दिखाता हूं तू देख !" ऐसा कहकर शीघ्र ही हालके बालका रूपधारण कर लिया और अवस्थाके अनुकूल कभी नेत्रोंको फुला २ कर हाथका अंगूठा चूसने लगा ॥१२०–१२१॥ कभी चूचुक (स्तनका अग्रभाग) पकड़कर मा का दूध पीने लगा। कभी ऊपरको मुखकर लेट माताके करपल्लवोंको अतिशय सुखित करने लगा। कभी छातीके भर जमीनपर रिंग उठ २ कर गिरने लगा। कभी माताके हाथकी अंगुली पकड़कर मणिमयी भूमिपर चलने लगा तो कभी धूलिमें क्रीड़ाकर माताके गले लग उसे सुखी बनाया। कभी वह तोतली जबान बोल खिलकने लगा तो कभी माताके मुखकी ओर टकटकी लगाकर देखने लगा ॥ १२२–१२४ ॥ इसप्रकार अपनी नाना प्रकारकी बालक्रीड़ा दिखा कुमारने माताका मनोरथ पूरा किया और फिर अपना ज्योंका त्यों रूप धारण करलिया। इसके वाद नमस्कार पूर्वक माताको अपने मनका सब विचार वतला उसे अपने हाथोंपर विराजमान किया और आकाशमें लेजा यादवोंकी सभा के ऊपर स्थित हो इसप्रकार कह कर कि—

"समस्त यादव राजा सुनें! मै आप लोगोंके देखते ही लक्ष्मीके समान कृष्णकी प्यारी इस रुक्मिणीको हरण करलिये जाता हूं। यदि आप लोगोंमें कुछ सामर्थ्य है तो इसै बचाओ—इसकी रक्षाकरो।" जोरसे शंख बजाया और नारद एवं उदधि कन्याके पास विमानमें रुक्मिणीको विठला युद्धकेलिये आकाशमें तयार होगया। ॥ १२५-१२८ ॥ प्रद्युम्नके अहंकारयुक्त वचनसे यादव भी अपना क्रोध न संभाल सके। वे शीघ्र ही पांचों प्रकारके शस्त्र बांध चतुरंग सेनाको साथ ले युद्धकेलिये द्वारिकासे वाहिर निकल आये ॥१२९॥ कुमारने विद्याके बलसे यादवोंकी समस्त सेनाको व्यामोहित करदिया और बहुत कालतक अपने पिता कृष्णके साथ शस्त्रयुद्ध किया। ॥ १३० ॥ जब प्रद्युम्नने कृष्णके समस्त अस्त्रोंको विफल बनादिया तो कृष्णको बड़ा क्रोध आया और दृढमुष्टियोंके धारक दोनों वीर मल्लयुद्ध करनेकेलिये उद्यत होगये ॥१३१॥ जब पिता पुत्रोंका यह दृश्य देखा तो नारद शीघ्रही आकाशसे उतरे और दोनोंको आपसमें पिता पुत्रका परिचय करा युद्धसे रोकनेमें सफल हुये ॥ १३२ ॥ नारदके वचनोंसे अपने प्रतिद्वंद्वीको पिता कृष्ण समझ कुमार प्रद्युम्न नमस्कार कर उनके चरणोंमें पड़गया और कृष्णने भी अतिशय आनंदित हो उसै छातीसे चिपटा नेत्रोंसे आनंदाश्रु वहाते हुवे बड़े प्रेमसे आशीर्वाद दिया ॥ १३३ ॥ कृष्णकी समस्तसेना कुमारने अपनी विद्यासे व्यामोहित करदी थी उसै उसीसमय उज्जीवित करदिया और बडे आनंदसे समस्त बंधु बांधवोंके साथ पुरी द्वारिकामें प्रवेश किया ॥१३४॥ कुमार प्रद्युम्नकी प्राप्तिसे रानी रुक्मिणी और जांबवतीको परमानंद हुआ और पुत्रके स्नेहसे प्रेरित हो उन्होंने कुमारकी प्राप्तिका उत्सव मनाया ॥ १३५ ॥ मान्य कुमार प्रद्युम्नका, अपनी सुंदरतामें अन्य स्त्रियोंको लज्जित करनेवालीं अनेक उत्तमोत्तम कन्याओंसे विवाह होगया और वह सानंद भोग भोगने लगा ॥ १३६ ॥ जिससमय दुर्योधनकी पुत्री उदधिकुमारी आदिके साथ कुमार प्रद्युम्नका विवाह हुआ उससमय उत्सव देखनेकेलिये सुवर्णकी मूर्तिके समान मनोहर रानी कनकमाला भी द्वारिकामें आई जिससे कि कुमारका विधिपूर्वक वडे ठाट वाटसे विवाह किया गया एवं पूर्वभवमें जिनेंद्रकी आज्ञानुसार चलनेसे उपार्जित पुण्यकी महिमासे वे सानंद भोग भोगनेलगे ॥१३७ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें कुरुवंश, प्रद्युम्न और उसके माता पिताका समागम वर्णन करनेवाला सैंतालीसवां सर्ग समाप्त हुआ॥४७॥

अडतालीसवां सर्ग।

गणधर गौतमनें राजा श्रेणिकसे कहा—राजन्! अब मैं कृष्णके पुत्र शंब और सुभानुकी उत्पत्तिका वर्णन करता हूं तुम ध्यानपूर्वक सुनो—

राजा मधुका भाई कैटभ अच्युत स्वर्गमें जाकर देव हुआ था सो वहांकी जब उसकी आयु समाप्त होने आई तो केवलीके मुखसे यह जान कि तू कृष्णका पुत्र होगा एकदिन कृष्णकी सभामें आया और कृष्णको एक हार भेंटमें दे यह कहकर कि 'आप जिस रानीको यह हार प्रदान करेंगे उसीके गर्भमें मै आऊंगा' अपने स्थान चला गया। रुक्मिणी और सत्यभामाकी आपसमें बड़ी भारी अनवन थी। कृष्णने यह सोचकर कि–'यदि प्रद्युम्नका भाई सत्यभामाके गर्भमें आजायगा तो दोनोंकी आपसमें मित्रता हो जायगी' वह हार सत्यभामाको देनेकेलिये निश्चय करलिया। किसीप्रकार रानी रुक्मिणीको भी इस बातका पता लगा और उसने कैटभके जीवको जांबवतीके गर्भमें आनेकेलिये प्रद्युम्नसे कहा। प्रद्युम्न बड़ा कुतूहली था। उसने शीघ्र ही अपने विद्याबलसे जांबवतीको सत्यभामा बनाया और कृष्णके पास भेज दिया। जांबवतीने कृष्णके साथ भोग विलास कर अंतमें वह हार पालिया जिससे कि उसीसमय पुण्यके माहात्म्यसे उसके गर्भमें अच्युत स्वर्गसे चयकर कैटभके जीवने जन्म धारण करलिया। इसतरह गर्भ धारण कर जब जांबवती अपने महल चली आई तो उसके बाद सत्यभामा भी पहुंची और कामसे विह्वल हो कृष्णके साथ मनमानी क्रीड़ा करने लगी जिससे कि उसके गर्भमें भी स्वर्गवासी किसी देवका जीव अवतीर्ण होगया ॥ १–५ ॥ दोनों रानियोंका गर्भ दिनोंदिन बढ़ने लगा एवं चंद्रमाके उदयसे जिसप्रकार समुद्र लहलहा उठता है दोनों रानियोंके गर्भसे उनके पिता माता और बंधुओंका आनंद बढने लगा ॥ ६ ॥ नौमासके पूर्ण होजानेपर रानी जांबवतीके शंब और सत्यभामाके सूर्यके समान देदीप्यमान सुभानु पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥ इसतरह प्रद्युम्न और शंबसे तो रानी रुक्मिणी और जांबवतीको एवं कुमार भानु और सुभानुसे रानी सत्यभामाको परम आनंद होने लगा। ॥ ८ ॥ राजा कृष्णको अन्य स्त्रियोंसे भी बहुत पुत्र पैदा हुये जो कि समस्त यादवोंको परम आनंद प्रदान करनेवाले, महासत्यवादी, पराक्रमी और यशस्वी थे ॥ ९ ॥ पराक्रमी कुमार शंब समस्त क्रीडाओंमें वडा प्रवीण था सैकड़ों कुमार उसके साथ क्रीडा करते थे और अपने समवयस्क कुमार सुभानुकी वह तनिक भी खेलकूदमें तीन पांच नहिं चलने देता था ॥ १० ॥

रुक्मिणीके भाई रुक्मीके एक महामनोज्ञ कन्या थी रुक्मिणीने उसे कुमार प्रद्युम्नकेलिये मांगा परंतु उसने किसी पूर्वविरोधसे कन्या देनेकेलिये इन्कार करदिया। ॥ ११ ॥ यह समाचार कुमार प्रद्युम्नने भी सुना। प्रद्युम्न और शंब दोनों कुमारोंने भीलका रूप बनाया और रुक्मीको जीतकर कन्या हरले आये ॥ १२ ॥ वह कन्या अपनी सुंदरतामें दूसरी लक्ष्मी थी कुमार प्रद्युम्नने उसके साथ विधिपूर्वक विवाह किया और उसके साथ मनमाने भोग भोगते हुये वह द्वारिकामें सानंद रहने लगा ॥ १३ ॥

एकदिन कुमार शंव और सुभानुका आपसमें जूआ हुआ जिसमें कि शंवने सुभानुका समस्त धन जीतकर यांचकोंको वांट दिया ॥१४॥ सुभानु और शंव पक्षियोंकी बोली बोलना वहुत अच्छी तरह जानते थे उसमें भी उनका वाद छिडा जिसमें कि शंवने फिर सुभानुको जीतलिया। एकदिन सुगंधिकी परखमें कृष्णकी सभामें शंव और सुभानुका शास्त्रार्थ हो पडा। शंवने उसमें भी सुभानुको छकादिया ॥१५॥ इसके वाद शंवने अग्निमें शुद्धकर ज्योंके त्यों वस्त्र पहिने, दिव्य भूषणोंकी रचना की किंतु सुभानुसे वैसा काम न होसका इसलिये शंवने इन वातोंमें भी सुभानुको परास्त करदिया ॥१६॥ बालकालसे ही कुमार शंबका ऐसा अद्वितीय पराक्रम देख राजा कृष्णको बड़ा आनंद हुआ। जिससे कि उनने शंवको वरमांगनेकेलिये वाध्य किया। पिता कृष्णको अपने ऊपर ऐसा प्रसन्न देख उसने एकमासका राज्य मांगा और कृष्णने उसै वह प्रदान भी करदिया। परंतु राज्यके मदसे मत्त हो शंवकुमार अन्यायमार्गमें प्रवृत्त होगया—वह समस्त क्रियायें अन्यायरूप करने लगा ॥ १७ ॥ कृष्णको उसपर बडा क्रोध आया और उसै राज्यसे निकाल दिया। एकदिन सत्यभामा वनक्रीडाकेलिये गई। कुमार प्रद्युम्नने अपनी मायासे शंवको एक महामनोहर विद्याधर कन्या बना वहां बैठा दिया। ज्योंही सत्यभामाने शंवको विद्याधर कन्याके वेषमें देखा वह उसकी सुंदरता देख चकित रहगई और सुभानुके साथ विवाहार्थ उसै अपने महल ले आई ॥ १८ ॥ ज्योंही शंव महलमें आया लोगोंके देखते देखते ही उसने अपना असली रूप करलिया और कुमार सुभानुके साथ विवाहार्थ जितनी कन्यायें आई थी जवरन उन सवको अपने साथ विवाह डाला जिससे कि एकही रात्रिमें सौ विद्याधर कन्याओंके साथ विवाह करनेसे अपनी मां जांववतीको परम आनंदित किया ॥ १९–२० ॥ सत्यभामा आदि पटरानियोंके कुमारोंने भी सैकडों कन्याओंके साथ विवाह किया और उनके साथ वे इंद्रके समान रमण क्रीडा करने लगे ॥ २१ ॥

एकदिन कुमार शंव अपने माननीय पितामह (बाबा) वसुदेवके पास क्रीडागृहमें गया और उन्हें नमस्कार कर इसप्रकार कहने लगा—

"पूज्य बाबा! आपने बहुत कालतक पृथ्वीपर जहां तहां भ्रमण किया, भांति भांतिके क्लेश भोगे, तब कहीं आपको पूज्य विद्याधर कन्यायें मिल सकीं। परंतु मैंने तो एक ही रातमें घर रहकर विना ही कष्टके सौ कन्यायें प्राप्त करलीं। वताओ! हम अच्छे कि आप?' शंवकी यह वात सुन वसुदेव हंस पड़े और उससे इसप्रकार कहने लगे—

वत्स! तू वाणके समान पर(प्रद्युम्न)से प्रेरित हो चलता है और चलाया हुआ भी फिर घरमें आकर पड़ जाता है एवं हम स्वतंत्र हैं इसलिये हममें और तुझमें

बहुत भेद है। मैं विद्याधरोंके नगररूपी विशाल समुद्रका मगर हूं और तू द्वारिकारूपी कूपका मंडूक है। फिर भी तू मुझे अपने समान मानता है और अपनेको पंडित गिनता है! अरे! विद्याधरोंके नगरोंमें जाकर जो कुछ मैने देखा सुना और अनुभव किया है। वह दूसरोंके लिये सर्वथा दुर्लभ है–हर एक मनुष्यमें यह सामर्थ्य नहीं जो मेरे समान देख सुन और अनुभव कर सके" ॥ २२–२७॥ बाबा वसुदेवकी ऐसी वात सुन कुमार शंवने कहा––

"पूज्य! आप अपना सब वृत्तांत कहैं। मुझै आपके वृत्तांत सुननेकी बड़ी इच्छा है" उत्तरमें वसुदेवने कहा––

प्रियवत्स! तुम आनंदभेरी बजाकर समस्त यादवोंको इकट्ठा करो मैं सबके सामने अपनी कथा कहूंगा ॥ २८–२९ ॥ शंवने वसुदेवकी आज्ञानुसार यादव और उनके स्त्री पुत्रोंको एकत्र किया और वसुदेवने उन सबके सामने प्रद्युम्न और शंवकी उत्पत्ति पर्यंत लोकालोकका विभाग, हरिवंशका कीर्तन, अपनी क्रीड़ा, सूर्यपुर की प्रजाका आक्षेप, सूर्यपुरसे निकलना इत्यादि अपना दिव्यचरित्र सुनाया। वसुदेवके मुखसे इसप्रकार उनका वृत्तांत श्रवणकर सभामें स्थित विद्याधर रानियोंको भी अपने वृत्तांतका स्मरण हो आया इसलिये उन्हैं वडी प्रसन्नता हुई ॥ ३०–३३ ॥ सभामें स्थित वृद्ध स्त्रियां युवतियां, बालिकायें, यादवोंके रनवांस, पांडव, द्वारिकाके मनुष्य आदि सबको परम आनंद हुआ और शिवा आदि देवियां वसुदेवकी कथारूपी अमृतका आस्वाद कर निस्संशय हो वसुदेवकी बार बार प्रशंसा करती हुई वड़ा आश्चर्य करने लगीं ॥ ३४–३५ ॥ इसके बाद यादव राजा यथायोग्य अपने अपने स्थान चले गये और उनके अंतःपुरकी स्त्रियां भी सेवकोंसे भलेप्रकार रक्षित हो अपने अपने महल चलीं गईं ॥ ३६ ॥ कृष्ण आदिके वैभवके सामने राजा वसुदेवकी कथा कुछ २ प्रजा भूलने लग गई थी किंतु उसदिनसे पुनः वसुदेवकी कथा ताजी हो घर घर होने लगी और उनकी कथासे लोगोंको वडा आश्चर्य होने लगा ॥ ३७ ॥ राजा श्रेणिकने गणधर गौतमसे पूछा––

प्रभो! द्वारिकापुरीमें क्रीडा करनेवाले यादवोंके कुछ पराक्रमी कुमारोंका वृत्तांत सुनाइये। उत्तरमें गणराज इसप्रकार खुलासा कर कहने लगे––

धर, गुणधर, युक्तिक, दुर्धर और सागर चंद्र ये पुत्र राजा उग्रसेनके थे ॥ ३८–३९ ॥ महासेन शिवि स्वस्थ विपद और अनंतमित्र ये पुत्र उग्रसेनके चाचा राजा शांतनुके थे ॥ ४० ॥ महासेनका पुत्र सुषेण, विपमित्रका हिदिक, शिविका सत्यक, हिदिकका कृतिधर्मा, और दृढ़धर्मा, सत्यकका वज्रधर्म, और वज्रधर्मका असंग नामका पुत्र हुआ ॥ ४१-४२ ॥ राजा समुद्रविजयके महासत्य, दृढनेमी, भगवान अरि-

ष्टनेमि, सुनेमि, जयसेन, महीजय, सुफल्गु, तेजःसेन, अभय, मेघ, शिवनंद, चित्रक, और गौतम आदि पुत्र हुये ॥ ४३–४४ ॥ अक्षोभ्यके उद्धव, वच, क्षुभितवारिधि, अंभोधि, जलधि, वामदेव, और दृढ़व्रत, ये सात पुत्र थे। ऊर्मिवान, वसुमान, वीर, पाताल, स्थिर, ये पांच पुत्र स्तिमितके, विद्युत्प्रभ माल्यवान और गंधमादन ये तीन हिमवानके, अकंपन वलि युगंत केसरी धीमान और लंवूष ये छै पुत्र विजयके, महेंद्र मलय सह्य गिरि शैल नग और अचल ये सातपुत्र अचलके, वासुकि धनंजय कर्कोटक श्वेतमुख और विश्वरूप ये पांच पुत्र धारणके, दुष्पूर दुर्मुख दुर्दश और दुर्धर ये चार पुत्र पूरणके, एवं चंद्र शशांक चंद्राभ शशी सोम अमृतप्रभ ये छै पुत्र राजा अभिचंद्रके थे। समुद्रविजय आदि सवोंसे छोटे राजा वसुदेव थे और उनके महा पराक्रमी बहुतसे पुत्र थे। उनमें रानी विजयसेनासे अक्रूर और क्रूर दो पुत्र उत्पन्न थे। श्यामासे ज्वलनवेग और अनिलवेग, गंधर्वसेनासे वायुवेग अमितगति और महेंद्रगति, मंत्रि-पुत्री पद्मावतीसे दारु वृद्धार्थ और दारुक, नीलयशासे सिंह और मतंगज, सोमश्रीसे नारद और मरुदेव, मित्रश्रीसे सुमित्र कपिल और कपिलात्मज, दूसरी पद्मावतीसे पद्म और पद्मक, अश्वसेनासे अश्वसेन, पौंड्रासे पौंड्र, रत्नवतीसे रत्नगर्भ और सुगर्भ, सोमदत्तकी पुत्रीसे चंद्रकांति और शशिप्रभ, वेगवतीसे वेगवान और वायुवेग, मदनवेगासे दृष्टिमुष्टि, अनावृष्टि और हिममुष्टि, बंधुमतीसे बंधुषेण और सिंहसेन, प्रियगुसुंदरीसे शीलायुध, प्रभावतीसे गांधार और पिंगल, जरासे जरत्कुमार और वाहीक, अवंतीसे सुमुख दुर्मुख और महारथ, रोहिणीसे वलदेव, सारण और विदूरथ, बालचंद्रासे वज्रदंष्ट्र और अमितप्रभ, और देवकीसे राजा श्रीकृष्ण उत्पन्न थे एवं ये समस्त ही वसुदेवके पुत्र महाप्रतापी और सुंदर थे ॥ ४५–६४ ॥ तथा उन्मुंड निषध प्रकृतिद्युति चारुदत्त ध्रुव पीठ शक्रदमन श्रीध्वज नंदन धीमान दशरथ देवनंद विद्रुम संतनु पृथु शतधनु नरदेव महाधनु आदि बहुतसे पुत्र बलभद्रके थे ॥ ६५–६८ ॥ भानु सुभानु भीम महाभानु सुभानुक वृहद्रथ अग्निशिख विष्णुसंजय अकंपन महासेन धीर गंभीर उदधि गौतम वसुधर्म प्रसेनजित् सूर्य चंद्रवर्मा चारुकृष्ण सुचारु देवदत्त भरत शंख प्रद्युम्न और शंव आदि बहुतसे पुत्र श्रीकृष्णके थे। ये समस्त ही राजकुमार शस्त्र अस्त्र और शास्त्रोंके पूर्ण जानकार थे और युद्ध करनेमें भी महाप्रवीण थे ॥ ६९–७२ ॥ इसप्रकार यादवोंके पुत्र पौत्र भूआके लड़के भानजे सब मिलकर साढ़े तीन करोड़ कुमार थे। ये समस्त कुमार कामदेवके समान परमसुंदर महाप्रतापी और क्रीड़ा करनेके अतिशय प्रेमी थे ॥ ७३–७४ ॥ जिसप्रकार नागकुमारोंसे पाताललोकमें स्थित नागपुरी शोभित होती है उसीप्रकार नानाप्रकारके वेषोंसे शोभित, परमप्रतापी, पुरवासी प्रजाको आनंद देने-वाले, रथ और हाथियोंपर सवार हो नगरसे वाहिर आने जानेवाले इन यादवोंके

वीर कुमारोंसे उससमय पुरी द्वारिका सदा अतिशय रमणीय जान पड़ती थी ॥ ७५॥

प्रायः स्वर्गोंसे आये हुये जैनधर्मके आचरणसे परम पुण्यात्मा स्तुतिके योग्य यादवोंके कुमारोंका यह चरित्र वर्णन किया गया है। जो बुद्धिमान मनुष्य एकाग्र चित्त हो इसे सुनते हैं और श्रद्धान करते हैं उनकी वृद्धा अवस्था सर्वथा छूट जाती है और वे सदा कुमार और युवा बने रहते हैं ॥ ७६ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें यादवोंके कुमारोंका वर्णन करनेवाला अडतालीसवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४८ ॥

उनचासवां सर्ग।

राजा कृष्णकी छोटी बहिन, उत्तम, चंद्रमाके समान निर्मल यश धारण करनेवाली, उत्तमोत्तम गुणरूपी भूषणसे भूषित, यशोदाकी पुत्री (जो कृष्णके बदलेमें आई थी) ने जिससमय नवीन यौवनमें पैर रक्खा उससमय उसके कोमल पदकमल, चंद्रमाके समान देदीप्यमान नखरूपी मणिमंडलसे युक्त, अंगुलीरूपी पल्लवोंसे शोभित, और अपनी स्वाभाविक ललाईसे सूर्य और मावरकी हंसी करते थे। उनके पृष्ठभाग सम और उन्नत थे जिससेकि अपनी अद्वितीय सुंदरतासे उन्होंने समस्त पदार्थ जीतलिये थे कोई भी पदार्थ उनकी उपमा धारण नहिं कर सकता था इसलिये वे निरुपम थे ॥ १–२॥ उसकी दोनों जंघायें (तिलियें) गूढ़ गुल्फ और घोंटुओंसे शोभित थीं। गोल २ और रोमोंसे रहित थीं। कटिभागका भार वहन करनेके लिये सर्वथा समर्थ और निरुपम थीं। ॥ ३ ॥ उसके दोनों उरुभाग कोमल गोल और शुभ्र थे, प्रचुर और देदीप्यमान कांति और दीप्ति रूपी रससे पूर्ण थे। यद्यपि संसारमें उरुओंको हाथीकी सूँड़की और केलाके स्तंभकी उपमा दी जाती है पर वह उपमा वहांपर लागू नहि हो सकती थी क्योंकि हाथीकी सूंड कठोर होती है और उसकी जंघा कोमल थीं एवं केलाका थंभ नीरस होता है और उसकी जंघा सरस थीं ॥ ४ ॥ उसकी जघनस्थली नानाप्रकारके रसोंसे पूर्ण, वर्णरूपी कुल पर्वतोंसे उत्पन्न, राजकुमाररूपी कलहंसोंसे युक्त पुण्यरूपी नदीके पुलिनसरीखी जान पड़ती थी और दोनों नितंब, तट मालूम पड़ते थे ॥ ५ ॥ वह कन्या सूक्ष्म कोमल रोमराजिसे अतिशय देदीप्यमान थी, उसकी नाभि गहरी और नेत्रोंको अतिशय प्रिय थी, उसके उदरपर मनोहर त्रिवलि अजव ही शोभा वढ़ा रही थी इसलिये अपनी सुंदरतासे उसने संसारकी समस्त रमणियोंको जीत लिया था ॥६॥ उसके वक्षस्थलपर नील अग्रभागोंसे शोभित कठिन गोल पीन स्तन, 'अमृत रस बाहिर न निकलजाय' इस भयसे इंद्रनीलमणिसे मुह वंद किये हुये सुवर्णमयी कलश सरीखे जान पड़ते थे ॥ ७ ॥ उसकी दोनों भुजलतायें शिरीष पुष्पके समान कोमल स्थूल

और उत्तम कोठोंसे भूषित थीं, कमलके समान ललोंई हथेलीरूपी पल्लवोंसे मनोहर कुरवक वृक्षके समान रक्त नखरूपी पुष्पोंसे अलंकृत और अपने सुंदर आकारसे मुद्गलोंके स्वरूपको तिरस्कृत करतीं थीं इसलिये उनसे वह कन्या अति सुंदर जान पड़ती थी ॥ ८ ॥ उसका कोमल कंठ शंखके समान था, चिबुक और अधर विंबाफल सरीखे थे, कपोल भाग श्वेत, भौं कुटिल और ललाट मनोहर था उसके नेत्र कुछ श्वेत काले विशाल और अतिशय कोमल कमलके नालदंडके समान कानों तक लंबे थे ॥९॥ उसका मुख चंद्रमाके समान था, प्रतिसमय हंसती रहती थी इसलिये दांत खिले हुये रहते थे और उसके भोंरेके समान काले काले घूंघरवाले केश सदा कटिभागपर ललरते रहते थे इसलिये वे कामी लोगों के वश करनेकेलिये कामपाश सरीखे जान पड़ते थे ॥ १० ॥ हाथोंमें कड़े, पैरोंमें नूपुर मुद्रिका आदि चौदह भूषणों से भूषित थी, सुगंधित अंगराग कोमलवस्त्र और उत्तम माला पहिनती थी। कन्याके लिये जो उचित सुख थे उन्हें भोगने वाली थी, पिता माता और कुटुंबी यादव उसका पूर्ण आदर सत्कार करते थे–गौरवसे रखते थे वह अनेक कला और गुणों की भंडार थी और साक्षात् सरस्वती सरीखी जान पड़ती थी ॥ ११–१२ ॥ इसप्रकार उस कन्या का सुखसे काल व्यतीत होता था कदाचित् बलदेवके पुत्रोंने उसे चिपटी नाकवाली कहकर चिड़ा दिया इसलिये ज्योंही दर्पण सामने रख उसने अपनी नाक चिपटी देखी वह बड़ी लज्जित हुई और उसीसमय उसै संसारसे उदासीनता होगई ॥ १३ ॥ उससमय द्वारिकापुरीमें व्रतधर नामके मुनिराज और आर्यिकाओंकी शिरोमणि आर्यिका सुव्रता अनेक आर्यिकाओंके साथ द्वारिकामें आई थी। कृष्णकी बहिन वह कन्या मुनिराज और आर्यिकाओंके दर्शनार्थ गई। आर्यिका सुव्रताके साथ मुनिराजके पास जाकर कन्याने अपना पूर्वभव पूछा। वे मुनिराज अवधिज्ञानी थे इसलिये उसके पूर्वभवका इसप्रकार वर्णन करने लगे —

"पुत्री! सुराष्ट्र देशमें तू निर्भय विषय और इंद्रियजन्य सुखोंमें मत्त, महामूढ़-बुद्धि पुरुष था। तुझै अपने रूपका बड़ा घमंड था और तेरे मन और नेत्र निरंकुश थे। ॥ १४–१५ ॥ एक दिन तू गाड़ी भरकर कहीं जा रहा था। मार्गमें वनकेबीच एक परमपवित्र मुनिराज मृतशय्या आसनसे महाविषम तप तप रहे थे। तूने उनका कुछ भी विचार न कर उनके उपरसे गाड़ी चला दी जिससे कि उनकी नाक पिचक गई वे मुनिराज महा धीर वीर थे उन्हें जरा भी खेद न हुआ–उन्होंने सब पीड़ा सहली ॥१६॥ विना विचारे यदि किसी सामान्य जीवका भी घात हो जाय तो उससेही जब महादुखभोगना पड़ता है तब मुनिराजके घातसे और उनके किसी अवयवके छेदन करनेसे कितना प्रबल पाप न होगा यह कहा नहिं जा सकता। मुनिराजके शरीरके अवयवके छेदनेसे तुझै तो कुछ भी पीड़ा नहिं हुई है केवल उनके अवयवके छेद करनेसे तेरे नाक की

विकृति होगई है क्योंकि यह नियम है संसारमें जैसा कर्म किया जाता है तदनुसार उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है ॥ १७॥ भगवान जिनेंद्रका यह कथन है कि जो एकवार भी दूसरेको मारता है वह अनेक वार दूसरोंद्वारा मारा जाता है और जो एक वार भी दूसरेका अंग छेदता है उसका अनेक वार अंग छेदा जाता है ॥ १८ ॥ जो मनुष्य राजा बन कठोरतासे इस जन्ममें मन वचन कायसे पुरुषोंके वध आदि कार्यमें प्रवृत्त होते हैं चाहैं वे कैसे भी चतुर क्यों न हों परभवमें उनका पाप उनका मालिक बनता है और उन्हें अनेक प्रकारके कष्ट देता है ॥१९॥ इसलिये जो मनुष्य शुभ कर्मके उदयसे राजा बन गये हों उन्हैं चाहिये कि वे किसीप्रकार परका वध आदि न करें अपना और पराया कल्याण करते रहैं क्योंकि ये विचारे संसारी जीव इस संसारमें सदा घूमते फिरते हैं और अपने कियेका फल भोगते रहते हैं इसलिये यह कोई नियम नहीं कि वे हर एक भवमें राजा ही होते रहैं" ॥ २० ॥ इस प्रकार उपदेश सुन मुनिराजको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर वह सुव्रता आर्यिकाके साथ चली आई और समस्त बंधुजनोंसे मोह तोड़ एक सफेद वस्त्र धारणकर लिया एवं केशोंको उपाडकर फैक दिया ॥२१॥ पुष्पोंके समान कोमल भुजारूपी लताओंसे मंडित वह कन्या जो भूषण और माला आदि पहिने थी उसने सव उतार दिये और अपने हाथकी उंगलियोंसे मनोहर केशोंको उखाड़ती हुई ऐसी जान पड़ने लगी मानों हृदयसे भयंकर शल्यसमूहको उखाड़ रही है ॥ २२ ॥ उसके जघन वक्षःस्थल स्तन उदर और शरीर एक सफेद वस्त्रसे ढके थे इसलिये उससमय वह श्वेतबालुसे युक्त निर्मल जलसे भरी हुई शरद ऋतुकी नदी सरीखी जान पडती थी ॥ २३ ॥ निष्क्रमणके समय कुटुम्बी जनोंसे पूजित, नवीन तपसे मंडित, परम हितकारिणी इस नवीन आर्यिकाको देख समस्त मनुष्योंको यह भान होता था कि यह धृति तप कर रही है अथवा सरस्वती और रतिनेही यह साहस किया है ॥ २४ ॥ व्रत गुण संयम उपवास आदि तपोंसे और भावनाओंसे इसके भाव दिनोंदिन निर्मल होते चले गये, शास्त्रोंके रहस्यमें पूर्ण पंडिता होगई और तपके प्रभावसे उत्तमोत्तम गुणोंकी धारक प्रधान आर्यिकाओंमें इसकी गणना होने लगी ॥२५॥ बहुत दिन और वर्षोंपर्यंत इसने भगवानकी जन्म तप और निर्वाणभूमियों पर विहार किया। यह एक दिन किन्हीं भव्यजीवोंके साथ अपनी सहधर्मिणी आर्यिकाओंसे मंडित हो यात्रा करते २ विंध्याचलकी विशाल अटवीमें जा निकली ॥ २६ ॥ और तीक्ष्ण खड्गके समान निर्मल चित्तकी धारक वह (आर्यिका) उस जगह (विंध्याचलकी अटवीमें) किसी मार्गके किनारे रात्रिमें प्रतिमायोगसे विराजमान होगई। उसीसमय भूले भटके यात्रियोंकी लूटसे उदरपूर्ति करनेवाले बहुतसे भीलोंका झुंड वहांसे निकला और इस आर्यिकाको वनदेवता समझ नमस्कारपूर्वक यह वर मांग कर कि—

"देवि! यदि आज हम तेरे प्रसादसे धन पावेंगे तो सबके सब तेरे सेवक बन जांयगे" वनके वीच यात्रियोंकी तलाशमें घूमने लगा। जिससे कि उसे आर्यिकाके साथका संघ दीख पडा। वस फिर क्या था? भीलोंने अपने मनोरथके अनुसार चारो ओरसे उस संघके ऊपर धावा किया। यात्रियोंको मार धारकर उनका सब धन लूट लिया। मनोरथकी पूर्ति होनेसे प्रसन्न हो भीलोंने लोटकर आर्यिकाको उसीप्रकार देखा और उसे चमत्कारिणी देवी जान भक्तिपूर्वक नमस्कार किया॥ २७-२९॥ उसी रात्रिको एक क्रूर सिंह वहां आया और निर्दयतासे उस पवित्र आर्यिकाको भक्षण कर गया। वह आर्यिका उससमय शांतिसमाधिमें लीन और प्रतिमा योगसे विराजमान थी इसलिये अपने ध्यानसे वह तनिक भी विचलित न हुई और मर कर स्वर्ग चली गई। सो ठीक ही है जो सज्जन पुरुष हैं—वास्तविक संसारकी दशाके जानकार हैं उन पर चाहैं कैसी भी घोर विपत्ति आकर पड जाय कदापि वे साहससे च्युत नहिं होते॥३०॥ परम धर्मात्मा, आपत्तिकालमें भी अपनी समाधिका न परित्याग करनेवाली, उस आर्यिकाके शरीरको यद्यपि अपने तीक्ष्ण नख मुख और डाढ़ोंसे वह दुष्ट सिंह फाडकर खा गया था तथापि उसकी तीन अंगुलियां वचरहीं थी और उसके रक्तसे समस्त पृथ्वी तल वतल होगई थी। ज्योंही भीलोंने आकर उसे देखा वे एकंदम आकुलित होगये उन्हैं मनमें यह पूर्ण निश्चय होगया कि यह वर प्रदान करनेवाली देवता रुधिरसे प्रसन्न होती है इसलिये उसकी तीन अंगुलियोंमें त्रिशूल की कल्पनाकर उसै देवी माना। और वे दुष्ट वनके भैंसोंको मार मार कर देवीको रुधिर और मांसकी वलि देनेलगे। वह स्थान उससमय नेत्रोंको विष सरीखा जान पडने लगा। जगह जगह माखी डांस उडने लगे और वहांका प्रदेश रक्तकी दुर्गंधिसे व्याप्त होगया॥ ३१-३३॥ यद्यपि वह आर्यिका परम दयालु थी, पापोंसे रहित थी, तपके प्रभावसे उत्तमगतिमें भी गई थी तथापि मांस भक्षणका लोलुपी नरककी ओर जानेवाला यह मूढ़ लोक भीलोंद्वारा प्रसिद्ध किये गये मार्गका अनुगामी बनगया और देवीकी प्रसन्नता रुधिर और मांससे जान महिष आदि अनेक पशुओंको मारनेलगा॥ ३४॥ उत्तम देवगतिको छोड दीजिये निकृष्ट देवगतिमें भी न महिषके रक्तका पान है न त्रिशूलका धारण है और न आपसमें एक दूसरेका मारनाही है तो भी चित्रकारके समान ये कुकवि कुछ मिथ्या प्रतीकको लेकर असत्य कविता कर डालते हैं—पवित्र देवोंमें उपर्युक्त दूषणोंका उल्लेख कर अपनेको विद्वान कहलवाते हैं॥ ३५॥ सच्ची भी एकांतमें की हुई किसीकी कुचेष्टाका सर्वोंके सामने—सभामें प्रकट करना जब महापाप है तब दूसरेके अविद्यमान दोषोंका वर्णन करना तो नियमसे नरक निगोदका कारण है। ऐसा किसी विद्वानका मत नहीं कि—जो दूसरेके झूठे दोषोंका वर्णन करना महापापका कारण न होता हो॥ ३६॥ स्व और

परके महावैरी ये मूढ़कवि सच्चेको झूठा कहकर विकथाकी रचना करते हैं एवं उन कुकवियोंके वचनोंपर विश्वासकर मूर्ख मनुष्य परका वध करना आदि मिथ्या मार्गोंमें भेड़िया धसानके समान गिरते चले जाते हैं ॥ ३७ ॥ कहां तो विधिपूर्वक आराधन करनेपर जीवोंको परम सुख देनेवाला परकी दयाकरना रूप परम धर्ममार्ग ? और कहां इस कलिकालमें धर्मके रूपमें. कुकवियोंद्वारा गढ़ागया नरक निगोदका कारण परजीवोंकी हिंसाकरना रूप महान अधर्म ? । राजाके गुणोंसे भूषित,—परम न्यायवान, दुष्ट लोगोंके भयसे प्रजाकी रक्षाकर उनपर अनुग्रह करनेवाले, राजा लोग भी जब कुकवियोंसे प्रेरित हो देवताओंके सामने निरपराधी महिष और मेषोंका बध कराते हैं तब अन्य सामान्य मूर्ख मनुष्य करै तो आश्चर्य ही क्या है ? ॥ ३८–३९ ॥ यहांतक देखनेमें आता है कि वरके आकांक्षी मनुष्यके कामकी सिद्धि तो उसके शुभ भाग्यके उदयसे होती है परंतु वह मूढ़ मनुष्य मूर्खतासे मानता है कि मुझै देवताकी कृपासे हुई है इसलिये वह अपना शरीर काटकर रुधिरकी वलि देनेमें भी कुछ आनाकानी नहिं करता और इसतरह जब उसै अपने शरीरके काटनेमें ही किसी प्रकारकी घृणा और दया नहिं होती तब वह अन्य जीवोंके बधकरनेमें तो दया कर ही कैसे सकता है ? ॥ ४० ॥ अच्छा माना ! भांति भांतिकी पूजनसे संतुष्ट की गई, विपरीत गुणोंसे रहित, वरदात्री देवता ही मनुष्योंको इष्ट वर प्रदान करती है तो किसी मनुष्यको अभिलषित पदार्थसे वंचित न रहना चाहिये। क्योंकि समस्त मनुष्योंकी यह इच्छा रहती है कि हम राजा, गुणी विद्वान होवें। उनकी वह अभिलाषा देवताकी कृपासे पूरी होजानी चाहिये—सव लोग राजा और विद्वान ही नजर पड़ने चाहिये ॥ ४१ ॥ अरे ! जिस मूर्ख मनुष्योंकी देवताको प्रतिदिन दीपक तेल वलि और पुष्प आदिके लिये धनियोंका मुंह ताकना पड़ता है वह देवता मनुष्योंको उनकी इच्छानुसार वर प्रदान करती है यह बड़ा आश्चर्य है—जो स्वयं असमर्थ है वह दूसरोंको कैसे समर्थ बना सकता है ? ॥ ४२ ॥ धन आदिकी अभिलाषासे रहित, कृतकृत्य, भगवान जिनेंद्रकी यदि भक्तिभावसे पूजन और स्तुति कीजाय तो जिसप्रकार कल्पवृक्षकी लता मनमानी वस्तु प्रदान करती है उसीप्रकार वह भी परजन्ममें परिणामोंकी विशुद्धिसे अभीष्ट पदार्थ देती है ॥ ४३ ॥ परका वध करना, कराना और करते हुये देख सराहना करना इन तीन अशुभ कारणोंसे दुर्गतिके कारण पापोंका आस्रव और बंध होता है परजीवोंकी दया करना कराना और करतेहुयेको देख अनुमोदना करना इन तीन शुभ कारणोंसे उत्तमगतिका कारण पुण्य आस्रव और पुण्यबंध होता है ॥ ४४ ॥ इसप्रकार जब अपने ही शुभ मन शुभ वचन और शुभ काय पुण्यके कारण हैं और अशुभ मन अशुभ वचन और अशुभकाय ये दुर्गतिको ले जानेवाले पाप कर्मके कारण हैं तब दूसरे

देवी देवता सुख दुःख देनेमें कैसे कारण हो सकते हैं ? ॥ ४५ ॥ कुगुरुको गुरु कुशास्त्रको शास्त्र और कुदेवको देव मानना रूप अज्ञान अंधकार महा प्रबल है, जीवोंकी बुद्धि और नेत्रोंको व्यामोहित करनेवाला है और इसकी कोई औषधि भी नहीं है। इस अज्ञानरूपी अंधकारसे व्याकुल वास्तविक तत्त्वोंके जाननेका अभिलाषी भी मनुष्य तत्त्व और अतत्त्वकी कदापि खोज नहिं कर सकता ॥ ४६ ॥ अनेक मनुष्य चेतनारहित समूहरूप अग्नि, पवन, जल, पृथ्वी, लता, वृक्ष, घरमें रक्खे हुये मिट्टी आदिके ढेर और नेत्रोंके गोचर सूर्य चंद्रमा तारा और ग्रहोंको देव मानते हैं उन्हें अभीष्टदायक समझ पूजते हैं। यह उनकी बड़ी भारी भूल है–ये कदापि कल्याणकारी देव नहिं हो सकते ॥ ४७ ॥ स्वद्रव्य आदि चतुष्टय और परद्रव्य आदि चतुष्टयकी अपेक्षा पदार्थ कथंचित् एक, कथंचित् अनेक, कथंचित् नित्य, कथंचित् अनित्य, कथंचित् अस्ति और कथंचित् नास्ति स्वरूप हैं। गुण गुणी और कार्य कारण आदिके भेदसे भिन्न हैं तो भी ये मूढ़बुद्धि मनुष्य अपनी गाढ़ मूढ़तासे वैसा नहि समझते ॥ ४८ ॥ प्रमाण और नयोंद्वारा भलेप्रकार निश्चितकी गई वस्तु वास्तविक वस्तु है। नैगम संग्रह व्यहार आदि सात नय मानी गई हैं। ये नय यदि आपसमें एक दूसरेकी अपेक्षा न रक्खें तो मिथ्या कहलाती हैं और सापेक्ष होनेपर सन्नय मानी जाती हैं इसतरह उन सन्नयोंसे ही वस्तुका यथार्थ स्वरूप समझा जाता है ॥४९॥ जो पुरुष भगवान जिनेंद्रके शासनका भक्त है–भलेप्रकार उस (शासन) की आज्ञा माननेवाला है एवं अन्यमें रुचि न होकर जिसकी भगवान जिनेंद्रमें ही गाढ़ रुचि है वह मनुष्य प्रयत्नके विना ही मोक्ष स्थानका लाभ कर लेता है जहांपर कि अचिंत्य अव्यावाध सुख है, समस्त पदार्थोंका साक्षात दर्शन और ज्ञान है एवं निर्दोष स्वभावकी प्रकटता है ॥ ५० ॥ यह तप, व्रत गुण और शीलका भंडार है, नाना प्रकार है, निर्दोष है, दर्शनविशुद्धि प्रदान करनेवाला है। ग्रंथकार कहते हैं कि–जिन मनुष्योंके मनमें इस अपार संसाररूपी समुद्रकी पार प्राप्त करनेकी अभिलाषा है उन्हें चाहिये कि वे भलेप्रकार उपर्युक्त तपका आराधन करैं और भगवान जिनेंद्रके गुणोंके ग्रहण करनेमें उद्यत हों ॥ ५१ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें दुर्गाकी उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला उनचासवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४९ ॥

पचासवां सर्ग।

एक दिन एक वणिक बहुतसे अमूल्य हीरा मोती लेकर उनके बेचनेके लिये जरासंधके यहां आया ॥ १ ॥ वणिकको देखते ही राजा जरासंधने कहा—

भाई तुम कहांसे आरहे हो ? उत्तरमें वणिकने कहा–प्रभो ! महापराक्रमी राजा

कृष्णकी राजधानी द्वारिकापुरीसे मैं आ रहा हूं ॥ २॥ यादवोंके स्वामी राजा समुद्रविजयके रानी शिवासे वावीसवें तीर्थंकर श्रीनेमिनाथ उत्पन्न हुये हैं उनके जन्मसे पंद्रह मास प्रथम देवोंने नानाप्रकारके रंग विरंगे रत्नोंकी वर्षा की थी उनमेंसे ही ये रत्न यहां लाया हूं॥ ३॥ वणिक और मंत्रियोंसे यादवोंका इसप्रकार वैभव सुन राजा जरासंध मारे क्रोधके आग बबूला होगया और उसके नेत्रोंसे अग्नि वर्षने लगी ॥४॥ यादवोंकी वृद्धि सुन राजा श्रेणिकको जरासंध और यादवोंके वृत्तांत जाननेकी लालसा हुई। इसलिये उसने श्रुतके वेत्ता, भगवान गौतमको नमस्कार कर पूछा कि–

भगवन्! भांति भांतिके गुणरूपी किरणोंसे शोभित, समुद्रके मध्यमें मणियोंकी राशिके समान समस्त लोकमें मख्यात, यादवोंमें जरासंधने जिसका अनेक युद्धोंमें पराक्रम प्रकट हो चुका था ऐसे कृष्णका जब नाम सुना तो क्या किया? कृपाकर कहिये। राजा श्रेणिकको इसप्रकार लालसावद्ध देख भगवान गौतम, प्रसिद्धपुरुष राजा जरासंध और कृष्णका वृत्तांत इसप्रकार कहने लगे—

यादवोंके साथ संधि करना स्वीकार न कर राजा जरासंधने उनके साथ युद्धकी कड़ी प्रतिज्ञा कर ली और तदनुसार एक दिन मंत्रियोंके साथ बैठकर इसप्रकार मंत्र भी किया कि–मंत्रियो! कहो समुद्रमें वढ़ती हुई तरंगोंके समान आज तक मेरे वैरियोंकी तुमने क्यों उपेक्षा की? ॥ ५–१० ॥अरे! मंत्री स्वामीके निर्मल चक्षु होते हैं–राजा उन्हींके द्वारा समस्त राज्यकी व्यवस्था जानता है और वे अपने जासूसों द्वारा सब हालका पता लगाते रहते हैं इसप्रकार राज्यकार्यके संभालनेमें अग्रणी होनेपर भी वे अपने स्वामीकी और अपनी वंचना करते हैं यह क्यों? ॥११॥ मैं भोग विलासोंमें मत्त था इसलिये यदि मैं शत्रुओंका पता न लगा सका तो कोई आश्चर्य नहीं! पर तुम लोगोंने क्यों नहिं लगाया? तुम तो भोगोंमें अंध न थे! समस्त राज्यका भार तुम्हारे शिरपर था ॥ १२ ॥ ये शत्रु महारोगके मानिंद हैं क्योंकि जिसप्रकार उत्पन्न होते ही रोगको दवा दिया जाय तो वह कुछ हानि नहिं करता पर वढ़ जानेपर महा संताप देता है उसीप्रकार उदय होते ही यदि शत्रुओंको दवा दिया जाय तो आगे कोई हानि नहिं होती पर वृद्धिंगत होजाने पर ये महादुःख देते हैं ॥ १३ ॥ इन दुष्ट यादवोंने मेरे जमाई कंस और भाई अपराजितको मारा है और स्वयं वचनेकेलिये इन्होंने समुद्रकी शरण ली है ॥ १४॥ यद्यपि इससमय यादव अगाध समुद्रके मध्यमें स्थित हैं तथापि उपायरूपी जालसे मछलियोंके समान उन्हें अवश्य वाहिर निकालना चाहिये और मार देना चाहिये ॥ १५ ॥ वे तभी तक पुरी द्वारिकामें निर्भयतासे रह सकते हैं जब तक कि मेरी क्रोधरूपी अग्नि प्रज्वलित नहिं होती ॥ १६ ॥ अस्तु अब तक मुझे उनका पता न था इसलिये वे अपने कुटुंबी मनुष्योंके साथ सुखपूर्वक

द्वारिकामें रहे आये परंतु अब मुझे उनका पता लग गया है वे मेरे कट्टर शत्रु हैं इसलिये कैसे सुखपूर्वक रह सकते हैं? ॥ १७ ॥ शत्रुओंके जीतनेके चार उपाय हैं साम, दाम दंड और भेद। ये यादव महा अपराधी हैं साम दामसे ये हाथमें नहिं आ सकते इसलिये अब इनके साथ भेद और दंडनीतिसे वर्तना चाहिये" ॥ १८ ॥ इसप्रकार राजा जरासंधको दंडनीतिसे यादवोंको वश करनेके लिये सर्वथा उद्यत देख मंत्रियोंने नम्र वचन कह उसे शांत किया और जब उसके चेहरेसे कुछ प्रसन्नता टपकने लगी तो वे इसप्रकार निवेदन करने लगे—

"कृपानाथ! सुनिये! हमें यह बात पूर्णतया निश्चित थी कि यादव द्वारिकामें रहते हैं और यह भी मालूम था कि कालयापनसे उनकी वृद्धि भी खासी होगई है। परंतु यदुकुलमें इससमय भगवान नेमिनाथ, बलदेव और कृष्ण ये तीन ऐसे महापराक्रमी वीर उत्पन्न होगये हैं कि उन्हें देव भी नहिं जीत सकते ॥ १९–२१ ॥ जिससमय भगवान नेमिनाथ स्वर्गसे चयकर माता शिवाके गर्भमें आये थे देवोंने रत्नवृष्टिकर उनकी पूजन की थी और जन्मते ही मेरुपर्वतपर लेजाकर अभिषेक किया था। जब नेमिनाथ ऐसे पराक्रमी हैं तब आप समस्त संसारके भी राजाओंको इकट्ठा कर क्यों न उनसे लड़ने जांय तो भी उन्हें नहिं जीत सकते ॥२२–२३॥ राजा शिशुपालके वध आदि संग्रामोंमें बलदेव और कृष्णका पराक्रम भी आप भलेप्रकार सुन चुके हैं॥ २४ ॥ आजकल प्रतापके द्वारा कीर्ति उपार्जन करनेवाले, महापराक्रमी पांडव भी उनके पक्षमें हैं। विवाह मार्गसे अनेक विद्याधर भी उन्होंने अपने अधीन कररक्खे हैं॥२५॥ और इसके सिवाय इससमय रणपंडित महापराक्रमी उनके साढ़े तीन करोड़ कुमार हैं। फिर बताइये! ऐसे सबल यादव कैसे परास्त किये जा सकते हैं ॥ २६ ॥ यादव महा नीतिमार्गके वेत्ता हैं किसी न किसी अपेक्षासे वे समुद्रके मध्यमें जाकर स्थित हुये हैं। आप यह न समझें कि मेरे भयसे उन्होंने समुद्रका शरण लिया है ॥ २७ ॥ प्रभो! यादव इससमय दैव और काल दोनों बलोंसे सन्नद्ध हैं, बड़े २ देव उनके सहायी हैं और सोते सिंहके समान हैं। इसलिये यही उचित है कि यादव जिस रीतिसे रहरहे हैं उन्हें उसीरीतिसे रहने दें कुछ भी छेड़ छाड़ न करें अपना इसीतरह काल व्यतीत करें क्योंकि जो मनुष्य अपनी और पराई कालकृत अवस्था जाननेवाले हैं वे ही संसारमें प्रशंसाके भाजन होते हैं ॥ २८–२९ ॥ यदि इसप्रकार शांतिरूपसे रहनेपर भी शत्रु कुछ गड़बड़ी मचावें और शांत न रहें तो फिर उन्हें दंड देनेकेलिये बल अवश्य काममें लाया जाय" ॥ ३० ॥

मंत्रियोंका इसप्रकार हितकारी और पथ्य भी निवेदन भला जरासंध कब माननेवाला था—उसने उसे तनिक भी न सुना। सो ठीक ही है—जब मृत्यु समीप रहती है तब

आग्रही मनुष्य अपने आग्रहको छोड़ नहिं सकता॥ ३१॥ मंत्रियोंके वचनका अपमानकर उसने शीघ्र ही अजितसेन नामका दूत बुलाया और शत्रुओंकी क्रोधाग्नि दहकानेकेलिये उसै द्वारिका भेजदिया। इसीतरह और भी अनेक दूत बुलाये और उन्हैं चतुरंग सेनासे मंडित, पूर्णरूपसे शासन माननेवाले, पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तरके राजाओं, विद्याधर राजाओं और मध्यदेश निवासी राजाओंके पास भेजा ॥ ३२-३४ ॥ एवं कर्ण और दुर्योधन आदि जरासंधके हितैषी और उसकी पूर्णतया आज्ञा माननेवाले राजाओंने ज्योंही दूत देखा वे शीघ्रही जरासंधकी सेवामें आ उपस्थित होगये। इसप्रकार महा बलवान अपने पुत्र और निमंत्रित राजाओंके साथ खोटे शकुनोंसे रोके जानेपर भी राजा जरासंध शत्रुओंके जीतनेकेलिये चल दिया ॥ ३५-३६ ॥ स्वामीके परम हितकारी दूत अजितसेनने भी जिसप्रकार पुण्यवान पुरुष स्वर्गमें प्रवेश करता है द्वारिकामें प्रवेश किया॥ ३७॥ नानाप्रकारके अद्भुतोंसे व्याप्त महा मनोहर नगरीमें प्रवेश करनेपर अनेक पुरवासी लोगोंने उसै देखा और यह भी राजमहलके द्वारपर जा पहुंचा ॥ ३८ ॥ उससमय यादवोंकी सभा लग रही थी, यादव भोज और पांडव अपने अपने स्थानोंपर बैठे थे। द्वारपालने जाकर कृष्णको दूतके आगमनका समाचार कहा जिससे कि वह शीघ्र ही वहां लाया गया और सभा नायकोंको प्रणाम कर आसनपर बैठ अपने स्वामी राजा जरासंधके बलका घमंडकर इसप्रकार कहने लगा—

"सबोंके स्वामी मगधदेशके अधिपति राजा जरासंधने जो कुछ आप लोगोंकेलिये आज्ञा दी है उसे समस्त यादव ध्यानपूर्वक सुनें। महाराजने कहा है कि—तुम ही लोग बताओ—मैंने तुम्हारा क्या अनिष्ट किया है जो कि भयसे सागरके मध्यभागमें जाकर बसे हो ? ॥ ३९-४१ ॥ यद्यपि यह बात ठीक है तुम लोगोंने प्रबल अपराधी होनेके कारण भयसे पुरी द्वारिकारूपी दुर्गका शरण ले लिया है—छिपकर वहां वास किया है पर तब भी यहां आकर मुझे नमस्कार कर मेरा शासन मानना चाहिये। ऐसा करनेसे मैं तुम्हैं अभयदान दे सकता हूं ॥४२॥ अन्यथा यदि अपने दुर्गका घमंड कर मुझे नमस्कार किये विना ही तुम वहां रहोगे—मेरी आज्ञाकी कुछ भी पर्वाय न करोगे तो याद रखना मैं समुद्रको पी जाऊंगा और अपनी प्रचंड सेनासे तुम्हैं कदर्थित कर डालूंगा ॥४३॥ जब तक मुझे तुम्हारा कोई पता न था तभीतक तुम्हारा देश और कालका बल प्रचंड था परंतु अब तुम्हारा देश और कालका बल क्या कर सकता है ?" ॥ ४४ ॥ दूतके ऐसे उद्दंड और कठोर वचन सुन सभामें स्थित समस्त कृष्ण आदिक राजा सहसा क्रुद्ध होगये और मारे क्रोधके टेढीं भौंहेकर दूतसे इसप्रकार बोले—

"तेरे स्वामीके शिरपर काल मड़रा रहा है। वह खुशीसे अपनी समस्त सेना ले यहां आये। संग्राममें हम अवश्य उसकी मिजवानी करेंगे हमारा भी चित्त इससमय

युद्ध करनेके लिये उछल रहा है" ॥४५-४६॥ यादवोंके ऐसे रूक्ष वचन सुन दूत वज्रके समान ताडित हुआ वह द्वारिकासे चलकर अपने स्वामीके पास गया और सारा हाल जरासंधको सुनाकर कृतकृत्य हुआ ॥ ४७ ॥ दूतके चले जाने पर समुद्रविजयके विचार करनेमें महाप्रवीण विमल अमल और शार्दूल नामक प्रधान मंत्रियोंने एक स्थान पर बैठ आपसमें विचार किया और अंतमें उसे अपने स्वामी समुद्रविजयसे आकर इसप्रकार निवेदन करने लगे—

"राजन्! सामनीतिसे शत्रु और मित्र दोनों दलोंके लोगोंको शांति मिलेगी इसलिये हमारी राय है कि-राजा जरासंधसे सामनीतिका प्रयोग किया जाय ॥ ४८-४९ ॥ क्योंकि यह संग्राम महा भयंकर और नाशकारी होगा इसमें कुमार आदि समस्त कुटुंबी पुरुष सम्मलित होंगे। जिससे कि उनकी कुशलतामें एक बड़ा भारी संदेह खड़ा हो जायगा। तिसपर भी फिर निश्चय नहीं जीतकी ध्वजा किसके हाथ लगे? ॥५०॥ जिसप्रकार अमोघ वाणोंकी वर्षा करनेवाले वीर हमारी सेनामें हैं उसीप्रकार राजा जरासंधकी सेनामें भी बहुतसे प्रसिद्ध वीर मोजूद हैं॥ ५१ ॥ क्या शत्रु और क्या मित्र? दोनों दलोंमेंसे यदि एक भी जातीय मनुष्यका वध हो गया तो दोनोंको अतिशय दुःख होगा ॥ ५२ ॥ इसलिये हमारी प्रार्थना है कि जब तक सामनीतिसे काम चलै तब तक दंडनीतिका अवलंबन करना ठीक नहीं इसलिये किसीप्रकारका अहंकार न जतला कर आप सामकेलिये राजा जरासंधके पास दूत भेज दें ॥ ५३ ॥ हां! यह वात अवश्य है कि यदि राजा जरासंध शांति करने पर भी सामनीतिसे शांत न हो तब जो उचित समझा जाय वह किया जाय। इससमय सामनीतिके अवलंबन करनेमें कोई हानि नहीं।" इसप्रकार मंत्रियोंने भलेप्रकार पूर्वापर विचार कर जब राजा समुद्रविजयसे अपनी सलाह निवेदन की तो 'इसमें क्या हानि है?' ऐसा कहकर उन्होंने मंत्रियोंकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और महाचतुर, पराक्रमी, परम नीतिमान कुमार लोहजंघको राजा जरासंधके साथ संधि करनेकेलिये कुछ सेना देकर भेज दिया ॥ ५४-५६ ॥ द्वारिकासे निकल कर कुमार लोहजंघने पूर्व मालवदेशके किसी वनमें आकर अपना पड़ाव डाला और वहीं एक मासके उपवासी तिलकानंद और नंदक नामके दो मुनिराजोंको जिनके कि वनमें ही आहार लेनेकी प्रतिज्ञा थी—आहारार्थ विहार करते हुए देखा। मुनिराजोंको इसप्रकार देख कुमारने उनका पडिगाहन किया और भक्तिभावसे आहार दे अपनेको कृतकृत्य माना। जब आहारविधि निर्दोषरीतिसे समाप्त होगई तो देवोंने वहां प्रसन्न हो रत्नवृष्टि आदि पंच आश्चर्य किये जिससे कि उसीसमयसे उस स्थानका नाम देवावतार तीर्थ पड़ा और हजारों प्राणियोंके पापोंका नाश करनेवाला बना ॥ ५७-५९ ॥ वहांसे चलकर कुमार लोहजंघ राजा जरासंधके

यहां पहुंचा और उसे एकांतमें ले जा संधिके लिये समझाने लगा ॥ ६० ॥ दूत लोहजंघके वचन सुन राजा जरासंध बड़ा प्रसन्न हुआ और छै मास पर्यंत संधि करनेका अपना वचन् दे शांत हुआ ॥ ६१ ॥ इसतरह राजा जरासंधसे भलेप्रकार सत्कार पा दूत द्वारिका लोट आया और राजा समुद्रविजयसे सारा वृत्तांत निवेदन कर सानंद रहने लगा ॥ ६२ ॥

लड़नेकी सामग्री इकट्ठी करनेकेलिये पहिले जो संधि हो चुकी थी जब वह समाप्त होगई–एक वर्ष पूरा होगया तब अनेक विनयी सामंतोंसे मंडित राजा जरासंधने अपनी विशाल सेनासे समस्त दिशायें व्याप्त करदीं और पराक्रमी शत्रुओंसे युद्ध करनेकेलिये प्रधान स्थान कुरुक्षेत्रमें आगया ॥ ६३–६४ ॥ अपनी विशाल सेनासे दूसरे समुद्रकी तुलना करनेवाले नारायण कृष्ण भी उस स्थानपर पहिलेसे ही आ जमे थे। उससमय कृष्णके संबंधी दक्षिण और उत्तर दिशाके अधिवासी अनेक राजा अपने अपने सैन्यबलसे सुसज्जित हो कृष्णकी पक्षमें आकर मिलगये थे ॥ ६५–६६ ॥ समुद्रविजय आदि दशार्ह भोजकवृष्णिके पुत्र पांडव एवं अन्य भी सिंहके समान पराक्रमी बहुतसे राजा उससमय कृष्णके हितमें उद्यत थे ॥ ६७ ॥ उससमय कृष्णके पक्षमें एक एक अक्षौहिणी दलके स्वामी राजा समुद्रविजय, उग्रसेन और इक्ष्वाकुवंशके तिलक राजा मेरु थे। राष्ट्रवर्धन देशका स्वामी और सिंहलद्वीपका स्वामी पद्मरथ आधे २ अक्षौहिणी दलके मालिक थे। राजा शकुनिका भाई कृष्णका परम हितैषी महापराक्रमी राजा चारुदत्त चौथाई अक्षौहिणी दलका स्वामी था ॥६८–७१॥ वर्वर यमन आभीर कांबोज और द्रविड़ आदि अन्य बहुतसे राजा भी आये थे जो कि कृष्णकी पक्षमें थे। इसीप्रकार अपने २ अक्षौहिणी दलसे मंडित हो बहुतसे राजा चक्ररत्नसे त्रिखंड पृथ्वीके भोग करनेवाले राजा जरासंधके भी पक्षमें थे ॥ ७२–७३ ॥ नौ हजार हाथी नौ लाख रथ नौ करोड़ घोड़े और नौसौ करोड़ प्यादोंकी सेनाको अक्षौहिणी सेना कहते हैं ॥७४–७५ ॥ यादवोंमें राजा समुद्रविजयका पुत्र कुमार रथनेमि, कृष्ण और बलभद्र ये तो अतिरथी थे—समस्त योद्धाओंमें मुख्य थे। राजा समुद्रविजय, वसुदेव, युधिष्ठिर, भीम, क(व)र्ण, अर्जुन, रुक्मि, प्रद्युम्न, सत्यक, धृष्टद्युम्न, अनावृष्टि, शल्य, भूरिश्रवा, हिरण्यनाभ, सहदेव, और सारण, ये राजा महारथी थे–ग्यारह हजार मत्तहाथियोंसे लड़नेवाले थे, शस्त्र शास्त्र विद्यामें महाप्रवीण, अतिपराक्रमी, अतिधीर, वीर, और अपनेसे निर्बल अथवा युद्धसे विमुख शत्रुओंपर दया करनेवाले थे–भागनेवालेका पीछा नहिं करते थे ॥ ७६–७९ ॥ राजा समुद्रविजयसे छोटे और वसुदेवसे बड़े शेष आठ भाई, शंवकुमार, भोज, विदूरथ, द्रुपद, सिंहराज, शल्य, वज्र, सुयोधन, पौंड्र, पद्मरथ कपिल, भगदत्तक, क्षेम, धूर्त, ये समस्त राजा समरथ थे–समान रूपसे बलवान थे।

॥८०-८१॥महानेमि, धर, अक्रूर, निषध, उल्मुक, दुर्मुख, कृष्ण, कृतिवर्मा, विराट, चारुकृष्ण, शकुनि,पवन, भानु, दुःशासन, शिखंडी,वाहीक, सोमदत्त, देवशर्मा, वक्र, वेणुदारी और विक्रांत ये समस्त राजा अर्धरथी थे, नाना प्रकारसे युद्ध करनेवाले थे, धीर थे एवं संग्राममें कभी भी पराङ्मुख न होनेवाले थे ॥ ८२-८४ ॥ और इनसे अतिरिक्त जितने राजा थे वे समस्त दोनों सेनाओंमें रथी थे, कुलीन, मानी और यशस्वी थे। ॥ ८५ ॥ इसप्रकार विशाल समुद्रके समान जब दोनों सेनाओंका आपसमें भिड़ाव हुआ तो कुंतीका चित्त बड़ा आकुल हुआ। कर्णको देखते ही उसका सारा शरीर गद्गद होगया वह शीघ्रही कर्णके पास आई। आदि मध्य अंतका समस्त वृत्तांत सुना कर्णके साथ अपना मा पुत्रका संबंध जनाया और उसके कंठसे कंठा लगा मोहसे विह्वल हो करुणाजनक रोदन करनेलगी ॥ ८६-८८ ॥ कर्ण कुंतीके कुमारी अवस्थामें हुआ था और उसै कंबलमें लपेटकर उसने छोड़दिया था इसलिये अभीतक कर्णको यह भी पता न था कि मैं किस वंशमें उत्पन्न हुआ हूं। परंतु इससमय मा कुंतीके कहनेसे उसै कंबल आदिका वृत्तांत मालूम हुआ और अपनेको कुरुवंशसे उत्पन्न कुंती एवं पांडुका पुत्र समझा ॥ ८९ ॥ कुंतीको अपनी मा जान अपने रणवासके साथ कर्णने उसकी पूजा की और कुंतीभी बड़े स्नेहसे उससे इसप्रकार कहने लगी—

प्रियपुत्र! उठो! जहांपर तुम्हारे भाई और संबंधी श्रीकृष्ण आदि तुमसे मिलनेके लिये उत्कंठित हो रहे हैं वहां अपन चलें ॥ ९०-९१ ॥ तात! इससमय समस्त कुरुवंशियोंका तू ही स्वामी है और कृष्ण एवं बलभद्रका प्राणोंसे भी अधिक प्यारा है ॥ ९२ ॥ तू राजा है तेरा छोटा भाई युधिष्ठिर छत्र लगानेवाला है भीम चमर ढोलनेवाला, अर्जुन मंत्री, नकुल और सहदेव तेरे द्वारपाल वा भृत्य हैं और सदा तेरा हित चाहने वाली मैं तेरी जननी हूं" ॥ ९३-९४ ॥ माताके ऐसे वचन सुन यद्यपि कर्णका हृदय भाईयोंके प्रेमसे गद्गद होगया तथापि वह राजा जरासंधका अपने ऊपर अचिंत्य उपकार समझता था—उसे स्वामी मानता था इसलिये जरासंधके कार्य करनेमें पूर्ण उत्साही हो वह इसप्रकार कहने लगा—

"मा! यद्यपि माता पिता भाई बहिन और बांधव संसारमें दुर्लभ हैं तथापि इससमय इस संग्राममें अपने स्वामीका कार्य छोड़कर बंधुओंका कार्य कदापि न करना चाहिये क्योंकि इससमय बंधुका कार्य करना सर्वथा अनुचित है और हंसी करानेवाला है। हां! मैं इसबातकी प्रतिज्ञा करता हूं कि युद्धमें मैं अपने भाईयोंके सामने न पड़ूंगा, अन्य योद्धाओंसे युद्ध करूंगा क्योंकि मुझे स्वामीकी आज्ञाका पालन करना परम आवश्यक है ॥ ९५-९८ ॥ पूज्य मा! भाग्यकी प्रबलतासे यदि हम सब इस युद्धसे वच जायंगे—लोटकर वापिस् आजावेंगे तो इसमें कोई संदेह नहीं! कि भाई बंधुओंके साथ

मेरा मिलाप अवश्य होगा ॥९९॥ इससमय तू जा और मेरा यह निवेदन मेरे भाईयों और बंधुओंसे कह दे" कर्णकी यह बात कुंतीने स्वीकार करली और उससे सन्मान पूर्वक विदा हो अपने घर चली आई जिससे कि सारा समाचार उसने युधिष्ठिर आदिसे कह सुनाया ॥ १०० ॥

राजा जरासंधका सैन्य किसी समतल भूमिमें ठहरा और उसकी सेनाको व्यूह-रचनामें महाप्रवीण राजाओंने चक्रव्यूह (चक्रके समान गोल आकार) में रचा। ॥ १०१ ॥ उस चक्रके हजार अरा थे उनमें हरएकके पास एक एक राजा और प्रत्येक राजाके सौ सौ हाथी, दो दो हजार रथ, पांच पांच हजार घोड़े एवं सोलह सोलह हजार प्यादे थे ॥ १०२–१०३ ॥ चक्रकी धाराके पास छै हजार राजा थे और उनमें प्रत्येककी घोड़ा हाथी आदिकी विभूति अराके पासमें रहनेवाले राजाओंसे चौ-थाई चौथाई थी ॥ १०४ ॥ चक्रके मध्यमें स्वयं मगधदेशका स्वामी राजा जरासंध कर्ण आदि पांच हजार राजाओंके साथ स्थित था। गांधार और सिंधुदेशकी सेना दु-र्योधन आदि धृतराष्ट्रके सौ पुत्र और मध्यदेशके महीपाल भी चक्रके मध्यभागमें थे और शेष बहुतसे राजा उसके पूर्वभागकी ओर स्थित थे ॥ १०५–१०७ ॥ महाकु-लीन, धीर वीर, अतिपराक्रमी, पचास राजा अपनी अपनी सेनाके साथ चक्रकी धारा की संधियोंपर थे ॥ १०८ ॥ मध्य मध्यमें बहुतसे गुल्मसंख्यापरिमित सेनासे मंडित राजा थे एवं चक्रके वाहिर भांति भांतिकी सेनासे मंडित अनेक राजा विद्यमान थे। ॥ १०९ ॥ इसतरह जरासंधके अतिचतुर राजाओं द्वारा रचागया यह चक्रव्यूह अपनी सेनाके चित्तको आनंद देनेवाला और शत्रुसेनाको भयकरने वाला था ॥ ११० ॥

जरासंधके चक्रव्यूहका समाचार यादवोंके कटकमें भी पहुंचा। उसे सुन राजा व-सुदेवने व्यूहकी रचनामें प्रवीण होनेके कारण शीघ्र ही चक्रव्यूहके भेदनार्थ गरुड़ व्यूहका निर्माण किया ॥ १११ ॥ पचास लाख यादव कुमार जो कि महा रणपंडित थे और शस्त्र अस्त्रोंसे भलेप्रकार सुसज्जित थे व्यूहके अग्रभागमें रक्खे। महापराक्रमी, अतिरथी, अपनी स्थिरतासे पर्वतको नीचा करनेवाले बलभद्र और नारायण—कृष्ण ग-रुड़व्यूहके मस्तकपर स्थित किये ॥ ११२–११३ ॥ अक्रूर, कुमुद, सारण, विजय, जय, पद्म, जरत्कुमार, सुमुख, दुर्मुख, मदनवेगाका पुत्र महारथी, दृढमुष्टि, विदूरथ, और अनावृष्टि (ष्णि) ये अपने (राजा वसुदेवके) कुमार बलदेव और कृष्णके पृष्ठ रक्षक बना उनके रथोंकी रक्षा करनेमें नियुक्त किये। इनके बाद भोज एक करोड़ रथोंसे युक्त कर बलभद्र और कृष्णके पृष्ठ भागमें खडा किया और उनके पीछे—गरुडके पृष्ठभागके स्थानपर रणकलामें महाप्रवीण धारण और सारण (गर) आदि राजाओंको रक्खा। ॥११४॥ गरुडके दाहिने पंखकी ओर अनेक पुत्र और विशाल सेनासे मंडित अपने बडे

भाई राजा समुद्रविजयको सन्नद्ध और इनके पृष्ठ भागमें भलेप्रकार पृष्ठकी रक्षा करनेवाले शत्रुओंके मारनेमें महाप्रवीण, महारथी सत्यनेमि, महानेमि, दृढनेमि, सुनेमि, नमि, महारथ, जयसेन, महीजय, तेजसेन, जयसेन, नय, मेघ, महाद्युति, आदि कुमार, समुद्रविजय आदि दशो भाइयोंके अन्यपुत्र एवं अन्य भी बहुतसे राजाओंको जिनके कि साथ पच्चीस लाख रथ थे–रहनेको कहा ॥ ११८ १२१ ॥ गरुडके वाम पक्षकी ओर बलभद्रके पुत्र और रणक्रियामें महाप्रवीण पांचों पांडव ठहराये इन्हींके पासमें उल्मुक, निषध, प्रकृतिद्युति, सत्यक, शत्रुदमन, श्रीध्वज, ध्रुव, राजा दशरथ, देवानंद, शंतनु, आनंद, महानंद, चंद्रानंद महाबल, पृथु, शतधनु, विप्रथु, यशोधन, दृढ़बंध और अनुवीर्य स्थित किये जो कि सुभटोंके शिरोमणि लाखों रथोंसे मंडित और शस्त्र अस्त्र कलामें महाप्रवीण थे एवं दुर्योधन आदि कौरवोंके मारनेके लिये जिनकी पूरी पूरी मुराद थी ॥ १२२–१२६ ॥ इनके पृष्ठरक्षक चंद्रयश, सिंहल, बर्वर, कंबोज, केरल, कुशल, द्रविल, आदि देशोंके राजा बनाये जो कि साठ हजार रथोंसे मंडित, महा पराक्रमी और अपने पक्षकी रक्षामें सर्वथा समर्थ थे एवं अमित, भानु, तोमर, समरप्रिय, संजय, अकल्पित, भानु, विष्णु, बृहध्वज शत्रुंजय, महासेन, गंभीर, गौतम, वसुधर्मा, कृतिवर्मा, प्रसेनजित्, दृढवर्मा, विक्रांत, चंद्रवर्मा आदि महापराक्रमी राजा अपनी २ सेनाओंसे मंडित कर कृष्णके कुलकी रक्षा करनेवाले बनाये ॥१२७–१३१॥ इसप्रकार महारथियोंकी सहायता पूर्वक चक्रव्यूहको भेदनेकी इच्छासे राजा वसुदेवने गरुडव्यूहका निर्माण किया ॥ १३२ ॥

यद्यपि दोनों दलोंके प्रवीण पुरुषोंने चक्रव्यूह और गरुडव्यूह दोनों ही अभेद्य बनाये थे–हरएक पक्षवालेको यह दृढ निश्चय था कि–शत्रुद्वारा हमारा व्यूह भिदना कठिन है परंतु इस युद्धमें पूर्वभवमें भलेप्रकार जैन धर्मकी सेवासे पुण्य संचय करनेवाला विजयी एक ही होगा–जो धर्मात्मा है वही जीतैगा ॥ १३३ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें चक्रव्यूह और गरुडव्यूहकी रचना बतलानेवाला पचासवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४३ ॥

इक्यावनवां सर्ग।

यादव गरुड़व्यूहकी रचना करके चुके ही थे कि इतनेहीमें कृष्णके हितकारी, अनेक अशनिवेग, हरिग्रीव, वराहक, सिंहदंष्ट्र, विद्युद्वेग, मानसवेग, विद्युद्दंष्ट्र, पिंगल, गांधार, नारसिंह, आदि आर्य और मातंग जातिके विद्याधर आ पहुंचे और वसुदेवके द्वारा समुद्रविजयसे मिले ॥१–४॥ समुद्रविजय आदिने उनका बड़ा सन्मान किया और आज हम कृतार्थ हुये इत्यादि शब्दोंसे अपना हर्ष प्रकट किया ॥ ५ ॥

बहुतसे विद्याधर वसुदेवके शत्रु भी थे इसलिये वे जरासंधकी कार्यसिद्धिकेलिये उसकी ओर आकर मिलगये ॥ ६ ॥ इसतरह कुछ विद्याधरोंका जरासंधकी ओर मिलजाना सुन यादवोंको बड़ा क्षोभ हुआ इसलिये भलेप्रकार सोच विचारकर उन्होंने मित्र विद्याधरोंको लानेकेलिये शंव और प्रद्युम्नके साथ पुनः वसुदेवको विजयार्ध जानेकेलिये कहा ॥७॥ राजा वसुदेवने भगवान नेमिनाथ, वलदेव, कृष्ण आदि पुत्रोंको अपनी छातीसे लगाया और कुछ पुत्र पोते एव विद्याधरोंके साथ शीघ्रही विजयार्धकी ओर प्रस्थान किया। ॥ ८ ॥ उसीसमय कुवेरने दिव्य अस्त्रोंसे परिपूर्ण, सिंह विद्याका दिव्य रथ तो बलदेवको दिया, गरुड़ध्वजासे शोभित नाना प्रकारके दिव्य अस्त्रोंसे सुसज्जित गरुडरथ श्रीकृष्णको दिया एवं ये अपने २ रथमें सवार हुये ॥ ९-१० ॥ भगवान नेमीश्वरके लिये इंद्रने अनेक शस्त्रोंसे व्याप्त अपने सारथिसे युक्त रथ भेजा और उसपर यादवोंकी कार्यसिद्धिकेलिये भगवान नेमिनाथ सवार हुये ॥ ११ ॥ कपिध्वजासे शोभित वसुदेवके पुत्र अनावृष्णिको सेनापति बनाया गया और समुद्रविजय आदि सब राजाओंने मिलकर उसका अभिषेक किया ॥ १२ ॥ उधर राजा जरासंधने भी महापराक्रमी राजा हिरण्याभको सेनापतिका पद दिया और उसीसमय उसका भी बडे आनंदसे अभिषेक किया गया ॥ १३ ॥ युद्धके समय दोनों दलोंमें भेरी और शंखोंके गंभीर शब्द होने लगे जिससे कि चारो प्रकारकी सेना एक दूसरेसे युद्ध करनेकेलिये उत्साहसे आपसमें भिड़गई ॥ १४ ॥ दोनों पक्षके राजाओंके मारे क्रोधके मुख कुटिल और भौं टेढी होगई वे एक दूसरेको बुला २ कर आपसमें घोरयुद्ध करनेलगे ॥ १५ ॥ उससमय हाथी सवार हाथी सवारोंसे, घुडसवार घुडसवारोंसे, रथसवार रथसवारोंसे और पैदल पेदलोंसे भिडगये। प्रत्यंचाके शब्द, रथोंके चीत्कार, गजोंकी गर्जना और प्यादोंके सिंहनाद दशो दिशाओंमें व्याप्त होगये ॥ १६-१७ ॥ वैल वानर और हस्तीकी ध्वजाके धारक नेमिनाथ, अर्जुन और अनावृष्णिने कृष्णके इशारेसे—ज्योंही अपनी सेनाको नष्ट भ्रष्ट करती हुई शत्रुसेना देखी त्योंही चक्रव्यूहको भेदन करनेकेलिये लडनेको वे तयार होगये ॥ १८-१९ ॥ नेमिनाथने इंद्रद्वारा दिया गया शंख वजाया, अर्जुनने देवोंद्वारा दिया गया और अनावृष्णिने बलाहक जातिका शंख पूरा ॥ २० ॥ समस्त दिशाओंके गुजानेवाले शंखोंके उन्नत शब्दोंको सुनकर यादवसेनामें बड़ा आनंद हुआ और जरासंधकी सेना भयभीत होगई ॥२१॥ सेनापति अनावृष्णिने तो चक्रव्यूहका मध्यभाग भेदा, नेमिने दक्षिणभाग और पश्चिमोत्तरद्वार अर्जुनने भेद डाला ॥२२॥ सेनानायक अनावृष्णि जरासंधके हिरण्यनाभ सेनापतिसे भिड़ गया। नेमिनाथने रुक्मीसे और अर्जुनने दुर्योधनसे मुठभैंट की ॥२३॥ एवं पांचो प्रकारके शस्त्रोंकी वर्षा करनेवाले समान शक्तिके धारक इन दोनों ओरके वीरोंका आपसमें महायुद्ध होना

प्रारंभ हुआ ॥ २४ ॥ मुनि नारद महा कलहप्रिय थे एकका दूसरेके साथ लड़ाई झगड़ा उन्हें बडा पसंद आता था वह उससमय अनेक अप्सराओंके साथ आकाशमें बैठकर युद्ध देख रहे थे और पुष्प वर्षाके साथ २ मारे आनंदके कभी २ नांच भी उठते थे ॥ २५ ॥ नेमिनाथने बहुत काल तक रुक्मीके साथ युद्ध किया और अंतमें उसे धराशायी बना अन्य हजारों राजाओंको प्राणरहित करदिया ॥ २६ ॥ इसीप्रकार राजा समुद्रविजय आदिने और उनके पुत्रोंने भी रणमें जाकर घोर संग्राम किया और अनेक शत्रु राजाओंको कालका कबल बनाया ॥ २७ ॥ जिसप्रकार मेघ हजारों धाराओंसे पर्वतोंपर क्रीडा करते हैं उसीप्रकार असंख्य बाणोंकी वर्षा करनेवाले बलदेव और कृष्णके पुत्रोंने भी रणमें शत्रुओंके साथ मनमानी युद्ध क्रीडा की ॥ २८ ॥ दुर्योधन आदि धृतराष्ट्रोंके पुत्रोंके साथ युधिष्ठिर आदि पांचों पांडवोंका जिसका वर्णन करना अशक्य है ऐसा घोर युद्ध हुआ ॥ २९ ॥ राजा युधिष्ठिर शल्यसे भिडे, भीमसेनने दुःशासनका, सहदेवने शकुनिका, और नकुलने उलूकका सामना किया ॥ ३० ॥ राजा दुर्योधन और अर्जुन दोनों ही धनुर्विद्यामें महाप्रवीण थे इसलिये दोनोंका समस्त जीवोंको महाभयावह घोर युद्ध हुआ ॥ ३१ ॥ पांडवोंने बहुतसे धृतराष्ट्रोंके पुत्रोंको तो परलोकका मार्ग दिखाया और दुर्योधन आदि बहुतोंको अधमरा कर दिया ॥ ३२ ॥ कर्णपर्यंत धनुष तानकर राजा कर्ण भी कृष्णके कटकमें टूट पडा और उसने बहुतसे योधाओंका विनाश करदिया ॥ ३३ ॥ दोनों ओरके सेनापतियोंका अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे घोर युद्ध हुआ और उसयुद्धमें अनेक वीरोंका क्षय हुआ। ॥ ३४ ॥ वीर हिरण्यनाभने यादवसेनाके सेनापति अनावृष्टिके शरीरमें अपने सातसौ नव्वे तीक्ष्ण वाणोंसे सत्तावीस घाव किये। अनावृष्णि भी बदला लेनेमें कुछ कम न था उसने भी हजार वाणोंसे हिरण्यनाभको सौ जगह घायल किया ॥ ३५-३६ ॥ रुधिरके पुत्र राजा हिरण्यनाभने अनावृष्णिकी ध्वजा छेदी अनावृष्णिने भी उसका धनुष और छत्र नीचे गिरादिया और सारथिको प्राणरहित किया ॥ ३७ ॥ हिरण्यनाभने दूसरा धनुष उठा लिया और वह भयंकरतासे वाण बर्षा करने लगा। अनावृष्णिने उसकी वाण वर्षा रोकी और उसका रथ तोड़ दिया ॥ ३८ ॥ यह देख हिरण्यनाभको बड़ा क्रोध आया वह दूसरे रथ आदि सवारीमें न चढ़ सीधा हाथमें ढाल तलवार ले अनावृष्णिकी ओर झपटा और अनावृष्णि भी हाथमें ढाल तलवार ले रथसे कूद उसके सन्मुख आ डटा ॥ ३९ ॥ ये दोनों ही खड्ग चलानेमें बड़े निपुण थे बराबर एक दूसरेके प्रहारको बचाते रहे इसलिये इनका चिरकाल तक खड्ग युद्ध होता रहा अंतमें अनावृष्णिके तीक्ष्ण खड्गके घावसे हिरण्यनाभकी दोनों भुजायें छिद गईं, छाती फट गई और वह धराशायी हो प्राणरहित होगया ॥ ४०-४१ ॥ सेनापति हिरण्यनाभके

मरजानेसे उसकी चतुरंग सेनाकी हिम्मत टूट गई वह एकदम संग्रामभूमिसे धर-भगी और शीघ्र ही जरासंधके चरणोंके शरणमें जा पहुंची ॥ ४२ ॥ इधर सेनापति अनावृष्णिको अपार संतोष हुआ वह ज्योंका त्यों पुनः रथपर सवार हो लिया और सब लोगोंसे प्रशंसित होता हुआ अपनी विशाल सेनासे मंडित हो शीघ्र ही बलदेव और श्रीकृष्णके पास जा पहुंचा ॥ ४३ ॥ बलभद्र और कृष्णने महापराक्रमी चक्रव्यूहके भेदनेवाले नेमि, अनावृष्णि और अर्जुनको बड़े आनंदसे अपनी छातीसे लगाया ॥४४॥ उससमय सूर्य अस्त होनेको था इसलिये अपने सेनापतिके मारेजानेसे अतिशय खिन्न राजा जरासंधकी सेना अपने स्थानपर चली गई । शत्रु हिरण्यनाभके मारे जानेसे यादवसेनामें बड़ा आनंद हुआ और वह जिनधर्मके प्रसादसे घूमते हुये समुद्रके समान अपने स्थान लोट आई ॥ ४५ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें सेनापति हिरण्यनाभका वध वर्णन करनेवाला इक्यावनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५१ ॥

बावनवां सर्ग ।

दूसरे दिन जब सूर्यका प्रकाश समस्त भूमंडलपर फैलगया तो उससमय कृष्ण और जरासंध दोनों युद्धकेलिये तयार हो अपनी अपनी सेनाके साथ संग्राममें आकर अवतीर्ण होगये ॥ १ ॥ दोनों कटकोंमें पहिलेके समान व्यूहोंकी रचना कीगई राजा लोग अपने २ स्थानोंपर स्थित होगये और दोनों सेनाओंमें घोर युद्ध होना प्रारंभ होगया ॥ २ ॥ राजा जरासंध उससमय एक विशाल रथमें सवार था और उसके पास हंसक नामका मंत्री बैठा था। यादवोंको सामने अड़ा देख जरासंधको उनमेंसे प्रत्येकके हाल जाननेकी बड़ी उत्कंठा हुई इसलिये उसने मंत्रीसे पूछा—

"प्रियहसक ! ये जो सामने यादव खड़े हैं उनके मुझे नाम और चिह्न बतलाओ । अन्य मनुष्योंके मारनेसे क्या प्रयोजन ? जो खास खास मनुष्य हैं उन्हें ही मारना चाहिये ।" उत्तरमें हंसकने कहा—

सुवर्णमयी सांकलोंसे शोभित, सूर्यके रथके समान मनोहर और जिसमें फेनके समान सफेद घोड़े जुते हुये हैं ऐसा वह रथ तो गरुड़ध्वजाके धारक कृष्णका है। ॥ ३–५ ॥ और सुवर्णमयी सांकलोंसे शोभित हरे वर्णके घोड़ोंसे वाहित वह रथ बैलकी ध्वजाके धारक भगवान अरिष्टनेमिका है ॥ ६ ॥ कृष्णकी दाहिनी ओर जो काले घोड़ोंका रथ दीख रहा है और जिसपर तालकी ध्वजा फेरा रही है उसमें बलभद्र बैठे हैं ॥ ७ ॥ काले घोड़ोंका वह रथ कपिकी ध्वजासे शोभित अर्जुनका है ॥ ८ ॥ ग्रीवाके अग्रभागके नीले बालोंवाले घोडोंके उस रथमें पांडुके पुत्र राजा युधिष्ठिर वि-

राजमान हैं ॥ ९ ॥ चंद्रमाके समान शुभ्र, पवन सरीखे चंचल उसरथमें हस्तीकी ध्वजाका धारक यादव सेनाका सेनापति अनावृष्णि बैठा है ॥ १० ॥ यह जो नील-कमलके घोडोंका मणि और सुवर्णसे भूषित रथ दीख रहा है सो भीमसेनका है॥११॥ यादव सेनाके मध्यमें सिंहध्वजासे शोभित, चंद्रमाके समान शुभ्र अश्वोंसे वाहित, राजा समुद्रविजयका रथ है ॥ १२ ॥ सुवर्ण और भूषणोंसे देदीप्यमान, केलाकी ध्वजासे शोभित, बलवान अश्वोंका रथ कुमार अक्रूरका है॥ १३ ॥ तीतरके समान घोडोंका रथ सत्यकका और कुमुदके समान रंगवाले घोड़ोंसे युक्त महानेमिकुमारका रथ है। ॥१४॥ सुवर्णमयी दंडकी ध्वजासे भूषित, तोतेकी चोंचके समान रंगके घोड़ोंसे वाहित वह रथ भोजका है॥ १५॥जिसमें सुवर्णमयी झूलोंसे शोभित अश्व जुड़े हैं और जिसपर हिरणकी ध्वजा फेरा रही है वह रथ जरत्कुमारका है॥ १६ ॥ वह जो कंबोज देशके घोड़ोंका देदीप्यमान रथ दीख रहा है उसमें राजा शुक्रसोमका पुत्र सिंहल बैठा है। ॥ १७ ॥ बलवान कर्वुरित वर्णके अश्वोंसे शोभित, सुवर्णके समान अंगोंका धारक, और जिसपर सूंसकी ध्वजा फैरा रही है ऐसा वह रथ राजा मेरुराजका है॥ १८ ॥ वह जो कमलके समान तुरंगोंसे भूषित, सेनाके अग्रभागमें रथ स्थित है उसमें महा पराक्रमी राजा पद्मरथ बैठा है ॥ १९ ॥ कबूतरोंके समान रंगसे शोभित, सुवर्णकी झूलोंसे भूषित, तीन वर्षके जवान घोड़ोंसे युक्त और जिसपर कमलकी पताका उड़ रही है ऐसा वह रथ सारणका है ॥ २० ॥ सफेद और लालरंगके पांचवर्षके घोड़ोंका रथ नग्नजितके पुत्र राजा मेरुदत्तका है॥ २१ ॥ पांचोंवर्णोंके घोड़ोंसे शोभित, सूर्यके समान देदीप्यमान, कलशकी ध्वजासे मंडित वह रथ कुमार विदूरथका है॥ २२ ॥ इसप्रकार महा पराक्रमी यादवोंके अनेक वर्णके रथ हैं और वे सैकडों और हजारों हैं उन्हें कोई भी नहिं कहसकता ॥ २३ ॥ हमारे पक्षके अनेक वीर राजाओंके और कुमारोंके भी भांति २ के चिन्होंसे शोभित अनेक रथ हैं जिनको कि आप भी जानते हैं॥ २४ ॥ नाना देशोंसे आयेहुये अनेक सुभट राजाओंसे इससमय आपका यह व्यूह अतिशय शोभित हो रहा है और शत्रुओंके लिये भय पैदा करा रहा है" ॥ २५ ॥

मंत्री हंसककी यह बात सुन राजा जरासंधने यादवोंके सन्मुख अपना रथ लेजा-नेकेलिये सारथिको आज्ञा दी ॥ २६ ॥ आज्ञानुसार रथ आगे बढ़ा और जरासंध बा-णधारासे यादवोंको आच्छन्न करनेलगा ॥ २७॥ राजा जरासंधके पुत्र भी अपने रथों-में बैठकर यथायोग्य यादवोंके साथ बड़े क्रोधसे युद्ध करनेलगे ॥ २८ ॥ जरासंधका सबसे बड़ा पुत्र कालयवन–जो कि शत्रुओंकेलिये साक्षात् कालके समान था–मलय नामक हाथीपर सवार हो संग्राम भूमिमें आकर भयंकर युद्ध करने लगा ॥२९॥ इसके सिवाय सहदेव, द्रुमसेन, द्रुम, जलकेतु, चित्रकेतु, धनुर्धर, महीजय, सुभानु, कांचनरथ,

दुर्धर, गंधमादन, सिंहांक, चित्रमाली, महीपाल, बृहध्वज, सुवीर, आदित्यनाग, सत्य-सत्व, सुदर्शन, धनपाल, शतानीक, महाशुक्र, महावसु, वीरास्य, गंगदत्त, प्रवर, पार्थिव, चित्रांगद, वसुगिरि, श्रीमान, सिंहकटि, मेघनाद, महानाद, सिंहनाद, वसुध्वज, वज्र-नाभ, महाबाहु, जितशत्रु, पुरंदर, अजित, अजितशत्रु, देवानंद, शतद्रुत, मंदर, हिम-वान, विद्युन्माली, केतुमाली, कर्कोटक, हृषीकेश, देवदत्त, धनंजय, सगर, स्वर्णवाहु, मघवान, अच्युत, दुर्जय, दुर्मुख, वासुकि, कंबल, त्रिशिर, धारण, माल्यवान, शंभव, महापद्म, महानाग, महासेन, महाजय, वासव, वरुण, शतानीक, भास्कर, गरुत्मान्, वेणुदारी, वासुवेग, शशिप्रभ, वरुण, आदित्यधर्मा, विष्णुस्वामी, सहस्रदिक्, केतुमा-ली, महामाली, चंद्रदेव, बृहद्बलि, सहस्ररश्मि, अर्चिष्मान्, आदि जरासंधके अनेक पुत्र युद्ध करनेलगे ॥ ३०–४० ॥ गिरकर टुकडे २ होते हुये मनुष्य हस्ती घोडे और रथोंसे भयंकर उस युद्धमें राजा वसुदेवके पुत्र कालयवनके सामने आकर डटगये ॥४१॥ वसुदेवके पुत्रोंका और कालयवनका आपसमें घोर युद्ध हुआ विवाद भी खूब चला। कालयवनने चक्र नाराच आदि अस्त्रोंसे वसुदेवके अनेक पुत्रोंके शिर छेदे और रक्तसे तलवतल वे मस्तक उससमय पृथ्वीपर कमलों सरीखे जान पड़ने लगे ॥ ४२–४३ ॥ यह देख कुमार सारण कालयवनकी ओर लपका और एकही तलवारके घातसे उसै यमलोक पहुंचा दिया ॥ ४४ ॥ बहुतसे शूरवीर जरासंधके कुमार युद्धकेलिये राजा कृष्णके सन्मुख आये और कृष्णने अपने अर्धचंद्रवाणसे शिर काट २ कर उन्हैं कालके गालमें फंसाया ॥ ४५ ॥ कालयवनकै मरजानेसे राजा जरासंधको बड़ा दुःख हुआ, क्रुद्ध हो शीघ्र ही उसनें धनुष खींचलिया और रथमें बैठकर तत्काल कृष्णके सन्मुख आ डटा ॥ ४६ ॥ ये दोनोंही वीर महा पराक्रमी और उद्धत थे और दोनों ही-की आपसमें युद्ध करनेकी उत्कंठा थी इसलिये प्रथम तो इनका सामान्य अस्त्रोंसे ही भीषण युद्ध होता रहा ॥ ४७ ॥ पश्चात् राजा जरासंधने कृष्णके मारनेकेलिये उनपर देदीप्यमान अग्निके समान भयंकर नागवाण चलाया। कृष्ण भी अस्त्र विद्यामें कम पंडित न थे उन्होंने नागोंके नाश करनेकेलिये शीघ्र ही गरुड अस्त्र छोड़ा और उसने देखते देखते समस्त नागोंको खा डाला ॥ ४८–४९ ॥ जरासंधने महा भयंकर संवर्तक अस्त्र छोड़ा कृष्णने उसे महाश्वसन अस्त्रसे उड़ा दिया ॥ ५० ॥ जब जरासंधने वायव्य अस्त्र छोड़ा तो कृष्णने अंतरीक्ष अस्त्रसे उसै रोका ॥५१॥ जरासंधने यादवोंकी सेना को भस्म करनेकेलिये आग्नेय अस्त्र छोड़ा तो कृष्णने वरुणास्त्र छोड़कर उसका वेग ठंडा किया ॥ ५२ ॥ जरासंध द्वारा चलाये हुये वैरोचन अस्त्रको कृष्णने माहेंद्रास्त्रसे रोका ॥ ५३ ॥ जरासंधने कृष्ण पर राक्षसास्त्र छोड़ा कृष्णने नारायणास्त्र छोड़कर उसे शांत कर दिया ॥ ५४ ॥ जब जरासंधने तामसास्त्र छोडा तो कृष्णने भास्करास्त्र छोड़कर

उसका अंधकार नाश किया एवं जरासंधके अश्वग्रीवास्त्रका कृष्णने ब्रह्मास्त्रसे निराकरण किया ॥ ५५ ॥ इन अस्त्रोंके अतिरिक्त जरासंधने कृष्णपर और भी अस्त्र छोड़े पर कृष्णका बाल भी बांका न हुआ वे योंके यों ही निर्द्वंद्व खडे रहे और सबका निराकरण करते गये। जरासंधकी जब कुछ भी तीन पांच न चली तो उसे बड़ा क्रोध आया! उसने शीघ्र ही धनुषको जमीन पर पटक दिया और जिसकी हजार यक्ष सेवा करते थे ऐसे चक्ररत्नका मनमें ध्यान किया ॥ ५६–५७ ॥ वह चक्र हजार किरणोंकी प्रभाका धारक था, समस्त दिशाओंको जगमगानेवाला था। ज्योंही जरासंधने उसका ध्यान किया वह शीघ्र ही उसके हाथ पर आ धरा ॥ ५८ ॥ अपने समस्त शस्त्र अस्त्रोंको निस्सार देख जरासंध उससमय क्रोधसे भवक रहा था—मारे क्रोधके उसकी भृकुटी चढ़ रहीं थीं उसने शीघ्र ही चक्र घुमाया और कृष्णपर छोड़ दिया ॥ ५९ ॥ ज्यों ज्यों वह चक्र आकाश मार्गसे कृष्णकी ओर आने लगा उसका तेज घटता गया तथापि कृष्णके कटकके राजा उसके रोकनेके लिये यथायोग्य सन्नद्ध होगये ॥ ६० ॥ कृष्णने शक्ति और गदा आदि लिये, बलदेवने हल और मूसल, भीमने गदा, अर्जुनने भांति २ के अनेक शस्त्र, सेनापति अनावृष्णिने परिघ और युधिष्ठिरने उस चक्रके रोकनेके लिये जो विषको उगल रही थी ऐसी शक्ति ली। समुद्रविजय और अक्षोभ्य आदि दश भाई भी अप्रमत्त हो नाना महा अस्त्रोंसे सुसज्जित होगये और चक्रको रोकने लगे ॥६१–६३॥ भगवान नेमिनाथ अपने अवधि ज्ञानके बलसे आगे होनेवाला सब वृत्तांत जानते थे इसलिये वे कृष्णके पास आ चक्रके आगे खडे होगये ॥६४॥ निकलते हुये फुलिंगोंसे देदीप्यमान यद्यपि वह चक्र बहुतसे राजाओंने अपने अस्त्रोंसे रोका तथापि मित्रके समान वह कृष्णके समीप आ गया। भगवान नेमिनाथके साथ कृष्णकी उसने तीन प्रदक्षिणा दीं एवं शंख चक्र अंकुश आदि अनेक शुभ लक्षणोंसे मंडित उनके(कृष्णके) दाहिने हाथपर आ धरा ॥ ६४–६६ ॥ उससमय देवगण आकाशमें दुंदुभिनाद और पुष्प वर्षा करने लगे और 'यह कृष्ण नववां नारायण है' ऐसा बडे जोरसे कोलाहल मचाने लगे ॥ ६७ ॥ उससमय अनुकूल सुगंधित पवन बहने लगी और मारे आनंदके यादवोंके हृदय उछलने लगे ॥ ६८ ॥ जब संग्राममें चक्र रत्न नारायण कृष्णके हाथमें पहुंच गया तो जरासंधको बडा दुःख हुआ और वह मन ही मन इसप्रकार विचारने लगा—

"अहा! मेरा चक्र चलाना भी व्यर्थ गया! हाय! मैं चक्र रत्नके साथ अपने पौरुषसे समस्त दिशाओंका विजय कर चुका था, तीन खंडका अधिपति और प्रचंड था सो आज पौरुष रहित निस्तेज होगया ॥ ६९–७० ॥ जब तक भाग्यका बल प्रबल है तभी तक चतुरंग सेना, काल, पुत्र, मित्र और पौरुष कार्यकारी हैं किंतु भाग्यकी प्रतिकूलतामें ये कोई भी काम नहीं आते ॥ ७१ ॥ विद्वान् जो इसबातका अहोरात्र

उपदेश दिया करते हैं कि भाग्यके प्रतिकूल होनेपर काल पौरुष पुत्र मित्र आदि सब व्यर्थ हैं यह विलकुल ठीक है—इसमें रत्तीभर भी झूठ नहीं ॥ ७२ ॥ जब मैं गर्भमें था तब भी शत्रुओंसे अलंघ्य था बलवानसे बलवान भी शत्रु मुझे नहि जीत सकता था। परंतु बड़े खेदकी वात है कि न कुछ तिनिहा मनुष्यने आज मुझे जीत लिया! अस्तु! यदि विधिने मेरा जीतनेवाला ऐसाही मनुष्य बनाया था! तब उसे गर्भकालमें क्यों भयकर यातना भोगनी पड़ी! बालकालमें गोपोंके यहां गोकुलमें रहकर क्यों उसै अचिंत्य दुःखोंका सामना करना पड़ा! इसलिये विधिकी चेष्टाको धिक्कार है ॥ ७३-७४ ॥ अरे! लोगोंकी आंखोंमें धूल झोंकनेवाली, धीर वीरोंकी धीरताकी भी नाशक, दूसरे पुरुषके चाहने वाली, वेश्याके समान इस लक्ष्मी को धिक्कार है" ॥ ७५ ॥ इसप्रकार विचार करते करते यद्यपि जरासंध को "मेरा मरणकाल समीप आ पहुंचा है" यह पूरा पूरा ज्ञान हो चुका था तथापि कृष्णके साथ उसका स्वाभाविक द्वेष था इसलिये बड़ी निर्भयतासे उन (कृष्ण) से इसप्रकार कहने लगा—

" अरे गोप! चक्रको हाथमें लेकर तू क्यों शांत खड़ा हुआ है! क्यों नहिं उसै मुझ पर चलाता! रे मूर्ख! क्या तुझे यह नहिं मालूम है कि जो मनुष्य कालकी उपेक्षा करता है—धीरे धीरे काम करनेवाला दीर्घसूत्री होता है वह बहुत जल्दी नष्ट हो जाता है" ॥ ७६-७७ ॥ स्वभावसे ही विनयी कृष्णने जरासंधके इन कठोर भी वचनोंपर तनिक भी ध्यान न दिया किंतु शांतिपूर्वक उसै इसप्रकार समझाया—

" राजन्! मै चक्रवर्ती उत्पन्न हो चुका हूं। मैं तुमसे और कुछ नहि चाहता। आजसे मेरा शासन स्वीकार करिये यही आपकेलिये मेरा आग्रह है ॥ ७८ ॥ यद्यपि आप कई वार प्रकटरूपसे हमारा अपकार कर चुके हैं तथापि हम उसे इससमय क्षमा किये देते हैं। आप हमैं नमस्कार करैं वस! इसीसे हम प्रसन्न हैं ॥ ७९ ॥" जरासंध तो अहंकारका पुतला था। कृष्णके शांतिमय वचनोंने भी उसके चित्तपर विपरीत असर डाला। वह कृष्णके सन्मुख बड़े क्रोधसे इसप्रकार गरजकर कहने लगा—

"क्या! इस पेवलीके समान चक्रको पाकर तू इतना गर्विष्ठ होगया? अथवा यह वात उचित ही है जो मनुष्य दीन दरिद्री तुच्छ हैं वे थोडीसी ही विभूति पाकर गर्व करने लग जाते हैं! किंतु जो महान हैं! उदार प्रकृतिके धारक हैं! उन्हैं विशाल भी विभूतिसे घमंड नहिं होता। तू ठहरा गरीब गोपका लड़का! चक्र पाकर तुझे घमंड करना ही चाहिये ॥ ८०-८१ ॥ अच्छा! ठहर! मै अभी अपने पराक्रमसे समुद्रविजय आदि दशो भाईयोंके साथ २ तेरे पक्षके समस्त राजाओंको और तुझे भी समुद्रमें डुबोये देता हूँ" ॥ ८२ ॥ जरासंधके ऐसे तीक्ष्ण वचन सुनकर कृष्णको बड़ा क्रोध आया। उन्होंने शीघ्र ही चक्र घुमाकर जरासंधपर छोड़ा और वह जरासंधकी

वक्षस्थल रूपी भित्तिको भेदता हुआ लोटकर पुनः ज्योंका त्यों कृष्णके हाथपर आधरा। सो ठीक ही है अपने कर्तव्य कर्मके समाप्त हो जानेपर कालक्षेप करना वृथा है ॥ ८३–८४ ॥ शत्रुके विजयके आनंदमें कृष्णने अपना पांचजन्य शंख बजाया और नेमि अर्जुन एवं अनावृष्णिने अपने अपने शंखोंके शब्द किये ॥ ८५ ॥ उससमय अपने गंभीर शब्दोंसे समुद्रकी गर्जनाकी तुलना करनेवाले बाजे बजने लगे। चारो ओर अभयदानकी घोषणा फिरगई जिससे कि दोनों पक्षकी सेनाका भय जाता रहा और विना कुछ कहै ही जरासंधकी सेना कृष्णकी आज्ञाकारिणी हो चुप हो गई ॥ ८६–८७ ॥ संसारका यह विचित्र दृश्य देख राजा दुर्योधन द्रोण और दुःशासन आदिको सर्वथा संसारसे उदासीनता होगई। उन्होंने मुनिराज विदुरके पास जाकर दिगंवर दीक्षा धारण करली ॥ ८८ ॥ राजा कर्ण भी संसारसे उदासीन हो सुदर्शन उद्यान चले गये और वहां दमवर मुनींद्रके चरणोंमें रणदीक्षाके वाद मोक्ष सुख देनेवाली दिगंवर दीक्षाको धारण कर तप तपने लगे ॥ ८९ ॥ जिस स्थानपर राजा कर्णने सुवर्णके अक्षरोंसे भूपित कर्ण कुंडल पटके थे वह स्थान तबसे कर्णसुवर्णके नामसे पुकारा जाने लगा ॥ ९० ॥ इंद्रका सारथि मातलि, नेमिनाथ आदिसे पूछकर अपने स्वामी इंद्रके पास चला गया। यादव और अन्य राजा लोग भी अपने २ स्थान लोट आये ॥९१॥

उससमय सूर्य अस्त होगया और संध्याकी लालिमा दशो दिशाओमें व्याप्त होगई सो उससे ऐसा मालूम होने लगा मानो संग्राममें श्रीकृष्ण द्वारा मारे गये जरासंधको देखकर मारे शोकके सूर्य पहिले तो खूब हिचक २ कर रोया है जिससे कि उसका मुख जपाकुसुमके समान लाल होगया और पश्चात् मृत जरासंधको जलांजलि देनेकी इच्छासे इसने समुद्रमें मज्जन किया है।

ये जीव अपने शुभ कर्मके उदयसे बलवानसे बलवान भी मनुष्योंके दबानेवाली संपत्तिको प्राप्त कर लेते हैं और उसके (पुण्यके) क्षय हो जानेपर नानाप्रकारकी आपत्तियां भोगते हैं इसलिये भव्य जीवोंको चाहिये कि वे संसार चक्रके नष्ट करनेवाले जिनेंद्रके निर्मल तपका भलेप्रकार आराधन करैं ॥ ९२–९३ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें राजराजेश्वर जरासंधका वध वर्णन करनेवाला बावनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५२ ॥

त्रेपनवां सर्ग।

दूसरे दिन प्रातःकालमें शत्रुओं द्वारा सर्वथा अलंघ्य, महा तेजके धारक, कृष्णके समान अपने प्रतापसे समस्त दिशाओंको जगमगानेवाले सूर्यका उदय होगया ॥ १ ॥ यादवोंने अपनी और जरासंधकी सेनाके घाव अच्छे करनेका प्रबंध किया और मरे

हुये जरासंध आदि राजाओंका अंत्य संस्कार किया गया ॥ २ ॥ एक दिन चक्रवर्ती कृष्णके साथ समुद्रविजय आदि समस्त राजा सभामें अपने अपने स्थानोंपर बैठे हुये थे और राजा वसुदेवके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुये "पुत्र और पोतोंके साथ राजा वसुदेवको विजयार्ध पर्वतकी ओर गये हुये बहुत दिन वीत चुके। अभीतक उनका कोई कुशल समाचार न मिला" ॥ ३-४ ॥ इत्यादि नाना प्रकारके वर्तालाप कर रहे थे कि-इतनेहीमें नागकुमारी (पूर्व जन्मकी ऋपिदत्ता) के साथ २ विजलीके समान देदीप्यमान, विद्याधरी वेगवती आदि अनेक विद्याधर स्त्रियां यादव सभामें आई और यादवोंको आशीर्वाद देकर इसप्रकार कहने लगीं—

"आप लोगोंकेलिये गुरुओं द्वारा दी गई समस्त आशीर्वादें आज सफल हुई जो कि (वसुदेवके) पुत्र कृष्णने तो जरासंध जीता और पिता वसुदेवने विजयार्धमें समस्त विद्याधरोंको अपना आज्ञाकारी बना लिया ॥ ५-७ ॥ राजा वसुदेव अपने पुत्र पौत्रों के साथ सकुशल हैं, उन्होंने बड़ोंके चरणोंको प्रणाम और पुत्रोंको आशीर्वाद कहा है" ॥ ८ ॥ विद्याधरियोंके ऐसे वचन सुन यादवोंको परम आनंद हुआ, मारे हर्षके उनके शरीर पुलकित होगये और वे इसप्रकार उनसे (विद्याधरियोंसे) पूछने लगे—

"वसुदेवने विद्याधरोंका विजय कैसे किया ? कृपाकर सब समाचार कहिये"। नागकुमारी देवी वसुदेवकी परम हितकारिणी थी इसलिये यादवोंको वसुदेवके विजयके समाचार सुननेमें लालायित देख वह इसप्रकार कहने लगी—

"वसुदेवने जो संग्राममें पांडित्य दिखाया था उसे आप ध्यानपूर्वक सुनें-अनेक विद्याधर राजा जरासंधकी सहायताकेलिये आरहे थे सो विजयार्धमें पहुंचते ही वसुदेवने अपने श्वसुर और साले आदि संबंधी सब विद्याधरोंको इकट्ठा किया और उनकी समस्त सेनाको ले जरासंधके सहायी उन विद्याधरोंको घेर लिया ॥ ९-१२ ॥ दोनों सेनाओंका आपसमें घनघोर युद्ध होने लगा उससमय वहांकी प्रजा युद्धसे इतनी व्याकुल हो गई कि उसे प्रलयकालकी शंका होने लगी ॥ १३ ॥ दोनों सेनाओंके अश्व हाथी रथ और प्यादे आपसमें न्यायपूर्वक युद्ध कर कट २ कर मरने लगे ॥ १४ ॥ वसुदेव, उनके पुत्र, अभिमानी प्रद्युम्न, शंब, और अनेक विद्याधर नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे सज्जित होनेके कारण शत्रुरूपी पर्वतोंके भस्म करनेमें भयंकर दावानल सरीखे जान पड़ने लगे ॥ १५ ॥ इसी अवसरमें "राजा वसुदेवका पुत्र कृष्ण नववां नारायण अर्धचक्री उत्पन्न हुआ है, उसने गुणोंके द्वेषी प्रतिनारायण जरासंधको संग्राममें प्राण रहित कर दिया है" इसप्रकार अतिशय संतुष्ट हो देव आकाशमें ध्वनि करने लगे और उन्होंने आकाशसे चांदनीके समान राजा वसुदेवके रथपर नाना प्रकारकी रत्नमयी वृष्टि करनी प्रारंभ कर दी ॥ १६-१९ ॥ देवोंकी यह ध्वनि सुन वसुदेवके शत्रु

विद्याधर भयभीत हो गये और इधर उधरसे आकर शीघ्र ही वसुदेवकी शरण लेने लगे ॥ २० ॥ उन्होंने वसुदेवके पास आकर उनके पुत्रोंको और प्रद्युम्न एवं शंवकुमारको अनेक अपनी कन्यायें प्रदान कीं ॥ २१ ॥ प्रिय यादवो ! हम लोग वसुदेवकी आज्ञानुसार उनका कुशल समाचार निवेदन करनेके लिये आप लोगोंके पास आई हैं ॥ २२ ॥ हमारे पीछे नाना प्रकारकी भैंटें लिये कृष्णकी भक्तिसे वशंवद हो अनेक विद्याधर राजा भी वसुदेवके साथ आरहे हैं" ॥ २३ ॥

इसप्रकार धनवतीदेवी वसुदेवका कुशल समाचार यादवोंको सुनाही रही थी कि इतनेहीमें विद्याधरोंके विमानोंसे समस्त आकाश आच्छन्न होगया । वसुदेवके अनुयायी विद्याधर शीघ्र ही विमानोंसे उतरे और अपनी सेनाके साथ २ कृष्णको नमस्कार कर नाना प्रकारके रत्न भेंट करने लगे ॥ २४–२५ ॥ वसुदेवको देखते ही कृष्ण और वलभद्र सिंहासनसे उठबैठे और पास जाकर उनके चरणोंको नमस्कार करने लगे। वसुदेवने भी उन्हें छातीसे लगा लिया और शुभ आशीर्वाद दिया ॥ २६ ॥ वसुदेवने अपने बडोंको भक्तिपूर्वक प्रणाम और अभिवादन किया । प्रद्युम्न और शंव आदिने भी यथायोग्य अपने पूज्य और बंधुओंको प्रणाम किया ॥ २७ ॥ चक्रवर्ती कृष्ण और बलदेवने विद्याधरोंका यथायोग्य सन्मान किया जिससे कि उन्होंने वड़े आनंदके साथ अपने जन्मको सफल माना ॥ २८ ॥ इसप्रकार सब प्रकारके मनोरथोंसे पूर्ण, समस्त सेनासे मंडित, कृष्ण और बलदेवने पश्चिम दिशाकी ओर प्रस्थान किया ॥ २९ ॥ राजा जरासंधके मारे जानेसे यादवोंने जहांपर आनंदनृत्य किया था उसस्थानका नाम उसदिनसे आनंदपुर पड़ा और वहां अनेक जिनमंदिर जगमगाने लगे ॥ ३० ॥ कृष्णने चक्ररत्नकी पूजाकी एवं सर्व रत्नोंसे मंडित हो अनेक देव असुर और मनुष्योंसे व्याप्त दक्षिण भरतक्षेत्रका विजय किया ॥ ३१ ॥ आठ वर्ष पर्यंत कृष्णने प्रतिदिन निरवच्छिन्न रूपसे अनेक भोग भोगे, जिन राजाओंको वश करना था वश किया और आठ वर्षके वाद वे कोटिक शिला उठानेके लिये गये ॥ ३२ ॥ वह शिला अतिशय विशाल थी करोड़ों मुनिराज उससे मोक्ष गये थे इसलिये वह कोटिक शिलाके नाम से प्रसिद्ध थी ॥ ३३ ॥ शिलाके पास पहुंच कर पहिले तो कृष्णने उसकी तीन प्रदक्षिणा दीं। सिद्धोंको नमस्कार किया और अंतमें अपनी भुजाओंसे उसे चार अंगुल ऊंचे तक उठाया ॥ ३४ ॥ वह शिला एक योजन ऊंची एक योजन चौडी और एक योजन ही लंबी है और तीन खंडके देव उसकी सदा रक्षा किया करते हैं ॥ ३५ ॥ कृष्णके पहिले आठ नारायण और भी हो चुके हैं सबसे प्रथम त्रिपृष्ठ पुरुषोत्तमने वह शिला मस्तकके ऊपर जहां तक कि भुजा पहुंचती हैं वहांतक उठाई थी। द्विपृष्ठने मस्तकपर्यंत, स्वयंभूने कंठतक, पुरुषोत्तमने वक्षस्थल पर्यंत, पुरुषसिंहने हृदयतक, पुंडरीकने

कमरतक, दत्तकने जंघा तक, और लक्ष्मणने घोंटूतक उठाई थी ॥३६-३८॥ क्योंकि ऋषभदेवको आदि लेकर महापराक्रमी भी समस्त पुरुषोंकी हरएक युगमें कालके भेदसे शक्ति कम बढ होती रहती है॥ ३९॥ कृष्णने जो शिला उठाई थी उससे उनके महान शारीरिक बलका मनुष्योंको पूर्ण ज्ञान हुआ। वे अपने बंधु बांधवोंके साथ द्वारिकाको लोट आये और वृद्धोंके आशीर्वादोंको ग्रहणकरते हुये स्वर्गके समान मनोहर उसपुरीमें प्रविष्ट हुये ॥ ४०-४१ ॥ जब द्वारिकामें आकर साथके सब भूमिगोचरी और विद्याधर राजा अपने अपने योग्य स्थानोंमें ठहर गये तो बलदेव और श्रीकृष्णका राज्याभिषेक किया गया उन्हैं अर्धचक्रीके पदपर स्थापित किया॥४२-४३॥ इसतरह जब कृष्ण राजराजेश्वर बनगये तो उन्होंने जरासंधके पुत्र सिंहदेवको राजगृहमें राजसिंहासनपर विठाया और मगधदेशके चौथाई ग्रामोंका उसै अधिपति बनाया ॥ ४४ ॥ राजा उग्रसेनके पुत्र द्वारको मथुरापुरीका राज्य दिया। महानेमिको शौर्यपुरका अधिपति बनाया। कृष्णका पांडवोंपर अधिक स्नेह था इसलिये उनको हस्तिनापुरका राज्य दिया। चक्रवर्ती जरासंधके हिरण्यनाभ सेनापतिके लघु भाई राजा रुधिरके पुत्र रुक्मनाभको कोशलदेश प्रदान किया। एवं अन्य भी जो २ भूमिगोचरी वा विद्याधर राजा आये थे उन्हैं कृष्णने यथायोग्य राज्य दे सन्मानित किया। पांडव आदि राजा कृष्णसे सादर विदा होकर अपने अपने स्थान चले गये और यादव भी स्वर्गसमान द्वारिकामें रहकर मनमाना भोग भोगने लगे ॥ ४५-४७॥ शत्रुओंको महादुःख देनेवाले, पवित्र, हितकारी, उत्तम आकारके धारक, सुदर्शनचक्र, शार्ङ्ग धनुष, सुनंदक खड्ग, कौमुदी गदा, अमोघा शक्ति, पांचजन्य शंख, और कौस्तुभ मणि, ये सात रत्न तो राजा श्रीकृष्णके थे ॥ ४८-४९ ॥ और अपराजित हल, दिव्य गदा, मूसल, शक्ति, और रत्नमाला ये पांच रत्न क्रीड़ामात्रसे शत्रुओंका मान मर्दन करनेवाले राजा बलदेवके थे ॥ ५० ॥ अर्धचक्री राजा श्रीकृष्णके आज्ञाकारी महामान्य, गुणी, सोलह हजार राजा आठ हजार देव थे और देवगनाओंके समान मनोहर सोलह हजार रानियां थी जिनसे कि सेवित वे सुखपूर्वक रहते थे ॥ ५१ ॥ बलभद्रके आठ हजार रानियां थी और वे उनके साथ मनमानी क्रीड़ा करते थे ॥ ५२ ॥

इसप्रकार पूर्वभवमें किये गये महान पुण्यके संचयसे वे समस्त यादव उत्तमोत्तम प्रदेशोंमें, शीत शिशिर वसंत ग्रीष्म वर्षा और शरद ऋतुओंमें अपनी २ प्रिय युवतियोंके साथ निरंतर मनमाने भोग विलास करते हुये सुखसे रहने लगे ॥ ५३ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेन द्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें कृष्णका दिग्विजय वर्णन करनेवाला त्रेपनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५३ ॥

चौअनवां सर्ग।

राजा श्रेणिकने पुनः पांडवोंकी चेष्टा श्रवण करनेके लिये भगवान गौतमसे प्रश्न किया जिससे कि प्रतापी सूर्यके समान संदेहरूपी अंधकारको नाश करते हुये गौतम गणधर इसप्रकार कहने लगे—

जब पांडव हस्तिनागपुरमें सुखपूर्वक निवास करने लगे तब पहिलेके अपने स्वामियोंको पाकर कुरुदेशकी प्रजा बड़ी ही संतुष्ट हुई और उनके नीतिपूर्वक राज्य करनेपर चारो वर्णकी प्रजा धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधन आदिको सर्वथा भूल गई ॥१–३

एक दिन पांडवोंके घर महाप्रचंड, स्वभावसे ही कलहप्रिय, सर्वत्र वे रोक टोक आने जानेवाले मुनि नारद आये। पांडवोंने जाते आते समय नारदका पूर्ण विनय किया पर विचारी द्रौपदी उससमय अपने शृंगार करनेमें दत्त चित्त थी इसलिये वह नारदको न देख सकी और इसीलिये उनका विनय भी न कर पाई॥४–५॥ बस फिर क्या था! जिसप्रकार तैलके संगसे अग्नि प्रज्वलित हो जाती है नारद मारे क्रोधके भवक गये। सो ठीक ही है–जो प्राणी सन्मानके भूखे हैं उन्हैं सज्जनसे सज्जन भी मनुष्यकी आवरूका कुछ ध्यान नहिं रहता॥६॥ नारदने द्रौपदीको सैकडों दुःख देनेके लिये अपने मनमें कडी प्रतिज्ञा कर ली और उसी आवेशमें आ धातकीखडके पूर्वभरतकी ओर विहार कर वहांके अंगदेशकी अमरकंकापुरीमें जा पहुंचे। वहां पर एक पद्मनाभ नामका राजा राज्य करता था जो कि शत्रुओंकी शंकासे रहित था और स्त्रियोंका महा लंपटी था॥७–८॥ प्रसंगवश पद्मनाभने नारदको आत्मीय जान अपना रणवास दिखाया और इसप्रकार कहा कि—

"क्या! ऐसी सुंदर स्त्रियां आपने कहीं अन्यत्र भी देखी हैं?" राजा पद्मनाभके ऐसे वचन सुन नारद द्रौपदीके रूप लावण्यको ऐसी खूबी से वर्णन करने लगे कि–राजा पद्मनाभके पीछे उसके (द्रौपदीके) रूपका पिशाच लग गया और वह उसको जी जानसे चाहने लगा। यह देख नारद द्रौपदीके द्वीप क्षेत्र पुर और महलोंका पता बतला कर चले आये॥९–११॥ राजा पद्मनाभने द्रौपदीकी तीव्र लालसासे घोर तपकर पातालके अंतभागमें रहनेवाले सुरसंगम नामक देवकी आराधना की जिससेकि देव सिद्ध होगया और वह अर्जुनकी स्त्री द्रौपदीको निद्रित अवस्थामें पद्मनाभकी नगरीमें ले आया॥१२–१३॥ देव द्वारा द्रौपदीको अपने भवनके उद्यानमें आया जान पद्मनाभ शीघ्र ही उसके पास आया और साक्षात् देवांगनाके समान समझ उसे (द्रौपदीको) टकटकी बांधकर देखने लगा॥१४॥ जब द्रौपदीकी आंख खुली तो अपनेको हस्तिनागपुर न देख उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह स्वप्नकी शंका कर निद्रारहित

होने पर भी वार २ आंखे मीच २ कर सोने लगी ॥ १५ ॥ द्रौपदीको इसप्रकार आखें बंद किये हुये पडी देख राजा पद्मनाभने उसके हृदयका भाव जान लिया इसलिये धीरेसे पास जाकर वह इसप्रकार प्रियवचन कहने लगा—

"सुंदरी! नवीन स्थानमें अपना आगमन देख तुझे स्वप्नकी शंका न करनी चाहिये। यह द्वीप धातकी खड है और मैं पद्मनाभ नामका राजा हूं॥ १६–१७ ॥ तेरे मनोहर रूपका पता मुझे जब ऋषि नारदसे लगा तो उसीसमय मैने एक देवका आराधन किया जिससे कि वह मेरे लिये तुझै यहां ले आया" ॥ १८ ॥ पद्मनाभके ऐसे वचन सुन रानी द्रौपदी भोंचक रहगई। हाय! यह क्या हुआ! ऐसा कहकर और अब मुझे नियमसे घोर दुःखका सामना करना पडेगा ऐसा विचार कर वह चिंतामें डूब गई ॥ १९ ॥ उसने अपने मनमें यह दृढ़ संकल्प करलिया कि जब तक मुझे अपने स्वामी अर्जुनके दर्शन न होंगे मेरे आहार पानीका त्याग है। साथही उसने अपनी चोटीमें एक गांठ भी लगाली और यह प्रतिज्ञाकी कि जबतक अर्जुन इसे अपने हाथसे न खोलेंगे, स्वयं न खोलूंगी ॥ २० ॥ इसके बाद शीलरूपी अभेद्य वज्रमयी किलेमें बैठकर वह (सती द्रौपदी) कामके वशीभूत राजा पद्मनाभसे इसप्रकार बोली—

"राजन्! मेरे भाई कृष्ण और बलभद्र हैं। स्वामी—वीर शिरोमणि, धनुर्धारी राजा अर्जुन हैं। युधिष्ठिर और भीम जो महाबली हैं वे मेरे जेठ हैं और नकुल एवं सहदेव दो देवर हैं जो कि यमराजके समान भयंकर हैं। जल और स्थल दोनों मार्गोंपर उनकी गति अनिवार्य है मनोरथके वेगके समान चंचल रथोंमें बैठकर वे समस्त पृथ्वीपर वे रोक टोक विचरते फिरते हैं॥ २१–२३ ॥ राजन् यदि तुम अपने कुटुंबके साथ अपनी कुशल चाहते हो तो मुझे मेरे स्थानपर पहुंचा दीजिये। सर्पिणीके समान मुझ विषैलीको घरमें रखकर आपका कल्याण नहि होगा" ॥ २४ ॥ द्रौपदीके ऐसे कठिन भी वचन सुन पद्मनाभकी अभिलाषा शांत न हुई और उसने अपना आग्रह न छोड़ा। सती द्रौपदी इशारेमें बात समझने वाली थी उसे पद्मनाभके हृदयका तात्पर्य मालूम होगया इसलिये अपने हृदयको कड़ाकर और अपने वचनेका दूसरा उपाय न देख वह पुनः इसप्रकार कहने लगी—

"राजन्! एक मास तक आप मुझसे छेड़ छाड़ न करैं। एकमासके भीतर यदि मेरे कुटुंबी मुझे यहां लेने न आवें तो आप अपनी इच्छानुसार मेरा जो चाहैं सो करना।" ॥ २५–२६ ॥ द्रौपदीके ऐसे वचन सुन पद्मनाभ शांत हो अपने स्थानपर लोट आया और वीच वीच में स्वयं तथा अपनी सैकड़ों स्त्रियों द्वारा द्रौपदीको नानाप्रकारसे लुभा लुभा अपनी ओर झुकाने लगा ॥२७॥ पर द्रौपदी बातोंमें आनेवाली न थी उसने सर्वथा भय त्याग दिया और विश्वस्तरूपसे अन्न पानीका त्याग कर नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा वहाती

हुई दिन काटने लगी एवं अपने स्वामीके आनेकी वांट देखने लगी ॥ २८ ॥

उधर द्रौपदीके अकस्मात् ही गायब होजानेसे पांडव आकुलता में पड़ सर्वथा किं-कर्तव्यविमूढ होगये—वे कुछ भी न विचार सके कि उन्हें क्या करना चाहिये ॥ २९ ॥ जब पांडवोंको कुछ भी उपाय न सूझा तो वे चक्रवर्ती कृष्णके पास गये। ज्योंही कृष्णने द्रौपदीके हरणका समाचार सुना उन्हें बड़ा संताप हुआ ॥ ३० ॥ उन्होंने भरतक्षेत्रमें कई स्थानोंपर द्रौपदीकी खोजकी पर कहीं भी उसका पता न चला अंतमें सबको इस बात-का निश्चय हुआ कि कोई क्षुद्र पुरुष उसे किसी दूसरे द्वीपमें हर लेगया है इसलिये यादवगण द्रौपदीके लानेके लिये अपनी २ शक्त्यनुसार तयारी करने लगे। एकदिन यादवगण सभामें बैठे हुये थे कि उसीसमय मुनि नारद आये। यादवोंने उनका खूब आदर सत्कार और प्रेमसंभाषण किया इसलिये प्रसंगवश नारद इसप्रकार कहने लगे—

धातकीखंडकी अमरकंकापुरीमें राजा पद्मनाभके मंदिरमें मैं अभी द्रौपदीको देख कर आया हूं। मारे दुःखके उसका शरीर काला और कृश होगया है प्रतिसमय अश्रु-धारा बहती रहती है इसलिये सदा उसके नेत्र आंसुओंसे तलबतल रहते हैं। राजा पद्मनाभके रणवासकी रानियां सदा उसकी सेवा सुश्रूषा किया करती हैं ॥ ३१–३४ ॥ उसे इससमय अपने शीलव्रतका ही भरोसा है रात दिन वह लंबे लंबे और गरम गरम श्वांस खींचती रहती है इसलिये धिकार है तुम लोगोंकी ऐसी वीरता पर! कि तुम सरीखे बंधुओंके होनेपर भी वह शत्रुओंके घरमें रहै और इसप्रकार दुःख सहै"। ॥ ३५ ॥ नारदके मुखसे द्रौपदीका यह समाचार सुन कृष्ण आदिको बड़ा आनंद हुआ। उपकार और अपकार दोनोंके करनेवाले नारदकी उन्होंने बहुत कुछ प्रशंसा की ॥ ३६ ॥ "द्रौपदीका हरण कर वह दुष्ट कहां जायगा ? उस दुराचारीको मैं अभी कालके गालमें प्रविष्ट करूंगा" आदि शब्द कह कहकर कृष्णको बड़ा क्रोध आया जिससे कि वे अपनी सेनाके साथ शीघ्र ही द्रौपदीको लानेकेलिये लवणसमुद्रके दक्षिण तटकी ओर रवाना होगये ॥ ३७–३८ ॥ लवणसमुद्रके तटपर पहुंचकर कृष्णने पांडवोंके साथ धातकीखंड पहुंचनेकी अभिलाषासे वहांके स्वामी देव की आराधना की और उस देवने भी मय रथ और पांडवोंके समुद्रका उल्लंघन करा शीघ्र ही कृष्णको धातकीखंडके भरतक्षेत्रमें पहुंचा दिया ॥ ३९–४० ॥ ये समस्त लोग पुरी अमरकंकाके वाह्य उद्यानमें जाकर ठहर गये और पद्मनाभके नौकरोंने इनके आगमनका समाचार उससे जाकर कह दिया ॥ ४१ ॥ ज्योंही पद्मनाभने कृष्ण आदिके आनेका समाचार सुना शीघ्र ही अपनी चतुरंग सेनाको साथ ले वह यादवोंसे लड़नेकेलिये नगरसे वाहिर निकल आया परंतु पांडवोंके सामने उसकी कुछ भी न चली उन्होंने उसे सेनाके साथ तहस नहस कर डाला जिससे कि वह शीघ्र ही भीतर नगर में घुस गया और पांडवोंसे

सर्वथा अलंघ्य दरवाजेको बंदकर शांत हो रहने लगा। कृष्णको इसबातपर बड़ा रोष आया। वे शीघ्र ही दरवाजेके पास पहुंचे और उसे वज्रके समान दृढ़ लातोंसे चकनाचूर करने लगे जिससे कि प्राकार और गोपुरोंसे शोभित समस्त बाहिरी भीतरी पृथ्वी छिन्न भिन्न होगई। जिससमय नगरके महल और प्राकार गिरे उससमय वहांके हाथी घोड़ा घूमने लगे समस्त जनोंमें हाहाकार मचगया ॥ ४२-४५ ॥ भयसे आकुल राजा पद्मनाभको उससमय कोई उपाय न सूझा। पुरवासियोंको साथ ले वह शीघ्रही द्रौपदीकी शरण पहुंचा और निरभिमानी हो इसप्रकार निवेदन करनेलगा—

"देवि! तू देवताके समान है, पतिव्रता है। मुझे क्षमाकर! मैं वज्रपापी हूं! मुझे अभयदान दिला" ॥ ४६-४७ ॥ रानी द्रौपदी परम दयालु थी इसलिये अपने शरण आये हुये राजा पद्मनाभसे उसने इसप्रकार कहा—

"राजन्! स्त्रीका वेष धारणकर तू चक्रवर्ती कृष्णके पास जा! वे लोग महापुरुष हैं अपराधी भी यदि उन्हैं नमस्कार करै—उनकी आज्ञा स्वीकार करै तो कृपालु बन वे उसे क्षमाकर देते हैं तब जो भीरुवेष—स्त्रीवेषके धारक हैं डरपोंक हैं उनपर तो उनकी दया और भी अधिक होगी" ॥ ४८-४९ ॥ रानी द्रौपदीके ऐसे वचन सुन राजा पद्मनाभने स्त्रीका वेष धारण किया और द्रौपदीको स्वामिनी बना स्त्रियोंको साथ ले शीघ्र ही चक्रवर्ती कृष्णकी सेवामें जा उपस्थित हुआ ॥ ५० ॥ कृष्ण शरणागतोंके भयहर्ता थे। उन्होंने पद्मनाभको अभयदान दिया और उसै उसके स्थान जानेकेलिये आज्ञा दी ॥ ५१ ॥ द्रौपदीने कृष्णको प्रणाम किया और उनकी कुशलवार्ता पूछी इसके बाद उसने पांडवोंको भी क्रमसे विनय प्रदर्शन किया ॥ ५२ ॥ अर्जुनने विरहसे पीडित अपनी प्यारी द्रौपदीका आलिंगन किया और अपने हाथोंसे उसकी चोटीकी गांठ खोली ॥ ५३ ॥ स्नान और भोजनके बाद द्रौपदीने सबोंका बड़ा आदर सत्कार किया और नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहाकर उनसबके सामने अपना सारा दुःख निवेदन किया ॥ ५४ ॥ कृष्णने द्रौपदीको रथमें बिठाया और समुद्रके किनारे आ इस रीतिसे पांचजन्य शंख बजाया कि उससे समस्त दिशायें गूंज उठीं ॥ ५५ ॥ उससमय वहांकी चंपापुरीके बाह्य उद्यानमें धातकीखंडके भगवान नंतुका समवशरण आया था और उसमें धातकीखंडका नारायण कपिल बैठा था ज्योंही उसने समस्त पृथ्वीको कपानेवाले शंखका शब्द सुना आश्चर्यमें आ शीघ्र ही भगवान केवलीसे पूछा—

"नाथ! मेरे समान पराक्रमी दूसरा इस क्षेत्रमें कौन मनुष्य है जिसने कि यह शंख बजाया? धातकी खंडके भरत क्षेत्रमें तो इससमय ऐसा बली कोई मनुष्य दीखता नहीं." ॥ ५६-५७ ॥ उत्तरमें भगवान केवलीने कृष्णका सारा परिचय दिया जिसे सुनकर कपिल कृष्णसे मिलनेकी इच्छासे जाने लगा। भगवान केवलीने उसै

रोकदिया और इसप्रकार कहा—

"राजन्! आजतक चक्रवर्तीका चक्रवर्तीसे तीर्थंकरका तीर्थंकरसे नारायणका नारायणसे प्रतिनारायणका प्रतिनारायणसे किसी कालमें मिलाप न हुआ और न होही सकता है। यदि तुम कृष्णसे मिलनेकेलिये जावोगे तो तुम्हारी ध्वजाके देखनेसे कृष्णका मिलाप होगा और उनकी ध्वजा देखनेसे तुम्हारा उनसे मिलाप होजायगा तथा आपसमें एक दूसरेका शंखशब्द सुन सकेगा।" कपिल वासुदेव वहांसे चला और जिसप्रकार भगवान केवलीने कहा था उसीप्रकार समुद्रमें उसका (कपिलका) कृष्णके साथ मिलाप हुआ ॥ ५८–६१ ॥ कपिल चंपापुरी लोट आया और अयोग्य काम करनेवाले पद्मनाभसे अतिक्रुद्ध हो उसे प्रचंड दंड दिया ॥६२॥ कृष्णने पहिलेके समान समुद्रको पार किया और वे उसके तटपर थोड़ी देरकेलिये विश्राम करने लगे। पर पांडव वहांसे सीधे चले और नावसे गंगाको पारकर उसके दक्षिण तटपर आकर ठहरे ॥ ६३ ॥ भीमसेन बड़ा हास्यप्रिय था। नाव उसने किनारेपर छिपा दी और पीछेसे जब कृष्णने यह पूछा कि 'आप लोग गंगा कैसे पार हुये हैं?' तो सबसे पहिले बोल उठा कि 'हमने अपनी भुजाओंसे गंगा पारकी है' यह सुन कृष्णने भीमसेनकी बात सच मान ली। पार होनेके लिये अति उत्कंठित हो उन्होंने शीघ्र ही सारथिके साथ रथ हाथपर उठालिया और जिसप्रकार घोंटूपर्यंत जलको पार करते हैं उसीप्रकार वे अपनी भुजा और जंघाके बलसे गंगा पारकर किनारे पर आगये ॥ ६४–६७ ॥ कृष्णका यह पराक्रम देख पांडवोंको आनंदके साथ बड़ा आश्चर्य हुआ वे लोग कृष्णको नमस्कार कर उनके पराक्रमकी वार वार स्तुति करने लगे ॥ ६८ ॥ यह देख भीमसेनसे न रहा गया उसने अपनी की हुई सारी हंसी कृष्णको कह सुनाई जिससे कि कृष्णका मन पांडवोंसे सर्वथा खट्टा होगया। सो ठीक ही है—असमयमें की गई दिल्लगी ठीक नहिं होती ॥ ६९ ॥ कृष्णने क्रोधके आवेशमें आ पांडवोंको लताड़ते हुये कहा कि—

"अरे मूर्ख पांडवो! अनेक बार तुम स्वयं मेरा अमानुषिक पराक्रम देख चुके हो! क्या तब भी मेरे पराक्रमको देखनेकी तुम्हारी हवस पूरी न हुई! जो आज न कुछ इस गंगाके पार करनेमें तुमने मेरी सामर्थ्यकी परीक्षाकी!" इसके बाद वे पांडवोंके साथ २ हस्तिनागपुर आये और सुभद्राके पुत्रको राज्य दे उन्होंने पांडवोंको देशसे वाहिर होजानेकी आज्ञा दे दी ॥७०–७१॥ हस्तिनापुरसे कृष्ण अपने सामंतोंके साथ द्वारिका आये और यादवोंसे सत्कृत हो अपनी रानियोंके साथ आनंद क्रीड़ा करने लगे ॥ ७२ ॥ असमयमें वज्रपातके समान निष्ठुर कृष्णकी आज्ञा सुन पांडव लोग दक्षिण मथुराकी ओर चले गये और वहां लोंग कृष्णागुरु आदिकी सुगंधिसे सुगंधित पवनसे व्याप्त, समुद्रोंके तटोंपर एवं चंदनकी सुगंधिसे समस्त दिशाओंको सुगंधित

करनेवालीं मलयपर्वतकी गुफाओंमें सानंद विहार करने लगे ॥ ७३-७४ ॥

कहां तो समुद्र और जंबू वृक्षसे युक्त जंबूद्वीपकी पृथ्वी और कहां अलंघ्य धातकीखंड द्वीप ? ग्रंथकार कहते हैं कि–जिन मनुष्योंने पहिले जैन धर्मका आराधन किया है वे अगम्य स्थानोंपर भी जा अपनी अभीष्ट सिद्धि कर लाते हैं ॥ ७५ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें द्रौपदीका हरण, पुनः उसका ले आना और पांडवोंका दक्षिण मथुरामें निवास वर्णन करनेवाला चौअनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५४ ॥

पचपनवां सर्ग।

कुवेर द्वारा प्रदत्त, नानाप्रकारके वस्त्र भूषण माला उपटन आदिसे भूषित, बड़े बड़े राजाओंसे मंडित, युवा, भगवान नेमिनाथ एकदिन जिसमें कृष्ण बलभद्र आदि करोड़ों यादव बैठे थे ऐसी कुसुमचित्रा नामकी सभामें गये। भगवानको देखते ही राजा लोग अपने अपने आसनोंसे उठ खड़े हुये और भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उनका अधिक आदर सत्कार करने लगे। यह देख कृष्णने आगे बढ़ सन्मान पूर्वक भगवानको अपनी वरावर, आधे सिंहासन पर बैठाया जिससेकि एक सिंहासनपर बैठे हुये वे दोनो भाई दो इंद्रोंके समान शोभित होने लगे ॥ १-३ ॥ उससमय सभ्योंकी कथारूपी अमृतका पान करनेवाले अनेक बड़े बड़े पुरुष श्रीकृष्णका और उनकी विभूतिका कीर्तिगान कर रहे थे एवं अपनी कांतिसे समस्त दिशाओंको व्याप्त करनेवाले कृष्ण सानंद बैठे थे ॥ ४ ॥ अचानक ही उससमय बलवानोंकी गणनाकी चर्च छिड़ गई। कोई महानुभाव अर्जुनकी, कोई युधिष्ठिरकी, कोई भीमकी, कोई नकुल सहदेवकी और कोई कोई अन्य लोगोंकी बलमें प्रशंसा करने लगे ॥ ५ ॥ अनेकोंने बलदेवकी प्रशंसा की तो अनेकोंने यह कहा कि– "यह कृष्ण गोवर्धन पर्वतका उठानेवाला है बलवानसे बलवान भी शत्रुको अपने पैर तले दबा देता है इसलिये यही सबसे अधिक बलवान है" ॥ ६ ॥ सभामें बैठे हुये मनुष्योंके ऐसे वचन सुन बलदेवने क्रीड़ापूर्वक नेमिनाथकी ओर देखा और कहा कि–

"तीनों लोकमें भगवान नेमिनाथके समान कोई बलवान नहीं। ये भगवान यदि चाहैं तो एक अंगुलीपर पृथ्वीतलको उठा सकते हैं समुद्रोंको दिशाओंमें फैक सकते हैं और क्रीडामात्रमें गिरिराज मेरुको कंपायमान कर सकते हैं। भला! जिनेंद्रसे अधिक इस संसारमें कौंन बलवान हो सकता है" ॥ ७-८ ॥ बलदेवके ऐसे वचन सुनकर भगवानकी ओर देख कृष्ण पहिले तो कुछ हंसे और फिर कहने लगे—

"भगवन्! यह मेरी आपसे प्रार्थना है कि यदि आपके शरीरमें अधिक बल है तो आप मेरे साथ मल्लयुद्ध कर उसकी परीक्षा करलें ?" कृष्णके ऐसे वचन सुन

भगवानने अपना मुख कुछ ऊंचेको किया और इसप्रकार कहा—

"ज्येष्ठ भ्रात! मल्लयुद्ध करनेसे कोई लाभ नहिं! यदि आपकी यही इच्छा है और भुजबलकी परीक्षा करना है तो यह मेरा पैर सिंहासनपर रक्खा है उसे ही आप चल विचल कर दें।" ॥ ९-१० ॥ ज्योंही श्रीकृष्णने भगवान नेमिनाथके ऐसे वचन सुने शीघ्र ही वे अपने भुजबलसे उन्हें (नेमिनाथको) जीतनेके लिये सन्नद्ध होगये और भगवानका पैर उसकाने लगे। बहुत देरतक कृष्णने परिश्रम किया परंतु अपने समस्त बलसे भी वे पैरकी अंगुलीतक न हिला सके इसतरह जब कृष्णसे कुछ न हुआ और सारा शरीर पसीनासे तल बतल होगया, जल्दी जल्दी स्वास प्रश्वास आने लगे तो वे गर्वरहित हो आश्चर्यसे भगवानके लोकोत्तर बलकी बड़ी ही प्रशंसा करने लगे। ॥ ११-१२ ॥ उसीसमय भगवानके पुण्यके माहात्म्यसे इंद्रका आसन कंपायमान होगया। वह शीघ्र ही अनेक देवोंके साथ यादव सभामें आया और भगवानका पूजन स्तवन कर अपने स्थान लोट गया ॥ १३ ॥ इसके बाद अनेक राजाओंसे मंडित भगवान नेमिनाथ अपने स्थान चले आये और कृष्ण भी भगवानकी ओरसे शंकित हो अपने महल चले गये। सो ठीक ही है—अपमान आदिसे दुःखित मनुष्य जिनेंद्र भगवानमें भी शंका करने लग जाते हैं और तबसे चक्रवर्ती कृष्णने प्रतिदिन बड़े आदर सत्कारसे अमूल्य गुणोंके धारक भगवान जिनेंद्रकी सेवा शुश्रूषा करना प्रारंभ करदी ॥१४-१५॥

विजयार्धपर्वतकी उत्तरश्रेणीमें एक श्रुतशोणित नामका नगर है उस समय उसमें एक बाण नामका विद्याधर राज्य करता था जोकि महागर्विष्ठ था ॥ १६ ॥ राजा बाणके कला और गुणोंकी भंडार समस्त पृथ्वीमें प्रसिद्ध उषा नामकी एक कन्या थी। वह प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धकी प्रशंसा सुन उसपर पूर्णरूपसे अनुरक्त होगई ॥ १७ ॥ कुमार अनिरुद्ध स्वयं कोमल होनेपर भी कुटल भौंहे वाली उषाके कोमलमनमें प्रविष्ट हो अपनी कुटिलताको प्रकट करने लगा—वह उसके शरीरको अपने वियोगसे अति संताप देने लगा ॥१८॥ यद्यपि कुमारी अपनी व्याधिका किसीको पता न लगने देती थी तथापि उस महाव्याधिसे उसका शरीर दिनोंदिन क्षीण होता चला जाता था इसलिये एकदिन किसी हितैषिणी सखीने उसके (उषाके) दुःखका कारण उससे पूछकर जानलिया जिससे कि वह सखी शीघ्र ही वहांसे चली और कुमार अनिरुद्धको उडाकर उषाके महल ले आई ॥ १९ ॥ इतनेमें ही अचानक कुमारकी आंख खुली। उसने उठकर देखा तो अपनेको नानाप्रकारके रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त महलमें किसी कोमल सेजपर सोता पाया और पासमें बैठी हुई उषा कन्यापर भी उसकी दृष्टि पड़ी। वह कन्या पीन स्तन और जघनोंसे शोभित थी। उसका कटिभाग कृश और त्रिवलिसे भूपित था। मनुष्योंके मनको हरण करने वाली थी और उसका शरीर रोमांचोंसे अलंकृत था।

ज्योंही कुमार अनिरुद्धने कन्या उषाको देखा वह चकित हो इसप्रकार विचारने लगा— " यह उत्कृष्ट स्त्री कौन है ? इंद्राणी है ? अथवा नागबधू है ! जो मेरे मनको बलपूर्वक हरण कर रही है। यह मनुष्यकी स्त्री तो हो नहिं सकती क्योंकि मैंने आजतक ऐसी सुंदरी स्त्री कहीं देखी ही नहिं है ॥ २०–२२ ॥ अपनी शोभासे इंद्रकी सभाकी तुलना करनेवाला नेत्रोंको परमप्रिय यह स्थान भी तो अपरिचित है। क्या यह सब दृश्य सत्य है ? नहीं ! कभी नहीं !! सोते हुये मनुष्यका चित्त तीनोंलोकमें भ्रमण किया करता है इसलिये स्वप्नमें मुझै ऐसा भ्रम होगया है " ॥ २३ ॥ कुमार ऐसा विचार करही रहा था कि इतनेमें ही उसके पास चित्रलेखा नामकी एक सखी आई और आद्यंत सब वृत्तांत सुना आपसमें उन दोनोंका गांधर्व विवाहकरा चलीगई जिससे कि देव देवांगनाओंके समान निरंतर सुरतरूपी अमृत रसका पान करनेवाले वे दोनों स्त्री पुरुष सुखसे काल व्यतीत करने लगे ।

जब यह समाचार श्रीकृष्णने सुना तो वे शीघ्र ही अनिरुद्धके लेनेकेलिये बलदेव शंवकुमार और प्रद्युम्न आदि यादवोंके साथ आकाश मार्गसे विद्याधर वाणके नगर पहुंचे और हाथी घोड़े रथ पयादे रूप चतुरंग सेनासे व्याप्त युद्धस्थलमें वाणको पराजित कर उषा सहित कुमारको द्वारिका ले लोट आये ॥ २४–२७ ॥ अनिरुद्धके विरहसे प्रजा और कुटुंबीजन जो अति दुःखित हो रहे थे वे उसके समागमसे बड़े ही संतुष्ट हुए और अनेक प्रकारके सुखोंसे मंडित हो मनमाने भोग भोगने लगे ॥ २८ ॥

एकसमय वसंत ऋतुका आगमन होनेसे क्रीड़ा करनेकेलिये चक्रवर्ती कृष्ण अपनी पटरानी, भगवान नेमिनाथ, अनेक राजा, महाराजा और पुरवासियोंके साथ २ अनेक पुष्पोंसे व्याप्त गिरनार पर्वतके वनमें गये ॥ २९ ॥ उससमय भगवान नेमिनाथ, बलदेव और कृष्ण बड़े २ घोड़ोंके रथमें विराजमान थे, नानाप्रकारके देदीप्यमान भूषणोंसे भूषित थे, शिरपर लगे हुये श्वेत छत्रसे मनोहर और क्रमसे बैल, ताल और गरुडकी ध्वजाओंको धारण किये थे ॥ ३० ॥ कुमार प्रद्युम्न भी पीछे २ रथमें बैठकर चले उससमय वे समुद्रविजय आदि दशों भाईयोंके पुत्रोंसे मंडित थे हाथी घोड़ों और रथोंपर फैराती हुई कुसुम वाण धनुष और मगरकी ध्वजाओंसे समस्त मनुष्योंको आनंदित करते थे ॥ ३१ ॥ नाना प्रकार वस्त्र और भूषणोंसे मंडित यथायोग्य अपने अपने रथ आदिमें बैठे हुये पुरवासी और पालकी आदि सवारियोंमें बैठी हुई कृष्णकी पटरानियां भी चल दीं ॥ ३२ ॥ उससमय नानाप्रकारके स्त्री पुरुषोंसे मंडित वह गिरनारका वन देव देवांगनाओंसे व्याप्त मेरुपर्वतके नंदनादि वनोंकी तुलना करता था ॥ ३३ ॥ चलते २ जब पर्वत पास आगया तो समस्त मनुष्य अपनी अपनी सवारियोंसे उतर पड़े और उस (पर्वत) के नितंब भागोंमें इच्छानुसार विहार करना

प्रारंभ करने लगे ॥ ३४ ॥ उससमय समस्त दिशाओंमें सुगंधित पुष्पोंकी परागसे सुगंधित शीतल दक्षिण पवन वह रही थी उससे समस्त मनुष्योंका श्रम दूर होरहा था इसलिये रतिजन्य थकावटको छोड़कर उससमय किसी मनुष्यको कैसी भी थकावट न थी ॥ ३५ ॥ आम्रलताओंका आस्वादन करनेवालीं, कामके उद्दीपन करनेमें प्रवीण कोकिला अपने मनोहर कंठोंसे मिष्ट २ शब्द करती थीं उनसे नरनारियोंके चित्त हरण होते थे और मद्यपानमें मत्त भोरोंके समूहसे व्याप्त कुरवक और बकुल जातिके वृक्ष अति मनोहर जान पड़ते थे इसतरह मनुष्य, पक्षी और भ्रमरोंके शब्दोंसे उससमय वन गूंज उठनेके कारण मनोहर मालूम पड़रहा था। सो ठीकही है—आश्रयी मनुष्यों के संबंधसे आश्रय (स्थान) भी उनके अनेक गुणोंका स्थान बनजाता है ॥ ३६–३७ ॥ अब तक भ्रमर, हस्तियोंके कुंभस्थलोंके मद सरीखे गंधवाले युगच्छदोंमें प्रीति करते थे पर अब वसंतके आगमनसे उनकी आम्रके वृक्षोंकी मंजरीमें प्रीति होने लगी। सो ठीकही है लोगोंको नवीन नवीन पदार्थ अधिक २ प्यारे लगते हैं ॥ ३८ ॥ प्रणयमें किसीप्रकार-की खलबली न पड़जाय इसलिये ही मानो उससमय वृक्ष पुष्पोंके भारसे नम्रीभूत थे और फूल चुनते समय जब वे स्त्रियोंके हाथसे कंपित होते थे उसमय तरुणोंके समान सुखका अनुभव करते थे ॥ ३९ ॥ स्त्रियां जब अपने हाथोंसे फूल चुनतीं थी उससमय कुछ ऊंची शाखाओंमें उनके केशपाश उलझ जाते थे सो ऐसा जान पड़ता था मानों संभोगके समय उनके पतिही केशपाश खींच रहे हैं ॥ ४० ॥ इसप्रकार चिरकाल तक जहां तहां वनमें विहारकर स्त्री पुरुष लता मंडपोंमें प्रविष्ट होगये और सुरत रसका अनुभव करने लगे ॥ ४१ ॥ उससमय वहां कोई वन, कोई लतामंडप, कोई वृक्षतल और कोई वापी ऐसी न थी जहांपर कि यादव लोग विषय सुख न भोग रहे हों ॥ ४२ ॥ चक्रवर्ती कृष्ण भी अपनी सोलह हजार रानियोंके साथ मनमाना भोग भोगने लगे और वसंत ऋतुकी बहुत प्रशंसा करने लगे ॥ ४३ ॥ इसीसमय मनुष्योंके चित्तको लुभानेवालीं, कृष्णकी स्त्रियां अपने स्वामीकी आज्ञासे वृक्ष और लताओंसे रमणीय वनोंमें भगवान नेमिनाथके साथ हंसी दिल्लगी करने लगीं ॥ ४४ ॥ उनमेंसे मधुपान से मत्त, सुंदर लोचनवाली कोई भोजाई तो वनलताओंसे पुष्पोंके चुनते समय मुखकी सुगंधिसे आये हुये शब्द करनेवाले भ्रमरों से वेष्टित होने कारण भगवान नेमिनाथको पकड़ने लगी ॥ ४५ ॥ कोई कठिनस्तनी भगवानके उरस्थलका चुंबन करने लगी कोई उन्हें छूने और सूंघने लगी। किसीने अपने कोमल हाथसे उनका हाथ पकड़ उनका मुंह अपनी ओर किया ॥ ४६ ॥ कोई २ शाल और तमालके बीजना बनाकर भग-वानकी हवा करनेलगी, कोई अशोक वृक्षके नवीन पल्लवोंका सेहरा बना उनके शिर-पर रखने लगी ॥ ४७ ॥ कोई उत्तमोत्तम पुष्पोंकी माला गूंथकर भगवानके शरीरसे

आलिंगनकी इच्छासे उनके शिर और गलेमें पहिनाने लगी और कोई उनके शिरपर कुरवक पुष्पोंकी वर्षा करने लगी ॥ ४८ ॥ इसप्रकार कृष्णकी स्त्रियोंने भगवान नेमिनाथके साथ वसंतऋतुमें नाना क्रीड़ा कीं।

वसंतऋतुके बाद ग्रीष्म ऋतुका प्रारंभ हुआ ॥ ४९ ॥ उससमय यद्यपि उष्णता अधिक थी तथापि गिरनार पर्वतपर शीतल जलके निर्झरने झरते थे इसलिये वह (ग्रीष्म ऋतु) भी अधिक प्रिय लगने लगी जिससे कि वे कृष्णादिक वहां ही सानंद रहने लगे ॥ ५० ॥ यद्यपि भगवान नेमिनाथ स्वभावसे ही राग उत्पन्न करनेवाली चेष्टाओंसे विमुख थे तथापि कृष्णकी स्त्रियां उन्हें एकदिन घेरकर शीतलजलसे परिपूर्ण सरोवर पर ले आईं और भगवान नेमिनाथके साथ जल क्रीड़ा करने लगीं ॥ ५१ ॥ उनमें कोई स्त्री तो तैरने लगी कोई डुबकी लगाने लगी और कोई कोई आपसमें पिचकारियोंद्वारा एक दूसरीके मुखपर जलके छींटे मारने लगी ॥ ५२ ॥ हरएक स्त्री अंजुली और पिचकारियोंसे भगवानके ऊपर भी जल मारने लगी यहदेख भगवान भी समुद्रके समान विपुल जलके जल्दी जल्दी छींटे लगाने लगे और उन्हें जल्दी २ हराने लगे ॥५३॥ उससमय, कृष्णकी रानियां और भगवानका अनुपम स्नान ही मनुष्योंको सुखप्रद न हुआ किंतु भांति भांतिके उवटनोंकी सुगंधिसे वह जल जो सुगंधित होगया था उससे भी लोग परम आनंद मानने लगे ॥ ५४ ॥ हाथीके साथ पुष्करिणीको मर्दन वाली हथिनियोंके समान भगवान नेमिनाथके साथ कृष्णकी स्त्रियोंने वहुत कालतक सानंद स्नानक्रीड़ा की जिससेकि उनका शरीर तैरनेकी थकावटसे और घामकी गर्मीसे तल वतल होगया शिरोभूषण गिर पड़े नेत्र चंचल और आकुलित होगये अधर भाग धूसरित और करधनी शिथिल होगई एवं केश पाश विखर गये ॥ ५६ ॥ इसकेवाद स्त्रियोंने दासियोंसे लाये गये नवीन २ भूषण वस्त्र पहिने और भगवानने भी उत्तम वस्त्रसे अपनी देहका जल पोंछा और नवीन वस्त्र धारण किये ॥ ५७ ॥ भगवानके पासमें कृष्णकी पटरानी जो कृष्णको अतिशय प्यारी थी जांववती खड़ी थी भगवानने कटाक्षपूर्वक अपनी धोती निचोड़नेके लिये उससे कहा—ज्योंही जांववतीने नेमिनाथके ये वचन सुने उसने उत्तरमें नेत्रोंसे बनावटी क्रोधको प्रकट कर कहा—

"मेरे स्वामी करोडों सर्पोंके मणियोंकी प्रभासे भी दुगुनी प्रभासे युक्त मुकुटसे देदीप्यमान और कौस्तुभमणिसे जाज्वल्यमान हैं। नागशय्यापर बैठकर अपनी ध्वनिसे समस्त दिशाओंको शब्दायमान करनेवाला शंख वजाते हैं। महाभयंकर शार्ङ्ग धनुप धारण करते हैं। अनेक राजाओंके प्रभु और उत्तमोत्तम स्त्रियोंके स्वामी हैं। तथापि वे मुझे कदापि ऐसे काम करनेकी आज्ञा नहिं देते! और न कुछ आपने मुझे वस्त्र निचोड़नेके लिये कह पाड़ा! मेरे लिये ऐसा कहना आपका सर्वथा अनुचित है!" ॥५८–६२॥

वहांपर अन्य भी कृष्णकी स्त्रियां खडी हुई थी ज्यों ही उन्होंने जांबवतीके ये वचन सुने वे जांबवतीसे बोलीं—

"अरे निर्लज्ज! ये भगवान तीन लोकके स्वामी तीर्थंकर हैं इन्हें क्यों तू इस-प्रकार घृणाकी दृष्टिसे देखती है?" नेमिनाथ भी जांबवतीके मूर्खताभरे वचन सुन हंस पडे और "तुमने जो अपने पतिका पौरुष वर्णन किया है वह क्या कठिन है?" ऐसा कहकर सीधे द्वारिका चले आये॥ ६३–६५॥ द्वारिकामें आकर भगवान् सीधे कृष्णके शस्त्रागारमें गये और वहां लहलहाते हुये भुजंगोंके फणाओंसे व्याप्त नागशय्यापर चढ़ धनुष तानकर इसप्रकार जोरसे शंख बजाने लगे कि उसके उन्नत और भयंकर शब्दसे समस्तदिशायें, आकाश और समुद्र शब्दायमान होगये और ऐसे जान पड़े मानो वे सबके सब फट गये॥ ६६॥ हाथियोंके समूह क्षुब्ध होगये और बंधन तुड़ा वे इधर उधर दोड़ने लगे। घोडोंने भी अपनी बंधन रज्जू तोड़दी और वे जहां तहां घूमने लगे॥ ६७॥ एवं महल, पर्वतोंके शिखर और नदियोंके तट भी शंखके प्रबल शब्दसे गिरगये। इस भयंकर उत्पातको देख कृष्णने शीघ्र ही खड्ग खींच लिया, समस्तसभा आकुलित हो उठी और समस्त पुरवासी लोग प्रलय कालकी शंकाकर कृष्णके शरण आये॥ ६८॥ कृष्णने जब इस शब्दको अपने पांचजन्य शंखका समझा तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ वे शीघ्र ही अपनी आयुध शालामें आये और कुमार नेमिनाथको नाग शय्यापर आरूढ़ देख अन्य राजाओंके साथ बड़ा ही अचरज करने लगे॥ ६९॥

"भगवान नेमिनाथने जांबवतीके कठोर वचनोंसे यह काम किया है" ज्योंही कृष्णको यह बात मालूम हुई तो उन्होंने भगवानकी उस क्रोधपरिणतिको भी अति-संतोषदायिनी माना॥ ७०॥ अपने स्वजनोंके साथ कृष्णने भगवानको छातीसे लगा सत्कार किया और अपने घर आ "जांबवतीकी कृपासे भगवान नेमिनाथको कामोद्दीपन हुआ है" यह जान अति आनंद मानने लगे॥ ७१॥ भोजवंशियोंकी पुत्री कुमारी राजीमतीकी कृष्णने नेमिनाथकेलिये याचना की उसके साथ भगवानके विवाहका भाव कृष्णने अपने समस्त बांधवोंसे भी प्रकट किया और इसबातके विचार करनेकेलिये समस्त राजाओंको उनके कुटुंबसहित अपनेपास बिठाया॥ ७२॥ सबकी सम्मतिके अनुसार नेमिनाथका राजीमतीके साथ वाक्दान पक्का होगया। रीत्यनुसार परम रूपवान वधू और वरका अभिषेक किया गया भूषण वसन पहिनाये गये और वे अपने अपने स्थानोंपर रहकर मनुष्योंके चित्त हरण करने लगे॥ ७३॥

ग्रीष्म ऋतुके समाप्त होजानेपर वर्षा ऋतु आई। समस्त आकाश मेघोंसे व्याप्त होगया। मारवाड़के पथिक और तृपासे आकुल मनुष्य मेघोंकी ओर टकटकी बांधकर देखने लगे॥ ७४॥ मेघके प्रथम ही प्रथम गिरे हुये शीतल जलके कणोंसे चातकोंको

आनंद और वियोगी मनुष्योंको दूना संताप होने लगा ॥ ७५ ॥ जो वनावली वनाग्नि और सूर्यकी किरणोंसे दग्ध होगई थी उनमें मेघोंके वर्षनेसे 'मित्रके दर्शनसे रोमांचोंके समान, नूतन नूतन अंकूरे ऊगने लगे ॥ ७६ ॥ मेघ वर्षते समय विजली दमकने लगी। वकश्रेणी और वद्दल घूमने लगे। आकाशमें इंद्र धनुषोंका उदय होगया। समस्त पृथ्वी इंद्र गोपोंसे व्याप्त होगई और पथिकोंके मन विदेश जानेकेलिये विलकुल उत्सुक न हुये ॥ ७७ ॥ समस्त पर्वत और भूमि फूले हुये कुटज और कदंबोंसे व्याप्त होगई और जगह जगह पृथ्वी पर मनोहर हरित तृण दीखने लगे ॥ ७८ ॥ मेघके शब्दोंसे भयभीत स्त्रियोंके शरीर कपने लगे, उनके हस्तकंकणके शब्द होने लगे जिससे कि उन्होंने उस भयको दूर करनेके लिये दृढ रूपसे अपने पतियोंके कंठ गहलिये। ॥ ७९ ॥ योगियोंने भी उससमय पर्वतोंकी शिलाओंपर आतापन योग करना छोड़ दिया वे वृक्षोंके नीचे आकर बैठ गये और शीतल पवनादिसे वर्षाजन्य दुःख सहने लगे ॥ ८० ॥ ऐसे ही समयमें भगवान नेमिनाथ ध्वजा और पताकाओंसे शोभित, शोभामें सूर्यके रथकी तुलना करनेवाले, चार घोडोंसे वाहित रथमें सवार हो अनेक राजाओंके साथ २ वनकी ओर चल दिये ॥ ८१ ॥ राजीमती आदि नगरकी स्त्रियों द्वारा प्रसन्नतापूर्वक तृपित नेत्रोंसे टक टकी लगाकर देखे गये भगवान राजमार्गसे धीरे २ गमन करते हुये समुद्रके तटपर पहुंचे ॥ ८२ ॥ उससमय भगवानके समीपका चंचल तरंगोंसे शब्दायमान समुद्र, नृत्य करते समय चंचल भुजावाले नर्त्तकका अनुकरण करता था ॥ ८३ ॥ उपवनमें पहुंचकर भगवान इधर उधर उसकी शोभा निरखने लगे उससमय वहां विस्तृत शाखाओंसे शोभित जातिवृक्ष पुष्पित हो रहे थे सो ऐसे जान पड़ते थे मानो नम्र हो भगवान पर कुसुमांजलि वर्षा रहै हैं ॥ ८४ ॥ इसप्रकार शोभा देखते २ भगवानकी दृष्टि एक ऐसी जगह पर जा पडी कि जहां कुछ लोग तृण भक्षण करनेवाले, भयसे कप कपाते हुये, अति विह्वल जंगली मृगोंको एक जगह रोके हुये खडे थे ॥ ८५ ॥ अचानक ही इस दृश्यसे करुणार्द्र हो भगवानने अपना रथ वहीं खड़ा कराया और जानते हुये भी मेघके समान गंभीर अपनी ध्वनिसे इसप्रकार सारथिसे पूछा—"ये पशु किसलिये यहां रोके गये हैं ?" उत्तरमें हाथ जोड़ कर सारथिने कहा—

"नाथ! आपके विवाहमें जो राजा मांसभक्षी आवेंगे उनके भोजनार्थ इन पशुओंका वध किया जायगा इसीलिये यहां ये वंद कराये गये हैं।" ॥ ८६-८७ ॥ भगवान नेमिनाथ स्वभावसे ही जीवोंपर दयार्द्र थे। निर्मल अवधिज्ञानके धारक थे। ज्योंहीं उन्होंने सारथिके ये वचन सुने और मृगोंको देखा तो वे तत्काल संसारसे विरक्त होगये और साथमें आये हुये राजपुत्रोंको लक्ष्य कर इसप्रकार कहने लगे—

"ये विचारे दीन मृग वनमें रहकर वनके ही तृण और जल खाते पीते हैं किसी-का कुछ अपराध नहीं करते तो भी मनुष्य इनका वध करते हैं। हा! देखो इनका कैसा निर्दयीपना है॥८८-८९॥ जो वीर पुरुष संग्राममें हाथी घोड़े रथ आदिमें सवार हो निर्भय रीतिसे मारनेके लिये उद्यत शत्रुओंपर प्रहार करते हैं, दीन हीन डरपोक रणसे भागते हुओं पर हाथ नहीं उठाते वे तो वास्तवमें कीर्तिका उपार्जन करते हैं पर जो क्रुद्ध हो सामने आते हुये अष्टापद, सिंह, हाथी आदिको तो देखकर भयसे दूर भाग जाते हैं और इन विचारे दीन सीधे साधे पशुओंपर हाथ उठाते हैं तब भी वीर बननेकी डींग मारते हैं ऐसे पुरुषों को न जाने क्यों लज्जा नहीं आती॥९०-९१॥ हा! जो बडे २ शूर वीर पैरमें कंकडी न छिद जाय इसलिये स्वयं तो जूता पहिनते हैं पर वे ही शिकारके समय अपने सैकडों तीक्ष्ण शस्त्रोंसे कोमल मृगोंके वध करनेमें लज्जित नहिं होते॥९२॥ प्रथम ही तो यह निंद्य मृगवध विषय सुखरूपी फलको देनेवाला है और जब इसके रसका आस्वाद होने लग जाता है तब षट्कायके जीवोंका विध्वंसक हो जाता है॥९३॥ यह लोक जीवोंके वध करनेमें तो सदा उद्यत रहता है और चाहता यह है कि मुझे राजपद मिलै पर यह विरुद्ध बात कैसे हो क्योंकि यह वध पापबंध-का कारण है और पापबंधसे निर्धनपना आदि कटुक फलकी ही प्राप्ति हो सकती है राज्यादिक मीठे फलकी नहीं॥९४॥ ये प्राणिगण प्रकृतिबंध स्थितिबंध अनुभाग बंध और प्रदेशबंध इन चारप्रकारके बंधोसे बंधे रहते हैं और चारो गतियोंमें भ्रमण-कर नानाप्रकारके दुःख सहते रहते हैं॥९५॥ यह दीन प्राणी प्रत्येक भवमें नाना प्रकारके विषयजन्य दुःखोंका अनुभव करता है परंतु मनुष्यभव पाकर भी मोहके फं-दमें पड़कर दुःखकी निवृत्तिका उपाय नहिं करता यह बड़ा ही खेद है॥९६॥ जि-सप्रकार सैकडों नदियोंसे समुद्रकी तृप्ति नहिं होती उसीप्रकार विषयोंसे जायमान बहुतसे सुखोंसे भी इस मूढ़को संतोष नहिं होता॥९७॥ देखो! औरं की तो क्या बात! स्वयं मैनेही कई बार विद्याधरेंद्र, देवेंद्र, नरेंद्रोंके सुख भोगे हैं जयंतविमानके सुखोंका भी आस्वादन किया है तथापि इस सुखसे मेरी तुष्टि न हुई॥९८॥ यद्यपि मैं इससमय तीर्थंकर हूं। दुर्लभ भी सुख मेरे लिये सुलभ हैं। तथापि वे बहुत थोड़े दिनके हैं और मेरी आयु क्षणभंगुर असार है, इससे कैसे मेरा मन तृप्त हो स-कता है?॥९९॥ इसलिये विनाशीक अनेक प्रकारके संताप देनेवाले इस विषय सुखका सर्वथा त्याग कर मुझे अब अविनाशी किसीप्रकारके संताप न देनेवाले आ-त्मीक सुख-मोक्ष सुखका उपार्जन करना चाहिये।"॥१००॥ भगवान इसप्रकार का विचार ही कर रहे थे कि इतनेमें ही पांचवें स्वर्गके रहनेवाले चंद्रमाके समान देदीप्यमान वहि अरुण अर्क आदि लौकांतिक देव आये और हाथ जोड़ नमस्कार कर

भगवानके वैराग्यकी सराहना करते हुये कहने लगे—

"भगवन्! वास्तवमें यह समय तीर्थ प्रवृत्तिका है आप इससमय अवश्य धर्म तीर्थकी प्रवृत्ति करें" ॥१०१-१०२॥ भगवान पहिलेसे ही प्रतिबुद्ध थे लौकांतिक देवोंने पुनः उन्हैं प्रतिबोधित किया। यद्यपि प्रतिबुद्धको प्रतिबोध देनेमें पुनरुक्त दूषण आता है तथापि कभी २ अवसर पर पुनरुक्त दूषण भी भूषण हो जाता है ॥१०३॥ इसके बाद भगवानने शीघ्र ही मृगोंको बंधन रहित कराया और अपने साथी राजकुमारोंके साथ वे द्वारिका चले आये। वहां पहिलेके समान देवोंने पुनः आ भक्तिपूर्वक उन्हैं (भगवान नेमिनाथको) नमस्कार किया और स्नानकी चौकी पर विठा क्षीरोदधि जलसे अभिपेक्-कर देवोपनीत माला उपटन वस्त्र भूषणसे भूषित किया ॥ १०४-१०५ ॥ भगवान सिंहासनपर विराजमान थे उनके चौतर्फा सौधर्म और ईशान स्वर्गके इंद्र और अनेक राजा खडे थे इसलिये उससमय उनकी अनेक कुलाचलोंसे युक्त मेरु पर्वत सरीखी शोभा जान पड़ती थी ॥१०६॥ जिससमय भगवान नेमिनाथने तपके लिये वन जानेकी इच्छा प्रकट की तो उससमय कृष्ण, भोज आदि अनेक लोग उन्हैं नानाप्रकारसे मनाकर रोकने लगे परंतु पिंजरा तोड़कर निकले हुये सिंहके समान उन्हें कोई भी न रोक सका। ॥ १०७ ॥ वे भगवान संसारकी वास्तविक स्थितिके जानकार थे उन्होंने अपने माता पिता आदि बंधुओंको समझाया और कुवेर द्वारा रचित पालकीकी ओर सवार होनेके लिये पैदल ही चल पड़े ॥ १०८ ॥ वह पालकी ध्वजा और श्वेत छत्रसे मंडित थी उसकी वाड मणिमयी और नानाप्रकारके रत्नोंसे देदीप्यमान थी। भगवान उसके पास पहुंचे और जिसप्रकार उदयाचलपर चंद्रमा स्थित होता है उसीप्रकार उसमें सवार हो स्थित होगये ॥ १०९ ॥ यह देख सवसे पहिले कुछ दूरतक पृथ्वीपर तो राजा लोगोंने उसे (पालकी) उठाया और वादको आकाशमार्गमें इंद्र आदि देवोंने उसे वहन किया ॥ ११० ॥ उससमय आकाशमें तो बडे आनंदसे देवोंने जय जयकार शब्द किये और नीचे भगवानके वियोगमें विलाप करते हुये उनके कुटुंवियोंके शब्दोंसे समस्त पृथ्वी गूंज उठी ॥ १११ ॥ उससमय मूर्तीक शांत रसके समान भगवान नेमिनाथको देखकर नानाप्रकारके रसोंको प्रकट करती हुई देवांगनायें नृत्य करनेलगीं और जलके सरोवरोंके निकट मयूर सारस नांच २ कर मधुर वोली वोलने लगे॥ ११२ ॥ इसतरह चलते २ पापरूपी सेनाको नष्ट करनेवाले, महाकांतिमान, भगवान देवसेनाके साथ गिरनार पर्वतपर आगये ॥ ११३ ॥ उस पर्वतको हम मेरुकी उपमा नहीं दे सकते क्योंकि वहां तिमिरविनाशक सूर्यचंद्रमाके रहनेपर भी महात्माओंका दर्शन नहिं होता (सूर्य चंद्रमा मेरुके मध्यभागमें ही है) और यहांपर (गिरनार पर्वतपर) उनका सदा जाज्वल्यमान प्रकाश रहता है ॥ ११४ ॥ यह गिरनार पर्वत उससमय श-

ब्दायमान गिरते हुये निर्झरनोंसे, पक्षियोंसे, अतिमिष्ट आम्रके फलोंसे, और पुष्पोंसे व्याप्त जाति वृक्षोंसे युक्त था। वहांपर कोई किसी प्रकारका निंदित पुष्प न था इसलिये वह अति मनोहर जान पड़ता था ॥ ११५ ॥ उसमें जगह २ नानाप्रकारकी मणियां सुवर्ण और भांति २ की धातुओंके रस, शोभित हो रहे थे उसकी शिखरोंपर किन्नर देव रहते थे और वह अपनी वनभूमिसे मनुष्य और देवोंके मनों को हरण करता था। गिरनार पर्वतके उपवनमें जाकर निष्काम भगवान जिनेंद्रकी आज्ञासे एकजगह इंद्रने उन (भगवान) की पालकी रख दी और वे उसीसमय देवोंसे वाहित उस शिविकाका परित्याग कर अपने समान निर्मल विस्तीर्ण एकशिला के पास पहुंचे ॥ ११६-११७ ॥ उसपर बैठकर भगवानने अपने शरीरपरके माला वस्त्र अलंकार आदि सब परिग्रहका त्याग किया और पद्मासनसे विराजमान हो उपवास धारण करलिया ॥ ११८ ॥ समस्त परिग्रहसे रहित दयालु भगवान नेमिनाथने, 'जो केश भयभीत मनुष्योंके मस्तकों पर सदा रहते हैं' उन्हें अपनी कोमल हाथकी अंगुलियोंसे पांच बारमें उपाड़कर फैंक दिया ॥ ११९ ॥ जिसप्रकार भगवान नमिनाथके साथ हजार राजाओंने तप आराधा था उसीप्रकार भगवान नेमिनाथके साथ भी हजार राजाओंने दिगंबर दीक्षा धारण की उन्होंने आतपत्रका सर्वथा परित्याग करदिया और धूपके आतापसे वचनेके लिये जल आदि किसी प्रकारके शीतल पदार्थका संबंध न रक्खा ॥ १२०-१२१ ॥ जिससमय दीक्षित राजा लोगोंने अपने कुटिल केश उपाड़े उससमय ऐसा जान पड़ने लगा मानों तीन शल्यही उपाड़कर फैंकदी हों जिससे कि वे उससमय अतिशय सुहावने जान पड़ने लगे ॥ १२२ ॥ इंद्रने भगवानके केशोंको मणिमयी पात्रमें इकट्ठाकर क्षीरसागरमें जाकर क्षेपण किया और जहांपर भगवानने जीवोंकी रक्षा करनेवाला पवित्र तप आचरण किया था उस-दिनसे वहां प्रसिद्ध तीर्थकी स्थापना हुई ॥ १२३-१२४ ॥ परिग्रहरहित, जीवोंके तारनेवाले भगवानको दिगंबर होतेही मनःपर्यय ज्ञान होगया और अनेक देवोंसे मंडित वे तारा और ग्रहोंसे युक्त चंद्रमाकी तुलना करने लगे ॥ १२५ ॥ भगवानने श्रावण सुदी चौथ के दिन षष्ठोपवास (वेला) पूर्वक दिगंबर दीक्षा धारण की इसलिये अनेक प्रकारके सुपात्रदान देनेवाले मनुष्य सुर और असुरोंने उनके दीक्षाकल्याणककी भक्तिभावसे पूजनकी ॥ १२६ ॥ जब पूजन समाप्त हो चुकी तो वे "भगवन् ! आप कामदेवका मान मर्दन करनेवाले हैं। भव भवमें मनुष्योंके शरण दाता, क्रोधके नाश करनेवाले हैं। शत्रु मित्रमें समदर्शी हैं। तृष्णारहित हैं। मननशील हैं। और उत्तम मार्गपर आरूढ़ हो व्यवहार और निश्चय दोनों नयोंके उपदेष्टा हैं इसलिये आपकेलिये भक्तिपूर्वक हमारा 'नमस्कार है" इत्यादि स्तुति पूर्वक मनमें तप तपनेका पूर्ण विचार कर अपने अपने स्थान चलेगये ॥ १२७ ॥ उपवासके अंतमें भगवान् आहारार्थ द्वारिकापुरी आये

और प्रवरदत्त नामक श्रावकके यहां आहार ले वनको लोटगये जिससेकि वहां देवोंने आनंदके साथ पंचाश्चर्य किये ॥ १२८ ॥

जब भगवान नेमिनाथ दिगंबर दीक्षा धारण कर तप करने लगे तो कुमारी राजीमतीको बड़ाही संताप हुआ और जिसप्रकार सूर्यके संबंधसे दिनमें कुमुदिनी मुरझा जाती है उसीप्रकार राजीमती संज्ञाहीन हो मुरझा गई ॥ १२९ ॥ शोकसे व्याकुल होनेके कारण उसके भूषण और केश पाश शिथिल होगये। वह अपने कुटुंबीजनोंके साथ २ ऐसा करुणाजनक रोदन करने लगी कि उससे पृथ्वी और आकाश दोनों ही व्याप्त होगये ॥ १३० ॥ अश्रुजलसे तलवतल आंखोंवाली वह कभी तो अपने प्यारे पतिके हरण करनेवाले कर्मको कोशने लगी और कभी किशोर अवस्थामें दीक्षा लेनेवाले अपने स्वामीको ही उलाहना देने लगी ॥ १३१॥ राजीमती की यह अवस्था देख तपके उपदेशक, हितकारी वचनोंसे गुरुजनोंने उसका शोक दूर किया जिससे कि उसने अपना उपयोग शांति और सुखको प्रदान करनेवाले अविनाशी तपकी ओर लगाया ॥ १३२ ॥ कमलकी शोभाके समान सुंदर कुमारी राजीमतीके चरण और हस्त अपनी कांतिसे कामजन्य संतापके नाशक हैं—वह उनसे कामदेवको जीत कर तप तपैगी ऐसा जान उसके कुटुंबियोंके हृदयका संताप दूर होगया—वे उससे सुख मानने लगे ॥१३३

ग्रंथकार कहते हैं कि—यह स्त्री पर्याय बड़ीही दुःख देनेवाली है इसमें जीवको क्षण भर भी सुख नहिं मिलता देखो ।! सबसे पहिले तो इनको पराधीनपनेका ही दुःख है-ये कभी स्वतंत्र नही रहतीं। दूसरे पतिके साथ समागम न होनेसे, पतिके शरीरमें क्लेश होनेसे, पतिके दूसरी तीसरी स्त्री होनेसे, ऋतुमती न होनेसे, विधवापना होनेसे, प्रसव अवस्थामें रोग होनेसे, दौर्भाग्यपनेसे, अभागे स्वामीके मिलनेसे, कन्या उत्पन्न होनेसे, मरी हुई संतानके होनेसे, गर्भपात होजानेसे, गर्भकेभार सहनेसे, जीते हुये स्वामीके वियोग होनेसे, और वियोग न होनेपर भी यदि मार्मिक रोग होवे तो उससे, इत्यादि नाना प्रकारके दुःख ही दुःख होते रहते हैं ॥ १३४-१३५ ॥ जिसप्रकार पूरे हुये तंतु वस्त्रके कारण हैं विना वैसे तंतुओंके वस्त्र तयार नहिं होसकता उसीप्रकार स्त्री पर्यायका कारण मिथ्यात्व है। मिथ्यात्वसे स्त्री पर्यायकी प्राप्ति होती है और उसमें अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं इसलिये जो भव्य जीव स्त्री पर्यायके दुःख भोगना नहिं चाहते उन्हैं चाहिये कि वे सम्यक्त्वका आराधन करै ॥ १३६ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें भगवान नेमिनाथका दीक्षाकल्याण वर्णन करनेवाला पचपनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५५ ॥

छप्पनवां सर्ग।

समस्त परीषहोंके सहन करनेवाले भगवान नेमिनाथकी—रत्नत्रय तप, समिति और गुप्तिसे अतिशय शोभा होने लगी ॥ १ ॥ वे निकृष्ट आर्त्त और रौद्र ध्यानोंका सर्वथा परित्याग कर प्रशस्त धर्म और शुक्ल ध्यानोंका आराधन करने लगे ॥ २ ॥ चित्तमें चंचलता होना चिंता है चिंताका एकाग्रतासे निरोध करना ध्यान है। और वह वज्रवृषभनाराच संहननके धारक जीवोंके अंतर्मुहूर्त पर्यंत रहता है इसलिये जिनका मन निश्चल नहीं है उनके चिंता होनेसे ध्यान नहीं हो सकता ॥ ३ ॥ आर्तिका अर्थ पीड़ा है और जिस ध्यानमें पीड़ा सहनी पड़े उसे आर्तध्यान कहते हैं एवं इसकी उत्पत्ति कृष्ण नील और कापोत लेश्यासे होती है ॥४॥ आर्तध्यानके लक्षण दो हैं—एक बाह्य दूसरा अभ्यंतर। रोना विलाप करना आदि बाह्य लक्षण हैं और दूसरेकी लक्ष्मी देख आश्चर्य करना, विषयोंमें आसक्ति रखना अंतरंग लक्षण है ॥ ५ ॥ अपनी आत्माको तो आर्तध्यानका स्वसंवेदन ज्ञान है और दूसरोंको वह अनुमान ज्ञानसे जान पड़ता है। तथा इसके अप्रिय पदार्थोंकी उत्पत्ति न होनेकी चिंता, उत्पन्न होजानेपर उससे छूट जानेका विचार, प्रिय वस्तुके वियोग न होनेका ध्यान, और वियोग होजाने पर उसकी प्राप्तिका विचार ये चार भेद हैं ॥ ६–८ ॥ अमनोज्ञ शत्रु विष शस्त्र आदि बाह्य, वात आदिके प्रकोपसे जायमान कुक्षिरोग दंतरोग शूलरोग आदि शारीरिक, शोक अरति भय उद्वेग विषाद जुगुप्सा दौर्मनस्य आदि मानसिक, अप्रिय पदार्थोंकी उत्पत्ति न होनेका ध्यान करना सो प्रथम आर्तध्यान है ॥ ९–११ ॥ शत्रु विष आदिके समागम होजानेपर 'इनका कैसे नाश होगा' इसप्रकारका विचार करना द्वितीय आर्तध्यान है। ॥ १२ ॥ पुत्र कलत्र आदि चेतन, वन, धन, धान्य आदि अचेतन, पित्त आदिके उपशमसे आरोग्यता होना आदि शारीरिक, चित्त प्रसन्न रहना, प्रीतिका होना, शोक भयका अभाव, आदि मानसिक प्रिय पदार्थोंका इस लोक और परलोकमें मेरे कदापि वियोग न हो इसप्रकारका विचार करना तृतीय आर्त्त ध्यान है और पूर्वोत्पन्न प्रियपदार्थके विनष्ट होजानेपर उसकी चिंता करना चौथा आर्त्त ध्यान है। ॥ १३–१७ ॥ इस आर्त्त ध्यानका आधार प्रमाद है। फल तिर्यंच गति है। यह क्षायोपशमिक भाव है और पहिले मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर छठे प्रमत्तगुणस्थान तक रह सकता है ॥१८॥

क्रूर जीवको रुद्र कहते हैं। उसके ध्यानका नाम रौद्र ध्यान है और यह हिंसानंद, परिग्रहानंद, चौर्यानंद, और मृषानंदके भेदसे चार प्रकारका है ॥ १९ ॥ हिंसामें आनंद मानना हिंसानंद, परिग्रहमें आनंद मानना परिग्रहानंद, चोरीमें आनंद मानना चौर्यानंद, और झूठ बोलनेमें आनंद मानना मृषानंद है ॥२०॥ रौद्र ध्यानके कठोरता

आदि अंतरंग लक्षण और क्रूर वचन आदि वाह्य लक्षण हैं जो कि स्वसंवेदन तथा अनुमानसे जाने जाते हैं। सरंभ (हिंसा आदि पापोंमें प्रवृत्तिका यत्न करना) समारंभ (हिंसाके उपकरण शस्त्र आदिका अभ्यास करना) और आरंभ (हिंसा आदि पापोंमें प्रवृत्त होना) से हिंसा करनेमें तीव्र राग करना हिंसानंद है। अपनी कल्पित युक्तियों द्वारा उत्तम मार्गसे मनुष्योंको विचलित करदेना, उन्हें ठगनेका विचार करना मृषानंद कहा गया है ॥ २१-२३ ॥ अज्ञानपूर्वक हठसे परधनके हरण करनेका विचार करना, परधनके चुरानेमें आनंद मानना चौर्यानंद है ॥ २४ ॥ और स्त्री पुत्र आदि चेतन, वस्त्र आभरण आदि अचेतन परिग्रहोंके हम स्वामी हैं ऐसा चिंतवन करना परिग्रहानंद है ॥ २५ ॥ यह चारो प्रकारका रौद्रध्यान कृष्ण नील और कापोत लेश्यासे उत्पन्न होता है और पहिलेसे लेकर पांचवे गुणस्थान तकके जीवोंके होता है तथा यह अंतमुहूर्तकाल तक रहता है उसके बाद अन्यरूप धारण करता है और क्षायोपशमिक भाव है ॥ २६-२७ ॥ भावलेश्या और कषायोंसे औदयिक रौद्रध्यान भी होता है और इसका फल नरक गति है ॥ २८ ॥ शुद्ध आहार और विहारोंसे शोभित मोक्षाभिलाषी मनुष्योंको चाहिये कि वे पाप स्वरूप आर्त और रौद्र इन ध्यानोंका त्याग करै एवं धर्म्यध्यान और शुक्ल ध्यानकी ओर अपना उपयोग लगावें ॥ २९ ॥

समस्त परीषहोंके सहनकरनेवाले योगीके जब निर्जन, प्रासुक, और क्षुद्रजीवोंके उपद्रवोंसे रहित क्षेत्र, दिव्य शरीररूपी द्रव्य, अति उष्णता आदिसे रहित काल और निर्मल भाव रूप सामग्री प्राप्त हो जाय तो उससमय उसे प्रशस्त ध्यानोंका आराधन करना चाहिये ॥ ३०-३१ ॥ जो योगी गंभीर हो, स्तंभके समान निश्चल मूर्तिका धारक हो, पद्मासनसे विराजमान हो, न अधिक खुले और न अधिक वद किये गये नेत्रोंसे युक्त हो, नीचेके दांतोंपर ऊपरके दांत रक्खे हो, समस्त इंद्रियोंको वश किये हो, शास्त्रका पारगामी हो, मंदमंद चलते हुये श्वास प्रश्वासोंसे सहित हो, और मनके व्यापारको नाभिके ऊपर मस्तकमें हृदयमें वा ललाटमें स्थापित किये हो ऐसे योगीको चाहिये कि वह धर्म्य और शुक्ल ध्यानका आराधन करे ॥ ३२-३४ ॥ वाह्य और आध्यात्मिक पदार्थोंके वास्तविक स्वरूपको धर्म कहते हैं और उससे च्युत न होकर जो ध्यान करना है सो धर्म्यध्यान कहलाता है ॥ ३५ ॥ इसके भी दो लक्षण हैं- एक वाह्य, दूसरा अभ्यंतर। तत्त्वार्थ शास्त्रका अवलोकन, शील आदि व्रतोंका धारण, और गुणोंमें अनुराग करना आदि अभ्यंतर लक्षण है। जंभाई छींक डकार और श्वास प्रश्वासोंकी मंदता एवं शरीरकी निश्चलता ये वाह्य लक्षण हैं ॥३६-३७॥ यह धर्म्मध्यान- अपायविचय, उपायविचय, जीवविचय, अजीवविचय, विपाकविचय, वैराग्यविचय, भवविचय, संस्थानविचय, आज्ञाविचय, और हेतुविचय इन भेदोंसे दश प्रकारका है।

इनमें-अपायका अर्थ विरह और विचयका अर्थ मीमांसा (विचार) है ॥ ३८ ॥ मन वचन कायकी प्रवृत्ति प्रायः संसारकी कारण है, मेरी इससे कब निवृति होगी, इसप्रकारका विचार करना अपायविचय धर्म्यध्यान है और पीत पद्म शुक्ल रूप शुभ लेश्याओंसे उसकी उत्पत्ति होती है ॥ ३९-४० ॥ मेरे ज्ञान वैराग्य आदि पवित्र भावोंकी उत्पत्ति कैसे होगी ? इसप्रकारका विचार करना उपायविचय है ॥ ४१ ॥ ये जीव द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा अनादि अनंत हैं, पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा सादि सांत हैं, असंख्यात प्रदेशवाले हैं, सम्यग्ज्ञान आदि लक्षणोंके धारक हैं, इनके सुख दुख भोगनेमें सहकारी कारण अचेतन हैं और ये अपने किये कर्मका स्वयं फल भोगते हैं इसप्रकार जीवविषयक विचार करना जीवविचय है ॥ ४२-४३ ॥ धर्म अधर्म आकाश आदि अजीव द्रव्योंके स्वभावका चिंतवन करना अजीवविचय नामका धर्म्य ध्यान है ॥ ४४ ॥ प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंधका तथा ज्ञानावरण आदि आठ प्रकारके कर्मोंके विपाक (उदय) का विचार करना विपाकविचय है ॥ ४५ ॥ यह शरीर अपवित्र है-मलमूत्रका भंडार है और ये भोग किंपाक फलके समान विरस हैं इसप्रकारका विचार करना वैराग्यविचय धर्म्यध्यान कहा जाता है । ॥ ४६ ॥ नरक तिर्यंच आदि चारो गतियोंमें मरकर परलोक जाना महादुःखदायी है इसप्रकार भावना भाना भवविचय धर्म्यध्यान है ॥ ४७ ॥ यह लोकाकाश अलोकाकाशमें है तथा चौतर्फा घनवात तनुवात और अंबुवात इन तीनप्रकारके वात वलयोंसे वेष्टित है इत्यादि प्रकारसे लोकके संस्थान (आकार) का विचार करना संस्थान विचय धर्म्यध्यान है ॥ ४८ ॥ बंध मोक्ष आदि अतींद्रिय पदार्थोंके विषयमें जो भगवान जिनेंद्रने कहा है वह सर्वथा सत्य है इसप्रकारका निश्चय करना आज्ञाविचय है ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य तार्किक हैं-युक्तिपूर्वक पदार्थोंको स्वीकार करनेवाले हैं वे स्याद्वादन्यायसे सन्मार्गका आश्रय करते हैं इत्यादि विचार करना हेतुविचय है ॥ ५० ॥ यह धर्म्यध्यान अप्रमत्त गुणस्थानमें होता है। प्रमादका नाशक है। पीत पद्म लेश्यासे उत्पन्न होता है। इसका काल अंतर्मुहूर्त है यह क्षायोपशमिक भाव है और स्वर्ग मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाला है इसलिये योगियोंको चाहिये कि वे अवश्य इस ध्यानका आराधन करें ॥ ५१-५२ ॥

शुक्लका अर्थ शौच है और दोषोंके अभावको शौच कहते हैं इसके शुक्ल और परम शुक्ल दो भेद हैं। पृथक्त्ववितर्कवीचार और एकत्ववितर्कवीचार यह दो प्रकारका तो शुक्ल ध्यान है और सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवृत्ति इन दो भेदोंसे भिन्न परमशुक्लध्यान हैं ॥ ५३-५४ ॥ जंभाई छींक डकार आदिका न आना तो शुक्ल ध्यानका बाह्य लक्षण है और अंतरंगकी निश्चलता अभ्यंतर लक्षण है। यह अपनी

आत्माको तो स्वसंवेदनप्रत्यक्षगोचर है और दूसरे लोग इसे अनुमानसे जानते हैं ॥ ५५–५६ ॥ पृथक्त्वका अर्थ नाना है और वितर्क द्वादशांग श्रुतज्ञानको कहते हैं अर्थ व्यंजन और योगोंका संक्रम (परिवर्तन) वीचार कहलाता है । ध्यान करने योग्य पदार्थका नाम अर्थ है। व्यंजन शब्दको कहते हैं और योगका अर्थ मन वचन कायकी क्रिया है॥ ५७॥ जिसमें नाना रूपसे द्वादशांगका संक्रम हो वह पृथक्त्ववितर्के वीचार नामका शुक्ल ध्यान कहा जाता है ॥ ५८ ॥ सार यह है कि–चित्तकी चंचल वृत्तिसे रहित पूर्वपाठी जो मुनि द्रव्य अणु अथवा भाव अणुको अवलंबन करता है और अल्पतीक्ष्ण शस्त्रसे जिसप्रकार धीरे धीरे वृक्ष काटा जाता है उसी प्रकार मोहका उपशम अथवा अधिक निर्जरावाला होकर क्षय करता है तथा द्रव्यसे द्रव्यपर पर्यायसे पर्यायपर शब्दसे शब्द पर और योगसे योगपर संक्रम करता है वह पृथक्त्ववितर्कवी-चारशुक्लध्यानी कहा जाता है यह ध्यान शुक्ल लेश्यासे उत्पन्न होता है उपशम और क्षपक दोनों श्रेणीवालोंके होनेसे क्षायिक और औपशमिक भाव है चौदहपूर्वके धारकोंके यह अंतर्मूहर्त रहता है उपशम श्रेणीवालोंके औपशमिक और क्षपक श्रेणीवालोंके क्षायिक माना जाता है इसका फल स्वर्ग और मोक्ष है ॥ ५९–६४ ॥ जिसमें संक्रम (पलटना) रहित एक रूपसे द्वादशांगका विचार हो और अन्य प्रकारका वीचार न हो वह एकत्ववितर्क अवीचार शुक्ल ध्यान है ॥ ६५ ॥ इसमें एक ही अणु अथवा पर्याय आदि विषय रहते हैं–संक्रम नहिं होता। यह मोहनीय आदि घतिया कर्मोंका नाश करनेवाला है और पुण्यात्मा पूर्वपाठीके होता है ॥ ६६ ॥ इस एकत्व वितर्क अवीचार ध्यानकी कृपासे भगवान तीर्थंकर अथवा सामान्य केवली अनंत विज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्य, सम्यक् चारित्र आदि क्षायिक भावोंका लाभ करते हैं तीनलोकके परमेश्वर पूजनीय और वंदनीय हो जाते हैं और केवली हो अधिकसे अधिक कुछ कम एक करोड़ पूर्वतक विहार करते हैं ॥ ६७–६८ ॥ जिससमय केवली-की आयु अंतर्मुहूर्त मात्र रह जाती है और गोत्र आदि कर्मोंकी स्थिति भी बराबर होती है उससमय सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती नामका तीसरा शुक्ल ध्यान होता है और यह मन वचन कायकी स्थूल क्रियाके नाश होजानेपर जिससमय स्वभावसे ही कायिक सूक्ष्मक्रियाका अवलंबन होता है तब होता है ॥ ६९–७० ॥ सम्यग्ज्ञान आदि उप-योगोंका धारक, विशिष्ट सामायिककी सहायतासे युक्त, कर्मोंके नाश करनेमें समर्थ योगीके जब आयु कर्मकी स्थिति तो अंतर्मुहूर्तमात्र रह जाती है और शेष अघातिया कर्म अधिक स्थितिवाले होते हैं उससमय वह योगी कर्मोंकी स्थितिके समान करनेके लिये चारसमयमें आत्माके प्रदेशोंको दंडाकार, कपाट (किवाड़) के आकार, पटलके आकार, और लोकपूरण (असंख्यात प्रदेशी) कर पुनः उतने ही समयमें संकुचितकर

तदवस्थ हो जाता है और चारों अघातिया कर्मोंकी बराबर स्थिति कर लेता है तथा जब इसका ज्योंका त्यों स्वाभाविक शरीर हो जाता है उससमय इसके सूक्ष्मक्रिया-प्रतिपाती शुक्ल ध्यान होता है और इसके बाद व्युपरतक्रियानिवृत्ति नामका चौथा शुक्ल ध्यान, 'आत्म प्रदेशोंका परिस्पंद योग और प्राण आदि क्रियाओंके सर्वथा नाश होजानेपर' होता है ॥ ७१–७७ ॥ उससमय अयोग गुणस्थानमें समस्त बंध और आ-स्रवोंका अभाव हो जाता है और मोक्षका कारण यथाख्यातचारित्र प्रकट होजाता है इसप्रकार यह अयोग केवली समस्त कर्मोंका नाशकर तपनीय सुवर्णके समान अपनी चैतन्य शक्तिसे सदा जाज्वल्यमान रहता है ॥ ७८ ॥ यद्यपि केवली समस्त कर्मोंके नाश होजानेपर यहीं सिद्ध हो जाते हैं तथापि जिसप्रकार पूर्व संस्कारसे अग्निकी शिखा स्वभावसे ही ऊंची जाती है। एकबार घुमानेपर कुम्हारका चाक घूमता रहता है, मिट्टी आदिके लेपके दूर होजानेपर तूमी जलके ऊपर तैर निकलती है, बंधनके दूर होजानेपर एरण्डका वीज ऊपर उछल जाता है, उसीप्रकार इस आत्माकी भी स्वाभाविक, पूर्वसंस्कार, कर्मलेपका अभाव, और कर्मबंधके नाश हो जानेपर ऊर्ध्वगति होती है ॥ ७९–८० ॥ जीवोंके गमन करनेमें सहकारी कारण धर्मास्तिकाय है अलोकाकाशमें उसका अभाव है इसलिये लोकके अग्रभाग (सिद्धशिला) से आगे अलोकाकाशमें जीव गमन नहिं करते–सिद्ध शिलापर ही विराजमान हो चिदानंद सुखका भोग करते हैं ॥ ८१ ॥ धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंमें अंतिम पुरुषार्थ मोक्ष, प्रधान है। जीवोंका हित करनेवाला है समस्त कर्मोंका क्षयरूप लक्षणका धारक है। उपर्युक्त दो ध्यानोंसे उसकी प्राप्ति होती है। कर्म प्रकृतियोंका अभाव स्वरूप और सुख स्वरूप है। एवं अयत्न साध्य और यत्न साध्यके भेदसे दो प्रकारका है॥८२–८४॥ जो जीव चरम शरीरी हैं, वज्रवृषभनाराचसंहननके धारक हैं उनकेलिये अयत्न साध्य है–वे सुलभतासे उसे प्राप्त करलेते हैं। और जो जन्मांतरसे मोक्ष जानेवाले हैं उनकेलिये यत्नसाध्य है–मोक्षकी प्राप्तिकेलिये उन्हें विपुल प्रयत्न करना पड़ता है ॥ ८५ ॥ अविरतसम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानसे लेकर प्रमत्तनामक छठे गुणस्थानपर्यंत किसी गुणस्थानमें विशुद्धबुद्धिका धारक सम्यग्दृष्टि जीव अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सम्यङ्क्त्वमिथ्यात्व इन सात प्रकृतियोंका क्षय करता है और उसे सूर्यके समान देदीप्यमान क्षायिक सम्यक्त्वका लाभ होता है ॥ ८६–८७ ॥ प्रमत्त गुणस्थानके अंतमें सातवेंकी आदिमें जब यह जीव क्षपक श्रेणी माढ़ता है उस-समय वह नरक गति, तिर्यंच गति और देवगति रूप प्रकृतियोंका क्षय करता है आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानमें पाप प्रकृतियोंका क्षयकर नववे अनिवृत्तिगुणस्थानमें जाता है ॥ ८८–८९ ॥ वहांपर क्षपक श्रेणीमें आरुढ़ होकर शुक्ल ध्यानरूपी प्रबल अग्निसे

निद्रानिद्रा १ प्रचला प्रचला २ स्त्यानगृद्धि ३ नरकगति ४ नरकगत्यानुपूर्वी ५ तिर्यग्गति ६ तिर्यग्गत्यानुपूर्वी ७ एकेंद्रिय ८ दो इन्द्रिय ९ तेंइंद्रिय १० चौइंद्रिय ११ स्थावर १२ आतप १३ उद्योत १४ सूक्ष्म १५ और साधारण १६ इन सोलह प्रकृति रूपी काष्ठको भस्म करता है ॥ ९०–९२ ॥ तथा उसी गुणस्थानमें अप्रत्याख्यानकी चौकड़ी प्रत्याख्यानकी चौकड़ी ये आठ कषाय, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, हास्य रति आदि छै नोकषाय, पुरुषवेद, क्रोधसंज्वलन, मान संज्वलन, माया संज्वलन इन अठारह प्रकृतियोंका भी क्षय करता है। दशवें सूक्ष्मसांपरायनामक गुणस्थानमें सूक्ष्म लोभ संज्वलनकी सत्ता रहती है अंतमें उसे भी नाशकर मोहरहित हो वारहवें क्षीणकषाय गुणस्थानमें जाता है उसके अंतके दो समयोंमें पहिले समयमें निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियोंका क्षय करता है और अंतिम समयमें पांच प्रकृति ज्ञानावरणीय कर्मकी, पांच अंतरायकी, चार दर्शनावरणीयकी प्रकृतियोंका क्षयकर सयोगकेवली गुणस्थानमें जा केवली होजाता है ॥ ९३–९८ ॥ इस तेरहवें गुणस्थानमें किसी भी प्रकृतिका क्षय नहीं करता उसके वाद चौदहवें अयोग केवली गुणस्थानके अंतके दो समयोंमेंसे प्रथम समयमें वेदनीय कर्मकी दोनों सातावेदनीय असातावेदनीयमेंसे अनुदयरूप एक, देवगति, औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, कार्माण ये पांच शरीर, पांच संघात, पांच वंधन, औदारिक, वैक्रियिक और आहारक ये तीन अंगोपांग, छै संस्थान, छै संहनन, पांच वर्ण, पांच रस, आठ स्पर्श, दो गंध, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उच्छ्वास, परघात, उपघात, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, प्रत्येकशरीर, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, स्वर, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्त्ति, निर्माण और नीचगोत्र इन वहत्तर प्रकृतियोंका क्षय करता है और अंत समयमें वेदनीयकी वची हुई कोई एक, मनुष्यगति, मनुष्यायु, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, पंचेंद्रियजाति, त्रस, वादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, उच्चगोत्र, यशस्कीर्ति और तीर्थंकर इन तेरह प्रकृतियोंका क्षय करता है। तथा अ, इ, उ, ऋ, ऌ, इन पांच अक्षरोंके साधारण रूपसे उच्चारण करनेमें जितना काल लगता है उतने कालतक चौदहवें गुणस्थानमें ठहरकर सादि अनंत सिद्ध पदको प्राप्त होजाता है और वह अचिंत्य अव्यावाधरूप सुखरसका आस्वादन करता है ॥ ९९–११० ॥ इसतरह भलेप्रकार धर्म्यध्यानका आराधन करते हुये भगवान नेमीश्वरने छप्पन अहोरात्र पर्यंत घोर तप तपा। आश्विन सुदी प्रतिपदके दिन शुक्ल ध्यानरूपी अग्निसे उन्होंने समस्त घातिया कर्म नाश किये और तीनलोकके इंद्रोंके आसनोंके कपानेवाले अनंत विज्ञान अनंत दर्शन आदि परम दुर्लभ अनंत चतुष्टयको प्राप्त किया ॥ १११–११३ ॥ भगवानके केवलज्ञानके प्रभावसे घंटा सिंहनाद दुंदुभि और शंखोंकी उत्कट ध्वनि होने लगी और इस ध्वनिसे समस्त देवोंको भगवानके केवल ज्ञानका पता लगगया। इंद्रोंके

भी सिंहासन और मुकुट प्रकंपित होगये और अवधिज्ञानसे भगवानकी केवलज्ञान विभूतिका निश्चय कर वे देवोंसे मंडित हो समुद्रको क्षुब्ध करनेवाली अपनी सेनाके साथ शीघ्र ही गिरनारकी ओर चल दिये ॥ ११४ ॥ उससमय देवोंने अपनी सेना और वाहनोंके समूहसे समस्त आकाश व्याप्तकर दिया और गिरनार पर्वतपर आकर उसकी तीन प्रदक्षिणा दीं। गिरनार पर्वत गुणोंमें मेरुसे भी बढ़ा चढ़ा था क्योंकि मेरु पर्वतपर तो देवगण नेमिनाथके जन्मसमयमें केवल एक ही बार गये और यहां पर एक बार भगवानके तप कल्याणके समय आये थे और दूसरी बार ज्ञान कल्याणके समय उन्हें आना पड़ा ॥ ११५ ॥ उससमय वहां मंदार पारिजात आदि कल्पवृक्षोंके सुगंधित पुष्पोंकी वर्षा होने लगी, देवांगनाओंके मनोहर गीतोंसे और दुन्दुभियोंके नादसे आकाश व्याप्त होगया, लोकके शोकको नाश करनेवाला, फल पुष्पोंसे शोभित अशोक वृक्ष प्रकट होगया, भगवानके मस्तकपर तीन लोकके ऐश्वर्यको बतलानेवाले तीन छत्र जगमगाने लगे, हंसोंके समान धवल हजारों चमर ढुरने लगे, अपनी प्रभासे सूर्यके प्रभामंडलको तिरस्कृत करनेवाला भामंडल चमचमाने लगा, नानाप्रकारके रत्नोंसे देदीप्यमान, इंद्रधनुषके समान सिंहासन शोभित होनेलगा, एवं नाना प्रकारकी भाषाओंसे शोभित, ओष्ठ आदिके हलन चलनसे रहित, दिव्यध्वनि विकसित हुई। इसप्रकार अष्ट प्रतिहार्योंसे मंडित, घातिया कर्मोंके अभाव होजानेपर देवकृत चौतीस अतिशयोंसे भूषित, तीनलोकके उद्धारकेलिये स्वाभाविक धैर्यके धारक, अनेक गुणोंके भंडार, हरिवंशके तिलक, भगवान नेमिनाथकी गिरनार पर्वतपर अतिशय शोभा होने लगी ॥ ११६–११७ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथके चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें भगवान नेमिनाथका केवलज्ञानकल्याण वर्णनकरनेवाला छप्पनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५६ ॥

सत्तावनवां सर्ग।

इंद्रकी आज्ञासे देवोंने समस्त लोकके प्राणियोंको शरणदेनेवाले समवशरणकी जब रचना करदी तो बलदेव कृष्णको आदिले यादव और भोजवंशी समस्त द्वारिकानिवासी जन गिरनार पर्वतपर आये और वाहिर भीतर भगवानके समवशरणकी रचना निहार कर बड़ा ही आश्चर्य करने लगे ॥ १–३ ॥ भगवान तीर्थंकरकी जिसप्रकार समवशरण रचना होती है उसका संक्षेप वर्णन इसप्रकार है—

समवशरणकी भूमि स्वाभाविक भूमिसे एक हाथ ऊंची रहती है और उससे एक हाथ ऊंची कल्पभूमि होती है जोकि चतुरस्र,(चौकोण) परमसुख देनेवाली, और शोभासे स्वर्गभूमिको जीतती है। देश कालके अनुसार समवशरणकी भूमि अधिकसे अधिक

बारह योजन, और कमसे कम एक योजनकी विस्तृत होती है । भगवान नेमिनाथ वावीसवें तीर्थंकर थे इसलिये उनकी समवशरण रचना डेढ़ योजनमें थी। समवशरणकी भूमि कमलके समान होती है गंधकुटी कलीके समान और वाह्य विस्तार कमलपत्रोंके आकारका होता है ॥ ४-७ ॥ उसका रंग इंद्र नीलमणि सरीखा होता है। उसकी वाह्यभूमि दर्पणके समान स्वच्छ रहती है। और अनेक मनुष्योंके प्रवेश करनेपर भी उसमें स्थानकी कमी नहि होती ॥ ८ ॥ जिसमें विराजमान भगवानको इंद्र आदि देव दूरसे ही भक्तिवश नमस्कार करते हैं उस भूमिको मानांगणा कहते हैं ॥ ९ ॥ इस मानांगणा भूमिकी चार दिशाओंमें दो कोश विस्तृत चार वीथी (गलियां) होती हैं। उनके मध्यमें मानस्तंभोंके पीठ रहते हैं, जो कि छाती प्रमाण ऊंचे अपनी ऊंचाईसे तिगुने चौड़े एवं सुवर्ण और रत्नमयी मूर्तियोंके धारक होते हैं। तथा जिनको मनुष्य सुर असुर सभी आकर नमस्कार करते हैं ॥ १० ॥ जहां आकर मनुष्य और देव मानस्तभोंकी पूजन करते हैं उस भूमिका नाम आस्थानांगणा है जो कि पद्मराग मणियोंसे देदीप्यमान रहती है ॥११-१२॥ चारो गलियोंके मध्यमें जो चार सुवर्णमयी पीठ होते हैं वे छातीप्रमाण ऊंचे आध कोश चौड़े और गोल होते हैं । पीठोंके ऊपर चार मानस्तंभ होते हैं जोकि पीठोंकी चौड़ाईसे एक धनुष कम चौड़े होते हैं और कुछ अधिक एक योजन ऊंचे होते हैं ॥ १३-१४ ॥ कमलोंसे शोभित हैं पालिका (अग्रभाग) जिनकी ऐसे ये मानस्तंभ बारह योजनकी दूरीसे दीखते हैं। इनका मूलभाग वज्रमणिमयी, मध्यभाग स्फटिकमयी और अग्रभाग वैडूर्यमणिमयी होता है ॥१५॥ ये स्तंभ दो दो हजार कोनों से युक्त होते हैं। इनके अग्रभागमें रत्नमयी प्रतिमा विराजमान रहती हैं और इनकी पालिका रत्नमयी होती हैं ॥ १६ ॥ पालिकाके मुखपद्मपर देदीप्यमान फलकसे आवद्ध (मुहवंध) सुवर्णके कुंभ रहते हैं और वे लक्ष्मीके स्नानकुंभ सरीखे जान पड़ते हैं ॥ १७ ॥ इन मानस्तंभोंका श्रीदेवीके चूड़ामणिके तेजसे भी कई गुणा अधिक तेज होता है वीस योजन तक ये आकाशमें प्रकाश करते हैं और अभिमानी देव मनुष्योंके अभिमानके खंड खंड करनेवाले होते हैं ॥ १८ ॥ मानस्तभोंसे आगे चारो दिशाओंमें चार सरोवर रहते हैं जो महामनोहर कमलोंसे व्याप्त और हंस सारस एवं चक्रवाकोंके मधुर २ शब्दोंसे महामनोहर जान पड़ते हैं ॥ १९ ॥ सरोवरोंसे आगे वक्षस्थल पर्यंत ऊंचा महादेदीप्यमान प्राकार रहता है जोकि चौतर्फा स्थित और ऊंचाईसे द्विगुण विस्तारवाला होता है ॥ २० ॥ परकोटके चारोओर घोंटूपर्यंत जलसे भरी गंभीर खाई रहती है। उसकी भूमि स्फटिक मणिके समान होती है और ऐसी जानपड़ती है मानो पृथ्वीरूपी स्त्रीकी नील साड़ी है ॥ २१ ॥ अतिशय निर्मल इस खातिकाका जल सुवर्णमयी कमलोंके

१-यहांपर आत्मागुलसे वनी हुई वितस्ति आदिका योजन लेना चहिये।

रजसे पीला रहता है और उसमें दिशारूपीस्त्रियोंके रक्त मुख अतिसुहावने जान पड़ते हैं। ॥२२॥ खाईके चौतर्फा लताओंका वन (वल्लीवन) रहता है जो कि पुष्पोंकी सुगंधिसे समस्त दिशाओंको सुगंधित बनाता है और जिसमें जगह जगह पक्षी और भौंरे विचरते फिरते हैं ॥२३॥ उस वल्लीवनको वेष्टित करनेवाला, सुवर्णके समान देदीप्यमान, रूपाके रंगके विजय वैजयंत आदि चार गोपुरोंसे मंडित प्राकार रहता है ॥ २४ ॥ और उन चारो गोपुरोंपर नानाप्रकारके कटक आदि भूषणोंसे भूषित व्यंतर जातिके देव द्वारपाल रहते हैं जो कि दुष्ट जीवोंको रोकते हैं और हाथमें मुद्गर अस्त्र लिये रहते हैं ॥२५॥ इन गोपुरोंके अतिशय देदीप्यमान मणिमयी तोरण रहते हैं और उनके हर एक पसवाड़ेमें छत्र चमर भृंगार आदि एकसौ आठ २ द्रव्य स्थित रहती हैं। दरवाजेके सामने दोनों ओर दो नाट्यशाला रहती हैं और उन हरएक नाट्यशालामें तीन तीन खन रहते हैं जिनमें कि वत्तीस वत्तीस देवांगनायें नृत्य करतीं रहतीं हैं ॥२६–२७॥ नाट्यशालासे आगे पूर्वदिशामें अशोक, दक्षिणमें सप्तपर्ण, पश्चिममें चंपक और उत्तरमें आम्रवन इसप्रकार चार महावन होते हैं ॥२८॥ इन चारो वनोंमें अशोकवनका स्वामी अशोक वृक्ष, सप्तपर्णका सप्तपर्ण, चंपकका चंपक और आम्रवनका स्वामी आम्रवृक्ष रहता है इन्हें चैत्यवृक्ष भी कहते हैं और ये सब जिनेंद्र भगवानकी प्रतिमाओंसे युक्त होते हैं ॥ २९ ॥ इन वनोंमें तिकोनी, चौकोंनी, वर्तुलाकार, तोरणोंसे भूषित, दर्शनीय और तीर्थ स्वरूप अनेक वावड़ी रहती हैं जहां पर कि जगह जगह हंस आदि पक्षी किलोल करते फिरते हैं और जो स्फटिक मणिकी अगाध रहती हैं और दो कोश चौडी होती हैं ॥ ३०–३१ ॥ नंदा नंदोत्तरा आनंदा नंदवती अभिनंदिनी और नंदघोषा ये छै वापियां अशोकवनमें, विजया अभिजया जयंती वैजयंती अपराजिता और जयोत्तरा ये छै सप्तपर्ण वनमें, कुमुदा नलिनी पद्मा पुष्करा विकचोत्पला और कमला ये छै वावड़ी चंपकवनमें तथा प्रभासा भास्वती भासा सुप्रभा भानुमालिनी और स्वयंप्रभा ये छै वापी आम्रवनमें होतीं हैं ॥ ३२–३५ ॥ क्रमसे उदय विजय प्रीति और ख्यातिरूप फल देनेवालीं इन वापियोंकी भव्यजीव उदय आदि फलोंकी अभिलाषासे पूजा करते हैं ॥ ३६ ॥ और इनमें स्नान कर इन वापियोंसे पुष्प तोड़कर स्तूपपर्यंत भगवानकी प्रतिमा पूजते हुये समवशरणमें प्रवेश करते हैं ॥ ३७ ॥ उदय और प्रीति देनेवाली वावड़ियोंके मध्यमें मार्गोंपर तिमंजली, सुवर्णके समान देदीप्यमान, नाटक शाला रहती हैं जो डेढ कोशकी चौड़ी होती हैं जिनमें कि खने रत्नमयी, भीतियें स्फटिक मणिमयी, और रंगभूमि वत्तीस २ रहती हैं ॥ ३८–३९ ॥ इनमें भक्तिपूर्वक ज्योतिषी देवोंकी वत्तीस २ देवांगनायें नृत्य करतीं रहती है जो कि हाव भाव विलासोंमें परम चतुर शृंगार आदि रसोंकी पुष्ट करनेवाली होतीं हैं ॥ ४० ॥ गोपुरोंसे आगे दिव्य वज्रमयी वेदी रहती है और

मार्गके दोनों पसवाड़ोंमें ध्वजा फेराती रहती हैं ॥ ४१ ॥ ध्वजाओंके पीठ तीन धनुष चौडे आधा योजन ऊंचे और चित्र विचित्र रत्नोंके रहते हैं उनके ऊपर रत्नमयी वांस गडे रहते हैं जिनके कि अग्रभागपर छोटी २ घंटियोंसे युक्त चित्रविचित्र वड़ी २ नाना प्रकारके वस्त्रोंकी ध्वजायें फेराती रहतीं हैं और उनमें मयूर हंस गरुड माला सिंह हाथी मगर कमल वृपभ और चक्रोंके भिन्न २ दश चिह्न रहते हैं ॥४२–४४॥ सामान्यरीतिसे तो एक दिशामें एकसौ आठ २ ध्वजा और चारोमें चारसौ वत्तीस होती हैं ॥४५॥ विशेप रीतिसे हरएक दिशामें एक करोड़ सोलह लाख चौसठ हजार २ हैं और मिलकर चारो दिशाओंमें चार करोड अडसठ लाख छतीस हजार कुछ अधिक होती हैं ॥४६–४७॥ प्रीतिनामक कल्याणके मध्यमें पंचखनी गोल नृत्य शाला रहती है और उसमें भवनवासी देवोंकी स्त्रियां नृत्य करती हैं ॥ ४८ ॥ नृत्यशालासे आगे पचखने रत्नमयी चार गोपुरोंसे भूषित एक सुवर्णमयी दूसरा और प्राकार है ॥ ४९ ॥ उस प्राकारके पीठोंपर रत्नमालाओंसे शोभित सुवर्णमयी कमलोंसे व्याप्त जलके भरे हुये कलश रहते हैं ॥५०॥ उसके पसवाडोंमें दो दो मंगल कलश और द्वारोंपर हाथमें वेंतलिये हुये मनोज्ञ भवनवासी देव द्वारपाल रहते हैं ॥५१॥ द्वारोंके आगे दो दो नाट्यशालायें और उनके आगे दो २ सुर्वणमयी धूपके घडे रक्खे रहते हैं ॥५२॥ उससे आगे चारो दिशाओंमें सिद्धोंकी प्रतिमासे युक्त दो दो सिद्धार्थ वृक्षोंके धारक यथायोग्य वीथियोंके अंतमें कल्प वृक्षोंके वन रहते हैं ॥ ५३ ॥ इसके वाद चार गोपुरोंसे युक्त चारो ओर वनकी वेदी रहती है और मार्गमें तोरणोंसे व्याप्त नौ २ स्तूप रहते हैं ॥ ५४ ॥ पद्मराग मणिमयी स्तूपोंके अंतमें वहुतसे चित्र विचित्र रत्नमयी मुनि और देवोंके योग्य सभागृह रहते हैं ॥५५॥ सभागृहोंके आगे स्फटिक मणिमयी नाना प्रकारके रत्नोंसे आकीर्ण सतखने चार दरवाजोंसे भूपित तीसरा परकोट रहता है ॥५६॥ इस परकोटका जो दरवाजा पूर्वकी ओर है उसके विजय विश्रुत कीर्ति विमल उदय विश्वधृक् वासवीर्य वर ये आठ नाम हैं दक्षिण द्वारके वैजयंत शिव ज्येष्ठ वरिष्ठ अनघ धारण याम्य अप्रतिघ ये आठ, पश्चिम द्वारके जयंत अमित सार सुधामा अक्षोभ्य सुप्रभ वरुण और वरद ये आठ तथा अपराजित अर्च अतुलार्थ अमोघ उदित अक्षय उदित कौवेर और पूर्णकाम ये आठ उत्तर दिशाके दरवाजेके नाम रहते हैं ॥ ५७–६० ॥ द्वारोंके दोनों पसवाडोंमें दर्शकोंको अतीतभव दिखानेवाले सुंदर रत्नके आसनोंपर रक्खे हुये मगल दर्पण रहते हैं जो कि अपनी उत्कट कांतिसे समस्त अंधकारका नाश करते हुये सूर्यकी कांतिको तिरस्कृत कर द्वारोंको प्रकाशमान करते हैं। विजयादिक गोपुरोंमें यथा योग्य 'जय हो' 'कल्याण हो' आदि शब्द करनेवाले कल्पवासी देव द्वारपालोंका काम करते हैं ॥६१–६२॥ ये तीन प्राकार क्रमसे एक कोश दो कश और तीन कोश ऊंचे मूल मध्य और ऊपर ऊंचाईसे

आधे चौडे रहते हैं ॥ ६३ ॥ इन द्वारोंके नीचे भागका परिमाण उनके परिमाणोंसे तीन हाथ कम रहता है और वह वंदरके अर्धमस्तकाकार होता है ॥ ६४ ॥ उससे आगे नाना प्रकारके वृक्ष, लतागृह मंच प्रेंखागिरि और नाट्य शालाओंसे युक्त वन रहते हैं ॥ ६५ ॥ वीथियोंके मध्यमें वेदिकाओंसे युक्त, कल्याणजय नामका आंगण रहता है और उसमें जगह २ केलाके वृक्ष महामनोहर जान पड़ते हैं ॥ ६६ ॥ वेदीके मध्यमें नाटकशाला रहती है और उसमें अतिप्रभावालीं लोकपालोंकी देवांगनायें सदा नृत्य किया करतीं हैं ॥ ६७ ॥ उसके वीचमें नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणोंसे देदीप्यमान अपने तेजसे अंधकारका नाश करनेवाला दूसरापीठ रहता है ॥ ६८ ॥ पीठसे आगे अनेक वृक्षोंसे मंडित चैत्यवृक्ष रहते हैं जिनपर कि सिद्ध भगवानकी प्रतिमा विराजमान रहती हैं ॥ ६९ ॥ उससे आगे पृथ्वीके भूषणभूत सुवर्णमयी वारह स्तूप रहते हैं और जिसप्रकार आसपासके चार मेरु मध्य मेरुकी शोभा बढ़ाते हैं उसीप्रकार वे पीठको अतिशय मनोहर बनाये रहते हैं ॥ ७० ॥ चारो दिशाओंमें द्वार और वेदियोंसे भूषित नंदा भद्रा जया और पूर्णा नामकी चार विशाल वावड़ी रहती हैं इनमें स्नान करनेवाले जीव अपने पूर्वके एक भवको जान लेते हैं ये पवित्र जलसे भरी हुई और समस्त पाप रूपी रोगोंका नाश करनेवाली होती हैं और जो मनुष्य इनमें अपनी तस्वीर देखते हैं उन्हें वीते हुये तीनभव, आगेके तीनभव और वर्तमान भव इसप्रकार सात भव स्पष्ट दीखते हैं ॥ ७१-७४ ॥

वावड़ियोंसे आगे एक जयांगण (इंद्रध्वज) रहता है यह एक कोश ऊंचा, कुछ अधिक एक योजन चौड़ा, कटिभाग पर्यंत ऊंची दिवालों पर लगी हुई अनेक कदली ध्वजाओंसे व्याप्त, निकलने और प्रवेश करनेवाले प्राणियोंका आधार, उन्नत तोरणोंसे शोभित, मोती और मूगोंकी झालरसे युक्त, नानाप्रकारके रत्न और पुष्पोंसे चित्रविचित्र, सुवर्णमयी कमलोंसे शोभित और पृथ्वीपर अवतीर्ण अनेक सूर्योंके समान जगह २ महादेदीप्यमान रत्नोंसे लिप्त रहता है ॥ ७५-७८ ॥ वहांपर सुर असुर मनुष्योंसे व्याप्त अनेक प्रासाद मंडप और अन्य सुखस्थान होते हैं जिससे कि वह रंगविरंगा दीखता है ॥ ७९ ॥ अनेक जगह वहां भांति भांतिकी चित्रकारीसे युक्त निकेतन बने रहते हैं-कहीं कहीं उन महलोंकी दीवालोंपर पौराणिक-पुराणोंमें वर्णन किये महापुरुष आदिके चित्र खिचे हुये होते हैं ॥ ८० ॥ कहींपर पुण्यफलोंकी प्राप्तिके और कहींपर पापके फलोंके चित्र रहते हैं जिनसे कि वे साक्षात् धर्म अधर्मका स्वरूप समझाते हैं ॥ ८१ ॥ कहीं कहींपर दान शील तप और पूजाके प्रारंभके चित्र रहते हैं कहींपर उनके फलकी तस्वीरें कढ़ी रहती हैं और कहीं कहींपर जो दान आदि नहिं करनेवाले हैं उन्हें जो विपत्ति भोगनी पड़ती है उसके चित्र अंकित रहते हैं जिससे कि वह

जयांगण दान आदिकेलिये मनुष्योंको प्रेरणा करता है ॥ ८२ ॥ वहांपर मोतियोंकी माला और उनमें मणि जगमगाती हैं, पताकाओंपर अनेक घंटरियां लटकी रहती हैं और पवनसे प्रेरित हो वे शब्द करती हैं ॥ ८३ ॥ आकाशके मध्यमें वहां देदीप्यमान रत्नमयी मालाओंकी किरणें समुद्रमें चंचल तरंगोंकी तुलना करती हैं और उन्हें देवेंद्र आदि बड़े आश्चर्यसे देखते हैं जिससे कि पापसे उन्हें पूरा २ भय होतारहता है ॥८४॥ इंद्रध्वजके मध्यमें एक सुवर्णमयी पीठ रहता है और वह भगवान की जयलक्ष्मीका मूर्तिमान देहसरीखा जान पड़ता है। उसके बाद एक हजार स्तंभोंके मध्यमें महोदय नामक मंडप और उसमें मूर्तिमती नामकी श्रुतदेवता निवास करती है ॥ ८५-८६ ॥ श्रुतदेवीकी दाहिनी ओर अनेक विद्वानोंसे मंडित भगवान श्रुतकेवली विराजमान रहते हैं और पवित्र श्रुतका व्याख्यान करते रहते हैं ॥ ८७ ॥ महोदय मंडपसे आधे परिमाणवाले उसीके समीप चार मंडप और रहते हैं और उनमें बैठकर कथाके प्रेमी भव्यजीव आक्षेपिणी विक्षेपिणी संवेदिनी निर्वेदिनी नामकी चार कथाओंका कथन करते हैं ॥८८॥ इन मंडपोंके समीपमें भांति भांतिके बहुतसे फुटकर स्थान भी बने रहते हैं और वहां बैठकर केवल आदि ऋद्धियोंसे मंडित ऋषिगण ऋद्धियोंका व्याख्यान करते हैं। ॥ ८९ ॥ आगे चलकर नानाप्रकारकी लताओंसे परिपूर्ण एक सुवर्णमयी पीठ रहता है और भव्यजीव आकर उसकी यथाकाल पूजन करते हैं ॥ ९० ॥ पीठका द्वार नानाप्रकारके रत्न और पुष्पोंसे युक्त रहता है और सूर्यचंद्रमाके समान अपने कांतिमंडलसे मार्गको प्रकाशमान करता है ॥ ९१ ॥ पीठके मार्गोंपर इधर उधर दो दो मंडप रहते हैं और उनमें नवनिधिके रक्षक, याचकोंको यथेष्ट दान देनेवाले, दो प्रभासक देव बैठते हैं ॥९२॥ उनके आगे दो विशाल प्रमदा नामकी नाट्यशालायें होती हैं और उनमें सदा कल्पवासिनी देवियां नृत्य करती रहती हैं ॥ ९३ ॥ विजयांगणके कोनेमें अनेक प्रकारकी ध्वजाओंसे व्याप्त एक २ योजन ऊंचे चार लोकस्तूप रहते हैं ॥ ९४ ॥ ये स्तूप मूलभागमें वेत्रासनके आकार मध्यभागमें झल्लरीके समान ऊपर मृदंग तुल्य होते हैं और इनके शिखर तालके समान जान पड़ते हैं ॥ ९५ ॥ ये स्फटिकमणिके समान स्वच्छ रहते हैं इसलिये उनकी समस्त भीतरी रचना स्पष्टरीतिसे दीख पड़ती है इन स्तूपोंके आगे मध्यलोकके स्तूप होते हैं और उनमें मध्यलोकका स्वरूपस्पष्ट रीतिसे दीखता है ॥ ९६-९७ ॥ आगे मंदराचलके समान देदीप्यमान मंदरनामके स्तूप रहते हैं उन पर चारो दिशाओमें विराजमान भगवानकी प्रतिमा महामनोहर जान पड़ती हैं ॥ ९८ ॥ कल्पवासियोंकी रचनासे युक्त कल्पवास नामके स्तूप रहते हैं और उनमें देखनेवालोंको कल्पवासी देवोंकी स्पष्टरूपसे विभूति दीखती है ॥ ९९ ॥ आगे ग्रैवेयक नामके स्तूप रहते हैं और उनसे स्पष्टरूपसे ग्रैवेयकोंका स्वरूप दीख पड़ता है ॥ १०० ॥ आगे नव अनुदिशोंके

स्तूप रहते हैं और उनमें दर्शकगण नव अनुदिशोंका स्वरूप देखते हैं ॥ १०१ ॥ आगे सर्वार्थसिद्धि नामके स्तूप रहते हैं जिनमेंकि चारो दिशाओंके विजय आदि विमान और सर्वार्थसिद्धिकी रचना स्पष्टरूपसे जान पड़ती है ॥१०२॥ आगे स्फटिकके समान निर्मल सिद्धनामके स्तूप रहते हैं और उनमें दर्पणोंकी कांतिके समान सिद्धोंके स्वरूप दीख पड़ते हैं ॥१०३॥ उसके बाद उत्तम शिखरोंसे शोभित भव्यकूट नामके स्तूप होते हैं जिनकी कि प्रभा इतनी तीक्ष्ण होती है कि अभव्य उसकी ओर निहार तक भी नहिं सकते ॥१०४॥ आगे प्रमोह नामके स्तूप होते हैं और मोही जीव उन्हें देखकर चिरकालसे अभ्यस्त भी मोहका त्याग कर देते हैं ॥१०५॥ आगे प्रबोध नामके स्तूप हैं जिन्हें देखतेही साधुजन प्रबुद्ध हो पदार्थोंका वास्तविक स्वरूप जानकर कर्मोंसे रहित हो जाते हैं॥१०६॥ इसप्रकार परिधिके चारो ओर क्रमसे वेदिका और तोरणोंसे शोभित अति उन्नत ये दश प्रकारके स्तूप रहते हैं ॥ १०७ ॥ आगे एक परकोट रहता है जो एक कोश चौड़ा और एक धनुष ऊंचा होता है और उसकी मंडलकी पृथ्वीको छोड़कर मनुष्य और देव पर्यटन करते रहते हैं ॥ १०८ ॥ इस परिधिकी वाह्यकर्णिका दश कोश और अंतरंग कर्णिका साडे तीन योजनकी रहती है ॥ १०९ ॥ जिसप्रकार सूर्यका परिवेष सूर्यमंडलको शोभायमान करता है उसीप्रकार परकोटका चित्र विचित्र रत्नमयी परिवेष भी मंडलको शोभायमान करता है ॥ ११० ॥ निर्माणकी इच्छाके बाद ही वहां एक दिव्य पुर बन जाता है जिसका कि इतना अनुपम प्रभाव रहता है कि गण-धर देव भी उसका वर्णन नहीं कर सकते ॥१११॥ और उस पुरके त्रिलोकसार, श्रीकांत, श्रीप्रभ, शिवमंदिर, त्रिलोकीश्री, लोककांति, श्रीपुर, त्रिदशप्रिय, लोकालोकप्रकाश द्यौ, उदय, अभ्युदयावह, क्षेम, क्षेमपुर, पुण्य, पुण्याह, पुष्पकास्पद, भुवःस्वर्भू, तपःसत्य, लोकालोकोत्तम, रुचि, रुचावह, उदारर्धि दानधर्मपुर, श्रेय, श्रेयस्कर, तीर्थ, तीर्थावह, उदग्रह, विशाल, चित्रकूट, धीश्रीधर, त्रिविष्टप, मंगलपुर, उत्तमपुर, कल्याणपुर, शरण-पुर, जया, अपराजिता, आदित्यजयंती, अंचलसंपुर, विजयंत, जयंताभ, विमल, वि-मलप्रभ, कामभू, गगनाभोग, कल्याण, कलिनाशन, पवित्र, पंचकल्याण, पद्मावर्त, प्रभोदय, परार्ध्य, मंडितावास, महेंद्र, महिमालय, स्वायंभुव, सुधाधात्री, शुद्धावास, सुखावती, विरजा, वीतशोका, त्रिमला, विनयावनि, भूतधात्री, पुराकल्प, पुराण, पुण्य-संचय, ऋषिवती, धयवती, रत्नवती, अजरा, अमरा, प्रतिष्ठा, ब्रह्मनिष्ठोर्वी, केतुमालिनी, अनिंदित, मनोरम, तमःपार, अरत्नी, रत्नसंचय, अयोध्या, अमृतधानी ब्रह्मपर आदि सौ नाम रहते हैं ॥११२-१२३॥ भगवान जिनेंद्रके प्रभावसे तीन लोकके इकट्ठे किये हुये सारोंका पुंजभूत वह समवसरण लोगोंकी दृष्टिमें बड़ाही आश्चर्यकारी होता है॥१२४॥ उसका बनानेवाला कुबेर भी यदि सावधान हो फिरसे उसे बनाना चाहे तो नहिं बना

सकता तब अन्य मनुष्यकी तो वात ही क्या है ? ॥१२५॥ वह स्थान छब्बीस प्रकारके सुवर्ण और मणियोंसे निर्मित रहता है इसलिये उसकी अपूर्व शोभा होती है ॥१२६॥ उसके तलभागमें तीन जगती रहती हैं जो कि आधा कोश चौड़ी होती हैं और ऊपर ऊपर उतनी ही कम होती चली जाती हैं ॥ १२७ ॥ जगतीकी भूमिकी रचना अनेक रत्नोंसे देदीप्यमान वज्रमयी होती है और वह चारो ओर छटकती हुई अपनी प्रभासे इंद्र धनुषोंका संदेह कराती है ॥१२८॥ छाती पर्यंत ऊंची, जाज्वल्यमान कांतिकी धारक दीवालें और एक एक धनुषके फासलासे लगे हुये केलेके वृक्ष उनकी अद्वितीय शोभा बढ़ाते हैं ॥ १२९ ॥ उन जगतियोंमें तीस तीस वितस्तिके कूट और उन से द्विगुण आयामवाले दश दश धनुषोंके फासलेसे निर्मित कोष्ठक रहते हैं ॥ १३०॥ प्रत्येक जगतीकी दोनों ओर दो दो द्वारपालोंके स्थान बने हुये होते हैं और वहां कुवेर द्वारा निर्मित पदार्थ अतिशय प्रकाशमान जान पड़ते हैं ॥ १३१ ॥ हर एक जगतीमें कूटोंकी संख्या कुछ अधिक सातसौ वहत्तर और कोष्ठकोंकी अड़तालीस संख्या होती है ॥ १३२ ॥ तीनों जगतियोंके मिलकर सामान्यरूपसे दो हजार दोसौ वावीस कूट और उसी हिसाबसे कोष्ठक होते हैं ॥१३३॥ प्रथम जगतीमें बत्तीस हजार तीनसौ इक्यासी ध्वजायें, दूसरीमें चौदह हजार दोसौ उन्नीस और तीसरीमें इकतीस हजार छप्पन रहती हैं ॥ १३४ ॥ पूर्व कूटोंमें दो लाख बत्तीस हजार चारसौ सत्तर, मध्यम कूटोंमें छहत्तर हजार (1) एकसौ दश और अंतिम कूटोंमें दो लाख चौअन हजार आठसौ अस्सी और कोष्ठकोंमें इनसे द्विगुनी द्विगुनी होती हैं ॥ १३५ ॥ वहां केलोंके स्तभ संख्यामें छब्बीस लाख वीस हजार दोसौ छप्पन होते हैं ॥ १३६ ॥ वहां पर संस्वेद प्रदेशोंमें रत्नोंसे देदीप्यमान अनेक मंडप रहते हैं जिनमेंसे हर एककी चौड़ाई दो कोश और ऊँचाई एक कोशकी होती है ॥१३७॥ मंडपोंसे आधी चौड़ी शिखरोंके मध्य भागमें विराजमान मंगलीक द्रव्योंसे भूपित भगवानकी प्रतिमायें रहती हैं ॥ १३८ ॥ यद्यपि ये प्रतिमायें अपने स्थानोंपर विराजमान हैं तथापि देखनेवालोंको वे आकाशमें उसीप्रकार विराजमान हुई दीखती हैं ॥ १३९ ॥ वहां पर तीन विशाल पीठ रहते हैं उनमेंसे प्रथम पीठमें चारो दिशाओंमें चार हजार धर्म चक्र होते हैं ॥ १४० ॥ दूसरे महापीठमें समस्त दिशाओंको प्रकाशमान करनेवाली मयूर और हंसोंकी ध्वजाओंसे भिन्न आठ प्रकारकी ध्वजायें रहती हैं ॥ १४१ ॥ और तीसरे पीठमें मंगलमय गंधकुटी नामका प्रासाद रहाता है और वहां भगवानका सिंहासन रहता है ॥ १४२ ॥

इसीप्रकारके समवसरणकी गंधकुटीके सिंहासनपर भगवान जिनेंद्र नेमिनाथ विराजमान थे उन्हैं मस्तक नमाकर प्रसन्नचित्त हो अनेक मनुष्य सुर असुर भक्तिपूर्वक नमस्कार

१ भूपणमंडलगव्योमखोत्क्रमा मध्यकूटगाः ॥

करते थे ॥१४३॥ इतनेहीमें "हे महादेव! आप जयवंत हों। महेश्वर! आपका विजय हो, हे विशाल भुजाओंके धारक प्रभो! सदा आपकी विजय रहे और हे विशाल नेत्रोंके धारक स्वामी, आपका सदा विजय होता रहै" इसप्रकार करोड़ों स्तवनके वाद वरदत्तको संसारसे उदासीनता होगई, उन्होंने शीघ्रही दिगंबर दीक्षा धारण करली और गणधरोंके स्वामी होगये ॥१४४-१४५॥ छै हजार रानियोंके साथ कुमारी राजीमतीने भी दिगंबर दीक्षा लेली और वह समस्त आर्यिकाओंकी अग्रेसरी बन गई ॥ १४६ ॥ यति आदि बारह गण उससमय भक्तिपूर्वक नमस्कार कर भगवानकी उपासना करते थे॥ १४७॥ गंधकुटी-की प्रदक्षिणाभूत पूर्व आदि दिशाओंमें बारह सभा निर्मित थीं और यति आदि अपने २ स्थानोंपर विराजमान थे ॥ १४८ ॥ पहिली सभामें वरदत्त आदि यतीश्वर विराजमान थे और वे प्रत्यक्ष धर्मस्वरूप भगवान नेमीश्वरके स्वरूपके अंश सरीखे जान पड़ते थे ॥ १४९ ॥ दूसरी सभामें उज्ज्वल मूर्तिकी धारक, कल्पवासी देवोंकी देवियां बैठीं थीं और वे भगवानकी वाह्यविभूति सरीखी जान पड़तीं थीं ॥ १५० ॥ तीसरी सभामें लज्जा दया क्षमा शांति आदि उत्तमोत्तम गुणरूपी संपत्तिकी धारक, राजीमती आदि आर्यिका विराजमान थीं और वे धर्मकी पंक्ति सरीखी जान पड़ती थीं ॥१५१॥ चौथी सभामें तीक्ष्णप्रभासे देदीप्यमान ज्योतिषी देवोंकी स्त्रियां विराजमान थीं और वे अतिशय प्रशंसनीय भगवानकी कांतिके समान जान पड़ती थीं ॥ १५२ ॥ पांच-वीं सभामें साक्षात् मूर्तिमती वनलक्ष्मीके समान वनमें रहने वाले व्यंतर देवोंकी स्त्रियां बैठी थीं और वे पुष्पोंकी लताके समान नम्रीभूत हो भगवानके चरणकमलोंको नम-स्कार करतीं थीं ॥ १५२ ॥ छठी सभामें भवनवासी देवोंकी देवांगनायें थीं जोकि भ-गवानकी अतिभक्त थीं और ऐसी जान पड़ती थीं मानों स्वर्गकी लक्ष्मी ही वहांपर आ-गई हैं ॥ १५३ ॥ सातवीं सभामें फणाओंकी कांतिसे देदीप्यमान, संसारसे भयभीत भवनवासी देव बैठे थे और वे भगवानकी स्तुति करते थे ॥ १५४ ॥ आठवीं सभामें महासुंदर, व्यंतरदेव बैठे थे वे भगवानके भूषण स्वरूप थे और पुष्पोंकी माला धारण किये हुये मंदराचल सरीखे जान पड़ते थे ॥ १५५ ॥ नववीं सभामें सूर्य आदि ज्यो-तिषी देव बैठे थे, वे भगवानके शरीरकी कांतिमें लीन सरीखे जान पड़ते थे और नम्र हो भगवानसे अपनी दीप्तिकी वृद्धिके लिये याचना करते थे ॥ १५६ ॥ दशवीं सभामें परमसुंदर, सुखी, देदीप्यमान, भगवानके अंशस्वरूप सौधर्म आदि कल्पवासी देव थे। ॥ १५७ ॥ ग्यारहवीं सभामें चक्रवर्ती आदि राजा थे जो कि दान पूजा आदि धर्मोंके मूर्तिमान अंश सरीखे जान पड़ते थे और भगवानकी, भक्तिभावसे परिचर्या करते थे ॥ १५८ ॥ एवं बारहवीं सभामें सिंह हाथी आदि तिर्यंच थे जो कि मिथ्यात्व वैर माया आदि दोषोंसे रहित होजानेसे सम्यक्त्व आदि गुणोंके भंडार थे॥ १५९ ॥ इस-

प्रकार द्वादशांगके गुणस्वरूप द्वादश कोठे भगवानके चौतर्फा परिक्रमा रूपसे बनेहुये थे और उनमें स्थित यति आदि गण भगवानकी उपासना करते थे॥ १६० ॥ भगवानके सिंहासनकी शोभा अनन्यदुर्लभ परमेष्ठीपनेको सूचित करती थी। देवोंद्वारा ढोले गये चमर महेशिताको, और महादेदीप्यमान तीन क्षत्र तीनलोकके स्वामीपनेको जतलाते थे। भगवानका देदीप्यमान भामंडल जन्मांतरके अज्ञानरूपी अंधकारको दूर करता था। समस्त ऋतुओंके पुष्पोंसे युक्त अशोकवृक्ष प्राणियोंका शोक हरता था। पुष्पवर्षासे देवगण भगवानकी पूजन करते थे। उनके अभयदानकी घोषणा करनेवाली गीतमंगलोंसे युक्त दुदुंभिध्वनि सब जीवोंके हितकारीपनेको सूचित करती थी और साधुओंके चित्तको आनंद प्रदान करनेवाली ओष्ठ तालु आदिके व्यापारसे रहित दिव्यध्वनि जयलक्ष्मीकी सूचना देती थी। इसप्रकार भगवान नेमीश्वर आत्माधीन स्वाभाविक गुणोंसे उत्पन्न उन्नत आठ प्रतिहार्योंसे मंडित थे॥ १६१–१६६ ॥ समस्त लोकको हितकारी आत्मीय विभूतिको धारण करनेवाले, केवलज्ञानसे मंडित, भगवान नेमिनाथ सभामें जब सिंहासनपर विराजमान होगये उससमय देवगण यह पुकार २ कर कहने लगे—"परमात्मा भगवान नेमीश्वर यहां विराजमान हैं स्वार्थकी अभिलाषासे सानंद यहां आओ और इस प्रभुको नमस्कार करो" ॥ १६७–१६८ ॥ देवोंकी यह घोषणा सुन अनेक मनुष्य सुर असुर सभामें बड़ी विभूतिके साथ आते थे॥ १६९ ॥ समवशरण देखते ही वे अपने अपने वाहनोंसे उतर पड़ते थे और जहांपर मानस्तंभ स्थित थे वहां आकर मस्तक नमा नमस्कार करते थे॥ १७० ॥ उत्तम भव्यजीव अपने वाहन आदि परिग्रहको वाहिर छोड़कर पूजनकी सामग्री हाथमें लेकर मानस्तंभके पीठोंके पास जाते थे और प्रदक्षिणाकर उनकी वंदना करते थे उसके वाद उत्तम भक्तिसे प्रेरित हो समवशरणमें प्रवेश करते थे॥ १७१–१७२ ॥ जो मनुष्य पापी नीच कर्म करनेवाले शूद्र पाखंडी विकलांग और विकलेंद्रिय होते वे समवशरणके वाहिर ही रहते और वहांसे प्रदक्षिणापूर्वक नमस्कार करते थे॥ १७३ ॥ बहुतसे देवेंद्र नरेंद्र आदि जयांगणमें छत्र चमर भृंगार आदि छोड़कर अपने आप्त वर्गोंकेसाथ मस्तक नमाते हुये भीतर प्रवेश करते विधिपूर्वक भक्तिभावसे भगवानके सन्मुख मस्तकोंको झुकाते और चक्रपीठपर चढ़कर भगवानकी तीन प्रदक्षिणा करते थे॥ १७४–१७५ ॥ प्रदक्षिणाके वाद समस्त नरेंद्र सुरेंद्र असुरेंद्र स्वशक्ति और विभवके अनुसार पूजनकर भगवानको प्रणाम करते थे॥ १७६ ॥ पश्चात् हाथ जोडे हुये धीरे धीरे सीढ़ियोंसे उतरते थे और रोमांचोंके व्याजसे हर्षको प्रकट करते हुये अपने २ स्थानोंपर आकर वैठते थे॥ १७७ ॥ जिसप्रकार सूर्यके उदयसे कमलोंका समूह विकसित हो अति सुहावना जान पड़ता है उसीप्रकार भगवान जिनेंद्रके माहात्म्यसे उनके गुण विकसित होते थे॥१७८॥ जिसप्र-

कार हजारों नदियोंके आ जानेपर भी समुद्रकी पूर्ति नहिं होती उसीप्रकार यद्यपि देव मनुष्योंकी असंख्य सेना समवशरणमें प्रवेश करती थी तथापि उसमें स्थानकी कमिताई नहिं होती थी॥१७९॥ उससमय वहां कहीं सज्जनोंका समूह निकलता था, कहीं प्रवेश करता था, कहीं समवशरणकी शोभा निरखता था, कहीं पर्यटन करता था, कहीं आनंदित था कहीं नमस्कार करता था और कहीं स्तवन करता था ॥१८०॥ भगवान नेमीश्वरके प्रभावसे न जीवोंको मोह था, न भय था, न द्वेष था न किसी बातकी उत्कंठा थी, न विषयाभिलाषा और ईर्षाही थी, छींक जभाई भी न थी, निद्रा तंद्रा क्षुधा तृषाका खेद भी न था और किसीका किसीप्रकारका अकल्याण भी न था, सबोंको सर्वदा अपना कल्याण ही कल्याण दीख पड़ता था ॥ १८१-१८२ ॥ बाह्यविभूतिके अद्वितीय स्थान समवसरणमें जिससमय पवित्र आत्माके धारक भगवान नेमीश्वर विराजे उससमय बारह सभाओंमें बैठे हुये भव्यजीव अपने तृषित नेत्रोंसे अमृतस्वरूप भगवानके मनोहररूपरूपी समुद्रका पान करने लगे ॥ १८३ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें समवसरणका स्वरूप वर्णन करनेवाला सत्तावनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५७ ॥

अट्ठावनवां सर्ग।

इसप्रकार नित्य उत्सव और अनंत कल्याणोंसे व्याप्त समवसरणमें जिससमय धर्म श्रवणके इच्छुक जीव हाथ जोड़कर अपने २ स्थानोंपर बैठ गये उससमय गणधरोंके अग्रणी गणधर वरदत्तने समस्त जीवोंका कल्याण करनेवाला प्रश्न भगवान नेमिनाथसे किया—भगवान भी अपनी दिव्यध्वनिसे उपदेश देने लगे। भगवान उससमय चतुर्मुख थे—इसलिये वह वाणी चार मुखोंसे निकली हुई जान पड़ती थी, चारपुरुषार्थरूप फलको प्रकट करनेवाली थी, सार्थक थी, चार प्रकारके वर्ण और चार प्रकारके आश्रमोंकी वर्णन करनेवाली थी, चारो ओर सुन पड़ती थी, प्रथमानुयोग आदि चारो अनुयोगोंकी एक माता थी, आक्षेपिणी विक्षेपिणी आदि चार कथाओंका वर्णन करनेवाली थी, नरक आदि चारो गतियोंकी निवारक थी एक रूप, दो रूप, तीन रूप, चाररूप, पांच रूप, छै रूप, सात रूप, आठ रूप, नौ रूप, थी अर्थात् एक आत्माका स्वरूप प्रतिपादन करनेवाली थी इसलिये एकरूप थी। मुनि और श्रावक दोनोंका धर्मकथन करनेवाली थी इसलिये दो रूप थी। सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रयका प्रकाश करनेवाली होनेसे तीन रूप, चार कषाय और चार गतियोंकी वर्णन करनेवाली होनेसे चार रूप, पांच अस्तिकायका प्ररूपण करनेवाली होनेसे पांच रूप, छै द्रव्योंका कथन करनेवाली होनेसे छै रूप, सात भंग निरूपण करती थी इसलिये सातस्वरूप, अष्ट कर्मोंका नाश करनेवाली थी इसलिये

आठस्वरूप और नौ नय वा नौ पदार्थ आदि निरूपण करनेवाली होनेसे नवस्वरूप थी। इसप्रकार पर्यायरहित सत्ताके समान होनेपर भी वह अनेक पर्यायोंसे युक्त थी। ॥ १–५ ॥ वह दिव्य ध्वनि अहितकी नाश करनेवाली थी, पूर्व उपार्जित कर्मको शिथिल करनेवाली थी। तेजस्वियोंका मान गलंत करनेवाली थी, जीवोंको मोक्षस्थानका संबंध करानेवाली थी, एक योजन पर्यंत सुनाई पड़ती थी, अधिक कम न होकर सर्वत्र एकसी सुन पड़ती थी, मधुर स्निग्ध गंभीर दिव्य उदात्त और स्पष्ट अक्षर कथन करनेवाली थी, साध्वी सरस्वती और धर्मका स्वरूप प्ररूपण करनेवाली थी। पदार्थोंके भाव और अभाव दोनों स्वरूप बतलानेवाली थी, निर्विकल्पस्वरूप थी, जगतकी स्थिति जनानेवाली थी उससे अकृत्रिम अनादिकालसे जीवोंकी पारिणामिक स्थिति स्पष्टरूपसे जान पड़ती थी। "आत्मा है, परलोक है, धर्म अधर्म है, उनका कर्ता और भोक्ता भी है। जो मनुष्य ऐसा मानते हैं कि आत्मा आदि कोई पदार्थ नहीं वह सर्वथा असत्य है। यह आत्मा स्वयं तो कर्म करता है स्वयं उसका फल भोगता है स्वयं ही संसारमें भ्रमण करता रहता है स्वयं ही कर्मोंसे मुक्त होजाता है ॥ ६–१२ ॥ मिथ्यात्व राग आदिसे दुःखित हो यह संसारमें घूमता फिरता है और सम्यग्ज्ञान वैराग्यसे शुद्ध हो मोक्ष प्राप्त कर लेता है" ॥ १३ ॥ इत्यादि अध्यात्मविषयको वह (वाणी) दीपकके समान विशेषरीतिसे प्रकट करनेवाली थी और वस्तुके स्वरूप आदिके अज्ञानांधकारको शांत करनेवाली थी ॥ १४ ॥ जिसप्रकार एकही मेघका जल वृक्ष आदि पात्रभेदसे कडुआ कसैला आदि अनेक प्रकारका होजाता है उसीप्रकार यद्यपि भगवानकी वाणी एक स्वरूप थी तथापि पात्रभेदसे वह अनेक रूप जान पड़ती थी–सब जीव अपनी अपनी भाषामें उसका भाव पूर्णतया समझते थे ॥ १५ ॥ विश्वात्मा, अपनी दिव्यध्वनिसे सावधान रूपसे सभामें विद्यमान जीवोंके अज्ञान अंधकारको दूर करने वाले भगवान जिनेंद्रने इसप्रकार उपदेश दिया—

संसारमें जीव दो प्रकारके हैं एक भव्य, दूसरे अभव्य। जो जीव भव्यताकी शुद्धिसे शुद्ध हैं वे भव्य हैं–उन्हें ही मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ १६–१७ ॥ मोक्षका प्रधान उपाय ध्यान है। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रस्वरूप ध्यान कहा जाता है ॥ १८ ॥ जीव आदि पदार्थोंका संशय विमोह विभ्रम आदि समस्त मलोंसे रहित हो भलेप्रकार श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है और वह सम्यग्दर्शन औपशमिक क्षायोपशमिक और क्षायिकके भेदसे तीनप्रकार, निसर्गज (स्वभावसे होने वाला) और अधिगमज (शास्त्र आदिके अध्ययनसे होनेवाला) के भेद से दो प्रकार का भी है ॥ १९–२० ॥ जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं इनका भलेप्रकार लक्षण समझकर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है ॥ २१ ॥ जीवका लक्षण उपयोग है और वह उपयोग

ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगके भेदसे दो प्रकारका है। उनमें ज्ञानोपयोगके मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान केवलज्ञान कुमति कुश्रुति और कुअवधि ये आठ भेद हैं ॥ २२ ॥ चैतन्यस्वरूप इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख और दुःख आत्माके लिंग हैं एवं इनसे यह संसारी आत्मा पहिचाना जाता है ॥ २३ ॥ यह आत्मा पृथिवी जल आदि पंचभूतमय नहीं है यदि ऐसा माना जायगा तो मरते समय पंचभूतमय शरीर रहता है वहां भी आत्मा मोजूद रहना चाहिये सो नहीं रहता ॥२४॥ आटा कोदों जल आदि मदके कारण हैं यदि इनको जुदा जुदा करदिया जाय तो भी जिसप्रकार इनमें मदशक्ति विद्यमान रहती है उसीप्रकार यदि आत्मा पंचभूतमय शरीरस्वरूपको माना जाय तो शरीरके प्रत्येक अंगमें भी कुछ न कुछ आत्माका अंश रहना चाहिये। शरीरसे जुदे होनेपर भी हाथ पैर आदि शरीरके अवयवोंको पहिलेके ही समान कार्य करना चाहिये ॥ २५ ॥ चार भूतोंके मिलापसे चैतन्यकी उत्पत्ति (अभिव्यक्ति) माननेवाला वास्तविक वालू आदि से तेलको प्रकट हुआ क्यों नहिं स्वीकार करता ? भूतोंसे चैतन्यकी उत्पत्तिके समान वालू आदिसे तेलकी उत्पत्ति भी मान लेनी चाहिये ॥ २६ ॥ इसलिये यह मानना चाहिये कि यह जीव अनादि निधन है यहां दूसरी गतिसे आता है और इस गतिसे दूसरी गतिमें जाता है एवं अपने कर्मके परतंत्र है ॥२७॥ अनेक प्रत्यक्षवादी नास्तिक यह मानते हैं कि जो पदार्थ इंद्रिय गोचर है वह मोजूद है। शरीर देखनेमें आता है इस-लिये यही आत्मा है इससे अतिरिक्त आत्मा कोई पदार्थ नहीं। सो ऐसे मनुष्य भी अप-ना पराया किसीप्रकारका हित नहिं कर सकते ॥ २८ ॥ बौद्धमतावलंबी आत्माको क्षणिक विज्ञानस्वरूप मानते हैं सो भी ठीक नहीं। क्योंकि आत्माके क्षणिक माननेपर करनेवाला दूसरा और भोगनेवाला दूसरा ठहरेगा–पहिली वातका स्मरण भी न रहैगा तब संसारका समस्त व्यवहार ही बंद होजायगा ॥ २९ ॥ इसलिये यह जीव द्रव्य-स्वरूप है, ज्ञाता है, द्रष्टा है, कर्ता है, भोक्ता है कर्मोंका नाश करनेवाला है उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप लक्षणका धारक है, असंख्यात प्रदेशी है, कर्माधीन संकोच विस्तार दोनों अवस्थाओंसे युक्त है, अपने शरीरके प्रमाण है, और वर्ण गंध आदि पौद्गलिक गुणोंसे रहित है ॥ ३०–३१ ॥ अनेक यह मानते हैं कि यह आत्मा श्यामाक नामक अन्नके कणके समान है, अनेक आकाश वा परमाणुकी बराबर स्वीकार करते हैं, बहुतसे अंगू-ठेके बराबर और पांचसौ योजन प्रमाण मानते हैं सो भी सर्वथा असत्य है ॥ ३२ ॥ कदाचित् आत्माको एक मानोगे और वह प्रत्येक शरीरमें अपने प्रदेशोंके साथ रहता है यह स्वीकार करोगे तो जिसप्रकार चक्षु स्पर्श नहिं कर सकता उसीप्रकार किसी आ-त्माकी स्वार्थसिद्धि न हो सकैगी–जो काम एक करैगा वही सबको करना पड़ेगा। ॥ ३३ ॥ यदि आत्माको देहसे अधिक परिमाणवाला वा बहुत योजनप्रमाण माना-

जायगा तब भी उसका किसीप्रकारसे स्पर्श या दर्शन न हो सकेगा तथा देहसे अधिक परिमाणवाला वा कम परिमाणवाला आत्मा स्वीकार किया जायगा तो प्रत्यक्ष और अनुमानसे अनेक विरोध भी आवेंगे इसलिये उसे शरीर प्रमाण ही मानना होगा और सबोंका अनुभव भी यही है कि आत्मा शरीरप्रमाण है ॥ ३४-३५ ॥ चार गति, पांच इंद्रियों, छै काय, पंद्रह योग, तीन वेद, पचीस कषाय, आठ ज्ञान, सात संयम, छै सम्यक्त्व, छै लेश्या, चार दर्शन, सैनी (असैनी) भव्य (अभव्य) आहार (अनाहार) इन चौदह मार्गणाओंसे, चौदह गुणस्थानोंसे प्रमाण नय निक्षेप सत् संख्या आदिसे संसारी आत्मा (जीवात्मा) का ज्ञान करना चाहिये और अनंत दर्शन आदि गुणोंसे-मुक्त जीवोंकी भी सत्ता समझनी चाहिये ॥ ३६-३८ ॥ वस्तुके अनेक स्वरूप हैं उनमें किसी एक स्वरूपको प्रधानतासे जनानेवाला नय नामका ज्ञान है नयोंके मूलभेद द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दो हैं। ये दोनों एक दूसरेसे अपेक्षित हैं। तथा नैगम संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ़ और एवंभूत ये उन दोनों नयोंके भेद हैं॥ ३९-४१ ॥ नैगम संग्रह और व्यवहार ये तीन नय द्रव्यार्थिक हैं केवल द्रव्य (सामान्य) को विषय करते हैं और ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ़ और एवंभूत ये चार नय पर्यायार्थिक हैं क्योंकि केवल पर्यायको विषय करनेवाले हैं ॥ ४२ ॥ समस्त द्रव्य भूत भविष्यत् वर्तमान पर्यायोंसे अन्वय रूप हैं-अपनी किसी भी पर्यायसे कोई द्रव्य भिन्न नहीं ऐसी स्थितिमें जो ज्ञान वा वचन भूत और भविष्यतकी पर्यायोंको वर्तमानमें संकल्प करनेवाला हो उसे नैगमनय कहते हैं। जिसप्रकार कोई मनुष्य रोटी बनानेकी सामग्री इकट्ठी कर रहा है और उससे किसीने पूछा कि-क्या करते हो ? उत्तरमें उसने कहा-रोटी बनाता हूं, किंतु यहां अभी रोटी बनानेरूप पर्याय प्रकट नहिं हुई वह केवल लकड़ियें जल आदि रख रहा है तथापि नैगमनयसे ऐसा वचन कह सकता है कि मैं रोटी बनाता हूं। अथवा कुल्हाड़ी लेकर कोई मनुष्य प्रस्थ (परिमाणविशेष पायली) लेने जा रहा हो उससे किसीने पूछा कि-कहां जा रहे हो ? उत्तरमें उसने कहा-प्रस्थ लेने जा रहा हूं किंतु वहां प्रस्थरूप पर्याय मोजूद नहीं क्योंकि अभी जंगलमें जायगा लकड़ी काटकर लायगा पुनः प्रस्थ बनावेगा तथापि नैगम नयसे उसप्रकारके वचन कहनेमें कोई दोष नहीं ॥ ४३ ॥

जो वस्तुकी समस्त जाति वा उसकी समस्त पर्यायोंको संग्रहरूप करके एक रूप कहै उसे संग्रहनय कहते हैं जिसप्रकार द्रव्य कहनेसे उसके जीव अजीव वा उनके भी भेद प्रभेद आदिको जान लेना ॥ ४४ ॥

संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये पदार्थोंको विधिपूर्वक (व्यवहारके अनुकूल) व्यवहरण-भेद प्रभेद रूपसे कहै वह व्यवहार नय है। जैसे-अस्तित्व गुणसे समस्त द्रव्योंको

एकरूप मानना यह संग्रह नयका विषय है परंतु द्रव्य दो प्रकारके हैं जीव और अजीव। जीव–देव नारकी मनुष्य तिर्यंच चार प्रकारके हैं। अजीव–पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल ये पांच प्रकारके हैं इसप्रकार व्यवहारके साधक जितने भेद प्रभेद हो सकें उनको जो बतलावे–जाने उसे व्यवहार नय कहते हैं ॥ ४५ ॥

जो नय-अतीत अनागत दोनों पर्यायोंको छोड़कर केवल वर्तमान पर्यायका ग्रहण करनेवाला हो वह ऋजुसूत्रनय है जिसप्रकार द्रव्यकी पर्याय समय[1] समयमें पलटती रहतीं हैं। एक समयवर्ती पर्यायको अर्थपर्याय कहते हैं अर्थपर्याय ही ऋजुसूत्र नयका विषय है। ऋजुसूत्रनय वर्तमान एक समय मात्रकी पर्यायको कहता वा ग्रहण करता है अतीत अनागत समयोंकी पर्यायोंको ग्रहण नहिं करता ॥ ४६ ॥

लिंग साधन (कारक) संख्या (वचन) पुरुष काल उपग्रहके दोषको दूर करनेवाला शब्दनयहै अर्थात् शब्दनयकी कृपासे स्त्रीलिंग 'तारका' शब्दका पुंलिंग स्वाति पर्याय दे सकते हैं, 'अवगम' (ज्ञान) पुरुषलिंगका स्त्रीलिंग विद्या, स्त्रीलिंग 'वीणा' शब्दका नपुंसकलिंग 'आतोद्य', नपुंसकलिंग 'आयुध' शब्दका स्त्रीलिंग शक्ति शब्द, पुंलिंग 'पट' शब्दका नपुंसकलिंग वस्त्र, नपुंसकलिंग 'ज्ञान' शब्दका पुलिंग अवगम, पर्याय होसकता है अथवा एक ही वस्तुको तारका (स्त्रीलिंग) पुष्य (पुलिंग) और नक्षत्र (नपुंसकलिंग) तीन लिंग स्वरूप कह सकते हैं–इसप्रकार दूसरे लिंगवाले शब्दका दूसरे लिंगके शब्दकी पर्याय देनेमें किसीप्रकारका दोष नहिं आता। यदि शब्द नय न माना जाय तो स्त्रीलिंगको पुलिंग कहना आदि दोषकी निवृत्ति नहिं होसकती। तथा पर्वतमधिवसति सेना (सेना पर्वतपर निवास करती है) यहांपर पर्वत आधार कारक है इसलिये वहां 'पर्वतं' यह द्वितीया न होकर 'पर्वते' यह सप्तमी विभक्ति होनी चाहिये थी तथापि शब्द नयसे वैसा प्रयोग न होनेपर भी कोई दोष नहीं। तथा इसी शब्दनयके माहात्म्यसे एकवचन नक्षत्र शब्दका द्विवचन पुनर्वसू विशेषण होता है एवं एकवचन नक्षत्रका बहुवचन शतभिषजः गोदौ द्विवचनका ग्रामः एकवचन, पुनर्वसू द्विवचनका पंचतारका बहुवचन, बहुवचन आम्राःका एकवचन वनं और बहुवचन 'देवमनुष्याः' का उभौ राशी यह द्विवचन विशेषण होता है किसीप्रकारका वचनविरोध नहिं होता–एकवचनकी जगह द्विवचन आदिका प्रयोग कर सकते हैं। एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पिता (हास्यमें कोई किसीसे कहता है– तुम समझते होगे कि मैं रथपर चढ़कर जाऊंगा सो अब नहीं जासकते उसपर तो तुम्हारे पिता चले गये) इस वाक्यमें उत्तम पुरुष 'मन्ये' की जगह मध्यम पुरुष 'मन्यसे' मध्यम पुरुष 'यास्यसि' के स्थानपर उत्तम पुरुष 'यास्यामि' होना चाहिये था इसलिये यदि शब्द नय न माना जाय तो यहां पुरुषका दोष आ सकता है

१ कालके सबसे छोटे भागको समय कहते हैं।

पर इसके माननेसे कोई दोष नहीं। 'विश्वदृश्वास्य पुत्रो जनिता' (यह ऐसे पुत्रको जनेगी जिसने विश्व देखलिया है) यहांपर 'विश्वदृश्वा' यह शब्द अतीत काल वाचक है और 'जनिता' यह भविष्यत् काल वाचक है इस रीतिसे ऐसे प्रयोगमें कालसे दोष आता है तथापि शब्दनयसे यह दोष नहिं हो सकता। तथा स्था (तिष्ठति) इस परस्मैपद धातुसे 'संतिष्ठते' 'प्रतिष्ठते' यह आत्मनेपदका प्रयोग करदिया जाता है यदि शब्दनय न माना जाय तो परस्मैपदकी जगह आत्मनेपदका प्रयोग नहिं हो सकता क्योंकि विरोध है परंतु शब्दनयके स्वीकार करनेसे इसप्रकारके उपग्रहका विरोध नहिं आता।।४७।।

अनेक अर्थोंको छोड़कर जो एक ही अर्थमें रूढ़ (प्रसिद्ध) शब्दको कहै वा जाने उसे समभिरूढ़नय कहते हैं जिसप्रकार गो शब्दके गमन आदि अनेक अर्थ होते हैं तथापि मुख्यतासे 'गो' नाम गाय वा बैलका ही ग्रहण किया जाता है सब लोग उसे चलते बैठते सोते आदि अवस्थाओंमें गो ही कहते हैं यह समभिरूढ़ नय है ।। ४८ ।।

जिसकालमें जो क्रिया करता है उसको उसकालमें उस ही नामसे जाने वा कहै उसे एवंभूतनय कहते हैं जिसप्रकार देवोंके स्वामी इंद्रको जब वह परम ऐश्वर्यसहित हो तभी इंद्र कहना अन्य अवस्थामें न कहना, तथा जिसकालमें वह शक्तिरूप क्रियाको वा पुरके नाश रूप क्रियाको करता हो उसीकालमें उससे शक्र वा पुरंदर कहना अन्यकालमें न कहना ।। ४९ ।। द्रव्य अनंत शक्तियोंकी धारक है ये सातो नय शक्तियोंके भेदोंको अवलंबनकर उत्तरोत्तर सूक्ष्मपदार्थोंको विषय करते चले जाते हैं।।५०।।

जितने वचनमार्ग हैं उतने ही नय हैं इसलिये 'इतनेही नय हैं' यह संख्या नयोंकी नहिं हो सकती ।। ५२ ।। धर्म अधर्म आकाश पुद्गल और काल ये पांच अजीव तत्त्व हैं और इनका श्रद्धान करना भी सम्यग्दर्शन है।।५३।। धर्म द्रव्य जीव और पुद्गलोंके गमनमें सहकारी कारण है और अधर्म द्रव्य ठहरनेमें सहकारी कारण है। आकाश जीव अजीवोंको अवकाश दान देता है। जिसमें पूरण (मिलन) गलन (विछुड़न) की शक्ति हो उसे पुद्गल कहते हैं। यह पुद्गल अनेक धर्मस्वरूप है इसके परमाणु और स्कंध दो मूल भेद हैं। परमाणुओंके समूहका नाम स्कंध है और स्कंधके भेद करनेपर अतिशय अविभागी भेदको परमाणु कहते हैं ।। ५४-५५ ।। कालका लक्षण वर्तना (पलटन) है। समय आवली उच्छ्वास आदि उसके अनेक भेद हैं और वह स्वभावसे यह बड़ा यह छोटा ऐसी प्रतीति करानेवाला है ।।५६।। मन वचन कायकी क्रियाको योग कहते हैं। योगका नाम आस्रव है। आस्रवके दो भेद हैं शुभ आस्रव और अशुभ आस्रव, शुभ आस्रव पुण्यका कारणहै और अशुभ आस्रव पापका कारण है ।।५७।। आस्रवके दो स्वामी होते हैं सकषाय (कषाय सहितआत्मा) और अकषाय (कषायरहित आत्मा)। मिथ्यादृष्टि प्रथम

१-अर्थशब्दप्रधानत्वाच्छब्दाता पचधा नया । संग्रहादितया षोढा प्रत्येकं स्यु॰ शतानि ते ॥ ५१ ॥

गुणस्थानसे लेकर सूक्ष्म सांपराय दशवें गुणस्थानतक सकषाय आस्रव होता है और अकषाय आस्रव ग्यारहवें गुणस्थानसे तेरहवें तक रहता है। जो कषायसहित जीवोंके आस्रव होता है वह सांपरायिक–संसारपरिभ्रमणका कारण आस्रव कहलाता है और जो आस्रव कषायरहित जीवोंके होता है वह ईर्यापथ–स्थितिरहित कर्मोंका आस्रव कहा जाता है ॥ ५८–५९ ॥

पांच इंद्रिय, चार कषाय, अहिंसा आदि पांच व्रत और पचीस क्रिया ये सांपरायिक आस्रवके भेद हैं ॥ ६० ॥ सच्चे देव शास्त्र गुरुओंका भक्तिभावसे पूजन आदर सत्कार करना सम्यक्त्वकी बढानेवाली सम्यक्त्व नामकी क्रिया है ॥ ६१ ॥ अशुभके उदयसे कुगुरु कुदेव कुशास्त्रके स्तवन अभिवंदनके लिये प्रवृत्त होना मिथ्यात्वकी बढ़ानेवाली मिथ्यात्व नामकी क्रिया है ॥ ६२ ॥ षट् कायके जीवोंकी दया न कर विना देखे गमन आगमन करना असंयम वढ़ानेवाली प्रयोग नामकी क्रिया है ॥ ६३ ॥ संयमी पुरुषका असंयमकी ओर अभिमुख होना सो प्रमादकी वढ़ानेवाली प्रमाद क्रिया है और इसका दूसरा नाम समादान क्रिया भी है ॥ ६४ ॥ ईर्यापथ सहित गमन करना ईर्यापथ क्रिया है। क्रोधके आवेशसे जो क्रिया हो वह प्रादोषिकी क्रिया है। दुष्टताके लिये उद्यम करना कायिकी क्रिया है ॥ ६५–६६ ॥ हिंसाके उपकरण शस्त्र आदिका ग्रहण करना आधिकरणिकी क्रिया है। स्व और परको दुःखकी उत्पत्तिकी कारण पारितापिकी क्रिया है। इंद्रिय आयुबल और प्राणोंका वियोग करना प्राणातिपातिकी क्रिया है ॥ ६७–६८ ॥ रागकी अधिकतासे रमणीय रूपका देखना दर्शनक्रिया कहलाती है प्रमादी बन कोमल पल्लव आदिके स्पर्शके लिये प्रवृत्त होना स्पर्शन क्रिया है ॥६९–७०॥ पापोंके नवीन नवीन कारण मिलाना प्रत्यायिकी क्रिया है जिससे कि पापका आसव होता रहता है ॥ ७१ ॥ स्त्री पुरुष पशुओंके रहनेके स्थानमें मल मूत्र क्षेपण करना समंतानुपातिनी क्रिया है जो कि साधु लोगोंके लिये सर्वथा अनुचित है ॥ ७२ ॥ विना शोधी विना देखी जमीनपर बैठना शयन आदि करना अनाभोग क्रिया है ॥ ७३ ॥ परके करनेयोग्य क्रियाको स्वयं (अपने हाथसे) करना स्वहस्त क्रिया है ॥ ७४ ॥ पापोत्पादक प्रवृत्तिको भला समझना प्रशस्य कहना निसर्ग क्रिया है ॥ ७५ ॥ अन्यके किये हुये पापाचरणोंका प्रकाश करना स्वयं भी कोई प्रशस्य काम न करना विदारण क्रिया है ॥ ७६ ॥ चारित्र मोहनीय कर्मके प्रवल उदयसे परमागमकी आज्ञानुसार आवश्यक आदि कृत्योंमें असमर्थतासे प्रवृत्त न होना, आगमके स्वरूपका अन्यथा प्ररूपण करना आज्ञाव्यापादिकी क्रिया है ॥ ७७ ॥ प्रमाद व अज्ञानतासे परमागममें वतलाई हुई विधियोंमें अनादर करना अनाकांक्षा क्रिया है ॥ ७८ ॥ दूसरे द्वारा आरंभ की हुई छेदन भेदन आदि क्रियाओंमें हर्ष मानना वा

स्वयं भी करना प्रारंभ क्रिया कहलाती है ॥ ७९ ॥ परिग्रहकी रक्षाकेलिये प्रवृत्ति करना पारिग्राहिकी क्रिया है। ज्ञान दर्शन आदिमें कपटरूप उपाय करना माया क्रिया है ॥८०॥ जो क्रिया मिथ्यादर्शनकी कारण है अथवा मिथ्यादर्शनकी दृढ़ करनेवाली है वह मिथ्यादर्शन क्रिया कहलाती है ॥ ८१ ॥ और संयमको घात करनेवाले कर्मके उदयसे संयमरूप प्रवृत्ति न होना अप्रत्याख्यान क्रिया है ॥ ८२ ॥ यदि जीवोंके परिणाम मंद होंगे तो मंद आश्रव होगा मध्यम परिणाम होंगे तो मध्यम और तीव्र परिणाम होंगे तो तीव्र आस्रव होगा ॥ ८३ ॥ जीवाधिकरणके और अजीवाधिकरणके भेदसे आस्रव दो प्रकार का है। उनमें जीवाधिकरणके मूल भेद संरंभ सभारंभ और आरंभ ये तीन हैं संरंभको मन वचन कायसे गुणा करनेपर मनःसंरंभ, वचन संरभ और काय संरंभ ये तीन भेद होजाते हैं। इन तीनोंका कृत कारित अनुमोदनासे गुणा करनेपर मनःकृत संरंभ मनःकारित संरंभ आदि नो भेद होते हैं और इन नौका चार कषायोंसे गुणा करनेपर क्रोधसे मनःकृत संरंभ, क्रोधसे मनः कारित संरंभ आदि छत्तीस भेद होते हैं इसीप्रकार छत्तीसभेद संमारंभके और छत्तीस भेद आरंभके हैं और सब मिलकर अजीवाधिकरणके एकसौ आठ भेद होजाते हैं अथवा एकसौ आठ भेद निकालनेकी प्रचलित रीति यह भी है कि संरंभ आदि तीनोंका मन, वचन, कायसे गुणा करनेपर नौ होते हैं नौका कृत कारित अनुमोदना तीनसे गुणा करनेपर सत्ताईस और सत्ताईसको चार कषायोंके साथ गुणा करनेपर एकसौ आठ भेद होजाते हैं ॥८४-८५॥ निर्वर्तना, निक्षेप, संयोग, निसर्ग ये चार भेद अजीवाधिकरणके हैं ॥ ८६ ॥ मूलगुण निर्वर्तना और उत्तरगुणनिर्वर्तनाके भेदसे निर्वर्तना दो प्रकार है और ये दोनों शरीर वाणी मन और प्राणापान आदि से होती हैं अर्थात् शरीर मन वचन और श्वास प्रश्वासोंका उत्पन्न करना मूलगुणनिर्वर्तना है और काष्ठ मिट्टी पाषाण आदिसे मूर्ति आदिकी रचना करना वा चित्रपट आदि बनाना उत्तरगुणनिर्वर्तना है ॥ ८७ ॥ सहसा निक्षेप (भय आदिसे अथवा अन्य कार्यके करनेकी शीघ्रतासे पुस्तक कमंडलु मल मूत्र आदि का क्षेपण करना) दुःप्रमृष्ट निक्षेप (दुष्टतासे यत्नाचारतासे रहित होकर उपकरण आदिका रखना वा डालना) अनाभोग निक्षेप (यहां जीव जंतु हैं या नहीं ऐसा विचार न कर अयोग्य स्थानमें कमंडलु आदिका डालना रखना) और अप्रत्यवेक्षित निक्षेप (विना देखे वस्तुका रखना पटकना) ये चार भेद निक्षेपके हैं ॥ ८८ ॥ उपकरण संयोजना (शीतस्पर्शरूप पुस्तक कमंडलु शरीर आदिको धूपसे तपी हुई पीछी आदि से पोछना शोधना) भक्तपानसंयोजना (पान भोजनको अन्य पान भोजनमें मिलाना) के भेदसे संयोग दो प्रकारका है ॥ ८९ ॥ और वाङ्निसर्ग (दुष्ट प्रकारसे वचनको प्रवर्ताना) मनोनिसर्ग (दुष्ट प्रकारसे मनको प्रवर्ताना) और कायनिसर्ग (दुष्ट

प्रकार से शरीरको हिलाना चलाना) ये तीन भेद निसर्गके हैं । इसप्रकार ग्यारह प्रकारका अजीवाधिकरण है ॥ ९० ॥ ये सामान्य रूपसे कर्मोंके आस्रवके भेद बतलाये हैं विशेष रूपसे इसप्रकार हैं—

ज्ञान दर्शन के विषयमें प्रदोष भावसे, निह्नव भावसे, अदान (मात्सर्य) भावसे, आसादन भावसे और दूषण (उपाघत) भावसे ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मका आस्रव होता है अर्थात् कोई पुरुष मोक्षके कारणभूत तत्त्वज्ञानकी प्रशंसायोग्य चर्चा कर रहा हो परंतु उसको सुन कर ईर्षाभावसे प्रशंसा न करै मौन रक्खे इसप्रकारके भावको प्रदोष कहते हैं। जो स्वयं शास्त्रोंका जानकार विद्वान हो और कोई पुरुष कुछ जाननेकेलिये पूछे कि–"अमुक पदार्थका स्वरूप क्या है ?" तो कह देवे कि मैं इस पदार्थको नहिं जानता इसप्रकार शास्त्र ज्ञानके छिपानेका भाव निह्नव भाव है। यह पढ़कर पंडित हो जायगा तो मेरी बराबरी करैगा इस अभिप्रायसे किसीको पढ़ाना सिखाना नही अदान (मात्सर्य) भाव है । किसी ज्ञानके अभ्यासमें विघ्न कर देना पुस्तक पाठक पाठशाला स्थानादिका विच्छेद कर देना अथवा जिस कार्यसे ज्ञानका (विद्याका) उद्योत होनेवाला हो उस कार्यका विरोध करना वा विगाड़ देना विघ्न (अंतराय) भाव है। अन्यके द्वारा प्रकाशित किये हुये ज्ञानको वर्जन करना–रोक देना कि अभी इस विषयको मत कहो इत्यादि भावको आसादन कहते हैं और प्रशंसनीय ज्ञानको दूषण लगाना दूषण (उपघात) है। एवं ये ज्ञानके विषयमें किये हों तो ज्ञानावरण और दर्शनके विषय में किये हों तो दर्शनावरण कर्मके आस्रवके कारण होते हैं ॥९१॥ वेदनीय कर्मके दो भेद हैं साता वेदनीय और असाता वेदनीय। उनमें अपनेमें परमें और अपने पर दोनोंमें दुःख, शोक, वध, आक्रंद, ताप, और परिदेवन भावोंसे असातावेदनीय कर्मका आस्रव होता है अर्थात् पीड़ा रूप परिणाम दुःख है। अपने उपकारक द्रव्यके नष्ट होने पर परिणाम मलिन करना–चिंता करना–खेदरूप होना शोक है। आयु इंद्रियबल प्राण आदिका वियोग करना बध है। परितापके कारण अश्रुपातपूर्वक विलाप करना वा रोना आक्रंद है निंद्य कार्य करनेसे अपनी निंदा होनेपर पश्चात्ताप करना ताप है और ऐसा विलाप करना कि सुननेवालेके चित्तमें दया उत्पन्न होजाय सो परिदेवन है ये सब असाता वेदनीय कर्मके कारण हैं॥९२–९३॥ समस्त प्राणियोंपर दयाभाव रखना, व्रतियोंपर अनुराग करना, सराग संयम (दुष्टकर्मोंके नष्ट करनेकेलिये राग करने रूप संयम) करना दान देना, क्षमा रखना, शौच धर्मका पालन करना, अर्हत भगवानकी पूजा सत्कार आदि करनेका भाव रखना, बाल वृद्ध तपस्वियोंकी वैयावृत्य आदि करना सातावेदनीय कर्मके कारण हैं ॥ ९४–९५ ॥ चारित्र मोहनीयके भी मूल दो भेद हैं। दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय, उनमें केवलीका अवर्णवाद (दोष न होनेपर भी दोष बतलाना

निंदा करना) शास्त्रका अवर्णवाद, संघका अवर्णवाद, धर्मका अवर्णवाद और देवका अवर्णवाद करना दर्शन मोहनीय कर्मके आस्रवके कारण हैं अर्थात्—केवलीके क्षुधा तृषा आहार नीहार आदि दोषोंका कहना कंबल वस्त्र तथा पात्र दान आदि कहना केवलीका अवर्णवाद है। शास्त्रमें मद्य मांस मधुके सेवनका उपदेश है वेदनासे पीड़ितकेलिये मैथुनसेवन, रात्रिभोजन आदि कहा है इत्यादि दोष लगाना शास्त्रका अवर्णवाद है। देहसे निर्ममत्व निर्ग्रंथ वीतराग मुनीश्वरोंके संघको अपवित्र निर्लज्ज आदि कहना संघका अवर्णवाद है। अहिंसामय जैनधर्मके सेवन करनेवाले सब असुर होते हैं अथवा होवेंगे ऐसा कहना धर्मका अवर्णवाद है और देवोंको मांसभक्षी सुरापायी भोजनकरनेवाले कहना देवोंका अवर्णवाद है और इनसे दर्शन मोहनीय कर्मका आस्रव होता है ॥ ९६ ॥ कषायके उदयसे तीव्र परिणामोंका होना चारित्र मोहनीय कर्मके आस्रवका कारण है और उसके कषायवेदनीय और अकषायवेदनीय दो भेद हैं। उनमें स्व और परको कषाय उत्पन्न करदेना कषायवेदनीय कर्मके आस्रवका कारण है ॥९७–९८॥ हास्यपूर्वक धर्मकी हंसी उड़ाना हास्यनामक नोकषाय वेदनीय कर्मके आस्रवका कारण है ॥ ९९ ॥ नानाप्रकारकी क्रीड़ामें आसक्ति रखना, व्रत और शीलमें रुचि न करना रतिनामक नोकषायवेदनीय कर्मके आस्रवका कारण है। ॥ १०० ॥ दूसरे मनुष्योंको अरति उत्पन्न करना स्वयं भी रतिका नाश करना दुःशील सेवन करना रति नामक नोकषाय वेदनीय कर्मके आस्रवका कारण है ॥१०१॥ स्वयं शोक करना, दूसरेके शोकको बढ़ादेना वा दूसरेके शोककी सराहना करना शोक नामक नोकषायवेदनीय कर्मके आस्रवका कारण है ॥ १०२ ॥ दूसरोंको भय उत्पन्न करना और अपने भयकी चिंता करना भयनामक नोकषाय वेदनीय कर्मके आस्रवका कारण है ॥ १०३ ॥ उत्तम आचारमें ग्लानि करना, घृणा करना जुगुप्सा नामक नोकषाय वेदनीय कर्मके आस्रवका कारण है ॥ १०४ ॥ अतिशय वंचनाबुद्धि रखना असत्य बोलनेका विचार और अति अनुराग होना स्त्री नामक नोकषाय वेदनीय कर्मके आस्रवका कारण है ॥ १०५ ॥ अभिमानरहितपना सूक्ष्म क्रोध और अपनी स्त्रीमें संतोष रखना पुरुषनामक नोकषायवेदनीय कर्मके आस्रवका कारण है ॥ १०६ ॥ कषायोंकी अधिकता, परके गुह्य वातका प्रकाश करना, परस्त्रीमें आसक्ति रखना नपुंसक नामक नोकषायवेदनीय कर्मके आस्रवका कारण है ॥ १०७ ॥ बहुत आरंभ रखना बहुत परिग्रह रखना नारकीकी आयुका कारण है। माया (चारित्र मोहनीय कर्मके उदयसे उत्पन्न हुआ कुटिल भाव) तिर्यंच आयुके आस्रवका कारण है ॥ १०८ ॥ थोड़ा आरंभ थोड़ा परिग्रह रखना, परिणामोंमें स्वाभाविक कोमलता होना मनुष्यायुके आस्रवका कारण है ॥ १०९ ॥ सम्यक्त्व व्रतिपना (मुनि और श्रावकोंके व्रत

धारणकरना) अज्ञान तप और अकामनिर्जरा देव आयुके कारण हैं ॥ ११० ॥ योगवक्रता (मन वचन कायकी कुटिलता) विसंवादन (अन्यथाप्रवृत्ति) अशुभ नाम कर्मके आस्रवके कारण हैं और मन वचन कायकी कुटिलताका अभाव अन्यथा प्रवृत्ति न होना शुभ नाम कर्मके आस्रवका कारण है ॥ १११ ॥ एवं दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंके भानेसे तीर्थंकर नामक नाम कर्मका आस्रव होता है अर्थात् शंका कांक्षा आदि आठ दोष आठ मद छै अनायतन और तीन मूढ़ता इन पच्चीस दोषोंसे रहित निर्मल सम्यक्त्व धारण करना दर्शन विशुद्धि है। दर्शन ज्ञान चारित्रमें, दर्शन ज्ञान चारित्रके धारकोंमें देव शास्त्र गुरु और धर्ममें प्रत्यक्ष परोक्ष विनय करना, कषायका अभाव कर आत्माको मार्दवरूप करना विनयसंपन्नता है। अहिंसा आदि व्रतोंमें और उनके प्रतिपालन करानेवाले क्रोधवर्जन आदि शीलोंमें निरतिचार प्रवृत्ति रखना शीलव्रतेष्वनतिचार है। निरंतर तत्त्वाभ्यास करते रहना अभीक्ष्णज्ञानोपयोग है संसारके दुःखोंसे भयभीत होना संवेग है। शक्तिको न छिपाकर यथाशक्ति दान और कायक्लेश आदि तप करना शक्तितस्त्याग और तप है। मुनियोंके विघ्न और कष्टको दूर करके उनके संयमकी रक्षा करना साधुसमाधि है। रोगी साधु मुनिगणोंकी सेवा टहल करना वैयावृत्यकरण है। अर्हंत वीतरागके गुणोंमें अनुराग करना अर्हद्भक्ति है। संघमें दीक्षा शिक्षा देनेवाले संघाधिपति आचार्यके गुणोंमें अनुराग करना आचार्य भक्ति है। उपाध्याय महाराजके गुणोंमें अनुराग करना बहुश्रुत भक्ति है और शास्त्रके गुणोंमें अनुराग करना प्रवचनभक्ति है। सामायिक, स्तवन, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग इन छह आवश्यकीय क्रियाओंमें हानि नहिं करना आवश्यकापरिहाणि है। स्याद्वादविद्याके अध्ययनसे परमतके अज्ञान अंधकारको दूर कर जैन धर्मका प्रभाव बढ़ाना व वृद्धिरूप करना मार्ग प्रभावना है और साधर्मीजनोंके साथ गऊ बछड़ेके समान प्रीति करना प्रवचनवत्सलत्व भावना है इन भावनाओंके भानेसे तीर्थंकरप्रकृतिका आस्रव होता है ॥ ११२ ॥ दूसरेके विद्यमान गुणोंको ढँक देना, परकी निंदा करना, अपनी प्रशंसा करना और अपने अविद्यमान गुणोंका प्रकाश करना नीचगोत्र कर्मके आस्रवका कारण है ॥ ११३ ॥ और नीचगोत्रके आस्रवोंके विपरीत कारण अर्थात् अपनी निंदा, परकी प्रशंसा, अपने गुणोंका ढांकना, परके गुणोंका प्रकाश करना नीचैर्वृत्ति (गुणोंसे बड़े मनुष्योंके साथ विनयरूप प्रवर्तना,) और अनुत्सेक (गुणोंमें बड़ा होनेपर भी मद न करना) से उच्चगोत्रका आस्रव होता है एवं दान आदिमें विघ्न डालना अंतराय कर्मके आस्रवका कारण है ॥ ११४ ॥ इसप्रकार सामान्यरूपसे अशुभ आस्रव पापका कारण और शुभ आस्रव पुण्यका कारण प्रतिपादन कर दिया गया। अब शुभ आस्रवकी विशेष प्रतीतिके लिये कुछ कहते हैं—

हिंसा झूठ चोरी मैथुन और परिग्रहका एक देशरूप त्याग पांच प्रकारका अणुव्रत है और इन्हींका सर्वथा त्याग कर देना पांच प्रकारका महाव्रत कहलाता है॥ ११५-११६ ॥ प्रत्येक व्रतकी दृढ़ताकेलिये पांच पांच प्रकारकी भावनाऐं बतलाई गई हैं। उनमें वचनगुप्ति मनोगुप्ति ईर्यासमिति आदाननिक्षेपणसमिति और आलोकितपान भोजन ये पांच भावना अहिंसाव्रतकी हैं। वचनकी प्रवृत्तिको भलेप्रकार रोकना सो वचनगुप्ति है। मनकी प्रवृत्तिको रोकना निंदितविचार न करना मनोगुप्ति है। जूरा-प्रमाण पृथ्वीको देखकर यत्नाचारपूर्वक गमन करना ईर्यासमिति है। भूमिको जीव रहित देखकर वस्तुको यत्नाचारपूर्वक उठाना वा रखना डालना आदाननिक्षेपण समिति है और आहार पान आदिमें अंतरंग दृष्टिसे वा नेत्रदृष्टिसे देख शोधकर भोजन पान करना आलोकितपानभोजन है ॥ ११७-११८ ॥ क्रोधका त्याग, लोभका त्याग, भयका त्याग, हास्यका त्याग, और अनुवीचिभाषण-निर्दोष आगमके अनुसार बोलना ये पांच भावना सत्यव्रतकी हैं ॥ ११९ ॥ शून्यागार-खाली घरमें रहना, मोचितावास-किसीके छोड़े हुये घरमें रहना, अन्यानुपरोधिता-अन्यको वास करते न रोकना, भैक्ष्यशुद्धि-शास्त्रविहित भिक्षाकी विधिमें न्यूनाधिक न करना और अविसंवाद-साधर्मी भाइयोंसे विसंवाद न करना ये पांच अचौर्यव्रतकी भावना हैं। ॥ १२० ॥ स्त्रियोंमें प्रीति उत्पन्न करनेवाली कथाओंके सुननेका त्याग, स्त्रियोंके मनोहर अंगको रागसहित देखनेका त्याग, शरीरके शृंगार करनेका त्याग, कामोद्दीपन करनेवाले पुष्टिकर और इंद्रियोंको लालसा उत्पन्न करनेवाले रसोंका त्याग और पूर्वकालमें किये हुये विषयभोगोंके स्मरण करनेका त्याग ये पांच ब्रह्मचर्यव्रतकी भावना हैं ॥ १२१ ॥ एवं पांचों इंद्रियोंके स्पर्श रस आदिक इष्ट वा अनिष्टरूप पांच विषयोंमें राग द्वेषका त्याग करना ये पांच भावना परिग्रहत्याग व्रतकी हैं ॥ १२२ ॥ तथा इन अहिंसा आदि व्रतोंके धारक मनुष्योंको सदा इस बातका विचार करना चाहिये कि हिंसा आदि पांच पापोंके करनेसे इसलोक और परलोकमें राजदंड पंचदंड आदि आपत्तियां और छेदन भेदन आदि निंद्य कष्ट देखने सहने पड़ते हैं अथवा ये हिंसा आदि असाता वेदनीय आदिके कारण हैं इसलिये दुःखस्वरूप ही हैं ॥१२३-१२४॥ मैत्री प्रमोद कारुण्य और माध्यस्थ ये चार भावनायें क्रमसे सर्वसाधारण जीवोंमें, गुणाधिकोंमें, दुःखियोंमें और अविनयी मिथ्यादृष्टियोंमें करनी चाहिये अर्थात् सर्वसाधारण जीवोंमें मैत्रीभाव रखना मैत्रीभावना है। जो गुणोंमें अधिक हों उनमें प्रमोद रखना-अपनेसे अधिक विद्वानोंको वा धर्मात्माओंको देखते ही मुखादिसे प्रसन्नता प्रकट करना हर्षित होकर उनके गुणोंमें अनुरक्त हो भक्ति प्रकट करना प्रमोद भावना है। रोग आदिसे पीडित व दुखित जीवोंपर करुणाबुद्धि रखना वा उनके दुःख दूर

होने वा करनेका अभिप्राय रखना कारुण्य भावना है और जो जीव तत्त्वार्थके उपदेशको ग्रहण करनेके योग्य न हों अविनयी हों उनमें रागद्वेषरहित मध्यस्थ भाव रखना मध्यस्थ भावना है ॥ १२५ ॥ व्रती मनुष्योंको संवेग और वैराग्यकेलिये संसार और शरीरके अनित्यत्व आदि स्वभावोंका भी विचार करना चाहिये। संसारके दुःखों से सदा भयभीत रहना संवेग है और स्त्री पुत्र आदिमें किसी प्रकारका राग न करना वैराग्य है ॥ १२६ ॥ पांच इंद्रिय मनोबल वचनबल कायबल श्वासोच्छ्वास और आयु ये दश प्राण हैं कषाय आदिसे प्रमत्त[1] होकर जो जीवके इन दश प्राणोंका व्यपरोपण करना-वियोग करना है वह हिंसा है ॥१२७॥ प्राणियोंको प्राणोंका वियोग दुःखका कारण है इसलिये प्रमादसे प्राणोंका वियोग करना मनुष्योंकेलिये महा अधर्म-अनर्थ है परंतु जो संयमी हैं क्रोध आदि प्रमादोंसे रहित हैं उनसे यदि किसी प्रकारके जीवोंके प्राणोंका वियोग हो जाय तो वह अधर्मका कारण नहीं ॥ १२८ ॥ जिस समय प्रमादी आत्मा दूसरेके मारनेका विचार करता है उससमय उसकी आत्मा क्रोध आदिसे आविष्ट हो जाती है इसलिये दूसरे प्राणीके घातसे पहिले वह अपनी आत्माका ही घात करलेता है पीछे चाहै प्राणी मरो या न मरो ॥ १२९ ॥ विद्यमान वा अविद्यमान वस्तुके लिये जो वचन प्राणियोंको पीड़ा करनेवाला हो वह असत्य वचन है और इससे प्राणियोंका हित कदापि नहिं हो सकता ॥ १३० ॥ जहांपर विना दी हुई वस्तुका ग्रहण हो और परिणाम संक्लेशरूप हों वह चौरी है ॥ १३१ ॥ जिसमें अहिंसा आदि गुणोंकी वृद्धि हो वह ब्रह्मचर्य है और इससे भिन्न अब्रह्मचर्य (मैथुन) है जिसको कि हितकारी समझ स्त्री पुरुष युगल कुछ सुखके लिये करते हैं ॥ १३२ ॥ चेतन और अचेतन दोनों प्रकारके गौ अश्व, मणि और मोती आदि बाह्य परिग्रहमें एवं राग द्वेष आदि अंतरंग परिग्रहमें जो ममता रखना है उसे परिग्रह कहते हैं ॥ १३३ ॥ इन हिंसा आदि पांच पापोंसे विरतिरूप अहिंसा आदि व्रत हैं ये ही एक देश रूपसे पाले जानेपर अणुव्रत और सर्वप्रकारसे पाले जानेपर महाव्रत होते हैं और इनके पालक व्रती कहलाते हैं ॥१३४॥ यहांपर भी यह विशेष बात है कि जो उक्त व्रतोंका आराधक शल्य रहित होगा वही व्रती कहा जायगा। माया मिथ्या और निदानके भेदसे शल्य तीन प्रकार हैं जो कि मनुष्योंके हृदयोंमें शल्य (कीली) सरीखी चुभती रहती हैं। मनमें और वचनमें और, एवं कार्यमें कुछ और ही करें इसको छल कपट अर्थात् माया शल्य कहते हैं। तत्त्वार्थका अश्रद्धान सो मिथ्यात्व शल्य है एवं आगामी कालमें विषय भोगोंकी वांछा करना निदान शल्य है ॥१३५॥ व्रतियोंके दो भेद हैं-सागार और अनगार। सागार अणुव्रती कहे जाते हैं और अनगारोंको महाव्रती कहते हैं ॥ १३६ ॥ जो

१-पांच इंद्रिय, चार कषाय, चार विकथा, राग, द्वेष और निद्रा ये पंद्रह प्रमाद हैं।

व्रती रागी है-राग द्वेषसे युक्त है वह वनमें रहा हुआ भी सागार है श्रावक है और जो वीतरागी है वह गृहस्थ होनेपर भी यति है ॥ १३७ ॥ जीवोंके दो भेद हैं-त्रस और स्थावर। उनमें त्रसकायके जीवोंकी रक्षा करना उनकी हिंसा न करना अहिंसा अणुव्रत है ॥ १३८ ॥ राग द्वेष और मोहसे दूसरेको पीड़ा करनेवाले वचन न कहना सत्य अणुव्रत है ॥ १३९ ॥ अधिक मूल्य वा स्वल्प मूल्यवाले दूसरेके पदार्थको विना दिये ग्रहण न करना अचौर्य अणुव्रत है ॥ १४० ॥ परस्त्रियोंके साथ विषय भोग न करना वा विषय भोगकी अभिलाषा न करना ब्रह्मचर्य अणुव्रत है इसको स्वदारसंतोष भी कहते हैं ॥ १४१ ॥ और सुवर्ण दास गृह क्षेत्र आदि पदार्थोंको परिमाणपूर्वक रखना इच्छापरिणाम नामका पांचवां अणुव्रत है ॥ १४२ ॥ उक्त पांच अणुव्रतोंके धारकोंको दिग्व्रत देशव्रत और अनर्थदंडव्रत ये तीन गुणव्रत और सामायिक-प्रोषधोपवास भोगोपभोगपरिमाण और अतिथिसंविभाग ये चार प्रकारके शिक्षाव्रत भी धारण करने चाहिये ॥ १४३ ॥ लोभ आरंभ आदिके त्यागके अभिप्रायसे पूर्व आदि दिशा विदिशाओंमें किसी नदी ग्राम नगर पर्वतादि तक गमनागमनकी मर्यादा बांध उससे वाहिर यावज्जीव जानेका त्याग करदेना दिग्व्रत है ॥ १४४ ॥ यावज्जीव किये हुये दिग्व्रतमेंसे और भी संकोचकर किसी ग्राम नगर गृह मुहल्ले आदि पर्यंतके गमनागमनकी अवधि बांधकर उससे आगे मास पक्ष दिन दो दिन चार दिन आदि कालकी मर्यादासे गमनागमनका त्यागकरना देशव्रत है ॥ १४५ ॥ अनर्थदंडके पापोपदेश अपध्यान प्रमादचर्या हिंसादान और दुःश्रुति ये पांच भेद हैं ॥ १४६ ॥ जो पापके उपदेशका कारण हो वह अनर्थ दंड है और अनर्थदंडके त्यागको अनर्थदंडव्रत कहते हैं ॥ १४७ ॥ जो वचन व्यापार तिर्यंच् आदिके वध आदि निंदित कार्योंके उपदेशक हों पापमय हों वह पापोपदेश है ॥ १४८ ॥ अपना जय, परका पराजय अन्यका वध बंध और द्रव्यका हरण किसप्रकारसे होगा ? इसप्रकारका चिंतवनकरना अपध्यान है ॥ १४९ ॥ विना प्रयोजन वृक्ष आदिका छेदना भूमिका कूटना कुरेदना जल बखेरना आदि अनर्थ काम करना प्रमादचर्या अनर्थ दंड है ॥ १५० ॥ हिंसाके उपकरण विष कांटा शस्त्र अग्नि रस्सी दंड चाबुक सांकल वेड़ी तोप वंदूक आदि पदार्थोंका दान करना हिंसादान है ॥ १५१ ॥ पाप बंधके कारण हिंसा राग द्वेष आदिसे कुत्सित कथाओंका श्रवण करना दुःश्रुति नामका अनर्थ दंड है ॥ १५२ ॥ सुख दुःख शत्रु और मित्रमें मध्यस्थ भाव रखना त्रिकाल अपने इष्ट देवको नमस्कार करना सामायिक नामका शिक्षाव्रत है ॥ १५३ ॥ प्रत्येक अष्टमी चतुर्दशीके दिन समस्त आरंभ छोड़कर जो चार प्रकारके आहारका त्याग करना है वह प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत है इससे इंद्रियोंकी मत्तता शिथिल होजाती है ॥ १५४ ॥ गंध माला अन्नपान आदि भोग है वस्त्र आभरण

आदि परिभोग है इन दोनोंका जो यावज्जीव वा कुछ कालकेलिये परिमाण करना है वह भोगपरिभोगपरिमाण शिक्षाव्रत है परंतु इसमें मास मद्य मधु जूआ वेश्या परस्त्री रात्रिभोजन और कंदमूल आदिका तो सर्वथाही त्याग करदेना चाहिये ॥१५५-१५७॥ संयमकी वृद्धिकेलिये जो भोजनार्थ गमन करै उसै अतिथि कहते हैं और उसै विधिपूर्वक शुद्ध आहार आदि प्रदान करना अतिथिसंविभाग नामका शिक्षाव्रत है॥ १५८॥ अतिथियोंकेलिये श्रावकोंको भिक्षा, औषध, पीछी कमंडलु आदि उपकरण और मठ ये चार प्रकारके पदार्थ प्रदान करना चाहिये ॥ १५९॥ बाह्य शरीर और अंतरंग कषायोंका जो कमकरना है उसै सल्लेखना कहते हैं ॥ १६० ॥ रागद्वेष आदिके नाशार्थ अंत समयमें जब शरीर अशक्त होजाय-जीने का कोई उपाय न दीख पड़े उससमय सल्लेखना आराधन करनी चाहिये ॥ १६१ ॥ सम्यक्त्वके निश्शंकित निःकांक्षित आदि आठ अंग हैं और इनके विरोधी शंका कांक्षा आदि जो आठ हैं वे सम्यग्दर्शनके अतीचार हैं । अर्हतभगवानके परमागममें जो पदार्थोंका स्वरूप कहा गया है उसमें संशय करना अथवा अपने आत्माको ज्ञाता दृष्टा अखंड अविनाशी पुद्गलसे भिन्न जानकर भी सातप्रकारका भयकरना शंका अतीचार है । इसलोक परलोक संबंधी भोगोंकी वांछा रखना कांक्षा नामा अतीचार है । दुःखी दरिद्री रोगी इत्यादि क्लेशसंपन्न जीवोंको देखकर ग्लानि करना वा घृणित पदार्थोंको देखकर ग्लानि करना विचिकित्सा अतीचार है। मिथ्यादृष्टिके ज्ञान चारित्र आदि गुणोंको मन वचन कायसे प्रकट करना प्रशंसा अतीचार है।अशक्त मनुष्योंद्वारा की गई भगवान जिनेंद्रके मार्गकी निंदाको श्रवण करना वा स्वयं निंदा करना अनुपगूहन नामका अतीचार है। जो जीव किसी कारणसे सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान आदिसे चलित हो रहा हो उसे अंडबंड सुनाकर और भी चलायमान कर देना अस्थितिकरण नामका अतीचार है। साधर्मी बंधुओंसे द्वेष रखना-किसी प्रकारका आदर सत्कार न करना वात्सल्यका अभाव नामका अतीचार है और जहांपर पाठशाला जिनमंदिर आदि एवं सर्वसाधारणको जैन धर्मके स्वरूप जाननेके लिये शास्त्र आदिकी प्राप्तिके सुगम उपाय आदि कार्य किये जा रहे हों उनमें विघ्न डालदेना अप्रभावना नामका सम्यग्दर्शनका अतीचार है ॥ १६२ ॥ प्रत्येक व्रत और शीलके पांच पांच अतीचार बतलाये हैं और वे इसप्रकार हैं—

बंध वध छेद अतिभारारोपण और अन्नपाननिरोध ये पांच अहिंसाणुव्रतके अतीचार हैं । पशु आदि जीवोंको बांधकर अटका रखना यह बंधातीचार है। लकड़ी चाबुक

१ भगवान उमास्वामिने मोक्षशास्त्रमें शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा और अन्यदृष्टिसंस्तव ये सम्यग्दृष्टिके पांच अतीचार बतलाये हैं और यहांपर आठ कहगये हैं। २-इहलोकभय परलोकभय मरणभय वेदनाभय अरक्षाभय अगुप्तभय और अकस्मात् भय ये सात प्रकारके भय हैं ।

आदिसे पीटना वधातीचार है। कान नासिका आदि छेदकर दुःखी करना छेदातीचार है। बहुत भार—शक्तिसे अधिक भार लादना अतिभारारोपणातीचार है और खान पान आदि रोककर भूंखा प्यासा रखना अन्नपाननिरोधातिचार है॥ १६३–१६५॥ मिथ्योपदेश, रहोऽभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार और साकारमंत्रभेद ये पांच अतीचार सत्याणुव्रतके हैं इसलिये सत्यवादियोंको चाहिये कि मर्यादापूर्वक इनका भलेप्रकार परित्याग करें। परमागमके विरुद्ध औरका और झूठा उपदेश देना मिथ्योपदेश नामका अतीचार है। स्त्री पुरुषादिकी गुप्तवार्ताओं वा गुप्त आचरणोंका प्रकट करना रहोभ्याख्यान अतीचार है। झूठे पत्र स्टांप आदि लिखना लिखाना कूटलेखक्रिया है। कोई मनुष्य रुपया गहना आदि धरोहर रख जावे और भूलकर थोड़ा मांग बैठे तो उसको "हां तुम्हारा जितना हो उतना लेजाओ। भाई! हमै किसीका भी न चाहिये" ऐसा कहकर जो उसने मांगा हो उतना ही दे देना—पूरा न देना न्यासापहार अतीचार है और किसीके मुख आदिकी चेष्टाओंसे उसके मनका गुप्त अभिप्राय जानकर प्रकट करदेना साकारमंत्रभेद है॥ १६६–१७०॥ स्तेनप्रयोग, तदाहृतादान, विरुद्धराज्यातिक्रम, हीनाधिकमानोन्मान और प्रतिरूपकव्यवहार ये पांच अतीचार अचौर्याणुव्रतके हैं। मन वचन कायसे चोरीका उपाय बतलाना स्तेनप्रयोग नामका अतीचार है। चोरीकी वस्तु मोल वा बिना मोल लेना तदाहृतादान अतीचार है। राजाकी आज्ञाको लोपकर उसके विरुद्ध चलना विरुद्धराज्यातिक्रम अतीचार है। दूसरोंको देते समय कमती वांट पायली आदिसे देना और लेते समय अधिक वजनके वांट आदिसे लेना हीनाधिकमानोन्मान नामका अतिचार है। अधिक मूल्यकी वस्तुमें थोड़े मूल्यकी वस्तु मिलाकर अधिक मूल्यसे बेचना अथवा घीमें चरवी दूधमें पानी अरारोट आदि मिलाकर असली बनाकर बेचना प्रतिरूपकव्यवहार नामका अतीचार है॥ १७१–१७३॥ परविवाहकरण, परगृहीतेत्वरिकागमन, अपरिगृहीतेत्वरिकागमन, अनंगक्रीड़ा और कामतीव्राभिनिवेश ये पांच स्वदारसंतोषव्रतके अतीचार हैं। दूसरोंके लड़की लड़कोंका विवाह करना वा कहकर करादेना परविवाहकरण नामका अतीचार है। दूसरेकी विवाही हुई व्यभिचारिणी स्त्रीके यहां आना जाना वा उसके साथ देन लेन वचनालाप आदि करना परगृहीतेत्वरिकागमन नामका अतीचार है। जो वेश्यादि व्यभिचारिणी स्त्रियां अपरिगृहीत हैं अर्थात् जिनका कोई स्वामी नहिं है उनसे देन लेन वार्तालाप आदि करना अपरिगृहीतेत्वरिकागमन नामका अतीचार है। कामसेवनके अंगोंको छोड़कर अन्य अंगोंसे काम क्रीड़ा करना अनंगक्रीड़ा नामका अतीचार है और अपनी स्त्रीमें कामसेवनकी अत्यंत अभिलाषा रखना वा काम क्रीड़ामें अतिमग्न होना कामतीव्राभिनिवेश नामका अतिचार है॥ १७४–१७५॥ हिरण्य सुवर्ण, वास्तु क्षेत्र, धन

धान्य, दासीदास और कुप्य इन पांच का त्यागसे अधिक बढ़ालेना सो इच्छापरिमाण व्रतके पांच अतीचार हैं। रुपया चांदी आदि को हिरण्य और सोना व सोनेके गहनोंको सुवर्ण कहते हैं। धान्य आदि उत्पन्न होनेके स्थानका नाम क्षेत्र है, रहनेके घर मकान आदि वास्तु हैं। घोड़ा बैल भैंस आदि धन और शालि गेहूं आदि धान्य हैं। शरीर व घरकी सेवा करनेवाली स्त्रियां और पुरुष दासी दास कहे जाते हैं और वस्त्र थाली लोटा कपास आदि कुप्य हैं ॥ १७६ ॥ ऊर्ध्वातिक्रम, अधोऽतिक्रम, तिर्यगतिक्रम, स्मृत्यंतराधान और क्षेत्रवृद्धि ये पांच अतीचार दिग्व्रत के हैं। परिमाणसे अधिक उंचाईके वृक्ष पर्वत आदिपर चढ़ना ऊर्ध्वातिक्रम है। परिमाणसे अधिक नीचाईके कूप वावड़ीमें नीचै उतरना अधोतिक्रम है। विल, पर्वत आदिकी गुफाओं में सुरंग आदि में टेड़ा जाना तिर्यग्व्यतिक्रम है। दिशाओंकी की हुई मर्यादाको भूल जाना स्मृत्यंतराधाननामका अतीचार है और परिमाण की हुई दिशाओंमें क्षेत्रके लोभसे अधिक क्षेत्र बढ़ा लेना क्षेत्रवृद्धि अतीचार है ॥ १७७ ॥ प्रेष्यप्रयोग, आनयन, पुद्गलक्षेप, शब्दानुपात और रूपानुपात ये पांच अतीचार देशव्रतके हैं। मर्यादासे वाहिरके क्षेत्रमें आप तो न जावे किंतु सेवक आदि को भेजे सो प्रेष्यप्रयोग है। मर्यादासे बाहिरकी वस्तुओंका मंगाना वा किसीको वहांसे बुलाना आनयन अतीचार है। मर्यादासे बाहर कंकर पत्थर आदि फैंककर इशारा करना पुद्गलक्षेप नामका अतीचार है। मर्यादासे बाहिर क्षेत्रमें तिष्ठते हुये मनुष्यको खांसी व खखार आदि का शब्द कर अपना अभिप्राय समझाना शब्दानुपात नामका अतीचार है और मर्यादासे बाहिरके क्षेत्रमें तिष्ठते मनुष्यको अपना रूप दिखाकर वा हाथके इशारे से समझा कर काम करालेना रूपानुपात नामका अतीचार है ॥ १७८ ॥ कंदर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, असमीक्ष्याधिकरण और उपभोगपरिभोगानर्थक्य ये पांच अतीचार अनर्थदंडव्रतके हैं। रागकी उत्कटतासे हास्यमिश्रित भंडवचन बोलना कंदर्पातिचार है। रागोदयकी तीव्रतासे हास्य और अशिष्ट भंड वचन बोलना और कायसे भी निंदनीय क्रिया करना कौत्कुच्य अतीचार है। धीठतासे बहुतसा निरर्थक प्रलाप करना मौखर्य अतीचार है। प्रयोजनको विना विचारे अधिकतासे प्रवर्तन करना असमीक्ष्याधिकरण अतीचार है और भोग उपभोगके जितने पदार्थोंसे अपना काम चल जाता हो उनसे अधिकका संग्रह करना उपभोगपरिभोगानर्थक्य नामका अतीचार है ॥ १७९ ॥ मनोदुःप्रणिधान, वचनदुःप्रणिधान, कायदुःप्रणिधान, अनादर और स्मृत्यनुपस्थान ये पांच अतीचार सामायिक व्रतके हैं। मनको अन्यथा चलायमान करना मनोदुःप्रणिधान नामका अतीचार है। वचनको अन्यथा चलायमान करना वचनदुःप्रणिधान नामका अतीचार है। कायको अन्यथा चलायमान करना कायदुःप्रणिधान नामका अतीचार है। उत्साहरहित अनादरसे सामायिक करना अनादर नामका अतीचार है

और सामायिकमें एकाग्रताके विना चित्तकी व्यग्रतासे पाठ या क्रियाको भूल जाना स्मृत्यनुपस्थान नामका अतीचार है ॥ १८० ॥ अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग, अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादान, अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमण, अनादर और स्मृत्युनुपस्थान ये प्रोषधोपवासव्रतके अतीचार हैं। इस भूमिमें जीव हैं या नहीं इसप्रकार नेत्रोंसे देखना प्रत्यवेक्षण है और कोमल उपकरणोंसे भूमिका शोधना बुहारना प्रमार्जन है। सो नेत्रोंसे देखे विना व कोमल पिच्छिकादिसे शोधन किये विना भूमिपर मलमूत्र कफ आदि डाळदेना अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग नामका अतीचार है। इसीप्रकार देखे शोधे विना अर्हत आचार्यादिकी पूजनके गंध माल्य धूप आदि उपकरणोंको ग्रहण करना व वस्त्र पात्र आदिको देखे शोधे विनाही घसीटकर उठाना अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादान नामका अतीचार है। विना देखी शोधी जमीनपर शयनासनके वस्त्र आदि विछाना अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमण नामका अतीचार है। क्षुधा तृषा आदिकी बाधासे आवश्यकीय धर्म क्रियाओंमें अनादरसे प्रवर्तना अनादर नामका अतीचार है और प्रोषधोपवासके दिन करने योग्य आवश्यकीय धर्मकी क्रियायोंका भूलजाना स्मृत्यनुपस्थान नामका अतीचार है ॥ १८१ ॥ सचित्ताहार, सचित्तसंबंधाहार, सचित्तसंमिश्राहार, अभिषवाहार और दुष्पक्काहार ये पांच अतीचार उपभोगपरिभोग परिणाम व्रतके हैं। जीवसहित पुष्प फल आदिका आहार करना सचित्ताहार नामका अतीचार है। सचित्त वस्तुसे स्पर्शे हुये पदार्थोंका आहार करना सचित्तसंबंधाहार नामका अतीचार है। सचित्त पदार्थोंसे मिले हुये पदार्थोंका आहार करना सचित्तसंमिश्राहार अतीचार है। पुष्टिकर पदार्थोंका आहार करना अभिषव नामका अतीचार है और भलेप्रकार नहि पके हुये पदार्थोंका आहार करना दुष्पक्काहार नामका अतीचार है ॥ १८२ ॥ सचित्तनिक्षेप, सचित्तापिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रम ये पांच अतीचार अतिथिसंविभाग व्रतके हैं। सचित्त (जीवसहित) हरे कमलपत्र आदिमें रखकर आहार कराना सचित्तनिक्षेप नामका अतीचार है। सचित्त कमलपत्र आदिसे ढके हुये आहार आदिका दान देना सचित्तापिधान नामका अतीचार है। अन्यकी वस्तुका दान करना परव्यपदेश अतीचार है। अनादरसे दान देना वा अन्य दातासे ईर्षाभाव करके दान देना मात्सर्य नामका अतिचार है। दान देनेके कालको उल्लंघन कर अकालमें भोजन देना कालातिक्रम नामका अतिचार है ॥ १८३ ॥ जीविताशंसा, मरणाशंसा, निदान, मित्रानुराग और सुखानुबंध ये पांच अतीचार सल्लेखना व्रतके हैं। सल्लेखना धारणकर जीनेकी आशंसा—इच्छा करना जीविताशंसा नामका अतीचार है। रोग आदिके उपद्रवोंसे घवड़ाकर मरनेकी वांछा करना मरणाशंसा अतीचार है। अगले भवमें विषय आदि सुखोंके प्राप्त होनेकी वांछा करना निदान नामका अतीचार है। मित्रों

का स्मरण करना मित्रानुराग अतीचार है और पूर्वकालमें भोगे हुये भोगोंकी याद करना सुखानुबंध नामका अतीचार है ॥१८४॥ सम्यग्ज्ञान आदि गुणोंकी वृद्धयर्थ अपने और परके अनुग्रहकी अभिलाषासे जो धन आदिका निसर्ग—त्याग करना है वह दान कहलाता है ॥ १८५ ॥ जिसप्रकार भूमि आदिके भेदसे धान्य आदिमें भेद हो जाता है—उत्तम भूमि आदिके रहनेसे उत्तम धान्य, मध्यम भूमि आदिके रहनेसे मध्यम और जघन्य भूमि आदिके रहनेसे जघन्य धान्य आदि होते हैं उसीप्रकार विधि (दानकी रीति) देय (देने योग्य सामग्री) दाता (देनेवाला) और पात्र (लेनेवाला) के उत्तम मध्यम आदि भेद होने से दानके फलमें भी भेद पड़ जाता है अर्थात् जो दान उत्तम पदार्थका, उत्तम विधिसे, उत्तम दाता द्वारा, उत्तम पात्रकेलिये दिया जाता है उस दानका फल उत्तम होता है और मध्यमका मध्यम और जघन्यका जघन्य होता है ॥१८६॥ दानके समय प्रतिग्रह (अत्र तिष्ठ तिष्ठ, आहार पानी शुद्ध है ऐसा कहना) आदि नवधाभक्तिरूपी विधिमें आदर अनादरके भेदसे दानके फलमें भेद पड़जाता है अर्थात् आदर पूर्वक दान देनेसे उत्तम फल और अनादर पूर्वक दान देनेसे मध्यम आदि फल मिलते हैं ॥१८७॥ कोई कोई दानकी सामग्री मुनियोंको तप स्वाध्याय आदिके वृद्धिकी कारण है और कोई २ नहीं। इसलिये एक दानकी सामग्री समताकी और दूसरी विषमताकी कारण है जो समताकी कारण है उससे उत्तम फल मिलता है और विषमसे मध्यम आदि फल प्राप्त होते हैं ॥ १८८ ॥ एक दाता ईर्षा और विषादरहित हो दान देता है और दूसरा ईर्षा विषादपूर्वक दान देता है। जो ईर्षा विषादसे रहित हो दान देता है उसे दानका फल उत्तम मिलता है और ईर्षा विषाद पूर्वक दान देनेवालेको मध्यम आदि फल मिलते हैं क्योंकि मनकी गति विचित्र है इसलिये कभी परिणाम ईर्षा विषादरूप रहते हैं कभी नहिं रहते ॥१८९॥ मोक्षके कारणभूत दानोंको ग्रहण करनेवाले मुनि आदिके मनकी शुद्धिका कमती वढ़ती होना पात्रका विशेष (भेद) है यदि लेनेवालेके परिणाम अधिक विशुद्ध होंगे तो फल भी उत्तम मिलेगा और कुछ कम शुद्ध होंगे तो तदनुकूल मध्यमादि फल प्राप्त होगा ॥१९०॥ पुण्यका आस्रव सुखका कारण है क्योंकि उससे अनेक अभ्युदयोंकी प्राप्ति होती है और अपुण्य-पापका आस्रव संसारके दुःखोंका कारण है॥ १९१ ॥ मिथ्यादर्शन, हिंसादिसे अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये कर्मबंधके कारण हैं—उनमें मिथ्यादर्शनके मूलमें दो भेद हैं-गृहीतमिथ्यात्व और अगृहीतमिथ्यात्व। परके उपदेश वा कुशास्त्रोंके सुननेसे जो अतत्त्वश्रद्धान हो वह गृहीतमिथ्यात्व है और परके उपदेशादिके विना ही पूर्वोपार्जित मिथ्यात्व कर्मके उदयसे हो वह अगृहीतमिथ्यात्व-निसर्गज मिथ्यात्व है। गृहीतमिथ्यात्वके मतभेदसे क्रियावादी, अक्रियावादी, विनय और आज्ञानिक चार भेद हैं तथा एकांतमिथ्यात्व, विपरीतमिथ्यात्व, विनयमिथ्यात्व, अज्ञान-

मिथ्यात्व और संशयमिथ्यात्व ये भी पांच भेद हैं। वस्तु--पदार्थमें जो अनेक धर्म होते हैं उन सबको गौणकर किसी एक धर्मको मुख्यतासे मानकर केवल उसीका श्रद्धान करना एकांतमिथ्यात्व है। सग्रंथको निग्रंथ मानना, केवलीको आहार करनेवाला मानना, स्त्रीको मोक्ष मानना इसप्रकार उलटे श्रद्धानको विपरीतमिथ्यात्व कहते हैं। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र स्वरूप मोक्षमार्ग है या नहीं इसप्रकार संदेह रूप श्रद्धान संशयमिथ्यात्व है। समस्त प्रकारके देवों कुदेवों और समस्तप्रकारके दर्शनोंको एक ही मानना और सबकी भक्ति करना विनयमिथ्यात्व है और हिताहितकी परीक्षारहित श्रद्धान करना अज्ञानमिथ्यात्व है ॥ १९२–१९५ ॥ छै कायके जीवोंकी हिंसाका त्याग न करना और पांच इंद्रिय एवं मनको वशमें नहिं रखना वारह प्रकारकी अविरति है। भावशुद्धि, कायशुद्धि, विनयशुद्धि, ईर्यापथशुद्धि, भैक्ष्यशुद्धि, पापनाशनशुद्धि, प्रतिष्ठापनशुद्धि, और वाक्यशुद्धि इन आठ शुद्धियोंमें तथा उत्तमक्षमा आदि दशलक्षण धर्ममें उत्साहरहित परिणाम हो मंदोद्यमी होना प्रमाद है। उसके स्त्रीकथा, राजकथा, भोजनकथा, और देशकथा ये चार विकथायें, क्रोध मान माया लोभ ये चार कषाय, पांच इंद्रियें, निद्रा और राग ये पंद्रह भेद हैं। प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ आदि सोलह कषाय, हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा आदि नौ नोकषाय ये पच्चीस कषाय हैं और सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग, अनुभयमनोयोग ये चार प्रकारके मनोयोग, सत्यवाग्योग असत्यवाग्योग उभयवाग्योग अनुभयवाग्योग ये चार प्रकारके वाग्योग, औदारिककाययोग औदारिकमिश्रकाययोग वैक्रियिककाययोग वैक्रियिकमिश्रकाययोग आहारककाययोग आहारकमिश्रकाययोग और कार्माणकाययोग ये पंद्रह प्रकारके योग हैं ॥१९६–१९७॥ ये मिथ्यादर्शन आदि सब मिलकर वा जुदे जुदे दोनों प्रकारसे वंधके कारण हैं। मिथ्यादृष्टि गुणस्थान वालेके तो मिथ्यादर्शन आदि पांचो वंधके कारण हैं। दूसरेसे लेकर चौथे गुणस्थान तक तीन गुणस्थानोंमें मिथ्यादर्शनके सिवाय शेष चार वंधके कारण है। पांचवें (संयतासंयत) देशविरत गुणस्थानमें त्रसकायके जीवोंकी रक्षा करनी पड़ती है इसलिये वहां मिश्र–विरति अविरति, प्रमाद, कषाय और योग वंधके कारण हैं ॥ १९८–१९९ ॥ प्रमत्तसंयत छठे गुणस्थानमें अविरति नहिं रहती इसलिये वहां प्रमाद आदि तीन वंधके कारण हैं। सातवेंसे दशवे गुणस्थानतक प्रमाद नहिं रहता इसलिये वहां कषाय और योग वंधके कारण हैं ॥ २०० ॥ ग्यारहवां उपशांतकषाय, वारहवां क्षीणकषाय, तेरहवां योगकेवली इन तीन गुणस्थानोंमें केवल योग वंधका कारण है और चौदहवें अयोग गुणस्थानमें वंधका कोई भी कारण नहीं है ॥ २०१ ॥ कषायसे कलुषित इस आत्मामें प्रतिक्षण कर्मोंके योग्य पुद्गलोंका एक क्षेत्रावगाहरूप ग्रहण

होता रहता है उसे बंध कहते हैं और उसके प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंध ये चार मूल भेद हैं ॥२०३॥ जिसप्रकार नीमका स्वभाव कडुवा है शर्कराका मीठा है उसीप्रकार प्रत्येककर्मका स्वभाव जो जुदा जुदा है वह प्रकृति है। ज्ञानावरण कर्मका स्वभाव अज्ञान–पदार्थोंको न जानने देना है। दर्शनावरणका अदर्शन–पदार्थोंको न देखने देना है ॥ २०४–२०५ ॥ साता असाता वेदनीय कर्मका स्वभाव सुख दुःख अनुभव कराना है ॥२०६॥ दर्शनमोहनीय कर्मका स्वभाव तत्त्वोंमें अश्रद्धान कराना है। चारित्र मोहनीय कर्मका स्वभाव असंमय–संयममें प्रवृत्ति न होने देना है ॥ २०७ ॥ आयु कर्मका स्वभाव भवधारण–जितना समय आयुकर्मका है उतने समयपर्यंत जीवको उसी भवमें अटका रखना है। नामकर्मका स्वभाव देव सूर्य आदि नाम धारण कराना है ॥२०८॥ गोत्र कर्मका स्वभाव ऊंच नीच गोत्रमें जन्म धारण कराना है और अंतरायकर्मका स्वभाव दान आदिमें विघ्न डाल देना है ॥ २०९ ॥ एवं प्रकृतिका लक्षण जो स्वभाव है उसका नियमित कालतक रहना स्थिति है अर्थात् जिसप्रकार बकरी गौ महिषके दुग्धके स्वाभाविक मीठेपनेकी प्रच्युति नहिं होती उसीप्रकार कर्मोंके स्वभावका च्युत न होना अर्थात् जिस कर्मकी जितने कालकी स्थिति बंधी है उतने कालतक रहना मध्यमें न खिर जाना स्थिति है ॥२१०–२११॥ जिसप्रकार बकरी और गौ आदिके दूधमें मीठापना तीव्र मध्यम आदि भावसे है अर्थात् बकरीके दूधसे कुछ अधिक चिकनापन और मीठापन गौके दूधमें हैं और उससे कुछ भैसकेमें। उसीप्रकार कर्मोंकी जो तीव्र मध्यम आदि सामर्थ्य है उसे अनुभाग–अनुभव कहते हैं ॥ २१२ ॥ और कर्मवर्गणारूप पुद्गल समूहोंका जो आत्माके प्रदेशोंके साथ एक क्षेत्रावगाहरूप परिणाम हो जाना उसका नाम प्रदेशबंध है ॥ २१३ ॥ प्रकृतिबंध और प्रदेशबंधमें मन वचन काय कारण हैं और स्थिति एवं अनुभागबंधमें कषाय कारण होते हैं ॥२१४॥ जिससे ज्ञान ढका जाय वा जो ज्ञानको ढके वह ज्ञानावरण है जिससे दर्शन ढका जाय वा जो दर्शनको ढके वह दर्शनावरण कर्म है ॥२१५॥ जिससे सुख वा दुःख जाना जाय वा जो सुख दुःखको जनावे वह वेदनीय है। जिससे मोह कराया जाय वा जो मोह करावे वह मोहनीय कर्म है ॥ २१६ ॥ जो नरक आदि गतियोंमें धारण करै वा जिससे नरक आदि गतियोंमें धारण कराया जाय वह आयुकर्म है। जिसके द्वारा जीवके देव मनुष्य आदि नाम पड़ें वा जो देव मनुष्य आदि नाम करानेवाला हो वह नाम कर्म है। ॥ २१७ ॥ जिसके द्वारा नीच और ऊंच कहाये जांय वा जो नीच ऊंच कहानेमें कारण हो वह गोत्र कर्म है और जो दान देते समय अंतराय करनेवाला हो वह अंतराय कर्म है ॥२१८॥ जिसप्रकार खाया हुआ अन्न वीर्य रक्त मज्जा आदि नानाप्रकारसे परिणत हो जाता है उसीप्रकार आत्माके एक परिणामसे ग्रहण किये हुये कर्मपुद्गल ज्ञानाव-

रण आदि नाना कर्मरूप परिणत हो जाते हैं ॥२१९॥ इसप्रकार ज्ञानावरण आदि मूल प्रकृतियोंके आठ भेद बतला दिये गये और इनकी उत्तर प्रकृतियोंके भेद इसप्रकार हैं—

ज्ञानावरणकी पांच, दर्शनावरणकी नौ, वेदनीयकी दो, मोहनीयकी अट्ठाईस, आयुकी चार, नामकर्मकी व्यालीस, गोत्रकी दो और अंतरायकी पांच प्रकृतियां है। मतिज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरण अवधिज्ञानावरण मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण ये पांच प्रकृति ज्ञानावरण कर्मकी हैं। आवरणका अर्थ परदा ढकना वा आड़ है। किसी मूर्तिपर परदा डाल देने पर जैसा उसका आकार नहिं दीखता उसीप्रकार आत्मामें जो ज्ञानशक्ति है वह ज्ञानावरणकर्मरूप परदेसे ढकी रहनेके कारण प्रगट नहिं हो सकती। यद्यपि मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरणके किंचित् क्षयोपशमसे थोड़ा बहुत ज्ञान सब जीवोंमें रहता है परंतु बांकीके सब ज्ञानोंको उक्त पांचों प्रकारके कर्म न्यूनाधिक रूपसे ढाके रहते हैं। मतिज्ञानको आवरण करनेवाला मतिज्ञानावरण कर्म है। श्रुतज्ञानको आवरण करनेवाला श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानको आवरण करनेवाला अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानको आवरण करनेवाला मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानको आवरण करनेवाला केवलज्ञानावरण कर्म है ॥२२०-२२३॥ यद्यपि अभव्यके मनःपर्यय और केवल ज्ञानकी व्यक्ति नहिं होती तथापि द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा उसके उन दोनोंकी शक्ति अवश्य है इसलिये अभव्यके मतिज्ञानावरण आदि पांचों कर्म सदा विद्यमान रहते हैं ॥२२४॥ भव्यके मनःपर्यय और केवलज्ञानकी व्यक्ति होती है इसलिये उसे व्यक्तिकी अपेक्षा भव्य कहते हैं अभव्यके व्यक्ति नहिं होती शक्ति ही विद्यमान रहती है इसलिये उसे अभव्य कहते हैं ॥ २२५ ॥ चक्षुर्दर्शनावरण अचक्षुर्दर्शनावरण अवधिदर्शनावरण केवलदर्शनावरण निद्रा निद्रानिद्रा प्रचला प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि ये नौ प्रकृति दर्शनावरण कर्मकी हैं। जिसके उदयसे आत्मा चक्षुरिंद्रियरहित एकेंद्रिय वा विकलेंद्रिय हो अथवा चक्षुरिंद्रिय सहित पंचेंद्रिय हो तो भी उसके नेत्रोंमें देखनेकी सामर्थ्य न हो अर्थात् अंधा काना व न्यूनदृष्टि हो उसे चक्षुर्दर्शनावरण प्रकृति कहते हैं। जिसके उदयसे चक्षुके अतिरिक्त अन्य इंद्रियोंसे दर्शन (सामान्य ज्ञान) न हो उसे अचक्षुर्दर्शनावरण प्रकृति कहते हैं। अवधिदर्शनसे जो सामान्य अवलोकन होता है उसको आच्छादन करनेवाली अवधिदर्शनावरण प्रकृति है। केवल दर्शनद्वारा जो समस्त दर्शन नहिं होने देती है उसे केवलदर्शनावरण प्रकृति कहते हैं। मद खेद और ग्लानि दूर करनेके लिये जो नींद ली जाती है वह निद्रादर्शनावरण प्रकृति है। निद्रापर निद्रा आना निद्रानिद्रा दर्शनावरण प्रकृति है। निद्रानिद्रादर्शनावरणके उदयसे एसी निद्रा आती है कि जीव नेत्रोंको नहिं उघाड़ सकता और जिससे शोक खेद मद आदिके कारण वैठे बैठे ही शरीरमें विकार उत्पन्न होकर पांचों इंद्रियोंके व्यापारका

अभाव होजाता है उसे प्रचलादर्शनावरण प्रकृति कहते हैं तथा इसके उदयमें जीव नेत्रोंको कुछ उघाडे हुयेही सो जाता है अर्थात् सोता सोता भी कुछ जानता है बैठा बैठाही घूमने लगजाता है नेत्र गात्र चलाया करता है और देखते हुये भी कुछ नहिं देखता है। जिसके उदयसे मुखसे कुछ लार बहने लग जाय अंग उपांग चलायमान होते रहैं सुई आदि चुभानेपर भी चेत न हो उसै प्रचलाप्रचलादर्शनावरण प्रकृति कहते हैं। जिस निद्राके आने पर मनुष्य चैतन्य हो अनेक रौद्र कर्म कर लेता है और फिर वे होश हो जाता हैं तथा निद्रा छूटनेपर उसै मालूम नहिं रहता है कि मैंने क्या क्या काम कर डाले उसै स्त्यानगृद्धिदर्शनावरण प्रकृति कहते हैं ॥ २२६–२२९ ॥ सातावेदनीय और असातावेदनीय ये दो वेदनीय कर्मकी प्रकृति हैं। जिसके उदयसे शारीरिक मानसिक अनेक प्रकार सुखरूप सामग्री मिले उसै सातावेदनीय कहते हैं। जिसके उदयसे दुःखदायक सामग्रीकी प्राप्ति हो वह असातावेदनीय प्रकृति कही जाती है ॥ २३० ॥ मोहनीयकर्म के दो भेद हैं–दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीयके सम्यक्त्व मिथ्यात्व और सम्यक्मिथ्यात्व ये तीन भेद हैं। जिसके उदयसे सर्वज्ञभाषित मार्गसे पराङ्मुखता, तत्त्वार्थश्रद्धानमें निरुत्सुकता वा निरुद्यमता और हित अहितकी परीक्षामें असमर्थता होती है वह मिथ्यात्व प्रकृति है। जब शुभ परिणामके प्रभावसे मिथ्यात्वका रस हीन होजाता है और वह शक्तिके घटनेसे असमर्थ होकर आत्माके श्रद्धानको नहिं रोक सकता है अर्थात् सम्यक्त्वको नहि विगाड़ सकता है तब जिसका उदय होता है वह सम्यक्त्व प्रकृति है और जिसके उदयसे तत्त्वोंके श्रद्धानरूप अश्रद्धानरूप दोनोंप्रकारके भाव कोंदोमें मदशक्तिके समान वा दही गुड़के मिले हुये स्वादके समान होते हैं उसे सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति कहते हैं ॥ २३१–२३३ ॥ चारित्र मोहनीयके मूल भेद दो हैं–नोकषाय (अकषाय) वेदनीय और कषायवेदनीय। हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुंवेद और नपुंसकवेद ये नौ भेद नोकषाय वेदनीयके हैं। जिसके उदयसे हँसी आवे उसे हास्य प्रकृति कहते हैं। जिसके उदयसे विषयोंमें उत्सुकता वा आसक्तता हो सो रति है। रतिसे उलटी अरति है। जिसके उदयसे सोच व चिंता हो वह शोक है। जिसके उदयसे उद्वेग प्रकट हो वह भय है। जिसके उदयसे अपने दोषोंका आच्छादन करना हो और अन्यके कुल शील आदिमें दोष प्रकट करना हो अथवा अवज्ञा तिरस्कार व ग्लानिरूप भाव हों वह जुगुप्सा है। जिसके उदयसे पुरुषसे रमनेकी इच्छा हो वह स्त्रीवेद है। स्त्रीसे रमनेकी इच्छा हो सो पुरुषवेद है और स्त्री पुरुष दोनोंसे रमनेके भाव हों वह नपुंसकवेद है। तथा कषायवेदनीयके सोलह भेद हैं–अनंतानुबंधी–क्रोध मान माया लोभ, अप्रत्याख्यान–क्रोध मान माया लोभ, प्रत्याख्यान–क्रोध मान माया लोभ और संज्वलन–क्रोध मान

माया लोभ । "जिसके उदयसे अपने और परके घात करनेके परिणाम हों तथा परके उपकार करनेके अभावरूप भाव वा क्रूरभाव हों सो क्रोध कषाय है । जाति कुल बल ऐश्वर्य विद्या रूप तप और ज्ञानादिके गर्वसे उद्धतरूप तथा अन्यसे नम्रीभूत न होने रूप परिणाम, मान कषाय है । अन्यके ठगनेकेलिये जो कुटिलताकी जाती है सो माया है और अपने उपकारक द्रव्योंमें जो अभिलाषा होती है सो लोभ है । इन चारोंमें प्रत्येकके शक्तिकी अपेक्षासे तीव्रतर, तीव्र, मंद और मंदतर ऐसे चार चार भेद हैं" । अनंतसंसारका कारण जो मिथ्यात्व है उसके साथ रहनेवाले—सम्यक्त्वके घात करनेवाले परिणामोंको अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ कहते हैं । जिनके उदयसे आत्मा हिंसा झूठ आदिका त्याग न कर सके उन परिणामोंको अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ कहते हैं और जिनके उदयसे जीव संयम—महाव्रत न धारण कर सके वे प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ नामक परिणाम हैं और जो संयमके साथ साथ प्रकाशमान रहैं एवं जिनके उदयसे यथाख्यात चारित्र न हो वे संज्वलन क्रोध मान माया लोभ हैं ॥२३४–२४१॥ नरकायु तिर्यंचायु मनुष्यायु और देवायु ये चार प्रकृति आयु कर्मकी हैं । जिसके सद्भावसे आत्मा नरकादि गतियोंमें जीवे और अभावसे मरणको प्राप्त हो होजाय उसे आयुकर्म कहते हैं ॥ २४२ ॥ गति[१] जाति[२] शरीर[३] अंगोपांग[४] निर्माण[५] बंधन[६] संघात[७] संस्थान[८] संहनन[९] स्पर्श[१०] रस[११] गंध[१२] वर्ण[१३] आनुपूर्व्य[१४] अगुरुलघु[१५] उपघात[१६] परघात[१७] आतप[१८] उद्योत[१९] उच्छ्वास[२०] विहायोगति[२१] प्रत्येकशरीर[२२] साधारणशरीर[२३] त्रस[२४] स्थावर[२५] सुभग[२६] दुर्भग[२७] सुस्वर[२८] दुःस्वर[२९] शुभ[३०] अशुभ[३१] सूक्ष्म[३२] बादर[३३] पर्याप्ति[३४] अपर्याप्ति[३५] स्थिर[३६] अस्थिर[३७] आदेय[३८] अनादेय[३९] यशस्कीर्ति[४०] अयशस्कीर्ति[४१] और तीर्थंकर[४२] ये ब्यालीस प्रकृति नाम कर्मकी हैं । जिसके उदयसे जीव दूसरे भवमें जाय उसका नाम गति है और उसके नरकगति तिर्यंचगति देवगति और मनुष्यगति ये चार भेद हैं । जिसके कारण आत्मा नरकमें जाय उसे नरकगति नाम कर्म, जिसके उदयसे तिर्यंचयोनिमें जाय उसे तिर्यग्गति नाम कर्म, जिसके उदयसे मनुष्य जन्मको प्राप्त हो उसे मनुष्यगति नाम कर्म और जिसके उदयसे देव पर्यायको प्राप्त हो उसे देवगति नाम कर्म कहते हैं ॥२४३–२४४॥ उक्त नरकादिगतियोंमें जो अविरोधी समान धर्मोंसे आत्माको एक रूप करता है वह जाति नाम कर्म है और उसके एकेंद्रिय जाति नाम कर्म, द्वींद्रिय जाति नाम कर्म, त्रींद्रियजातिनामकर्म चतुरिंद्रियजातिनाम कर्म, और पचेंद्रिय जातिनाम कर्म ये पांच भेद हैं । जिसके उदयसे एकेंद्रियजाति होय वह एकेंद्रियजाति नामकर्म, जिसके उदयसे द्वींद्रिय जाति हो वह द्वींद्रिय जाति नाम कर्म, जिसके उदयसे त्रींद्रियजाति हो वह त्रींद्रिय जातिनाम कर्म, जिसके उदयसे चतुरिंद्रिय जाति हो वह चतुरिंद्रियजाति नामकर्म और जिसके उदयसे पंचेंद्रिय जाति हो वह पंचेंद्रिय जातिनाम कर्म है ॥ २४५–२४६ ॥ जिसके उदयसे शरीरकी रचना होती है वह शरीर नाम

कर्म है यह भी औदारिकशरीर वैक्रियिकशरीर आहारकशरीर तैजसशरीर और कार्माण-शरीरके भेदसे पांच प्रकारका है। जिसके उदयसे औदारिक शरीरकी रचना हो वह औदारिक शरीर, जिसके उदयसे वैक्रियिक शरीरकी रचना हो वह वैक्रियिक शरीर, जिसके उदयसे आहारक शरीरकी रचना हो वह आहारक शरीर जिसके उदयसे तैजस शरीरकी रचना हो वह तैजस शरीर और जिसके उदयसे कार्माण शरीरकी रचना हो वह कार्माण शरीर नामका नोकर्म है ।।२४७।। जिसके उदयसे अंग और उपांगोंका भेद प्रगट हो वह अंगोपांग नामका नाम कर्म है मस्तक पीठ हृदय बाहु उदर जांघ हांथ और पांव इनको तो अंग कहते हैं और इनके ललाट नासिका आदि भागोंको उपांग कहते हैं। अंगोपांगके औदारिकशरीरांगोपांग वैक्रियिकशरीरांगोपांग और आहारकशरीरांगोपांग ये तीन भेद हैं। जिसके उदयसे अंग उपांगोंकी उत्पत्ति हो उसै निर्माण नामकर्म कहते हैं। निर्माण नाम कर्मके दो भेद हैं। स्थाननिर्माण और प्रमाणनिर्माण। जातिनाम कर्मके उदयकी सहायतासे जो नाक, कान आदिको योग्य स्थानमें निर्माण करता है वह स्थाननिर्माणनाम कर्म है और जो उन्हें योग्य लंबाई चौड़ाई आदिका प्रमाण लिये रचना करता है सो प्रमाणनिर्माण नाम कर्म है ।।२४८-२४९।। जिसके उदयसे शरीर नाम कर्मसे ग्रहण किये हुये आहार वर्गणाके पुद्गलस्कंधोंके प्रदेशोंका मिलना हो वह बंधन नाम कर्म पांच प्रकारका है—औदारिकबंधन नामकर्म, वैक्रियिकबंधन नामकर्म, आहारकबंधन नाम कर्म, तैजसबंधन नामकर्म, और कार्माणबंधन नामकर्म। जिसके उदयसे औदारिक बंध हो सो औदारिकबंधन नामकर्म है। जिसके उदयसे वैक्रियिक बंध हो वह वैक्रियिकबंधन नामकर्म है। जिसके उदयसे आहारकबंध हो सो आहारक बंधन नामकर्म है। जिसके उदयसे तैजस बंध हो वह तैजस बंधन नामकर्म है। और जिसके उदयसे कार्माण बंध हो वह कार्माणबंधन नामकर्म है ।। २५० ।। जिसके उदयसे औदारिक आदि शरीरोंका छिद्ररहित अन्योन्य प्रदेशानुप्रवेशरूप संघटन (एकता) हो उसै संघात नामकर्म कहते हैं। यह भी औदारिकसंघात, वैक्रियिकसंघात, आहारकसंघात, तैजससंघात, और कार्माण संघातके भेदसे पांच प्रकारका है। जिसके उदयसे औदारिक शरीरमें छिद्र रहित संधियां (जोड़) हों वह औदारिक संघात है। जिसके उदयसे वैक्रियिक शरीरमें संघात हो वह वैक्रियिक संघात है, जिसके उदयसे आहारक शरीरमें संघात हो वह आहारकसंघात है। जिसके उदयसे तैजस शरीरमें संघात हो वह तैजससंघात है और जिसके उदयसे कार्माण शरीरमें संघात हो वह कार्माणसंघात है ।। २५१ ।। जिसके उदयसे शरीरकी आकृति (आकार) उत्पन्न हो उसै संस्थान नाम कर्म कहते हैं और इसके समचतुरस्रसंस्थाननाम कर्म, न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान नाम कर्म, स्वातिसंस्थान नामकर्म,

कुब्जकसंस्थान नाम कर्म, वामनसंस्थान नाम कर्म, और हुंडकसंस्थान नामकर्म ये छै भेद हैं । जिसके उदयसे ऊपर नीचे मध्यमें समान विभागसे शरीरकी आकृति उत्पन्न हो वह समचतुरस्रसंस्थान नाम कर्म है । जिसके उदयसे शरीरका नाभिके नीचेका भाग वटवृक्षके समान पतला हो और ऊपरका स्थूल-मोटा हो वह न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान नामकर्म है । जिसके उदयसे शरीरके नीचेका भाग स्थूल-मोटा हो और ऊपरका पतला हो उसै स्वातिसंस्थान नाम कर्म कहते हैं । जिसके उदयसे पीठके भागमें बहुतसे पुद्गलोंका समूह हो अर्थात् कुबड़ा शरीर हो वह कुब्जकसंस्थान नामकर्म है । जिसके उदयसे शरीरके अंग उपांग कहींके कहीं छोटे बड़े वा संख्यामें न्यूनाधिक हों विषम वैडोल आकारका शरीर हो वह हुंडक संस्थान नाम कर्म है ॥२५२-२५३॥ जिसके उदयसे अस्थि पंजर आदि (हाड आदि) के वंधनोंमें विशेषता हो वह संहनन नामकर्म है और यह वज्रवृषभनाराचसंहनन नामकर्म, वज्रनाराचसंहनन नामकर्म, नाराचसंहनन नामकर्म, अर्धनाराचसंहनन नामकर्म, कीलकसंहनन नामकर्म और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन नाम कर्मके भेदसे छै प्रकार है । नसोंसे हाड़ोंके वंधनोंका नाम ऋषभ वा वृषभ है, नाराच नाम कीलनेका है और संहननका अर्थ हाड़ोंका समूह है । सो जिस कर्मके उदयसे वृषभ (वेष्टन) नाराच (कील) और संहनन (अस्थि पंजर) ये तीनों वज्रके समान अभेद्य हों उसै वज्रवृषभनाराचसंहनन नाम कर्म कहते हैं । जिसके उदयसे नाराच और संहनन तो वज्रमय हों और वृषभ सामान्य हो वह वज्रनाराचसंहनन नाम कर्म है । जिसके उदयसे हाड़ तथा संधियोंकी कीले तो हों परंतु वज्रमय न हों और वज्रमय वेष्टन भी न हो सो नाराचसंहनन नाम कर्म है । जिसके उदयसे हाड़ोंकी कीलियां अर्धकीलित हों अर्थात् एक ओर तो कीली हों दूसरी ओर न हों वह अर्धनाराचसंहनन नाम कर्म है । जिसके उदयसे हाड़ परस्पर कीलित हों सो कीलकसंहनन नाम कर्म है और जिसके उदयसे हाड़ोंकी संधियां तो कीलित न हों परंतु नस स्नायु और मांससे वंधी हों वह असंप्राप्तसृपाटिका संहनन नामकर्म है ॥२५४-२५५॥ जिसके उदयसे शरीरमें स्पर्शगुण प्रगट हो उसे स्पर्श नाम कर्म कहते हैं और उसके कर्कशस्पर्श नामकर्म, मृदुस्पर्श नामकर्म, गुरुस्पर्श नामकर्म, लघुस्पर्श नामकर्म, स्निग्धस्पर्श नामकर्म, रूक्षस्पर्श नामकर्म, शीतस्पर्श नामकर्म, और उष्णस्पर्श नामकर्म ये आठ भेद हैं ॥ २५६-२५७ ॥ जिसके उदयसे देहमें रस उत्पन्न हो वह रस नाम कर्म है और वह तिक्तरस नामकर्म, कटुरस नामकर्म, कषायरस नामकर्म, आम्लरस नामकर्म और मधुररस नामकर्मके भेदसे पांच प्रकारका है ॥ २५८ ॥ जिसके उदयसे शरीरमें गंध प्रगट हो वह गंध नामकर्म है । यह दो प्रकारका है-एक सुगंधनाम कर्म, दूसरा दुर्गंध नाम कर्म ॥ २५९ ॥ जिसके उदयसे शरीरमें वर्ण (रंग) उत्पन्न

हो वह वर्ण नाम कर्म है और इसके शुक्लवर्णनामकर्म, कृष्णवर्ण नाम कर्म, नीलवर्ण नामकर्म, रक्तवर्ण नामकर्म और पीतवर्ण नामकर्म इसप्रकार-पांच भेद हैं ॥ २६० ॥ पूर्वायुके नाश होजानेपर, पूर्वके निर्माण नाम कर्मकी निवृत्ति होनेपर विग्रहगतिमें जिसके उदयसे पूर्वके तैजस कार्माण शरीरका विनाश न हो उसे आनुपूर्व्य नाम कर्म कहते हैं और इसके नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य नामकर्म, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य नाम कर्म, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्य नामकर्म और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य नामकर्म ये चार भेद हैं। जिससमय मनुष्य व तिर्यंचकी आयु पूर्ण हो और आत्मा शरीरसे पृथक् होकर नरकभवके जानेके लिये उन्मुख हो उससमय जिसके उदयसे आत्माके प्रदेश पूर्व शरीरके आकारके रहते हैं उसे नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य कहते हैं इसकर्मका उदय विहायोगतिमें ही होता है इसीप्रकार शेष तीनों आनुपूर्व्योंमें भी समझ लेना चाहिये। इसकर्मका उदयकाल जघन्य एक समय, मध्यम दो समय और उत्कृष्ट तीन समय मात्र है ॥२६१॥ जिसके उदयसे जीवोंका शरीर लोहपिंडके समान भारीपनके कारण नीचे नहिं पड़जाता है और आककी रुईके समान हलकेपनेसे ऊपर उड़ भी नहिं जाता है उसे अगुरुलघु नाम कर्म कहते हैं। यहांपर शरीरसहित आत्माके संबंधमें अगुरुलघु प्रकृति मानी गई है अन्य द्रव्योंमें जो अगुरुलघुत्व है वह स्वाभाविक गुण है ॥ २६२ ॥ जिसके उदयसे शरीरके अवयव ऐसे होते हैं कि उनसे उसीका बंधन वा घात हो जाता है उसे उपघात नामकर्म कहते हैं। जिसके उदयसे पैने सींग नख वा डंक इत्यादि परको घाव करनेवाले अवयव होते हैं वह परघात नामकर्म है ॥ २६३ ॥ जिसके उदयसे सूर्यके समान आतपकारी शरीर हो वह आताप नामकर्म है 'इस कर्मका उदय सूर्यके विमानमें जो बादर पर्याप्त जीव पृथ्वीकायिक मणिस्वरूप होते हैं उन्हींके होता है अन्यके नहीं' ॥ २६४ ॥ जिसके उदयसे उद्योतरूप शरीर होता है वह उद्योत नामकर्म है और इसका उदय चंद्रमाके विमानके पृथ्वीकायिक जीवोंके तथा आगिया (पटवीजना जुगनू) आदि जीवोंके होता है ॥ २६५ ॥ जिसके उदयसे शरीरमें उच्छ्वास हो वह उच्छ्वास नामकर्म है। जिसके उदयसे आकाशमें गमन हो वह विहायोगति नामकर्म है। 'यह प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगतिके भेदसे दो प्रकारका है। जो हाथी बैल आदिकी गतिके समान सुंदर गमनका कारण होता है वह तो प्रशस्तविहायोगति नामकर्म है और जो ऊंट गर्धभ आदिके समान असुंदर गमनका कारण होता है वह अप्रशस्तविहायोगति नामकर्म है ॥ २६६ ॥ जिसके उदयसे एक शरीर एक आत्माके भोगनेका कारण हो उसे प्रत्येक शरीरनामकर्म कहते हैं ॥ २६७ ॥ जिसके उदयसे एक शरीर बहुतसे जीवोंके उपभोगनेका कारण हो उसे साधारण शरीर नामकर्म कहते हैं "जिन अनंत जीवोंके आहार आदि चार पर्याप्ति

जन्म मरण श्वासोच्छ्वास उपकार और उपघात एक ही कालमें होते हैं वे साधारण जीव हैं–जिस कालमें आहार आदि पर्याप्ति जन्म मरण श्वासोच्छ्वास आदिको एक जीव ग्रहण करता है उसीकालमें दूसरे भी अनंत जीव ग्रहण करते हैं। ये साधारण जीव वनस्पति कायमें होते हैं अन्य स्थावरोंमें नहि होते इनके साधारणशरीर नाम कर्मका उदय रहता है" ॥ २६८॥ जिसके उदयसे आत्मा द्वींद्रिय आदिमें जन्म लेता है वह त्रस नाम कर्म है। जिसके उदयसे जीव पृथ्वी अप् तेज वायु और वनस्पतिकायमें जन्म धारण करता है वह स्थावर नाम कर्म है ॥ २६९ ॥ जिसके उदयसे अन्यको प्रीति उत्पन्न हो अर्थात् दूसरेके परिणाम देखते ही प्रीतिरूप होजांय उसै सुभग नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदयसे रूपादि गुणोंसे युक्त होनेपर भी दूसरोंको अप्रीति उत्पन्न हो, बुरा मालूम हो उसै दुर्भग नाम कर्म कहते हैं ॥ २७० ॥ जिसके उदयसे मनोज्ञस्वरकी अर्थात् सबको प्यारे लगनेवाले शब्दकी प्राप्ति हो उसै सुस्वर नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदयसे अमनोज्ञ स्वरकी प्राप्ति हो उसै दुःस्वर नाम कर्म कहते हैं ॥ २७१ ॥ जिसके उदयसे मस्तक आदि अवयव रमणीय हों–देखनेमें सुंदर जान पड़ते हों वह शुभनाम कर्म है। जिसके उदयसे मस्तक आदि अवयव रमणीय न हों उसै अशुभ नाम कर्म कहते हैं ॥ २७२ ॥ जिसके उदयसे ऐसा सूक्ष्म शरीर प्राप्त हो जो अन्य जीवोंके उपकार वा घात करनेमें कारण न हो पृथ्वी जल अग्नि पवन आदिसे जिसका घात न हो और जो पहाड़ आदिमें प्रवेश करतेहुये भी न रुकसके उसै सूक्ष्मशरीर नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदयसे अन्यको रोकनेयोग्य वा अन्यसे रुकने योग्य स्थूलशरीर प्राप्त हो उसै बादरशरीर नाम कर्म कहते हैं ॥ २७३ ॥ जिसके उदयसे आहार आदि पर्याप्ति पूर्ण करता है उसै पर्याप्ति नामकर्म कहते हैं और इसके आहार पर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इंद्रियपर्याप्ति, प्राणापानपर्याप्ति भाषापर्याप्ति और मनःपर्याप्ति ये छै भेद हैं। जिसके उदयसे जीव छहो पर्याप्तियोंमें एक भी पर्याप्ति पूर्ण न करसके उसै अपर्याप्ति नाम कर्म कहते हैं ॥ २७४–२७५ ॥ जिसके उदयसे रस आदि धातु और उपधातु अपने अपने स्थानमें स्थिरताको प्राप्त हों दुष्कर उपवास आदि तपश्चरणसे भी अंग उपांगोंमें स्थिरता बनी रहै, रोग नहिं होवे वह स्थिर नाम कर्म है। रस, रुधिर, मांस, मेद, हाड़, मज्जा और शुक्र ये सात

१–यहापर यह प्रश्न हो सकता है कि प्राणापानपर्याप्ति नाम कर्मके उदयका जो उदरसे निकलना वा प्रवेश होना फल है वही उच्छ्वास कर्मके उदयका है फिर इन दोनोंमें अतर क्या हुआ ? सो इसका उत्तर यह है कि–इन दोनों में इंद्रिय अतींद्रियका भेद है अर्थात् पंचेद्रिय जीवोंके सर्दी गर्मीके कारण जो स्वास निकलती है और जिसका शब्द सुन पडता है तथा मुंहके पास हाथ लेजानेपर जो स्पर्शसे मालूम होती है वह तो उच्छ्वास नाम कर्मके उदयसे होती है और जो समस्त ससारी जीवोके होती है इंद्रिय गोचर नहिं वह प्राणापान पर्याप्तिके उदयसे होती है। एकेंद्रिय जीवोंके भाषा और मनको छोडकर चार द्वींद्रिय त्रींद्रिय चौ इंद्रिय और असैनी पंचेद्रियके भाषा सहित पाच और सैनी पंचेद्रियके छहो पर्याप्ति होती हें ॥

धातु हैं, वात पित्त कफ शिरा स्नायु चाम और जठराग्नि ये सात उपधातु हैं। जिसके उदयसे किंचित् उपवास आदि करनेसे तथा किंचिन्मात्र सर्दी गर्मी लगनेसे अंगोपांग कृश होजांय-धातु उपधातुओंकी स्थिरता न रहै-रोग होजावै उसै अस्थिरनाम कर्म कहते हैं। जिसके उदयसे प्रभासहित शरीर हो वह आदेय नाम कर्म हैं और जिसके उदयसे प्रभारहित शरीर हो वह अनादेय नाम कर्म है ॥ २७६ ॥ जिसके उदयसे पुण्यरूप गुणोंकी ख्याति प्रगट हो उसै यशस्कीर्ति नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदयसे पाप रूप गुणोंकी ख्याति हो वह अयशस्कीर्ति नाम कर्म है ॥ २७७ ॥ और जिसके उदयसे अचिंत्य विभूतियुक्त तीर्थंकरपनेकी प्राप्ति हो उसे तीर्थंकर नामकर्म कहते हैं। ॥ २७८ ॥ ऊंच गोत्र और नीच गोत्र ये दो प्रकृति गोत्र कर्मकी हैं। जिसके उदयसे लोक पूज्य इक्ष्वाकु आदि उच्च कुलोंमें जन्म हो उसे उच्च गोत्र कहते हैं और जिसके उदयसे निंद्य दरिद्री अप्रसिद्ध दुखोंसे आकुलित चांडाल आदिके कुलमें जन्म हो वह नीच गोत्र है ॥२७९॥ दान लाभ भोग उपभोग और वीर्य इन पांच शक्तियोंमें विघ्न करनेवाला अर्थात् उन्हैं रोकनेवाला पांच प्रकारका अंतराय कर्म है। जिसके उदयसे चाहै तो भी दान न करसके उसे दानांतराय कर्म कहते हैं। इच्छा रहते भी जिसके उदयसे लाभ न हो सके वह लाभांतराय कर्म है। जिसके उदयसे भोग किया चाहै तथापि भोगनेमें समर्थ न हो उसे भोगांतराय कर्म कहते हैं जिसके उदयसे उपभोग करनेमें समर्थ न हो उसे उपभोगांतराय कर्म कहते हैं और जिसके उदयसे किसी कार्यके करनेके लिये उत्साहित होनेपर भी उत्साह भ्रष्ट हो—कार्य करनेकी शरीरमें सामर्थ्य न होय वह वीर्यांतराय कर्म है। गंध इत्र पुष्प स्नान तांबूल अंगराग भोजन पानादिक जो एक ही बार भोगे जाते हैं भोग हैं और शय्या आसन स्त्री आभरण हाथी घोड़ा आदि जो वारंवार भोगनेमें आते हैं वे उपभोग हैं ॥२८०-२८२॥ उत्कृष्ट और जघन्यके भेदसे आठ कर्मोंकी स्थिति इसप्रकार है—

ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय और अंतराय इन चार कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरकी है। मोहनीय कर्मकी सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरकी, नाम एवं गोत्रकी वीस कोड़ाकोड़ी सागरकी है और इस उत्कृष्ट स्थितिका बंध संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्तके होता है ॥ २८३-२८५ ॥ तथा आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरकी है। वेदनीय कर्मकी जघन्य स्थिति वारहमुहूर्तकी है। नाम और गोत्रकी जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त है और वाकीके ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय अंतराय और आयुकर्मोंमें प्रत्येककी जघन्य स्थिति अंतर्मूहूर्त है ॥ २८६-२८७ ॥ तीव्र मंद आदि कषायरूप जिन भावोंसे कर्मोंका आस्रव हुआ है उसके अनुसार कर्मोंकी फलदायक शक्तिकी तीव्रता मंदता आदि होनेको विपाक-अनुभव-अनुभाग कहते हैं ॥ २८८ ॥ द्रव्य क्षेत्र काल

भाव और भवके भेदसे जो विशिष्ट पाक हो वह अनुभव है ॥ २८९ ॥ पुण्य प्रकृतियोंका शुभ अनुभव प्रकृष्ट अनुभव और पाप प्रकृतियोंका अशुभ अनुभव निकृष्ट अनुभव कहा जाता है ॥ २९० ॥ जिससमय परिणामोंकी विशेषतासे अशुभ प्रकृतियोंका अनुभव निकृष्ट होता है उससमय अन्य प्रकृतियोंका अनुभव निकृष्ट समझना चाहिये । ॥ २९१ ॥ ज्ञानावरण आदि मूल प्रकृतियोंका अनुभव स्वयं होता है और उत्तर प्रकृतियोंका मोह और आयुको छोड़कर समान जातीय दो कर्मोंके मिलनेपर अनुभव होता हैं ॥ २९२ ॥ कर्मोंकी विपाकसे और तपसे निर्जरा होती है अर्थात् कर्म फल देकर आत्मासे खिर जाते हैं। निर्जराके दो भेद हैं-विपाकजा और अविपाकजा ॥ २९३ ॥ संसारमें भ्रमण करते हुये जीव द्वारा उपार्जन किये हुये कर्मोका उदयकाल आनेपर क्रमसे अपने आप झड़जाना विपाकजा निर्जरा है। यह सविपाकनिर्जरा चारो गतियोंमें रहनेवाले जीवोंके सदा हुआ करती है और जिसप्रकार कचे आम्र आदिको असमयमें ही पालमें रखकर पका दिया जाता है उसीप्रकार कर्मोंके उदयकालके आये विना ही उन्हें तपश्चरण आदि करके अनुदय अवस्थामें ही झड़ा देना अविपाक निर्जरा है ॥२९४-२९५ ॥ घनांगुलके असंख्येयभागप्रमित आत्माके प्रदेशोंमें जो अनंतानंत पुद्गल परमाणुओंका एक क्षेत्रावगाह रूप मिलजाना है वह प्रदेश बंध है और इस प्रदेशबंधमें रहनेवाले कर्मपुद्गल एक दो तीन समयको आदि लेकर संख्यात समय पर्यंत विद्यमान रहते हैं ॥ २९६-२९७ ॥ साता वेदनीय शुभ आयु शुभनाम और शुभगोत्र ये पुण्य रूप प्रकृति हैं-इनका बंध पुण्य स्वरूप होता है और शेष प्रकृतियोंका बंध पाप स्वरूप होता है अर्थात्-आठकर्मोमें ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अंतराय ये चार कर्म घातिया कर्म हैं। ये चारो कर्म आत्माके अनुजीवी गुणोंका घात करते हैं इसकारण इनको घातिया कर्म कहते हैं और वेदनीय आयु नाम और गोत्र ये चारकर्म आत्माके गुणोंका घात नहिं करते इसकारण इनको अघातिया कर्म कहते हैं। घातिया कर्म तो चारो ही अशुभ (पाप) स्वरूप हैं परंतु अघातिया पुण्य पाप दोनों स्वरूप हैं उनकी अड़सठ प्रकृतियां पुण्य स्वरूप हैं वे इसप्रकार हैं-१ सातावेदनीय २ तिर्यंचायु ३ मनुष्यायु ४ देव आयु और ५ उच्च गोत्र ये पांच और नामकर्मकी त्रेसठ-१ मनुष्यगति २ देवगति ३ पंचेंद्रिय जाति ४ निर्माण ५ समचतुरस्र संस्थान ६ वज्रवृषभनाराच संहनन ७ मनुष्यगत्यानुपूर्वी ८ देवगत्यानुपूर्वी ९ अगुरुलघु १० परघात ११ उच्छ्वास १२ आतप १३ उद्योत १४ प्रशस्तविहायोगति १५ प्रत्येकशरीर १६ त्रस १७ सुभग १८ सुस्वर १९ शुभ २० वादर २१ पर्याप्ति २२ स्थिर २३ आदेय २४ यशःकीर्ति २५ तीर्थकरत्व और २६-३० पाच शरीर ३१-३३ तीन अंगोपांग ३४-३८ पांच वंधन ३९-४३ पांच संघात ४४-५१ आठ प्रशस्त स्पर्श ५२-५६ पांच प्रशस्त रस

५७-५८ दो गंध और ५९-६३ पांच प्रशस्त वर्ण तथा पापस्वरूप प्रकृतियां ज्ञानावरणकी पांच, दर्शनावरणकी नव, मोहनीयकी अट्ठाईस, अंतरायकी पांच, असातावेदनीय, नरकायु, नीचगोत्र, नामकर्मकी पचास (जिनमें स्पर्श आदि वीस अप्रशस्त प्रकृतियां, नरकगति तिर्यग्गति, एकेंद्रियादि जाति चार, संस्थान पांच, संहनन पांच, नरकगत्यानुपूर्व्य तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, उपघात, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्ति, साधारणशरीर, अशुभ, दुर्भग, अस्थिर, दुःस्वर, अनादेय और अयशस्कीर्ति) इसप्रकार सब मिलकर एकसौ हैं ॥ २९८ ॥ आस्रवोंका जो निरोध करना है सो संवर है और वह भाव संवर, द्रव्य संवरके भेदसे दो प्रकारका है। जो संसारके कारण भूत आचरणों का रुकना है वह भाव संवर है और जो पुद्गलमय कर्मोंके आस्रवका रुकना है सो द्रव्य संवर है एवं वह गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षा परीषहजय इनसे होता है। संसारमें रुलानेवाले प्रवृत्तिरूप भावोंसे आत्माकी रक्षा करनेको अर्थात् उनके न होने देनेको गुप्ति कहते हैं। किसी जीवको कुछ पीड़ा न हो जाय इस विचारसे यत्नाचाररूप प्रवृत्ति करना समिति है। अपने इष्ट-सुखके स्थानमें जो धरै वा पहुंचा देवे वह धर्म है। शरीर आदि परद्रव्योंके और आत्माके स्वरूपके चिंतवन करनेको अनुप्रेक्षा कहते हैं। क्षुधा तृषा आदिकी वेदना होनेपर उसे कर्मोंकी निर्जराके लिये क्लेशरहित परिणामोंसे सहलेना परीषहजय है और संसारपरिभ्रमणकी कारणरूप क्रियाओंके त्याग करनेको चारित्र कहते हैं। मनोगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्तिके भेदसे गुप्ति तीन प्रकार है। ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेप और उत्सर्ग ये पांच समिति हैं। उत्तमक्षमा मार्दव आर्जव शौच सत्य संयम तप त्याग आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य ये दश धर्म हैं। अनित्य अशरण संसार एकत्व अन्यत्व अशुचित्व आस्रव संवर निर्जरा लोक बोधिदुर्लभ और धर्मस्वाख्यातत्व ये वारह भावना हैं। क्षुधा तृषा शीत उष्ण दंशमशक नाग्न्य अरति स्त्री चर्या निषद्या शय्या आक्रोश वध याचना अलाभ रोग तृणस्पर्श मल सत्कारपुरस्कार प्रज्ञा अज्ञान और अदर्शन ये वावीस परीषह हैं ॥ २९९-३०२ ॥ बंधके कारणोंके न रहनेसे और निर्जराके होनेसे समस्त कर्मोंका अत्यंत अभाव हो जाना मोक्ष है ॥ ३०३ ॥ इन जीव आदि पदार्थोंका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है, वास्तविकरूपसे जानना सम्यग्ज्ञान है और उस ज्ञान श्रद्धानके साथ अशुभप्रवृत्ति की निवृत्ति होना सम्यक्चारित्र है एवं ये तीनों मिलकर ही साक्षात् मोक्षके कारण हैं ॥३०४॥ जिन मनुष्योंके रत्नत्रय अभेद रूप है और शुद्धोपयोगकी मुख्यता है वे तो उसीभवसे निर्वाण चले जाते

---

१ स्पर्श आदि वीस प्रकृतियां प्रशस्त रूप भी हैं अप्रशस्त रूप भी हैं। प्रशस्त तो पुण्य प्रकृतियोंमें और अप्रशस्त पाप प्रकृतियोंमें ग्रहण की हैं। जैसे नीमके पत्तेका कटुकरस ऊंटको अच्छा लगता है पर मनुष्य आदिको बुरा लगता है इसीप्रकार रूप आदिका भी दृष्टांत समझ लेना चाहिये।

हैं और जिनके भेद (व्यवहारमें) रूप रत्नत्रय और शुभोपयोगकी मुख्यता है वे स्वर्गके सुखोंका भलेप्रकार अनुभव कर सात आठ भवसे मोक्ष जाते हैं ॥ ३०५ ॥

इसप्रकार वारहो सभामें स्थित जीवोंने जब भगवान नेमीश्वरद्वारा प्रतिपादित मोक्ष मार्गका निर्दोष स्वरूप सुना तो सवोंने हाथ जोड़कर भगवानको नमस्कार किया ॥ ३०६ ॥ संसारसे भयभीत अनेक जीवोंने उससमय सम्यग्दर्शन धारण किया और वहुतोंने श्रावकव्रत और मुनिव्रत धारण किये ॥ ३०७ ॥ दो हजार राजा उसी समय दिगंवर दीक्षासे दीक्षित होगये। हजारों राजकन्याओं और रानियोंने आर्यिकाओंके व्रत धारण करलिये। शिवा (भगवान नेमीश्वरकी मा) रोहिणी (बलभद्रकी मा) देवकी और रुक्मिणी आदि रानियोंनेभी श्रावकके व्रत लिये ॥ ३०८-३०९ ॥ अनेक यदु और भोजवंशी सुकुमार राजा जैनधर्मके वेत्ता होगये और उन्होंने श्रावकके वारह व्रत धारण कर लिये ॥ ३१० ॥ इसप्रकार देव इंद्र और बलभद्र कृष्ण आदि महानुभाव भगवान नेमीश्वरकी पूजाकर और भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अपने अपने स्थान चले गये ॥ ३११ ॥ उससमय शरद ऋतुने भक्त लोकत्रयी (तीन लोकके जीवों) के समान भगवानके चरणोंका आश्रय लिया। क्योंकि-जिसप्रकार उससमय लोकत्रयीकी आशायें (कामना) विशद थीं-वहां कोई भी निंदित कामना करने वाला न था उसीप्रकार शरद ऋतुमें भी समस्त दिशायें निर्मल हो चुकीं थीं। लोकत्रयीने जिसप्रकार उससमय समस्त मंडल, ग्रह ताराओंके समान पुष्पोंसे व्याप्त, दूधके घड़ोंसे धोया गया मनोहर बना दिया था उसीप्रकार शरद ऋतुमें मेघ लापता होगये थे तारा और ग्रह स्पष्ट रूपसे देखनेमें आते थे इसलिये आकाश मंडल अतिशय सुंदर जान पड़ता था। जिसप्रकार लोकत्रयी बंधूक पुष्प और सप्तपर्ण जातिके सुगंधित पुष्पोंकी भगवानके ऊपर वर्षा करती थी उसीप्रकार उससमय शरद ऋतुमें बंधूक पुष्प खिल गये थे और सप्तपर्ण (सातपत्तेवाले) वृक्ष सुगंधित पुष्पोंसे लदवदा गये थे ॥३१२॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेन द्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथके चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंश पुराणमें भगवान नेमिनाथका उपदेश वर्णन करनेवाला अट्ठावनवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५८ ॥

उनसठवां सर्ग।

जिसप्रकार संसाररूपी समुद्रसे प्राणियोंके उद्धारार्थ भगवान पहिले अहमिंद्र स्वर्गसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुये थे उसीप्रकार समस्त जगतके संवोधनार्थ अब विहारकरनेकेलिये गिरनारसे उतरेंगे ऐसा जानकर कुवेरने 'जिस याचकको जिस चीजकी आवश्यकता हो वह निस्संकोच हो ले' ऐसी समस्त पृथ्वीपर अभीष्ट दानकी प्रतिदिन घोषणा करनी प्रारंभ करदी ॥ १-२ ॥ उससमय कामधेनुके समान अभीष्ट पदार्थ प्रदान करनेवाली भगवानके

विहारकी भूमि मणिमयी बनाई गई। सो ठीक ही है-भगवान उससमय जीवोंके मंगल करनेवाले उद्योगमें संलग्न थे इसलिये जो कुछ उनके लिये नवीन रचना हुई थी सब थोड़ी थी ॥३॥ जिससमय भगवान समस्त भूतों-जीवोंके हितकरनेमें उद्यत हुये उस समय पृथ्वी जल आदि समस्त भूत भी प्राणियोंके हितकारी बन गये-निष्कंटक पृथ्वी, अनुकूल पवन आदि होगयें इसलिये भगवानका समस्त लोकके लिये हितकारीपना अचिंत्य था ॥ ४ ॥ उससमय मेघके जलकी धाराके समान आकाशसे वसु (धन) वर्षा होने लगी और उससे पृथ्वीका वास्तविक नाम वसुंधरा (धन धारण करनेवाली) लोकमें विख्यात हुआ है यह जान पड़ने लगा ॥ ५ ॥ देवगण मस्तक नमाकर भगवानको नमस्कार करने लगे और भगवानकी प्रभाके अनुरागी बन समस्त दिशायें अपने तेजसे जगमगाने लगे ॥ ६ ॥ पूर्व और उत्तर ओर देवगण भगवानके चरण तले सुवर्ण कमलोंकी पंक्ति क्षेपण करते थे और वे कमल उससमय पृथ्वीके आभूषण सरीखे जान पड़ते थे ॥ ७ ॥ उन कमलोंके पत्र मनोहर पद्मराग मणिसे देदीप्यमान भांति भांतिके रत्नोंसे चित्र विचित्र थे और भक्तिरसका आस्वादन करने वाले समस्त देव असुर मनुष्य इंद्र इंद्राणीरूपी भ्रमरपंक्ति द्वारा सुरक्षित हो आकाश मंडलमें गमन करते थे ॥ ८-९ ॥ भांति भांतिके कमलोंसे देदीप्यमान परम पावन 'भगवानका' पद्मयान एक योजन पर्यंत विस्कंभसे प्रकाशमान था और उसके चौथाई भागमें कलियें फैली हुई थी ॥ १० ॥ इंद्रकी आज्ञानुसार भगवानके आगे आगे आठ प्रकारके मूर्तिधारी गुणों सरीखे शोभासे मंडित आठ प्रकारके वसु जातिके देव चलते थे और "प्रभो ! आप जयवंत रहैं प्रसन्न हों लोकके हित करनेके लिये यही समय है" इसप्रकार उन्नत ध्वनिपूर्वक भगवानको नमस्कार करते जाते थे ॥ ११-१२ ॥ आठ वसुओंके पीछे भगवानके पद्मयानपर चढ़कर पहुंचनेके लिये एक सिंधु (हाथी) गमन करता था और वह दर्शकोंको इसप्रकारकी भ्रांति कराता था मानो पृथ्वी वा पहाड़ ही उठा चला जा रहा है ॥ १३ ॥ जिससमय समस्त प्राणियोंके हितार्थ भगवान गमन करते थे उससमय उनके आगे २ धर्मचक्र चलता था और उसके पीछे तीनलोककी जनतारूपी संपदा चलती थी ॥ १४ ॥ भगवानके गमन समयमें मेघकी गंभीर ध्वनिके समान पटहकी ध्वनि होती चली जाती थी और उससे 'संसारमें ईति भीति आदिका अभाव हो, जीवोंको आनंद बढ़े' यह शब्द निकलता मालूम पड़ता था ॥ १५ ॥ उससमय समुद्रकी गंभीर गर्जनाके समान वीन वांसुरी मृदंग झालर शंख काहल आदि वादित्रोंके मंगलीक शब्द होते थे ॥ १६ ॥ उत्तमोत्तम कथा गीत और उन्नत हास्योंसे समस्त आकाश और पृथ्वी शब्दायमान होगई थी ॥ १७ ॥ आकाशमें किन्नरी मंजुल गान गातीं, अप्सरायें नृत्य करतीं और गंधर्व जातिके देव वाजे

वजाते और नांचते चलते थे ॥१८॥ वडे वड़े सज्जनोंसे वंदनीक देव सुर असुर जय २ शब्द कर भांति भांतिके मंगल स्तोत्रोंसे भगवानका स्तवन करते चले जाते थे ॥१९॥ उससमय चित्र विचित्र, चित्तको आनंद देने वाले, दिव्य, मनुष्योंके गीत और वाजोंने समस्त पृथ्वीतल शब्दायमान कर दिया था ॥ २० ॥ उससमय लोकपालगण दिशा और पृथ्वीकी वड़ी सावधानीसे रक्षा करते थे। सो ठीक ही था क्योंकि भृत्योंकी स्वामिसेवा यही है कि जो उन्हैं अधिकार सोंपा गया है उसकी यथायोग्य रक्षा करैं–लोकपाल भगवानके भक्त–सेवक थे और उन्हैं सब ओर की रक्षाका भार सोंप रक्खा था इसलिये यह उनका कर्तव्य था कि वे सब ओर रक्षा करते ॥ २१ ॥ देदीप्यमान दृष्टिके धारक अनेक देवगण हिंसामार्गके अनुयायियोंको दूर हटाते हुये आगे २ दौड़ते जाते थे ॥ २२ ॥ उससमय अतिशय प्रीतियुक्त समुद्र नानाप्रकारके देदीप्यमान रत्नोंसे शोभित तरंगरूपी हाथोंसे अंजली बांधकर तटरूपी मस्तकसे भगवानको नमस्कार करता मालूम पडता था ॥२३॥ लोकको आनंद प्रदान करने वाले भगवान नेमिनाथको उससमय हजारों जीव पद पद पर नमते और उठते थे इसलिये वे एक साथ पतन और उदयको प्राप्त होनेवाले लंबायमान हजारों सूर्योंकी उपमा धारण करते थे ॥ २४ ॥ जिससमय देवगण भगवानको मस्तक झुका २ नमस्कार करते थे उससमय उनके करोड़ों मुकुट जमीनपर लगजाते थे इसलिये उससमय पृथ्वी ऐसी जान पड़ती थी मानो उन करोड़ों कमलोंसे वह भगवानकी पूंजा कर रही है ॥२५॥ जिनका तेज समस्तलोकमें व्याप्त था ऐसे लौकांतिक देव भगवानके आगे आगे चलते थे और वे ऐसे जान पड़ते थे मानो साक्षात् भगवान जिनेंद्रकी मूर्त्ति ही हैं ॥२६॥ पद्मा और सरस्वती देवी अपने २ परिवारोंके साथ २ हाथमें मंगल द्रव्य और कमलोंको लेकर भगवान की प्रदक्षिणा करती २ आगे आगे चलीं जातीं थीं ॥ २७ ॥ 'हे भगवन्! इधर प्रसन्न हूजिये इधर प्रसन्न हूजिये' इसप्रकार कहकर भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हुआ इंद्र हाथ जोड़े आगे आगे अनेक देव तथा राजाओंके साथ २ चला जाता था ॥ २८ ॥ इसप्रकार भगवान नेमिनाथने तीन लोकके राजा और उनके परिवारोंसे मंडित हो लोकके उद्धार करनेके लिये तीन लोककी सारभूत विभूति धारण की ॥ २९ ॥ भव्यरूपी कमलोंके लिये अद्वितीय वंधु (सूर्य) पद्मकी ध्वजाके धारक, पवित्रात्मा भगवान जिससमय कमलोंपर गमन प्रारंभ करते थे उससमय 'हे नाथ! जयवंत रहो। हे समस्त जीवोंके इष्ट! आपकी जय हो। हे समस्तलोकके पितामह! आप जीवें। हे स्वयंभू! आपकी जय रहै। हे आत्मेश! आप विजयवान रहैं। हे देव! अच्युत! (अविनाशी) आप सदा जीते रहैं। हे समस्त जगतके वंधु! आपकी जय हो। हे समीचीन धर्मके नायक! आप सदा विजयवंत रहैं। हे सबके शरण भूत! आपकी जय हो। हे पुण्यस्वरूप! उत्तम! आप सदा

जयवान रहैं" इसप्रकार वार वार उठा हुआ गंभीर नाद समस्त पृथ्वी और आकाशको व्याप्त करता था और उस नादकी ध्वनि अपनी गंभीराईसे मेघकी ध्वनिकी तुलना करती थी ॥ ३०-३३ ॥ वे भगवान नेमिनाथ समस्त देवेंद्रोंसे पूजित समस्त लोकके मंगलस्वरूप थे और उनके चरण कमलोंपर इद्रोंके नीलमणिके बने हुये मुकुटरूपी भोंरे भ्रमण करते थे ॥ ३४ ॥ अपने कमलयानकी शोभासे समस्त जगतको आनंदित करने वाले, स्वच्छजलमें मुखकमलके प्रतिबिंबके समान आकाश मार्गमें कमलोंपर अपने चरण-कमलोंको रखते हुये भगवान मंद मंद रूपसे जीवोंपर दयाकर विहार करते थे ॥३५-३६॥ समस्त लोकके कल्याण करनेकेलिये विहार करनेवाले भगवान नेमिनाथके आगे राजमंडल, मार्गको शोभित करता हुआ गमन करता था और वह सूर्यके आगे चलता हुआ अरुण सारथि सरीखा जान पड़ता था ॥ ३७ ॥ जिसप्रकार सुवर्णके समान रूप धारण करनेवाली, मणियोंके भूषणोंसे भूषित, अपने स्वामीकी अनुगामिनी, पतिव्रता स्त्री प्रशंसाके योग्य गिनी जाती है उसीप्रकार स्वर्ण और मणियोंके भूषणोंसे मंडित, भगवानकी विभूति उनकी अनुगामिनी थी इसलिये प्रशस्य गिनी जाती थी ॥३८॥ जिसप्रकार मुनिगण शुद्ध क्रियाओंसे अपने चारित्रको मलरहित करते हैं उसीप्रकार भगवानके आगे पवनकुमार जातिके देव पवनके कोमल झोकोंसे मार्ग स्वच्छ करते जाते थे ॥ ३९ ॥ पवनकुमार देवों द्वारा स्वच्छ किये मार्गपर मेघकुमार जातिके देव सुगंधित जलका छिड़काव करते जाते थे और देदीप्यमान विजलीकी चमकसे समस्त दिशाओंको जगमगाते थे ॥ ४० ॥ जिससमय समीचीन मार्गके वेत्ता भगवान नेमीश्वर गमन करनेके लिये उद्यम करते थे उससमय देवगण जिनपर मत्त भोंरे मकरंदका आस्वादन कर गुंजार शब्द कर रहे थे ऐसे मंदार कल्पवृक्षोंके पुष्पोंकी वर्षा करते जाते थे ॥ ४१ ॥ गले हुये सोनेके रससे और उनमें जड़े हुये चित्र विचित्र रत्नोंसे उससमय मार्ग ज्योतिषी देवोंके मंडल सरीखा जान पड़ता था ॥ ४२ ॥ अपने विचित्र चित्र-कर्मकी कुशलताकी प्रसिद्धके इच्छुक गुह्यकजातिके देव भांति भांतिके पत्रोंको कुंकुमसे लिप्त करते जाते थे ॥ ४३ ॥ उससमय मार्गकी दोनों श्रेणियां केला नारियल ईखके वृक्ष और सुपारी आदिके वृक्षोंसे संपन्न थीं इसलिये ऐसा जान पड़ता था मानो दोनों ओर वाग लगे हुये हों ॥ ४४ ॥ मार्गमें बहुतसे सुंदर क्रीड़ामंदिर बने थे और वहां अतिशय प्रसन्नचित्त देव और मनुष्य अपनी रमणियोंके साथ२ नृत्य वादित्र आदिसे क्रीड़ा करते थे ॥ ४५ ॥ पदपदपर भोगभूमिके समान भोगियोंको इच्छानुसार भोग्य पदार्थ प्रदान करनेवाले स्थान बने थे और उनमें समस्त पदार्थ मौजूद थे-किसी भी पदार्थकी कमी न थी ॥ ४६ ॥ भगवानका मार्ग तीन योजनका विस्तीर्ण बनाया गया था और मार्गकी दोनों अंतः सीमा दो दो कोश चौड़ी थीं ॥ ४७ ॥ सुवर्णमयी, आठ

मंगल द्रव्योंसे युक्त मार्गपर तोरण दृष्टिगोचर होते थे और वे मार्गकी शोभाके कारण सरीखे जान पड़ते थे ॥ ४८ ॥ जगह जगह मार्गमें भोगियोंको अभीष्ट वस्तु प्रदान करनेवालीं विशाल दानशालायें बनीं थीं और वे भगवान नेमिनाथकी अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली मूर्तिमती दानशक्ति सरीखी जान पड़ती थीं ॥ ४९ ॥ तोरणोंके मध्यभागमें फेराती हुई उन्नत केलाओंकी ध्वजाओंसे समस्त मार्ग आच्छन्न हो रहा था और वहां सूर्यकी किरण तक भी नहि फटकने पाती थीं ॥ ५० ॥ जो देव वनके निवासी थे उन्होंने वनकी मंजरियोंके समूहसे पीले निजपुण्यके आकारके समान पुष्पमंडप तयार किया था ॥ ५१ ॥ यह मंडप रत्नोंकी चित्रविचित्र मालाओंसे शोभित भीतियेंासे मंडित, दो योजन विस्तृत था और उसके आस पास सूर्य और चंद्रमाकी कांतिके समान देदीप्यमान अनेक मंडल थे ॥ ५२ ॥ उस पुष्पमंडपके विशाल घंटाओंके और ध्वजाओंमें लगी लई छोटी छोटी घंटियोंके शब्दोंसे समस्त दिशायें शब्दायमान होगई थीं एवं आकाश मुक्तामालाओंसे जगमगा उठा था ॥ ५३ ॥ वह पुष्पमंडप अपनी उत्तम सुगंधिद्वारा खींचे गये भ्रमरोंकी पंक्तिसे व्याप्त था और आकाशमें भगवान नेमीश्वरका मूर्तिमान यश सरीखा जान पड़ता था ॥ ५४ ॥ उसके चारो ओर उन्नत स्तभोंके समान रमणीय, वीच वीचमें लगे हुये मूगोंसे अलंकृत बड़े बड़े मोतियोंकी चार माला लटक रहीं थी ॥ ५५ ॥ उस मंडपके मध्यमें दयाकी मूर्ति, समस्त-जीवोंका अहित नष्ट करनेवाले स्वयंभू भगवान नेमिनाथ समस्तलोकके हितके लिये गमन करते थे ॥ ५६ ॥ भगवानके पीछे भामंडल रहता था । उसमें प्राणिगणको अपने सात भवतकका पता लगता था और वह अपनी दीप्तिसे सूर्यकी तुलना करता था ॥ ५७ ॥ भगवानके मस्तकपर लगे हुये तीन छत्र तीन लोक सरीखे जान पड़ते थे और उनसे भगवान जिनेंद्र तीन लोकके स्वामी हैं यह वात प्रकट होती थी ॥ ५८ ॥ भगवानके चारो ओर अपने आप हजार चमर ढुलते जाते थे और वे ऐसे जान पड़ते थे मानों मेरुपर्वतके चारो ओर आकाशमें हंसोंकी पंक्तिही हो ॥ ५९ ॥ भगवानके पीछे ऋषिगण चलते थे चारो ओर देवगण थे और वसुजातिके देवोंसे मंडित इंद्र प्रतीहार वन आगे आगे चलता था ॥ ६० ॥ उससमय मंगलमयी तीन लोककी विभूतिके साथ २ भगवान जिनेंद्रकी केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी स्पष्ट रूपसे देखनेमें आती थी ॥ ६१ ॥ भगवान के साथ साथ रहनेवाले देव आदि का समस्त मंडल द्रव्योंसे युक्त था इसलिये मंगलमय भगवानकी यात्रा मंगलपूर्वक थी ॥ ६२ ॥ भगवानके साथ साथ अति देदीप्यमान और याचकोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवालीं शंख और पद्म नामकी निधियें थी और उनसे निरंतर रत्न और सुवर्णोंकी वर्षा होती जाती थी ॥ ६३ ॥ फणाओंमें लगी हुई देदीप्यमान पुण्यमयी मणिरूपी दीपकोंकी ज्योतिसे

युक्त नागकुमार जातिके देव चलते थे और वे अपनी मणियोंकी दीप्तिसे अज्ञानरूपी अंधकारको नाश करनेवाले केवलज्ञानरूपी दीपककी दीप्तिका अनुकरण करते थे ॥ ६४ ॥ समस्त अग्निकुमार जातिके देव धूपदानी हाथमें लिये गमन करते थे उनका गंध लोकके अंततक पहुंचता था और भगवान जिनेंद्रकी गंधकी सूचना देता था ॥६५॥ महामनोहर देदीप्यमान प्रभाके धारक चंद्र और सूर्य जातिके देव अपनी ही प्रभाके समान जगमगाते हुये दर्पणोंको लिये चलते थे ॥ ६६ ॥ संतापके दूर करनेवाले सुवर्णमयी छत्रोंसे उससमय ऐसा प्रतीत होता था मानो सर्वत्र सूर्यही सूर्य विद्यमान हैं । ॥ ६७ ॥ भगवानकी मूर्तिमान दयाके समान विजयध्वजायें परवादियोंको तर्जना देती थीं और ऐसी जान पड़ती थीं मानो भगवानके शरीरकी अंश ही थीं ॥ ६८ ॥ भगवानके आगे आगे वैभवी विजया वैजयंती देवियां गमन करती थीं सो ऐसी जान पड़ती थीं मानो तीनों लोकके नेत्रोंको प्रफुल्लित करनेवाली निर्मल चांदनी हैं ॥६९॥ भवनवासी ज्योतिषी व्यंतर देव और उनकी देवांगना बड़े प्रेमसे आठो रसोंको व्यक्त करतीं हुई भगवानके आगे नृत्य करतीं थीं ॥ ७० ॥ अपनी गंभीर और मधुर ध्वनिसे समस्त दिशाओंको व्याप्त करनेवाला और वर्षा ऋतुके मेघकी ध्वनिको जीतनेवाला आगे आगे नांदी (सूत्रधार) चलता था और समस्त रहस्य बतलाता था ॥ ७१ ॥ उग्र दीप्तिसे सूर्यकी दीप्तिको जीतनेवाला हजार अरारूपी किरणोंका धारक यति और देवोंके परिवारसे मंडित धर्मचक्र चलता था और उससे समस्त अंधकार नष्ट होता चला जाता था ॥७२॥ "यह भगवान तीन लोकका नाथ है आओ! आओ! इसे नमस्कार करो" इस-प्रकार उन्नत शब्दोंकी घोषणा होती जाती थी और वह भगवानके अभय दानको प्रकट करती थी ॥ ७३ ॥ उससमय भगवान नेमीश्वरके प्रभावके तुल्य बहुतसे उत्तमोत्तम देव जय जयकार करते हुये दौड़ते जाते थे ॥ ७४ ॥ जो जीव भगवान नेमिनाथके साथ दिव्य यात्रा करते थे उन्हें अपूर्व अपूर्व पदार्थोंका दर्शन होता जाता था ॥ ७५ ॥ जिस २ देशमें भगवान गमन करते थे उस २ देशमें न तो किसी प्रकारकी आधि व्याधि होती थी और न किसीको अनावृष्टि ईति भीति आदि ही सताती थीं ॥७६॥ भगवानके अचिंत्य माहात्म्यसे अंधे देख निकलते थे । वहिरे सुन निकलते गूंगे बोल निकलते और पंगे चल निकलते थे ॥ ७७ ॥ जहां जहां भगवान विहार करते थे वहां वहां शीत उष्ण बाधा नहिं दे सकता था रातदिनका विभाग न होता था और कोई अशुभ वात भी न होती थी किंतु सब ओर शुभ ही शुभ वातें नजर आती थीं । ॥ ७८ ॥ उससमय नाना प्रकारके धान्यरूपी रोमांचोंसे शोभित पृथ्वीरूपी वधू वडे आनंदसे कमलरूपी हस्तोंद्वारा भगवानकी पूजन करती थी ॥७९॥ भगवान जिनेंद्ररूपी सूर्यके पाद (किरण) स्पर्शसे प्रफुल्लित कमल श्रेणीसे शोभित आकाश सरोवरकी

तुलना करता था ॥ ८० ॥ उससमय समस्त ऋतु, समान रूपसे वृद्धिको प्राप्त थीं सो ऐसी जान पड़ती थीं मानो समदृष्टि भगवान नेमीश्वरके देखनेपर वे सम होगई हैं। सो ठीक ही है–ईश्वरपना उसीका नाम है जो अपने अनुयायियोंको समान करले किसी को भी कम न रहनेदे॥ ८१ ॥ उससमय जगह जगह पृथ्वीमें खजाने निधियें खानि और अमृत उत्पन्न होते थे इसलिये उसीसमयसे इस (पृथ्वी) का नाम रत्नजननी पड़ा ॥८२॥ अंतक–यमराजके नाशक भगवान नेमीश्वरके पराक्रमसे यमराजका पराक्रम अस्त व्यस्त था इसलिये धर्मचक्रसे व्याप्त लोकमें वह असमयमें कर नहिं लेता था–भगवान नेमीश्वरके प्रभावसे उससमय किसीकी अकाल मृत्यु नहिं होती थी ॥ ८३ ॥ अपने (कालके) वशकरनेवाले भगवान नेमीश्वरकी आज्ञाका उल्लंघन न होजाय इस भयसे कालने अपनी विषमता छोड़ दी। भगवानकी इच्छानुसार वह शीत और उष्णसे किसीप्रकार किसीको वाधा न देने लगा ॥ ८४ ॥ उससमय भगवानके प्रभावसे त्रस और स्थावर दोनों प्रकारके जीव निर्वाध सुखका अनुभव करते थे। सो ठीक ही है–संसारमें इसप्रकारकी विभुता ही समस्त जीवोंकी हित करनेवाली होती है ॥ ८५ ॥ नोला और सर्प आदिक जिनका जन्मसे ही वैर था भगवान जिनेंद्रके प्रभावसे उनके भी अभीष्टकी सिद्धि होती थी–उनमें किसीप्रकारका वैरका अंकूर नहिं जान पड़ता था ॥ ८६ ॥ अपनी प्रचंडताका त्यागकर शीतल सुगंधित पवन उससमय मंद मद रूपमें गमन करता था उससे ऐसा जान पड़ता था मानो भगवानकी सेवा किस रीतिसे करनी चाहिये इसवातकी शिक्षा दे रहा हो ॥ ८७ ॥ धूलिरूपी अंधकारके नाश होजानेसे निर्मलतारूपी आभरणोंसे जगमगाती हुई दिक्कुमारियां उससमय पुष्पोंके समूहसे भगवानकी पूजा करती थीं ॥ ८८ ॥ भगवानके प्रभावसे आकाश स्वच्छ होगया था और उसमें तारागण स्पष्टरूपसे दीखते थे सो ऐसा मालूम होता था मानो शरद ऋतुके निर्मल जलसे भरे हुये तालावोंमें कुमुद खिल रहे हों ॥ ८९ ॥ उससमय अन्यकी तो वात ही क्या थी अल्पबुद्धिके धारक तिर्यंच भी दूरसे भगवानको नमस्कार करते थे। भगवान-उससमय चतुर्मुख थे–चारो दिशाओंमें चार मुख दीखते थे और उनके शरीरकी छाया नहिं पड़ती थी ॥ ९० ॥ भगवान नेमीश्वरका माहात्म्य वड़ा आश्चर्यकारी था क्योंकि न तो वे किसीप्रकारका आहार ही करते थे और न उनके किसीप्रकारका उपसर्ग ही कभी होता था ॥ ९१ ॥ शुभ बुद्धिके धारक वहुतसे जीव "मै आगे नमस्कार करूं! मै आगे नमस्कार करूं" इसप्रकार गहरी लालसासे भगवानके पास आकर उन्हें नमस्कार करते थे इसलिये भगवानकी उसप्रकारकी प्रभुताई लोकोत्तर और आश्चर्य करनेवाली थी ॥ ९२ ॥ जिनके आगे आगे वहुतसे देव दौड़ रहे थे ऐसे भगवान नेमीश्वर जिस जिस दिशामें जाते थे उसी उसी दिशामें राजा लोग सामने आकर भगवानकी

पूजन करते थे ॥ ९३ ॥ जिस जिस दिशामें भगवान नेमीश्वर विहार करते थे उसी उसी दिशामें उनके पीछे पीछे राजा लोग भी चलते थे इसलिये भगवानका उसप्रकारका चक्रवर्तीपना (अनेक राजाओंका स्वामीपना) प्रशंसाके योग्य था ॥ ९४ ॥ उससमय मनुष्य सेना पृथ्वीपर गमन करती थी, देवसेना आकाशमें चली जाती थी ॥ ९५ ॥ वहांपर एक मनोहर दंडसे शोभित दंडायमान भगवानके शरीरकी प्रभाका मंडल था और उसकी किरणें नीचे ऊपर समस्त लोकमें फैली हुई थी ॥ ९६ ॥ इस ज्योतिर्मंडलका तेज अन्य तेजधारियोंसे तिगना था, अपने तेज द्वारा स्थूलरूपसे देखनेमें आता था और सूर्यसे अतिरिक्त ज्योतिषियोंका तेज खंडितकर अतिशय शोभित था ॥९७॥ उस ज्योतिर्मंडलका प्रकाश समस्त लोकमें फैला हुआ था अप्रतिहत था—कोई उसे रोक नहिं सकता था, समस्त अंधकारका नाश करनेवाला था और अपने प्रभावसे सूर्यके प्रभावको भी दवाता था ॥९८॥ उस तेजोमंडलके मध्यमें तेजके पुंज, हजारों सूर्योंके सम्मिलित एक आकारके समान आकाररहित भगवान नेमीश्वर विराजमान थे ॥९९॥ यह ज्योतिर्मंडल चौतर्फा था, महान उदयसे युक्त था, इसका विस्तार एक कोशका था और भगवान नेमिनाथके शरीरकी ऊंचाई दश धनुषकी थी इसलिये इतना ही यह ऊंचा था ॥१००॥ वह तेजोमंडल नेत्रोंका हरण करनेवाला था, सुखपूर्वक देखा जाता था, सुखका करनेवाला था, उसके मध्यभागमें पुण्यमूर्ति भगवान नेमीश्वर विराजमान थे पुरुषके आकारका था और समस्त लोक उसकी पूजा करते थे ॥ १०१ ॥ जिसप्रकार उलूक और चिमगादड़ सूर्यके तेजको नहिं देख सकते उसीप्रकार जो मनुष्य मिथ्यादृष्टि थे पापी थे वे अपने पापकी प्रबलतासे उसे जरा भी न देख सकते थे ॥ १०२ ॥ ज्योतिर्मंडलकी प्रभा सूर्यकी प्रभाको आच्छन्न करती थी, सूर्यकी प्रभाके समान समस्त दिशाओंको व्याप्त करती थी और उससे उससमय भूमंडल जगमगा उठा था ॥१०३ ज्योतिर्मंडलकी प्रभाके पीछे पीछे समस्त लोककी शांत्यर्थ अतिशय प्रभावी भगवान नेमीश्वर विहार करते थे और समस्त जनताको प्रफुल्लित करते चले जाते थे ॥१०४॥ भगवानने एक वर्षपर्यंत स्वयं अपनी प्रभावशाली गतिसे पृथ्वीपर विहार किया उनके चारो ओर रत्न वर्षा होती थी सो ऐसा मालूम होता था मानों श्वेतमूर्तिका धारक ऐरावत भगवानकी ही प्रदक्षिणा देता हो ॥१०५॥ उससमय आकाशमें भगवानके गमनका मार्ग पृथ्वीके समान जान पड़ता था इसलिये तीन लोकके अतिशयसे उत्पन्न वह प्रभाव भगवानका अति आश्चर्यकारी था ॥ १०६ ॥ उससमय भगवानके प्रभावसे जो मनुष्य मंदबुद्धिके धारक थे वे तीक्ष्णबुद्धिके धारक होगये थे, हिंसक हिंसारहित होगये थे और जो उससमय उनके पास मौजूद थे वे खेद स्वेद आर्ति चिंता आदिसे रहित होगये थे ॥ १०७ ॥ जो भूमि भगवानके विहारसे अनुगृहीत हो जाती थी उसमें वीस युग पर्यंत

किसी प्रकारकी डमर आदि व्याधि न होती थी ॥ १०८ ॥ इसप्रकार समस्त जगतके स्वामी, उत्कट विभूतिसे मंडित, बोधको देनेवाले, समस्त भव्य जीवोंको संबोधते हुये भगवान नेमिनाथने क्रमसे–सोरठ मत्स्य लाटोरु शूरसेन पाटच्चर कुरु जांगल पांचाल कुशाग्र मगध अंजन अंग वंग कलिंग आदि देशोंमें विहार किया और अनेक क्षत्रिय आदि वर्णोंको परमपावन जैनधर्मका भक्त बनाया ॥१०९–१११॥ कदाचित् विहार करते २ भगवान मलय देशके भद्रिलपुर नगरमें आये और उसके सहस्राम्र वनमें आकर विराजमान होगये ॥ ११२ ॥ पहिलेके समान चारो प्रकारके देवोंने सहस्राम्र वनकी पृथ्वीपर भी समवशरणकी रचना कर दी और वहां गणाधरोंसे वेष्टित भगवान अतिशय मनोहर जान पड़ने लगे ॥ ११३ ॥ भद्रिलपुर नगरका स्वामी राजा पौंड्र था। ज्योंही उसने भगवानके आगमनका समाचार सुना। वह शीघ्र ही पुरवासी लोगोंके साथ वहां आया और भलेप्रकार भगवानकी स्तुतिकर हाथ जोड़ विनम्र हो मनुष्य कोठेमें बैठगया ॥११४॥ रानी देवकीके छै युगलिया पुत्र जो सेठानी अलका और सेठ सुदृष्टिके यहां पले थे वे भी समवशरणमें आये ॥ ११५ ॥ उनमें प्रत्येक कुमारकी बत्तीस २ स्त्रियां थी जो कि अपने रूप आदिसे इंद्रकी इंद्राणीको जीतती थीं ॥ ११६ ॥ महापराक्रमी वे छहो भाई अपने अपने रथोंसे उतरे और भगवानको भक्तिपूर्वक प्रणाम कर राजा पौंड्रके पास आकर बैठगये ॥ ११७ ॥ उससमय भगवान नेमिनाथने सम्यग्दर्शनके स्वरूपके साथ २ श्रावक धर्मका उपदेश और समस्त कर्मोंका नाश करनेवाले यति धर्मका उपदेश दिया ॥ ११८ ॥ ज्योंही इन भाईयोंने भगवानके मुखसे धर्मरूपी अमृतका आस्वादन किया और तत्त्वोंका वास्तविक स्वरूप समझा उन्हें उसीसमय संसारसे उदासीनता होगई। वे छहो भाई अपने बंधुओंसे आज्ञा ले भगवानके चरण कमलोंमें मोक्ष लक्ष्मीकी प्राप्त करानेवाली जिनदीक्षाको धारण कर एक साथ मुनि होगये ॥ ११९–१२० ॥ इन छहो राजकुमारोंने द्वादशांग श्रुतज्ञानका अभ्यास किया। तपके प्रभावसे कोष्ठबीज आदि बहुतसी ऋद्धियां प्राप्त कीं और घोरतप तपा ॥ १२१ ॥ ये छहो भाई वेला आदि उपवास और पारणा एकसाथ करते थे एवं त्रिकालका योग सोना और बैठना भी इनका साथही साथ होता था। ॥ १२२ ॥ चरम और उत्तम शरीरके धारक, घोर तप तपनेवाले, इन कुमारोंके शरीरका तेज तपके प्रभावसे पहिलेसे भी अधिक बढ़गया ॥ १२३ ॥ ये छहो कुमार भलेप्रकार भगवान नेमिनाथके चरणोंके भक्त थे और बाह्य एवं अभ्यंतर दोनों प्रकारके तपोंमें एक दूसरेके उपमान (जिसकी उपमा दीजाय) और उपमेय (उपमाके योग्य) थे। इस प्रकार बहुत दिनतक भगवान नेमिनाथने विशाल विभूतिके साथ पृथ्वीपर विहार किया पश्चात् समवशरणके साथ वे गिरनार पर्वतपर आये

॥ १२४-१२५ ॥ वहांपर इंद्र आदि देव कृष्ण आदि यादव और द्वारिका निवासी सज्जनोंसे सेवित भगवान जिनेंद्रकी अद्वितीय शोभा हुई ॥ १२६ ॥ श्रुतज्ञानरूपी समुद्रके भीतर विराजमान वरदत्त आदि ग्यारह गणधर अतिशय शोभित होते थे। ॥१२७॥ भगवान जिनेंद्रके समवसरणमें चारसौ मुनि तो चौदह पूर्वके धारक, ग्यारह हजार आठ सौ मुनि शिक्षक, पंद्रह सौ अवधिज्ञानी, पंद्रह सौ केवलज्ञानी, नौसौ विपुलमति मनःपर्ययज्ञानके धारक, आठसौ वादी, ग्यारह सौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, राजीमती आदि चार हजार आर्यिका, एक लाख उनहत्तर हजार श्रावक और तीनलाख छतीस हजार सम्यग्दृष्टि श्राविका थीं। दिव्यध्वनिके धारक भगवान तीर्थंकररूपी मेघ, प्यासे इन भव्यरूपी चातकोंको दिव्य धर्मरूपी अमृतकी वर्षाकर तृप्त करते थे ॥१२८-१३३॥

इसरीतिसे अतिशय महोदयसे भूषित पर्वत गिरनारपर, अपरिमित अतिशयके धारक भगवानरूपी सूर्यके विराजमान होजानेपर अंजलिरूपी कलियोंसे शोभित समस्त लोकरूपी कमलसमूह प्रफुल्लित होगया ॥ १३४ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथके चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें भगवान नेमिनाथका विहार वर्णन करनेवाला उनसठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५९ ॥

साठवां सर्ग।

जिससमय धर्मोपदेश समाप्त होगया उससमय महाविनयसे भूषित रानी देवकीने हाथ जोड़कर भगवानसे इसप्रकार पूछा—

भगवन्! महामनोहर दिगंबर रूपका धारक दो मुनियोंका युगल मेरे यहां तीन वार आया और फिर फिरसे उसने तीन बार आहार लिया। प्रभो! मुनिगण तो एकदिन, भोजनकी वेलामें एकही वार भोजन करते हैं वे एक घरमें अनेकवार आहारार्थ प्रवेश करें यह बात कैसी! ॥ १-३ ॥ शायद वे मुनियोंके तीन युगल हों क्योंकि वे महारूपवान थे सबोंकी सूरत एकसी दीख पड़ती थी इसलिये भ्रमसे मैंने उन्हें न पहिचान पाया हो तथा न मालूम आहार देते समय मेरा भाव उनमें पुत्रों सरीखा क्यों होगया था?" ॥ ४ ॥ देवकीका ऐसा प्रश्न सुन उत्तरमें भगवानने कहा—

"वे छहो तुम्हारे पुत्र थे और कृष्णसे पहिले तीन वार युगल रूपमें उत्पन्न हुये थे। इंद्रकी आज्ञासे देव उन्हें 'दुष्ट कंस न मारदे' इस भयसे भद्रिलपुरके सेठ सुदृष्टिकी स्त्री अलकाके यहां रख आया और उन दोनोंने अपने औरस पुत्र समझ पाल पोषकर उन्हें बढ़ाया ॥ ५-६ ॥ ये लोग मेरे समवसरणमें आये और धर्मोपदेश सुन संसारसे उदासीन हो मुझसे दिगंबर दीक्षा धारण कर मुनि होगये। अब ये समस्त कर्मोंका सर्वथा नाशकर इसी जन्ममें नियमसे मोक्ष जायंगे ॥ ७ ॥ इसलिये तुम्हारा उनमें जो

कुछ स्नेह था वह अपत्यकृत था। सो ठीक भी है क्योंकि जब मनुष्योंका धर्मके आचरण करनेवाले समस्त जीवोंमें प्रेम होजाता है तब धर्मात्मा पुत्रोंमें प्रेम हो इसमें कोई आश्चर्य नहीं" ॥८॥ भगवानके मुखसे यह समाचार सुन देवकीको परम आनंद हुआ उसने अपने पुत्र मुनियोंको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। कृष्ण आदि यादवोंको भी वड़ा आनंद हुआ। उन्होंने भी नमस्कार कर उन मुनियोंकी भक्तिपूर्वक स्तुति की ॥ ९ ॥ इसके वाद कृष्णकी पटरानी सत्यभामानें भगवानको नमस्कार कर अपने पूर्वभव पूछे। उत्तरमें समस्त यादव और देवोंके समक्ष भगवान इसप्रकार उसके पूर्वभव वर्णन करने लगे—

भद्रिलपुरमें एक मरीचि नामका ब्राह्मण रहता था उसकी स्त्रीका नाम कपिला था और उनके एक मुंडशलायन नामका पुत्र था जो कि भलेप्रकार काव्योंकी रचना करनेवाला और अपनेको पंडित माननेवाला था ॥१०–११॥ जिससमय जिनेंद्र पुष्पदंत मोक्ष चले गये और उनके तीर्थके विच्छेद होजानेसे जैन मार्गके अनुगामी भव्योंका भरतक्षेत्रमें अभाव होगया उससमय उस अज्ञानी और विषयोंके अतिलोलुपी विप्र मुंडशलायनकी खूब वन पडी। उसने राजा प्रजा सर्वजनताको गौ पृथ्वी सुवर्ण आदि पदार्थोंका दान करना सिखलाया जिससे कि पापाचरणोंमें प्रवृत्तिके कारण वह सातवे नरक गया ॥ १२–१४ ॥ वहांकी आयु समाप्त होने पर वह उस नरकसे निकला और फिर अनेकबार तिर्यंच एवं नरक योनियोंमें घूमा पश्चात् काकतालीय न्यायसे उसे मनुष्यजन्मकी प्राप्ति हुई गंधावती नंदीके किनारे गंधमादन पर्वतपर पर्वत नामका भील हुआ और उसकी स्त्री वल्लरी हुई ॥ १५–१६ ॥ दैवयोगसे उस पर्वत पर एकदिन श्रीधर और धर्म नामके दो चारण ऋद्धिके धारक मुनिराज आये। भीलको उन मुनिराजके दर्शन होगये और उनसे उसने श्रावकके व्रत धारण कर लिये। विजयार्ध पर्वतपर एक अलका नामकी पुरी है उसका स्वामी विद्याधर राजा महाबल था। उसकी स्त्रीका नाम ज्योतिर्माला था इन दोनोंके प्रथम पुत्र तो शतबल हुआ और दूसरा आयुके अंतमें उपवास पूर्वक मरणकर पर्वत भीलका जीव हरिवाहन नामका पुत्र हुआ। ॥ १७–१८ ॥ एकदिन राजा महाबलको संसारसे उदासीनता होगई। इसलिये वह अपने पुत्र शतबल और हरिवाहनका राज्याभिषेक कर आप भगवान श्रीधरके चरणोंमें दिगंबर दीक्षासे दीक्षित होगया और तपके उत्कृष्ट फलरूप मोक्षस्थानपर चलागया ॥१९॥ किसीकारणसे शतबल और हरिवाहनका आपसमें विरोध पड़गया इसलिये वडे भाईने छोटे भाईको निकाल दिया और वह भगलीदेशमें अंबुदावर्त नामक पर्वतपर जा वसा॥ २०॥ दैवयोगसे वहां श्रीधर्म और अनंतवीर्य नामक चारण ऋद्धिके धारक मुनिराज आये हरिवाहनको उनका दर्शन होगया और उनसे उसने दिगंबर दीक्षा धारण करली जिससे कि अंत समयमें भलेप्रकार आराधना आराधकर ऐशान स्वर्गमें जा देव होगया ॥२१॥

हरिवाहनके जीव देवने वहांके दिव्य सुखोंका मनमाना आस्वादन लिया परंतु परिणाम उसके संक्लेश रूप ही रहै इसलिये आयुके अंतमें वह वहांसे चया और राजा सुकेतुकी स्त्री स्वयंप्रभाके गर्भसे तू सत्यभामा नामकी कन्या हुई ॥ २२ ॥ इस जन्ममें तू भले-प्रकार तपका आराधन कर उत्तम देव होगी। वहांसे चयकर मनुष्य होकर तप करैगी और मोक्ष जायगी ॥ २३ ॥ भगवान नेमीश्वरके मुखसे इसप्रकार अपने भव सुनकर और यह जानकर कि मैं बहुत शीघ्र ही निर्वाण जाऊंगी सत्यभामाको बड़ा आनंद हुआ और भक्तिपूर्वक भगवानको नमस्कार किया ॥ २४ ॥ रानी रुक्मिणीने भी अपने पूर्वभव पूछे और समस्त लोकको रुक्मिणीके वृत्तांत सुननेकेलिये लालायित देख भगवान भी इसप्रकार उसके पूर्वभव वर्णन करने लगे—

इसी भरतक्षेत्रके मगधदेशमें एक लक्ष्मी नामक ग्राम है। उसमें एक सोमदेव नामका ब्राह्मण रहता था उसकी स्त्रीका नाम लक्ष्मीमती था जोकि अनेक लक्षणोंकी धारक साक्षात् लक्ष्मी सरीखी जान पड़ती थी और वह अपने रूपके अभिमानसे अपने पूज्योंको भी कुछ न समझती थी ॥ २५–२७ ॥ एक दिन रमणी लक्ष्मीमती शृंगार कर नेत्रोंको अतिशय प्रिय, चंद्रमाके समान मनोहर, किसी दर्पणमें अपना मुख देख रही थी। उसीसमय तपसे अतिशय कृश, कोई समाधिगुप्त नामक मुनिराज आहारके लिये वहां आये। लक्ष्मीमतीने देखते ही उनसे ग्लानि की और उनकी निंदा करने लगी ॥ २८–२९ ॥ मुनिनिंदाके घोरपापसे लक्ष्मीमतीके उदुंबरनामका कोढ़ हुआ और वह अग्निमें प्रवेशकर मर गई ॥ ३० ॥ आर्त्तध्यानसे मर कर वह गधी हुई उसपर नोंन (लवण) लदता था इसलिये नोंन के भारसे मरकर राजगृहमें अभिमानके दोषसे शूकरी होगई उसै भी दुष्टोंने मारदिया और वह मरकर गोष्ठ (गौओंके रहने के स्थान) में कुत्ती हुई। दैवयोगसे गोष्ठमें एक दिन भयंकर अग्नि लग गई इसलिये वहां वह जलकर मरगई और मंडूकग्राममें त्रिपद नामक धीवरकी मंडूकी नामकी स्त्रीके गर्भसे पूतिगंधिका नामकी पुत्री हुई। प्रबल पापके उदयसे इसकी मा मरगई और इसै इसकी दादीने पाला। एक दिन नदीके किनारे इसके झोंपड़ेके पास जहां तहां विहार करते करते वे ही समाधिगुप्ति मुनिराज आये और योग धारण कर विराजमान होगये जब रात्रिका समय हुआ तो शीतकी विशेष वाधा होने लगी इसलिये मुनिराजको देखते ही इसकी उनके शीत दूर करनेकी इच्छा होगई जिससे कि उसने मुनिराजका शरीर जालसे ढक दिया ॥ ३१–३४ ॥ मुनिराज अवधिज्ञानी थे उन्हैं उस कन्याकी दशापर दया आगई प्रातःकाल होते ही मुनिराजने पूतिगंधाके पूर्वभव सुनाये और उसे धर्मका उपदेश दिया जिससे कि उसने धर्म धारण करलिया ॥ ३५ ॥ एकदिन वह पूतिगंधा सोपारक नगर आई वहां पर उसै आर्यिकाओंकी संगति होगई और आचाम्लवर्धन

नामक व्रत का आराधन करती हुई वह उनके साथ राजगृह नगर चली आई ॥ ३६ ॥ राजगृह नगरमें मुनियोंके जो निर्वाण क्षेत्र हैं सती पूतिगंधाने भक्तिभावसे उनकी वंदना की और नीलनामकी गुफामें सल्लेखनाकर प्राणविसर्जन किये जिससे कि अच्युतस्वर्गके इंद्रकी अतिप्यारी-गगन वल्लभा नामकी महादेवी हुई और वहां पर पचपन पल्यप्रमाण देवियोंकी उत्कृष्ट आयुका भोग किया ॥ ३७-३८ ॥ आयुके अंतमें वहांसे चयी और कुंडिनपुर नगरमें राजा भीष्मकी स्त्री श्रीमतीके गर्भसे कुमार रुक्मकी बहिन तू रुक्मिणी हुई ॥ ३९ ॥ अब इस भवमें तू उग्र तप आराधन करैगी। आगे भवमें स्त्री लिंगको सर्वथा छेदकर उत्तम देव होगी एवं वहांसे चयकर और निर्ग्रंथ तप आचरण कर नियमसे मोक्ष जायगी ॥ ४० ॥ संसारसे भयभीत राजा भीष्मकी पुत्री रुक्मिणीने ज्योंही अपने पूर्वभव सुने और यह जाना कि मैं बहुत शीघ्र मोक्ष जाऊंगी उसै अपार आनंद हुआ और उसने भक्तिपूर्वक भगवान नेमीश्वरको नमस्कार किया ॥ ४१ ॥ कृष्णकी तीसरी पटरानी जांबवतीको भी अपने पूर्वभवके जाननेकी इच्छा हुई उसने भी भगवानको नमस्कार कर अपने पूर्वभव पूछे वे संसारसे भयभीत समस्त मनुष्योंके समक्ष जांबवतीके पूर्वभवोंका इसप्रकार वर्णन करने लगे—

जंबूद्वीपके पुष्कलावती देशकी वीतशोका नगरीमें एक देविल नामका गृहस्थ रहता था। उसकी स्त्री देवमती और उससे तू यशस्विनी नामकी पुत्री उत्पन्न थी। गृहस्थ पुत्री यशस्विनीका किसी वसुमित्र नामक गृहस्थके साथ विवाह होगया दैवयोगसे वह मर गया इसलिये उस कन्याको अधिक संताप हुआ ॥ ४२-४४ ॥ किसी जैन धर्मके अनुयायी और जैन धर्मके उपदेशक जिनदेव नामक मनुष्यने कन्या यशस्विनीको सांत्वना दी। उसका पतिमें अधिक मोह था इसलिये मोहके प्रबल उदयसे वह सम्यक्त्वका लाभ तो न कर सकी परंतु लोकाचारसे दान उपवास आदि विधियोंका आचरण करती रही जिससे कि आयुके अंतमें मरकर वह नंदन वनमें मेरुनंदना नामक किसी व्यंतरकी स्त्री हुई ॥४५-४६॥ वहांपर उसने तीस हजार अस्सी वर्ष पर्यंत सानंद भोग भोगे। आयुके अंतमें मरकर अनेक जगह वह संसारमें घूमी। कदाचित् वह जंबूद्वीपस्थ ऐरावत क्षेत्रके विजयपुरमें राजा बंधुषेणकी रानी बंधुमतीके गर्भसे बंधुयशा नामकी कन्या हुई। कन्या अवस्थामें ही उसने आर्यिका श्रीमतीसे प्रोषध व्रत ले लिया और जैन धर्मका भलेप्रकार आराधन किया जिससे कि आयुके अंतमें मर कर वह कुबेरकी स्वयंप्रभा नामकी स्त्री हुई। आयुके अंतमें वहांसे भी चयी और जंबूद्वीपकी पुंडरीकिणी नामक विशालपुरीमें वज्रमुष्टिकी सुभद्रा नामकी स्त्रीके गर्भसे सुमति नामकी कन्या हुई। वहांपर उसने सुंदरी नामक आर्यिकाके पास रत्नावली नामक तपका आराधन किया जिससे कि आयुके अंतमें मरकर वह तेरह पल्यकी आयु-

की भोगनेवाली ब्रह्म स्वर्गके इंद्रकी सबसे मुख्य महादेवी हुई। आयुके अंतमें वह वहांसे चयी और भरतक्षेत्रके विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणीके जांबव नगरमें विद्याधर जांबवकी पत्नी जांबवतीके गर्भसे तू जांबवती नामकी कन्या हुई है। अब तू इस भवमें तपका आराधन करेगी और आयुके अंतमें यहांसे मर कर स्वर्गमें जा उत्तम देव होगी पश्चात् किसी राजाका पुत्र होकर तपके प्रभावसे मोक्ष चली जायगी ॥ ४७-५४ ॥ इसप्रकार भगवानसे अपने पूर्वभव सुन शीलरूपी अलंकारकी धारण करनेवाली रानी जांबवती संशयरहित होगई। उसने भक्तिपूर्वक भगवानको नमस्कार किया और यह जानकर कि मैं जल्दी मोक्ष जाऊंगी उसे परम आनंद हुआ ॥ ५५ ॥ जांबवतीके पूर्वभवोंका वर्णन समाप्त होजाने पर कृष्णकी चौथी पटरानी सुसीमाने भी अपने पूर्वभव पूछे एवं भगवान नेमीश्वर भी सभामें स्थित जीवोंके मनको आनंद देनेवाली अपनी दिव्य ध्वनिसे इसप्रकार उसके पूर्वभव वर्णन करनेलगे—

धातकीखंडके पूर्वार्धमें पूर्वमेरुके पूर्वविदेहमें एक मंगलावती देश है और उसमें एक रत्नसंचयपुर नामका नगर है। किसी समय उस नगरका स्वामी राजा विश्वसेन था उसकी स्त्री अनुधारी थी और उसके एक सुमति नामका मंत्री था जोकि प्रसिद्ध श्रावक था ॥ ५६-५८ ॥ कदाचित् राजा विश्वसेनका अयोध्याके स्वामी राजा पद्मसेनके साथ युद्ध होगया। पद्मसेनने विश्वसेनको संग्राममें प्राणरहित करदिया इससे उसकी विधवा अनुधारीको बड़ा दुःख हुआ। परंतु परम धर्मात्मा मंत्री सुमतिने उसै ज्ञानकरा धर्म मार्गमें लगा दिया ॥ ५९ ॥ उसका अपने प्राणनाथ विश्वसेनमें अधिक मोह था इसलिये मोहकी प्रबलतासे वह सम्यक्त्व तो धारण न करसकी पर तो भी आयुके अंतमें मरकर वह विजयद्वारके स्वामी विजयदेवकी ज्वलनवेगा नामकी व्यंतरी स्त्री होगई ॥ ६० ॥ वहांपर इसने दशहजार वर्षकी आयु पा मनमाने भोग भोगे। आयुके अंतमें वहांसे चयकर वह अनेक जगह संसारमें घूमी ॥ ६१ ॥ कदाचित् वह जंबूद्वीपके विदेहांतर्गत रम्यक क्षेत्रमें सीतानदीके दक्षिण तटपर द्रव्यसे परिपूर्ण शालिग्राममें किसी यक्षिल नामक गृहस्थकी स्त्री देवसेनाके गर्भसे पुत्री हुई इस कन्याकी प्राप्ति यक्षके आराधन करनेसे हुई थी इसलिये इसका नाम यक्षदेवी रक्खा गया ॥ ६२-६३ ॥ एकदिन वह कन्या यक्षकी पूजा करनेकेलिये गई। वहांपर उसै धर्मसेन नामक मुनिराजके दर्शन होगये और उनसे कन्या यक्षदेवीने बड़े गौरवसे जैन धर्मका श्रवण किया ॥ ६४ ॥ एकदिन उसने भक्तिभावसे मुनिराजको आहार दान दिया जिससेकि उसने पुण्यबंध बांधा ॥ ६५ ॥ किसीदिन वह अपनी सखियोंके साथ विमल पर्वतपर क्रीड़ार्थ गई थी कि वहांपर असमयमें ही घोर वर्षा होनेके कारण वह किसी गुफामें घुसगई ॥ ६६ ॥ दैवयोगसे उस गुफामें सिंह बैठा था। ज्योंही उसने वह कन्या देखी तत्काल भक्षण करली जिससे कि वह

वहां मरगई और पुण्यके प्रभावसे हरिक्षेत्रमें दो पल्यकी आयुवाली हुई। वहां से मरकर जोर्तिलोकमें एकपल्य आयुकी भोगनेवाली देवी हुई। वहांकी आयु भी इसकी समाप्त होगई और वहांसे चयकर जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रके पुष्कलावती देशकी वीतशोका नामकी नगरीमें राजा अशोककी रानी श्रीमतीके गर्भसे श्रीकांता नामकी पुत्री हुई॥ ६७-६९॥ कन्या श्रीकांताने कुमार अवस्थामें ही जिनदत्ता आर्यिकाके समीप रत्नावली नामका तप धारण करलिया जिससेकि वह मरकर महेंद्रस्वर्गके इंद्रकी इंद्राणी हुई॥७०॥ माहेंद्र स्वर्गमें उसकी ग्यारह पल्यकी आयु थी इसलिये उसने वहां मनमाना भोग भोगा। आयुके अंतमें वह वहांसे चयी और सुराष्ट्र देशके गिरिनगरमें राजा राष्ट्रवर्धनकी रानी ज्येष्ठाके गर्भसे तू सुसीमा नामकी कन्या हुई। अब तू तपके प्रभावसे देव होगी और वहांसे चयकर मनुष्य हो तप आराधन कर नियमसे मोक्ष जायगी॥ ७१-७२॥ इसप्रकार भगवान नेमीश्वरके मुखसे अपने पूर्वभवका श्रवणकर और अपनी मोक्ष समीप जान रानी सुसीमाको अपार आनंद हुआ और उसने भक्तिपूर्वक भगवानको नमस्कार किया। ॥ ७३॥ कृष्णकी पांचवीं पटरानी लक्ष्मणाको भी अपने पूर्वभव श्रवण करनेकी लालसा होगई। उसने भी भगवानसे अपने पूर्वभव सुननेकी अभिलाषा प्रकटकी। भगवान जिनेंद्र तो समस्त जीवोंके हितकारी हुआ ही करते हैं वे सबके प्रश्नोंका उत्तर देनेवाले होते हैं इसलिये वे उसके पूर्वभवोंका इसप्रकार वर्णन करनेलगे—

इसी जंबूद्वीपके कच्छावती देशमें सीतानदीके उत्तर तटपर एक अरिष्टपुर नामका नगर है। किसीसमय उसका स्वामी राजा वासव था जोकि विभूतिमें इंद्रकी तुलना करता और इसकी स्त्रीका नाम सुमित्रा था। एकदिन राजा वासवने सहस्राम्रवनमें सागरसेन मुनिराजका आगमन सुना इसलिये वह अपनी स्त्रीसहित मुनिराजकी वंदनाके लिये गया। मुनिराजके मुखसे धर्म श्रवण करते ही उसै संसारसे वैराग्य होगया। अपने वसुसेन पुत्रको राज्य दे उसने मुनिदीक्षा धारण करली। परंतु उसकी स्त्री सुमित्रा आर्यिका न होसकी क्योंकि उसका पुत्रपर अधिक मोह था॥ ७४-७७॥ दैवयोगसे सुमित्राका पुत्र वसुसेनसे भी वियोग होगया। पति और पुत्रके वियोगसे उसै अगाध शोक हुआ और उसी शोकमें मरजानेसे वह भीलिनी हुई। एकदिन उस भीलिनीको चारण ऋद्धिके धारक अवधिज्ञानी मुनिराज नंदिभद्रके दर्शन होगये। उनसे उसने पूर्वभव सुना पश्चात् उसै भी जातिस्मरण होगया इसलिये तीन दिनका अनशन व्रत धारण कर वह मरी और मरकर गंधर्व जातिके देवोंमें नारद देवकी मेघमालिनी देवी हुई। आयुके अंतमें वह वहांसे भी चयी और भरतक्षेत्रके विजयार्धके दक्षिण श्रेणीके चंदनपुर नगरमें राजा महेंद्रकी रानी सानुधरीके गर्भसे कनकमाला नामकी पुत्री हुई जोकि समस्त विद्याधरोंके मनको हरण करनेवाली थी॥ ७८-८२॥ जिससमय यह कनकमाला विवाहके योग्य हुई

तो उससमय इसका स्वयंवर किया गया। स्वयंवरकी रीतिसे महेंद्र नगरके स्वामी विद्याधर हरिवाहनके साथ उसका विवाह होगया और उसकी वह समस्त स्त्रियोंमें मान्य, प्राणोंसे भी अधिक प्यारी पटरानी बनगई ॥ ८३ ॥ एकदिन यह चैत्यालयोंकी वंदनार्थ सिद्धकूट पर्वतपर गई। वहांपर चारण ऋद्धिके धारक मुनिराजसे इसने अपने पूर्वभवका वृत्तांत सुन आर्यिकाके व्रत ग्रहण कर लिये और मुक्तावली तपका आराधन किया जिससेकि सनत्कुमार इंद्रकी देवी हुई। वहांपर उसकी आयु नौ पल्यकी थी इसलिये उसने वहां मनमाना विषय सुख भोगा। आयुके अंतमें वह वहांसे चयी और राजा श्लक्ष्णरोमकी रानी कुरुमतीके गर्भसे तू लक्ष्मणा नामकी पुत्री हुई अब तू तप आराधन कर स्वर्ग जायगी और वहांसे आकर मनुष्य हो मोक्ष चली जायगी। भगवानके मुखसे इसप्रकार अपने पूर्वभवका वृत्तांत सुन लक्ष्मणाको परम आनंद हुआ, और उसने भक्तिपूर्वक भगवानको नमस्कार किया ॥ ८४-८५ ॥ लक्ष्मणाके पूर्वभवोंका वर्णन समाप्त होजानेपर कृष्णकी छठी पटरानी गांधारीने अपने पूर्वभवोंको जाननेकी अभिलाषा प्रकट की। भगवान भी इसप्रकार उसके पूर्वभव कहने लगे—

कौशल देशमें एक अयोध्या नामकी नगरी है। किसी समय उसका स्वामी राजा रुद्रदत्त था। और उसकी स्त्रीका नाम विनयश्री था। विनयश्रीने अपने पतिके साथ एकदिन सिद्धार्थक वनमें मुनिराज श्रीधरको आहार दान दिया था इसलिये आयुके अंतमें वह वहांसे मर कर उत्तरकुरुमें तीन पल्यकी आयुकी भोगनेवाली हुई। आयुके अंतमें वह वहांसे मरी और पल्यके आठवें भाग आयुकी धारक चंद्रदेवकी स्त्री हुई ॥ ८६-८८ ॥ वहांकी आयु समाप्त हो जानेसे चयकर विजयार्धकी उत्तरश्रेणीमें गगनवल्लभ नगरके स्वामी राजा विद्युद्वेगके रानी विद्युन्मतीके गर्भसे महाकांतिकी धारक विनयश्री नामकी कन्या हुई और उसका नित्यालोकपुरके स्वामी राजा महेंद्रविक्रमके साथ विवाह हुआ ॥ ८९-९० ॥ एकदिन राजा महेंद्रविक्रम मंदराचल पर गया और वहां चारण ऋद्धिधारी मुनिराजसे धर्मश्रवण कर एकदम संसारसे उदासीन होगया जिससेकि उसने अपने पुत्र हरिवाहनको राज्य दे दिगंबर दीक्षा धारण करली ॥ ९१ ॥ रानी विनयश्रीको भी संसारसे उदासीनता होगई। उसने सर्वतोभद्र महोपवासका आचरण किया और आयुके अंतमें मरकर पांच पल्यकी आयु भोगनेवाली सौधर्म इंद्रकी स्त्री हुई ॥ ९२ ॥ अब तू स्वर्गसे चयकर गांधार देशकी पुष्कलावतीपुरीमें राजा इंद्रगिरिकी स्त्री मेरुमतीसे गांधारी नामकी कन्या हुई है तू इस भवमें तपका आराधन कर स्वर्ग जायगी और वहांसे आकर तीसरे भवमें नियमसे मोक्ष चली जायगी। भगवानके मुखसे इसप्रकार अपने पूर्वभवका वृत्तांत सुन रानी गांधारीको परम आनंद हुआ और उसने भक्तिभावसे भगवान नेमीश्वरको नमस्कार किया। रानी गांधारीके पूर्वभवोंका वर्णन

समाप्त होजानेपर कृष्णकी सातवी पटरानी गौरीको भी अपने पूर्वभवोंके सुननेकी अभिलाषा हुई और उनके वर्णन करनेकी भगवानसे प्रार्थना की जिससेकि भगवान उसके पूर्वभवोंका इसप्रकार वर्णन करने लगे—

इभ्यपुर नगरमें एक धनदेव नामका धनिक रहता था और उसकी स्त्रीका नाम यशस्विनी था। एक दिन आकाशमें जाते हुये उसे चारण ऋद्धि धारी मुनिराजके दर्शन होगये उनके दर्शनसे ही उसे अपने पूर्वभवोंका स्मरण हो आया और वह अपने मनमें यह विचार कर कि—

"मैं धातकीखंडद्वीपमें पूर्व मेरुके पूर्व विदेह क्षेत्रके नंदशोकपुरमें किसी आनंद नामक सेठकी स्त्री थी। एक दिन मैने अपने स्वामीके साथ मुनिराज मितसागरको आहार दान दिया था इसलिये उसके उपलक्षमें देवोंने बड़े आनंदसे पंचाश्चर्य किये थे। किसीदिन मैंने अपने पतिके साथ वर्षाका जल पीया वह जल विषमिश्रित था. इस लिये तत्काल मेरी आयु समाप्त होगई। दानके प्रभावसे मैं देवकुरुमें जाकर उत्पन्न हुई वहांकी आयु समाप्त कर ऐशान स्वर्गके इंद्रकी नियोगिनी हुई और ऐशान स्वर्गकी आयु समाप्त कर यहां उत्पन्न हुई हूं" तत्काल संसारसे उदासीन होगई। उसने शीघ्र ही भगवान सुभद्रके पास जा प्रोषध व्रत ले लिया और मरकर उस व्रतके प्रभावसे पांच पल्यकी आयुको भोगनेवाली प्रथम स्वर्गके इंद्रकी इंद्राणी हुई। आयुके अंतमें वहांसे चयी और कौशांबी नगरीमें सेठ सुभद्रदत्तकी स्त्री सुमित्राके गर्भसे धर्ममती नामकी कन्या हुई जोकि परम धर्मात्मा थी। एक दिन उसे आर्यिका जिनमतीके दर्शन होगये उससे उसने जिनगुणसंपत्ति नामक व्रत ले लिया। उपवासपूर्वक आयुके अंतमें मरकर इक्कीस पल्यकी आयुकी धारक महाशुक्र स्वर्गके इंद्रकी इंद्राणी हुई और वहांसे चयकर वीतशोकापुरीमें राजा मेरुचंद्रकी रानी चंद्रमतीके गर्भसे तू गौरी नामकी पुत्री हुई है ॥ ९३–१०३ ॥ इस भवमें घोर तपका आराधन कर तू स्वर्ग जायगी और वहांकी आयु समाप्त कर मनुष्य भव पा नियमसे मोक्ष चली जायगी। भगवानके मुखसे अपने पूर्वभवोंका इसप्रकार वर्णन सुन रमणी गौरीको बड़ा हर्ष हुआ और उसने भक्तिपूर्वक भगवानको नमस्कार किया। गौरीके भव वर्णनके वाद कृष्णकी आठवीं पटरानी पद्मावतीने भी प्रणामपूर्वक अपने भव पूछे और उसके भवोंका वर्णन भगवान नेमीश्वर इसप्रकार करने लगे—

इसी जंबूद्वीपकी उज्जयिनी नगरीमें किसी समय राजा अपराजित राज्य करता था। उसकी स्त्रीका नाम विजया था और उससे एक विनयश्री नामकी कन्या उत्पन्न थी ॥१०४–१०५॥ कन्या विनयश्रीका हस्तिनापुरके स्वामी राजा हरिषेणके साथ विवाह होगया और एकदिन उसने अपने पतिके साथ मुनिराज वरदत्तको आहार दान दिया ॥१०६॥ कदाचित् वह अपने पतिके साथ अपने महलमें सोरही थी कि कालागुरुकी

धूपसे उसका और उसके पतिका प्राणांत होगया और वह सुखपूर्वक मर एकपल्यकी आयुको भोगनेवाली हैमवतक्षेत्रमें जाकर उत्पन्न होगई ॥१०७॥ वहांसे मरकर चंद्रदेवकी चंद्रप्रभा नामक देवी हुई। वहांसे भी पल्यका आठवां भाग जीकर चयी और भरत क्षेत्रमें मगधदेशके शाल्मली खंड नामक ग्राममें गृहस्थ जयदेवकी स्त्री देविलाके गर्भसे पद्मदेवी नामकी कन्या हुई ॥ १०८-१०९ ॥ एकदिन उसे आचार्य धर्मके दर्शन हो गये और उनसे उसने 'मैं जीवनपर्यंत विना जाने कदापि कैसा भी फल न खाऊंगी' यह व्रत लेलिया ॥ ११० ॥ कदाचित् चंडवाण नामक भीलने समस्त शाल्मलीखंड नामक ग्रामको घेर लिया और उसके निवासी मनुष्योंको कैद करलिया। पद्मदेवी परम सुंदरी थी इसलिये अपनी पत्नी बनानेकी अभिलाषासे वह उससे आग्रह करने लगा परंतु वह शीलवती थी इसलिये वह भीलके फंदेमें न फंस पाई ॥ १११-११२ ॥ एकदिन राजगृह नगरके स्वामी राजा सिंहरथने भीलको प्राणरहित करदिया इसलिये जो उसने शाल्मलीखंड गांवकी प्रजाको कैद कर रक्खा था वह भीलके मरते ही छुटकारा पागई । वन विशाल था इसलिये मार्गका पता न लगनेसे मूर्ख प्रजा मृगोंके समान वहां जहां तहां घूमी एवं क्षुधासे अतिव्याकुल होजानेके कारण किंपाक फल खाकर मरगई ॥११३-११४॥ कन्या पद्मदेवी अपने व्रतमें दृढ़ थी उसने कैसा भी फल न खाया एवं अनशनपूर्वक शरीरका त्यागकर वह एक पल्यकी आयुकी भोगनेवाली हैमवत क्षेत्रमें जाकर उत्पन्न होगई ॥ ११५ ॥ वहांकी आयु समाप्तकर स्वयंभूरमण द्वीपके स्वयंभूपर्वतपर स्वयंप्रभ व्यंतरदेवकी स्वयंप्रभा नामकी स्त्री हुई। वहांसे आकर भरतेक्षेत्रके जयंत नगरमें राजा श्रीधरकी रानी श्रीमतीके गर्भसे विमलश्री नामकी कन्या हुई ॥ ११६-११७ ॥ कन्या विमलश्रीका भद्रिलपुरके स्वामी राजा मेघनादके साथ विवाह हुआ और उसके मेघघोष नामका पुत्र हुआ ॥ ११८ ॥ जिससमय राजा मेघनादका स्वर्गवास हुआ रानी विमलश्रीने आर्यिका पद्मावतीके समीप आचाम्लवर्धन नामा तप किया जिससे कि आयुके अंतमें मरकर वह सहस्रार स्वर्गके इंद्रकी प्रधानदेवी हुई और वहां पैतालीस पल्यप्रमाण काल सुखपूर्वक व्यतीत करनेलगी ॥ ११९-१२० ॥ आयुके अंतमें वहांसे चयी और अरिष्टपुरके स्वामी राजा स्वर्णनाभकी स्त्री श्रीमतीके गर्भसे तू पद्मावती नामकी कन्या हुई है ॥ १२१ ॥ अब तू इस भवमें तपका आराधन करैगी और उसके प्रभावसे देव होकर पुनः मनुष्य हो तपकर मोक्ष चली जायगी। इसप्रकार अपने पूर्वभवोंका स्पष्टरूपसे वर्णन सुन रानी पद्मावतीको अपार आनंद हुआ और उसने भक्तिभावसे भगवान नेमीश्वरको नमस्कार किया ॥ १२२ ॥ रोहिणी देवकी आदि देवियां और यादवोंने भी प्रश्नपूर्वक भगवानसे अपने २ पूर्वभव श्रवण किये एवं वे संसारसे एकदम भयभीत होगये ॥१२३॥ इसप्रकार सुर असुर और यादव भगवानको भक्तिपूर्वक

नमस्कार कर अपने अपने स्थान चले जाते थे और पुनः प्रतिदिन पूजनकेलिये आया करते थे ॥ १२४ ॥ भगवानने समस्त लोकके हितकेलिये अनेक देशोंमें विहार किया था। उनके विहार उनकेलिये न थे किंतु जिसप्रकार सूर्यका भ्रमण अंधकारका नाश कर लोकके हितकेलिये होता है उसीप्रकार उनका विहार लोगोंके अज्ञानरूपी अंधकारको दूर करनेकेलिये था ॥ १२५ ॥

कृष्णके पश्चात् माता देवकीके गजकुमार नामका पुत्र हुआ जो कि सुंदरतामें वसुदेवकी तुलना करता था, शुभ था और कृष्णको अति प्यारा था ॥ १२६ ॥ जिससमय गजकुमार युवा हुआ तो अनेक कन्याओंके साथ उसका विवाह करदिया गया ॥१२७॥ सोमशर्मा नामक ब्राह्मणकी कन्या सोमा जो कि क्षत्रियासे उत्पन्न थी और अतिशय सुंदरी थी कृष्णने उसके साथ भी गजकुमारका विवाह करादिया ॥१२८॥ गजकुमारके विवाहके समय यादवोंको अपार आनंद हुआ और उसीसमय भगवान नेमीश्वर जहां तहां विहार करते करते पुरी द्वारिका आये ॥ १२९ ॥ रैवतक पर्वतपर भगवान् नेमीश्वरको आया सुन यादवोंको अति हर्ष हुआ और वे नानाप्रकारकी द्रव्य लेकर भगवानकी वंदनार्थ द्वारिकासे निकलदिये ॥ १३० ॥ नगरमें मनुष्योंके जानेका कोलाहल देख गजकुमारको उसके कारण जाननेकी बड़ी लालसा होगई उन्होंने शीघ्र ही किसी जैन कंचुकीसे उसका कारण पूछा और उसने भगवान नेमीश्वरका आद्योपांत सारा समाचार कह सुनाया ॥ १३१ ॥ कंचुकीके मुखसे ऐसा समाचार सुन गजकुमारका शरीर मारे हर्षके रोमांचित होगया और सूर्यके वर्णके समान देदीप्यमान रथमें सवार होकर भगवानकी वंदनाकेलिये चलदिया ॥ १३२ ॥ भगवानके समवशरणमें पहुंचकर गजकुमारने अर्हंत विभूतिसे मंडित, बारह गणधरोंसे परिष्कृत, भगवान जिनेंद्रको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और कृष्णके साथ मनुष्य कोठेमें जाकर बैठगया ॥१३३॥ भगवान जिनेंद्र मनुष्य सुर असुरोंसे व्याप्त समवसरणमें संसारसे पार करनेका उपाय परम पावन रत्नत्रयरूप धर्मका व्याख्यान देनेलगे ॥ १३४ ॥ इसी अवसरमें चक्रवर्ती कृष्णने भक्तिपूर्वक भगवानको नमस्कार किया एवं समस्त श्रोता लोगोंके हितकी कामनासे आदरपूर्वक चक्री, अर्धचक्री, बलभद्र, प्रतिनारायण और तीर्थंकरोंके उत्पत्ति सुननेकी लालसा प्रकटकी। भगवान भी प्रश्नके अनुसार पुरुषोंके अग्रणी त्रेसठ शलाका पुरुषोंकी उत्पत्तिका इसप्रकार वर्णन करने लगे—

इस अवसर्पिणी कालमें सबसे प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हुये पश्चात् अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनंदननाथ, सुमतिनाथ, सुपार्श्वनाथ, चंद्रप्रभ, पुष्पदंत, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत और नमिनाथ तीर्थंकर हुये, वावीसवां तीर्थंकर मै नेमिनाथ हूं एवं

मेरे बाद पार्श्वनाथ और महावीर ये दो तीर्थंकर और होनेवाले हैं ॥ १३५–१४१ ॥ इन तीर्थंकरोंमेंसे आठ तीर्थंकर पूर्वभवमें जंबूद्वीपके विदेहक्षेत्रमें, पांच भरतक्षेत्र में, सात धातकीखंडमें और चार पुष्करार्धमें उत्पन्न हुये थे॥१४२॥ जंबूद्वीपके विदेह क्षेत्र-से आकर उत्पन्न हुये तीर्थंकरोंमें भगवान ऋषभदेव और शांतिनाथकी पूर्वभवकी नगरी पुंडरीकिणी थी। अजितनाथकी सुसीमा, अरनाथकी क्षेमपुरी, कुंथुनाथ संभवनाथ और अभिनंदननाथकी रत्नसंचयपुर एवं भगवान मल्लिनाथकी नगरी वीतशोका थी ॥ १४३–१४४ ॥ भरत क्षेत्रसे उत्पन्न पांच तीर्थंकरोंमें भगवान मुनिसुव्रतनाथकी पूर्वभवकी नगरी चंपा, नमिनाथकी कौशांबी, नेमिनाथकी हस्तिनापुर, पार्श्वनाथकी अयोध्या और भगवान महावीरकी छत्राकार थी ॥ १४५–१४६ ॥ धातकीखंड द्वीपसे उत्पन्न तीर्थंकरोंमें सुमतिनाथ भगवानकी पूर्वभवकी पुरी पुंडरीकिणी, पद्मप्रभकी सुसीमा, सुपार्श्वनाथकी क्षेमपुरी और चंद्रप्रभकी रत्नसंचयपुर थी एवं पुष्करार्धसे उत्पन्न पुष्पदंत शीतलनाथ श्रेयांसनाथ और वासुपूज्य इन चार तीर्थंकरोंके भी क्रमसे पुंडरीकिणी सुसीमा क्षेमपुरी और रत्नसंचयपुर ही पूर्वभवके जन्मस्थान थे तथा अनंतनाथ भगवान-के पूर्वजन्मका स्थान धातकीखंडके पश्चिम ऐरावत क्षेत्रमें अरिष्टपुर था। भगवान विमलनाथका जन्मस्थान धातकी खंडके पूर्वभरतक्षेत्रमें महापुर, और धर्मनाथका भद्रिलपुर था ॥ १४७–१५० ॥ इन तीर्थंकरोंके पूर्वभवके नाम वज्रनाभि विमल विपुलवाहन महाबल अतिबल अपराजित नंदिषेण पद्म महापद्म पद्मगुल्म नलिनगुल्म पद्मोत्तर पद्मासन पद्म दशरथ मेघरथ सिंहरथ धनपति वैश्रवण श्रीधर्म सिद्धार्थ सुप्रतिष्ठ आनंद और नंदन थे ॥ १५१–१५५ ॥ इनमें भगवान ऋषभनाथके पूर्वभवका जीव वज्रनाभि तो चक्रवर्ती और ग्यारह अंग चौदह पूर्वका वेत्ता था। शेषके सब ग्यारह अंगके पाठी और मांडलिक राजा थे। ये समस्त महानुभाव सुवर्णवर्णके थे, सिंहनिष्क्री-ड़ितव्रतके आचरण करनेवाले एकमासपर्यंत प्रायोपगमन संन्यासके धारक और स्वर्ग-गामी थे॥१५६–१५७॥ तीर्थंकरोंके पूर्वजन्मके गुरु क्रमसे वज्रसेन अरिंदम स्वयंप्रभ विम-लवाहन सीमंधर पिहितास्रव अरिंदम युगंधर सर्वजनानंद उभयानंद वज्रदत्त वज्रनाभि सर्वगुप्त त्रिगुप्ताढ्य चित्तरक्ष विमलवाहन घनरथ संवर वरधर्म सुनंद नंद व्यतीतशोक दामर और प्रौष्ठिल थे ॥ १५८–१६३ ॥ सर्वार्थसिद्धि विमानसे चयकर ऋषभनाथ धर्मनाथ शांतिनाथ और कुंथुनाथ तीर्थंकर हुये थे, विजयविमानसे अभिनंदन, और अजित नाथ वैजयंतसे चंद्रप्रभ और सुमतिनाथ, जयंतसे नेमिनाथ और अरनाथ, अपरा-जितसे नमि और मल्लिनाथ, आरण स्वर्गसे पुष्पदंत, अच्युत स्वर्गसे शीतलनाथ, अच्युत स्वर्गके पुष्पोत्तर विमानसे श्रेयांसनाथ अनंतनाथ और महावीर, सहस्रार स्वर्गसे विमल पार्श्व और मुनिसुव्रत, क्रमसे अधो मध्यम और उपरिम ग्रैवेयकोंसे संभव सुपार्श्व और

पद्मप्रभ एवं महाशुक्र स्वर्गसे चय कर वासुपूज्य उत्पन्न हुये थे ॥१६४–१६८॥ भगवान ऋषभनाथका जन्म चैत्र कृष्ण नवमीके दिन हुआ था। अजितनाथका माघसुदी दशमीके दिन, शंभवका माघकी पूर्णमासीके दिन, अभिनंदनका माघसुदी द्वादशीके दिन, भगवान सुमतिनाथका श्रावण सुदी एकादशीके दिन, पद्मप्रभका कातिक वदी त्रयोदशीके दिन, सुपार्श्वनाथका जेठसुदी द्वादशीके दिन, चंद्रप्रभका पूषवदी एकादशीके दिन, पुष्पदंतका अगहनसुदी प्रतिपदके दिन, शीतलनाथका माघवदी द्वादशीके दिन, श्रेयांसनाथका फाल्गुन वदी एकादशीके दिन, वासुपूज्य भगवानका फागुनवदी चतुर्दशीके दिन, भगवान विमलनाथका माघसुदी चौदसके दिन, अनंतनाथका जेठवदी द्वादशीके दिन, धर्मनाथका माघसुदी तेरसके दिन, शांतिनाथका जेठवदी चौदसके दिन, कुंथुनाथका वैशाखसुदी प्रतिपदके दिन, अरनाथका अगहनसुदी चौदसके दिन, मल्लिनाथका अगहनसुदी एकादशीके दिन, मुनिसुव्रत नाथका अषाढ़सुदी द्वादशीके दिन, नमिनाथका आषाढ़ वदी दशमीके दिन, और नेमिनाथका वैशाखसुदी तेरसके दिन, जन्म हुआ था पार्श्वनाथका पूषवदी एकादशीके दिन और चैतसुदी तेरसके दिन भगवान महावीरका जन्म होगा ॥१६९–१८०॥ इन चौवीसों तीर्थंकरोंके माता, पिता, जन्मका नक्षत्र, जन्मभूमि, चैत्यवृक्ष और निर्वाणभूमि इसप्रकार हैं—

भगवान ऋषभ देवकी जन्मभूमि अयोध्या, मा मरुदेवी, पिता नाभि, चैत्यवृक्ष न्यग्रोध, निर्वाणभूमि कैलाश और जन्मनक्षत्र उत्तराषाढ़ था ॥ १८१–१८२ ॥ भगवान अजित नाथकी जन्मभूमि अयोध्या, माता विजया, पिता जितशत्रु, निर्वाण भूमि सम्मेद शिखर, जन्म नक्षत्र रोहिणी, और चैत्यवृक्ष विषमच्छद था ॥१८३॥ संभवनाथकी जन्मभूमि श्रावस्ती, माता सेना, पिता जितारि, चैत्य वृक्ष साल, नक्षत्र ज्येष्ठा और निर्वाण भूमि सम्मेद थी ॥ १८४ ॥ अभिनंदन नाथ भगवानका चैत्यवृक्ष सरल, पिता संवर, माता सिद्धार्था, जन्मभूमि अयोध्या, नक्षत्र पुनर्वसु और निर्वाणभूमि सम्मेद शिखर थी ॥१८५॥ भगवान सुमतिनाथका पिता मेघप्रभ, जन्म नक्षत्र मघा, जन्मभूमि अयोध्या, चैत्यवृक्ष प्रियंगु, माता सुमंगला और निर्वाणभूमि सम्मेदाचल थी ॥१८६॥ भगवान पद्मप्रभकी जन्मभूमि कौशांवी, पिता धरण, जन्मनक्षत्र चित्रा, माता सुसीमा, चैत्यवृक्ष प्रियंगु और निर्वाण भूमि सम्मेदशिखर थी ॥१८७॥ भगवान सुपार्श्वकी माता पृथिवी, पिता सुप्रतिष्ठ, जन्मभूमि काशी, निर्वाणभूमि सम्मेदाचल, जन्म नक्षत्र विशाखा और चैत्यवृक्ष शिरीष था ॥ १८८ ॥ भगवान चंद्रप्रभकी जन्मभूमि चंद्रपुरी, चैत्यवृक्ष नाग, निर्वाणभूमि सम्मेदाचल, जन्मनक्षत्र अनुराधा, पिता महासेन और माता लक्ष्मणा थी। ॥ १८९ ॥ पुष्पदंतकी जन्मभूमि काकंदी, माता रामा, पिता सुग्रीव, नक्षत्र मूल, चैत्यवृक्ष साल और निर्वाण भूमि सम्मेदाचल थी ॥ १९० ॥ भगवान शीतलनाथकी जन्मभूमि भद्रिला, नक्षत्र प्रथमाषाढ़, चैत्यवृक्ष प्लक्ष, (पलास) पिता दृढ़रथ, माता

सुनंदा और निर्वाणभूमि सम्मेदशिखर थी ॥ १९१ ॥ भगवान श्रेयांसनाथकी माता विष्णुश्री, पिता विष्णुराज, जन्मभूमि सिंहनादपुर, जन्मनक्षत्र श्रवण, चैत्यवृक्ष तिंदुक और निर्वाणस्थान सम्मेदाचल था ॥ १९२ ॥ वासुपूज्यकी जन्मभूमि चंपा, निर्वाणभूमि भी चंपा, पिता वसुपूज्य, माता पाटला, (जया) दीक्षावृक्ष जयंती और जन्मनक्षत्र शतभिषा था ॥ १९३ ॥ विमलनाथकी माता शर्मा, पिता कृतवर्मा, दीक्षावृक्ष जंबू, जन्मनक्षत्र उत्तराभाद्रपद और निर्वाणक्षेत्र कंपिला था ॥१९४॥ अनंतनाथकी जन्मभूमि अयोध्या, पिता सिंहसेन, माता रेवती, दीक्षावृक्ष पिप्पल और निर्वाणक्षेत्र सम्मेदाचल था। ॥ १९५ ॥ धर्मनाथका दीक्षावृक्ष दधिपर्ण, पिता भानुराज, माता सुव्रता, जन्मनक्षत्र पुष्य, जन्मभूमि रत्नपुर और निर्वाणक्षेत्र सम्मेदशिखर था ॥ १९६ ॥ भगवान शांतिनाथकी माता ऐरा पिता विश्वसेन, जन्मनक्षत्र भरणी, जन्मक्षेत्र हस्तिनापुर, दीक्षावृक्ष नंदी और निर्वाणक्षेत्र सम्मेदशिखर था ॥ १९७ ॥ भगवान कुंथुकी निर्वाणभूमि सम्मेद शिखर, जन्मभूमि हस्तिनागपुर, पिता सूर्य, माता श्रीमती, जन्मनक्षत्र कृत्तिका और दीक्षावृक्ष तिलक था ॥ १९८ ॥ भगवान अरनाथका दीक्षावृक्ष आम्र, जन्मभूमि हस्तिनापुर, माता मित्रा, पिता सुदर्शन, निर्वाणभूमि सम्मेदाचल और जन्मनक्षत्र रोहिणी था॥१९९॥भगवान मल्लिनाथकी जन्मभूमि मिथिला, माता रक्षिता, पिता कुंभ, जन्मनक्षत्र अश्विनी और दीक्षावृक्ष अशोक निर्वाणभूमि सम्मेद शिखर थी॥ २०० ॥ भगवान मुनिसुव्रतकी माता पद्मावती, पिता सुमित्र, जन्मभूमि कुशाग्रपुर नगर, दीक्षावृक्ष चंपक, जन्मनक्षत्र श्रवण और निर्वाणस्थान सम्मेद पर्वत था ॥२०१॥ नमिनाथकी जन्मभूमि मिथिला, पिता विजय, माता वप्रा, दीक्षावृक्ष बकुल, नक्षत्र अश्विनी और निर्वाणभूमि सम्मेद पर्वत थी ॥ २०२ ॥ नेमिनाथकी जन्मभूमि सूर्यपुर, जन्मनक्षत्र चित्रा, पिता समुद्रविजय, माता शिवा, निर्वाणक्षेत्र गिरनार और दीक्षावृक्ष मेषशृंग था ॥ २०३ ॥ जिनेंद्र पार्श्वनाथकी जन्मभूमि बनारस, माता वर्मा, जन्मनक्षत्र विशाखा, दीक्षावृक्ष धव, पिता राजा अश्वसेन और निर्वाणक्षेत्र सम्मेदाचल होगा और अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीरका दीक्षावृक्ष शाल, जन्मभूमि कुंड (ल) पुर नगर, पिता सिद्धार्थ, माता प्रियकारिणी, जन्मनक्षत्र उत्तराफाल्गुनी और निर्वाणभूमि पावापुरी होगी ॥ २०४–२०५ ॥ भगवान महावीरका दीक्षावृक्ष बत्तीसधनुष ऊंचा होगा और शेष तीर्थंकरोंके दीक्षावृक्षोंकी जितनी उनके शरीरकी ऊंचाई है उससे बारह गुणी अधिक समझनी चाहिये ॥ २०६ ॥ भगवान सुपार्श्वनाथ अनुराधा नक्षत्रमें मोक्ष पधारे थे। चंद्रप्रभ ज्येष्ठामें श्रेयांसनाथ धनिष्ठामें, वासुपूज्य अश्विनीमें, मल्लिनाथ भरणीमें और भगवान महावीर स्वाति नक्षत्रमें मोक्ष जांयगे तथा इनसे अतिरिक्त जितने तीर्थंकर हुये वे अपने अपने जन्मके नक्षत्रोंमें मोक्ष पधारे थे ॥ २०७–२०८ ॥ भगवान शांति कुंथु और अरनाथ ये तीन

जिनेंद्र तो तीर्थंकर चक्रवर्ती थे इनके सिवाय अन्य जिनेंद्र केवल तीर्थंकर और मंडलेश्वर राजा थे ॥ २०९ ॥ भगवान चंद्रप्रभके शरीरका रंग चंद्रमाके समान, पुष्पदंतका शंखके समान, सुपार्श्वका प्रियंगुवृक्षके समान, पार्श्वनाथका मेघके समान पद्मप्रभका पद्मराग मणिके समान, वासुपूज्यका रक्त ढाकपुष्पके समान, मुनिसुव्रतनाथका नीले अंजनगिरिके समान, नेमिनाथका नीलकंठके कंठके समान और शेष तीर्थंकरोंका तपनीय सुवर्णके समान रंग था ॥ २१०–२१३ ॥ वासुपूज्य मल्लिनाथ नेमिनाथ पार्श्वनाथ और वर्धमान ये पांच तीर्थंकर तो कुमार अवस्थामें ही विरागी होगये थे–इन्होंने राज विभूतिका जरा भी भोग न किया और शेषके तीर्थंकरोंने राज्य भोगकर दीक्षा धारण की थी ॥ २१४ ॥ भगवान ऋषभ देवका तपकल्याण विनीतामें और नेमिनाथका द्वारिकामें हुआ था परंतु शेष तीर्थंकरोंका जन्मकल्याण उनकी जन्मभूमियोंमें ही हुआ था ॥११५॥ भगवान सुमतिनाथ, मल्लिनाथ और पार्श्वनाथने भोजनकर दीक्षा धारणकी थी और दीक्षा वाद तेला किया था। वासुपूज्यनेदीक्षाके वाद उपवास किया था और शेष तीर्थंकरोंने दीक्षावाद वेला किया था। श्रेयांसनाथ सुमतिनाथ मल्लिनाथ नेमिनाथ और पार्श्वनाथ तीर्थंकरोंने पूर्वाह्नकालमें और अन्य तीर्थंकरोंने अपराह्नकालमें दीक्षा धारणकी थी। भगवान महावीर ज्ञातृवनमें योग धारण करैंगे और वासुपूज्यने क्रीड़ोद्यानमें ऋषभनाथने सिद्धार्थ वनमें धर्मनाथने वप्रकावनमें मुनिसुव्रतनाथने नील गुफाके समीप, धाराथा पार्श्वनाथ मनोरमा उद्यानमें योग धारण करैंगे और शेष तीर्थंकरोंने अपने २ नगरोंके निकट सहस्राम्रवनमें जाकर दीक्षाली थी ॥ २१६–२२० ॥ भगवान ऋषभनाथकी शिविका सुदर्शना, अजितनाथकी सुप्रभा, संभवनाथकी सिद्धार्था, अभिनंदनकी अर्थसिद्धा, सुमतिनाथकी अभयंकरी, पद्मप्रभकी निवृत्तिकरी, सुपार्श्वकी मनोरमा, चंद्रप्रभका मनोहरा पुष्पदंतकी सूर्यप्रभा शीतलनाथकी शुक्रप्रभा श्रेयांसनाथकी विमलप्रभा वासुपूज्यकी पुष्पाभा विमलनाथकी देवदत्ता अनंतनाथकी सागरदत्तिका धर्मनाथकी नागदत्ता शांतिनाथकी सिद्धार्थतिथिका कुंथुनाथकी विजया अरनाथकी वैजयन्ती मल्लिनाथकी जयंती मुनिसुव्रतनाथकी अपराजिता नमिनाथकी उत्तरकुरु और नेमिनाथकी देवकुरु थी। तथा पार्श्वनाथकी विमलाभा और वर्धमानकी चंद्राभा होगी ॥२२१–२२५॥ भगवान ऋषभनाथ चैतवदी नौमी को दीक्षित हुये थे। मुनिसुव्रत वैशाखवदी नवमीके दिन, वैशाखशुक्ल प्रतिपदके दिन, कुंथुनाथ, सुमतिनाथ वैशाखसुदी नवमीके दिन, अनंतनाथ जेठवदी द्वादशीके दिन शांतिनाथ जेठवदी त्रयोदशीके दिन, जेठसुदी द्वादशीके दिन सुपार्श्वनाथ, अषाढवदी दशमीके दिन नमिनाथ, श्रावणसुदी चौथके दिन नेमिनाथ, कातिकवदी तेरसके दिन पद्मप्रभ, अगहनवदी दशमीके दिन सुमतिनाथ, अगहनसुदी प्रतिपदाके दिन पुष्पदंत, अगहनसुदी दशमीके दिन अरनाथ, अगहनकी

पूर्णमासी को संभवनाथ अगहन सुदी एकादशीके दिन मल्लिनाथ, पूषवदी एकादशीके दिन चंद्रप्रभ और पार्श्वनाथ, माहवदी द्वादशीके दिन शीतलनाथ माहसुदी चौथके दिन विमलनाथ, माहसुदी नौमीके दिन अजितनाथ, माहसुदी द्वादशीको अभिनंदन, माहसुदी त्रयोदशीको धर्मनाथ, फागुनवदी तेरसको श्रेयांसनाथ, फागुनवदी चौदसको वासुपूज्य, भगवान दीक्षित हुये थे ॥ २२६–२३६ ॥ भगवान ऋषभदेवकी पारणा एकवर्षवाद, "मल्लिनाथ पार्श्वनाथकी चौथेदिन" और अन्य तीर्थंकरोंकी तीसरे दिन हुई थी ॥ ३७ ॥ भगवान ऋषभदेवको पारणामें इक्षुरस मिला था और अन्य तीर्थंकरोंको गौके दूधके वने भांति २ के पकवान मिले थे ॥ २३८ ॥ भगवान ऋषभ देवकी पारणाका स्थान हस्तिनापुर था अजितका अयोध्या, संभवका श्रावस्ती, अभिनंदनका विनीता, सुमतिनाथका विजयपुर, पद्मप्रभका मंगलपुर, सुपार्श्वका पाटलीखंड, चंद्रप्रभका पद्मखंड, पुष्पदंतका श्वेतपुर, शीतलनाथका अरिष्टपुर, श्रेयांसका सिद्धार्थपुर, वासुपूज्यका महापुर, विमलका धान्यवटपुर, अनंतनाथका वर्धमानपुर, धर्मनाथका सौमनसपुर, शांतिनाथका मंदरपुर, कुंथुनाथका हस्तिनापुर, अरनाथका चक्रपुर, मल्लिनाथका मिथिला मुनिसुव्रतका राजगृहनगर, नमिका वीरपुर, और नेमिनाथका द्वारिका था तथा पार्श्वनाथका काम्याकृत और महावीरका कुंडपुर होगा ॥ २३९–२४४ ॥ राजाश्रेयांस ब्रह्मदत्त सुरेंद्रदत्त इंद्रदत्त पद्मक सोमदत्त महादत्त सोमदेव पुष्पक पुनर्वसु सुनंद जय विशाख धर्मसिंह सुमित्र धर्ममित्र अपराजित नंदिषेण वृषभदत्त दत्त, वरदत्त नृपति धन्य और वकुल ये चौवीसो महानुभाव चौवीसो भगवानको क्रमसे पारणा करानेवाले हैं। जिनके ये नाम गिनाये हैं वे आदि दाता थे और इन सबोंके दान देते समय जो रत्नवर्षा हुई थी वह अधिकसे अधिक साढ़े बारह करोड़ और कमसे कम उतनेही लाख (साढ़े बारह लाख) थी ॥२४५–२५०॥ उपर्युक्त दाताओंमें आदिके और अंतके दो दाता तो महारमणीय श्याम, और शेष सुवर्णके समान शरीरके धारक थे ॥ २५१ ॥ अनेक तो उनमें उसी भवमें तप आराधनकर मोक्ष चलेगये थे और बहुतसे भगवान तीर्थंकरके बाद तीसरे भवसे मोक्ष गये थे ॥२५२॥ ऋषभनाथ, मल्लिनाथ और पार्श्वनाथ इन तीन तीर्थंकरोंको तो केवल ज्ञान तेला करनेके वाद उत्पन्न हुआ था वासुपूज्यको एक उपवासके बाद और शेष तीर्थंकरोंको वेला करनेके बाद केवलज्ञानका लाभ हुआ था भगवान ऋषभदेवको तालनगरके शकटामुख वनमें केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ था और नेमिनाथको गिरनारपर हुआ था तथा पार्श्वनाथको काशीके समीप वनमें और महावीरको ऋजुकूला नदीके किनारे होगा परंतु शेष तीर्थंकरों को उनके जन्मनगरोंके उद्यानोंमें ही हुआ था ॥ २५३–२५५ ॥ वृषभनाथ श्रेयांसनाथ मल्लिनाथ नेमिनाथ और पार्श्वनाथको दुपहरके पहिले और शेष तीर्थंकरोंको दुपहरके वाद केवलज्ञान हुआ था ॥२५६॥ फागुन वदी एकादशीके दिन भगवान ऋषभ-

नाथको केवल ज्ञान हुआ था फागुनवदी द्वादशीके दिन मल्लिनाथको, फागुन वदी षष्ठीके दिन मुनिसुव्रतको, फागुनवदी सातेके दिन सुपार्श्व और चंद्रप्रभको, चैतवदी चौथके दिन पार्श्वनाथको, चैतवदी अमावस्याके दिन अनंतनाथ भगवानको, चैतसुदी तीजके दिन नमिनाथ और कुंथुनाथको, चैतसुदी दशमीके दिन सुमतिनाथ और पद्मप्रभको, महावीरको वैशाख सुदी दशमीके दिन, क्वार सुदी पडिवाके दिन नेमिनाथको, कातिक वदी पांचेके दिन संभव नाथको, पुष्पदंतको कातिक सुदी तीजके दिन, कातिक सुदी द्वादशीके दिन अरनाथको, पूष वदी चौदशके दिन शीतलनाथको, पूषवदी दशमीके दिन विमलनाथको, पूष सुदी एकादशीके दिन शांतिनाथको, पूष सुदी चौदसके दिन अजितनाथको, पौषकी पूर्णिमासीके दिन भगवान अभिनंदन और धर्मनाथको, माघ (वदी) अमावसके दिन श्रेयांसनाथको और माहसुदी दोजके दिन भगवान वासुपूज्यको केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था ॥ २५७–२६५ ॥

माघ वदी चौदशके दिन भगवान ऋषभनाथ मोक्ष गये थे फागुनवदी चौथके दिन पद्मप्रभ, फागुन बदी छठके दिन सुपार्श्वनाथ, फागुन बदी द्वादशीके दिन मुनिसुव्रत, फागुन सुदी पांचेके दिन मल्लिनाथ और वासुपूज्य, चैतकी अमावस्याके दिन अनंतनाथ और अरनाथ, चैत सुदी पंचमीके दिन अजितनाथ, चैत सुदी छठेके दिन संभव, चैत सुदी दशमीके दिन सुमति, वैशाख बदी चौदशके दिन नमि, वैशाख सुदी पड़िवाके दिन कुंथु, वैशाख सुदी सातेंके दिन अभिनंदन, जेठ बदी चौदशके दिन शांति, जेठ सुदी चौथके दिन धर्म, अषाढ़ वदी अष्टमीके दिन विमल, अषाढ़ सुदी आठेके दिन नेमि, श्रावण सुदी सातेके दिन पार्श्व, श्रावणकी पूर्णमासीके दिन श्रेयांस, भादों सुदी सातेके दिन चंद्रप्रभ, भादों सुदी आठेके दिन पुष्पदंत, और क्वार सुदी पांचेको शीतलनाथ निर्वाण गये थे। तथा कातिक वदी चौदशके दिन भगवान महावीर मोक्ष जांयगे ॥ २६६–२७५ ॥

ऋषभनाथ अजितनाथ श्रेयांसनाथ शीतलनाथ अभिनंदननाथ सुमतिनाथ सुपार्श्वनाथ और चंद्रप्रभ इन तीर्थंकरोंकी तो पूर्वाह्न कालमें मुक्ति हुई। संभव पद्मप्रभ पुष्पदंत और वासुपूज्य ये अपराह्न समयमें मोक्ष गये विमलनाथ अनंतनाथ शांतिनाथ कुंथुनाथ मल्लिनाथ मुनिसुव्रत नेमिनाथ और पार्श्वनाथ ये सायंकालमें मोक्षगये। और धर्मनाथ अरनाथ नमिनाथ एवं महावीर प्रातः कालमें निर्वाण पधारे ॥२७६–२७९॥

भगवान ऋषभनाथ वासुपूज्य और नेमिनाथतो पर्यंक आसनसे मोक्ष गये और बाकीके तीर्थंकरोंनें कायोत्सर्ग मुद्रासे मुक्तिका लाभ किया ॥ २८० ॥

भगवान ऋषभनाथने तो मुक्ति जानेके चौदह दिन पहिले और भगवान महावीरने दो दिन प्रथम विहार करना बंद किया किंतु शेष तीर्थंकरोंने मोक्ष जानेसे एक मास पूर्व विहार करना छोड़ दिया था ॥ २८१ ॥

भगवान महावीरके साथ छत्तीस मुनि मोक्ष गये थे तथा पार्श्वनाथके साथ पांचसौ छत्तीस, नेमिनाथके साथ भी पांचसौ छत्तीस, मल्लिनाथके साथ पांचसौ, शांतिनाथके साथ नौ सौ, धर्मनाथके साथ आठसौ एक, विमल नाथकेसाथ छै हजार सातसौ वारह, अनंतनाथके साथ सात हजार पांचसौ सात, पद्मप्रभके साथ तीन हजार आठसौ और वृषभनाथ भगवानके साथ दश हजार मुनिराज मोक्ष गये परंतु इनसे अतिरिक्त सब तीर्थंकरोंने एक एक हजार मुनियोंके साथ मोक्ष लाभ किया ॥ २८२–२८५ ॥

भरत सगर मघवा सनत्कुमार शांतिनाथ कुंथुनाथ अरनाथ सुभूम महापद्म हरिषेण जय और ब्रह्मदत्त ये वारह चक्रवर्ती थे और न्यायपूर्वक छै खंडकी पृथ्वीपर शासन करते थे ॥ २८६–२८७ ॥ त्रिपृष्ट द्विपृष्ट स्वयंभू पुरुषोत्तम पुरुषसिंह पुंडरीक दत्त नारायण और कृष्ण ये नौ नारायण थे। ये तीन खंडकी पृथ्वीके शासक और अखंड पौरुषके भंडार थे ॥ २८८–२८९ ॥ विजय अचल सुधर्म सुप्रभ सुदर्शन नंदी नंदिमित्र रामचंद्र और पद्म ये नौ वलभद्र थे ॥२९०॥ अश्वग्रीव तारक मेरुक निशुंभ मधुकैटभ वलि प्रहरण रावण और जरासंध ये नौ प्रतिनारायण थे ॥ १९१–१९२ ॥ विजय आदि वलभद्रोंने पूर्वभवमें किसीप्रकारका निदान न वांधा था इसलिये वे ऊर्ध्वगामी थे अर्थात् उनमें कोई मोक्ष और कोई स्वर्ग गये थे परंतु नव नारायण और प्रतिनारायण निदानी थे–पूर्वभवमें उन्होंने अपने शत्रुके नाश करनेके लिये संकल्प करलिया था इसलिये वे अधोगामी थे–उन्हैं नरक जाना पड़ा ॥ २९३ ॥

भगवान ऋषभनाथके समयमें भरत चक्रवर्ती हुआ अजितनाथके समयमें सगर एवं धर्मनाथ और शांतिनाथके अंतरालमें मघवा और सनत्कुमार हुये। शांति कुंथु और अरनाथ ये तीन तीर्थंकर ही चक्रवर्ती थे तथा अरनाथके पीछे और मल्लिनाथके पहिले सुभूम चक्रवर्ती, मुनिसुव्रत और मल्लिनाथके अंतरालमें महापद्म, मुनिसुव्रतके वाद नमिनाथसे पहिले हरिषेण, नमिके वाद नेमिनाथके प्रथम जयसेन और नेमिनाथके वाद पार्श्वनाथके समयमें ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती हुआ ॥ २९४–२९७ ॥ इन वारह चक्रवर्तीयोंमें आठ तो मोक्षगये ब्रह्मदत्त और सुभौम सातवी पृथ्वी गये एवं मघवा और सनत्कुमार चक्रवर्तीने तीसरा स्वर्ग पाया ॥ २९८ ॥

भगवान श्रेयांसनाथके समय पहिला नारायण, वासुपूज्यके समयमें दूसरा, विमल नाथके समयमें तीसरा, अनंतनाथके समयमें चौथा और धर्मनाथके समयमें पांचवां इसप्रकार श्रेयांससे धर्मनाथ तक त्रिपृष्टसे पुरुषसिंह पर्यंत पांच नारायण हुये तथा अरनाथ और मल्लिनाथके अंतरालमें पुंडरीक मुनिसुव्रत और मल्लिनाथके अंतरालमें दत्त, मुनिसुव्रत और नमिके अंतरालमें लक्ष्मण एवं नेमिनाथके समयमें कृष्ण हुआ ॥ २९९–३०१ ॥

प्रथम नारायण त्रिपृष्ठ सातवे नरक गया द्विपृष्ट स्वयंभू पुरुषोत्तम पुरुषसिंह और

पुंडरीक ये पांच नारायण छठी मघवी भूमि गये। सातवां दत्त नारायण अरिष्टा नामक पांचवे नरक गया और अंतके नारायण लक्ष्मण और श्रीकृष्ण तीसरे मेघा नामके नरक गये ॥ ३०२ ॥

विजय अचल सुधर्म सुप्रभ सुदर्शन नंदी नंदिमित्र और रामचंद्र ये आठ बलभद्र तो मोक्ष गये और नवमें बलभद्र पद्म जो (तुम्हारे) कृष्णके भाई हैं पांचवें ब्रह्मस्वर्ग जायंगे ॥३०३॥

भगवान ऋषभदेवका शरीर पांचसौ धनुष ऊंचा था अजितनाथका साढ़े चारसौ धनुष संभवनाथका चारसौ, अभिनंदननाथका साढ़े तीनसौ सुमतिनाथका तीनसौ पद्मप्रभका ढाईसौ सुपार्श्वनाथका दोसौ चंद्रप्रभका डेढ़सौ पुष्पदंतका सौ शीतलनाथका नव्वे श्रेयांसनाथका अस्सी वासुपूज्यका सत्तर विमलनाथका साठ अनंतनाथका पचास धर्मनाथका पैंतालीस शांतिनाथका चालीस कुंथुनाथका पैंतीस अरनाथका तीस मल्लिनाथका पच्चीस मुनिसुव्रतका वीस नमिनाथका पंद्रह औरनेमिनाथका दशधनुष प्रमाण था तथा पार्श्वनाथका नौ हाथका और वर्धमानका सात हाथका होगा ॥ ३०४–३०५ ॥

प्रथम चक्रवर्तीका शरीर पांचसौ धनुष ऊंचा था दूसरेका साढ़े चारसौ तीसरेका साढ़े ब्यालीस चौथेका साढ़े इकतालीस पांचवेंका चालीस छटेका पैंतीस सातवेंका तीस आठवेका अट्ठावीस नवमेका बावीस दशवेका वीस ग्यारहवेका चौदह और बारहवेका सात धनुष था ॥ ३७६–३०९ ॥

प्रथम वासुदेवके शरीरकी ऊंचाई अस्सी धनुष थी दूसरेकी सत्तर तीसरेकी साठ चौथेकी पचपन पांचवेंकी चालीस छठेकी छब्बीस सातवेकी बावीस आठवेंकी सोलह और नवमेंकी दश धनुष थी तथा यही ऊंचाई क्रमसे बलभद्र और प्रतिनारायणोंकी समझ लेनी चाहिये ॥ ३१०–३११ ॥

भगवान ऋषभदेवकी आयु चौरासी लाख पूर्वकी थी अजितकी बहत्तर लाख पूर्व, संभवनाथकी साठ लाख पूर्व, अभिनंदनकी पचास लाख पूर्व, सुमतिनाथकी चालीस लाख पूर्व, पद्मप्रभकी तीसलाख पूर्व, सुपार्श्वकी वीस लाख पूर्व, चंद्रप्रभकी दश लाख पूर्व, पुष्पदंतकी दोलाख पूर्व, शीतलनाथकी एक लाख पूर्व, श्रेयांसनाथकी चौरासी लाख वर्ष, वासुपूज्यकी बहत्तर लाख वर्ष, विमलकी साठ लाख वर्ष, अनंतकी तीस लाख वर्ष, धर्मकी दश लाख वर्ष, शांतिकी एक लाख, कुंथुकी पिचानवे हजार वर्ष, अरकी चौरासी हजार वर्ष, मल्लिकी पचपन हजार वर्ष, मुनिसुव्रतकी तीस हजार वर्ष, नमिकी दश हजार वर्ष और नेमिकी एक हजार वर्ष थी तथा पार्श्वकी सौ वर्ष और महावीर भगवानकी बहत्तर वर्षकी होगी ॥ ३१२–३१६ ॥

प्रथम चक्रवर्तीकी आयु चौरासी लाख पूर्व, दूसरेकी बहत्तर लाख पूर्व, तीसरेकी पांच लाख, चौथेकी तीन लाख, पांचवेंकी एक लाख, छठेकी विचानवे हजार, सातवेकी

चौरासी हजार, आठवेकी अड़सठ हजार, नवमेकी तीस हजार, दशवेंकी छबीस हजार, ग्यारहवेकी तीन हजार और वारहवेकी सातसौ वर्षकी थी ॥ ३१७–३१९ ॥

प्रथम नारायणकी आयु चौरासी लाख वर्षकी थी दूसरेकी वहत्तर लाख, तीसरेकी साठ लाख, चौथेकी तीस लाख, पाचवेकी दश लाख, छठेकी पैंसठ हजार वर्ष, सातवेकी वत्तीस हजार, आठवेकी वारह हजार और नवमेंकी एक हजार वर्षकी थी तथा इसीप्रकार क्रमसे आयु प्रतिनारायणोंकी थी ॥ ३२०–३२१ ॥

प्रथम वलदेवकी आयु सतासी लाख वर्षकी थी दूसरेकी सतहत्तर लाख, तीसरेकी साठ लाख, चौथेकी पैंतीसलाख, पांचवेकी दश लाख, छठेकी साठ हजार, सातवेकी तीस हजार, आठवेकी सत्रह हजार और नवमेकी वारहसौ वर्षकी थी ॥३२२–३२३॥

भगवान ऋषभदेवके समयमें भरत और अजितनाथके समयमें दूसरा चक्रवर्ती हुआ पश्चात् तेरह तीर्थंकरोंके समयमें कोई चक्रवर्ती न हुआ पंद्रहवें तीर्थंकरके वाद दो चक्रवर्ती और तीन तीर्थंकर ही चक्रवर्ती एवं एक चक्रवर्ती इसप्रकार छै चक्रवर्ती हुये फिर तीन जिनेंद्र एक चक्रवर्ती एक जिनेंद्र एक चक्रवर्ती दो तीर्थंकर एक चक्रवर्ती एक तीर्थंकर एक चक्रवर्ती और फिर दो तीर्थंकर हुये इसप्रकार यह चक्रवर्तियोंका क्रम है ।

दश तीर्थंकर तक तो कोई भी नारायण न हुआ पश्चात् ग्यारहसे पंद्रहवे तीर्थंकर तक पांच नारायण हुये पश्चात् छै तीर्थंकर एक नारायण तीन तीर्थंकर एक नारायण दो तीर्थंकर दो नारायण और तीन तीर्थंकर हुये—

भगवान ऋषभदेवकी आयु चौरासी लाख पूर्वकी थी उसमें वीस लाख पूर्व तो उनके कुमार कालमें वीते त्रेसठ लाख पूर्व राज्य किया हजार वर्ष तक तप और हजार वर्ष घाट एक लाख पूर्व पर्यंत केवल ज्ञान कल्याणमें व्यतीत हुआ १ । अजितनाथकी आयु वहत्तर लाख पूर्वकी थी उसमें अठारह लाख पूर्वतक तो कुमार काल रहा त्रेपन लाख पूर्वतक राज्य किया वारह वर्ष एक पूर्वांग (चौरासी लाख वर्ष) संयममें और वारह वर्ष एक पूर्वांग घाट एक लाख पूर्व केवल ज्ञान कल्याणकमें व्यतीत किया २ । संभावनाथकी आयु साठ लाख पूर्वकी थी उसमें पंद्रह लाख पूर्वतो कुमार कालमें वीते चवालीस लाख पूर्व और चार पूर्वांग तक राज्य किया चौदह वर्ष तक संयमी रहे और चौदह वर्ष एवं चार पूर्वांग घाट एक लाख पूर्व पर्यंत केवल ज्ञान कल्याणकमें व्यतीत किया ३ । भगवान अभिनंदनकी आयु पचास लाख पूर्वकी थी उसमें साढ़े वारह लाख पूर्वतक तो उन्होंने कुमार अवस्थाके सुख भोगे साढ़े छत्तीस लाख पूर्व और आठ पूर्वांग तक राज्य किया

१–वृषाद्या धर्मपर्यंता जिनाः पंचदश क्रमात् । निरंतरास्ततः शून्ये त्रिजिनाः शून्ययोर्द्वयं ॥
जिनः शून्यद्वयं तस्माज्जिनः शून्यद्वयं पुनः । जिनः शून्यं जिनः शून्यं द्वौ जिनेंद्रौ निरंतरौ ॥
इन श्लोकोंका भाव न ज्ञात हुआ ।

अठारह वर्ष तक संयमी रहै और आठ पूर्वांग एवं अठारह वर्ष घाट एक लाख पूर्वतक केवलज्ञानी हो समवसरणमें विराजमान रहै ४। सुमतिकी आयु चालीस लाख पूर्वकी थी उसमें दश लाख पूर्वतक तो उनका कुमार काल रहा उनतीस लाख बारह पूर्वांग पर्यंत राज्य सुख भोगा बीस वर्ष संयममें और बारह पूर्वांग और बीसवर्ष घाट एक लाख पूर्व केवल ज्ञान कल्याणमें व्यतीत हुआ ५। पद्मप्रभकी आयु तीसलाख पूर्वकी थी उसमें साढ़े सात लाख पूर्व तक तो वे कुमार रहै साढ़े इक्कीस लाख पूर्व और सोलह पूर्वांग तक राज्य किया छै मास संयम कालमें व्यतीत हुये और सोलह पूर्वांग एवं छै मास कम एक लाख पूर्वपर्यंत केवल ज्ञान विभूतिका अनुभव किया ६। भगवान सुपार्श्वकी आयु बीस लाख पूर्वकी थी उसमें पांच लाख पूर्व पर्यंत तो उन्होंने कुमारावस्थाका भोग किया चौदह लाख पूर्व और बीस पूर्वांग पर्यंत राज्य भोगा नौ वर्ष संयमकालमें बीते और बीस पूर्वांग एवं नौ वर्ष कम एक लाख पूर्व पर्यंत केवलज्ञानी हो समवसरणमें विराजे ७। चंद्रप्रभका आयु दशलाख पूर्वका था ये ढाई लाख पूर्वतक कुमार रहै छै लाख पूर्व और चौवीस पूर्वांगतक राज्यकिया तीन मास पर्यंत संयमी रहे और चौवीस पूर्वांग एवं तीन मास कम एक लाख पूर्वपर्यंत केवल ज्ञान कल्याणकका सुख भोगा ८। पुष्पदंतका आयुकाल दो लाख पूर्व था इनका पचास हजार पूर्व तो कुमारकालमें बीता पचास हजार पूर्व और अट्ठाईस पूर्वांगतक राज्य किया चार मास संयममें बीते और अट्ठाईस पूर्वांग एवं चार मास घाट एक लाख पूर्व पर्यंत केवली हो पृथ्वीपर विहार आदि किया ९। शीतल नाथका आयु एक लाख पूर्वका था उसमें पच्चीस हजार पूर्व तो इनके कुमार अवस्थामें बीते पचास हजार पूर्वपर्यंत राज्य किया तीन मासतक संयमी रहै और तीन मासकम पच्चीस हजार पूर्वतक केवल ज्ञान विभूतिका सुख भोगा १०। श्रेयांस नाथका आयु चौरासी लाख वर्षका था उसमें इक्कीस लाख वर्ष तो इनके कुमार कालमें बीते ब्यालीस लाख वर्ष पर्यंत राज्य किया दो मास संयममें बिताये और दो मास घाट इक्कीस लाख वर्ष केवल ज्ञान विभुतिका अनुभव किया ११। भगवान वासुपूज्य बाल ब्रह्मचारी थे राज्य उन्होंने न किया था इसलिये अठारह लाख वर्ष पर्यंत तो वे कुमार रहै, दो मास संयममें बीते और दो मास घाट चौअन वर्ष तक उन्होंने केवल ज्ञान विभूतिका अनुभव किया इसप्रकार इनका आयुकाल बहत्तर लाख वर्षका था १२। विमलकी आयु साठ लाख वर्षकी थी इनका पंद्रह लाख वर्ष तो कुमार कालमें बीता तीस वर्ष तक राज्य किया तीन मास तक संयमी रहै और तीन मास तक पंद्रह लाख वर्ष पर्यंत केवल ज्ञान जन्य सुखका लाभ किया १३। भगवान अनंत साढ़े सात लाख वर्ष तक कुमार रहै पंद्रह लाख वर्ष पर्यंत राज्य विभूतिका भोग किया दो मास संयमी रहै और और दो मास घाट साडे सात लाख वर्ष पर्यंत केवलज्ञान विभूतिका अनुभव किया

इसप्रकार इनकी कुल आयु मिलाकर तीस लाख वर्षकी थी १४। भगवान धर्मका आयुकाल दश लाख वर्षका था उसमें ढाई लाख वर्ष तो उनके कुमार कालमें वीते पांच लाख वर्ष पर्यंत राज्य किया एक मास पर्यंत संयमी रहै और एक मास घाट ढाई वर्ष तक केवली हो विहार आदि किया १५। भगवान शांति पचीस हजार वर्ष पर्यंत कुमार रहै पचास वर्ष तक राज्य किया सोलह वर्ष संयमी रहै और सोलह वर्ष घाट पचीस हजार वर्ष पर्यंत अपने उपदेशसे जीवोंको बोधा इसप्रकार कुल आयु इनकी एक लाख वर्षकी थी १६। भगवान कुंथुकी आयु पचानवे हजार वर्षकी थी उसमें पौने चौवीस हजार वर्ष तो कुमार कालमें वीता साडे सैंतालीस हजार वर्ष पर्यंत राज्य किया सोलह वर्ष तक संयमी रहै और सोलह वर्ष घाट पौने चौवीस वर्ष पर्यंत राज्य विभूतिका अनुभव किया १७। भगवान अर इक्कीस हजार वर्ष पर्यंत कुमार रहै ब्यालीस हजार वर्ष पर्यंत राज्य किया सोलह वर्ष संयममें वीते और सोलह वर्ष घाट इक्कीस हजार वर्ष पर्यंत केवलज्ञान विभूति प्राप्त कर पृथ्वीपर विहार किया इसप्रकार इनकी कुल आयु चौरासी हजार वर्षकी थी १८। भगवान मल्लिनाथ वाल ब्रह्मचारी थे उन्होंने न तो विवाह किया और राज्य भोगा था वे सौ वर्ष तक तो कुमार रहे पश्चात् मुनी हो छै दिन संयममें विताये और छै दिन घाट चौअन हजार और नोसौ वर्ष पर्यंत केवलज्ञान जंन्य विभूतिका सुख भोगा इसप्रकार सब आयु मिल कर इनकी पचपन हजार वर्षकी थी १९। मुनिसुव्रतका आयु तीस हजार वर्षका था उसमें साढ़े सात हजार वर्ष तो इनके कुमार कालमें वीते पंद्रह हजार वर्ष पर्यंत राज्य किया ग्यारह मास घाट साडे सात हजार वर्ष पर्यंत केवलज्ञानी हो समवसरणमें विराजे २०। नमिका आयु दश हजार बर्षका था उसमें कुमार काल ढ़ाई हजार वर्ष राज्यकाल पांच हजार वर्ष, नौ वर्ष संयमकाल और नौ वर्ष घाट ढ़ाई हजार वर्ष केवलज्ञान कल्याणकका भोग भोगा २१। नेमिका आयु एक हजार वर्षका था इनके तीनसौ वर्ष कुमार कालमें वीते संसारसे उदासीन हो जानेके कारण इन्होंने विवाह न कर मुनिव्रत धारण करलिया छप्पन दिन तक संयमी रहै और छप्पन घाट सातसौ वर्ष तक केवल ज्ञान विभूतिका भोग किया २२ पार्श्वका आयु सौ वर्ष उसमें तीस वर्ष तक वे कुमार रहे विवाह आदि न कर मुनि हो चार मास संयमी रहै और चार मास घाट सत्तर वर्ष पर्यंत केवलज्ञान विभूति पाकर विहार आदि किया २३ और भगवान महावीर की आयु बहत्तर वर्ष उसमें तीस वर्ष कुमार कालमें वीते विवाह और राज्यका भोग न कर वारह वर्ष संयमी रहै एवं तीस वर्ष पर्यंत केवलज्ञानी हो जीवोंका कल्याण किया २४ ॥ ३३०-३४१ ॥

भगवान ऋषभके गणधर चौरासी थे अजितके नव्वे संभवके एकसौ पांच अभि-

नंदनके एकसौ तीन सुमतिके एकसौ सोलह पद्मप्रभके एकसौ ग्यारह सुपार्श्वके पिचानवे चंद्रप्रभके तिरानवे पुष्पदंतके अठासी शीतलके इक्यासी श्रेयांसके सतहत्तर वासुपूज्यके छ्यासठ विमलके पचपन अनंतके पचास धर्मके तेतालीस शांतिके छत्तीस कुंथुके पैंतीस अरके तीस मल्लिके अट्ठाईस मुनिसुव्रतके अठारह नमिके सत्रह नेमिके ग्यारह पार्श्वके दश और महावीरके ग्यारह गणधर हैं॥ ३४२–३४५॥

भगवान ऋषभदेवके प्रधान गणधर वृषभसेन थे, अजिनाथके सिंहसेन, संभवनाथके चारुदत्त, अभिनंदनके वज्र, सुमतिनाथके चमर, पद्मप्रभके वज्रचमर, सुपार्श्वनाथके वलि, चंद्रप्रभके दत्तक पुष्पदंतके वैदर्भ शीतलके अनगार श्रेयांसके कुंथु वासुपूज्यके सुधर्म विमलके मंदरार्य, अनंतके जय, धर्मके अरिष्टसेन, शांतिके चक्रायुध, कुंथुके स्वयंभु, अरके कुंथु, मल्लिके विशाखाचार्य, मुनिसुव्रतके मल्लि, नमिके सोमक, नेमिके वरदत्त, सुपार्श्वके स्वयंभू और अंतिमतीर्थंकर महावीरके इंद्रभूति (गौतम) नामक गणधर थे ये समस्त गणधर सातो प्रकारकी ऋद्धियोंके धारक और श्रुतज्ञानके पारगामी थे॥ ३४६–३४९॥

जिससमय भगवान महावीर दीक्षित हुये थे उससमय उनके साथमें तीनसौ राजा दीक्षित हुये थे पार्श्वके साथ छै सौ छै, मल्लिके साथ भी छै सौ छै, वासुपूज्यके साथ छैसौ, ऋषभके साथ चार हजार और शेष तीर्थंकरोंमें प्रत्येकके साथ हजार हजार राजा दीक्षित हुये थे॥ ३५०–३५१॥

भगवान ऋषभदेवके कुल यति चौरासी हजार थे अजितके एक लाख, संभवनाथके दो लाख, अभिनंदनके तीन लाख, सुमतिके तीन लाख वीस हजार, पद्मप्रभके तीन लाख तीस हजार, चंद्रप्रभके ढ़ाई लाख, पुष्पदंतके दो लाख, शीतलनाके एक लाख, श्रेयांसनाथके चौरासी हजार, वासुपूज्यके वहत्तर हजार, विमलनाथके अड़सठ हजार, अनंतनाथके छयासठ हजार, धर्मनाथके चौसठ हजार, शांतिनाथके बासठ हजार, कुंथुनाथके साठ हजार, अरनाथके पचास हजार, मल्लिनाथके चालीस हजार, मुनिसुव्रतके तीस हजार, नमिनाथके वीस हजार, नेमिनाथके अठारह हजार, पार्श्वनाथके सोलह हजार और महावीरके चौदह हजार थे॥ ३५३–३५६॥

मुनियोंके संघके सात भेद हैं–पूर्वधारी शिक्षक अवधिज्ञानी केवलज्ञानी विवादी विक्रिया ऋद्धिके धारक और लिपुलमनःपर्ययज्ञानी॥ ३५७॥ भगवान अजितनाथके समवसरणमें चार हजार सातसौ पचास तो पूर्वधारी थे चार हजार एकसौ पचास शिक्षक नौ हजार अवधिज्ञानी, वीस हजार केवली वीस हजार छै सौ विक्रियाऋद्धिके धारक और बारह हजार सातसौ पचास विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी और इतने ही विवादी थे॥ ३५८–३६१॥ अजितनाथके समवसरणमें तीन हजार सातसौ पचास

पूर्वधारी, इक्कीस हजार छै सौ शिक्षक, नौहजार चारसौ अवधिज्ञानी, वीसहजार केवली, वीसहजार चारसौ पचास विक्रिया ऋद्धिके धारक, बारह हजार चारसौ विपुलमती मनःपर्ययज्ञानके धारक और बारह हजार चारसौ विवादी थे ॥ ३६२–३६५ ॥ संभवनाथके समवसरणमें दोहजार एकसौ पचास पूर्वधारी, एकलाख उनतीस हजार तीनसौ शिक्षक, नौहजार छैसौ अवधिज्ञानी, पंद्रह हजार केवली, उन्नीस हजार आठसौ पचास विक्रिया ऋद्धिके धारक, बारह हजार विपुलमती मनःपर्यय ज्ञानी और बारह हजार एक सौ विवादी थे ॥ ३६६–३७० ॥ अभिनंदनके समवसरणमें दो हजार पांचसौ पूर्वधारी, दो लाख तीन हजार पचास शिक्षक, नौ हजार आठ सौ अवधिज्ञानी, सोलह हजार केवलज्ञानी, उन्नीस हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, ग्यारह हजार साडे छै सौ विपुलमती मनःपर्ययज्ञानी ओर ग्यारह हजार ही वादी थे ॥ ३६९–३७४ ॥ भगवान सुमतिके समवसरणमें दो हजार चारसौ पूर्वधारी, दो लाख चौअन हजार तीनसौ पचास शिक्षक, ग्यारह हजार अवधिज्ञानी, तेरह हजार केवलज्ञानी, अठारह हजार चारसौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, दश हजार चारसौ विपुल मती मनःपर्ययज्ञानी और दश हजार चारसौ पचास विवादी थे ॥ ३७५–३७८ ॥ भगवान पद्मप्रभके समवसरणमें दो हजार तीनसौ पूर्वधारी, दो लाख उनहत्तर हजार शिक्षक, दश हजार अवधिज्ञानी, बारह हजार आठसौ केवलज्ञानी, सोलह हजार तीनसौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, नौ हजार विवादी और दश हजार छै सौ विपुलमती मनःपर्ययज्ञानी थे ॥ ३७९–३८१ ॥ भगवान सुपार्श्व नाथके समवसरणमें दो हजार तीनसौ पूर्वधारी थे दो लाख चवालीस हजार नौ सौ वीस शिक्षक, नौ हजार अवधिज्ञानी, ग्यारह हजार तीनसौ केवली, पंद्रह हजार एकसौ पचास विक्रिया ऋद्धिके धारक, नौ हजार छै सौ विपुलमती मनःपर्ययज्ञानी और आठहजार वादी थे। चंद्रप्रभके समवसरणमें दो हजार पूर्वधारी थे। दो लाख चारसौ शिक्षक, आठ हजार विपुलमती मनःपर्ययज्ञानी, आठहजार अवधिज्ञानी दश हजार केवली दश हजार चारसौ विक्रिया ऋद्धिके धारक और सात हजार छै सौ वादी थे। पुष्पदंतके समवसरणमें पंद्रहसौ पूर्वधारी, एक लाख पचपन हजार पांचसौ शिक्षक, आठ हजार चारसौ अवधिज्ञानी, सात हजार पांचसौ केवलज्ञानी तेरह हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, छै हजार पांचसौ विपुलमती मनःपर्ययज्ञानी और सात हजार छै सौ वादी थे ॥ ३८२–३९० ॥ भगवान शीतलके समवसरणमें चौदहसौ पूर्वधारी, उनसठ हजार दो सौ शिक्षक, सात हजार दो सो अवधिज्ञानी, सात हजार केवली, बारह हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, सात हजार पांचसौ विपुलमती मनःपर्ययज्ञानी, और पांच हजार सातसौ विवादी थे। ॥ ३९१–३९३ ॥ श्रेयांसनाथके समवसरणमें तेरह सौ पूर्वधारी, अड़तालीस हजार दो सौ शिक्षक, छै हजार अवधि ज्ञानी, छै हजार पांचसौ केवल ज्ञानी, ग्यारह हजार

विक्रिया ऋद्धिके धारक, छै हजार वादी और पांच हजार मनः पर्यय ज्ञानी थे। भगवान वासुपूज्यके समवसरणमें वारहसौ पूर्वधारी, उनतालीस हजार दो सौ शिक्षक, पांच हजार चारसौ अवधि ज्ञानी, छै हजार केवल ज्ञानी, दश हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, छै हजार मनःपर्ययज्ञानी और चार हजार दो सौ वादी थे ॥ ३९४–३९८ ॥ विमलनाथ भगवानके समवसरणमें ग्यारह सो पूर्वधारी, अड़तीस हजार पांचसौ शिक्षक, चार हजार आठसौ अवधिज्ञानी, पांच हजार पांचसौ केवली, नौ हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, पांच हजार पांचसौ मनःपर्ययज्ञानी और तीन हजार छः सौ विवादी थे॥ ३९९–४०१ ॥ अनंतनाथके समवसरणमें एक हजार पूर्वधारी, उनतालीस हजार पाचसौ शिक्षक, चार हजार तीनसौ अवधिज्ञानी, केवलज्ञानी पांच हजार, विक्रिया ऋद्धिके धारक आठ हजार, मनःपर्ययज्ञानी पांच हजार और विवादी तीन हजार दोसौ थे। ॥ ४०२–४०३ ॥ धर्मनाथके समवसरणमें नौसौ पूर्वधारी, चालीस हजार सातसौ शिक्षक, तीन हजार छैसौ अवधिज्ञानी, चार हजार पांचसौ केवलज्ञानी, सात हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, चार हजार पांचसो विपुलमनी मनःपर्ययज्ञानी और दोहजार आठसौ वादी थे ॥ ४०४–४०६ ॥ शांतिनाथके समवसरणमें आठसौ पूर्वधारी, इकतालीस हजार आठसौ शिक्षक, तीन हजार अवधिज्ञानी, केवलज्ञानी चार हजार, छै हजार विक्रिया ऋद्धिधारी, चार हजार मनःपर्ययज्ञानी और दोहजार चारसौ वादी थे। भगवान कुंथुनाथके समवसरणमें सातसौ पूर्वधारी, तेतालीस हजार एकसौ पचास शिक्षक, दोहजार पांचसौ अवधिज्ञानी, तीन हजार दोसौ केवली, पांच हजार एकसौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, तीन हजार तीनसौ पचाश विपुलमती मनःपर्ययज्ञानी और दोहजार विवादी थे ॥ ४०७–४११ ॥ अरनाथके समवसरणमें छहसौ दश पूर्वधारी, पैंतीस हजार आठसौ पैतीस शिक्षक, दो हजार आठसौ अवधिज्ञानी दो हजार आठसौ केवलज्ञानी, चार हजार तीनसो विक्रिया ऋद्धिके धारक, दो हजार पचपन विपुलमती मनःपर्ययज्ञानी और सोलहसौ वादी थे। मल्लिनाथके समवसरणमें पांचसौ पचास पूर्वधारी थे, उनतीस हजार शिक्षक, वाईससौ अवधिज्ञानी, दो हजार छहसौ पचास केवल ज्ञानी, चौदहसौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, दो हजार दोसौ विपुलमती मनःपर्यय ज्ञानी और दोहजार दोसौही विवादी थे ॥ ४१२–४१९ ॥ मुनिसुव्रतनाथके समवसरणमें पांचसौ पूर्वधारी, इकीस हजार शिक्षक, अठारहसौ अवधिज्ञानी, अठारहसौ केवलज्ञानी, वावीससौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, पंद्रहसौ मनःपर्ययज्ञानी और वारहसौ विवादी थे ॥ ४२०–४२१ ॥ नमिनाथके समवसरणमें साड़े चारसौ पूर्वधारी, वारह हजार छःसौ शिक्षक, सोलहसौ अवधिज्ञानी, सोलहसौ केवलज्ञानी, पंद्रहसौ विक्रिया ऋद्धिधारी, वारहसौ विपुलमति मनः पर्ययज्ञानी और एक हजार विवादी थे ॥ ४२२–

४२३॥ वावीसवे तीर्थंकर नेमिनाथके समवसरणमें चारसौ पूर्वधारी, ग्यारह हजार आठसौ शिक्षक, पंद्रहसौ अवधिज्ञानी, पंद्रहसौ केवलज्ञानी, ग्यारहसौ विक्रिया ऋद्धिधारी, नौसौ विपुलमती मनः पर्ययज्ञानी और आठसौ प्रचंड वादी हैं ॥ ४२४-४२६ ॥ भगवान पार्श्वनाथके समवशरणमें साडे तीनसौ वादी, दशहजार नौ सौ शिक्षक, चौदह सौ अवधिज्ञानी, एक हजार केवलज्ञानी, एक हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, सातसौ पचास विपुलमती मनःपर्ययज्ञानी और छैसौ वादी होंगे ॥ ४२७-४२९ ॥ भगवान महावीरके समवसरणमें तीनसौ पूर्वधारी, नौ हजार नोसौ शिष्य, तेरहसौ अवधिज्ञानी, सातसौ केवलज्ञानी, नोसौ विक्रिया ऋद्धिके धारक, पांचसौ विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी और चारसौ प्रचंड विवाद करनेवाले विवादी मुनि होंगे ॥ ४३०-४३१ ॥

ऋषभदेवके समवसरणमें तीनलाख पचास हजार आर्यिकायें थीं। अजितनाथके समवसरणमें तीनलाख वीस हजार, संभवनाथ अभिनंदननाथ सुमतिनाथ इन तीन तीर्थंकरोंमें हरएकके समवसरणमें तीन २ लाख तीस २ हजार, पद्मप्रभके समवसरणमें चार लाख वीस हजार, सुपार्श्वनाथके समवसरणमें तीनलाख तीसहजार, चंद्रप्रभ पुष्पदंत और शीतलनाथमें प्रत्येकक समवसरणमें तीन २ लाख अस्सी २ हजार, श्रेयांसनाथके समवसरणमें एकलाख वीस हजार, वासुपूज्यके समवसरणमें एकलाख छै हजार, विमलनाथके समवसरणमें एकलाख तीन हजार, अनंतनाथके समवसरणमें एकलाख आठ हजार, धर्मनाथके समवसरणमें वासठ हजार चारसौ, शांतिनाथके समवसरणमें साठ हजार तीनसौ, कुंथुनाथके समवसरणमें साठ हजार साढ़े तीनसौ, अरनाथके समवसरणमें साठ हजार, मल्लिनाथके समवसरणमें पचपन हजार, मुनिसुव्रतनाथके समवसरणमें पचास हजार और नमिनाथके समवसरणमें पैंतालीस हजार थीं तथा नेमिनाथके समवसरणमें चालीस हजार हैं पार्श्वनाथके समवसरणमें अड़तीस हजार और भगवान महावीरके समवसरणमें चौवीस हजार होंगी ॥ ४३२-४४१ ॥

भगवान ऋषभदेवसे आठवें तीर्थंकर चंद्रप्रभ पर्यंत प्रत्येकके समवसरणमें तीन २ लाख श्रावक थे। पुष्पदंतसे शांतिनाथ पर्यंत प्रत्येक तीर्थंकरके समवसरणमें दो २ लाख श्रावक थे और कुंथुनाथसे महावीर पर्यंत प्रत्येकके समवसरणमें एक एक लाख श्रावके थे और होंगे ॥ ४४२ ॥

ऋषभनाथसे चंद्रप्रभ पर्यंत हरएक तीर्थंकरके समवसरणमें पांच २ लाख श्राविकायें थीं पुष्पदंतसे शांतिनाथ पर्यंत तीर्थंकरोंमें प्रत्येकके समवसरणमें चार चार लाख श्राविकायें थीं और कुंथुनाथसे महावीर पर्यंत प्रत्येकके समवसरणमें तीन २ लाख श्राविकायें थीं और होंगी ॥ ४४३ ॥

भगवान ऋषभनाथके साठ हजार नोसौ शिष्य सिद्ध हुये। अजितनाथके सत्तहत्तर

हजार एकसौ, संभवनाथके एकलाख सत्तर हजार एकसौ, अभिनंदननाथके दोलाख अस्सी हजार एकसौ सुमतिनाथके तीन लाख सोलह हजार एकसौ, पद्मप्रभके तीन लाख तेरह हजार छैसौ, सुपार्श्वनाथके दोलाख पिचासी हजार छैसौ, चंद्रप्रभकेदोलाख चौतीस हजार, पुष्पदंतके एकलाख उनासी हजार छैसौ, शीतलनाथके अस्सी हजार छैसो, श्रेयांसनाथके पैसठ हजार छैसो, वासुपूज्यके चौअनहजार छैसो, विमलनाथके इक्यावनहजार तीनसौ, अनंतनाथके इक्यावन हजार, धर्मनाथके उनचास हजार सातसौ, शांतिनाथके अड-तालीस हजार चारसौ, कुंथुनाथके छचालीस हजार आठसौ, अरनाथके सैंतीस हजार दोसौ, मल्लिनाथके अट्ठाईस हजार आठसौ, मुनिसुव्रतके उन्नीस हजार दोसो, और नमिनाथके नौ हजार छैसौ थे तथा नेमिनाथके आठ हजार, पार्श्वनाथके छै हजार दोसौ और महावीरके सात हजार दोसौ होंगे ॥ ४४४–४५३ ॥

ऋषभसे लेकर शांतिपर्यंत तीर्थकरोंको जिससमय केवलज्ञान हुआ था अनेक शिष्य तो उनके उससमय ही मोक्षगये और अनेक पीछे गये तथा अन्य तीर्थंकरोंके शिष्योंमें अनेक तो तीर्थंकरके मोक्ष चले जानेपर एक मास वाद गये कोई दो मास तीन मास और कोई छै मासके वाद गये तथा कई तीर्थंकरोंके शिष्य अपने गुरु (तीर्थंकर) के मोक्ष चले जानेपर एक दो तीन या चार वर्षके वाद निर्वाण धाम पधारे ॥ ४५४–४५५ ॥

ऋषभ अजित संभव इन तीन तीर्थंकरोंमें हरएकके वीस वीस हजार शिष्य अनुत्तर विमानोंमें जाकर उत्पन्न हुये। अभिनंदन सुमति पद्मप्रभ सुपार्श्व चंद्रप्रभ इन पांच तीर्थंकरोंमें प्रत्येकके वारह २ हजार, पुष्पदंत शीतलनाथ श्रेयासनाथ वासुपूज्य और विमलनाथ इन पांच तीर्थंकरोंमें प्रत्येकके ग्यारह २ हजार, अनंतनाथ धर्मनाथ शांतिनाथ कुंथुनाथ और अरनाथ तीर्थंकरोंमें प्रत्येकके दश दश हजार, मल्लिनाथ मुनिसुव्रत नमिनाथ नेमिनाथ और पार्श्वनाथ इन पांच तीर्थंकरोंमें प्रत्येकके अठासी २ सौ गये और महावीरके छै हजार शिष्य अनुत्तर विमान जांयगे ॥ ४५६–४५७ ॥

भगवान ऋषभके सौधर्म स्वर्गसे ऊर्ध्वग्रैवेयक पर्यंत स्थानोंमें तीन हजार एकसौ शिष्य गये, दोहजार नोसो निन्यानवे शिष्य अजितके स्वर्ग गये, नोहजार नोसो संभवके, सात हजार नोसो अभिनंदनके, छै हजार चारसो सुमतिके, चार हजार चारसो पद्मप्रभके, दो हजार चारसो सुपार्श्वके, चारहजार चंद्रप्रभके, नोहजार चारसो पुष्पदंतके, आठ हजार चारसो शीतलके, सात हजार चारसो श्रेयांसके, छै हजार चारसो वासुपूज्यके, पांच हजार सातसो विमलके, पांच हजार अनंतके, चार हजार तीनसो धर्मके, छैहजार छैसौ शांतिके, तीन हजार दो सो कुंथुके, दोहजार आठसो अरके, दोहजार चारसो मल्लिके, दोहजार मुनिसुव्रतके, एक हजार छैसौ नमिके गये तथा एकहजार दोसो नेमिके, एक

हज़ार पार्श्वके और आठसो शिष्य महावीर भगवानके स्वर्ग जांयगे ॥ ४५८-४६६ ॥

भगवान ऋषभके वाद पचास लाख करोड़ सागर वीत जानेपर अजितनाथ हुये अजितसे तीस लाख करोड़ सागर वीतजाने पर संभव, संभवसे दश लाख करोड़ सागरके वाद अभिनंदन, अभिनंदनसे नौ लाख करोड़ सागरके अनंतर सुमति, सुमतिसे नव्वे हजार करोड़ सागर वीत जानेपर पद्मप्रभ, पद्मप्रभसे नो सो करोड़ सागर वीत जाने पर सुपार्श्व, सुपार्श्वसे नोसो करोड़ सागरोंके वाद चंद्रप्रभ, चंद्रप्रभसे नव्वे करोड़ सागरके वाद पुष्पदंत, पुष्पदंतसे नो करोड़ सागरके वाद शीतल, शीतलसे एकसो सागर और छ्यासठ लाख छब्बीस हजार वर्ष घाट एक करोड़ सागर वाद श्रेयांस, श्रेयांससे चौअन सागर वाद वासुपूज्य, वासुपूज्यसे तीस सागर वाद विमल, विमलसे नो सागर वाद अनंत, अनंतसे चार सागर वाद धर्म, धर्मसे पौंनपल्य कम तीन सागर वाद शांति, उनसे आधे पल्यके वाद कुंथु, कुंथुसे हजार करोड़ वर्ष घाट पाव पल्य वाद अर, अरसे हजार करोड़ वर्ष वाद मल्लि, मल्लिसे चौअन लाख वर्ष वाद मुनिसुव्रत, उनसे छै लाख वर्ष वाद नमि और नमिसे पांचलाख वर्ष वाद मैं हुआ तथा मुझसे तिरासी हजार सातसो पचास वर्ष वाद पार्श्व, और पार्श्वसे ढाई सो वर्ष वाद भगवान महावीर होंगे ॥४६७-४७३॥

भगवान महावीरका तीर्थकाल इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण पंचमाकाल होगा और छठे कालका भी प्रमाण इक्कीस हजार वर्षका होगा ॥४७४॥ आदिके आठ और अंतके आठ तीर्थंकर इसप्रकार सोलह तीर्थकरोंके तीर्थ तो विच्छिन्न न हुये और मध्यके सात तीर्थंकरोंके तीर्थोंका विच्छेद हो गया। और वह पाव पल्य, आधा पल्य, पौंन पल्य, पल्य, पौंन पल्य, आध पल्य, और पाव पल्य, इस क्रमसे रहा अर्थात् ऋषभ अजितसे लेकर पुष्पदंत तक तो धर्म तीर्थ वरावर वना रहा—धर्मका नाश न हुआ परंतु पुष्पदंतके वाद धर्मका पाव पल्य विच्छेद हुआ। शीतलके वाद आधा पल्य, श्रेयांसके वाद पौंन पल्य, वासुपूज्यके वाद पल्य, विमलके वाद पौंन पल्य, अनंतके वाद आधा पल्य और धर्मके वाद पाव पल्य विच्छेद रहा—पश्चात् शांतिसे महावीर पर्यंत, धर्ममें किसीप्रकारकी विच्छित्ति न हुई वह अखंडरूपसे बना रहा ॥ ४७५ ॥ ऋषभ देवसे सुपार्श्व पर्यंत तीर्थकरोंके तीर्थोंमें तो केवलज्ञानी अखंडरूपसे रहै चंद्रप्रभ और पुष्पदंतके तीर्थोंमें नव्वे केवली हुये, शीतलके तीर्थमें चौरासी, श्रेयांसकेमें वहत्तर, वासुपूज्यकेमें चवालीस, विमलकेमें चालीस, अनंतकेमें छत्तीस, धर्मकेमें वत्तीस, शांतिकेमें अट्ठाईस, कुंथुकेमें चौवीस, अरकेमें वीस, मल्लिकेमें सोलह मुनिसुव्रतकेमें वारह, नमिकेमें आठ और नेमिकेमें चार हुये तथा पार्श्वकेमें तीन और महावीरके तीर्थमें भी तीन होंगे ॥४७८-४७९॥ भगवान महावीरके वाद वासठ वर्षमें गौतम सुधर्मा और जंबू स्वामी ये तीन केवली हुये। केवलियोंके वाद सौ वर्षमें पांच ग्यारह अंग और चौदह पूर्वके पाठी हुये। इनके

अनंतर एकसो तिरासी वर्ष पर्यंत ग्यारह मुनि ग्यारह अंग और दश पूर्वके पाठी हुये। इनके बाद दोसौ वीस वर्ष तक पांच मुनि ग्यारह अंगके पाठी हुये और उनके पश्चात् एकसौ अठारह वर्ष पर्यंत चार मुनि केवल आचारांगके पाठी रहे ॥ ४८०–४८२ ॥

भगवान महावीरके प्रथम गणधरकी आयु बानवे वर्षकी थी। दूसरेकी चौवीस, तीसरेकी सत्तर, चौथेकी अस्सी, पांचवेकी सौ, छठेकी तिरासी, सातवेकी पचानवे, आठवेकी अठत्तर, नवमेकी बहत्तर दशवेकी साठ और ग्यारहवेकी चालीस वर्षकी थी। ॥ ४८३ ॥ छहो कालोंमें तीसरे कालका जिससमय पल्यका आठवां भाग समय बाकी रहा उससमय चौदह कुलकर हुये और उनके अनंतर भगवान ऋषभदेवका जन्म हुआ किंतु ऋषभदेवसे अन्य तीर्थंकर और चक्रवर्ती बलभद्र एवं वासुदेव यथाकाल चौथे कालमें उत्पन्न हुये ॥ ४८५ ॥ जिससमय तृतीयकालमें तीनवर्ष साढ़े आठ मास समय बाकी था उससमय तो भगवान ऋषभदेव मोक्ष पधारे और जिससमय चतुर्थकालमें तीनवर्ष साढ़े आठ मास समय बांकी रहैगा उससमय भगवान वर्धमान मोक्ष जायंगे। ॥ ४८७ ॥ जिससमय भगवान वीरनाथका निर्वाण हुआ था उससमय अवंतिका पुत्र, प्रजाका पालन करनेवाला राजा पालक था और उसका राज्यकाल पृथ्वीपर साठ हजार वर्षपर्यंत रहा था। उसके बाद विषय राजा (भिन्न २ देशीय राजा) हुये और उनका राज्य एकसौ पचपनवर्ष पर्यंत विद्यमान रहा। इनके बाद पुरूढ़ राजा हुये और उन्होंने चालीस वर्ष पर्यंत पृथ्वीपर शासन किया। इनके बाद पुष्पमित्र राजा हुये और उनका तीसवर्षतक राज्य रहा। इनके बाद वसु और अग्निमित्र राजा हुये और उन्होंने साठ वर्षतक राज्य किया। इनके बाद रासभ राजा हुये और उनका सो वर्षतक पृथ्वीपर राज्य विद्यमान रहा। इनके बाद चालीस वर्षतक नरवाहनका राज्य, दोसौ व्यालीस वर्षतक भट्टबाणका, दोसो इक्कीस वर्ष गुप्तोंका और व्यालीस वर्षतक कलकीका राज्य रहा एवं इनके बाद दिल्लीका राजा अजितंजयका राज्य होगा ॥ ४८८–४९३ ॥ चक्रवर्ती आदिका कौमार अवस्था मंडलाधिपतित्व विजय राज्य और संयममें कितना कितना काल व्यतीत हुआ उसका विभाग इसप्रकार है—

चक्रवर्ती भरतका आयुकाल चौरासी लाख पूर्वका था उसमें सत्तहतर लाख पूर्वतो उनके कुमार कालमें वीते, एक हजार वर्ष पर्यंत मंडलीक रहै, साठहजार वर्ष तक दिग्विजय किया एक पूर्वांगघाट छः लाख पूर्वतक राज्य भोगा और एक लाख पूर्व तिरासीलाख निन्यानवे हजार नौ सौ निन्यानवे पूर्वाग एवं तिरासीलाख नौ हजार तीस वर्ष पर्यंत संयमी और केवली रहै ॥ ४९४–४९७ ॥ सगर चक्रवर्तीका आयु बहत्तर लाख पूर्वका था उसमें पचास हजार लाख पूर्व तक तो वे कुमार और मंडलीक रहै तीस हजार वर्षपर्यंत विजय किया उनहत्तर लाख सत्तर हजार पूर्व निन्यानवे हजार

नौ सौ निन्यानवे पूर्वांग तिरासीलाख वर्ष राज्य किया और लाख पूर्व काल तक संयमी और केवल ज्ञान विभूतिसे मंडित रहै ॥ ४९९-५०१ ॥ चक्रवर्ती मघवाका आयु पांचलाख वर्षका था उसमें पच्चीस हजार वर्ष तो उसकी कुमारावस्थामें वींती, पच्चीस हजार वर्ष पर्यंत मंडलेश्वर रहा दश हजार वर्ष पर्यंत दिग्विजय किया तीन लाख नव्वे हजार वर्ष पर्यंत राज्य भोगा और पचास हजार वर्ष पर्यंत तप किया 'एवं' स्वर्ग गये ॥ ५०२-५०३ ॥ चक्रवर्ती सनत्कुमारकी आयु तीन लाख वर्षकी थी उसमें पचास हजार वर्ष तो उनके कुमार कालमें वीते पचास हजार वर्ष तक ही मंडलेश्वर रहे दश हजार वर्ष तक विजय किया नव्वे हजार वर्षतक राज्य किया और एक लाख वर्ष पर्यंत तप किया ॥ ५०४-५०५ ॥ चक्रवर्ती शांतिनाथकी आयु एक लाख वर्षकी थी उसमें पच्चीस हजारवर्ष तो उनकी कुमार अवस्थामें वींतीं पच्चीस हजार वर्ष तक मंडलेश्वर रहे आठसौ वर्ष दिग्विजय किया चौवीस हजार दो सौ बर्ष तक राज्य भोगा सोलह वर्षतक संयमी रहै और सोलह वर्ष घाट पच्चीस हजार वर्षपर्यंत केवलज्ञानी हो उपदेश दिया ॥ ५०६ ॥ कुंथुनाथ चक्रवर्तीकी आयु पचानवे हजार वर्षकी थी उसमें तेईस हजार सातसौ पचास वर्ष तक तो वे कुमार रहै तेईस हजार सातसौ पचास वर्ष तक ही मंडलेश्वर पदका भोग किया, छै सौ वर्ष विजय किया, तेईस हजार डेढ़सो वर्षतक राज्य किया, सोलह वर्षतक संयमी रहे और तेईस हजार सातसौ चौंतीस वर्ष पर्यंत केवलज्ञान विभूतिका भोग किया ॥ ५०७ ॥ चक्रवर्ती अरनाथका आयुकाल पिचासी हजार वर्षका था उसमें इक्कीस हजार वर्ष तो उनके कुमारकालमें वीते, इक्कीस हजार वर्षपर्यंत मंडलेश्वर रहै, चारसो वर्ष दिग्विजय किया इक्कीसहजार छैसौ वर्ष राज्य भोगा सोलह वर्ष संयमी रहै और सोलह वर्ष घाट इक्कीस हजार वर्ष पर्यंत केवल ज्ञान विभूतिका भोग किया ॥ ५०८ ॥ सुभौम चक्रवर्तीका पूर्ण आयु अड़सठ हजार वर्षका था उसमें पांच हजार वर्ष तो कुमार अवस्थामें वींतीं पांचसौ वर्ष दिग्विजय किया, बासठ हजार पांचसौ वर्ष राज्य किया, परशुरामके भयसे ये आश्रममें पले थे इसलिये ये मंडलेश्वर पदका लाभ न कर सके और विषयोंमें अति आसक्ततासे तप भी धारण न किया इसलिये मरकर सातवे नरक गये ॥ ५०९-५१० ॥ महापद्म चक्रवर्तीकी आयु तीस हजार वर्षकी थी उसमें पांचसौ वर्ष उनका कुमार कालमें वीता पांचसौ वर्षतक मंडलेश्वर पदका भोग किया तीनसौ वर्ष दिग्विजय किया अठारह हजार सातसौ वर्षतक राज्य भोगा और दश हजार वर्षतक तप किया ॥ ५११-५१२ ॥ चक्रवर्ती हरिषेणका आयुकाल छब्बीस हजार वर्षका था उसमें सवातीनसो वर्ष तक तो वे कुमार रहे डेढ़ सो वर्ष तक दिग्विजय किया पच्चीस हजार एकसो पिचहत्तर वर्ष पर्यंत राज्य किया और साढे तीनसो वर्ष पर्यंत संयमी और केवलज्ञान विभूतिसे मंडित रहे ॥ ५१३-५१४ ॥

चक्रवर्ती जयसेनका आयुकाल तीन हजार वर्षका था तीनसो वर्ष तो इनके कुमार कालमें वीते, तीनसो वर्ष पर्यंत मंडलेश्वर पदका सुख भोगा, सो वर्ष दिग्विजय किया, एक हजार नोसो वर्ष राज्य किया और चारसो वर्ष पर्यंत संयमी और केवलज्ञानी रहै। बारहवें ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीका आयु सातसो वर्षका था उसमें अठारह वर्ष तो कुमार कालमें व्यतीत हुये, छप्पन बर्ष पर्यंत मंडलेश्वर पदका सुख भोगा, सोलह वर्ष दिग्विजय किया और छहसौ वर्ष पर्यंत राज्य किया 'इसने तप नहिं किया था इसलिये यह भी सुभौम चक्रवर्तीके समान मरकर सातवें नरक गया।

प्रथम वासुदेव त्रिपृष्ठका आयु चौरासी लाख वर्षका था उसमें पच्चीस हजार वर्ष तो उनकी कुमार अवस्थामें व्यतीत हुई एक हजार वर्ष तक दिग्विजय किया और तिरासी लाख चौहत्तर हजार वर्ष राज्य भोगा ॥ ५१५-५१९ ॥ वासुदेव द्विपृष्ठका आयुकाल वहत्तर लाख वर्षका था उसमें पच्चीस हजार वर्ष तो वे कुमार रहै पच्चीस हजार वर्ष पर्यंत ही मंडलीक पदका सुख भोगा सो वर्ष दिग्विजय किया इकत्तरलाख चार हजार नो सो नव्वे वर्ष राज्य किया ॥ ५२०-५२१ ॥ स्वयंभु वासुदेवका आयु काल साठ लाख कुछ घाट सो वर्षका था उसमें साडे बारह हजार तो उनके कुमार कालमें वीते साडे वारह हजार वर्ष पर्यंत मंडलेश्वर पदका सुख भोगा नव्वे वर्ष दिग्विजय किया और उनसठ लाख चौहत्तर हजार नो सो दश वर्ष राज्य किया। ॥ ५२२-५२३ ॥ वासुदेव पुरुषोत्तमका आयुकाल तीस लाख वर्षका था उसमें सात सो वर्ष तो कुमार कालमें गये, अस्सी वर्ष दिग्विजय किया, तेरहसो वर्ष मंडलेश्वर पदका सुख भोगा उनतीस लाख सतानवे हजार नो सो वीस वर्ष तक राज्य किया। और नीतिपूर्वक प्रजाका पालन कर संसारमें पुरुषोत्तमताका लाभ किया ॥ ५२४-५२६ ॥ वासुदेव पुरुषसिंहका आयुकाल दश लाख वर्षका था उसमें तीनसो वर्ष तक तो ये कुमार रहै एकसो पच्चीस वर्ष तक मंडलीक पदका सुखभोगा सत्तर वर्ष दिग्विजय और नो लाख निन्यानवे हजार पांचसो पांच वर्ष तक राज्य किया ॥ ५२७-५२८ ॥ वासुदेव पुंडरीकका आयु काल पैंसठ हजार वर्षका था उसमें ढाईसो वर्ष कुमार कालमें वीते, ढाईसो वर्ष ही मंडलेश्वर पदका भोग भोगा, साठ वर्ष दिग्विजय किया और चौंसठ हजार चारसो चालीस वर्ष पर्यंत राज्य किया ॥ ५२९-५३० ॥ सातवे वासुदेव दत्तका आयुकाल बत्तीस हजार वर्षका था उसमें दो सो वर्ष कुमार अवस्थामें व्यतीत हुये, पचास वर्ष पर्यंत मंडलीक पदका भोग किया पचास वर्ष दिग्विजय और और इकतीस हजार सातसो वर्ष राज्य किया ॥ ५३१ ॥ वासुदेव लक्ष्मणका समस्त आयु वारह हजार वर्ष का था उसमें सो वर्ष तक तो ये कुमार रहै चालीस वर्ष दिग्विजय और ग्यारह हजार आठसो साठ वर्ष राज्य किया ॥ ५३२ ॥ अंतिम वासुदेव कृष्णका

(तुम्हारी) समस्त आयु एक हजार वर्षकी है सोलह वर्ष तक तो तुम कुमार रहै छप्पन वर्ष पर्यंत मंडलीक रहै आठ वर्ष दिग्विजय और नो सो वीस वर्ष तक तुम्हारा राज्य है।

भीमावली जितशत्रु रुद्र विश्वानल सुप्रतिष्ठित अचल पुंडरीक जितंधर अजितनाभि पीठ और सात्यकीतनय ये ग्यारह रुद्र हैं इनमें ऋषभनाथके तीर्थमें भीमवली नामका रुद्र हुआ। अजितनाथके तीर्थमें जितशत्रु, पुष्पदंतके तीर्थमें रुद्र, शीतलनाथके तीर्थमें विश्वानल, श्रेयांसनाथके समय सुप्रतिष्ठित, वासुपूज्यके तीर्थमें अचल, विमलनाथके तीर्थमें पुंडरीक, अनंतनाथके तीर्थमें जितंधर, धर्मनाथके तीर्थमें अजितनाभि, शांतिनाथके तीर्थमें पीठ और महावीरके तीर्थमें सात्यकीतनय होगा ॥५३३-५३७॥ भीमावलीके शरीरकी ऊँचाई पांचसौ धनुषकी थी, जितशत्रुकी साढ़े चारसो धनुष, रुद्रकी सौ धनुष, विश्वानलकी नव्वे, सुप्रतिष्ठितकी अस्सी, अचलकी सत्तर, पुंडरीककी साठ, जितंधरकी पचास, अजितनाभिकी अट्ठाईस, पीठकी चौवीस,और सात्यकीतनयकी सात हाथकी ऊँचाई जानना ॥ ५३८-५३९ ॥ भीमावलीकी आयु तिरासीलाख पूर्वकी थी, जितशत्रुकी इकत्तर लाख पूर्व, रुद्रकी दो लाख पूर्व, विश्वानलकी एकलाख पूर्व, सुप्रतिष्ठितकी चौरासीलाख वर्ष, अचलकी चौरासीलाख वर्ष (?) पुंडरीककी साठ लाख, जितंधरकी पचास लाख,अजितनाभिकी चालीस लाख पीठकी वीसलाख और सात्यकीतनयकी उनहत्तर वर्षकी थी। ये ग्यारहो रुद्र ग्यारह अंग दशपूर्वके धारक थे और इनका समस्त कर्म रुद्र था ॥५४०-५४२॥ इन ग्यारहो रुद्रोंके-कुमार, संयम और असंयम इसप्रकार तीनकाल थे। इनमें चार रुद्रोंका संयमकाल-कुमार काल और असंयम कालकी अपेक्षा अधिक था। दोका संयमकाल और कुमारकाल वरावर था। सातवें का कुमारकाल आठवेंका संयमकाल, नवमेका कुमारकाल और दशवेंका संयमकाल अधिक था तथा ग्यारहवेका सातवर्ष कुमार काल, अट्ठाईस वर्ष संयमकाल एवं संयमसे च्युत होनेपर असंयमकाल चौतीसवर्ष था॥५४३-५४६॥ इन रुद्रोंमें दो रुद्र सातवे नरक गये। पांच छठे नरक, एक पांचवे, दो चौथे नरक और अंतिम रुद्र तीसरे नरक जायगा ॥ ५४७-५४८ ॥

भीम महाभीम रुद्र महारुद्र काल महाकाल चतुर्मुख नर(क)मुख उन्मुख ये नौ नारद थे। इनकी आयु वासुदेवोंकी आयुके बरावर थी ॥ ५४९-५५० ॥ ये नौऊ नारद कलहमें आनंद माननेवाले थे, कभी कभी धर्मकी ओर भी विशेष रूपसे झुक जाते थे, हिंसामें परम आनंद माननेवाले थे, महाभव्य थे और जिन भगवानके मार्गके अनुगामी थे ॥ ५५१ ॥ भगवान महावीरके मुक्तिगये पीछे छसो पांचवर्ष और पांच मासके वाद राजा शक होगा और हजार हजार वर्ष वाद एक एक कल्की राजा होता रहेगा जो कि जैनधर्मका पूर्ण विरोधी होगा ॥ ५५२-५५३ ॥ जिसप्रकार इस अवसर्पिणीकालमें तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि हुये हैं उसीप्रकार उत्सर्पिणीकालमें भी दूसरे दूसरे

तीर्थंकर और चक्रवर्ती आदि होंगे॥ ५५४ ॥ जिससमय उत्सर्पिणी कालके पंचमकालमें एक हजारवर्ष बांकी रहेंगी उससमय कनक कनकप्रभ कनकराज कनकध्वज कनकपुंगव नलिन नलिनप्रभ नलिनराज नलिनध्वज नलिनपुंगव पद्मप्रभ पद्मराज पद्मध्वज और पद्मपुंगव ये चौदह कुलकर होंगे एवं इनमें आदिके पांच सुवर्णके समान देदीप्यमान और शेष कमलके समान शोभायमान होंगे ॥ ५५५–५५८ ॥ चौथे कालमें महापद्म सुरदेव सुपार्श्व स्वयंप्रभ सर्वात्मभूत देवदेव प्रभोदय उदंक प्रश्नकीर्ति जयकीर्ति सुव्रत अर पुण्यमूर्ति निष्कषाय विपुल निर्मल चित्रगुप्त समाधिगुप्त स्वयंभू अनिवर्तक जय विमल दिव्यपाद अनतवीर्य ये चौवीस तीर्थंकर, भरत दीर्घदंत जन्मदंत गूढ़दत्त श्रीषेण श्रीभूति श्रीकांत पद्म महापद्म चित्रवाहन विमलवाहन और अरिष्टसेन ये बारह चक्रवर्ती, नंदी नंदिमित्र नंदिन नंदिभूति महावल अतिबल बलभद्र द्विपृष्ठ और त्रिपृष्ठ ये नौ नारायण, चंद्र महाचंद्र चंद्रधर सिंहचंद्र हरिश्चंद्र श्रीचंद्र पूर्णचंद्र सुचंद्र और बालचंद्र ये नौ बलभद्र, श्रीकंठ हरिकंठ नीलकंठ अश्वकंठ सुकंठ शिखिकंठ अश्वग्रीव हयग्रीव और मयूरग्रीव ये नौ प्रतिनारायण, प्रमद संमद हर्ष प्रकाम कामद भव हर मनोभव मार काम और अंगज ये ग्यारह रुद्र होंगे। ये समस्त महानुभाव भव्य होंगे इनमें अनेक साक्षात् और अनेक परंपरासे मोक्ष जावेंगे सब पवित्र अंगके धारक होंगे और उत्तम महापुरुष होंगे ॥ ५५९–५७३ ॥

जो मनुष्य अंतर्मुहूर्त भी अकेले सम्यक्त्वरूपी रत्नको पाकर पुनः उससे च्युत हो जाता है वह भी जब बहुत जल्दी मोक्ष चला जाता है तब जिन मनुष्योंकी आत्मा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रयसे पवित्र है–जो इन तीनों रत्नों के धारक हैं वे तद्भव मोक्षगामी होते हैं इसमें क्या आश्चर्य है–उन्हें उस भवसे मोक्ष जाना ही चाहिये ॥ ५७४ ॥

इसप्रकार भगवान नेमिनाथकी कर्णोंको अतिशय प्रिय, तीनोंकालके पदार्थोंको निरूपण करनेवाली, वाणी सुनकर कृष्ण आदि महापुरुषों और इंद्र आदि देवोंको अपार आनंद हुआ और वे भक्तिपूर्वक भगवान जिनेंद्रको नमस्कार कर अपने अपने स्थान चले गये ॥ ५७५ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथके चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें त्रेसठ शलाका पुरुषोंका-चरित्र और तीर्थकरोंका अंतर वर्णन करनेवाला साठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६० ॥

इकसठवां सर्ग।

गजकुमारके चरित्रके सुननेकेलिये राजा श्रेणिकको अतिलालायित देख गणधर गौतम इसप्रकार उसका चरित्र वर्णन करने लगे—

ज्योंही महानुभाव गजकुमारने जिनेंद्र आदिका चरित्र सुना उन्हें तत्काल संसारसे उदासीनता होगई, पिता भाई और बंधुओंसे सर्वथा मोह तोड़ दिया, संसारसे भयभीत हो अपने गुरुजनोंसे सम्मति ले भगवान नेमिनाथके समीप दिगंबर दीक्षा धारण कर मुनि हो गये और घोर तप तपने लगे ॥ १–३ ॥ प्रभावती आदि जिन कन्याओंका गजकुमार के साथ विवाह हुआ था उन्हें भी संसारसे वैराग्य होगया और वे भी तत्काल आर्यिका बन गईं ॥ ४ ॥ एक दिन समस्त परीषहोंके सहन करनेवाले मुनिराज गजकुमार रात्रिके समय किसी एकांत स्थानमें विराजमान थे कि अपनी पुत्रीके त्याग कर देनेसे अतिशय क्रुद्ध ब्राह्मण सोमशर्मा उनके पास आया और उनके शिरपर भयंकर अग्नि जलाने लगा। परम धीर वीर मुनिराज जरा भी समाधिसे विचलित न हुये उनका सारा शरीर जल गया शुक्लध्यानसे उन्होंने समस्त कर्मोंको जला मारा और उसीसमय अंतकृत् केवली हो मोक्ष चले गये ॥ ५–७ ॥ मुनिराजके ज्ञाननिर्वाणका सुर असुरोंको भी पता लगा यक्ष किन्नर गंधर्व महोरग आदि देवोंके साथ २ वे शीघ्र ही आये और उन्होंने उनके शरीरकी पूजा की ॥ ८ ॥ गजकुमारका मरण सुनते ही यादवोंको अपार दुःख हुआ। बहुतसे यादव और समुद्रविजय आदि नौऊ भाइयोंने शीघ्र ही समस्त विभूतिका त्याग करदिया और मोक्ष पानेकी अभिलाषासे दिगंबर दीक्षा धारण करली ॥ ९ ॥ शिवा आदि देवियों देवकी और रोहिणीके विना राजा वसुदेवकी रानियों और कृष्णकी पुत्रियोंको भी संसारसे उदासीनता होगई और उन्होंनेभी आर्यिकाके व्रत धारण करलिये ॥१०॥ अनेक देव और मनुष्योंसे पूजित भगवान नेमिनाथने बड़ी विभूतिके साथ अनेक देशोंमें विहार किया और वहांके भव्यजीवोंको प्रतिबोधा ॥ ११ ॥ उत्तर दिशामें मध्यदेशमें विहार कर वहांके निवासी बहुतसे राजाओंको जैनधर्मका भक्त बनाया और पूर्वदिशाके राजा भी मय प्रजाके जैन धर्ममें दृढ़ श्रद्धानी किये ॥ १२ ॥ इसप्रकार भगवान चिरकाल तक बहुतसे देशोंमें विहार कर पुनः गिरनार पर्वतपर आये और मय समवसरणके वहां पर विराजमान होगये ॥ १३ ॥ गिरनारपर विराजमान भगवान नेमिनाथको महातेजस्वी देव आदि आ २ कर नमस्कार करने लगे और सभामें अपने २ स्थानोंपर बैठ गये ॥१४॥ वसुदेव बलदेव और कृष्ण आदि को भी गिरनारपर भगवानके आगमनका पता लगा। अपने रणवांस मित्रवर्ग द्वारिकाकी प्रजा और प्रद्युम्न आदि पुत्रोंसे मंडित हो गिरनार पर्वतपर आये और भगवान

नेमिनाथको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर धर्मके सुननेकी अभिलाषासे अपने २ स्थानोंपर समवसरणमें बैठ गये ॥ १५-१६ ॥ जिससमय धर्मका उपदेश समाप्त होगया तो बलदेवने भक्तिपूर्वक भगवानको नमस्कार किया और हाथ जोड़ मस्तक नमा इसप्रकार पूछा—

"भगवन्! इस द्वारिका पुरीकी रचना कुवेरने की है यह कितने कालतक विद्यमान रहैगी? क्योंकि कृत्रिम पदार्थ नियमसे विनाशीक होते हैं। क्या इसकी अवधि पूरी होनेपर यह स्वयं समुद्रमें समा जायगी–विनष्ट होगी या किसी अन्य कारणसे? अंतकालमें कृष्णका मारनेवाला कौन होगा? क्योंकि जो जीव उत्पन्न हुये हैं वे नियमसे मरते हैं। प्रभो! कृष्णके स्नेहरूपी महापाशमें मेरा चित्त कड़ीरीतिसे जिकड़ा हुआ है इसलिये कृपया बतावें मै कब संयम धारण कर सकूंगा?" ॥ १७-२१ ॥ भगवान पूर्वापर समस्त पदार्थोंके जानकार सर्वज्ञ थे इसलिये अपने ज्ञानसे जो जैसा होनेवाला था उसे वैसा ही देखकर बलदेवके प्रश्नके अनुकूल इसप्रकार उत्तर देने लगे—

बलदेव! बारह वर्षके बाद मद्य पीकर मत्त कुमारों द्वारा उत्पन्न किये गये मुनि द्वीपायन के क्रोधसे द्वारिका भस्म होगी ॥ २२-२३ ॥ एकदिन परमआयुके धारक राजा कृष्ण कौशांव वनमें सोवेंगे और अंतसमयमें इनका मरण जरत्कुमारके हाथ से होगा। यहांपर यह विचार न करना चाहिये कि भाई भाईके मारनेवाला कैसे होगा? क्योंकि जगतके अभ्युदय और क्षयमें अंतरंग कारण तो शुभाशुभ कर्म हैं परंतु मनुष्य आदि बाह्य निमित्त कारण हैं इसलिये जो मनुष्य बुद्धिमान हैं अभ्युदय और क्षयके स्वरूपके भलेप्रकार जानकार हैं उन्हैं अभ्युदयमें हर्ष और क्षयमें विषाद कदापि न करना चाहिये ॥ २४-२६ ॥ जिससमय कृष्णका आयु समाप्त हो जायगा उससमय कृष्णके मरजानेसे तुम्हैं भी संसारसे भीति–उदासीनता हो जायगी और तप आचरण करोगे जिससेकि आयुके अंतमें मरकर ब्रह्मलोक जाओगे ॥ २७ ॥ कुमार द्वीपायन रोहिणीका भाई बलदेवका मामा था। ज्योंही उसने अपने द्वारा 'द्वारिकाका भस्म होना' रूप अनिष्ट समाचार सुना उसे तत्क्षण संसारसे उदासीनता होगई–दिगंबर दीक्षा धारण कर मुनि हो गया और वहांसे बारह वर्षकी अवधिको पूरण करनेके लिये पूर्वदेशमें जाकर कषाय और शरीरका शोषण करनेवाला घोर तप तपने लगा ॥ २८-२९ ॥ अपने हाथसे भाईका मरण सुन जरत्कुमारको भी बड़ा दुःख हुआ वह भी भाई और बंधुओंसे सर्वथा मोहका त्यागकर ऐसी जगह चला गया जहां कृष्णका दर्शन तक भी न होसकता था ॥ ३० ॥ जिससमय जरत्कुमार चलागया और वह अकेला वनमें रहने लगा तो कृष्णको बड़ा दुःख हुआ और भाईके स्नेहसे व्याकुल कृष्ण अपनेको शून्य गिनने लगा ॥ ३१ ॥ कृष्णके प्राणोंको अतिशय प्यारा जरत्कुमार अकेला किसी निर्जन वनमें चला गया और कलंकके भयसे मरनेका विचार करने लगा ॥ ३२ ॥ भगवानके समवसरणसे

यादव गण द्वारिका चले आये और आनेवाले दुःखकी चिंतासे प्रतिसमय अपने २ चित्तोंमें व्याकुल रहने लगे ॥ ३३ ॥ एकदिन कृष्णने बड़े भाई वलदेवकी सम्मतिसे सारी द्वारिकामें यह घोषणा की कि–"शराव और शरावके कारणोंको शीघ्रही छोड़ देना चाहिये" कृष्णकी यह घोषणा सुनतेही लोगोंने शरावके कारण आटा कोदों आदि और शराब कादंब्रपर्वतकी गुफाके शिलाकुंडमें जाकर छोड़ दी और वहां वह शराव सूखकर पाषाण स्वरूप होगई ॥ ३४–३६ ॥ चक्रवर्ती कृष्णने दूसरी घोषणा नगरमें यह दिलवाई कि—द्वारिकाके रहनेवाले स्त्री पुरुषोंसे चाहै वे पिता माता पुत्री पुरवासी स्त्री कोई भी हों, निवेदन है कि वे खुशीसे जैन तप तपै उन्हैं तपकेलिये किसीप्रकारसे न रोका जायगा ॥ ३७–३८ ॥ राजाकी घोषणा सुनतेही चरम शरीरी कुमार प्रद्युम्न और भानु आदिको संसारसे उदासीनता होगई एवं अन्य भी वहुतसे नगर निवासियोंको वैराग्य होगया जिससे कि सबके सब तत्काल तपोवनके लिये चलदिये ॥ ३९ ॥ रुक्मिणी और सत्यभामा आदि कृष्णकी आठ पटरानियोंको भी संसारसे उदासीनता होगई इसलिये वे भी अपनी पुत्रवधू और सोतोंके साथ तपोवनमें जाकर आर्यिका होगईं। ॥ ४० ॥ कृष्णके सारथिका नाम सिद्धार्थ था उसने भी बलदेवसे तपकेलिये प्रार्थना की। बलदेवने यह कहकर कि भाई कृष्णके मरनेपर यदि मुझै अधिक संताप उत्पन्न हो तो मुझै आकर संबोधना उसै तपकेलिये आज्ञा देदी जिससे कि उसने शीघ्रही दीक्षा धारण करली ॥४१॥ भव्यरूपी कमलोंकेलिये सूर्य भगवान नेमिनाथने मयसंघके पल्लव देशकी ओर विहार किया ॥ ४२ ॥ उससमय जितना राजा रानी और मनुष्योंका संघट्ट दीक्षित हुआ था वह भी भगवानके साथ साथ उत्तर दिशाकी ओर चलदिया ॥ ४३ ॥ द्वारिका पुरीके मनुष्य द्वारिका छोड़ किसी वनमें रहने लगे। जब बारह वर्ष समाप्त होगईं तो वे पुनः कर्मसे प्रेरित हो द्वारिका लोट आये और परलोकके भयसे भयभीत हो व्रत उपवास पूजा आदिमें निरंतर मन लगाने लगे ॥ ४४–४५ ॥ जिससमय बारह वर्ष बीतगईं तो उससमय सातिचार सम्यग्दर्शनके धारक तपस्वी द्वीपायन भी यह विचारकर कि-भगवान जिनेंद्रकी आज्ञा टलगई–उनके वचनानुसार कुछ भी न हुआ बारहवींवर्ष भ्रमसे द्वारिका चला आया और द्वारिकाके समीप किसी पर्वतके पास मार्गपर आतापन योगसे विराजमान होगया ॥४६–४७॥ एकदिन शंव आदि कुमार वनक्रीड़ाकेलिये वनमें गये जहां तहां घूमते घामते जब वे थकगये और प्यासके बुरीतरह दुःखित होने लगे तो जलके धोखे कादंव वनके कुंडोंमेंसे वे शराव पीगये। वह शराव कदंव वनके कदंव वृक्षोंके संसर्गसे कदंव स्वरूप होगई थी इसलिये उसै पीतेही यादव कुमार ज्ञान शून्य मत्त होगये। यद्यपि वह शराव पुरानी थी और यादव कुमार युवाथे तथापि नवीन स्त्रीके समान उसने यादव कुमारोंको उन्मत्त करदिया मारे नशेके उनके नेत्र लाल २

होगये फिर क्या था। वे सबके सब असंबद्ध (भंड) गान गानेलगे। घोर नशेसे डिगते हुये पैरोंसे नाचने लगे। उनके शिरके केश और आभूषण विखर गये और वनके पुष्पोंकी माला भी तितर वितर होगई ॥ ४८–५२ ॥ इसतरह नशेमें चूर हो वहांसे वे नगरकी ओर आते थे कि मार्गमें उन्हें सूर्यकी ओर दृष्टि लगाये तपस्वी द्वीपायन दीख पड़े। यद्यपि शराबके गाढ़ नशेमें कुमारोंके नेत्र घूम रहे थे, उन्हें अपने तनबदनका भी होश हवास न था तथापि उन्होंने तपस्वी द्वीपायनको पहिचान लिया और सबके सब इसप्रकार कहकर कि—

"अहा!!! यह वही द्वीपायन मुनि है जिससे द्वारिकाका नाश होगा! देखें आज यह हमसे बचकर कहां जायगा?" उस मुनिको ढेले और पत्थरोंसे निर्दयी हो मारने लगे। मारे मारके वह मुनि भूमिपर गिरना ही चाहता था कि यादवोंके और अपने तपके निर्मूल करनेकेलिये उसकी क्रोधाग्नि धधक गई। क्रोधके आवेशसे उस मुनिने भृकुटि चढ़ालीं और ओठोंको डसने लगा ॥ ५३–५६ ॥ ज्योंही कुमारोंने मुनिराजको क्रुद्ध जाना मारे भयके उनमें खलबली पड़गई वे सर्पोंके समान नगरकी ओर भागे जिससे कि कुछ बालकोंने शीघ्रही वह समाचार कृष्णसे जाकर कहदिया। जिससमय कृष्ण और बलदेवने द्वीपायन मुनिका समाचार सुना जिनेंद्र नेमिनाथके वचनोंका उन्हें स्मरण हो आया उन्हें द्वारिकाके भस्म होनेका गाढ़ निश्चय होगया वे शीघ्रही छत्र चमर आदि विभूतिका त्यागकर जलती हुई अग्निके समान मुनि द्वीपायनको शांत करनेकेलिये उसके पास आये ॥ ५७–५९ ॥ द्वीपायन मुनि उससमय संक्लेशमय परिणामोंका धारक था क्रोधसे उसकी भृकुटी चढ़ रहीं थी इसलिये उसका मुख उससमय महाभयंकर बना हुआ था उसके नेत्र अग्निकी ज्वालाके समान जलरहे थे प्राण कंठगत हो चुके थे क्षीण था और महाभयंकर था ॥ ६० ॥ ज्योंही नारायण और बलभद्रने द्वीपायनकी यह दशा देखी उन्होंने हाथ जोड़ जमीनपर घोंटू टेक बड़े आदरसे उसे नमस्कार किया एवं यह कार्य इसी प्रकार होनेवाला है अन्यथा नहिं होसकता इसबातको भलेप्रकार जानकर भी मोहके वशहो उससे वे इसप्रकार याचना करने लगे—

"अयि साधो! चिरकालसे रक्षा किये हुये क्षमा रूपी स्कंधके सहारे डटे हुये इस तपकी रक्षा करिये इसे क्रोध रूपी भयंकर वह्निसे खाक न होने दीजिये। भगवन्! यह तप मोक्षका साधन है इसे क्यों क्षणभरमें नष्ट किये देते हो? यह क्रोध धर्म अर्थ काम मोक्ष चारो पुरुषार्थोंका नाश करनेवाला है और इससे अपना परका किसीका भला नहिं हो सकता। यदि दुर्विनीत उन्मत्त मूढ़ बालकोंने आपके साथ निंदित व्यवहार किया है तो आप उन्हें क्षमा करें और हमपर प्रसन्न हों" ॥ ६१–६४ ॥ मुनिका क्रोध

उससमय अनिवार्य था कृष्ण और बलभद्र द्वारा विनम्र वचनोंसे निवेदन कियेजानेपर भी उसके क्रोधकी जरा भी शांति न हुई बल्कि उस पापीने मय द्वारिकानिवासी जीवोंके साथ उसके भस्म करनेका पूरा पूरा निश्चय करलिया ॥ ६५ ॥ कृष्ण बलभद्रकी विनय प्रार्थनाने उसके चित्तपर जो कुछ असर पहुचाया वह यह था कि उसने अपने हाथकी दो अंगुली उठाई और इशारेसे यह बतला दिया कि तुम्हारे दो के सिवाय अन्य कोई नहिं बच सकता ॥ ६६ ॥ जब नारायण और बलभद्रके हृदयमें यह बात जम गई कि अब इस मुनिका क्रोध शांत होना कठिन है और नियमसे द्वारिकाका क्षय होगा तो उन्हें बड़ा क्लेश हुआ और वे किंकर्तव्य विमूढ़ हो द्वारिका लोट आये ॥ ६७॥ चरम शरीरी बहुतसे यादव द्वारिकासे वाहिर निकल गये और पर्वतोंकी गुफामें जा वसे। ॥ ६८ ॥ क्रोधरूपी अग्निसे सारभूत तपरूपीधनको नष्ट करनेवाला मुनि द्वीपायन मरा और भवनवासियोंमें अग्निकुमार जातिका मिथ्यादृष्टि देव होगया। अंतर्मुहूर्तकालमें जब उसकी समस्त पर्याप्ति परिपूर्ण होगई तो उसे पूर्वभवका स्मरण हुआ और रौद्रध्यानी बन विभंगज्ञानसे इसप्रकारका विचार करने लगा—

मैं पूर्वभवमें तपस्वी था निरपराध था—किसीका मैंने कुछ अपराध नहिं किया था तथापि यादवोंके कुमारोंने मेरे तपको विकृत बनाया और मुझे प्राणरहित करनेका साहस किया इसलिये वे महाहिंसक थे द्वारिका ऐसे २ हिंसक जीवोंसे भरी है इसलिये अब मुझे मय समस्त जीवोंके द्वारिका भस्म करदेनी चाहिये ॥ ६९–७१ ॥ बस इस-प्रकार पूर्वापर विचारकर ज्योंही वह दुष्ट द्वारिका आया त्योंही जीवोंके क्षयको सूचित करनेवाले बहुतसे उत्पात द्वारिकामें उत्पन्न होने लगे ॥७२॥ जिसदिन यह भयंकर उप-द्रव होनेवाला था उसकी पहिली रात्रिमें अपने २ घर सोनेवाले-द्वारिका पुरीके लोगोंको महाभयावह स्वप्न हुये। वह दुष्ट द्वीपायनका जीव देव जिससमय द्वारिका आया बाहिरसे लेकर भीतर तक तिर्यंच और मनुष्योंसे व्याप्त पुरी द्वारिकाको उसने जलाना प्रारंभ कर दिया। धूमकी विकराल ज्वालासे एकतो स्वयं नगरीके वृद्ध स्त्री बालक पशु और पक्षी नष्ट होरहे थे तिसपर भी वह निर्दयी पापी उन्हें अग्निमें फैक फैककर मारता था सच है निर्दयीको दया कहां ? ॥ ७३–७५ ॥ उससमय अग्निकी भयंकर ज्वालासे जलते हुये प्राणियोंकी ऐसी करुणाजनक चिल्लाहट सुन पड़ती थी जो कभी भी न सुनी गई थी ॥ ७६ ॥ जिससमय देवद्वारा पुरी द्वारिका जलने लगी तो उससमय उसके रक्षक देव यह जानकर कि यह कार्य इसीप्रकार होनेवाला है वहांसे किनारा गये इसलिये यहांपर इसबातकी शंका न करनी चाहिये कि द्वारिका इंद्रकी आज्ञासे कुवेरने बनाई थी और जिसका रक्षा करनेवाला स्वयं कुवेर था वह इसतरह कैसे जल गई ? क्योंकि भवितव्यता दुर्निवार है—जो जैसा होना होता है वह नियमसे वैसा ही होता

है ॥ ७७-७८ ॥ जिससमय अग्निकी भयंकरवेदनासे द्वारिकानिवासी बाल वृद्धोंको भयंकर पीड़ा हुई तो वे घबड़ाकर 'हे नारायण ! बलभद्र ! हमारी रक्षा कीजिये' इस प्रकार करुणाजनक आर्तनाद करने लगे। कृष्ण और बलभद्रको जनताके आर्तनादोंसे बड़ा दुःख हुआ वे द्वारिकाके परकोटको भेदकर समुद्रके पास आये और अग्निके बुझानेके लिये जलके पूरके पूर लाने लगे। महापराक्रमी बलभद्रने अपने हल रत्नसे जल खींचा परंतु विधिकी विपरीततासे वह तेल होगया और उससे बुझनेके बदले अग्नि और भी प्रबल रूपसे धधकने लगी ॥ ७९-८१ ॥ जब दोनों भाइयोंने अग्निका बुझना असाध्य समझा तो रथमें हाथी घोड़ा जोड़कर और माता पिताको उसमें बिठाकर वे ले चलने लगे परंतु रथ एक पेड भी न चल सका उसके पहिये (चक्र) कीचड़के समान पृथ्वीमें गड़गये। जब विपत्तिकाल आता है तब हाथी घोड़ा आदि कोई भी काम नहिं देते ॥ ८२-८३ ॥ जब यह जान पड़ा कि हाथी घोड़ा कुछ भी काम नहिं दे सकते तो महापराक्रमी दोनों भाई रथमें जुड़ गये और अपनी बलवान भुजाओंसे उसे खीचने लगे परंतु तो भी रथ एक पैडतक न सरकसका। पापी देवने उसे वज्रके समान कीलितकर रोक दिया ॥८४॥ जबतक बलभद्र अपने पैरकी ठोंकरोंसे कीलित रथको उखाड़ने लगे तबतक महाक्रोधी दुष्ट देवने नगरका दरवाजा बंद कर दिया। दोनों भाई तत्काल फाटकके पास गये और मारे मारे लातोंके उसे चकना चूर करने लगे इतने ही में उस दुष्ट देवने आकाशमें ये वचन कहै कि—

"क्या तुम दोनों भाईयोंको स्मरण नहिं रहा ? तुम दोके सिवाय इस नगरीका अन्य कोई भी प्राणी नहिं बच सकता" ॥८५-८६॥ कृष्ण और बलभद्रके दोनों माता और पिताने यह देखा कि अब नगरीसे हमारा निकलना कठिन है—अब हम बच नहि सकते तो वे बड़े दुःखसे अपने पुत्रोंसे इसप्रकार कहने लगे—

"पुत्रो ! अब हमारे बचनेका तुम कोई प्रयत्न न करो इस भयंकर वेदनासे बाहिर निकल जाओ। प्यारे पुत्रो ! यदि तुम जीवित रहोगे तो हमारे वंशका नाश न होगा इसलिये तुम यहांसे जल्दी चले जाओ।" विचारे बलभद्र और नारायण उससमय कर ही क्या सकते थे उन्हैं माता पिताकी आज्ञा स्वीकार करनी पड़ी। वे दोनों भाई प्रणाम कर दुःखसे पीडित माता पिताके चरणोंमें गिर पड़े और मनमें अति दुःखी हो पिता माताकी आज्ञानुसार नगरसे बाहिर चलदिये। जिससमय कराल ज्वालासे जलते हुये मकानोंसे युक्त वे द्वारिकासे बाहिर निकले तो द्वारिकाकी वैसी महाभयंकर दशा देख उन्हैं बड़ा दुःख हुआ। दोनों भाई एक दूसरेके कंधेपर शिर रख करुणाजनक रोदन करने लगे और दक्षिणा दिशाकी ओर चल पड़े ॥ ८७-९० ॥ कुमारोंके चले जानेपर वसुदेव आदि यादवोंने और उनकी स्त्रियोंने प्रायोपगमन सन्यास धारण करलिया जिससेकि उनमेंसे

वहुतसे मरकर स्वर्ग चले गये ॥ ९१ ॥ जो वलदेवके पुत्र आदि चरमशरीरी थे और जिन्होंने संयम धारण करलिया था उन्हें देवोंने भगवान नेमिनाथके समवसरणमें पहुंचा दिया ॥९२॥ जो यादव पुरुष धर्मध्यानी थे सम्यग्दर्शनसे शुद्ध थे और प्रायोपगमन सन्यास धारण करनेवाले थे उनके शरीर भयंकर अग्निने जलाकर खाक कर दिये पर उनके ध्यानको वह न जला सकी ॥ ९३–९४ ॥ देवकृत मनुष्यकृत तिर्यंचकृत स्वयमेवोत्पन्न यह चारो प्रकारका उपसर्ग मिथ्यादृष्टियोंकेलिये अतिरौद्रध्यानका कारण होता है परंतु सम्यग्दृष्टिकेलिये वह कैसे भी कुभावका कारण नहीं होता ॥ ९५ ॥ जो मनुष्य जिनशासनके भक्त हैं–सम्यग्दृष्टि हैं उनका मरण आगाढ़ वा अनागाढ़ किसी रीतिसे हो वे जरा भी किसी वातमें मोह नहिं करते ॥ ९६ ॥ जो मिथ्यादृष्टि हैं–भगवान जिनेंद्रके शासनपर श्रद्धान न रखनेवाले हैं उन्हें तो मरणसे शोक होता है परंतु सम्यग्दृष्टियोंको समाधिमरणसे किसी प्रकारका शोक नहिं होता ॥ ९७ ॥ यह नियम है जो पैदा हुआ है वह नियमसे मरेगा इसलिये जीवोंको चाहिये कि वे उपसर्ग आनेपर समाधि धारण करें ॥ ९८ ॥ उन जीवोंको धन्यवाद है जो विकराल अग्निज्वालासे जलते हुये भी समाधिपूर्वक अपने शरीरका त्याग करते हैं ॥ ९९ ॥ चाहें वह तप हो वा मरण हो यदि उससे अपनेको और परको सुखकी प्राप्ति हो तो वह अति उत्तम है परंतु मुनि द्वीपायनके तप और मरण दोनों ही निकृष्ट–निरर्थक थे क्योंकि उनसे द्वीपायन मुनि और अन्यजन दोनोंको दुःख भोगना पड़ा ॥ १०० ॥ पापी जीव दूसरेका अपकार और मरण एक ही भवमें कर सकता है परंतु अपना अपकार और मरण वह जन्म जन्ममें करता है क्योंकि जो जीव कषायके वशीभूत हैं वे दूसरोंका वध करें वा न करें अपना तो भव भवमें वध करही लेते हैं और अनंतकाल तक संसारमें घूमते फिरते हैं ॥ १०१–१०२ ॥ जिसप्रकार मूर्खजीव 'उसै जलाऊं' इस विचारसे जाज्वल्यमान लोहपिंडको हाथमें लेता है तो वह पहिले अपने शरीरको जला लेता है उसी प्रकार जो कषायकी तीव्रतासे दूसरोंका अपकार करना चाहता है वह कषायरूपी अग्निसे अपनी आत्माको पहिले जलालेता है ॥ १०३ ॥ देखो जो पुरुष उत्तम और सम्यग्दृष्टि हैं उनका तप तो संसारका नाश करनेवाला होता है परंतु मिथ्यादृष्टि मुनि द्वीपायनका वह तप दीर्घ संसारका कारण वन गया ॥१०४॥ अथवा इस विचारे दीन जीवका अपराध ही क्या है यह तो कर्मके आधीन पड़ा हुआ है इसलिये उद्योगी होनेपर भी मोहरूपी प्रवल वैरी इसे जवरन मोहके फंदमें डाल देता है ॥ १०५ ॥ क्रोधके वशीभूत कोई जीव अपना अपकार करे तो उसका अपकार न कर जो उपकार करता है वह इस लोक और परलोक दोनोंमें उपकृत होता है ॥ १०६ ॥ किंतु जो परको दुःख देता है उसै नियमसे नाना प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं इस

लिये जीवोंको चाहिये कि वे सदा क्षमाका अवलंबन करैं ॥ १०७ ॥

जो द्वारिका वहुतसे वालक स्त्री पशु और वृद्धोंसे भरी थी अनेक प्रकारके दरवाजोंसे शोभित थी और जिसमें इतनी सामग्री थी कि जिससे वह बराबर छै मासतक जलती रही उसै भगवान नेमिनाथके वचनोंपर श्रद्धान न करने वाले क्रोधसे अंधे मुनि द्वीपायनने जलाकर खाक कर दिया इसलिये ऐसे क्रोधकेलिये धिक्कार है क्योंकि यह स्व और पर दोनोंके अकल्याणका करनेवाला है और चिरकालतक संसारमें भ्रमानेवाला है ॥ १०८॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेन द्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें द्वारिकाका नाश वर्णन करनेवाला इकसठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६१ ॥

वासठवां सर्ग।

जिससमय नारायण और बलभद्रके पुण्यका उदय था उससमय उनकी लोकोत्तर उन्नति हुई और चक्र आदि रत्नोंका भी उन्हें लाभ हुआ परंतु पुण्यके क्षीण होजानेपर उन्हैं चक्र आदि रत्न और वंधुओंसे वियुक्त होना पड़ा। उनके साथ केवल प्राणरूप परिवारके सिवाय अन्य कुछ भी न रहा और महा शोकाकुल हो गये ॥ १-२ ॥ केवल अपना जीवन चाहने वाले वे दोनों भाई दक्षिण दिशाकी ओर चले मार्गमें भूख और प्याससे व्याकुल होगये एवं यह जान कर कि दक्षिण मथुरामें पांडव रहते हैं दोनों भाई उसीकी ओर चलने लगे। वीचमें उन्हैं एक हस्तिवप्र नामका नगर पड़ा। कृष्ण उसके वाह्य उद्यानमें वैठ गये और वलदेवने कृष्णकी प्रार्थनासे अपना समस्त शरीर वस्त्रसे ढककर भोजन और पानी लेनेके लिये नगरमें प्रवेश किया ॥ ३-५ ॥ उससमय हस्तिवप्रनगरमें कोई अच्छदंत नामका राजा राज्य करता था जो धृतराष्ट्रके वंशका था। पृथ्वीमें प्रसिद्ध महाधनुर्धारी था और यादवोंके वंशको समूल नष्ट करना चाहता था ॥ ६ ॥ महानुभाव वलदेव परम सुंदर थे जिससमय उन्होंने नगरमें प्रवेश किया तो वहांकी समस्त जनताको अपने रूपरूपी जालमें बांध लिया और सब लोग वड़े आश्चर्यसे उनकी ओर देखने लगे ॥ ७ ॥ वलदेवने बाजारमें जाकर किसी वणिकके यहां कड़े और कुंडल वेच दिये और उनसे भोजन एवं जललेकर वापिस आने लगे। अच्छदंतके सेवकोंने उन्हैं देखा और 'यह वलदेव है' ऐसा जानकर राजासे जा निवेदन कर दिया। वस वहां क्या था! राजा तो इनके मारनेकी ताकमें वैठा ही था ज्योंही उसने वलदेवका नाम सुना शीघ्र ही अपना समस्त सैन्य उनके मारनेके लिये भेज दिया ॥ ८-९ ॥ ज्यों ही अच्छदंतकी सेनाने वलदेवको रोका आपसमें उनका प्रचंड युद्ध होने लगा। वलदेवने इशारेसे कृष्णको बुलाया इसलिये कृष्ण भी वहुत जल्दी वहां आगये ॥ १० ॥ वलदेवने भोजन और जल एक ओर रख हाथीके बाधनेका खंभा हाथमें

ले लिया और मनमें कुछ कुपित होकर कृष्णने दरवाजेका परिघ (बेंडा) हाथमें ले लिया और देखते देखते अच्छंदतकी चतुरंग सेनाको मय उसके सेनापतिके व्याकुल कर जहां तहां भगा दिया । जब सेना सामने न रही तो भोजन पानी लेकर वे दोनों भाई नगरसे निकल आये और विजयनामके वनमें आकर उसके सरोवरके तटपर ठहर गये ॥ ११–१३ ॥ सानंद उन्होंने सरोवरमें स्नान किया मनमें स्थित जिनेंद्रको नमस्कार किया स्वादिष्ट भोजन कर शीतल जल पी कुछ देर विश्राम किया और वहांसे दक्षिण दिशाकी ओर चल वे दुर्गम्य कौशांबी वनमें प्रवेश कर गये ॥१४–१५॥ वह वन महाभयंकर था । जगह जगह पक्षियोंके शब्द और शृगाल आदिके शब्दोंसे समस्त दिशायें शब्दायमान हो रही थीं । तृष्णासे आकुल मृग सब ओर घूमते फिरते थे। वहां जल न मिलकर मृगतृष्णा ही मृगतृष्णा नजर पड़तीं थीं । ग्रीष्मकालके भयंकर आतापसे महाविषम लूयें चल रहीं थीं । दावानलसे वृक्षोंकी लता और गुल्म जलकर खाक होगये थे । ढूंढ़नेपर भी वहां जलका मिलना असंभव था । स्थान स्थानपर वनके सिंह आदि क्रूर हिंसक जीवोंके शब्द सुनाई पडते थे और भीलोंद्वारा विदारे हुये हाथियों के कुंभस्थलोंसे निकले हुये मोती पड़े थे । जिससमय ये महानुभाव वनमें पहुंचे उससमय ठीक दुपहरका समय था–मध्याह्नकालका सूर्य अपनी प्रचंडकिरणोंसे समस्त जगतको तप्तायमान कर रहा था जिससे कि कृष्ण उससमय विलकुल श्रांत होगये थे। प्यासका चटका उन्हें बुरीतरह व्याकुल करनेलगा था इसलिये गुणोंके भंडार रूप अपने बड़े भाई बलदेवसे वे इसप्रकार निवेदन करने लगे—

"पूज्य ! मुझे बड़े जोरसे प्यास लगी है मारे प्यासके ओठ और तालु सूख गये हैं अब मैं यहांसे एक पैर भी आगे नहिं चल सकता इसलिये अनादि साररहित इस संसारमें सम्यग्दर्शनके समान तृष्णाका शांत करनेवाला मुझे कहींसे शीतल जल लाकर पिलाइये" ॥ १६–२१ ॥

छोटे भाई कृष्णके ऐसे विनम्र और दीन वचन सुन बलदेवका चित्त मारे स्नेहके गद्गद होगया । उन्होंने गरम गरम श्वांस लेते हुये कृष्णको इसप्रकार उत्तर दिया—

प्यारे भाई ! तू घबड़ा मत ! मैं अभी शीतल जल लाकर तुझे पिलाता हूं । कुछ देर तक तू भगवान जिनेंद्रके चरण कमलोंमें संलग्न चित्त हो अपनी प्यासको रोक । भाई ! जल तो थोड़े कालके लिये तृष्णा दूर करेगा परंतु भगवान जिनेंद्रका स्मरणरूपी पानी जड़ मूलसे ही तृष्णा नष्ट कर देगा ॥ २२–२४ ॥ तू इस वृक्षकी शीतल छायामें कुछ काल विश्राम कर। मैं अभी किसी उत्तम तालावसे शीतल जल लिये आता हूं" ॥ २५ ॥ बलदेवने इसप्रकार कृष्णको सांत्वना दी और अपने परिश्रमका कुछ भी विचार न कर जल लानेके लिये चल दिये ॥ २६ ॥ भाईकी आज्ञानुसार कृष्ण भी वृक्षकी

छायामें कोमल जमीन पर लेट गये और अपना सारा शरीर वस्त्रसे ढक नींदकी वांट जोहने लगे ॥ २७ ॥ इसतरह कृष्णको नींद आगई और अपने सीधे पैरको दाहिने पैरके घोंटूपर रख उस (निद्रा) से अचेत हो गये ॥ २८ ॥

जबसे जरत्कुमार अपने हाथसे कृष्णकी मृत्यु सुन भयभीत हो वनमें रहने लगा था तबसे वह शिकार करनेका शोकीन होगया था इसलिये वह जहां तहां घूमता हुआ जहांपर कि कृष्ण विद्यमान थे वहां आ निकला ॥ २९ ॥ देखो ! विधिकी महिमा ! जो जरत्कुमार कृष्णका परमस्नेही था और कृष्णके प्राणोंकी रक्षाकी अभिलाषासे द्वारिका छोड़ जंगली मृगके समान वनमें रहने लगा था उसी जरत्कुमारको विधिने वहां जबरन बुला लिया और आगे उसे कुछ पदार्थ दीख पड़ा। कृष्ण उससमय वृक्षके गुल्मोंसे तिरोहित थे—स्पष्ट रूपसे दीख नहीं पड़ते थे। पवनके वेगसे उनके शरीरके ऊपर ढके हुये वस्त्रका प्रांत उड़ रहा था इसलिये जरत्कुमारको भ्रम होगया उसने कृष्णको मृग समझा और उनके शरीरके हिलते हुये वस्त्रके प्रांतको मृगका कान समझा इसलिये उसने धनुषको कान तक चढ़ा लिया और अपने तीक्ष्ण वाणसे कृष्णके पैरको भेद दिया ॥ ३०–३३ ॥ ज्योंही कृष्णके पैरमें वाण लगा वे सहसा उठकर बैठ गये समस्त दिशाओंकी ओर देखने लगे जब उन्हें कोई नजर न पड़ा तो वे बड़े उच्चस्वरसे इसप्रकार कहने लगे—

"इस वनमें मैंने किसीका अपराध तो नहीं किया फिर किस अकारण वैरीने मेरे पैरको वाणसे वेधा ? वह शीघ्र मेरे सामने आवे और अपना कुल एवं नाम बतावे। ॥ ३४–३५ ॥ जिस मनुष्यकी जाति और कुल मैंने नहिं जाना आज तक मैंने उसे कभी संग्राममें नहिं मारा इसलिये आ और तू इस वातको वता कि तूने क्यों मेरे साथ ऐसा वर्ताव किया और अपनी जाति और कुल भी वता क्योंकि तू वैरका संबंध विना ही वतलाये इस गहन वनमें मेरा प्राणनाशक हुआ है" कृष्णके ऐसे वचन सुन जरत्कुमारने कहा—

"हरिवंशमें उत्पन्न वलभद्र और नारायणके पिता राजा वसुदेव हैं उन्हींका प्यारा पुत्र मैं जरत्कुमार हूं। भगवान नेमिनाथसे मैंने यह सुना था कि मेरे हाथसे कृष्णका मरण है इसलिये मै भगवानके वचनोंसे भयभीत हो छोटे भाई कृष्णके जीवनका आकांक्षी वारह वर्षका प्रमाणकर अकेला ही इस वनमें रहता हूं ॥ ३६–४० ॥ मुझे वारह वर्ष वनमें वीत गये परंतु आर्यजनका वचन आज तक मैंने न सुना इसलिये आप वताइये कि आप कौन हैं ?" ॥ ४१ ॥ ज्योंही कृष्णने जरत्कुमारके वचन सुने मारे स्नेहके उनका कंठ गद्गद हो गया। वे अपना दुःख तो भूल गये और सहसा उनके मुखसे 'भाई ! आ आ' ये शब्द निकल पडे। जरासंधने भी जब यह जाना कि ये मेरे

छोटे भाई कृष्ण हैं-हाय हाय कर चिल्लाने लगा उसने तत्काल धनुप पृथ्वी पर पटक दिया और पैरोंमें आकर पड़ गया ॥ ४२-४३ ॥ कृष्णने उसे उठाकर छातीसे लगा लिया और वे उसके शोकको दूर करनेके लिये इसप्रकार वचन कहने लगे—

"भाई! जो वात जिसरीतिसे होनेवाली होती है वह उसीरीतिसे होकर मानती है। यह वात इसीप्रकार होनी थी इसलिये अब तुम्हारा शोक करना वृथा है। प्रमादके दूर करनेके लिये तुमने सुख संपदाका त्याग किया और जो वनमें रहना काम पुरुष-सिंहोंका था वह तुमने किया ॥ ४४-४५ ॥ सज्जन पुरुष दुर्यश और पापसे भयभीत हो उससे वचनेके लिये पूर्ण प्रयत्न करते हैं परंतु भाग्यके विपरीत हो जाने पर वह प्रयत्न किसी काम नहिं आता" ॥ ४६ ॥ थोड़ी देर वाद जरत्कुमारने कृष्णसे उनके वनमें आनेका कारण पूछा। उत्तरमें कृष्णने आदिसे अंततक द्वारिका जलनेका समस्त वृत्तांत उससे कह सुनाया ज्योंही जरत्कुमारने अपने गोत्रका सर्वनाश सुना मारे दुःखके वह विलप विलप कर रोने लगा और कृष्णसे इसप्रकार कहने लगा "भाई! गोत्रकी तो वहां वह दशा हुई और चिरकालके वाद अपका दर्शन हुआ सो मुझसे यह आपकी मिजवानी हुई-प्राणोंसे रहित कर दिया। हाय! अब मैं क्या करूं! कहां जाऊं! किस जगह जाकर अपने चित्तको शांत बनाऊं! हाय कृष्ण! तुझे मार कर मैंने संसारमें दुःख और अपकीर्ति दोनों ही का उपार्जन कर लिया" ॥४७-४८॥ कृष्ण संसारकी स्थितिके भलेप्रकार जानकार थे। जब उन्होंने यह समझा कि जरत्कुमार विलाप करना वंद नहिं करता तो वे प्रिय वचनोंमें उसे इसप्रकार समझाने लगे-

"भाई! रोना वंद करो-रोनेमें कोई लाभ नहीं। यह समस्त जगत अपने किये कर्मका फल अवश्य भोगता है। संसारमें न कोई किसीको दुःख देता है न सुख और न किसीका कोई मित्र है न शत्रु। सब जीव अपने अपने कर्मानुसार सुख दुःख भोगते हैं और कर्मानुसार ही उनके मित्र और शत्रु होते हैं ॥ ४९-५१ ॥ विद्वन्! भाई वलदेव पानी लेने गये हैं जब तक वे न आवें तब तक जितनी जल्दी वने उतनी जल्दी तुम यहांसे चले जाओ क्योंकि मुझे इस वातका भय है कहीं उनके परिणाम तुम्हारे विपयमें अशांति स्वरूप न हो जांय-तुम्हारा वे विघात न कर पाडें। ॥५२॥ अब तुम जाओ और आदिसे अंततक सब वृत्तांत पांडवोंसे कहो। वे महानुभाव हमारे कुलके हितकारी हैं। सत्य प्रतिज्ञ हैं। वे तुम्हारी अवश्य रक्षा करेंगे" ॥५३॥ इसप्रकार समझा वुझाकर कृष्णने उसे पहिचानकेलिये अपनी कौस्तुभमणि दी और थोडी देर वाद फिर जानेको कहा ॥५४॥ जरत्कुमारने भी 'हे देव! क्षमा करिये' ऐसा कहकर कौस्तुभ मणि ले ली, कृष्णके पैरसे वाण निकाल लिया और उल्टे सीधे पैर रखता हुआ वह वहांसे चल दिया ॥ ५५ ॥ जरत्कुमारके चले जानेपर कृष्ण घावकी वेदनासे

व्याकुल होगये । उन्होंने शीघ्र ही उत्तर दिशाकी ओर मुख कर लिया पंचपरमेष्ठीकी स्तुति की, उससमय जो भगवान नेमिनाथ विद्यमान थे कृष्णने पुनः पुनः उनके गुणोंका स्मरण कर उन्हैं भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और यह विचार कर कि भगवान जिनेंद्रके विहारसे यह पृथ्वी समस्त उपद्रवोंसे रहित है अपना शिर रख पृथ्वीरूपी शय्या पर लेट गये ॥ ५६–५८ ॥ कृष्णनें उससमय समस्त शरीर वस्त्रसे ढकलिया था, समस्त परिग्रहसे ममता छोड़ दी थी। सब जीवोंमें उनका मित्र भाव था और उससमयके उनके शुभ विचार भी इसप्रकार के थे कि–

"वे पुत्र पोते स्त्रियां भाई, समुद्रविजय आदि गुरु, और बांधव धन्य हैं जो अग्निके उपद्रवसे प्रथमही दिगंबर दीक्षासे दीक्षित होगये और हजारों स्त्रियां हजारों मित्र वह्निके मुखमें प्रविष्ट होनेपर भी समाधियोगसे देवलोक पधारे वे भी धन्यवादके पात्र हैं। हाय! कर्मके प्रबलभारसे मैं तपकेलिये प्रवृत्त न होसका अब मेरी यह प्रार्थना है कि मेरा सम्यग्दर्शन मुझै संसारके परिभ्रमणसे बचावे" ॥ ५९–६२ ॥ महात्मा कृष्णने उपर्युक्त शुभ भावनासे उसीसमय तीर्थंकर प्रकृतिका बंध बांधलिया परंतु उनकी पहिलेही से नरककी आयु बध चुकी थी इसलिये आयुके अंतमें उन्हैं तीसरे नरक जाना पड़ा ॥ ६३ ॥

भव्यप्रजाके परमबंधु महाप्रवीण नानाप्रकारके भोग भोगनेवाले सदा बंधुजनोंके स्नेहको बढ़ानेवाले महात्मा कृष्णने एकहजार वर्षपर्यंत दक्षिणभरतका राज्य किया और अंतमें अपने कर्मानुसार तीसरी पृथ्वी गये एव आगे सम्यग्दर्शनकी कृपासे तीर्थंकर होंगे ॥६४॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान् नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमे महात्मा कृष्णका परलोक गमन करनेवाला बासठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६२ ॥

त्रेसठवां सर्ग ।

महास्नेही सदा अपने अंतरंगमें कृष्णको धारण करनेवाले राजा बलदेव ज्यों २ जल लेनेकेलिये आगे बढ़े उन्हैं पद पद में अपशकुनोंने रोका परंतु उन्होंने उनकी कुछ भी पर्वाय न की वे वनमें बहुत दूर निकल गये ॥१॥ जिस मार्गसे मृग जाते थे बलदेव उसी मार्गसे दोड़ते जाते थे और जगह २ वे जलके लोभसे मरीचिकाओंमें ठगे जाते थे। वह समय दुपहर का था इसलिये उन्हैं समस्त दिशाओंमें चंचल तरंगोंसे व्याप्त सरोवर ही सरोवर जान पड़ते थे ॥ २ ॥ बहुत देरके बाद बलदेवको एक सरोवर दीखा जो कि चकवा हंस और स्यारस पक्षियोंके मनोहर शब्दोंसे व्याप्त था और उसके कमलोंपर भ्रमरगण झंकार शब्द कररहे थे ॥ ३ ॥ सरोवरको देखते ही बलदेवने एक दीर्घ निश्वास खींचा–हांप गये परंतु सामनेसे तालाबकी ओरसे आते हुये शीतल मंद सुगंध पवनने उनकी वह सब थकावट दूर करदी ॥ ४ ॥ उससमय उस तालावपर पिपासासे पीडित सिंह आदि

जीव भी आये थे बलदेवको देखते ही बड़े भयसे वे इनकी ओर देखने लगे और राजा बलदेव भी हाथियोंके मदके जलसे सुगंधित तालाबके तटपर बैठ गये ॥ ५ ॥ कुछ देर बाद बलदेवने तालाबके शीतलजलमें स्नान किया, छानकर पानी पिया, कमलका एक पात्र बनाकर उसमें पानी भरा, वस्त्र पहिने और कृष्णके समीप आनेको बडी शीघ्रतासे चले। मार्गमें पैरोंकी उठी हुई धूलिसे उनका शरीर और मस्तक भदमैला होगया और 'हाय मैं अपने प्रिय कृष्णको वनमें अकेला छोड़ आया हूं' इस विचारसे पेड पैडपर उनका हृदय कंपित होता गया ॥ ६-७ ॥ कृष्ण विचारे उसी वृक्षके नीचै दीर्घ निद्रासे निद्रित थे जहांपर कि बलदेव उन्हें छोड़ गये थे और उनका समस्त शरीर पीतांबरसे ढका हुआ था। ज्योंही दूरसे बलदेवने उन्हें देखा मनमें यह विचार कर कि मैं जहां छोड़ गया था वहीं वह कृष्ण पड़ा है उन्हें उनकी सकुशलताकी दिल जमई होगई ॥८॥ बलदेव कृष्णके पास आये और मनमें यह धारणा कर कि 'यह कृष्ण खिन्न हो सुखपूर्वक सोरहा है इसका स्वयं जगना ही ठीक है—जगानेसे इसै कष्ट होगा' उपेक्षापूर्वक कृष्णके पास बैठगये और 'अब जगता है, अब जगता है' इस रीतिसे उनके जगनेकी प्रतीक्षा करने लगे ॥९॥ जब कृष्णको बहुत समय बीत गया—वे स्वयं उठ कर न बैठे तब बलदेव मध्य मध्यमें रुक रुककर प्रिय वचनोंसे इसप्रकार कहने लगे—'प्रिय वीर! क्या इतने समयतक सोते ही रहोगे अब तो नींद छोड़ो देखो! यह महामनोहर शीतल जल लाया हूं उसे पीओ' ॥१०॥ कुछ सतीक्ष्ण मुखकी काली मक्खियां कृष्णके घावकी गंधसे उनके वस्त्रके भीतर तो पैठ गई थी परंतु मार्ग न मिलनेके कारण बाहर निकलनेकेलिये बड़ी आकुलित होरहीं थी। अचानक ही बलदेवकी दृष्टि उनपर पड़ी। बड़ी शीघ्रतासे उन्होंने कृष्णका मुख उघाड़ा तो उन्हें वे प्राणरहित देख एक दम घबडा गये एवं 'हाय मैं मरगया' ऐसा जोरसे चीत्कार मार और मनमें यह निश्चय कर कि मेरा यह भाई प्यासके मारे मर गया है कृष्णके मृत शरीरपर गिर गये ॥ ११-१२ ॥ कृष्णके प्रचुर मोहसे मूढ बलभद्रको तत्काल मूर्छा आगई—थोडी देरकेलिये उनकी चेतना एक ओर किनारा कर गई। यद्यपि मूर्छाका आना अति बुरा है तो भी उस समय उस मूर्छाने अचिंत्य महोपकार किया। क्योंकि इसबातका पूर्ण विश्वास था कि यदि बलदेवको उससमय मूर्छा न आती तो कृष्णके मोहरूपी पाशमें दृढ़रूपसे बंध जानेके कारण वे नियमसे प्राण तज देते ॥ १३ ॥ इसके कुछ समय बाद जब बलदेवको होश आया तो वे अपने शरीरसे कृष्णका सारा शरीर टटोलने लगे। उन्होंने उनके चरणमें लगे हुये घावको देखा जो कि उत्कट गंधयुक्त रुधिरसे व्याप्त था। जिससे कि मनमें ऐसा निश्चय किया कि किसी शिकारीने अपने तीक्ष्णबाणसे कृष्णके चरणको वेधा है और सोते कृष्णको मारकर आज अपूर्व शिकारका फल पाया है। कुछ समय तक इसीप्रकार तर्क

वितर्कके बाद भाईके मरजानेसे बलभद्रकी आत्मा एक दम क्रोधसे भवक उठी। उन्होंने शीघ्र ही समस्त वनको गुजानेवाला और वनमें रहनेवाले बाघ सिंह हाथी आदिके मदको मर्दन करनेवाला भयंकर सिंहनाद किया और इसप्रकार गर्जना पूर्वक बोले—

"मेरा भाई अकेला वनमें सोरहा था। आयुकी अवधि समाप्त होजानेसे किसी अकारण वैरीने छलसे उसे मारा है वह कौन वैरी है? शीघ्र ही मेरा सामना करे ॥१४-१७॥ जो मनुष्य सोनेवालेको, शस्त्ररहितको, नम्रको, मानरहितको, रणसे भागनेवालेको, अनेक विघ्नोंसे दुःखितको, और बालकको, चाहै वह मर्मभेदी ही शत्रु क्यों न होवे मारता है वह संसारमें कदापि यशोधन नहिं कहलाता—कभी संसारमें उसका यश नहिं होसकता" ॥ १८ ॥ इसप्रकार कुछकाल तक गर्जना कर वे शत्रुका पता लगाने कुछ दूर वनमें दोडे परंतु जब कहीं उसका पता न लगा तो वे वापिस लोट आये और कृष्णको गोद में ले इसप्रकार करुणाजनक रोदन करने लगे—

"हाय समस्त लोकके प्रिय! हा समस्तजगतके स्वामी! हा समस्त जनोंको आश्रय देनेवाले! हा जनार्दन! हा भाई! मुझै छोड़ तू कहां चला गया! जल्दी आ जल्दी आ!"॥१९-२०॥ यद्यपि कृष्ण मरचुके थे तथापि बलभद्र संतापके दूर करने वाला जल उन्हैं पिलाने लगे परंतु अभव्य और दूरानुदूर भव्यके मनमें जिसप्रकार सम्यग्दर्शन प्रवेश नहिं करता उसीप्रकार वह जल जरा भी कृष्णके गलेके नीचे न उतरा ॥ २१ ॥ मूढ़ बलदेव अपने कोमल हाथसे कृष्णका मुख धोते बड़े आनंदसे सामने रखकर, उसै देखते, चूमते, सूंघते, और वचन सुननेकी अभिलाषा प्रकट करते थे इसलिये ऐसी मूढ़ताकेलिये धिक्कार है॥ २२ ॥ एवं वे विनाही विचारे ऐसा कह निकले—

"भाई यदि तू यह जानकर और सोचकर पस्त-हिम्मत होगया हो कि भांति २ के वैभवोंसे शोभित द्वारिका पुरी अग्निसे जलकर खाक होगई अब जीना किस कामका, सोभी ठीक नहीं क्योंकि अब भी यह-भरतक्षेत्रकी पृथ्वी बहुतसी अक्षय खानियोंसे भरी हुई है। फिर भी वैसेही द्वारिकापुरी तयार हो सकती है ॥ २३ ॥ यदि तू यह जानकर शोक करे कि भोजवंशी और यादववंशी सब नष्ट होगये हम अपने समस्त बंधुओंसे वियुक्त हैं तब भी तेरा शोक करना वृथा है क्योंकि मैं और तुम यदि जीवित हैं तो यही समझना चाहिये कि हमारे सब बंधु बांधव मोजूद हैं॥ २४ ॥ भाई अनेकवार तूने पूर्वभवमें मुझे देखा इसभवमें भी निश्चल दृष्टिसे देखा परंतु कभी तेरी ऐसी तृप्ति न देखी न मालूम आज क्या होगया जो तू सर्वथा तृप्त होगया—मेरी ओर निहारना तक भी नहिं चाहता ॥ २५ ॥ तुझै अकेला छोड़ मोहसे मैं जल लेने चला गया था इसलिये मेरे पीछे लोकोत्तर रत्नमयी भूषण तुझै किसीने हरलिया। मेरे साक्षात्कारमें तो किसीकी शक्ति न थी जो तुझै हर लेजाता ॥ २६ ॥ अरे भाई! तू तो कंसके क्रोध

और मदरूपी पर्वतकेलिये वज्रस्वरूप था। भूमिगोचरी और विद्याधररूपी सर्पोंकेलिये गरुड़ था—तुझसे सब डरते थे और जरासंधके यशरूपी समुद्रका पान करनेवाला था सो तू इस गोष्पद (गौके खुर) में कैसे डूब गया॥ २७॥ जो सूर्य अपने ज्वलंत तेजसे रात्रिके अंधकार रूपी शत्रुका नाशकर तेरे समान समस्त लोकको संतप्तायमान करता था वही सूर्य इससमय अस्त होता चला जाता है संध्या होती आरही है॥ २८॥ तेरे मस्तकपर पडी हुई किरणोंको जो यह सूर्य संकोचता चला जा रहा है उससे यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि वह तेरी इस दीर्घ निद्रापर शोक प्रकट कर रहा है। सो ठीकही है—तेरा इसप्रकारका दीर्घकाल तक सोना किसे शोक करनेवाला न होगा॥ २९॥ यह सूर्य चिरकालतक वारुणी (उत्तरदिशा या शराब) का सेवन कर जिनकी आंखों से अविरल अश्रुधारा बहरही है ऐसे चक्रवाकोंके समुदायको शोक ग्रस्त करता हुआ नीचे गिरता चला जा रहा है। सो ठीकही है—क्योंकि वारुणीका सेवन करनेवाला कौन मनुष्य नीचे नहिं गिरता॥ ३०॥ यह प्रतापी सूर्य शोक दूरकर समुद्रमें स्नान करता है अथवा तुम्हारेलिये जलांजलि देता है सो सचही है क्योंकि जो मनुष्य देश-कालके भलेप्रकार जानकार हैं वे अपने उचित कर्तव्यसे कभी विमुख नहिं होते॥३१॥ तू चिरकालकेलिये सोगया है इसलिये तेरे शोकसे रोते हुये मनुष्योंके नेत्रोंकी लालिमाके समान इस संध्याकालकी लालिमाने समस्त लोक सब ओरसे व्याप्त करलिया है॥ ३२॥ हे देवभक्त! यह संध्या भी फीकी पड़ शीघ्रतासे गमन करनेवाले सूर्यके पीछे २ चली जा रही है इसलिये उठ उठ जल्दी उठ! संध्यावंदनकर! इस निष्फल निद्रामें क्या रक्खा है ?॥ ३३॥ जिसप्रकार अतिदुःषमा कालका व्यापार किसी एक प्रधान अधिकारीके न रहनेपर समस्त जगतको एक वर्णका कर देता है (कलिकालमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्ररूप वर्णोंका विभाग न कर सबके सब ब्राह्मण आदि उत्तम बनना चाहते हैं—खान पानमें कुछ भी भेद रखना नहिं चाहते) उसीप्रकार स्वामी सूर्यके चले जानेपर इस अंधकार ने समस्त जगतको एकवर्णका—काला करदिया है—इससमय कोई पदार्थ नजर नहिं पड़ता॥ ३४॥ वनके सिंह आदि हिंस्रजीवोंके कान नाक बड़े उग्र होते हैं वे पदकी आहट वा गंधसे तत्काल प्राणीका पता पा लेते हैं इसलिये भाई! उठो अपन दोनों इस किलेका आश्रय करैं जिससे हम दोनोंकी रात्रि सकुशल वीत जाय॥ ३५॥ हे कृष्ण! बंधु और राजाओंकेलिये अतिशय दर्शनीय जो तू नाना प्रकारके चित्रोंसे अलंकृत, भांति २ के पुष्पोंसे तयार किये हुये, मंडपमें महामनोहर तकियोंसे शोभित, अतिशय कोमल सेजपर, अपनी स्त्रियोंके साथ सोया करता था सो तू आज पर्वत और वनके रंध्रोंमें रहनेवाले गीध काक और शृगाल आदि हिंसक जीवोंके साथ इस दुष्ट पृथ्वीपर पड़ा हुआ है॥ ३६-३७॥ जो तू पहिले प्रणयक्रीडासे

कुपित हुई कामिनियोंको चाटुवचनोंसे प्रसन्न करता था और तेरे कुपित होजानेपर वे तुझे प्रसन्न करती थीं और इस तरह क्रीडासे समस्त रात्रिको विताता था सो आज चेतनासे रहित हो इसवनमें तू रात्रि व्यतीत कर रहा है ॥ ३८ ॥ पंहिले प्रातःकालमें जो तू वारवनिताओंके सुंदर गीतोंसे और वंदीगणोंके उत्तमोत्तम पाठोंसे जगता था सो आज इस वनमें नीरस शृगालोंके शब्दोंसे तुझे जगना पडता है।।३९।। भ्रात ! प्रातःकाल होगया है सूर्यकी परम अनुरागिणी और अपनेसे पहिले सूर्यद्वारा भेजी हुई यह प्रातःसंध्या समीप आरही है सो ऐसी जान पडती है मानो तुम्हारे हालको जाननेकेलियेही इसे सूर्यने भेजा है इसलिये तू सोना छोड और उठकर वैठ जा ॥४०॥ देखो ! अपनी किरणोंसे कमलोंको खिलाता हुआ यह सूर्य उदयाचलसे प्रकट हो रहा है सो ऐसा जान पड़ता है मानो तुझे प्रधान पुरुष जान अर्घ देनेकेलिये ही उद्यत हुआ है" ॥४०॥ बलदेवको कृष्ण प्राणोंसे भी अधिक प्यारा था इसलिये कृष्णको उद्बुद्ध करनेकेलिये उक्तप्रकारसे बहुत कालतक उन्होंने चाटुवचन कहे परंतु गाढ़ रूपसे सोये हुये मुग्धबालक (कामविकारोंके ज्ञानसे शून्य बालक) पतिमें जिसप्रकार युवति स्त्रीकी समस्त प्रार्थनायें और चेष्टायें निष्फल जाती हैं उसीप्रकार बलदेवके कृष्णके विषयमें सब चाटुवचन निरर्थक गये। और बालकालमें कंसकी शंकासे जिसप्रकार कृष्णको गोदमें लेलिया था उसी प्रकार उनके शरीरके स्पर्शसे अपनेको परमसुखी मानते हुये वे कृष्णको गोदमें ले वन में घूमनेलगे ॥ ४२-४३ ॥ इसप्रकार यद्यपि कृष्णको गोदमें लिये लिये बलदेवको बहुत दिनरात वीतगये परंतु कृष्णकी ओरसे उनका मन वचन और शरीर जरा भी खिन्न न हुआ। वे प्रतिदिन कृष्णको गोदमें लिये लिये घूमते ही रहे—तनिक भी उन्हें वनमें शांति न मिली ॥ ४४ ॥

जिससमय ग्रीष्म ऋतु चलीगई। समस्त संतापको जड़से उखाड़नेवाली वर्षा ऋतुका प्रारंभ हुआ। चारो ओर मेघ गर्जने और वर्षने लगे और उससे (वर्षासे) सर्वत्र लोकमें कल्याण ही कल्याण प्रतीत होनेलगा। उससमय कृष्णकी आज्ञानुसार भीलका वेष धारणकर कृष्णके दूतका काम करनेवाला जरत्कुमार माथुर लोगोंसे व्याप्त पांडवपुरी दक्षिणमथुरामें आया। सभामें पहुंचतेही पांडवोंने उसका उचित सत्कार किया। उत्तम स्थानपर विठाया और युधिष्ठिर आदि सबने मिलकर कृष्णकी क्षेम कुशल पूछी। ज्योंही उसने पांडवोंके वचन सुने मारे शोकके उसका कंठ रुकगया पश्चात् बड़ी कठिनतासे उसने द्वारिकाके नाश होजानेसे अपने कुटुंबियोंका नाश और अपने प्रमादसे कृष्णकी मृत्युका सारा समाचार कह सुनाया। पांडवोंके विश्वास दिलानेकेलिये जिससे किरणोंका समूह छिटक रहा था ऐसी कौस्तुभमणि भी दिखाई और वंशनाशके दुःखसे अतिदुःखित हो फुका मार २ कर रोनेलगा ॥ ४५-४९ ॥ कुंति आदि रानियोंने भी कृष्णके मरनेका और द्वारिका पुरीके नाशका समाचार सुना तो वे भी बुरीतरह डकार२

कर रोनेलगीं और उससमय पांडवोंके राजमंदिरमें समुद्रकी ध्वनिके समान रोनेकी ध्वनि सुनी जाने लगी ॥ ५० ॥ वे सबके सब इसप्रकार चीत्कार नाद करनेलगे—

"हा प्रधान पुरुष! हा अद्वितीय वीर! हा समस्त जगतके दुःख दूर करनेवाले! विधिने तेरे विषयमें यह क्या विचार किया—तुझे क्योंकर हरलिया!" बहुत कालके बाद जब रोना चिल्लाना समाप्त हुआ तो समस्त लौकिक रीतिके जाननेवाले युधिष्ठिर आदि बांधवोंने संस्थित मनुष्योंके संतोषके लिये मृत कृष्णको जल समर्पण किया ॥ ५१-५२ ॥ जरत्कुमारने जो भीलका वेष धारण किया था पांडवोंने उसे बहुत धिक्कारा इसलिये उसने उसीसमय उस वेषका त्याग कर दिया और उसे साथ लेकर दुःखी बलदेवके देखनेके लिये समस्त पांडव चल दिये ॥ ५३ ॥ कितने ही दिनोंके बाद समस्त पांडव द्रौपदी आदि रानियां, माता और पुत्रोंके साथ मयसेनाके वे वनमें आये और उन्होंने वहां कृष्णको गोदमें लिये बलभद्र को देखा ॥५४॥ बलदेव उससमय सर्वथा ज्ञानशून्य थे और कृष्णके मृत शरीर के उपटन स्नान मंडन आदि क्रियायोंमें व्यग्र थे यह देखतेही सबके सब बांधवोंने बलदेवको जेटमें भर लिया और बड़े उन्नत स्वरसे रुदन करने लगे ॥ ५५ ॥ कुंतीके पुत्र पांडव बलदेवको नमस्कार कर समझाने लगे और कृष्णकी अंत क्रिया करनेके लिये प्रार्थना करने लगे परंतु बलदेवने उनकी एक न सुनी। वे एकदम कुपित होगये और जिसप्रकार बालक विषफल भी किसीको देना नहिं चाहता उसीप्रकार कृष्णके मृत शरीरको देनेके लिये उन्होंने सर्वथा इनकार कर दी ॥ ५६ ॥ वे समस्त पांडवोंको इसप्रकार आज्ञा देने लगे—पांडवो! कृष्ण भूंखा और प्यासा है, खाना पीना चाहता है तुम जल्दी इसके लिये स्नानकी सामग्री और भोजन पानी बनाकर तयार करो। बलदेवकी आज्ञानुसार उनको किसीप्रकारका कष्ट न हो इसभयसे पांडवोंने शीघ्र ही स्नानकी सामग्री और भोजन पान तयार कर दिया। बलदेव उसे आसनपर बिठाकर स्नान कराने भोजन खिलाने और पानी पिलाने लगे परंतु सब व्यर्थ गया। यद्यपि पांडव भी इस बातको समझते थे कि ऐसा करना सब व्यर्थ है परंतु वे बलदेवको बड़ा मान उनकी आज्ञा पालनसे ही अपनेको कृतकृत्य समझते थे ॥५७-५८॥ इसप्रकार बलदेवके अनुगामी पांडवोंने उनकी आज्ञानुसार परिचर्यासे वर्षाकाल उनके साथ ही वनमें व्यतीत किया पश्चात् शरद ऋतुका प्रारंभ हुआ और उससे ऐसा जान पड़ने लगा मानो बलदेवके प्रचंड मोहरूपी मेघपटलको भेदनेके लिये ही उसका उदय हुआ है ॥ ५९ ॥ पहिले कृष्णके शरीरमें सप्तपर्णकीसी सुगंध आती थी परंतु उनके मृत शरीरमें दुर्गंध आने लगी और वह दुर्गंध दूर देश तक फैल गई। सो ठीक ही है—सुगंधि दुर्गंधि कभी एक साथ नहिं रह सकतीं ॥ ६० ॥

कृष्णका भाई सिद्धार्थ जो सारथि था मरकर स्वर्गमें देव हुआ था जिससमय

उसने दीक्षा ली थी उससमय बलदेवने उससे यह वायदा करालिया था कि भाई! कृष्णके मरजानेपर यदि मै विशेष शोक ग्रस्त होऊँ तो मुझे आकर समझाना इसलिये वह यह जान कि अब बलदेवका शोक बहुत शीघ्र नष्ट होनेवाला है शीघ्र ही उन्हें समझानेके लिये उनके पास आया ॥६१॥ उसने वहां एक मायामयी रथ बनाया जो कि पर्वतकी विषम भूमिपर चलानेसे तो जरा भी न टूटा परंतु चौरस मार्गपर चलाने से उसकी समस्त संधियां जुदी२ होगई और उसे बलदेवको दिखलाया। ज्योंही बलदेवने रथका यह विचित्र चमत्कार देखा वे उससे इसप्रकार कहने लगे—

भाई! बड़े आश्चर्यकी बात है कि पर्वतकी विषम भूमिपर चलानेसे तो तेरा रथ ज़रा भी न टूटा परंतु समतल भूमिपर चलानेसे उसकी खील २ उड़ गई और पुनः उसको जोड़कर तू वैसाका वैसा बनाना चाहता है भला यह फिर वैसा कैसे बन सकता है? उत्तरमें देवने कहा—

"भरतक्षेत्रकी पृथ्वीका अद्वितीय भरण पोषण करनेवाला और जरत्कुमारके बाणके तीक्ष्ण आघातसे जमीनपर गिरकर मरा हुआ यह कृष्णही कब जी सकता है" ॥६२-६४॥ इसके बाद देवने विना जलके कमल लगाने प्रारंभ कर दिये। बलदेवने उसे फिर टोक कर कहा कि-शिलातल पर कमल कैसे ऊग सकते हैं? परंतु देवसे यही उत्तर पाकर कि 'मरा कृष्ण भी नहिं जी सकता' वे शांत होगये। इसके पश्चात् देव सूखे वृक्षोंमें जल सींचकर और मरी गौओंके मुखमें तृण और जल देकर दिखाने लगा बलदेव जब फिर उससे यह कहने लगे कि-भाई! सूखे वृक्ष हजार वार जलसे सीचे जाने पर भी हरे भरे नहिं हो सकते मरी गायें कभी खा पी नहीं सकती तो उसने वही एक उत्तर देकर कि 'मरा हुआ कृष्ण कभी जिंदा नहिं हो सकता' उन्हें शांत कर दिया। इसप्रकार बहुत समय तक उस देवकी चेष्टाओंके देखनेसे बलदेवको कुछ बोध हुआ तो वे इसप्रकार कहने लगे—

"भाई! तुम ठीक कहते हो। कृष्ण अवश्य प्राणोंसे रहित होगया है। यह बात झूठी नहिं हो सकती जो तुमने कहा है सो योग्य और विचार पूर्वक कहा है।" ॥ ६५-६८ ॥ उत्तरमें देवनें कहा-

महाभाग! भगवान जिनेंद्रके उपदेशको और संसारकी स्थितिको भलेप्रकार जानकर भी आपने कृष्णके मृत शरीरको लिये लिये छै मास वृथा खो दिये॥६९॥ देखो! न तो कोई वहिरंग कारण किसीकी रक्षा करता है और न वह किसीका नाश करता है। अपना किया हुआ अंतरंग कारण कर्म ही रक्षक और भक्षक है। जब तक आयुकर्म शेष रहता है तब तक रक्षा होती रहती है और आयुकर्मके समाप्त होजाने पर सर्वथा क्षय हो जाता है ॥ ७० ॥ संपत्ति तो हाथीके कानके समान चपल है। प्रिय

पदार्थोंके संयोग उनके वियोग होजानेसे दुःख देनेवाले हैं। जीवन, मरणके दुःखसे नीरस है। इसलिये विद्वानको चाहिये कि वह अक्षय सुख मोक्षका उपार्जन करे"। ॥ ७१ ॥ इसप्रकार पूर्वजन्मके भाई सारथि देव द्वारा प्रतिबुद्ध राजा बलदेव मोह-रहित हो गये और मेघपटलके दूर होजाने पर जिसप्रकार चंद्रमा अधिक सुहावना जान पड़ता है उसीप्रकार वे अतिमनोहर जान पड़ने लगे ॥ ७२ ॥ उन्होंने पांडव और जरत्कुमारके साथ शृंगी पर्वतके शिखरपर कृष्णके शरीरका संस्कार और जरत्कुमारको राज्य प्रदान किया। उन्होंने अपने साथियोंके साथ उसी पर्वतके शिखरपर बैठ जीवनको क्षणभंगुर समझ समस्त परिग्रहके त्यागका निश्चय कर लिया और 'यद्यपि मैं यहां बैठा हुआ हूं एवं भगवान नेमिनाथ पल्लव देशमें विराजमान हैं तथापि मैं उन्हींका शिष्य हूं—उन्हींसे दीक्षा लेता हूं' ऐसा विचार "ओं नेमिनाथाय नमः" ऐसा उच्चारणकर मुनिमुद्रा धारण करली और पंचमुष्टियोंसे केशोंको उपाड़ डाला ॥ ७३-७४ ॥ एक दिन मुनिराज बलदेव पारणाकेलिये किसी नगरमें गये तो इनके मनोहर रूपको देखकर वहांकी स्त्रियां विह्वल होगईं—विपरीत चेष्टा करने लग गईं। ज्योंही मुनिराजने उनका ऐसा दृश्य देखा वे तत्काल वनको चले आये और ऐसी कडी प्रतिज्ञा कर कि 'जो मुझे वनमें आहार मिलेगा तो लूंगा अन्यथा नहीं' योग मुद्रासे विराजमान होगये ॥ ७५ ॥ पांडवोंने हरिवंशके राजा जरत्कुमारका बहुतसी राजकन्याओंके साथ विवाह कराया और अपने पुत्रोंको राज्य प्रदानकर सबके सब भगवान जिनेंद्रके दर्शनोंके लिये पल्लव देशकी ओर चल दिये ॥ ७६-७७ ॥ द्रौपदी आदि पांडवोंकी स्त्रियोंके और माता कुंतीके मनमें भी संयम धारण करनेकी अभिलाषा हो गई। वे भी संसारको असार जान मोह तोड़ पांडवोंके पीछे पीछे चल दीं ॥ ७८ ॥ मुनिराज बलदेव एकाग्र ध्यानी हो अखंडरूपसे वनमें विराजमान होगये और मन वचन कायकी प्रवृत्तिको घटानेके लिये इसप्रकार अनित्य आदि बारह भावना भाने लगे—

तन धन इंद्रियसुख और बधुओंको जो लोग अपना कह कह कर पुकारते हैं यह उनकी बड़ी भारी भूल है ये अनित्य हैं—क्षणभंगुर हैं। कभी किसीके नहिं हो सकते अकेला आत्मा नित्य है और वही निर्ज है ॥७९-८०॥ जिसप्रकार बाघके मुखमें पडे हुये मृगके बच्चेको कोई नहीं बचा सकता उसीप्रकार मृत्युके दुःखसे दुःखित मुझे बांधव धन आदि कोई नहिं बचा सकते। धर्मके सिवाय संसारमें मेरा कोई शरण नही है ॥ ८१ ॥ ये विचारे दीन प्राणी महाविषम कर्मरूपी यंत्रसे प्रेरित हो भांति २ की करोडों योनियोंसे जटिल इस संसाररूपी चक्रपर कभी स्वामी कभी नौकर कभी पिता कभी पुत्र आदि हो सदा घूमते रहते हैं ॥ ८२ ॥ यह प्राणी अकेला ही तो मरता है अकेला ही उत्पन्न होता है और सिवाय धर्मके इसके साथ कोई नहिं जाता धर्म

ही अकेला इस जीवका सहायक है ॥ ८३ ॥ मैं नित्य अविनाशी हूं यह शरीर अनित्य है मै चेतन हूं और शरीर अचेतन है इसलिये यह मुझसे सर्वथा भिन्न है कदापि मेरा नहिं हो सकता और जब यह अतिनिकट संबंधी शरीर अपना नहीं तो पुत्र बांधव आदि तो कदापि अपने नहिं हो सकते ॥ ८४ ॥ यह शरीर निंदित कारण शुक्र और शोणितसे उत्पन्न हुआ है। मल मूत्र आदि सप्त धातुस्वरूप है। वात पित्त कफ रूप त्रिदोषोंका घर है अपने संबंधी पदार्थोंको भी अपवित्र बनानेवाला है इसलिये ऐसा कौन बुद्धिमान पुरुष होगा जो कि महा अपवित्र अपने और पराये शरीरमें राग करैगा ॥ ८५ ॥ मन वचन कायकी क्रियासे पुण्य और पापका आना आस्रव है और इस आस्रव मार्गसे आये हुये कर्मोंकी दृढ़ शृखलामें बंधकर यह विचारा दीन प्राणी इस महाभयंकर संसारमें चिरकालतक संसरण करता रहता है ॥ ८६ ॥ आये हुये कर्मोंका रुक जाना संवर है यह समिति गुप्ति आदि कारणोंसे होता है एवं द्रव्य संवर और भावसंवर इसप्रकार दो इसके भेद हैं। संवरके बाद निर्जरा होती है—पहिले बंधे हुये संचित कर्मोंका क्रम क्रमसे क्षय होता जाता है जिससे समस्त कर्मोंके नाश हो जाने-पर यह जीव संसार बंधनसे रहित हो, मोक्ष सुखका अनुभव करता है ॥ ८७ ॥ निर्जराके दो भेद हैं एक सविपाक, दूसरी अविपाक। प्रथम सविपाक निर्जरा प्रतिसमय समस्त प्राणियोंके हुआ करती है—पहिले बंधे हुये कर्म अपना अपना फल देकर प्रति-समय खिरते रहते हैं वहांपर भी जो सविपाक निर्जरा दुर्गतियोंमें होती है वह दुःख देनेवाली है और संयमसे होनेवाली सुखदात्री है किंतु जो निरनुबंधिनी—अविपाक है सुख दुःख दोनों ही नहि प्रदान करनेवाली है वह परम उपयोगी है और शुभ है एवं इसीसे मोक्षसुखकी प्राप्ति होती है ॥८८॥ यह लोकका संस्थान अनादि अनंत है आका-शके ठीक मध्यभागमें लोकाकाश है और इस लोकाकाशमें छहो कायके जीव रहते हैं जो कि सदा अनंत क्लेश भोगते रहते हैं ॥ ८९ ॥ निगोदसे निकलकर प्रथम तो वृक्ष आदि एकेंद्रिय जीव होना महाकठिन है। खैर! एकेंद्रिय आदि भी हुये तो उत्तम कुलमें जन्म पाना महाकठिन है उत्तम कुलमें भी उत्पन्न हुये तो समस्त इंद्रियोंकी परिपूर्णता होना दुःस्साध्य है। इंद्रियोंकी भी परिपूर्णता होगई तो परमधर्म सम्यग्दर्शन सम्य-ग्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयकी प्राप्ति कठिन है और सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय भी प्राप्त होजाय तो समाधिपूर्वक मरण होना अतिदुःसाध्य है ॥ ९० ॥ भगवान जिनेंद्रद्वारा प्रतिपादित हिंसा आदि पापोंका निषेध करनेवाला और मोक्षकी प्राप्ति क-रानेवाला धर्म है जो मनुष्य इस परमपावन धर्मका त्याग करते हैं उन्हें चिरकालतक संसारमें घूमना पड़ता है ॥ ९१ ॥ इसप्रकार विशाल बुद्धिके धारक महामुनि बलदेवने वार वार अनित्य आदि अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन किया जिससे कि उनका कृष्णविषयक

सब मोह दूर होगया। और बावीस प्रकारकी परीषह भी सहीं ॥ ९२ ॥ एकतो मुनिराज बलदेवके यही कड़ी प्रतिज्ञा थी कि जो हमैं वनमें आहार मिलैगा तो लेंगे तिसपर भी प्रतिदिन यह और भी कडी आखडी करलेते थे कि आज ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्यमेंसे यदि वैश्य वा ब्राह्मण क्षत्रिय आहार देगा तो लेंगे किं वा इस चीजका आहार मिलैगा तो लेंगे अन्यथा नहीं। इसलिये भयंकर जठराग्निसे पीडित अपने जठरको वे सर्वथा अपने वश करते थे। अथवा भोजन मिलनेपर आधा भोजन ही करते थे इसप्रकार क्षुधा परीषहको मोक्षका प्रधान कारण मान वे उसै सदा जीतते रहते थे ॥ ९३ ॥ देहरूपी पर्वतके अवयवरूपी वनको भस्म करनेवाले दावानलके समान देदीप्यमान उग्रपिपासासे उन्होंने अपने परमपावन धर्मको जरा भी च्युत न होने दिया और क्षमारूपी मेघमंडलसे सदा उसै सींचते रहै ॥ ९४ ॥ जिसमें रात दिन ठंडी ही ठंडी विद्यमान थी जो शीतलपवन और हिमकी वर्षासे महाविषम था ऐसे महाभयंकर शीतकालमें मुनिराज बलदेवने स्थंडिल (ऊषरा) में और वर्षाऋतुमें वृक्षके नीचे खडे होकर महातीक्ष्ण शीतपरीषहसे युद्ध किया– उसैं जीता। ग्रीष्म ऋतुमें जब सब ओर उष्णता ही उष्णता नजर पडती थी. तब मुनिराज पर्वतकी शिखरपर विराजमान होकर महाभयंकर उष्ण.परीषहको जीतते थे और जो उससमय वनमें लगे हुए दावानलका धूंआ मुनिराजके मस्तकपर छा जाता था.उससे ऐसा जान पडता मानो वे छत्री लगाकर अपनी उष्णताकोही दूर कररहे हैं ॥९५–९६॥ जिनका 'कब आये और कब गये' इत्यादि व्यापार जरा भी न मालूम होता था ऐसे वनके डांस मच्छर आदि जीव मुनिराजके शरीरका रुधिर पान करते थे तथापि वे तनिक भी कंपायमान न होते थे और दंश मशक परीषहको खुशीसे सहन करते थे ॥ ९७ ॥ जिसप्रकार उत्तम स्त्री सदा लज्जा धारण किये रहती है उसीप्रकार आहारके समय नग्न परीषहसे उत्पन्न हुये दुःखकी कुछ भी पर्वाय न कर स्वभावसे ही शरीरमें संलग्न, किसीप्रकारका दुःख न देनीवाली, नाग्न्य परीषहको भी वे सदा सहते रहते थे ॥ ९८ ॥ वे अकेलेही ध्यानके योग्य पर्वत मार्ग और दुर्गोंमें विहार करते थे और किसी प्रकारका उपद्रव आनेपर धर्मके साधनोंमेंही प्रीति करते थे शरीरमें उनकी किसी प्रकारकी रति न थी इसरीतिसे वे सानंद अरतिपरीषह सहन करते थे ॥ ९९ ॥ जहांपर स्त्रियोंके भ्रुकुटिरूपी धनुषोंपर आरोपण कर कटाक्षरूपी तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा होती है ऐसे कामदेवके साथ युद्धकर उसै जीतते थे और उससे स्त्रीपरीषहविजयी कहलाते थे ॥१००॥ सवारी आदिकी कुछ भी पर्वाय न संयमपूर्वक तीर्थभूमियोंमें विहार करते थे, आवश्यकोंमें किसी प्रकारकी बाधा आकर खड़ी न होजाय इस रूपसे गमन करते थे और चित्तपर कैसी भी खिन्नता न लाते थे इस प्रकार वे निरालस हो चर्या परीषहका विजय करते थे॥१०१॥ महाध्यानी परमविद्वान

मुनिराज बलदेव प्रासुक और एकांत स्थानोंपर जिस किसी क्षेत्र वा कालमें, ध्यानकेलिये जिस आसनका संकल्प करते थे उससे जरा भी नहिं चिगते थे इसरीतिसे वे महाभयंकर निपद्या (आसन) परीषहका विजय करते थे ॥ १०२ ॥ वे ध्यान वा शास्त्रोंके अध्ययनसे रात्रि विताते थे। खेदके दूर करनेकेलिये बहुत थोड़े समयतक बहुत थोड़ी निद्रा एक करवटसे लेते थे॥ १०३ ॥ दुष्टजन अपने तीक्ष्णवचनरूपी शस्त्रोंसे मुनिराज बलदेवके हृदयपर चोट पहुंचाते थे तथापि महाक्षमाधारी धीर वीर वे मुनिराज उनके दुर्वचनोंको सहलेते थे जराभी मनमें क्रोध न लाते थे और इसरीतिसे आक्रोश परीषहको सानंद सहन करते थे ॥१०४॥ वध परीषहके समय वे इस वातका विचार करते रहते थे कि यदि अस्त्र शस्त्रसे मेरे शरीरके वध करनेका अवसर आगया है तो मुझे खेद न कर उसे सहन करलेना चाहिये तनिक भी क्रोध न करना चाहिये इसप्रकार वध परीषहके जीतनेमें भी उन्हें किसी प्रकारका कष्ट न होता था ॥ १०५ ॥ मुनिराज बलदेव बाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारका घोर तप तपते थे। उनके शरीरमें केवल हड्डियोंकाही समूह रह गया था इसलिये संयमार्थ शरीर मोजूद रहा आवे ऐसा जान वे नियत समयपर आहारके लिये गमन करते थे परंतु किसीसे किसी वातकी याचना न करते थे इसलिये बड़े आनंदसे उनके याचनापरीषहका विजय होता था ॥ १०६ ॥ मुनिराज बलदेव आहारके लिये मौनपूर्वक गमन करते थे। चंद्रमा जिसप्रकार छोटे बड़े सब घरोंमें प्रकाश करता है उसीप्रकार वे भी अमीर गरीब सबोंके घर जाते थे और किसी वातका इशारा न कर अपना शरीरमात्र दिखाते थे यदि ऐसी दशामें उन्हें आहार मिल जाता था तो ठीक ठाक थी यदि नहिं मिलता था तो मनमें किसीप्रकारका खेद न लाते थे सदा प्रसन्न ही बने रहते थे इसप्रकार वे खुशीसे अलाभ परीषहका विजय करते थे॥ १०७॥ अधिक उष्णपना, ठंडापना, विरुद्धभोजन, वात, पित्त और कफसे यदि किसीप्रकारका उनके शरीरमें रोग हो जाता था तो वे उसके दूर करनेका कुछ भी उपाय न कर उसकी उपेक्षा कर देते थे और इसरीतिसे रोग परीषहके जीतनेमें भी उन्हें किसीप्रकारका खेद न होता था ॥ १०८ ॥ सोते और बैठते समय यदि उन्हें तृण कंकर आदिसे कुछ भी पीड़ा होती थी तो वे मनमें किसीप्रकारकी ग्लानि नहिं लाते थे खुशीसे उसे सह लेते थे और इसरीतिसे तृणस्पर्श परीषहके वे पूर्ण विजेता थे ॥ १०९ ॥ मुनियोंको जीवहिंसाके भयसे स्नान आदि करनेकी आज्ञा नहीं है और, न वे शरीरपर लगे हुये मैलको नख आदिसे खुरचही सकते हैं इसलिये नख आदिसे मलको न खुरचते हुये मुनिराज बलदेवका गौर शरीर धूलि आदिके मैलसे काला होगया था जिससे कि वे विशाल पर्वतके अग्रभागमें विद्यमान काले मेघ पटलसे आच्छन्न चंद्रमा सरीखे जान पड़ते थे॥ ११० ॥ यदि कोई किसीप्रकारका आदर

करता तो वे खुश न होते और अनादर करता तो वे मनमें किसी प्रकारकी ग्लानि न लाते थे बल्कि उस अनादरको वड़ी खुशीसे सहते थे इसलिये उन मुनिराज बलदेवके सत्कारपुरस्कार परीषहका पूर्णतया विजय होता था ॥ १११ ॥ मुझसे अन्य इससमय न तो कोई अधिक वादी है न वाग्मी है न महाकवि है और न सकल शास्त्रका वेत्ता है जो कुछ इससमय हूं, मैं ही हूं इसप्रकारके अभिमानको प्रज्ञा परीषह कहते हैं। मुनिराज बलदेवके यह कुछ भी अभिमान न था इसलिये वे प्रज्ञापरीषहके पूर्ण विजयी थे ॥ ११२ ॥ अज्ञानी मिथ्यादृष्टि मनुष्योंद्वारा, यह अज्ञानी न तो पशु मालूम पड़ता है न मनुष्यही है, बोलता भी कुछ नही वृथा मौन धारण कररक्खा है इसप्रकारके कहे हुये वचनको सहना अज्ञान परीषह है मुनिराज बलदेव इस अज्ञान परीषहको भी खुशीसे सहते थे ॥११३॥ तपसे भांति २ की ऋद्धियां प्राप्त होती हैं इतने दिन तप करते वीतगये परंतु अभीतक ऋद्धि प्राप्त न हुई इसप्रकारका विचार न करना अदर्शन परीषहका जीतना है। परमसम्यग्दृष्टि मुनिराज वलदेवका भी ऐसा निंदित विचार न था इसलिये अदर्शनपरीषहका वे पूर्णतया विजय करते थे ॥ ११४ ॥

इसप्रकार समस्त परीषहोंके जीतनेवाले, विषय दोषोंसे रहित, महामनोज्ञ, जिनेंद्रद्वारा प्रतिपादित चारित्ररूपी पृथ्वीपर विहार करनेवाले मुनिराज बलभद्रने चिरकालतक घोर तप तपा ॥ ११५ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें बलदेवका तप वर्णन करनेवाला त्रेसठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६३ ॥

चौसठवां सर्ग।

चारो प्रकारके देवोंसे व्याप्त समवसरणसे मंडित भगवान नेमिनाथ उससमय पल्लव देशमें विराजमान थे। संसारसे सर्वथा भयभीत समस्त पांडव वहां गये। भगवान की तीन प्रदक्षिणा दे उन्हें नमस्कार किया और भगवान जिनेंद्ररूपी मेघसे धर्मरूपी अमृतका पानकर उन्होंने अपने पूर्वभव पूछे जिससे कि भगवान इसप्रकार उनके पूर्वभवोंका वर्णन करने लगे—

इसी भरतक्षेत्रमें एक चंपापुरी नामकी नगरी है। किसी समय उसका स्वामी राजा मेघवाहन था जो कि कुरुवंशका भूषण स्वरूप गिना जाता था। उसके राज्यकालमें चंपापुरीमें एक सोमदेव नामका ब्राह्मण भी रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सोमिला था और उससे सोमदत्त सोमिल और सोमभूति नामके तीन पुत्र उत्पन्न हुये थे ॥१-५॥ इन पुत्रोंके मामाका नाम अग्निभूति था। उसकी स्त्री अग्निला थी और उससे धनश्री सोमश्री और नागश्री ये तीन कन्या उत्पन्न थीं जो कि क्रमसे तीनों ब्राह्मण कुमारोंको

विवाही गईं थीं ॥६॥ ब्राह्मण सोमदेव परमवेदवेत्ता था। एक दिन उसे शरीर भोग और संसारसे वैराग्य होगया और उसने तत्काल दिगंबर दीक्षा धारण करली ॥७॥ सोमदत्त आदि तीनों भाई भी परम जिनशासनके भक्त थे। भलेप्रकार गृहस्थ धर्मको पालते थे और न्यायपूर्वक धर्म अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थोंके सेवन करनेवाले थे ।८। पारणाके समय एकदिन मुनिराज धर्मरुचि उनके यहां आहारार्थ आये जो कि धर्मके अखंड पिंड सरीखे जान पड़ते थे और चांद्री चर्यासे गमन करते थे ॥ ९ ॥ मुनिराजको देखते ही ब्राह्मण सोमदत्त एकदम उठा, उनका बड़े उत्साहसे पडिगाहन किया और किसी आवश्यक कार्यकी व्यग्रतासे आहार देनेका कार्य नागश्रीको सोंपकर स्वयं वहां से चला गया ॥१०॥ ब्राह्मणी नागश्रीका उससमय वज्र पापका उदय होगया। मुनिराजको देखते ही उसकी आत्मा मारे क्रोधके भवक उठी। इसलिये उस दुष्टिनीने विष मिले अन्नका मुनिराजको आहार दिया जिससे कि वे सन्यासपूर्वक मरणकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिंद्र जाकर हो गये ॥११॥ नागश्रीका दुष्कृत्य जब सोमदत्त आदि भाइयोंने सुना तो उन्हें एकदम संसारसे वैराग्य होगया और उन्होंने मुनिराज वरुणके चरणकमलोंमें दिगंबर दीक्षा धारण करली ॥१२॥ धनश्री और मित्रश्रीको भी संसारके निवाससे विषाद होगया वे भी मोहका त्यागकर गुणवती नामकी आर्यिकाके पास गईं और व्रत धारण कर आर्यिका होगईं इसतरह वे सबके सब पांचज्ञान, तीन सम्यग्दर्शन, तेरह चारित्र और तपकी शुद्धिकेलिये चारित्रोंका आचरण करनेलगे ॥ १३–१४ ॥ चारित्रके सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात ये पांच भेदहैं। जहांपर समतारूप भाव हों और समस्त सावद्ययोगोंका प्रत्याख्यान–अभाव हो वह सामायिक चारित्र है ॥१५॥ प्रमादके कारण यदि कोई सावद्य कर्म बन जाय तो उससे उत्पन्न हुये दोपको प्रायश्चित्त लेकर छेद देवे और आत्माको पुनः व्रतधारणरूप संयममें धारण करे उसे छेदोपस्थापना चारित्र कहते हैं ॥ १६ ॥ असंयमका त्यागकर और संयम धारणकर जहां विशेप शुद्धि हो वह परिहारविशुद्धि नामका चारित्र है ॥ १७ ॥ सांपरायका अर्थ कपाय है इसलिये जहांपर कपाय विलकुल सूक्ष्म हो जांय अर्थात् जो चारित्र दशवें गुणस्थानमें हो वह सूक्ष्मसांपराय नामका चारित्र है ॥ १८ ॥ और चारित्रमोहनीय कर्मके सर्वथा उपशम वा क्षय होनेसे जो चारित्र हो वह यथाख्यात अथवा अथाख्यात चारित्र है और यह चारित्र मोक्षका कारण है ॥ १९ ॥ तपके बारह भेद हैं। उनमें अनशन, अवमोदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, और कायक्लेश ये छै बाह्य तप हैं और प्रायश्चित्त, विनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग ये छै अभ्यंतर तप हैं। संयम आदिकी और उत्तम ध्यानकी सिद्धिके लिये चक्रवर्ती आदि प्रत्यक्ष फलोंकी प्राप्ति और रागके नाशके लिये जो भोजनका न करना है

वह अनशन तप है और वह अनेक प्रकारका है ॥२०-२१॥ दोषोंके दूर करनेकेलिये और संतोष स्वाध्याय एवं ध्यानकी सिद्धचर्थ अल्पनिद्राका कारण जो थोड़ा हलका आहार करना है वह अवमोदर्य नामका तप है ॥ २२ ॥ ऐसा नियम करके कि, एक वा दो घर आहारकेलिये जाऊंगा, एकही नगरमें वा रास्तेमें ही आहार लूंगा वा अमुक चीज मिलेगी तो आहार लूंगा' आहारकेलिये वनसे आना और किसी कारणसे आहार न मिलनेपर पुनः वनमें जाकर उपवास आदि करना वृत्तिपरिसंख्यान नामका तप है ॥२३॥ निद्रा और इंद्रियोंके दमन करनेके लिये घी दूध आदि पुष्ट पदार्थोंका त्याग करना रसपरित्याग नामक तप है ॥ २४ ॥ पशु और स्त्री आदिसे रहित प्रासुक एकांत स्थानमें जो रहना और सोना है वह विविक्तशय्यासन नामका तप है ॥ २५ ॥ और शरीरमें ममत्वका सर्वथा त्यागकर तीनों काल योग धारण करना, मासोपवास आदि करना कायक्लेश नामका तप है इससे मोक्षमार्गकी प्रभावना होती है ॥ २६ ॥ यह छहो प्रकारका तप वाह्य द्रव्यकी अपेक्षासे होता है-इसके कारण वाह्य पदार्थ हैं इसलिये यह वाह्यतप कहा गया है ॥२७॥ मनके नियमनकेलिये अभ्यंतर तप कहा है उसमें-प्रमादसे लगे हुये दोषोंकी शुद्धि करना प्रायश्चित्त है और वह आलोचन, प्रतिक्रमण, तदुभय (आलोचनप्रतिक्रमण) विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार और उपस्थापनाके भेदसे नौ प्रकारका है। पूज्योंका आदर सत्कार करना विनय है और उसके दर्शनविनय, ज्ञानविनय, चारित्रविनय और उपचारविनय इसप्रकार चार भेद हैं। अपने शरीरसे और दूसरे द्रव्यसे भी मुनियोंकी सेवा टहल करना वैयावृत्य है और वह आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु और मनोज्ञ इन दश प्रकारके मुनियोंकी सेवा करनेसे दश प्रकारका है। ज्ञानाराधनमें आलस्यका त्याग कर ज्ञानाध्ययन करना कराना स्वाध्याय तप है और वह वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेशके भेदसे पांच प्रकारका है। वाह्य अभ्यंतर परिग्रहका त्याग करना व्युत्सर्ग तप है और उसके वाह्योपधिका त्याग और अभ्यंतर उपधिका त्याग ये दो भेद हैं। चित्तविक्षेपका त्याग करना ध्यान है और उसके आर्त्त, रौद्र, धर्म्म और शुक्ल ये चार भेद हैं ॥ २८-३१ ॥ दश दोषोंसे रहित हो प्रमादसे लगे हुये दोषोंका गुरुसे निवेदन करना आलोचना नामका प्रायश्चित्त तप है ॥ ३२ ॥ जो दोष मैंने किये हैं वे सब मिथ्या हों इसप्रकार शुभभावोंसे जो दोषोंका दूर करना है वह प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त है ॥ ३३ ॥ कुछ दोषोंकी नास्ति आलोचनासे और कुछ दोषोंकी नास्ति प्रतिक्रमणसे होना तदुभय नामका तप है ॥ ३४ ॥ कुछ समय तक अन्नपानका विभागपूर्वक त्याग करदेना विवेक तप है और कायोत्सर्ग आदि करना व्युत्सर्ग तप कहलाता है ॥ ३५ ॥ अनशन अवमोदर्य आदि करना तप प्रायश्चित्त है।

एक दो आदि दिनकी, वा मासकी दीक्षाका घटा देना छेद प्रायश्चित्त है। पक्ष मास वा वर्ष आदिपर्यंत संघसे मुनिका निकाल देना परिहार है और एक बार दीक्षाके खंडित करदेने पर पुनः दीक्षा देदेना उपस्थापना है ॥ ३७ ॥

शब्दशुद्धि, अर्थशुद्धि, उभयशुद्धि आदि आठ प्रकारके ज्ञानाचारका यथोक्तकाल ग्रहणादि करना ज्ञानविनय नामका तप है ॥ ३८ ॥ निश्शंकित निःकांक्षित निर्विचिकित्सित अमूढदृष्टि आदि आठ प्रकारके दर्शनाचारमें गुण दोषोंका विवेक रखना-विनय करना, दर्शन विनय है ॥३९॥ तेरहो प्रकारके चारित्रमें किसी प्रकारके अतीचारका न होने देना चारित्रविनय है ॥ ४० ॥ गुरु आदि प्रत्यक्ष हों या परोक्ष हों उनकी उठनेसे वा नम्रवचन आदिसे विनय करना उपचार विनय है ॥ ४१ ॥

शिक्षा दीक्षा देनेवाले आचार्य, जिनसूत्रके पाठी उपाध्याय, महान तप तपनेवाले तपस्वी, नवीन दीक्षित आचारांग सूत्रके अभ्यास करनेवाले शैक्ष, रोग आदिसे पीड़ित ग्लान, वृद्धमुनियोंका समुदाय गण, एक गुरुके शिष्य कुल, ऋषि मुनि यति अनगार रूप चार प्रकारके मुनियोंका समुदाय संघ, चिरकालसे तप करनेवाले साधु और लोकको प्रिय मनोज्ञ इन दश प्रकारके साधुओंकी-व्याधिके उदित होजाने पर वा मिथ्यात्वके उदयसे किसी प्रकारकी परीषहके उपस्थित होजानेपर ग्लानि रहित हो जो सेवा टहल करना है वह वैयावृत्य है ॥ ४२-४५ ॥

निर्दोष ग्रंथको वा उसके अर्थको दूसरेको पढ़ाना लिखाना सुनाना, वाचना नामका तप है। किसी शब्दके अर्थमें संशय होजानेपर उसके निश्चयके लिये अपनेसे विशिष्ट ज्ञानीसे प्रश्न करना, पृच्छना तप है। ज्ञानका बार बार मनसे अभ्यास करना अनुप्रेक्षा है। पाठको शुद्धतापूर्वक घोकना आम्नाय है और पदार्थोंके वास्तविक स्वरूप बतलानेके लिये उपदेश देना देशना-धर्मोपदेश है ॥४६-४७॥ इसप्रकार प्रशस्त ध्यानके लिये, वास्तविक अर्थके समझनेके लिये, संवेग और तपकी वृद्धिके लिये यह पांच प्रकारका स्वाध्याय करना चाहिये ॥ ४८॥ अभ्यंतर क्रोध आदि और वाह्य आभरण आदि परिग्रहका त्याग करना, शरीरमें भी किसीप्रकारका ममत्व न रखना व्युत्सर्ग है। और यह निःसंगता निर्भयता और जीवनकी आशाकी निवृत्तिके लिये वाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहके त्यागसे होता है एवं मनकी एकाग्रता करना ध्यान है। ॥ ४९-५० ॥ जो जीव संवरका धारक है वह तपसे कर्मोंकी निर्जरा-क्षयकर मोक्ष जाता है और परिणामोंके भेदसे हरएक गुणस्थानमें निर्जराका भेद होता चला जाता है ॥ ५१ ॥ भव्य पंचेंद्रिय संज्ञी पर्याप्त और लब्धियोंके धारक जीवके अंतरंग शुद्धिके वृद्धिंगत होजानेपर बहुतसे कर्मोंकी निर्जरा होती है ॥ ५२ ॥ उसकेबाद प्रथम सम्यक्त्वके कारणोंके सन्निधान होनेपर जब जीव सम्यग्दृष्टि होता है तब उसके उससे

भी असंख्यात गुणी निर्जरा होती है। उससे असंख्यात गुणी निर्जरा पंचमगुण स्थानवर्ती श्रावकके होती है। उससे असंख्यात गुणी छठे गुणस्थानवर्ती मुनिके, उससे असंख्यात गुणी अनंतानुबंधीकषायके विसंयोजन करनेवालेके, उससे असंख्यात गुणी दर्शन मोहनीयके (मिथ्यात्व) क्षय करनेवालेके, उससे असंख्यात गुणी उपशम श्रेणी माढ़नेवालेके, उससे असंख्यात गुणी उपशांत मोहवालेके, उससे असंख्यातगुणी क्षपकश्रेणी माढ़नेवालेके, उससे असंख्यात गुणी क्षीणमोहवालेके और उससे असंख्यातगुणी तेरहवें गुणस्थानवर्ती केवलीके होती है ॥ ५३–५७ ॥ पुलाक वकुश कुशील निर्ग्रंथ और स्नातक ये पांच भेद निर्ग्रंथोंके हैं ॥ ५८ ॥ जो उत्तरगुणोंकी भावनारहित हों और मूल गुणोंमें भी किसी क्षेत्र वा कालमें परिपूर्णताको प्राप्त न हुये हों—अर्थात् कभी किसी कारणसे जिनके मूल गुण भी दोष युक्त हों वे पुलाक नामके निर्ग्रंथ हैं अर्थात् अन्नका पूला जिसप्रकार तुष और तृण संयुक्त होता है उसीप्रकार इनका भी चारित्र गुण और दोषोंसे युक्त होता है इसलिये इनका नाम पुलाक है ॥५९॥ जिनके व्रत तो अखंडित हों परंतु जो अपने शरीर वा उपकरण आदिकी शोभा बढ़ानेकी किंचित् इच्छा रखते हों—तपके उपकरणोंका नियम न हो और सातिचार चारित्रके धारक हों वे वकुश नामके निर्ग्रंथ हैं ॥ ६० ॥ कुशील निर्ग्रंथके दो भेद हैं—एक प्रतिसेवना कुशील और दूसरा कषायकुशील। जिनके मूल गुण और उत्तर गुण परिपूर्ण हों परंतु उत्तर गुणोंमें कारण विशेषसे कुछ विराधना आती हो और जो दूसरेकी वैय्यावृत्यके लिये कुछ परिग्रह भी रखते हों वे तो प्रतिसेवना कुशील हैं और जिनके अन्य कषाय तो शांत होगये हों पर केवल संज्वलन कषायका भाग वाकी रह गया हो उन्हैं कषायकुशील कहते हैं ॥ ६१–६२ ॥ जिनके मोहनीय कर्मके उदयका अभाव हो और जैसे जलमें दंड ताड़नेपर लहर उठती है और शीघ्र ही नष्ट हो जाती है उसीप्रकार अन्य कर्मोंका उदय मंद हो—प्रकट अनुभवमें न आवे एवं जिन्हें अंतर्मुहूर्तके बाद ही केवल ज्ञान होनेवाला हो उन्हैं निर्ग्रंथ कहते हैं ॥६३॥ और जिन्होंने समस्त घातिया कर्मोंका नाश करदिया हो ऐसे केवली भगवान स्नातक हैं। इसप्रकार ये पांच प्रकारके निर्ग्रंथ हैं। यद्यपि इनमें किन्हीं किन्हींके, परिग्रहमें ममत्व परिणाम रखनेसे निर्ग्रंथता नहिं आसकती तथापि नैगम आदि नयोंकी अपेक्षा इन्हैं निर्ग्रंथ माननेमें कोई दोष नहीं आता ॥ ६४ ॥ संयम आदि आठ कारणोंसे भी पुलाक आदिमें इसप्रकार भेद है—प्रतिसेवना कुशील, पुलाक और वकुश निर्ग्रंथोंके सामायिक और छेदोपस्थापना ये दो संयम होते हैं। कषायकुशीलके सामायिक छेदोपस्थापना परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसांपराय ये चार संयम होते हैं और निर्ग्रंथ एवं स्नातकके केवल यथाख्यात चारित्र होता है। प्रतिसेवनाकुशील, पुलाक और वकुश ग्यारह अंग दश पूर्व तकके और कषायकुशील

एवं निर्ग्रंथ ग्यारह अंग चौदह पूर्वके धारक होते हैं ॥ ६५-६९ ॥ जघन्यरूपसे पुलाकोंके आचारांगका ज्ञान रहता है और निर्ग्रंथ पर्यंत समस्त यतियोंके अष्ट प्रवचन माता (पांच समिति तीन गुप्ति) का ज्ञान रहता है ॥ ७० ॥ दूसरेके आग्रहसे व्रत और रात्र्यभुक्तिको सातिचार पालनेवाला पुलाक कहलाता है ॥ ७१ ॥ उपकरणवकुश और शरीरवकुशके भेदसे वकुश दोप्रकारका है। जिसकी अभिलाषा उपकरणों (कमंडलु पीछी आदि) की शोभा बढ़ानेकेलिये हो वह उपकरणवकुश है और जो शरीरकी शोभा बढ़ाना चाहता हो वह शरीर वकुश है ॥७२॥ प्रतिसेवना कुशीलके उत्तरगुणोंमें विराधना होनेपर भी मूलगुण निर्दोषरूपसे पूर्ण रहते हैं ॥ ७३ ॥ कषायकुशील और निर्ग्रंथ मूलगुण और उत्तरगुणोंके अखंड रूपसे पालन करनेवाले होते हैं एवं ये पांचों प्रकारके मुनि प्रत्येक तीर्थंकरके समयमें विद्यमान रहते हैं ॥ ७४ ॥ ये पांचो निर्ग्रंथ भावलिंगकी अपेक्षा बतलाये हैं। द्रव्यलिंगकी अपेक्षा तो इनके बहुतसे भेद हैं सो विद्वानोंको यथाशास्त्र समझ लेना चाहिये ॥ ७५ ॥ पुलाकमुनिके पीत पद्म शुक्ल तीनों प्रकारकी लेश्यायें रहती हैं वकुश और प्रतिसेवना कुशीलके छहो लेश्या, कषाय कुशीलके कापोत पीत पद्म और शुक्ल ये चार लेश्या, सूक्ष्म सांपराय गुणस्थानवर्त्तीके निर्ग्रंथके और स्नातकके केवल शुक्ल लेश्या रहती है और अयोगियोंके कोई लेश्या नहीं रहती ॥ ७६-७७ ॥ पुलाकमुनिका उत्पाद सहस्रार स्वर्ग तक होता है और वहां वह उत्कृष्ट आयुका भोग करता है। प्रतिसेवनाकुशील और वकुश आरण और अच्युत स्वर्ग तक उत्पन्न होते हैं एवं निर्ग्रंथ और कषायकुशील सर्वार्थसिद्धि तक जाते हैं यह तो उत्कृष्ट रूपसे इनका उत्पाद है और जघन्यरूपसे सबके सब सौधर्म स्वर्गमें जाकर उत्पन्न होते हैं और वहांकी दो सागरकी आयुका भोग करते हैं ॥ ७८-७९ ॥ कषायके निमित्तसे संयमके स्थानोंके भेद होते हैं और उनमें असंख्येय और अनंतगुणी संयमलब्धि होती है ॥ ८० ॥ कषाय कुशील और पुलाकके सर्वदा सर्वजघन्य संयमलब्धि स्थान होते हैं ॥ ८१ ॥ कषायकुशील और पुलाक एकसाथ एक समयमें असंख्येय लब्धि स्थान तक गमन करते हैं उनमें पुलाक पीछे लोट आता है और कषायकुशील न लोटकर असंख्येयलब्धिस्थानक चला जाता है ॥ ८२ ॥ वकुश प्रतिसेवनाकुशील और कषाय कुशील असंख्येय लब्धि स्थान जाते हैं उनमें वकुश पीछे लोट आता है। और जहांसे वकुश लोटता है वहांसे असंख्यातस्थान प्रतिसेवनाकुशील जाता है एवं पीछे लोट आता है। वहांसे असंख्यात स्थान कषायकुशील जाता है और वापिस लोट आता है पश्चात् अकषाय स्थानोंमें असंख्यात स्थान तक निर्ग्रंथ गमन करता है और वापिस लोट आता है उससे ऊपर अनंतगुणरूप ऋद्धिके धारी केवली जाते हैं वे वापिस नहिं आते और समस्त कर्मोंका नाशकर मोक्ष चले जाते हैं

॥ ८३-८६ ॥ क्षेत्रकाल आदि बारहकारणोंसे भूतप्रज्ञापन और प्रत्युत्पन्नग्राही नयोंके द्वारा सिद्धोंमें भी इसप्रकार भेद माना है—

प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) नयकी अपेक्षा सिद्धिक्षेत्रमें अथवा आत्मप्रदेश वा आकाशके प्रदेशोंमें सिद्धि होती है और भूतप्रज्ञापन नयकी अपेक्षा जन्मसे पंद्रह प्रकारकी कर्मभूमियोंमें उत्पन्न हुये जीवके सिद्धि होती है अथवा कर्मभूमियोंमें उत्पन्न हुये जीवको कोई देव आदि अन्य क्षेत्रमें ले जाय तो मनुष्य क्षेत्र (ढाई द्वीप) से सिद्धि होती है ॥ ८७-८९ ॥ कालकी अपेक्षा-प्रत्युत्पन्न नयसे तो एक समयमें ही सिद्धि होती है और भूत प्रज्ञापन नयसे जन्मकी अपेक्षा सामान्यसे उत्सर्पिणी अवसर्पिणी दोनों कालमें सिद्धि होती है विशेषतासे अवसर्पिणीकालमें तीसरे कालके अंतमें और चोथे कालमें सिद्धि होती है परंतु दुःखम दुःखम और दुःखम कालमें उत्पन्न हुये की सिद्धि नहिं होती। यदि विदेह क्षेत्रसे कोई देव आदि किसीको हर कर रख दे तो उसकी उत्सर्पिणी अवसर्पिणी सब कालमें सिद्धि होती है ॥ ९०-९२ ॥ गतिकी अपेक्षा—प्रत्युत्पन्नग्राही नयसे सिद्ध गतिमें ही सिद्धि होती है और भूतप्रज्ञापन नयकी अपेक्षा मनुष्य गतिहीमें सिद्धि होती है। लिंगकी अपेक्षा—प्रत्युत्पन्न ग्राही नयसे वेदरहित ही सिद्ध होता है और भूतप्रज्ञापन नयकी अपेक्षा तीनों भाव वेदोंसे सिद्धि होती है ॥ ९३ ॥ द्रव्यकी अपेक्षा—प्रत्युत्पन्नग्राही नयसे पुरुष वेदसे वा निर्ग्रंथ लिंगसे और भूतप्रज्ञापन नयसे सग्रंथके भी सिद्धि होती है ॥ ९४ ॥ तीर्थकी अपेक्षा—कोई तीर्थकर हो और कोई सामान्य केवली हो मोक्ष जाता है वहां पर भी कोई तीर्थकरकी मोजूदगीमें मोक्ष जाता है और किसीकी तीर्थंकरकी अविद्यमानतामें मोक्ष होती है ॥ ९५ ॥ चारित्रकी अपेक्षा—प्रत्युत्पन्न नयसे तो चारित्रके अभावमें सिद्धि होती है और प्रज्ञापन नयसे चार पांच वा केवल यथाख्यात चारित्रसे ही मोक्ष होती है ॥ ९६ ॥ प्रत्येकबुद्धतो स्वयंज्ञान प्राप्त कर लेता है और बोधितबुद्धको अन्यके उपदेशसे ज्ञानका लाभ होता है। यहांपर कोई प्रत्येकबुद्ध हो मोक्ष जाता है और कोई बोधितबुद्ध हो सिद्ध होता है ॥ ९७ ॥ ज्ञानकी अपेक्षा—प्रत्युत्पन्नग्राही नयसे तो केवलज्ञानसे ही सिद्धि होतीहै और भूत प्रज्ञापन नयकी अपेक्षा कोई मति श्रुति दो ज्ञानसे और कोई मति श्रुति अवधि अथवा मति, श्रुति, मनः पर्यय इन तीन ज्ञानसे कोई मति, श्रुति, अवधि मनः पर्यय इन चार ज्ञानसे केवल ज्ञानके बाद मोक्ष जाता है ॥ ९८ ॥ अवगाहनाकी अपेक्षा अधिकसे अधिक सवा पांचसौ धनुष कुछ कम और कमसे कम साड़े तीन हाथ कुछ कम अवगाहनासे सिद्धगति प्राप्त होती है एवं अनेक जीव नानाप्रकारकी मध्य अवगाहनासे भी मोक्ष जाते हैं ॥ ९९ ॥ अंतरकी अपेक्षा—जो जीव सिद्ध होते हैं वे अंतररहित भी सिद्ध होते हैं और अंतर सहित भी सिद्ध होते हैं तथा वहां जघन्य अंतर तो एक

समयका है और उत्कृष्ट छै मासका है ॥ १००-१०१ ॥ संख्याकी अपेक्षा जघन्य रूपसे तो एक समयमें एक ही जीव मोक्ष जाता है और उत्कृष्ट रूपसे एक समयमें एकसौ आठ जीव मोक्ष जाते हैं ॥१०२॥ अल्पबहुत्वकी अपेक्षा-क्षेत्र आदि कारणोंके भेदसे संख्याका कम वढ़ होजाना अल्पबहुत्व है। वहां प्रत्युत्पन्ननयकी अपेक्षा सिद्धि क्षेत्रमें ही सिद्ध होते हैं सिद्धोंमें कम बढ़पना नहीं होता परंतु भूतप्रज्ञापन नयकी अपेक्षा क्षेत्रके दो भेद एक जन्मका क्षेत्र, दूसरा संहरण (देव आदि द्वारा हरकर लानेका क्षेत्र) का क्षेत्र। उनमें संहरण सिद्ध बहुत कम हैं और जन्मसिद्ध उनसे संख्यातगुणे बतलाये हैं। क्षेत्रके विभागसे ऊर्ध्वलोकसे बहुत कम सिद्ध हुये हैं। उनसे संख्यातगुणे अधोलोकसे और उनसे संख्यातगुणे तिर्यग्लोकसे मोक्ष गये हैं। सामान्यरूपसे समुद्रसे मोक्ष गये सिद्ध बहुत कम हैं उनसे संख्यातगुणे द्वीपोंसे सिद्ध हुये हैं और विशेषरूपसे लवणसमुद्रसे बहुत कम सिद्ध हुये हैं उनसे संख्यातगुणे कालसमुद्रसे, उनसे संख्यातगुणे जंबूद्वीपसे, जंबूद्वीपसे संख्यातगुणे धातकीखंड द्वीपसे और उससे संख्यातगुणे पुष्करद्वीपसे सिद्ध हुये हैं ॥ १०३-१०९ ॥ जिसप्रकार यह क्षेत्रके विभागसे सिद्धोंमें अल्पबहुत्व बतलाया है उसी प्रकार काल और गति आदिके भेदसे भी शास्त्रानुसार समझ लेना चाहिये ॥ ११० ॥ इसप्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रयके परम उपासक सोमदत्त आदि ब्राह्मणपुत्र और उनकी दोंनों स्त्री ये पांचो आयुके अंतमें मरकर अच्युत स्वर्गमें सामानिक जातिके देव हुये और वहां परम शुद्ध सम्यग्दर्शनके धारक बन बाईस सागर प्रमाण मनमाने भोग भोगने लगे ॥ १११-११२ ॥ ब्राह्मणी नागश्री भी मरकर प्रबल पापके उदयसे धूम्रप्रभा नामक पांचवें नर्कमें उत्पन्न हुई। सत्तरह सागरप्रमाण वहांके दुःख भोगे वहां से निकलकर स्वंयप्रभद्वीपमें तीन सागर प्रमाण आयुका धारक दृष्टिविष सर्प हुई। सर्पकी योनिको समाप्त कर तीसरे नरक गयी वहां महादुःख भोगकर निकली और दो सागर प्रमाण त्रस और स्थावर योनियोंमें घूमी पश्चात् चंपापुरीमें किसी चांडालकी कन्या हुई। एक दिन उस चांडाल कन्याको मुनिराज समाधिगुप्तका दर्शन होगया। जिससे कि उसने मधु मांस आदि निंदित पदार्थोंका खाना छोड़ दिया। आयुके अंतमें मरकर उसी चंपामें वह सुबंधु नामक वैश्यके सेठानी धनवतीसे सुकुमारिका नामकी पुत्री हुई। यद्यपि वह परमरूपवती थी तथापि पापके प्रबल उदयसे वह महादुर्गंधमय शरीरकी धारक हुई जिससे कि किसी भी युवाने उसके साथ विवाह करना न चाहा ॥ ११३-११८ ॥ उसी नगरीमें एक धनदेव नामका वैश्यभी रहता था उसकी स्त्री का नाम अशोकदत्ता था और उससे जिनदेव एवं जिनदत्त नामके दो पुत्र उत्पन्न थे ॥ ११९ ॥ दैवयोगसे धनदेव आदि कुटुंबियों ने सुकुमारिकाके साथ जिनदेव का विवाह करना चाहा जिनदेवको यह बात अभिमत न थी इसलिये उसने

सर्वथा सुकुमारिकाको छोड़ दिया और सुव्रतमुनिराजके समीप दिगंबर दीक्षासे दीक्षित होगया॥ १२०॥ छोटे भाई जिनदत्तको बंधुओंके आग्रहसे सुकुमारिकाके साथ विवाह करना पड़ा परंतु उसने उसै दुर्गधिके कारण छोड़ दिया॥ १२१॥ जब सुकुमारिकाने अपनी यह दशा देखी तो उसने अपनी बहुत निंदा की। एक दिन उसने उपवास किया और उसी दिन कोई क्षांता नामकी आर्या अन्य दो आर्यिकाओंके साथ सुकुमारिकाके यहां आहारार्थ आई। सुकुमारिकाने भक्तिभावसे उन्हें आहार दिया और विनयभावसे नमस्कार कर इसप्रकार पूछा—

"आर्यिके! आपके साथ ये जो आर्यिका परम रूपवती हैं ये किस कारणसे इस दुष्कर तपमें प्रवृत्त हुई हैं?" आर्यिका क्षांता परम दयावती थी। उसने कन्या सुकुमारिकाके प्रबोधार्थ इसप्रकार उन दोनों आर्यिकाओंके तपका कारण कहा—

सुकुमारिके! जिस कारणसे इन सुकुमार आर्यिकाओंने तप धारण किया उसकी व्यवस्था इसप्रकार है—ये दोनों कुमारियां पूर्वभवमें सौधर्म स्वर्गके इंद्रकी देवियां थी और इनके नाम विमला और सुप्रभा थे। एकदिन नंदीश्वर पर्वकी यात्रामें ये जिन भगवानकी पूजाके लिये आई थीं। दैवयोगसे इन्हें संसारसे उदासीनता होगई और मनमें यह विचार कर कि 'इस देव पर्यायमें तो हम तप धारण कर नहिं सकती जब हम मनुष्य होंगी तब अवश्य ही घोर तपका आराधन करैंगी जिससे कि हमें स्त्रीत्वनिमित्तक घोर यातना न भोगनी पड़े'' स्वर्गको चली गईं। वे दोनों देवी आयुके अंतमें स्वर्गसे चयीं और अयोध्याके राजा श्रीषेणके रानी श्रीकांतासे हरिषेणा और श्रीषेणा नामकी कन्या हुईं। जिससमय ये दोनों यौवन रूपी लक्ष्मीसे मंडित हुईं उससमय इनका स्वयंवर किया गया। अचानक ही इन्हें अपनी पूर्वभवकी की हुई प्रतिज्ञाकी याद आगई जिससेकि इन्होंने शीघ्रही अपने बंधु बांधवोंका त्याग करदिया और आर्यिकाके व्रत धारण करलिये"॥ १२२–१३१॥ आर्यिकाके ऐसे वचन सुन सुकुमारिकाको भी वैराग्य होगया संसारके भयसे भयभीत हो वह उसी आर्यिकाके पास दीक्षित होगई और अन्य आर्यिकाओंके साथ घोर तपसे कालको व्यतीत करती हुई शरीर शोषण करने लगी। ॥ १३२–१३३॥ एक दिन उसी गांवकी गणिका वसंतसेना अनेक कामियोंके साथ भांति २ की क्रीड़ाओंमें उद्यत हो वन विहारके लिये आई। उसे देखते ही आर्यिका सुकुमारिकाने बड़ी लालसासे—'मुझे भी आगेके जन्ममें ऐसे ही अनुपम सौभाग्य प्राप्त हों' यह निंदित निदान बांधा। आयुके अंतमें मरकर वह अच्युत स्वर्ग गई। वहां पचपन पल्यप्रमाण आयुकी भोगने वाली, अपने पूर्वभवके स्वामी सोमभूतिके जीव देवकी देवी हुई। स्वर्गके मनमाने सुख भोगकर सोमदत्त आदि तीनोंके जीव वहांसे चये और राजा पांडुके तुम रानी कुंतीसे क्रमसे युधिष्ठिर भीमसेन और अर्जुन पुत्र हुये हो तथा धनश्री

और मित्रश्रीके जीव देव भी कुंतीके गर्भमें आये और वे नकुल एवं सहदेव नामके पुत्र हुये हैं ॥ १३४-१३८ ॥ आयुके अंतमें नागश्रीका जीव देवी भी स्वर्गसे चयी और राजा द्रुपदके रानी दृढ़रथासे यह द्रौपदी नामकी कन्या हुई ॥ १३९ ॥ नागश्रीके भवमें सोमभूतिका जीव अर्जुन द्रौपदीका पति था इसलिये राधावेधसे जो अर्जुनने द्रौपदीको विवाहा उसमें पूर्वजन्मका स्नेह ही कारण था यह वात विलकुल स्पष्ट हो चुकी ॥ १४० ॥ युधिष्ठिर भीम और अर्जुन तो इसी भवसे मोक्ष जांयगे और नकुल एवं सहदेव एकवार सर्वार्थसिद्धि जाकर मोक्ष लाभ करेंगे ॥ १४१ ॥ परमपावन सम्यग्दर्शनकी धारक द्रौपदी आदि भी तपके प्रभावसे आरण और अच्युत स्वर्गोंमें जाकर उत्पन्न होंगी और वहांसे आकर ये भी मोक्ष चली जांयगी ॥ १४२ ॥ भगवान नेमिनाथके मुखसे इसप्रकार अपने पूर्वभवका वृत्तांत सुन युधिष्ठिर आदि पांचों पांडवोंको एक दम संसारसे वैराग्य होगया और वे तत्काल जिनराज नेमिनाथके चरणकमलोंमें दिगंबर दीक्षासे दीक्षित होगये ॥ १४३ ॥ माता कुंती द्रौपदी और सुभद्रा आदि रानियां भी एक दम संसारसे उदासीन होगईं और आर्यिका राजीमतीके पास आर्यिका बन गईं ॥ १४४ ॥ सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र महाव्रत समिति और गुप्तियोंसे अपनी आत्माके स्वरूपकी चिंतना करते हुये पांडव आदि घोर तप तपने लगे ॥ १४५ ॥

मुनिराज भीमसेनने जो कोई भालेके अग्रभागसे आहार देगा उसीसे आहार लूंगा इसप्रकार क्षुधासे समस्त शरीरको सुखानेवाला महाघोर वृत्तिपरिसंख्यान तप तपा और छै मासके बाद जब उन्हें आहार मिला तो बड़ी शांतिसे आहार किया। युधिष्ठिर आदि मुनिराजोंमें किसीने तेला और किसीने चौला आदि किया इसप्रकार जैनागमके समुद्ररूप इन पांचो मुनिराजोंने सानंद पृथ्वीपर विहार किया ॥ १४६ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेन द्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथके चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें युधिष्ठिर आदि पांचों पांडवोंकी दीक्षा वर्णन करनेवाला चौंसठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६४ ॥

पैंसठवां सर्ग

समस्त प्रकारके देवोंसे मंडित भगवान नेमिनाथने पल्लवदेशमें धर्मका उपदेश दे उत्तर दिशासे सुराष्ट्र (सोरठ) देशकी ओर गमन किया। जिसप्रकार सूर्य उत्तरायणसे दक्षिणायन होता है और उसका तेज पूर्व दिशाके समानही सर्वत्र रहता है उसीप्रकार भगवान जिनेंद्रका भी प्रभाव और प्रताप 'उत्तर दिशासे दक्षिणकी ओर आने पर' भी पहिलेके ही समान सर्वत्र फैल गया ॥ १-२ ॥ जिससमय भगवान नेमीश्वरने अपनी अर्हंत विभूतिके साथ २ दक्षिण दिशामें विहार किया उससमय वहांके देशोंकी शोभा स्वर्गके समान होगई ॥ ३ ॥ जिससमय उनके निर्वाण कल्याणका समय

समीप आगया तो अनेक देव मनुष्योंसे सेवित वे गिरनार पर्वतपर पुनः लौट आये जिससे कि जैसी पहिले उस पर्वत पर समवसरणकी रचना हुई थी वैसी ही फिर हो गई और अपने अपने स्थानोंपर तिर्यंच मनुष्य और देव स्थित होगये ॥ ४-५ ॥ भगवानने वहांपर स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला अनेक बड़े बड़े साधुओंसे मान्य सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यकचारित्ररूप परम धर्मका उपदेश दिया ॥ ६ ॥ जिस-प्रकार पहिले ही पहिले केवल ज्ञानके उदयके समय भगवानने समस्त जीवोंका हित करने वाला धर्मोपदेश दिया था उसीप्रकार जब तक निर्वाण कल्याणका एक मास वाकी रहा तब तक वे वरावर उपदेश देते रहे ॥ ७ ॥ जिसप्रकार अग्निका स्वभाव ऊर्ध्व गमनता और उष्णता है जलका स्वभाव शीतता, पवनका स्वभाव तिरछागमन, सूर्य चंद्र आदिके तेजका स्वभाव प्रकाशपना, अकाशका स्वभाव अमूर्तपना और पृथ्वीका स्वभाव सव पदार्थोंका धारण करना है उसीप्रकार कृतकृत्य भगवान जिनेंद्रका भी धर्मोपदेश देना स्वभाव था—वे किसीकी प्रेरणासे धर्मोपदेश नहिं देते थे ॥ ८-९ ॥ भगवानने एकमास पहिलेसे योगोंका निरोधकर समस्त अघातिया कर्मोको भी मूलसे नष्ट कर दिया और वे अनेक मुनिराजोंके साथ निर्वाण शिलापर जा विराजे ॥ १० ॥ जब भगवान नेमिनाथ मोक्ष चल गये तो इंद्र और देवोंने उनके अंतिम शरीरसे संबंध रखनेवाली निर्वाण कल्याणकी पूजा की ॥ ११ ॥ जिसप्रकार विजली देखते देखते क्षणभरमें विलीन होजाती है उसीप्रकार गंध पुष्प आदि सुगंधित द्रव्योंसे पूजित भग-वान जिनेंद्रका शरीर क्षणभरमें दृष्टिके अगोचर होगया। क्योंकि—यह स्वभाव है कि भगवानके शरीरके परमाणु अंत समयमें अपनी स्कंधपर्यायको छोड़ देते हैं और वि-जलीके समान तत्काल विलीन होजाते हैं ॥ १२-१३ ॥ गिरनार पर्वतपर इंद्रने पर-म पावन सिद्धशिला निर्मापी और उसमें भगवान जिनेंद्रके समस्त लक्षण वज्रसे अं-कित कर दिये ॥ १४ ॥ अंतमें इंद्रसहित देवोंने और राजाओंने गणधर वरदत्त आदि संघको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और अपने अपने स्थानोंकी ओर प्रस्थान किया। ॥ १५ ॥ समुद्रविजय आदि नो भाई, देवकीके युगलिया छै पुत्र और कृष्णके पुत्र शंब और प्रद्युम्न आदि अन्य भी मोक्ष गये। इसलिये उससमयसे गिरनार आदि निर्वाण स्थान संसारमें विख्यात हुये और तीर्थयात्राके लिये आये हुये मनुष्योंसे सर्वदा शोभित रहने लगे ॥ १६-१७ ॥ पांचो पांडव भी भगवान नेमिनाथको मोक्ष गये जान शत्रुं-जय पर्वतपर प्रतिमायोगसे स्थित होगये ॥ १८ ॥ उससमय वहांपर दुर्योधनके वंश का पापी कोई युधवरोधन नामका मनुष्य मोजूद था ज्योंही उसने पांडवोंको उस पर्वतपर आया सुना त्योंही उसने उनपर घोर उपसर्ग करना प्रारंभ कर दिया। ॥ १९ ॥ उसने लोहेके मुकुट कड़े और कटिसूत्र आदि भूपण वनवाये और उन्हें

अग्निमें तपाकर युधिष्ठिर आदि पांचो मुनियोंके मस्तक आदि स्थानोंमें पहिना दिये जिससे कि तपे हुये उन मुकुट आदिसे पांडवोंके शरीर बुरी तरह जलने लगे परंतु वे पांडव मुनिराज महाधीर वीर थे। कर्मोंके विपाकको भलेप्रकार जानते थे और कर्मोंके नाश करनेमें परिपूर्ण शक्ति रखते थे इसलिये जाज्वल्यमान अग्निके समान मुकुट आदिको उन्होंने वर्फके समान शीतल समझा और शांतभावसे सब उपसर्ग सह-लिया॥ २०–२१॥ युधिष्ठिर भीम अर्जुन तीनों मुनिराजोंने शुक्लध्यान रूपी महलमें प्रवेश किया और आठो कर्मोंका सर्वथा नाश कर वे तीनों ही सिद्ध शिलापर जा विराजे॥ २२॥ मुनिराज नकुल और सहदेवने अपने कष्टकी तो कुछ पर्वाय न की परंतु अपने बड़े भाईयोंका कष्ट देखकर उनका चित्त कुछ विचलित होगया इसलिये अपने कर्मानुसार आयुके अंतमें वे सर्वार्थसिद्धि विमानमें जा अहमिंद्र हुये॥ २३॥ नरोत्तम ऋषि नारदने भी दिगंबर दीक्षा धारण करली और तपसे संसारका सर्वथा नाशकर निर्वाण सुख पाया॥ २४॥ इनके सिवाय और भी सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूपी रत्नत्रयके धारक भव्यगण अनेक मोक्ष गये और अनेक स्वर्ग गये। ॥ २५॥ संसाररूपी चक्रके क्षयकरनेके अभिलाषी मुनिराज बलदेवने पर्वतके शिखर पर आरूढ़ हो नानाप्रकारका घोर तप तपा। एक दो तीन आदि छै मास पर्यत उप-वास कर कषाय और शरीरका शोषण किया और धैर्यकी पुष्टि की॥ २६–२७॥ वनमें मिले हुये आहारसे प्राणधारण करनेके उद्यमी वे वनमें विहार करने लगे और जो लोग उन्हें देखते थे उन्हें चंद्रमा सरीखे जान पड़ने लगे॥ २८॥ मुनिराज बल-देवकी वह बात आस पासके पुर और गांवोंमें भी फैलगई जिससे कि वनके समीपस्थ नगरोंके रहनेवाले बलदेवके वैरी राजाओंका मन क्षुब्ध होगया–बलदेवकी ओरसे उनके मनमें शंका होगई इसलिये अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित वे शीघ्र ही वनकी ओर चल दिये। जब देव सिद्धार्थको इस बातका पता लगा तो उसने अपनी मायासे उस वनमें सिंह ही सिंह बना दिये॥ २९–३०॥ जिस समय उन राजाओंने मुनिराजके चर-णोंके आस पास बैठे हुये सिंहोंको देखा तो उन्हें मुनिराजकी सामर्थ्य अकूत जान पड़ी जिससे कि वे उन मुनिराजको प्रणाम कर शांत होगये और अपने अपने स्थान चले गये। एवं उसीसमयसे सिंहके समान वक्षःस्थलके धारक, सिंहरूपी भृत्योंसे मंडित, मुनिराज बलदेवका पृथ्वीमें नरसिंह नाम प्रसिद्ध हुआ॥ ३१–३२॥ मुनिवर बलदेवने सौवर्षतक घोर तप तपा और आयुके अंतमें आराधनाओंका आराधन कर ब्रह्मस्वर्गमें देवोंके स्वामीका पद पाया॥ ३३॥ ब्रह्मस्वर्गमें भांति २ के रत्नोंसे देदी-प्यमान, अनेक देव और देवियोंके परिवारसे मंडित उत्तमोत्तम महल और उद्यानोंसे भूपित जो पद्मोत्तर नामका विमान है उसकी कोमल उपपाद शय्यापर जिसप्रकार रत्नोंकी

खानिसे युक्त भूमिमें महामणि उत्पन्न होता है मुनिराज बलदेव जा उत्पन्न हुये और उनकी भाषा, मन, आदि छै पर्याप्ति तत्काल पूरी होगई जिससे कि नानाप्रकारके उत्तमोत्तम आभूषणोंसे मंडित, नवीन यौवनसे भूपित, वे सर्वतोभद्र नामकी सेजपर जिसप्रकार निद्रासे उठकर युवालोग बैठ जाते हैं उसप्रकार बैठ गये ॥ ३४-३७ ॥ बलदेवके जीव देवको देखते ही इसकी अनुयायी देव देवांगना इसकी ओर टकटकी लगाकर देखने लगे और अपने मनोहर शब्दोंसे इसकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३८ ॥ सूर्य चंद्रमाकी कांतिसे भी चढ़ी बढ़ी शरीरकी कांतिको धारण करनेवाला यह जिससमय स्वस्थ हुआ उससमय आनंदसे परिपूर्ण हो एकाग्रतासे इसप्रकार विचार करने लगा—

"महामनोहर यह कौन तो देश है ? कौन यह प्रसन्नचित्त जनसमुदाय है ? मैं कौन हूं ? कौन यह मेरा भव है ? और पूर्वभवमें मैंने किस धर्मका उपार्जन किया था ?" देवको इसप्रकार विचार करते देख मुख्य मुख्य देवोंने उसे बोधा और स्वयं भी उसे भवप्रत्यय अवधिज्ञान होगया जिससे कि शीघ्र ही उसने अपना पूर्वापर वृत्तांत जान लिया ॥ ३९-४१ ॥ बलदेवके जीवने जब पूर्वभवके समस्त बंधुओंका वृत्तांत जाना तो वहां उसका अभिषेक किया गया उसने अपने योग्य भूषण वसन पहिने । अवधिज्ञानसे कृष्णका पता पा बंधुके हितमें उद्युक्त हो तीसरे बालुकाप्रभा नरक गया और वहां अपने छोटे भाई कृष्णको परम दुःखी देख स्वयं भी महादुःखित हुआ । ॥ ४२-४३ ॥ जिससमय महाप्रभावी यह देव नरकमें पहुंचा तो इसके प्रभावसे वहांके महा अशुभ-दुःखदायी भी शब्द गंध रस और स्पर्श परमशुभ-सुखदायी होगये । ॥ ४४ ॥ कृष्णको देखते ही बलभद्रके जीवका हृदय प्रेमसे भरगया । वह सहसा 'भाई कृष्ण आ ! आ !! मै तेरा बड़ा भाई बलदेव ब्रह्मलोकका स्वामी हुआ हूं और यहां तेरे पास आया हूं" इसप्रकार कहने लगा और जेटमें भर कर स्वर्गमें लेजानेके लिये कृष्णके जीव नारकीको उठाने भी लगा । परंतु जिसप्रकार मक्खन पिघल जाता है उसी प्रकार कृष्णका शरीर विलीन होने लगा-तप तपकर गलने लगा ॥ ४५-४६ ॥ अपने शरीरकी यह दशा देख कृष्णने कहा—

भाई देव ! क्यों यह वृथा चेष्टा कर रहे हो ? क्या तुम इस बातको नहि जानते कि समस्त जीव अपने किये कर्मको अवश्य भोगते हैं ? ॥ ४७ ॥ भाई ! संसारमें जिसने जैसा कर्म उपार्जन किया है वह नियमसे वैसे कर्मके फलको भोगता है ॥ ४८ ॥ देव जीवोंके सुख और दुःखको नहिं हरसकते क्योंकि यदि वे दुःख हरनेकी सामर्थ्य रखते तो अपने मृत्युसे उत्पन्न हुये दुःखको ही क्यों नष्ट न करलेते स्वयंही क्यों मृत्युजन्य दुःख भोगते ॥ ४९ ॥ इसलिये भाई ! तुम अपने स्थान स्वर्गको जाओ और अपने पुण्यसे उपार्जित शुभ फलका भोग करो । जब मेरी यहां-

की आयु समाप्त होगी तब मैं भी मोक्षके कारणभूत मनुष्यपनेको प्राप्त होऊंगा। ॥ ५० ॥ अपन दोनों मनुष्य भवमें तप तपकर और कर्मोंका सर्वथा नाशकर भगवान जिनेंद्रके शासनकी सेवामें मोक्ष सुख लाभ करैंगे ॥ ५१ ॥ द्वारिकाके दाहसे और बंधुजनोंके क्षयसे समस्त लोकमें हमारा अपवाद हुआ है सो आप एक काम करैं—भरतक्षेत्रमें जांय और वहां ऐसी माया फैलावें कि सब लोगोंको अपन दोनों पुत्र पिता आदिसे युक्त और महाविभूतिसे मंडित दीखें और सब लोग हमारी ओर बड़े आश्चर्यसे देखें। शंख चक्र गदासे युक्त मेरी प्रतिमाओंसे मंडित समस्त भरत क्षेत्रकी पृथ्वीको व्याप्त करदें जिससे कि संसारमें सर्वत्र मेरी कीर्तिका प्रसार होजाय" ॥ ५२–५३ ॥ मूढ़ देवने कृष्णके ये समस्त वचन स्वीकार करलिये और उन्हें शुद्ध सम्यग्दर्शन धारण कराकर शीघ्रही भरतक्षेत्रकी पृथ्वीपर आ पहुंचा ॥५४॥ भाईके स्नेहके वशीभूत हो देवने जैसा कृष्णने कहा था वैसाही आकर किया और दिव्य विमानमें विठाकर कृष्ण और बलदेवका स्वरूप दिखलाया॥ ५५ ॥ नगर और ग्रामोंमें कृष्णके मंदिर बना २ उनमें उनकी प्रतिमा पधराकर समस्तलोक कृष्णमय करदिया। सो ठीकही है—स्नेहसे क्या २ काम नहि करदिये जाते ॥ ५६ ॥ इसप्रकार मायासे भरत क्षेत्रमें कृष्णका प्रताप दिखाकर देव अपने स्थान ब्रह्म स्वर्ग चला गया एवं भगवान जिनेंद्रकी पूजामें सदा दत्तचित्त और अनेक देवांगनाओंसे मंडित हो भांति २ के दिव्य सुख भोगने लगा ॥ ५७ ॥

संसारमें स्नेह बड़ा बलवान है। इस स्नेहके चक्रमें फसकर जीव उन्नत स्थानपर विराजमान भी पातालके मूलमें प्रवेशकर जाता है। संसारके सारभूत विषय सुखका भोगना भी छोड़ देता है। पहिले अभ्यास किये शास्त्रका मर्म भूल जाता है और मत्त हो विपरीत काम भी कर पाड़ता है। देखो! कृष्णके स्नेहमें फसंकर बलदेवके जीव देवने ऐसाही किया इसलिये मनुष्योंके अतिशय मोह और स्नेहको धिक्कार है क्योंकि यह स्वर्ग और मोक्षके सुखको रोकनेवाला है अर्थात् मोहसे मत्त मनुष्य स्वर्ग और मोक्षके सुखोंसे हाथ धो बैठता है ॥ ५८ ॥

मोहके नाश करनेवाले भगवान नेमिनाथके बाद गणधर वरदत्त केवली हुये और हरिवंशमें जरत्कुमार राजा हुआ, जो कि हरिवंशकी संततिका रक्षण करनेवाला था। महाधीर वीर था राज्यकी धुराका धारण करनेवाला था और पृथ्वीके स्वामीपनेकी शोभासे शोभित था ॥ ५९ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेन द्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें भगवानका निर्वाण कल्याण वर्णन करनेवाला पैंसठवां सर्ग समाप्त हुआ॥ ६५ ॥

छ्यासठवां सर्ग ।

जिससमय उग्र-शासनके धारक राजा जरत्कुमारने पृथ्वीका शासन किया उससमय उसके प्रतापसे समस्त राजा वश होगये प्रजा उससे बड़ा स्नेह करनेलगी और परम हर्षको प्राप्त हुई ॥ १ ॥ राजा जरत्कुमारकी पटरानी कलिंगराजकी पुत्री थी और उससे अति सुखदायी राजकुलकी ध्वजास्वरूप वसुध्वज नामका पुत्र हुआ । हरिवंशका शिरोभूषण महाव्यवसायी जिससमय कुमार वसुध्वज युवा हुआ उससमय राजा जरत्कुमारने राज्य तो वसुध्वजको दिया और आप तपोवनकेलिये चलदिया । सो ठीकही है—तीव्र तपका सेवन करना ही सज्जनोंका कुलव्रत है ॥२–३॥ कुछ काल बाद राजा वसुध्वजके चंद्रमाके समान प्रजाको प्रिय पराक्रममें राजा वसुकी तुलना करनेवाला सुनुवसु (सुवसु) नामका पुत्र हुआ । सुवसुके कलिंग देशकी रक्षा करनेवाला भीमवर्मा हुआ और उसके वंशमें और भी बहुतसे राजा हुये ॥ ४ ॥ पश्चात् उसीवंशका भूषणस्वरूप कपिष्ठ नामका राजा हुआ । उसका पुत्र अजात शत्रु, अजात शत्रुका शत्रुसेन, उसका जितारि और जितारिका पुत्र राजा जितशत्रु हुआ ॥ ५ ॥ राजन् श्रेणिक ! क्या इस जितशत्रु राजाको तुम नहिं जानते ? इसके साथ भगवान महावीरके पिता राजा सिद्धार्थकी छोटी बहिनका विवाह हुआ है और यह समस्त पृथ्वीमें प्रसिद्ध है महाप्रतापी एवं शत्रुमंडलका नाश करनेवाला है । जिससमय भगवान महावीर स्वामीका जन्म हुआ था और उनका जन्मोत्सव मनाया गया था उससमय यह राजा कुंडलपुर आया था और पराक्रममें इंद्रकी तुलना करनेवाले इस राजाका कुंडलपुरके स्वामी राजा सिद्धार्थने बड़ा भारी सन्मान किया था ॥ ६–७ ॥ इस राजाकी स्त्रीका नाम यशोदया था और उससे एक यशोदा नामकी पुत्री उत्पन्न थी। राजा जितशत्रु अनेक कन्याओंके साथ पुत्री यशोदाका भगवान महावीरके साथ विवाह करना चाहता था परंतु भगवान महावीर बाल्य अवस्थासे ही उदासीन थे । इसलिये उन्होंने दिगंबर दीक्षा धारण करली और कैवल्यविभूति प्राप्तकर संसारके कल्याणार्थ धर्मोपदेश देते हुये पृथ्वीपर विहार करनेलगे यह देख राजा जितशत्रुको भी संसारसे उदासीनता होगई वह भी समस्त पृथ्वीका त्यागकर दिगंबर दीक्षासे दीक्षित होगया और तपके प्रभावसे उसके (मुनिराज जितशत्रुके) मनुष्यताका फलस्वरूप आज केवल ज्ञान प्राप्त होगया है । संसारमें यह मनुष्यत्वरूपी वृक्ष महाफल प्रदान करनेवाला है इसीसे तपद्वारा केवलज्ञानरूपी और मोक्षरूपी फल प्राप्त होते हैं ॥ ८–१० ॥

राजन् ! समस्तलोकमें प्रसिद्ध त्रेसठ शलाका पुरुषोंके चरित्रका संबंध रखनेवाली यह हरिवंशकी कथा तुम्हारे समक्ष संक्षेपसे कही गई है सो यह कथा तुम्हारे

कल्याणकी करनेवाली हो ॥ ११ ॥ इसप्रकार गणधर गौतमसे हरिवंशके चरित्रको परम सम्यग्दृष्टि राजा श्रेणिक अनेक राजाओंके साथ श्रवणकर परम आनंदको प्राप्त हुआ और गणधर गौतमको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर बड़े आनंदसे निजस्थान राजगृह नगर चला आया ॥ १२ ॥ समीचीन धर्मकी कथाके अनुरागी फिर जन्मको न चाहनेवाले चारो निकायोंके देव और विद्याधर आदिने भी भगवानको प्रदक्षिणा कर नमस्कार किया और अपने अपने स्थान चले गये ॥ १३ ॥ बहुत काल तक पृथ्वीपर विहार कर पूज्य केवली भगवान जितशत्रुने समस्त कर्मोंका नाशकर मोक्ष प्राप्तकी और वहांके निराकुलता रूप अक्षय सुखका वे अनुभव करने लगे ॥ १४ ॥ कल्याणके कर्ता भगवान महावीरने जहां तहां विहार कर अनेक भव्योंको संबोधा। अंतमें वे पावानगरी आये और उसके 'मनोहर' नामक उद्यानमें विराजमान होगये। जब चतुर्थकालका तीन वर्ष साढ़े आठ मास समय बाकी रहा तो उससमय वे स्वाति नक्षत्रमें कार्तिक बदी अमावसके दिन प्रभातकालमें योगोंका निरोधकर घातिया कर्मके समान अघातिया कर्मोंका भी सर्वथा नाशकर मोक्ष पधारे और वहांके अंतरायरहित सुखका अनुभव करने लगे ॥ १५-१७ ॥ पांचो कल्याणोंके अधिपति, सिद्धशासन, भगवान महावीरके निर्वाण कल्याणके समय देवोंने उनके शरीरकी विधिपूर्वक पूजाकी ॥१८॥ उससमय भगवान महावीरके निर्वाण-कल्याणके उत्सवके समय सुर असुरोंने महादेदीप्यमान जहां तहां दीपक जलाये-रोशनीकी जिससे कि पावानगरी अति सुहावनी जान पड़ने लगी और दीपकोंके प्रकाशसे समस्त आकाश जगमगा उठा ॥ १९ ॥ मयप्रजाके श्रेणिक आदि राजा, देव और इंद्र भगवानके निर्वाण कल्याणकी पूजाकर और उनके ज्ञान लाभकी अपनेको बार बार प्रार्थना कर अपने अपने स्थान चले गये ॥ २० ॥ भगवानके निर्वाण दिनसे लेकर आजतक भी जिनेंद्र महावीरके निर्वाण कल्याणकी भक्तिसे प्रेरित हो लोग प्रतिवर्ष भरतक्षेत्रमें दिवालीके दिन दीपोंकी पंक्तिसे उनका पूजन स्मरण करते हैं ॥ २१ ॥

भगवान महावीरके निर्वाणके बाद बासठ वर्षमें क्रमसे गौतम, सुधर्म और जंबूस्वामी ये तीन केवली हुये। उनके बाद सौ वर्षमें ग्यारह अंग चौदह पूर्वके धारक पांच श्रुतकेवली हुये इनके पश्चात् एकसौ तिरासी वर्षमें ग्यारह अंग दश पूर्वके धारक ग्यारह मुनि हुये। इनके बाद दो सौ बाईस वर्षमें पांच मुनि ग्यारह अंगके पाठी और उनके बाद एकसौ अठारह वर्षमें सुभद्र जयभद्र यशोबाहु और लोहाचार्य ये चार मुनिराज केवल आचारांगके पाठी हुये ॥ २२-२४ ॥ बस! अंग धारियोंकी यहीं समाप्ति होगई। इनके बाद अंगधारी कोई आचार्य न हुआ परंतु नयंधर ऋषि, गुप्तऋषि, शिवगुप्त, अर्हद्बलि, मदराचार्य, मित्रवीर, बलदेव, मित्रक, सिंहबल, वीरवित्, पद्मसेन, व्या-

ग्रहस्त, 'नागहस्ती' जितदंड, नंदिषेण, दीपसेन, श्रीधरसेन, सुधर्मसेन, सिंहसेन, सुनंदिषेण, ईश्वरसेन, सुनंदिषेण, अभयसेन, सिद्धसेन, अभयसेन, भीमसेन, जिनसेन, शांतिसेन, ये आचार्य हुये। ये समस्त आचार्य महातपस्वी थे समस्त सिद्धांतके पारगामी थे, छह प्रकारकी भाषाके जानकार थे इसलिये पट्खंड पृथ्वीके नाथ सरीखे जान पड़ते थे ॥ २५-२९ ॥ इनके बाद जयसेन गुरु हुये जो कि कर्मप्रकृति नामक श्रुतिके पारगामी थे। समस्त इंद्रियोंका व्यापार रोकनेवाले थे, प्रसिद्ध वैय्याकरण थे, महाप्रभावी और समस्त सिद्धांतके पारगामी थे ॥ ३० ॥ आचार्य जयसेनके शिष्य पवित्र पुन्नाट (ग) गणके अग्रणी, महागुणवान मुनि अमितसेन गुरु थे। ये अमितसेन जिनेंद्रके शासनके परमभक्त थे। महातपस्वी, सौवर्षकी आयुके धारक, दाताओंमें मुख्य थे और निर्दोष शास्त्रोंके दानसे उससमय समस्त पृथ्वी पर इनकी वदान्यता प्रकट होगई थी। इनके बड़े भाई धर्मके सहोदर प्रसिद्ध विद्वान आचार्य कीर्तिषेण थे ये महाक्षमावान महाज्ञानी और शरीरधारी धर्म सरीखे जान पड़ते थे एवं इनकी तपोमयी कीर्ति समस्त दिशाओंमें व्याप्त होगई थी। उनका प्रधान शिष्य मोक्षसुखके अनुभव करनेवाले भगवान अरिष्टनेमिका परम भक्त मैं जिनसेन नामका आचार्य हूं। मैंने अपनी अल्पबुद्धिसे इस पुराणकी रचनाकी है संभव है यदि मेरे प्रमादसे वा आपसके वचनदोषसे (किसी विषयमें किसीकी गुरु परिपाटीका कुछ और किसीकी परिपाटीका कुछ मत है इस आपसके सिद्धांतदोषसे) इस ग्रंथके बनानेमें मेरी कहीं स्खलना (भूल) होगई हो तो अप्रमादी पुराणोंके जानकार विद्वान महाशय यह जानकर कि छद्मस्थजीवकी स्थिति और सामर्थ्य होती ही कितनी है?—इतनी अल्पस्थिति और सामर्थ्यसे वह कैसे किसी कार्यको निर्दोषरूपसे समाप्त कर सकता है?" मुझै उस त्रुटिके लिये क्षमा प्रदान करें। क्योंकि कहां तो यह महापवित्र हरिवंशरूपी विशाल पर्वत? और कहां बिलकुल थोड़ी शक्तिका धारक मेरा अल्पमतिरूपी शक्ति अस्त्र?—ऐसी अल्प बुद्धिसे हरिवंश सरीखे विशाल वंशका वर्णन करना अति कष्टसाध्य है। मैंने इस जिनेंद्रके स्तवनसे यही कामना की है कि मुझै पुण्यकी प्राप्ति हो। यह जो मैंने हरिवंशकी रचना की है वह भक्तिसे प्रेरित हो की है इससे यह न समझना कि मुझै काव्योंकी रचना करनेका व्यसन था उससे प्रेरित हो वा संसारमें कीर्ति फैले इस कामनासे अथवा काव्यके अहंकारसे किं वा अन्य किसी लोभसे की है। इस पुराणमें चौवीस तीर्थंकर बारह चक्रवर्ती नौ नारायण नौ प्रतिनारायण और नौ बलभद्र इसप्रकार त्रेसठ शलाका पुरुषोंका वर्णन किया गया है। मध्य मध्यमें बहुतसे भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओंका भी उल्लेख किया गया है जो कि चतुर्वर्गके फलके भोगनेवाले और महा यशस्वी थे। इस हरिवंशके वर्णन करनेसे जो मैंने अगण्य पुण्य और अनेक गुणरूपी फलोंका

उपार्जन किया है उस फलसे मेरी यही कामना है कि भव्यगण सदा जिनभगवानके शासनमें दृढ़रूपसे स्थित रहैं। यह भगवान नेमिनाथका चरित्र चर अचर आदि समस्त जीव आदि पदार्थोंका प्रकाशक है इसलिये विद्वान सज्जनोंको चाहिये कि वे अपने कर्णपुटोंसे इसका पान करैं। जब भगवानका केवल नाम लेना ही ग्रह पिशाच आदिकी पीड़ाको दूर करनेवाला है तब वांचा हुआ उनका समस्त चरित्र समस्त विघ्नोंका शांति करनेवाला क्यों न होगा ?। विद्वान लोगोंसे प्रार्थना है कि वे दूसरी जगह चित्त न लगाकर इस पुराणका व्याख्यान परोपकारके लिये और अपनेको मोक्ष मिलैं इसलिये करै क्योंकि यह भगवान जिनेंद्रका शास्त्र मंगलकी इच्छा रखनेवाले आर्थियोंको परममंगलका करनेवाला है, भयंकर उपसर्ग आपड़नेपर शरण देनेवाला है, शांति प्रदान करनेवाला और अतिशय उत्तम है ॥ ३१–४३ ॥ चौवीसों भगवानकी सेवा करनेवाली सज्जनोंकी हितकारिणी जो चक्रेश्वरी पद्मावती आदि शासन देवतायें हैं उनसे यह प्रार्थना है कि सदा वे समीप बनी रहैं–कृपा रक्खें ॥ ४४ ॥ गिरनार पर्वतपर भगवान नेमिनाथके मंदिरकी उपासना करनेवाली, अनेक देवोंकी स्वामिनी, सिंहकी सवारीसे शोभित, हाथमें चक्रलिये देवी अंबिका भी हमारे कल्याणके लिये सदा समीप रहै क्योंकि उसके समीप रहनेपर शास्त्रमें कैसे भी विघ्न नहिं आ सकते और यह भी बात है कि भगवानकी शासनदेवियोंके प्रभाव और सामर्थ्यसे जीवोंको अनेक प्रकारके विघ्न करनेवाले ग्रह नाग भूत पिशाच आदि भी हित करनेवाले होजाते हैं ॥ ४५–४६ ॥ जो भव्यगण भक्तिपूर्वक इस हरिवंश पुराणको पढ़ेंगे उन्हैं थोड़े ही प्रयत्नसे अभीष्ट काम धर्म अर्थ और मोक्षरूपी लब्धियां प्राप्त हो जायगीं ॥४७॥ जिनेंद्रके भक्त आर्य मनुष्योंको चाहिये कि वे मात्सर्यरहित हो अखंड शक्तिकी धारक और धीरतासे उपार्जित अपनी बुद्धिसे बडे आदरसे इस पुराणके अर्थका लोकमें विस्तार करें। अथवा इस प्रार्थनासे भी कोई प्रयोजन नहीं क्योंकि स्वभावसे ही पृथ्वीके भारको सहनेवाले पर्वत जिसप्रकार मेघके जलको शिरपर धारणकर समस्त पृथ्वीपर विस्तारते हैं उसीप्रकार विद्वान भी समस्त भारके सहन करनेवाले हैं वे इस पुराणको स्वयं पढ़कर विचारकर और सुनकर अवश्य दूसरे मनुष्योंको पढ़ावेंगे विचरवावेंगे और सुनावेंगे ॥ ४८–४९ ॥ भलेप्रकार पर्यालोचित, उत्तमोत्तम शब्दोंसे गढ़ा हुआ पुराण (त्रेसठ शलाका पुरुषोंकी कथा) रूप निर्मल जलका धारक यह नवीन हरिवंश पुराण प्रखर विद्वानरूपी नदियोंकी कृपासे अवश्य पूर्व पश्चिम आदि चारो समुद्रोंके अंत तक पहुंचेगा–विद्वान् महाशय अवश्य ही सब दिशाओंमें इसका विस्तार करेंगे ॥ ५० ॥ बड़े २ देवोंसे सेवित, प्रजाको अतिशय शांति प्रदान करनेवाले शांतिमय शासनके धारक, देदीप्यमान केवलज्ञानरूपी विकसित नेत्रसे शोभित, समस्त

पदार्थोंके भलेप्रकार जानकार भगवान जिनेंद्र सदा इस लोकमें जयवंत रहैं ॥ ५१ ॥ वादियोंसे सर्वथा अजय्य-न जीते जानेवाला यह परम पावन जैनशास्त्र सदा जयवान रहो। सदा प्रजाके लिये कल्याण और सुभिक्ष हो और प्रतिवर्ष अनुकूल रूपसे वर्षनेवाले मेघोंसे उत्पन्न हुये भांति भांतिके धान्योंसे व्याप्त यह पृथ्वी सदा जीवोंको सुख देनेवाली हो ॥ ५२ ॥

शक संवतकी सातसौ पांच वर्षोंके वीत जानेपर जब कि उत्तर दिशाका पालन इंद्रायुध करता था, दक्षिणका कृष्णराजका पुत्र श्रीवल्लभ, पूर्व दिशाका अवंतिराज और पश्चिमदिशाका वत्सराज पालन करता था एवं सूरदेशका रक्षक विजयी वीर वराह था उससमय अनेक प्रकारके कल्याणोंसे शोभित श्रीवर्धमानपुरमें नन्न राज द्वारा निर्मापित श्रीपार्श्वनाथके मंदिरमें पहिले तो यह भगवान नेमिनाथके चरित्रसे व्याप्त हरिवंश पुराण पूरा किया पश्चात् भगवान शांतिनाथके मंदिरमें जाकर शांतिकेलिये वहांकी प्रजाने भगवान शांतिनाथकी पूजा उपासना की ॥ ५३-५४ ॥

अपनी शोभासे अन्य संघोंके जीतनेवाले श्रीपुन्नाटसंघके कवि जिनसेनाचार्यने सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रकी प्राप्तिकेलिये भगवान पार्श्वनाथकी कृपासे इस परमपावन हरिवंशपुराणका दर्शन किया है—रचा है। वे इस बातकी कामना प्रकट करते हैं कि समस्त दिशामंडलको व्याप्त करनेवाला यह हरिवंशपुराण चिरकालतक शाश्वतरूपसे इस पृथ्वीमें विद्यमान रहै ॥ ५५ ॥

इसप्रकार आचार्य जिनसेनद्वारा निर्मित भगवान नेमिनाथका चरित्र वर्णन करनेवाले हरिवंशपुराणमें गुरुओंके चरण कमल वर्णन करनेवाला छ्यासठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६६ ॥

॥ समाप्त ॥

१ श्रीपार्श्वतः और श्रीपर्वतः ये दोनों पाठ मिलते हैं। इनमें 'श्रीपार्श्वतः' का अर्थ ऊपर लिख दिया गया है और श्रीपर्वत. इसका अर्थ शोभाका पर्वत—विशाल शोभाका धारक यह अर्थ समझना चाहिये।

हरिवंशपुराणकी विषयसूची।

इति विषयसूची